☐ निर्देशन
साध्वी श्री उमरावकुंवर 'अर्चना'

☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनिश्री कन्हैयालाल 'कमल'
उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि
पण्डित श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल

☐ सम्प्रेरक
मुनिश्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रकाशनतिथि
वीर निर्वाण सं० २५१५
वि. सं. २०४६
ई. सन् १९८९

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशन समिति
बृज-मधुकर स्मृति भवन, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
पिन—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय,
केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य [illegible] रुपये

[illegible] परिवर्धित [illegible]

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Shri Joravarmalji Maharaj

JIVAJĪVABHIGAMA SŪTRA

[Part-I]

[Original Text, Hindi Version, Introduction and Appendices etc]

Inspiring Soul
(Late) Up-pravartaka Shasansevi Rev Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Founder Editor
(Late) Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Editor
Shri Rajendra Muni, M A.
Sahityamahopadhyay

Chief Editor
Pt. Shobhachandra Bharilla

Publishers
Shri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

Jinagam Granthmala Publication No. 30

☐ **Direction**
Sadhwi Shri Umravkunwar 'Archana'

☐ **Board of Editors**
Anuyoga-pravartaka Muni Shri Kanhaiyalal 'Kamal'
Upachrya Sri Devendramuni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt. Shobhachandra Bharilla

☐ **Promotor**
Muni Sri Vinayakumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinakar'

☐ **Date of Publication**
Vir-nirvana Samvat 2515
Vikram Samvat 2046; June, 1989

☐ **Publishers**
Sri Agam Prakashan Samiti,
Brij-Madhukar Smriti-Bhawan, Pipalia Bazar, Beawar (Raj.)
Pin 305 901

Printer
Satishchandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kaisarganj, Ajmer

☐ **Price** : Rs. [illegible]

प्रकाशकीय

श्री जिनागम-ग्रन्थमाला का ३०वाँ ग्रन्थाङ्क 'जीवाजीवाभिगम (प्रथम खण्ड) आगमप्रेमी पाठको के समक्ष प्रस्तुत करते आनन्द का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत सूत्र विशाल है और इसमे तात्त्विक वर्णन होने से इसके अनुवाद मे विस्तृत विवेचन की आवश्यकता रहती है। ऐसा किये विना जिज्ञासु पाठको को पूरी तरह परितोप नही हो सकता। इस दृष्टि को समक्ष रखकर विद्वद्वर मुनिवर श्री राजेन्द्र मुनिजी ने पर्याप्त विस्तृत विवेचन किया है। इससे सूत्र का हार्द समझने मे पाठको को बहुत सुविधा हो गई है, किन्तु साथ इसके कलेवर मे वृद्धि भी हो गई है। ऐसा होने पर भी इसे एक ही जिल्द मे छपाने का विचार किया था, मगर कतिपय प्रतिकूलताओ के कारण विवश होकर दो खण्डो मे प्रकाशित करना पड रहा है। पाठको को धरने-उठाने और विहार के समय साथ रखने मे अधिक सुविधा रहेगी, यह एक लाभ भी है।

प्रस्तुत सूत्र का दूसरा खण्ड भी यथासुविधा शीघ्र प्रकाशित करने का प्रयास किया जायगा।

श्री राजेन्द्र मुनिजी आगमो के विशिष्ट अध्येता और वेत्ता हैं, साथ ही उच्च कोटि के लेखक भी हैं। उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी म. तथा उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म जैसे विशिष्ट प्रवुद्ध मुनिराजो के अन्तेवासी होने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

जीवाजीवाभिगम का सम्पादन-विवेचन करना सरल कार्य नही है, फिर भी मुनिश्री ने हमारी प्रार्थना अगीकार करके इस महान् श्रमसाध्य कार्य को हाथ मे लिया और अल्पकाल मे ही सम्पन्न कर दिया, इसके लिए आभार प्रदर्शन करने योग्य शब्द हमारे पास नही है।

जिनवाणी के प्रचार-प्रसार मे निरन्तर निरत रहने वाले महान् सरस्वती उपासक उपाचार्य श्री देवेन्द्र मुनिजी म का ग्रन्थमाला-प्रकाशन के प्रारम्भ से ही अनमोल सहकार प्राप्त रहा है। नि स्सन्देह कहा जा सकता है कि उपाचार्य श्री का सहयोग न मिला होता तो जिस द्रुत गति से प्रकाशन-कार्य हुआ है, वह कदापि सम्भव न होता। प्रस्तुत सूत्र की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना लिखकर आपने हमे उपकृत किया है।

आगमवत्तीसी के सम्पादन-परिशोधन का कार्य सम्पूर्ण हो चुका है। बीच मे आचाराग और उपासकदशाग के द्वितीय सस्करण छपाना अनिवार्य हो जाने से छेदसूत्रो का प्रकाशन रुक गया था। अव वे प्रेस मे दे दिये गये हैं। आगम-अनुयोग प्रवर्त्तक पण्डितराज श्री कन्हैयालालजी म 'कमल' ने छेद सूत्रो के सम्पादनादि मे यथेष्ट श्रम किया है, रस लिया है। आपकी कृपा से उऋण नही हुआ जा सकता।

जिन-जिन महानुभावो का इस महान् कार्य मे सहयोग प्राप्त हुआ और हो रहा है, उन सभी के हम आभारी हैं।

निवेदक

रतनचन्द मोदी	सायरमल चोरडिया	अमरचन्द मोदी
कार्यवाहक अध्यक्ष	महामन्त्री	मन्त्री

श्री जैन आगम-प्रकाशन समिति, ब्यावर (राजस्थान)

सम्पादकीय वक्तव्य

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी वीतराग परमात्मा जिनेश्वर देवो की सुधास्यन्दिनी आगम-वाणी न केवल विश्व के धार्मिक साहित्य की अनमोल निधि है अपितु वह जगज्जीवो के जीवन का सरक्षण करने वाली सजीवनी है। अर्हन्तो द्वारा उपदिष्ट यह प्रवचन वह अमृत-कलश है जो सब विष-विकारो को दूर कर विश्व के समस्त प्राणियो को नव जीवन प्रदान करता है। जैनागमो का उद्भव ही जगत् के जीवो के रक्षण रूप दया के लिए हुआ है।[1] अहिंसा, दया, करुणा, स्नेह, मैत्री ही इसका सार है। अतएव विश्व के जीवो के लिए यह सर्वाधिक हितकर, सरक्षक एव उपकारक है। यह जैन प्रवचन जगज्जीवो के लिए त्राणरूप हैं, शरणरूप है, गतिरूप है और आधारभूत है।

पूर्वाचार्यों ने इस आगम-वाणी को सागर की उपमा से उपमित किया है। उन्होंने कहा—

'यह जैनागम महान् सागर के समान हैं। यह ज्ञान से अगाध है, श्रेष्ठ पद-समुदाय रूपी जल से लबालब भरा हुआ है, अहिंसा की अनन्त ऊर्मियो-लहरो से तरगित होने से यह अपार विस्तार वाला है, चूला रूपी ज्वार इसमे उठ रहा है, गुरु की कृपा से प्राप्त होने वाली मणियो से यह भरा हुआ है, इसका पार पाना कठिन है। यह परम सार रूप और मगल रूप है। ऐसे महावीर परमात्मा के आगमरूपी समुद्र की भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिए।'

सचमुच जैनागम महासागर की तरह विस्तृत और गभीर है। तथापि गुरुकृपा और प्रयत्न से इसमे अवगाहन करके सारभूत रत्नो को प्राप्त किया जा सकता है।

जैन प्रवचन का सार अहिंसा और समता है। जैसाकि सूत्रकृताग सूत्र मे कहा है—सब प्राणियो को आत्मवत् समझ कर उनकी हिंसा न करना, यही धर्म का सार है, आत्मकल्याण का मार्ग है।

जैन सिद्धान्त अहिंसा से ओतप्रोत हैं और आज के हिंसा के दावानल मे सुलगते विश्व के लिए अहिंसा की अजस्र जलधारा ही हितावह है। अत. जैन सिद्धान्तो का पठन-पाठन। अनुशीलन एव उनका व्यापक प्रचार-प्रसार आज के युग की प्राथमिक आवश्यकता है। अहिंसा के अनुशीलन से ही विश्व-शान्ति की सम्भावना है, अतएव अहिंसा से ओत-प्रोत जैनागमो का अध्ययन एव अनुशीलन परम आवश्यक है।

जैनागम द्वादशागी गणिपिटक रूप हैं। अरिहत तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञान की प्राप्ति होने के पश्चात् अर्थरूप से प्रवचन का प्ररूपण करते हैं और उनके चतुर्दश पूर्वधर विपुल बुद्धिनिधान गणधर उन्हे सूत्ररूप मे निबद्ध

---

१ सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए भगवया पावयण कहिय। —प्रश्नव्याकरण सूत्र

२ बोधागाध सुपदपदवी नीरपूराभिराम,
जीवाहिंसाऽविरललहरी सगमागाहदेह ॥
चूलावेल गुरुगममणिसकुल दूरपार।
सार वीरागमजलनिधि सादर साधु सेवे ॥

३. अहिंसा समय चेव एयावत विजाणिया।

करते हैं। इस तरह प्रवचन की परम्परा चलती रहती है। अतएव अर्थरूप आगम के प्रणेता श्री तीर्थंकर परमात्मा हैं और शब्दरूप आगम के प्रणेता गणधर हैं। अनन्तकाल से अर्हन्त और उनके गणधरो की परम्परा चलती आ रही है। अतएव उनके उपदेश रूप आगम की परम्परा श्री अनादि काल से चली आ रही है। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि यह द्वादशागी ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, सदाकाल से है यह कभी नही थी, ऐसा नही, यह कभी नही है—ऐसा नही, यह कभी नही होगी ऐसा भी नही है। यह सदा थी, है और सदा रहेगी। भावो की अपेक्षा यह, ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है।[1]

द्वादशागी मे वारह अगो का समावेश है। आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, समवायाग व्याख्या-प्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद् दशा, अनुरौपपातिक, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद। ये वारह अग हैं। यही द्वादशागी गणिपिटक है जो साक्षात् तीर्थंकरो द्वारा उपदिष्ट है। यह अगप्रविष्ट आगम कहा जाता है। इसके अतिरिक्त अनगप्रविष्ट—अगवाह्य आगम वे हैं जो तीर्थंकरो के वचनो से अविरुद्ध रूप मे प्रज्ञातिशयसम्पन्न स्थविर भगवतो द्वारा रचे गये हैं। इस प्रकार जैनागम दो भागो मे विभक्त है—अगप्रविष्ट और अनगप्रतिष्ट (अगवाह्य)।

प्रस्तुत जीवाभिगम शास्त्र अनगप्रविष्ट आगम है। दूसरी विवक्षा से वारह अगो के वारह उपाग भी कहे गये हैं। तदनुसार औपपातिक आदि को उपाग सज्ञा दी जाती है। आचार्य मलयागिरि ने, जिन्होंने जीवाभिगम पर विस्तृत वृत्ति लिखी है—इसे तृतीय अग—स्थानाग का उपाग कहा है।

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगम सूत्र की आदि मे स्थविर भगवतो को इस अध्ययन के प्ररूपक के रूप मे प्रतिपादित किया गया है। वह पाठ इस प्रकार है—

'इह खलु जिणमय जिणाणुमय, जिणाणुलोम जिणप्पणीय जिणप्परूविय जिणक्खाय जिणाणुचिण्ण जिणपण्णत्त जिणदेसिय जिणपसत्य अणुवीइय त सद्दहमाणा त पत्तियमाणा त रोयमाणा थेरा भगवता जीवा जीवाभिगमणामज्झयण पण्णवसु।'

—'समस्त जिनेश्वरो द्वारा अनुमत, जिनानुलोम, जिनप्रणीत, जिनप्ररूपित, जिनाख्यात, जिनानुचीर्ण जिन-प्रज्ञप्त और जिनदेशित इस प्रशस्त जिनमत का चिन्तन करके, उस पर श्रद्धा-विश्वास एव रुचि करके स्थविर भगवन्तो ने जीवाजीवाभिगम नामक अध्ययन की प्ररूपणा की।'

उक्त कथन द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि प्रस्तुत सूत्र की रचना स्थविर भगवन्तो ने की है। वे स्थविर भगवत तीर्थंकरो के प्रवचन के सम्यक् ज्ञाता थे। उनके वचनो पर श्रद्धा-विश्वास और रुचि रखने वाले थे। इससे यह ध्वनित किया गया है कि ऐसे स्थविरो द्वारा प्ररूपित आगम भी उसी प्रकार प्रमाणरूप है जिस प्रकार सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररूपित आगम प्रमाणरूप हैं। क्योकि स्थविरो की यह रचना तीर्थंकरो के वचनो से अविरुद्ध है। प्रस्तुत पाठ मे आये हुए जिनमत के विशेषणो का स्पष्टीकरण उक्त मूलपाठ के विवेचन मे किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र का नाम जीवाजीवाभिगम है परन्तु मुख्य रूप से जीव का प्रतिपादन होने से अथवा सक्षेप दृष्टि मे यह सूत्र 'जीवाभिगम' के नाम से भी जाना जाता है।

---

१. एय दुवालसग गणिपिटग ण कयावि नासि, न कयावि न भवइ, न कयावि न भविस्सइ, ध्रुव णिच्च सासय।—नन्दीसूत्र।

जैन तत्त्वज्ञान प्रधानतया आत्मवादी है। जीव या आत्मा इसका केन्द्र विन्दु है। वैसे तो जैन सिद्धान्त ने नौ तत्त्व माने हैं अथवा पुण्य-पाप को आस्रव बन्ध तत्त्व मे सम्मिलित करने से सात तत्त्व माने हैं परन्तु वे सब जीव और अजीव कर्म-द्रव्य के सम्बन्ध या वियोग की विभिन्न अवस्थारूप ही हैं। अजीव तत्त्व का प्ररूपण जीव तत्त्व के स्वरूप को विशेष स्पष्ट करने तथा उससे उसके भिन्न स्वरूप को वताने के लिए है। पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा, वध और मोक्ष तत्त्व जीव और कर्म के सयोग-वियोग से होने वाली अवस्थाएँ हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि जैन तत्त्व ज्ञान का मूल आत्मद्रव्य (जीव) है। उसका आरम्भ ही आत्मविचार से होता है तथा मोक्ष उसकी अन्तिम परिणति है। प्रस्तुत सूत्र मे उसी आत्मद्रव्य की अर्थात् जीव की विस्तार के साथ चर्चा की गई है। अतएव यह जीवाभिगम कहा जाता है। अभिगम का अर्थ है ज्ञान। जिसके द्वारा जीव-अजीव का ज्ञान-विज्ञान हो वह 'जीवाभिगम' है। अजीव तत्त्व के भेदो का सामान्य रूप से उल्लेख करने के उपरान्त प्रस्तुत सूत्र का सारा अभिधेय जीव तत्त्व को लेकर ही है। जीव के दो भेद—सिद्ध और ससारसमापन्नक के रूप मे वताये गये हैं। तदुपरान्त ससारसमापन्नक जीवो के विभिन्न विवक्षाओ को लेकर किये गये भेदो के विपय मे नौ प्रतिपत्तियो—मन्तव्यो का विस्तार से वर्णन किया गया है। ये नौ ही प्रतिपत्तिया भिन्न भिन्न अपेक्षाओ को लेकर प्रतिपादित है अतएव भिन्न भिन्न होने के वावजूद ये परस्पर अविरोधी हैं और तथ्यपरक हैं।

राग-द्वेषादि विभाव परिणतियो से परिणत यह जीव ससार मे कैसी कैसी अवस्थाओ का, किन किन रूपो का, किन किन योनियो मे जन्म-मरण आदि का अनुभव करता है, आदि विपयो का उल्लेख इन नौ प्रतिपत्तियो मे किया गया है। त्रस-स्थावर के रूप मे, स्त्री-पुरुप-नपु सक के रूप मे, नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य और देव के रूप मे, एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय के रूप मे, पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय के रूप मे तथा अन्य अपेक्षाओ से अन्य-अन्य रूपो मे जन्म-मरण करता हुआ वह जीवात्मा जिन जिन स्थितियो का अनुभव करता है, उनका सूक्ष्म वर्णन किया गया है। द्विविध प्रतिपत्ति मे त्रस-स्थावर के रूप मे जीवो के भेद वताकर १ शरीर, २ अवगाहना, ३ सहनन, ४ सस्थान, ५ कषाय, ६ सज्ञा, ७ लेश्या ८ इन्द्रिय, ९ समुद्घात, १० सज्ञी-असज्ञी, ११ वेद, १२ पर्याप्ति-अपर्याप्ति, १३ दृष्टि, १४ दर्शन, १५ ज्ञान, १६ योग, १७ उपयोग, १८ आहार, १९ उपपात, २० स्थिति, २१ समवहत-असमवहत, २२ च्यवन और २३ गति-आगति—इन २३ द्वारो से उनका निरूपण किया गया है। इसी प्रकार आगे की प्रतिपत्तियो मे भी जीव के विभिन्न भेदो मे विभिन्न द्वारो को घटित किया गया है। स्थिति, सचिट्ठणा (कायस्थिति), अन्तर और अल्पबहुत्व द्वारो का यथासभव सर्वत्र उल्लेख किया गया है। अन्तिम प्रतिपत्ति मे सिद्ध-ससारी भेदो की विविक्षा न करते हुए सर्वजीव के भेदो की प्ररूपणा की गई है।

प्रस्तुत सूत्र मे नारक-तिर्यञ्च, मनुष्य और देवो के प्रसग मे अधोलोक, तिर्यक् लोक और ऊर्ध्वलोक का निरूपण किया गया है। तिर्यक् लोक के निरूपण मे द्वीप-समुद्रो की वक्तव्यता, कर्मभूमि अकर्मभूमि की वक्तव्यता, वहाँ की भौगोलिक और सास्कृतिक स्थितियो का विशद विवेचन भी किया गया है जो विविध दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार यह सूत्र और इसकी विषय-वस्तु जीव के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी देती है, अतएव इसका जीवाभिगम नाम सार्थक है। यह आगम जैन तत्वज्ञान का महत्त्वपूर्ण अग है।

प्रस्तुत सूत्र का मूल प्रमाण ६७५० (चार हजार सात सौ पचास) ग्रन्थाग्र है। इस पर आचार्य मलयागिरि ने १४००० (चौदह हजार) ग्रन्थाग्र प्रमाण वृत्ति लिखकर इस गम्भीर आगम के मर्म को प्रकट किया है। वृत्तिकार ने अपने बुद्धि-वैभव से आगम के मर्म को हम साधारण लोगो के लिए उजागर कर हमे बहुत उपकृत किया है।

सम्पादन के विषय में—

प्रस्तुत सस्करण के मूल पाठ का मुख्यत आधार सेठ श्री देवनन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड सूरत से

प्रकाशित वृत्तिसहित जीवाभिगम सूत्र का मूल पाठ है परन्तु अनेक स्थलो पर उस सस्करण मे प्रकाशित मूलपाठ मे वृत्तिकार द्वारा मान्य पाठ मे अन्तर भी है। कई स्थलो मे पाये जाने वाले इस भेद से ऐसा लगता है कि वृत्तिकार के सामने कोई अन्य प्रति (आदर्श) रही हो। अतएव अनेक स्थलो पर हमने वृत्तिकार-सम्मत पाठ अधिक सगत लगने से उसे मूलपाठ मे स्थान दिया है। ऐसे पाठान्तरो का उल्लेख स्थान-स्थान पर फुटनोट (टिप्पण) मे किया गया है। स्वय वृत्तिकार ने इस बात का उल्लेख किया है कि इस आगम के सूत्रपाठो मे कई स्थानो पर भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। यह स्मरण रखने योग्य है कि यह भिन्नता शब्दो को लेकर है। तात्पर्य मे कोई अन्तर नही है। तात्त्विक अन्तर न होकर वर्णनात्मक स्थलो से शब्दो का और उनके क्रम का अन्तर दृष्टिगोचर होता है। ऐसे स्थलो पर हमने टीकाकारसम्मत पाठ को मूल मे स्थान दिया है।

प्रस्तुत आगम के अनुवाद और विवेचन मे भी मुख्य आधार आचार्य श्री मलयगिरि की वृत्ति ही रही है। हमने अधिक से अधिक यह प्रयास किया है कि इस तात्त्विक आगम की सैद्धान्तिक विषय-वस्तु को अधिक से अधिक स्पष्ट रूप मे जिज्ञासुओ के समक्ष प्रस्तुत किया जाय। अतएव वृत्ति मे स्पष्ट की गई प्राय. सभी मुख्य मुख्य बातें हमने विवेचन मे दे दी हैं ताकि सस्कृत भाषा को न समझने वाले जिज्ञासुजन भी उनसे लाभान्वित हो सकें। मैं समझता हू कि मेरे इस प्रयास से हिन्दी भाषी जिज्ञासुओ को वे सब तात्त्विक बातें समझने को मिल सकेंगी जो वृत्ति मे सस्कृत भाषा मे समझाई गई हैं। इस दृष्टि से इस सस्करण की उपयोगिता बहुत बढ जाती है। जिज्ञासु जन यदि इससे लाभान्वित होंगे तो मैं अपने प्रयास को सार्थक समझूगा।

अन्त मे, मैं स्वय को धन्य मानता हू कि मुझे इस सस्करण को तैयार करने का सु-अवसर मिला। आगम-प्रकाशन समिति, ब्यावर की ओर से मुझे प्रस्तुत जीवाभिगम सूत्र का सम्पादन करने का दायित्व सौंपा गया। सूत्र की गभीरता को देखते हुए मुझे अपनी योग्यता के विषय मे सकोच अवश्य पैदा हुआ परन्तु श्रुतभक्ति से प्रेरित होकर मैंने यह दायित्व स्वीकार कर लिया और उसके निष्पादन मे निष्ठा के साथ जुट गया। जैसा भी मुझ से बन पडा, वह इस रूप मे पाठको के सन्मुख प्रस्तुत है।

कृतज्ञता-ज्ञापन—

श्रुत-सेवा के मेरे इस प्रयास मे श्रद्धेय गुरुवर्य उपाध्याय श्री पुष्करमुनिजी म एव श्रमणसघ के उपाचार्य साहित्य-मनीषी सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्र मुनिजी म का कुशल मार्गदर्शन एव दिशानिर्देशन प्राप्त हुआ है जिसके फलस्वरूप मैं यह भगीरथ-कार्य सम्पन्न करने मे सफल हो सका हू। इन पूज्य गुरुवर्यों का जितना आभार मानू उतना कम ही है। श्रद्धेय उपाचार्य श्री ने तो इस आगम की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना लिखने की महती अनुकम्पा की है। इससे इस सस्करण की उपयोगिता मे चार चाद लग गये हैं।

प्रस्तुत आगम का सम्पादन करते समय मुझे जैन समाज के विश्रुत विद्वान् प. श्री बसन्तीलालजी नलवाया रतलाम का महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला। उनके विद्वत्तापूर्ण एव श्रमनिष्ठ सहयोग के लिए कृतज्ञता व्यक्त करना मैं नही भूल सकता।

सेठ देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत का मुख्य रूप से आभारी हू। जिसके द्वारा प्रकाशित सस्करण का उपयोग इसमे किया गया है। आगम प्रकाशन समिति ब्यावर एव अन्य सब प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सहयोगियो का कृतज्ञतापूर्वक आभार व्यक्त करता हू।

यदि मेरे इस प्रयास से जिज्ञासु आगम-रसिको को तात्त्विक सात्विक लाभ पहुचेगा तो मैं अपने प्रयास को सार्थक समझूगा। अन्त मे मैं यह शुभकामना करता हू कि जिनेश्वर देवो द्वारा प्ररूपित तत्त्वो के प्रति जन-जन के मन मे श्रद्धा, विश्वास और रुचि उत्पन्न हो ताकि वे ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना करके मुक्ति-पथ के पथिक बन सकें। जैन जयति शासनम्।

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
उदयपुर—(राज)
११ मई १९८९

—राजेन्द्र मुनि एम ए.
साहित्यमहोपाध्याय

प्रस्तावना

जीवाजीवाभिगम : एक समीक्षात्मक अध्ययन

जैनागम विश्व-वाङ्मय की अनमोल मणि-मजूषा है। यदि विश्व के धार्मिक और दार्शनिक साहित्य की दृष्टि से सोचें तो उसका स्थान और भी अधिक गरिमा और महिमा से मण्डित हो उठता है। धार्मिक एव दार्शनिक साहित्य के असीम अन्तरिक्ष मे जैनागमो और जैन साहित्य का वही स्थान है जो असख्य टिमटिमाते ग्रह-नक्षत्र एव तारकमालिकाओ के बीच चन्द्र और सूर्य का है। जैनसाहित्य के बिना विश्व-साहित्य की ज्योति फीकी और निस्तेज है। डॉ हर्मन जेकोबी, डॉ शुब्रिग प्रभृति पाश्चात्य विचारक भी यह सत्य-तथ्य एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि जैनागमो में दर्शन और जीवन का, आचार और विचार का, भावना और कर्त्तव्य का जैसा सुन्दर समन्वय हुआ है वैसा अन्य साहित्य मे दुर्लभ है।

जैनागम ज्ञान-विज्ञान का अक्षय कोष है। अक्षर-देह से वह जितना विशाल है उससे भी अधिक उसका सूक्ष्म एव गम्भीर चिंतन विशद एव महान् है। जैनागमो ने आत्मा की शाश्वत सत्ता का उद्घोष किया है और उसकी सर्वोच्च विशुद्धि का पथ प्रदर्शित किया है। साथ ही उसके साधन के रूप मे सम्यग् ज्ञान, सम्यक् श्रद्धान और सम्यग् आचरण के पावन त्रिवेणी-सगम का प्रतिपादन किया है। त्याग, वैराग्य और सयम की आराधना के द्वारा जीवन के चरम और परम उत्कर्ष को प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान की है। जीवन के चिरन्तन सत्य को उन्होंने उद्घाटित किया है। न केवल उद्घाटित ही किया है अपितु उसे आचरण मे उतारने योग्य एव व्यवहार्य बनाया है। अपनी साधना के बल से जैनागमो के पुरस्कर्त्ताओ ने प्रथम स्वय ने सत्य को पहचाना, यथार्थ को जाना तदनन्तर उन्होन सत्य का प्ररूपण किया। अतएव उनके चिन्तन मे अनुभूति का पुट है। वह कल्पनाओ की उडान नहीं है अपितु अनुभूतिमूलक यथार्थ चिन्तन है। यथार्थदर्शी एव वीतराग जिनेश्वरो ने सत्य तत्त्व का साक्षात्कार किया और जगत् के जीवो के कल्याण के लिए उसका प्रस्पण किया।[1] यह प्ररूपण और निरूपण ही जैनागम हैं। यथार्थदृष्टा और यथार्थवक्ता द्वारा प्ररूपित होने से यह सत्य हैं, निश्शक हैं और आप्त वचन होने से आगम हैं। जिन्होंने रागद्वेष को जीत लिया है वह जिन, तीर्थंकर, सर्वज्ञ भगवान् आप्त हैं और उनका उपदेश एव वाणी ही जैनागम हैं। क्योकि उनमे वक्ता के यथार्थ दर्शन एव वीतरागता के कारण दोष की सम्भावना नही होती और न पूर्वापर विरोध तथा युक्तिबाध ही होता है।

जैनागमो का उद्भव

जैनागमो के उद्भव के विषय मे आवश्यकनिर्युक्ति मे श्री भद्रबाहुस्वामी ने तथा विशेषावश्यकभाष्य मे श्री जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण ने कहा है—

---

१ सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयण भगवया सुकहिय। —प्रश्नव्याकरण, सवरद्वार

२ तमेव सच्च निस्सक ज जिणेहिं पवेइय।

३ आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसवेदनमागम। —प्रमाणनयतत्त्वालोक

'तप, नियम तथा ज्ञानरूपी वृक्ष पर आरूढ अनन्त ज्ञान-सम्पन्न केवलज्ञानी भव्य जनो को उद्बोधित करने हेतु ज्ञान-पुष्पो की वृष्टि करते है। गणधर उसे बुद्धिरूपी पट मे ग्रहण कर उसका प्रवचन के निमित्त ग्रथन करते हैं।'[1]

'अर्हन्त अर्थरूप से उपदेश देते हैं और गणधर निपुणतापूर्वक उसको सूत्र के रूप मे गूथते हैं। इस प्रकार धर्मशासन के हितार्थ सूत्र प्रवर्तित होते हैं।'[2]

अर्थात्मक ग्रन्थ के प्रणेता तीर्थंकर हैं। आचार्य देववाचक ने इसीलिए आगमो को तीर्थंकरप्रणीत कहा है। प्रबुद्ध पाठको को यह स्मरण रखना होगा कि आगम साहित्य की प्रामाणिकता केवल गणधरकृत होने से ही नही किन्तु अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर की वीतरागता और सर्वज्ञता के कारण है। गणधर केवल द्वादशागी की रचना करते हैं। अगबाह्य आगमो की रचना स्थविर करते हैं।

आचार्य मलयगिरि आदि का अभिमत है कि गणधर तीर्थंकर के सन्मुख यह जिज्ञासा व्यक्त करते हैं कि तत्त्व क्या है? उत्तर मे तीर्थंकर 'उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' इस त्रिपदी का उच्चारण करते हैं। इस त्रिपदी को मातृका-पद कहा जाता है, क्योकि इसके आधार पर ही गणधर द्वादशागी की रचना करते हैं। यह द्वादशागी रूप आगम-साहित्य अगप्रविष्ट के रूप मे विश्रुत होता है। अवशेष जितनी भी रचनाएँ हैं वे सब अग-बाह्य हैं।

द्वादशागी त्रिपदी से उद्भूत है, इसलिए वह गणधरकृत है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि गणधरकृत होने से सभी रचनाए अग नही होती, त्रिपदी के अभाव मे मुक्त व्याकरण से जो रचनाए की जाती हैं, भले ही उन रचनाओ के निर्माता गणधर हो अथवा स्थविर हो, वे अगबाह्य ही कहलाएगी।

स्थविर के दो भेद हैं—चतुर्दशपूर्वी और दशपूर्वी। वे सूत्र और अर्थ की दृष्टि से अग साहित्य के पूर्ण ज्ञाता होते हैं। वे जो भी रचना करते हैं या कहते हैं, उसमे किंचित्-मात्र भी विरोध नही होता।

आचार्य सघदास गणी का अभिमत है कि जो बात तीर्थंकर कह सकते हैं, उसको श्रुतकेवली भी उसी रूप मे कह सकते हैं। दोनो मे इतना ही अन्तर है कि केवलज्ञानी सम्पूर्ण तत्त्व को प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं तो श्रुत-केवली श्रुतज्ञान के द्वारा परोक्ष रूप से जानते हैं।[3] उनके वचन इसलिए भी प्रामाणिक होते हैं कि वे नियमत सम्यग्दृष्टि होते हैं।[4] वे सदा निर्ग्रन्थ-प्रवचन को आगे करके ही चलते हैं। उनका उद्घोष होता है कि यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है, नि शक है, यही अर्थ है, परमार्थ है, शेष अनर्थ है। अतएव उनके द्वारा रचित ग्रन्थो मे द्वादशागी से विरुद्ध तथ्यो की सम्भावना नही होती। उनका कथन द्वादशागी से अविरुद्ध होता है। अत उनके द्वारा रचित ग्रन्थो को भी आगम के समान प्रामाणिक माना गया है।

---

१ तवणियमणाणरुक्ख आरूढो केवली अमियनाणी।
तो मुयइ नाणवुट्ठि भवियजणविबोहणट्ठाए॥
त बुद्धिमएण पडेण गणहरा गिण्हिउ णिरवसेस।
तित्थयरभासियाइ गथति तओ पवयणट्ठा॥ —आवश्यकनिर्युक्ति गा ८९-९०

२ अत्थ भासइ अरहा सुत्त गथति गणहरा णिउण।
सासणस्स हियट्ठाए तओ सुत्त पवत्तइ॥ —विशेषावश्यक भाष्य गा १११९

३. बृहत्कल्पभाष्य गाथा ९६३ से ९६६

४. बृहत्कल्पभाष्य गाथा १३२

पूर्व और अग

जैनागमो का प्राचीनतम वर्गीकरण पूर्व और अग के रूप मे समवायाग सूत्र मे मिलता है। वहाँ पूर्वों की सख्या चौदह और अगो की सख्या बारह बताई गई है।[1] जैन वाड्मय मे ज्ञानियो की दो प्रकार की परम्पराएँ उपलब्ध हैं—पूर्वधर और द्वादशागवेत्ता। पूर्वधरो का ज्ञान की दृष्टि से उच्च स्थान रहा है। जो श्रमण चौदह पूर्वो का ज्ञान धारण करते थे उन्हे श्रुतकेवली कहा जाता था। पूर्वों मे समस्त वस्तु-विषयो का विस्तृत विवेचन था अतएव उनका विस्तार एव प्रमाण बहुत विशाल था एव गहन भी था। पूर्वों की परिधि से कोई भी सत् पदार्थ अछूता नही था।

पूर्वो की रचना के विषय मे विज्ञो के विभिन्न मत हैं। आचार्य अभयदेव आदि के अभिमतानुसार द्वादशागी से पहले पूर्वसाहित्य रचा गया था। इसी से उसका नाम पूर्व रखा गया है।[2] कुछ चिन्तको का मत है कि पूर्व भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा की श्रुतराशि है।

पूर्वगत विषय अति गभीर दुरूह और दुर्गम होने के कारण विशिष्ट क्षयोपशमधारियो के लिए ही वह उपयोगी हुआ। सामान्य जनो के लिए भी वह विषय उपयोगी बने, इस हेतु से अगो की रचना की गई। जैसा कि विशेषावश्यक भाष्य मे कहा है—'यद्यपि भूतवाद या दृष्टिवाद मे समग्र ज्ञान का अवतरण है परन्तु अल्पबुद्धि वाले लोगो के उपकार हेतु उससे शेष श्रुत का निर्यूहण हुआ, उसके आधार पर सारे वाड्मय का सर्जन हुआ।[3]

वर्तमान मे पूर्व द्वादशागी से पृथक् नही माने जाते हैं। दृष्टिवाद बारहवा अग है। जब तक आचाराग आदि अगसाहित्य का निर्माण नही हुआ था तब तक समस्त श्रुतराशि पूर्व के नाम से या दृष्टिवाद के नाम से पहचानी जाती थी। जब अगो का निर्माण हो गया तो आचारागादि ग्यारह अगो के बाद दृष्टिवाद को-बारहवें अग के रूप मे स्थान दे दिया गया।

आगम साहित्य मे द्वादश अगो को पढने वाले और चौदह पूर्व पढने वाले दोनो प्रकार के श्रमणो का वर्णन मिलता है किन्तु दोनो का तात्पर्य एक ही है। चतुर्दशपूर्वी होते थे वे द्वादशागवित् भी होते थे क्योकि बारहवें अग मे चौदह पूर्व हैं ही।

आगमो का दूसरा वर्गीकरण अगप्रविष्ट और अगबाह्य के रूप मे किया गया है।

अंगप्रविष्ट : अंगबाह्य

आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने अगप्रविष्ट और अगबाह्य का विश्लेषण करते हुए कहा है—

---

१ चउद्दसपुव्वा पण्णत्ता त जहा— उप्पायपुव्व तह विंदुसार च।
दुवालस गणिपिडगे प त—आयारे जाव दिट्ठिवाए।

२ (क) प्रथम पूर्व तस्य सर्वप्रवचनात् पूर्वं क्रियमाणत्वात् —समवायाग वृत्ति।
(ख) सर्वश्रुतात् पूर्वं क्रियते इति पूर्वाणि, उत्पादपूर्वादीनि चतुर्दश। —स्थानाग वृत्ति
(ग) जम्हा तित्थकरो तित्थपवत्तणकाले गणधराण सव्वसुत्ताधारत्तणतो पुव्व पुव्वगतसुत्तत्थ भासति तम्हा पुव्व ति भणिता। —नदी चूर्णि

३ जइवि य भूयावाए सव्वस्स य आगमस्स ओयारो।
निज्जूहणा तहा वि हु दुम्मेहे पप्प इत्थी य।
—विशेषावश्यक भाष्य गाथा, ५५१

अगप्रविष्ट श्रुत वह है (१) जो गणधर के द्वारा सूत्ररूप मे वनाया हुआ हो, (२) जो गणधर द्वारा प्रश्न करने पर तीर्थंकर के द्वारा प्रतिपादित हो, (३) जो शाश्वत सत्यो से सवधित होने के कारण ध्रुव एव सुदीर्घ-कालीन हो। इसी अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है कि—यह द्वादशागी रूप गणिपिटक कभी नहीं था, ऐसा नही है, कभी नही है और कभी नही होगा, ऐसा भी नही है। यह था, है, और होगा। यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है।

अगवाह्य श्रुत वह है—(१) जो स्थविरकृत होता है, (२) जो विना प्रश्न किये ही तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित होता है, (३) जो अध्रुव हो अर्थात् सव तीर्थंकरो के तीर्थ मे अवश्य हो, ऐमा नही है, जैसे तन्दुलवैचारिक आदि प्रकरण।

नदीसूत्र के टीकाकार आचार्य मलयगिरि ने अगप्रविष्ट और अगवाह्य की व्याख्या करते हुए लिखा है कि—'सर्वोत्कृष्ट श्रुतलब्धि-सम्पन्न गणधर रचित मूलभूत सूत्र जो सर्वथा नियत हैं, ऐसे आचारागादि अगप्रविष्ट श्रुत हैं। उनके अतिरिक्त अन्य श्रुत स्थविरो द्वारा रचित श्रुतअगवाह्य श्रुत है।' अगवाह्य श्रुत दो प्रकार का है—आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त। आवश्यकव्यतिरिक्त श्रुत दो प्रकार का है—(१) कालिक और (२) उत्कालिक। जो श्रुत रात तथा दिन के प्रथम और अन्तिम प्रहर मे पढा जाता है वह कालिक श्रुत है तथा जो काल वेला को वर्जित कर सव समय पढा जा सकता है, वह उत्कालिक सूत्र है। नन्दीसूत्र मे कालिक और उत्कालिक सूत्रो के नामो का निर्देश किया गया है।

अंग, उपांग, मूल और छेद

आगमो का सवसे उत्तरवर्ती वर्गीकरण है—अग, उपाग, मूल और छेद। नन्दीसूत्र मे न उपाग शब्द का प्रयोग है और न ही मूल और छेद का उल्लेख। वहाँ उपाग के अर्थ मे अगवाह्य शब्द आया है।

आचार्य श्रीचन्द ने, जिनका समय ई ११११२ से पूर्व माना जाता है, सुखवोधा समाचारी की रचना की। उसमे उन्होंने आगम के स्वाध्याय की तपोविधि का वर्णन करते हुए अगवाह्य के अर्थ में 'उपाग' का प्रयोग किया है। चूर्णि साहित्य मे भी उपाग शब्द का प्रयोग हुआ है। मूल और छेद सूत्रो का विभाग कव हुआ, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। विक्रम संवत् १३३४ मे निर्मित प्रभावकचरित मे सर्वप्रथम अग, उपाग, मूल और छेद का विभाग मिलता है। फलितार्थ यह है कि उक्त विभाग तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे हो चुका था।

मूल और छेद सूत्रो की सख्या और नामो के विषय मे भी मतैक्य नही है। अग-साहित्य की सख्या के सवध मे श्वेताम्वर और दिगम्वर सव एक मत हैं। सब वारह अग मानते हैं। किन्तु अंगवाह्य आगमो की सख्या मे विभिन्न मत हैं। श्वेताम्वर मूर्तिपूजक ४५ आगम मानते हैं, स्थानकवासी और तेरापथी वत्तीस आगम मानते हैं। ११ अग, १२ उपाग, ६ मूल सूत्र, छह छेद सूत्र और दस पइन्ना—यो पैंतालीस आगम श्वेताम्वर-मूर्तिपूजक समुदाय प्रमाणभूत मानता है। स्थानकवासी और तेरापथ के अनुसार ११ अग, १२ उपाग, ४ मूल सूत्र, ४ छेद सूत्र, १ आवश्यक सूत्र यो वत्तीस वर्तमान मे प्रमाणभूत माने जाते हैं।

जीवाजीवाभिगम—प्रस्तुत जीवाजीवाभिगमसूत्र उक्त वर्गीकरण के अनुसार उपाग श्रुत और कालिक सूत्रो

---

१. गणहर-थेरकय वा आएसा मुक्कवागरणओ वा।
ध्रुव-चलविसेसओ वा अंगाणगेसु णाणत्तं॥ —विशेषावश्यक भाष्य गा. ५५०

मे इसका उल्लेख है। वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि ने इसे तृतीय अग स्थानाग का उपाग कहा है।[1] इस आगम की महत्ता बताते हुए वे कहते हैं कि यह जीवाजीवाभिगम नामक उपाग राग रूपी विष को उतारने के लिए श्रेष्ठ मत्र के समान है। द्वेष रूपी आग को शान्त करने हेतु जलपूर के समान है। अज्ञान-तिमिर को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान है। ससाररूपी समुद्र को तिरने के लिए सेतु के समान है। बहुत प्रयत्न द्वारा ज्ञेय है एव मोक्ष को प्राप्त कराने की अमोघ शक्ति से युक्त है। वृत्तिकार के उक्त विशेषणो से प्रस्तुत आगम का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है।

प्रस्तुत आगम के प्रथम सूत्र मे इसके प्रज्ञापक के रूप मे स्थविर भगवतो का उल्लेख करते हुए कहा गया है—'उन स्थविर भगवतो ने तीर्थंकर प्ररूपित तत्त्वो का अपनी विशिष्ट प्रज्ञा द्वारा पर्यालोचन करके, उस पर अपनी प्रगाढ श्रद्धा, प्रीति, रुचि, प्रतीति एव गहरा विश्वास करके जीव और अजीव सम्बन्धी अध्ययन का प्ररूपण किया है।'

उक्त कथन द्वारा यह अभिव्यक्त किया गया है कि प्रस्तुत आगम के प्रणेता स्थविर भगवत हैं। उन स्थविरो ने जो कुछ कहा है वह जिनेश्वर देवो द्वारा कहा गया ही है, उनके द्वारा अनुमत है, उनके द्वारा प्रणीत है, उनके द्वारा प्ररूपित है, उनके द्वारा आख्यात है, उनके द्वारा आचीर्ण है, उनके द्वारा प्रज्ञप्त है, उनके द्वारा उपदिष्ट है, यह पथ्यान्न की तरह प्रशस्त और हितावह है तथा परम्परा से जिनत्व की प्राप्ति कराने वाला है।[2] यह आगम शब्दरूप से स्थविर भगवतो द्वारा कथित है किन्तु अर्थरूप से तीर्थंकरो द्वारा उपदिष्ट होने से द्वादशागी की तरह ही प्रमाणभूत है। इस प्रकार प्रस्तुत आगम की प्रामाणिकता प्रकट की गई है। अगश्रुतो के अनुकूल होने से ही उपागश्रुतो की प्रामाणिकता है।

श्रुत की पुरुष के रूप मे कल्पना की गई। जिस प्रकार पुरुष के अग-उपाग होते हैं उसी तरह श्रुत-पुरुष के भी बारह अग और बारह उपागो को स्वीकार किया गया। पुरुष के दो पाँव, दो जघा, दो उरु, देह का अग्रवर्ती तथा पृष्ठवर्ती भाग (छाती और पीठ), दो बाहु, ग्रीवा और मस्तक—ये बारह अग माने गये हैं। इसी तरह श्रुत-पुरुष के आचाराग आदि बारह अग हैं। अगो के सहायक के रूप मे उपाग होते हैं, उसी तरह अगश्रुत के सहायक—पूरक के रूप मे उपाग श्रुत की प्रतिष्ठापना की गई। बारह अगो के बारह उपाग मान्य किये गये। वैदिक परम्परा मे भी वेदो के सहायक या पूरक के रूप मे वेदागो एव उपागो को मान्यता दी गई है जो शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष तथा कल्प के नाम से प्रसिद्ध हैं। पुराण, न्याय, मीमासा तथा धर्मशास्त्रो की उपाग के रूप मे स्वीकृति हुई। अगो और उपागो के विषय-निरूपण मे सामजस्य अपेक्षित है जो स्पष्टत प्रतीत नही होता है। यह विषय विज्ञो के लिए अवश्य विचारणीय है।

नामकरण एव परिचय

प्रस्तुत सूत्र का नाम जीवाजीवाभिगम है परन्तु अजीव का सक्षेप दृष्टि से तथा जीव का विस्तृत रूप से प्रतिपादन होने के कारण यह 'जीवाभिगम' नाम से प्रसिद्ध है। इसमे भगवान् महावीर और गणधर गौतम के प्रश्नोत्तर के रूप मे जीव और अजीव के भेद और प्रभेदो की चर्चा है। परम्परा की दृष्टि से प्रस्तुत आगम मे २० उद्देशक थे

---

१ अतो यदस्ति स्थानाङ्गनाम्नो रागविषपरममत्ररूप द्वेषानलसलिलपूरोपम तिमिरादित्यभूत भवाब्धिपरमसेतुर्महाप्रयत्नगम्य नि श्रेयसावाप्त्यवन्ध्यशक्तिक जीवाजीवाभिगमनामकमुपाङ्गम्। —मलयगिरि वृत्ति

२ इह खलु जिणमय जिणाणुमय जिणाणुलोम जिणप्पणीत जिणपरूविय जिणक्खाय जिणाणुचिण्ण जिनपण्णत्त जिणदेसिय जिणपसत्थ अणुव्वीइय त सद्दहमाणा त पत्तियमाणा त रोयमाणा थेरा भगवतो जीवाजीवाभिगमणामज्झयण पण्णवइसु। —जीवा सूत्र १

और वीसवें उद्देशक की व्याख्या श्री शालिभद्रसूरि के शिष्य श्री चन्द्रसूरि ने की थी। श्री अभयदेव ने इसके तृतीय पद पर सग्रहणी लिखी थी। परन्तु वर्तमान मे जो इसका स्वरूप है उसमे केवल नौ प्रतिपत्तिया (प्रकरण) हैं जो २७२ सूत्रो मे विभक्त हैं। सभव है इस आगम का महत्त्वपूर्ण भाग लुप्त हो जाने से शेप वचे हुए भाग को नौ प्रतिपत्तियो के रूप मे सकलित कर दिया गया हो। उपलब्ध सस्करण मे ९ प्रतिपत्तिया, एक अध्ययन, १८ उद्देशक, ४७५० श्लोक प्रमाण पाठ है। २७२ गद्यसूत्र और ८१ पद्य (गाथाएँ) हैं। प्रसिद्ध वृत्तिकार श्री मलयगिरि ने इस पर वृत्ति लिखी है। उन्होंने अपनी वृत्ति मे अनेक स्थलो पर वाचनाभेद का उल्लेख किया है।[1] आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित जीवाभिगम के सस्करण मे जो मूल पाठ दिया गया है उसकी पाण्डुलिपि से वृत्तिकार के सामने रही हुई पाण्डुलिपि मे स्थान-स्थान पर भेद है, जिसका उल्लेख स्वय वृत्तिकार ने विभिन्न स्थानो पर किया है। प्रस्तुत सस्करण के विवेचन और टिप्पण मे ऐसे पाठभेदो का स्थान-स्थान पर उल्लेख करने का प्रयत्न किया गया है। यहाँ यह स्मरणीय है कि शाब्दिक भेद होते हुए भी प्राय. तात्पर्य मे भेद नही है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय यह है कि नन्दीसूत्र आदि श्रुतग्रन्थो मे श्रुतसाहित्य का जो विवरण दिया गया है तदनुरूप श्रुतसाहित्य वर्तमान मे उपलब्ध नही है। उसमे उल्लिखित विशाल श्रुतसाहित्य मे से वहुत कुछ तो लुप्त हो गया और वहुत-सा परिवर्तित भी हो गया। भगवान् महावीर के समय जो श्रुत का स्वरूप और परिमाण था वह धीरे धीरे दुर्भिक्ष आदि के कारण तथा कालदोप से एव प्रज्ञा-प्रतिभा की क्षीणता से घटता चला गया। समय समय पर शेष रहे हुए श्रुत की रक्षा हेतु आगमो की वाचनाएँ हुई हैं। उनका सक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाना अप्रासगिक नही होगा।

वाचनाएँ

श्रमण भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के पश्चात् आगम-सकलन हेतु पाच वाचनाएँ हुई हैं।

प्रथम वाचना—वीरनिर्वाण के १६० वर्ष पश्चात् पाटलिपुत्र मे द्वादशवर्षीय भीषण दुष्काल पडने के कारण श्रमणसघ छिन्न-भिन्न हो गया। अनेक वहुश्रुतधर श्रमण क्रूर काल के गाल मे समा गये। अनेक अन्य विघ्न-बाधाओ ने भी यथावस्थित सूत्रपरावर्तन मे वाधाएँ उपस्थित की। आगम ज्ञान की कडिया-लडिया विशृ खलित हो गई। दुर्भिक्ष समाप्त होने पर विशिष्ट आचार्य, जो उस समय विद्यमान थे, पाटलिपुत्र मे एकत्रित हुए। ग्यारह अगो का व्यवस्थित सकलन किया गया। वारहवें दृष्टिवाद के एकमात्र ज्ञाता भद्रवाहु स्वामी उस समय नेपाल मे महाप्राण-ध्यान की साधना कर रहे थे। सघ की प्रार्थना से उन्होने वारहवें अग की वाचना देने की स्वीकृति दी। मुनि स्थूलभद्र ने दस पूर्व तक अर्थसहित वाचना ग्रहण की। ग्यारहवें पूर्व की वाचना चल रही थी तभी स्थूलभद्र मुनि ने सिंह का रूप वनाकर वहिनो को चमत्कार दिखलाया[2]। जिसके कारण भद्रवाहु ने आगे वाचना देना वद कर दिया। तत्पश्चात् सघ एव स्थूलभद्र के अत्यधिक अनुनय-विनय करने पर भद्रवाहु ने मूलरूप से अन्तिम चार पूर्वों की वाचना दी, अर्थ की दृष्टि से नही। शाब्दिक दृष्टि से स्थूलभद्र चौदह पूर्वी हुए किन्तु अर्थ की दृष्टि से दसपूर्वी ही रहे।[3]

---

१. इह भूयान् पुस्तकेषु वाचनाभेदो गलितानि च सूत्राणि वहुषु पुस्तकेषु, यथावस्थितवाचनाभेदप्रतिपत्त्यर्थं गलित-सूत्रोद्धारणार्थं चैव सुगमत्यपि विव्रियन्ते। जीवा वृत्ति ३,३७६

२ तेण चिंतिय भगिणीण इड्ढि दरिसेमित्ति सीहरूव विउव्वइ। —आवश्य वृत्ति

३. तित्थोगालिय पइण्णय ७४२।
आवश्यकचूर्णि पृ १८७
परिशिष्ट पर्व सर्ग ९.

द्वितीय वाचना—आगम-सकलन का द्वितीय प्रयास ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दी के मध्य मे हुआ। सम्राट् खारवेल जैनधर्म के परम उपासक थे। उनके सुप्रसिद्ध 'हाथीगुफा' अभिलेख से यह सिद्ध हो चुका है कि उन्होंने उडीसा के कुमारी पर्वत पर जैनमुनियो का एक सघ बुलाया और मौर्यकाल मे जो अग विस्मृत हो गये थे, उनका पुन. उद्धार कराया था।[१] हिमवत थेरावली नामक सस्कृत प्राकृत मिश्रित पट्टावली मे भी स्पष्ट उल्लेख है कि महाराजा खारवेल ने प्रवचन का उद्धार करवाया था।[२]

तृतीय वाचना—आगमो को संकलित करने का तीसरा प्रयास वीरनिर्वाण ८२७ से ८४० के मध्य हुआ।

उस समय द्वादशवर्षीय भयकर दुष्काल से श्रमणो को भिक्षा मिलना कठिन हो गया था। श्रमणसघ की स्थिति गंभीर हो गई थी। विशुद्ध आहार की अन्वेषणा-गवेषणा के लिए युवक मुनि दूर-दूर देशो की ओर चल पडे। अनेक वृद्ध एव बहुश्रुत मुनि आहार के अभाव मे आयु पूर्ण कर गये। क्षुधा परीषह से सत्रस्त मुनि अध्ययन, अध्यापन, धारण और प्रत्यावर्तन कैसे करते ? सब कार्य अवरुद्ध हो गये। शनै शनै. श्रुत का ह्रास होने लगा। अतिशायी श्रुत नष्ट हुआ। अग और उपाग साहित्य का भी अर्थ की दृष्टि से बहुत बडा भाग नष्ट हो गया। दुर्भिक्ष की समाप्ति पर श्रमणसघ मथुरा मे स्कन्दिलाचार्य के नेतृत्व मे एकत्रित हुआ। जिन श्रमणो को जितना जितना अश स्मरण था उसका अनुसधान कर कालिक श्रुत और पूर्वगत श्रुत के कुछ अश का सकलन हुआ। यह वाचना मथुरा मे सम्पन्न होने के कारण माथुरी वाचना के रूप मे विश्रुत हुई। उस सकलित श्रुत के अर्थ की अनुशिष्टि आचार्य स्कन्दिल ने दी थी अत. उस अनुयोग को स्कन्दिली वाचना भी कहा जाने लगा।[३]

नदीसूत्र की चूर्णि और वृत्ति के अनुसार माना जाता है कि दुर्भिक्ष के कारण किंचिन्मात्र भी श्रुतज्ञान तो नष्ट नही हुआ किन्तु केवल आचार्य स्कन्दिल को छोडकर शेष अनुयोगधर मुनि स्वर्गवासी हो चुके थे। एतदर्थ आचार्य स्कन्दिल ने पुनः अनुयोग का प्रवर्तन किया जिससे प्रस्तुत वाचना को माथुरी वाचना कहा गया और सम्पूर्ण अनुयोग स्कन्दिल सबधी माना गया।[४]

चतुर्थ वाचना—जिस समय उत्तर, पूर्व और मध्यभारत मे विचरण करने वाले श्रमणो का सम्मेलन मथुरा मे हुआ था उसी समय दक्षिण और पश्चिम मे विचरण करने वाले श्रमणो की एक वाचना (वीर निर्वाण स ८२७-८४०) वल्लभी (सोराष्ट्र) मे आचार्य नागार्जुन की अध्यक्षता मे हुई। किन्तु वहाँ जो श्रमण एकत्रित हुए थे उन्हे बहुत कुछ श्रुत विस्मृत हो चुका था। जो कुछ उनके स्मरण मे था, उसे ही सकलित किया गया। यह वाचना वल्लभी वाचना या नागार्जुनीय वाचना के नाम से अभिहित है।[५]

पंचम वाचना—वीरनिर्वाण की दसवी शताब्दी (९८० या ९९३ ई सन् ४५४-४६६) मे देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता मे पुन श्रमणसघ वल्लभी मे एकत्रित हुआ। देवर्द्धिगणी ११ अग और एक पूर्व से भी

---

१. जर्नल आफ दि बिहार एण्ड उडीसा रिसर्च सोसायटी भा १३ पृ ३३६

२ जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास भा १ पृ ८२

३ आवश्यक चूर्णि।

४. नदी चूर्णि पृ ८, नन्दी गाथा ३३, मलयगिरि वृत्ति।

५ कहावली।

जिनवचन च दुष्षमाकालवशात् उच्छिन्नप्रायमिति मत्वा भगवद्भि-र्नागार्जुनस्कन्दिलाचार्यप्रभृतिभि पुस्तकेषु न्यस्तम्। —योगशास्त्र, प्र ३, पृ २०७

अधिक सूत्र के ज्ञाता थे। स्मृति की दुर्बलता, परावर्तन की न्यूनता, धृति का ह्रास और परम्परा की व्यवच्छित्ति आदि अनेक कारणो से श्रुतसाहित्य का अधिकाश भाग नष्ट हो गया था। विस्मृत श्रुत को सकलित व सग्रहीत करने का प्रयास किया गया। देवर्द्धिगणी ने अपनी प्रखर प्रतिभा से उसको सकलित कर पुस्तकारूढ किया। पहले जो माथुरी और वल्लभी वाचनाएँ हुई थी, उन दोनो वाचनाओ का समन्वय कर उनमे एकरूपता लाने का प्रयास किया गया।[1] जिन स्थलो पर मतभेद की अधिकता रही वहाँ माथुरी वाचना को मूल मे स्थान देकर वल्लभी वाचना के पाठो को पाठान्तर मे स्थान दिया। यही कारण है कि आगमो के व्याख्याग्रन्थो मे यत्र तत्र 'नागार्जुनीयास्तु पठन्ति' इस प्रकार निर्देश मिलता है।

आगमो को पुस्तकारूढ करते समय देवर्द्धिगणी ने कुछ मुख्य बातें ध्यान मे रखी। आगमो मे जहाँ-जहाँ समान पाठ आये हैं उनकी वहाँ पुनरावृत्ति न करते हुए उनके लिए विशेष ग्रन्थ या स्थल का निर्देश किया गया जैसे—'जहा उववाइए, जहा पण्णवणाए'। एक ही आगम मे एक बात अनेक बार आने पर 'जाव' शब्द का प्रयोग करके उसका अन्तिम शब्द सूचित कर दिया है जैसे 'णागकुमारा जाव विहरति' तेण कालेण जाव परिसा णिग्गया। इसके अतिरिक्त भगवान् महावीर के पश्चात् की कुछ मुख्य-मुख्य घटनाओ को भी आगमो मे स्थान दिया। यह वाचना वल्लभी मे होने के कारण 'वल्लभी वाचना' कही गई। इसके पश्चात् आगमो की फिर कोई सर्वमान्य वाचना नही हुई। वीरनिर्वाण की दसवी शताब्दी के पश्चात् पूर्वज्ञान की परम्परा विच्छिन्न हो गई।

उक्त रीति से आगम-साहित्य का बहुतसा भाग लुप्त होने पर भी आगमो का कछ मौलिक भाग आज भी सुरक्षित है।

प्रश्न हो सकता है कि वैदिक वाङ्मय की तरह जैन आगम साहित्य पूर्णरूप से उपलब्ध क्यो नही है? वह विच्छिन्न क्यो हो गया? इसका मूल कारण यह है कि देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के पूर्व आगम साहित्य लिखा नही गया। वह श्रुतिरूप मे ही चलता रहा। प्रतिभासम्पन्न योग्य शिष्य के अभाव मे गुरु ने वह ज्ञान शिष्य को नही बताया जिसके कारण श्रुत-साहित्य धीरे-धीरे विस्मृत होता गया? यह सब होते हुए भी वर्तमान मे उपलब्ध जो श्रुतसाहित्य है वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उसमे प्रभु महावीर की वाणी अपने बहुत कुछ अशो मे अब भी प्राप्त होती है। यह कुछ कम गौरव की बात नही है।

जीवाभिगम की विषय-वस्तु—

प्रस्तुत आगम मे नौ प्रतिपत्तियाँ (प्रकरण) हैं। प्रथम प्रतिपत्ति मे जीवाभिगम और अजीवाभिगम का निरूपण किया गया है। अभिगम शब्द का अर्थ परिच्छेद अथवा ज्ञान है।

आत्मतत्त्व—इस अनन्त लोकाकाश मे या अखिल ब्रह्माण्ड मे जो भी चराचर या दृश्य-अदृश्य पदार्थ या सद्रूप वस्तु-विशेष हैं वह सब जीव या अजीव—इन दो पदो मे समाविष्ट है।[2] मूलभूत तत्त्व जीव और अजीव है। शेष पुण्य-पाप आस्रव-सवर निर्जरा बध और मोक्ष—ये सब इन दो तत्त्वो के सम्मिलन और वियोग की परिणतिमात्र हैं। अन्य आस्तिक दर्शनो ने भी इसी प्रकार दो मूलभूत तत्त्वो को स्वीकार किया है। वेदान्त ने ब्रह्म और माया के रूप मे इन्हे माना है। साख्यो ने पुरुष और प्रकृति के रूप मे, बौद्धो ने विज्ञानघन और वासना

---

१ वल्लहिपुरम्मि नयरे देवड्ढिपमुहेण समणसघेण।
पुत्थइ आगमो लिहिओ नवसयअसीआओ ववीराओ॥

२ जदित्थ ण लोगे त सव्व दुपदोआर, त जहा—जीवच्चेव अजीवच्चेव। —स्थानाग द्वितीय स्थान

के रूप मे, वैदिकदर्शन ने आत्मतत्त्व और भौतिकतत्त्व के रूप मे इसी बात को मान्यता प्रदान की है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि आस्तिक दर्शनो की भित्ति आत्मवाद है। विशेषकर जैन धर्म ने आत्मतत्त्व का बहुत ही सूक्ष्मता के साथ विस्तृत विवेचन किया है। जैन चिन्तन की धारा का उद्गम आत्मा से होता है और अन्त मोक्ष में। आचाराग सूत्र का आरम्भ ही आत्म-जिज्ञासा से हुआ है।[1] उसके आदि वाक्य मे ही कहा गया है—'इस ससार मे कई जीवो को यह ज्ञान और भान नही होता कि उनकी आत्मा किस दिशा से आई है और कहाँ जाएगी ? वे यह भी नही जानते कि उनकी आत्मा जन्मान्तर में सचरण करने वाली है या नही ? मैं पूर्व जन्म मे कौन था और यहा से मर कर दूसरे जन्म मे क्या होऊगा—यह भी वे नही जानते। इस आत्मजिज्ञासा से ही धर्म और दर्शन का उद्गम है। वेदान्त दर्शन का आरम्भ भी ब्रह्मसूत्र के 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' से हुआ है। यद्यपि वेदो मे भौतिक समृद्धि हेतु यज्ञादि के विधान और इन्द्रादि देवों की स्तुति की बहुलता है किन्तु उत्तरवर्ती उपनिषदो और आरण्यको में आत्मतत्त्व का गहन चिन्तन एव निरूपण हुआ है। उपनिषद् के ऋषियो का स्वर निकला—'आत्मा हि दर्शनीय, श्रवणीय मननीय और ध्यान किए जाने योग्य है।'[2]

आत्मजिज्ञासा से आरम्भ हुआ यह चिन्तन-प्रवाह क्रमश विकसित होता हुआ, सहस्रधाराओ मे प्रवाहित होता हुआ अन्तत. अमृतत्त्व—मोक्ष के महासागर मे विलीन हो जाता है। उपनिषद् मे मैत्रेयी याज्ञवल्क्य से कहती है—'जिससे मैं अमृत नही बनती उसे लेकर क्या करू ! जो अमृतत्त्व का साधन हो वही मुझे बताइए।'[3] जैन चिन्तको के अनुसार प्रत्येक आत्मा की अन्तिम मजिल मुक्ति है। मुक्ति की प्राप्ति के लिए ही समस्त साधनाएँ और आराधनाएँ हैं। समस्त आत्मसाधको का लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है अतएव वे साधक मुमुक्षु कहलाते हैं। आत्मा की प्रतीति से लगाकर मोक्ष की प्राप्ति पर्यन्त पुरुषार्थ मे ही आत्मा की कृतार्थता और सार्थकता है एव यही सिद्धि है। अत: जैन सिद्धान्त द्वारा मान्य नवतत्त्वो मे पहला तत्त्व जीव है और अन्तिम तत्त्व मोक्ष है। बीच के तत्त्व आत्मा की विभाव परिणति से बधने वाले अजीव कर्मदलिको की विभिन्न प्रक्रियायो से सम्बन्धित हैं। सुख देने वाला पुद्गल-समूह पुण्यतत्त्व है। दु ख देने वाला और ज्ञानादि को रोकने वाला तत्त्व पाप है। आत्मा की मलिन प्रवृत्ति आस्रव है। इस मलिन प्रवृत्ति को रोकना सवर है। कर्म के आवरण का आशिक क्षीण होना निर्जरा है। कर्मपुद्गलो का आत्मा के साथ बधना बध तत्त्व है। कर्म के आवरणो का सर्वथा क्षीण हो जाना मोक्ष है।

जीवात्मा जब तक विभाव दशा मे रहता है तब तक वह अजीव पुद्गलात्मक कर्मवर्गणाओ से आबद्ध हो जाता है। फलस्वरूप उसे शरीर के बन्धन मे बधना पडता है। एक शरीर से दूसरे शरीर मे जाना पडता है। इस प्रकार शरीर धारण करने और छोडने की परम्परा चलती रहती है। यह परम्परा ही जन्म-मरण है। इस जन्म-मरण के चक्र में विभावदशापन्न आत्मा परिभ्रमण करता रहता है। यही ससार है। इस जन्म-मरण की परम्परा को तोडने के लिए ही भव्यात्माओं के सारे धार्मिक और आध्यात्मिक प्रयास होते हैं।

स्वसवेदनप्रत्यक्ष एव अनुमान—आगम आदि प्रमाणो से आत्मा की सिद्धि होती है। प्राणिमात्र को 'मैं हू' ऐसा स्वसवेदन होता है। किसी भी व्यक्ति को अपने अस्तित्व मे शका नही होती। 'मैं सुखी हू' अथवा

---

१ इहमेगेसिं नो सण्णा हवइ कम्हाओ दिसाओ वा आगओ अहमसि अत्थि मे आया उववाइए णत्थि मे आया उववाइए ? के वा अहमसि ? के वा इओ चुओ इह पेच्चा भविस्सामि। —आचाराग १—१

२. आत्मा वै दृष्टव्य श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य। —बृहदारण्योपनिषद् २—४—५।।

३ येनाह नामृता स्या किं तेन कुर्याम्। यदेव भगवानवेद तदेव मे ब्रूहि।। —बृहदारण्योपनिषद्

'मैं दु.खी हूं' इत्यादि प्रतीति मे जो 'मैं' है वही आत्मा की प्रत्यक्षता का प्रमाण है। यह 'अहं प्रत्यय' ही आत्मा के अस्तित्व का सूचक है।

आत्मा प्रत्यक्ष है क्योकि उसका ज्ञानगुण स्वसवेदन-सिद्ध है। घटपटादि भी उनके गुण—रूप आदि का प्रत्यक्ष होने से ही प्रत्यक्ष कहे जाते हैं। इसी तरह आत्मा के ज्ञान गुण का प्रत्यक्ष होने से आत्मा भी प्रत्यक्ष-सिद्ध होती है।

आत्मा का अस्तित्व है क्योकि उसका असाधारण गुण चैतन्य देखा जाता है। जिसका असाधारण गुण देखा जाता है उसका अस्तित्त्व अवश्य होता है जैसे चक्षु। चक्षु सूक्ष्म होने से साक्षात् दिखाई नही देती लेकिन अन्य इन्द्रियो से न होने वाले रूप विज्ञान को उत्पन्न करने की शक्ति से उसका अनुमान होता है। इसी तरह आत्मा का भी भूतो मे न पाये जाने वाले चैतन्यगुण को देखकर अनुमान किया जाता है।

भगवती सूत्र मे कहा गया है कि—'गौतम! जीव नही होता तो कौन उत्थान करता? कौन कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम करता? यह कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम जीव की सत्ता का प्रदर्शन है। कौन ज्ञानपूर्वक क्रिया मे प्रवृत्त होता? ज्ञानपूर्वक प्रवृत्ति और निवृत्ति भी जीव की सत्ता का प्रदर्शन है।[1]

पुद्गल के कार्यों को बताने वाला भगवती सूत्र का पाठ भी बहुत मननीय है।[2] वहा कहा गया है—गौतम! पुद्गल नही होता तो शरीर किससे बनता? विभूतियो का निमित्त कौन होता? वैक्रिय शरीर किससे बनता? कौन तेज, पाचन और दीपन करता? सुख-दु ख की अनुभूति और व्यामोह का साधन कौन बनता? शब्द, रूप, गध, रस, स्पर्श और इनके द्वार कान, आख, नाक, जीभ और चर्म कैसे बनते? मन वाणी और स्पन्दन का निमित्त कौन बनता? श्वास और उच्छ्वास किसका होता? अन्धकार और प्रकाश नही होते, आहार और विहार नही होते, धूप और छाह नही होती। कौन छोटा होता, कौन बडा होता? कौन लम्बा होता, कौन चौडा? त्रिकोण और चतुष्कोण नही होते। वर्तुल और परिमडल भी नही होते। सयोग और वियोग नही होते? सुख और दु ख, जीवन और मरण नही होते। यह विश्व अदृश्य ही होता?'

भगवतीसूत्र के उक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि विभावदशापन्न ससारी आत्मा कर्मपुद्गलो के साथ क्षीर-नीर की तरह सम्बद्ध है। आत्मा और शरीर का गाढ सम्बन्ध हो रहा है। इस सयोग से ही विविध प्रवृत्तिया होती हैं। आहार, श्वासोच्छ्वास, इन्द्रिया, भाषा और मन—ये न आत्मा के धर्म हैं और न पुद्गल के। ये सयोगज हैं—आत्मा और शरीर दोनो के सयोग से उत्पन्न होते है। भूख न आत्मा को लगती है और न आत्मरहित शरीर को। भोगोपभोग की इच्छा न आत्मा में होती है न आत्मरहित शरीर मे। आत्मा और शरीर का योग ही सासारिक जीवन है।

कर्मों के विविध परिणामो के फलस्वरूप ससारापन्न जीव विभिन्न स्वरूपो को प्राप्त करता है। वह कभी स्थावर रूप मे जन्म लेता है, कभी त्रसरूप मे। कभी वह एकेन्द्रिय बनता है, कभी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और कभी पचेन्द्रिय बनता है। कभी वह स्त्री रूप मे जन्म लेता है, कभी पुरुषरूप मे तो कभी नपुसकरूप मे। कभी वह नरक मे उत्पन्न होता है, कभी पशु-पक्षी के रूप मे जन्म लेता है, कभी मनुष्य बनता है तो कभी देवलोक मे पैदा होता है। चौरासी लाख जीवयोनियो और कुलकोडियो मे वह जन्म-मरण करता है और विविध परिस्थितियो से गुजरता है। जीव की उन विभिन्न स्थितियो का जैनशास्त्रकारो ने बहुत ही सूक्ष्म और विस्तृत

---

१ भगवती शतक १३ उ. ४, सू २—१०।
२. भगवती शतक १३ उ ४।

चिन्तन विविध आयामो से किया है। विविध दृष्टिकोणो से विविध प्रकार का वर्गीकरण करके आत्मतत्त्व के विषय मे विपुल जानकारी शास्त्रकारो ने प्रदान की है। वही जीवाभिगम की नौ प्रतिपत्तियो मे सकलित है।

प्रथम प्रतिपत्ति—इस प्रतिपत्ति की प्रस्तावना मे कहा गया है कि सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर परमात्मा के प्रवचन के अनुसार ही स्थविर भगवतो ने जीवाभिगम और अजीवाभिगम की प्रज्ञापना की है। अल्पवक्तव्यता होने से पहले अजीवाभिगम का कथन करते हुए बताया गया है कि अजीवाभिगम दो प्रकार का है—रूपी अजीवाभिगम और अरूपी अजीवाभिगम। अरूपी अजीवाभिगम के दस भेद बताये हैं—धर्मास्तिकाय के स्कन्ध. देश, प्रदेश, अधर्मास्तिकाय के स्कन्ध, देश, प्रदेश, आकाशास्तिकाय के स्कन्ध, देश, प्रदेश और अद्धासमय (काल)।

धर्मास्तिकायादि का अस्तित्व—

जैन सिद्धान्तानुसार धर्म गति-सहायक तत्त्व है और अधर्म स्थिति-सहायक तत्त्व। आकाश और काल को अन्य दर्शनकारो ने भी माना है परन्तु धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय को जैनसिद्धान्त के सिवाय किसी ने भी नही माना है। जैन सिद्धान्त की यह सर्वथा मौलिक अवधारणा है। इस मौलिक अवधारणा के पीछे प्रमाण और युक्ति का सुदृढ आधार है। जैनाचार्यों ने युक्तियो के आधार से सिद्ध किया है कि लोक और अलोक की व्यवस्था के लिए कोई नियामक तत्त्व होना ही चाहिए। जीव और पुद्गल जो गतिशील हैं उनकी गति लोक मे ही होती है, अलोक मे नही होती। इसका नियामक कोई तत्त्व अवश्य होना चाहिए। अन्यथा जीव और पुद्गलो की अनन्त अलोकाकाश मे भी गति होती तो अनवस्थिति का प्रसग उपस्थित हो जाता और सारी लोकव्यवस्था छिन्नभिन्न हो जाती। अतएव जैन तार्किक चिन्तको ने गतिनियामक तत्त्व के रूप मे धर्म की और स्थिति-नियामक तत्त्व के रूप मे अधर्म की सत्ता को स्वीकार किया है।

आधुनिक विज्ञान ने भी गतिसहायक तत्त्व को (Medium of Motion) स्वीकार 'किया है। न्यूटन और आइस्टीन ने गति तत्त्व स्थापित किया है। वैज्ञानिको द्वारा सम्मत ईथर (Ether) गति तत्त्व का ही दूसरा नाम है। लोक परिमित है। लोक के परे अलोक अपरिमित है। लोक के परिमित होने का कारण यह है कि द्रव्य अथवा शक्ति लोक के वाहर नही जा सकती। लोक के वाहर उस शक्ति का अभाव है जो गति मे सहायक होती है। प्रभु महावीर ने कहा है कि जितने भी स्पन्दन हैं वे सव धर्म की सहायता से होते हैं। यदि धर्मतत्त्व न होता तो कौन आता ? कौन जाता ? शब्द की तरगे कैसे फैलती ? आखें कैसे खुलती ? कौन मनन करता ? कौन वोलता ? कौन हिलता- डुलता ? यह विश्व अचल ही होता। जो चल हैं उन सवका निमित्त गति सहायक तत्त्व धर्म ही है। इसी तरह स्थिति का सहायक अधर्म तत्त्व न होता तो कौन चलते-चलते हो ठहर पाता ? कौन वैठता ? सोना कैसे होता ? कौन निस्पन्द वनता ? निमेष कैसे होता ? यह विश्व सदा चल ही वना होता जो गतिपूर्वक स्थिर हैं उन सवका आलम्वन स्थिति सहायक तत्त्व अधर्म-अधर्मास्तकाय है।

उक्त रीति से धर्म-अधर्म के रूप मे जैन चिन्तको ने सर्वथा मौलिक अवधारणा प्रस्तुत की है। आकाश की सत्ता तो सब दार्शनिको ने मानी है। आकाश नही होता तो जीव और पुद्गल कहाँ रहते ? धर्मस्तिकाय अधर्मास्तिकाय कहाँ व्याप्त होते ? काल कहाँ वरतता ? पुद्गल का रगमच कहाँ वनता ? यह विश्व निराधार ही होता।

काल औपचारिक द्रव्य है। निश्चयनय की दृष्टि से काल जीव और अजीव की पर्याय है। किन्तु व्यवहार नय की दृष्टि से वह द्रव्य है। क्योकि वर्तना आदि उसके उपकार हैं। जो उपकारक है वह द्रव्य है।

पदार्थों की स्थितिमर्यादा आदि के लिए जिसका व्यवहार होता है वह आवलिकादि रूप काल जीव-अजीव की पर्याय होने से उनसे भिन्न नही है।

रूपी अजीवाभिगम चार प्रकार का है—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु पुद्गल। यह पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है। यह अखण्ड द्रव्य नही है। इसका सवसे छोटा रूप एक परमाणु है तो सवसे वडा रूप है अचित्त महास्कन्ध। इसमे सयोग-विभाग, छोटा-वडा, हल्का भारी, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, सस्थान पाये जाते हैं। जैन सिद्धान्त ने प्रकाश, अन्धकार, छाया, आतप तथा शब्द को पौद्गलिक माना है। शब्द को पौद्गलिक मानना जैन तत्त्वज्ञान की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। न्याय-वैशेषिक दर्शन ने शब्द को आकाश का गुण माना है। आज के विज्ञान ने शब्द की पौद्गलिकता को स्पष्ट कर दिया है। जिस युग मे आधुनिक वैज्ञानिक उपकरण उपलब्ध नही थे तव जैन चिन्तको ने शब्द को पौद्गलिक कहा और यह भी कहा कि हमारा शब्द क्षण मात्र मे लोकव्यापी वन जाता है। तार का सम्वन्ध न होते हुए भी सुघोषा घटा का स्वर असख्य योजन दूरी पर रही हुई घण्टाओ मे प्रतिध्वनित होता है—यह उस समय का विवेचन है जव रेडियो—वायरलेस आदि का अनुसन्धान नही हुआ था।

उक्त रीति से अजीवाभिगम का निरूपण करने के पश्चात् जीवाभिगम का कथन आता है।

आत्मा का शुद्धाशुद्ध स्वरूप—

जीवाभिगम के दो भेद किये गये हैं—ससार समापन्नक जीव और असंसार समापन्नक जीव। जो जीव अपनी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उत्कृष्ट आराधना करके अपने विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर चुके हैं वे जीव असंसार-समापन्नक हैं। वे फिर ससार मे नही आते। जैनसिद्धान्त की मान्यता है कि—जैसे वीज के दग्ध होने पर उससे अकुर उत्पन्न नही हो सकते उसी तरह कर्मरूपी वीज के दग्ध होने पर फिर भवरूपी अकुर प्रस्फुटित नही हो सकते। वौद्धदर्शन या वैदिकदर्शन की तरह जैनदर्शन अवतारवाद मे विश्वास नही करता। वह उत्तारवादी दर्शन है। ससारवर्ती आत्मा ही विकास करता हुआ सिद्धस्वरूप वन जाता है फिर वह ससार मे नही आता।

ससार-समापन्नक जीव वे हैं जो विभावदशापन्न होकर कर्मवन्ध की विचित्रता को लेकर नानाप्रकार की सासारिक शरीर, इन्द्रिय, योग, उपयोग, लेश्या, वेद आदि स्थितियो को प्राप्त करते हैं। यह आत्मा की अशुद्ध दशा है। सिद्ध अवस्था आत्मा की शुद्ध अवस्था है और ससारवर्ती सशरीर दशा आत्मा की अशुद्ध अवस्था है।

आत्मा अपने मौलिकरूप मे शुद्ध है किन्तु वह कव अशुद्ध वना, यह नही कहा जा सकता। जैसे अण्डा और मुर्गी का सन्तति-प्रवाह अनादिकालीन है, यह नही कहा जा सकता कि अण्डा पहले था या मुर्गी पहले? वैसे ही ससारवर्ती आत्मा कव अशुद्ध वना यह नही कहा जा सकता। अनादिकाल से आत्मा और कर्म का सम्वन्ध चला आ रहा है अतएव अनादिकाल से आत्मा अशुद्ध दशा को प्राप्त है। इस अशुद्ध दशा से शुद्ध दशा की प्राप्त करना ही उसका लक्ष्य है और उसी के लिए सब साधनाएँ और अराधनाएँ हैं।

साख्यदर्शन का मन्तव्य है कि आत्मा शुद्ध ही है। वह अशुद्ध नहीं होती। वह न वधती है और न मुक्त होती है। वध और मोक्ष प्रकृति का होता है, पुरुष-आत्मा नित्य है, अकर्त्ता है, निर्गुण है। जैसे नर्तकी रगमच पर अपना नृत्य वताकर निवृत्त हो जाती है वैसे ही प्रकृति अपना कार्य पूरा कर निवृत्त हो जाती है—यह पुरुष और प्रकृति का वियोग ही मुक्ति है।

साख्यदर्शन की यह मान्यता एकागी और अपूर्ण है। यदि आत्मा शुद्ध और शाश्वत है तो फिर साधना और आराधना का क्या प्रयोजन रह जाता है? साधना की आवश्यकता तभी होती है जव आत्मा अशुद्ध हो।

जैन दृष्टि से शरीरमुक्त आत्मा शुद्ध आत्मा है और शरीरयुक्त आत्मा अशुद्ध। शरीरयुक्त आत्मा मे आत्मा और कर्मपुद्‌गल का योग है। इस योग के कारण ही आत्मा की अशुद्ध पर्यायें हैं। इन अशुद्ध पर्यायो के कारण ही जैनसिद्धान्त ने आत्मा को परिणमनशील कहा है। वह न एकान्तत नित्य है और न एकान्तत. अनित्य है अपितु द्रव्यरूप से नित्य होते हुए भी पर्याय रूप से अनित्य है।

नित्यानित्यत्व—

बौद्धदर्शन आत्मा को एकान्तत अनित्य कहता है। यह मन्तव्य भी एकागी और अपूर्ण है। आत्मा को एकान्त क्षणभगुर मानने पर बन्ध-मोक्ष आदि घटित नही हो सकते। ऐसी स्थिति मे उसके द्वारा मान्य कर्मवाद और पुनर्जन्मवाद भी घटित नही होते। बौद्धदर्शन आत्मा के विषय मे वस्तुत अस्पष्ट है। एक ओर वह निरात्मवादी है तो दूसरी ओर पुनर्जन्म और कर्मवाद को मानता है। जैनदर्शन आत्मा के सम्बन्ध मे बहुत स्पष्ट है। वह आत्मा को अनेकान्तदृष्टि से नित्यानित्य रूप मानता है, उसका बध और मोक्ष होना मानता है। यहाँ तक कि वह आत्मा को अमूर्त मानता हुआ भी सासारिक आत्मा को कथचित् मूर्त भी मानता है। ससारी आत्मा शरीर धारण करती है, इन्द्रियो के माध्यम से वह वस्तु को ग्रहण करती है, आहार, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनयुक्त होती है। ये सब परिणतिया होने के कारण आत्मा को कथनित् मूर्त भी माना गया है। सासारिक जीवो की सारी प्रवृत्तिया आत्मा और शरीर के योग से होती हैं अतएव वे यौगिक हैं। अकेली आत्मा मे ये क्रियाएँ नही हो सकती हैं और अकेले शरीर मे भी ये क्रियाएँ सम्भव नही है।

नवविध मन्तव्य—

ससारसमापन्नक जीव के भेदो को बताने के लिए नौ प्रकार की मान्यताओ का उल्लेख किया गया है। प्रथम प्रतिपत्ति (मान्यता) के अनुसार ससारी जीव के दो भेद किये गये हैं—त्रस और स्थावर। दूसरी प्रतिपत्ति के अनुसार तीन प्रकार कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुसक। तीसरी प्रतिपत्ति के अनुसार ससारी जीव के चार भेद कहे गये हैं—नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव। चौथी प्रतिपत्ति के अनुसार पाच भेद कहे गये हैं—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय। पचम प्रतिपत्ति के अनुसार ससारी जीव के छह भेद हैं—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। छठी प्रतिप्रति के अनुसार ससारी जीव के सात भेद कहे गये हैं—नैरयिक, तिर्यंच, तिर्यञ्चिनी, मनुष्य, मानुषी, देव और देवी। सप्तम प्रतिपत्ति मे ससारी जीव के आठ भेद प्ररूपित हैं—प्रथम समयवर्त्ती नैरयिक, अप्रथम समयवर्त्ती नैरयिक, एव प्रथम समय तिर्यञ्च अप्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय मनुष्य, अप्रथम समय मनुष्य, प्रथम समय देव, और अप्रथम समय देव।

अष्टम प्रतिपत्ति मे सासारिक जीव के नौ भेद प्ररूपित हैं—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय।

नवम प्रतिपत्ति मे ससारी जीव के दस प्रकार बताये हैं—प्रथम समय एकेन्द्रिय से प्रथम समय पचेन्तिय तक पाच और अप्रथम समय एकेन्द्रिय से अप्रथम समय पचेन्द्रिय तक पाच, कुल मिलाकर दस प्रकार के ससारी जीव बताये गये हैं।

उक्त सब प्रतिपत्तियाँ दिखने मे पृथक्-पृथक्-सी प्रतीत होती हैं परन्तु तात्त्विक दृष्टि से उनमे कोई विरोध नही है। अलग-अलग दृष्टिकोण से एक ही वस्तु का स्वरूप अलग-अलग प्रतीत होता है किन्तु उनमे विरोध नही होता। वर्गीकरण की भिन्नता को लेकर अलग-अलग प्ररूपणा है परन्तु उक्त सब प्रतिपत्तियाँ अविरोधिनी हैं। अनेकान्त दृष्टि की यही विशेषता है।

त्रसत्व और स्थावरत्व

प्रथम प्रतिपत्ति के अनुसार ससारवर्ती जीव के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर। स्थावर के तीन भेद किये गये हैं—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक। त्रस के भी तीन भेद बताये हैं—तेजस्कायिक, वायुकायिक और उदार त्रस।

जैन तीर्थङ्करो ने अपने विमल एव निर्मल केवलज्ञान के आलोक मे जगत् के जीवो का सूक्ष्म निरीक्षण एव परीक्षण किया है। अतएव वे 'सव्व जगजीवजोणिवियाणक' हैं जगत् के जीवो की सर्वयोनियो के विज्ञाता हैं। उन तीर्थङ्करो ने न केवल चलते-फिरते दिखाई देने वाले जीवो के अस्तित्व को स्वीकार किया है अपितु पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति मे भी जीवो का सद्भाव जाना है और प्ररूपित किया है। जैन सिद्धान्त के अतिरिक्त अन्यत्र कही भी ऐसा निरूपण एव प्रज्ञापन दृष्टिगोचर नही होता। जैन तत्त्व चिन्तको का स्पष्ट निर्देश है कि पृथ्वी आदि मे भी जीव हैं और अहिंसक साधक को इन सूक्ष्म जीवो की भी वैसी ही रक्षा का प्रयास करना चाहिए जैसे स्थूल प्राणियो की रक्षा का। केवल मनुष्य या पशुओ की रक्षा मे अहिंसा देवी की आराधना समाप्त नही होती परन्तु पृथ्वी, अप्, तेज वायु और वनस्पति के अव्यक्त चेतना वाले जीवो की भी अहिंसा का पूर्ण लक्ष्य रखना चाहिए।

पृथ्वीकायादि मे जीवास्तित्व का प्रतिपादन करते हुए निर्युक्तिकार ने कहा है कि उपयोग, योग, अध्यवसाय, मतिश्रुतज्ञान, अचक्षुदर्शन, अष्ट प्रकार के कर्मों का उदय और बध लेश्या, सज्ञा, श्वासोच्छ्वास और कषाय—ये जीव मे पाये जाने वाले गुण पृथ्वीकाय आदि मे भी पाये जाते हैं। अत मनुष्यादि की तरह पृथ्वीकायादि को भी सचित्त—जीवात्मक समझना चाहिए। यद्यपि पृथ्वीकायादिक मे उपर्युक्त लक्षण अव्यक्त हैं तदपि अव्यक्त होने से उनका निषेध नही किया जा सकता। इसे स्पष्ट करने के लिए उदाहरण दिया गया है—किसी पुरुष ने अत्यन्त मादक मदिरा का पान अत्यधिक मात्रा मे किया हो और ऐसा करने से वह बेजान एवं मूर्छित हो गया हो तब उसकी चेतना अव्यक्त हो जाती है लेकिन इतने मात्र से उसे अचेतन नही कहा जा सकता। ठीक इसी तरह पृथ्वीकायादिक मे चेतना-शक्ति अव्यक्त है परन्तु उसका निषेध नही किया जा सकता है।

पृथ्वीकायादिक एकेन्द्रिय जीवो के कान, नेत्र, नाक, जीभ, वाणी और मन नही होते हैं तो वे दु ख का वेदन किस प्रकार करते हैं, यह प्रश्न सहज ही उठाया जा सकता है। इसका समाधान आचाराग सूत्र मे एक उदाहरण द्वारा किया गया है। जैसे कोई जन्म के अधे, बहरे, लूले-लगडे तथा अवयवहीन किसी व्यक्ति के भाला आदि शस्त्र से पाव, टकने, पिण्डी, घुटने, जघा, कमर, नाभि, पेट, पासली, पीठ, छाती, हृदय, स्तन, कधा, भुजा, हाथ, अगुलि, नख, गर्दन, दाढी, होठ, दात, जीभ, तालु, गाल, कान, नाक, आख, भौंह, ललाट, मस्तक आदि—अवयवो को छेदे-भेदे तो उसे वेदना होती है किन्तु वह उस वेदना को व्यक्त नही कर सकता। इसी प्रकार एकेन्द्रिय पृथ्वीकायादिक जीवो को अव्यक्त वेदना होती है। जैसे मूर्छित अवस्था मे कोई किसी को पीडा दे तो उसे पीडा होती है वैसे ही पृथ्वीकायादिक जीवो की वेदना को समझना चाहिए।

महामनीषी आचार्यों ने विविध युक्तियों से एकेन्द्रिय जीवो मे सचेतनता सिद्ध की है। वनस्पति की सचेतनता तो अधिक स्पष्टरूप मे प्रतीत होती है। विशेषावश्यक भाष्य आदि ग्रन्थो मे पुष्ट एव प्रबल आधारो से प्रमाणित किया गया है कि उनमे स्पष्ट चेतना है। नारी शरीर के साथ वनस्पति की समानता प्रतिपादित करते हुए आचाराग सूत्र मे कहा गया है कि—नर-नारी के शरीर की तरह वनस्पति जाति (जन्म) स्वभाववाली है, वृद्धिस्वभाववाली है, सचित्त है, काटने पर म्लान होने वाली है। इसे भी आहार की अपेक्षा रहती है, इसमे भी विकार होते हैं। अत नर-नारी के शरीर की तरह वनस्पति भी सचेतन है।

आधुनिक विज्ञान ने भी वनस्पति की सचेतनता सिद्ध कर दी है। वैज्ञानिक साधनो द्वारा यह प्रत्यक्ष करा दिया गया है कि वनस्पति मे क्रोध, प्रसन्नता, हास्य, राग आदि भाव पाये जाते हैं। उनकी प्रशसा करने से वे हास्य प्रकट करती हुई और निन्दा करने से क्रोध करती हुई दिखाई दी है।

प्रस्तुत प्रतिपत्ति मे ससारी जीव के त्रस और स्थावर—ये दो भेद किये गये है। त्रस की व्युत्पत्ति करते हुए वृत्ति मे कहा गया है कि—उष्णादि से अभितप्त होकर जो जीव उस स्थान से अन्य स्थान पर छायादि हेतु जाते हैं, वे त्रस हैं। इस व्युत्पत्ति के अनुसार त्रस नामकर्म के उदय वाले जीवो की ही त्रसत्व मे परिगणना होती है, शेष की नही। परन्तु यहाँ स्थावर नामकर्म के उदय वाले तेजस्काय और वायुकाय को भी त्रस कहा गया है। अतएव यहाँ त्रसत्व की व्युत्पत्ति इस प्रकार करनी चाहिए—जो अभिसधिपूर्वक या अनभिसधिपूर्वक भी ऊर्ध्व अध, तिर्यक् चलते हैं वे त्रस हैं, जैसे तेजस्काय, वायुकाय, और द्वीन्द्रिय आदि। उष्णादि अभिताप के होने पर भी जो उस स्थान को नही छोड सकते हैं, वही रहते हैं वे स्थावर जीव हैं, जैसे पृथ्वी, जल और वनस्पति।[1]

प्राय स्थावर के रूप मे पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति—ये पाचो गिने जाते हैं। आचाराग मे यही कथन है। किन्तु यहाँ गति को लक्ष्य मे रखकर तेजसू और वायु को त्रस कहा गया है। क्योकि अग्नि का ऊर्ध्व-गमन और वायु का तिर्यग्गमन प्रसिद्ध है। दोनो कथनो का सामजस्य स्थापित करते हुए कहा गया है कि त्रस जीव दो प्रकार के हैं—गतित्रस और लब्धित्रस। तेजस् और वायु केवल गतित्रस हैं, लब्धित्रस नही है। जिनके त्रस नामकर्म रूपी लब्धि का उदय है वे ही लब्धित्रस हैं—जैसे द्वीन्द्रिय आदि उदार त्रस, तेजस् और वायु मे यह लब्धि न होने से वे लब्धित्रस न होकर स्थावर मे परिगणित होते हैं। केवल गति की अपेक्षा से ही उन्हे यहाँ त्रस के रूप मे परिगणित किया गया है।

पृथ्वीकाय के दो भेद किये गये हैं—सूक्ष्म पृथ्वीकाय और बादर पृथ्वीकाय। सूक्ष्म पृथ्वीकाय के दो भेद बताये हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। तदनन्तर सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो की विशेष जानकारी देने के लिए २३ द्वारो के द्वारा उनका निरूपण किया गया है। वे २३ द्वार हैं—शरीर, अवगाहना, सहनन, सस्थान, कषाय, सज्ञा, लेश्या, इन्द्रिया, समुद्घात, सज्ञी-असज्ञी, वेद, पर्याप्ति-अपर्याप्ति, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, योग, उपयोग, आहार, उपपात, स्थिति, समुद्घात करके मरण, च्यवन, गति और आगति। प्रश्न के रूप मे पूछा गया है कि भगवन्! उन सूक्ष्म पृथ्वीकायिको के शरीर कितने होते हैं? उत्तर मे कहा गया है कि उनके तीन शरीर होते हैं यथा—औदारिक, तेजस और कार्मण। इस तरह शेष द्वारो को लेकर भी प्रश्नोत्तर किये गये है।

---

१ तत्र त्रसन्ति—उष्णाद्यभितप्ता सन्तो विवक्षितस्थानादुद्विजन्ति गच्छन्ति च छायाद्यासेवनार्थं स्थानान्तरमिति त्रसा, अनया च व्युत्पत्त्या त्रसास्त्रसनामकर्मोदयवर्तिन एव परिगृह्यन्ते, न शेपा, अथ शेषैरपीह प्रयोजन, तेपामप्यग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, तत एव व्युत्पत्ति—त्रसन्ति अभिसन्धिपूर्वकमनभिसन्धिपूर्वक वा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् चलन्तीति त्रसा—तेजोवायवो द्वीन्द्रियादयश्च। उष्णाद्यभितापेऽपि तत्स्थानपरिहारासमर्था सन्तस्तिष्ठन्ती त्येव शीला स्थावरा—पृथिव्यादय। —मलयगिरि वृत्ति

१ सरीरोगाहण सघयण सठाणकसाय तह य हुति सन्नाओ।
लेसिदियसमुग्धाए सन्नी वेए य पज्जत्ती ॥१॥
दिट्ठी दसणनाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे।
उववाय ठिई समुग्धाय चवणगइरागई चेव ॥२॥

इसी तरह बादर पृथ्वीकाय के भी दो भेद बताये हैं—श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकाय और खरबादर पृथ्वीकाय। श्लक्ष्ण पृथ्वीकाय के सात भेद और खरबादर पृथ्वीकाय के अनेक भेद बताये हैं। फिर इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद करके पूर्वोक्त २३ द्वार घटाये हैं।

तदनन्तर अप्काय के सूक्ष्म और बादर तथा पर्याप्तक और अपर्याप्त भेद किये गये है और पूर्वोक्त २३ द्वारो से उनका निरूपण किया है।

तत्पश्चात् वनस्पतिकाय के सूक्ष्म और बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद करके पूर्वोक्त द्वार घटित किये हैं। तदनन्तर बादर वनस्पति के प्रत्येकशरीर बादर वनस्पति और साधारणशरीर बादर वनस्पति—ये दो भेद करके उनके भेद-प्रभेद बताये हैं। प्रत्येकशरीर बादर वनस्पति के १२ भेद वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग, तृण, वलय, हरित, ओषधि, जलरुह और कुहण बताये गये हैं। तदनन्तर साधारणशरीर बादर वनस्पति के अनेक प्रकार बताये हैं। इन सब भेदो मे उक्त २३ द्वार घटाये गये हैं।

त्रस जीवो के तेजस्काय, वायुकाय और उदारत्रस ये तीन भेद किये हैं। तेजस्काय और वायुकाय के सूक्ष्म और बादर फिर बादर के अनेक भेद बताये हैं। उदारत्रस के द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय रूप से चार प्रकार बताये हैं। पचेन्तिय के नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव—ये चार भेद किये हैं। नारक के रत्नप्रभादि पृथियो के आधार से सात भेद, तिर्यंच के जलचर, स्थलचर और खेचर—ये तीन करके फिर एक-एक के अनेक भेद किये हैं। मनुष्य के सम्मूच्छिम और गर्भोत्पन्न भेद किये हैं। देव के भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक के रूप मे चार प्रकार बताये हैं। उक्त सब जीव के भेद-प्रभेदो मे उपर्युक्त तेवीस द्वार घटित किये गये हैं।

उपर्युक्त सब द्वारो की परिभाषा और व्याख्या विद्वान् अनुवादक और विवेचक मुनिश्री ने यथास्थान की है जो जिज्ञासुओ के लिए बहुत उपयोगी है। जिज्ञासु जन वहाँ देखें। यहाँ उनका उल्लेख करना पुनरावृत्ति रूप ही होगा, अतएव विषय का निर्देश मात्र ही किया गया है।

द्वितीय प्रतिपत्ति

प्रस्तुत सूत्र की द्वितीय प्रतिपत्ति मे समस्त ससारी जीवो को वेद की अपेक्षा से तीन विभागो मे विभक्त किया गया है। वे विभाग हैं—स्त्री, पुरुष और नपुसक। स्त्रियो के तीन प्रकार कहे गये हैं—१ तिर्यग्योनिक स्त्रियाँ, मानुषी स्त्रियाँ और देवस्त्रिया। नारक जीव नपुसक वेद वाले ही होते हैं अत उनमे स्त्री या पुरुष वेद नही होता। तिर्यग्योनिक स्त्रियो के तीन भेद हैं—जलचरी, स्थलचरी और खेचरी। फिर उनके उत्तर भेदो का कथन किया गया है।

मानुषी स्त्रियो के तीन प्रकार कहे गये हैं—कर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाली, अकर्मभूमि मे उत्पन्न होने वाली और अन्तर्द्वीपो मे उत्पन्न होने वाली। अन्तर्द्वीपिका स्त्रियो के २८ प्रकार, अकर्मभूमिका स्त्रियो के तीस प्रकार और कर्मभूमिका स्त्रियो के १५ प्रकार कहे गये है।

देवस्त्रियो के चार प्रकार कहे हैं—भवनवासी देवस्त्रियाँ, वानव्यन्तर देवस्त्रिया, ज्योतिष्कदेवस्त्रिया और वैमानिक देवस्त्रिया। तदनन्तर इनके उत्तर भेदो का कथन हैं। वैमानिक देवस्त्रिया केवल दो देवलोक—सौधर्म और ईशान मे ही है। आगे के देवलोको मे स्त्रिया-देविया नही होती हैं।

स्त्रियो के भेद निरूपण के पश्चात् उनकी स्थिति बताई गई है। पहले सामान्यरूप से जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का कथन है फिर उत्तर भेदो को लेकर प्रत्येक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति कही गई है। मूलग्रन्थ और अनुवाद से स्थिति का प्रमाण जानना चाहिए।

स्थितिनिरूपण के पश्चात् स्त्री का सचिट्ठणाकाल बताया गया है। सचिट्ठणाकाल का तात्पर्य यह है कि स्त्री निरन्तररूप से (स्त्रीत्व को छोडे विना) कितने काल तक स्त्रीरूप मे ही रह सकती है ? सामान्य स्त्री की अपेक्षा सचिट्ठणाकाल वताने के पश्चात् प्रत्येक उत्तर भेद की सचिट्ठणा बताई गई है। वह भी मूलपाठ और अनुवाद से जानना चाहिए।

सचिट्ठणाकाल के अनन्तर अन्तर का निरूपण किया गया है। अन्तर से तात्पर्य है कि कोई स्त्री, स्त्रीत्व से छूटने के बाद फिर कितने काल के पश्चात् पुन स्त्री होती है ? सामान्यस्त्री और उत्तरभेद वाली प्रत्येक स्त्री का अन्तरकाल प्रकट किया गया है।

अन्तरद्वार के पश्चात् अल्पबहुत्व द्वार का प्ररूपण है। अल्पबहुत्व का अर्थ है अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक का प्रमाण बताना। यह अल्प बहुत्व कई अपेक्षाओं से बताया गया है। जैसे तिर्यक्स्त्रियो, मनुष्यस्त्रियो और देवस्त्रियो मे कौन किससे अल्प है, बहुत है, तुल्य है या विशेषाधिक है ? सबसे कम मनुष्यस्त्रिया हैं, तिर्यक्स्त्रियां उनसे असख्यात गुणी हैं और देवस्त्रिया उनसे भी असख्यात गुणी हैं। तदनन्तर उत्तर भेदो को लेकर अल्पबहुत्व का निर्देश किया गया है।

इसके पश्चात् स्त्रीवेद नामक कर्म की बधस्थिति बताते हुए कहा है कि जघन्यत पल्योपमासख्येय भाग न्यून एक सागरोयम का सार्ध सप्तभाग और उत्कर्षत पन्द्रह कोटाकोटि सागरोपम है। पन्द्रह सौ वर्ष का अबाधाकाल है और अबाधाकाल रहित कर्मस्थिति उसका कर्मनिषेक (अनुभवनकाल) काल है। जितने समय तक कर्म बन्धन के पश्चात् उदय मे नही आता है उस काल को अबाधा काल कहते हैं। कर्मदलिक का उदयावलि मे प्रविष्ट होने का काल कर्मनिषेक काल कहलाता है।

तत्श्चात् स्त्रीवेद की उपमा फुम्फुम अग्नि से दी गई है। फुम्फुम का अर्थ कारीषाग्नि (कडे की अग्नि) है। जैसे कडे की अग्नि धीरे धीरे जलती हुई बहुत देर तक बनी रहती है इसी तरह स्त्रीवेद का अनुभव धीरे-धीरे और बहुत देर तक होता रहता है।

स्त्रीवेद के कथन के अनन्तर पुरुषवेद का निरूपण है। पुरुष के भेद-प्रभेदो का वर्णन करके उनकी स्थिति, सचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है। तदनन्तर पुरुषवेद की बधस्थिति, अबाधाकाल और कर्मनिषेक बताकर पुरुषवेद को दावाग्नि ज्वाला के समान निरूपित किया है।

नपुसक वेद के निरूपण मे कहा गया है कि नपुसक तीन प्रकार के हैं—नैरयिक नपुसक, तिर्यक्योनिक नपुसक और मनुष्ययोनिक नपुसक। देव नपुसक नही होते हैं। तदनन्तर इनके भेद-प्रभेद निरूपित किये हैं। तत्पश्चात् पूर्ववत् स्थिति, सचिट्ठणा, अन्तर, अल्पबहुत्व, बधस्थिति अबाधाकाल और कर्मनिषेक प्रतिपादित हैं। नपुसक वेद को महानगरदाह के समान बताया गया है।

तत्पश्चात् आठ प्रकार से वेदो का अल्पबहुत्व निर्देशित किया गया है। तदनन्तर कहा गया है कि पुरुष सबसे थोडे हैं, उनसे स्त्रिया सख्येयगुणी हैं, उनसे नपुसक अनन्त गुण हैं। तिर्यक्योनिक पुरुषो की अपेक्षा तिर्यक्-योनिक स्त्रिया तिगुनी अधिक हैं। मनुष्य पुरुषो की अपेक्षा मनुष्य-स्त्रिया सत्तावीस गुणी हैं और देवो से देविया बत्तीस गुनी अधिक हैं।[1]

---

१ तिगुणा तिरूव अहिया तिरियाण इत्थिया मुणेयव्वा।
सत्तावीसगुणा पुण मणुयाण तदहिया चेव ॥१॥
बत्तीस गुणा बत्तीसरूव अहिया उ होंति देवाण।
देवीओ पण्णत्ता जिणेहिं जियरागदोसेहिं ॥२॥ —सग्रहणिगाथा

तृतीय प्रतिपत्ति

नारक-वर्णन

यदि ससारवर्ती जीवो को चार भागो मे विभक्त किया जाय तो उनका विभाजन इस प्रकार होता है—नैरयिक, तिर्यक्योनिक मनुष्य और देव। नैरयिक जीव सात प्रकार के नरको मे रहते हैं। ये नरक मध्यलोक के नीचे हैं। ये नरकपृथ्वियां कही जाती हैं। उनके नाम घम्मा, वशा, सेला, अजना, रिष्टा, मघा और माघवती हैं। इनके रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और तमतम प्रभा—ये सात गोत्र हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन है, शर्कराप्रभा की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन, बालुका प्रभा की एक लाख अट्ठावीस हजार योजन, पकप्रभा की एक लाख बीस हजार, धूमप्रभा की एक लाख अठारह हजार, तम प्रभा की एक लाख सोलह हजार और तमस्तम प्रभा की मोटाई एक लाख आठ हजार योजन की है।

रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन विभाग (काण्ड) हैं—खर काण्ड जिसे रत्न काण्ड भी कहते हैं, पक काण्ड और अप्बहुल काण्ड। केवल रत्नप्रभा पृथ्वी के ही काण्ड हैं शेष पृथ्वियो के काण्ड नही हैं—वे एकाकार हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी के एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण क्षेत्र मे से ऊपर-नीचे के एक एक हजार योजन भाग को छोडकर शेष क्षेत्र मे ऊपर भवनवासी देवो के सात करोड बहत्तर लाख भवन हैं तथा नीचे नारकियो के तीस लाख नारकावास हैं। दूसरी नरकपृथ्वी के ऊपर-नीचे के एक-एक हजार योजन छोडकर शेष भाग मे २५ लाख नारकावास हैं। इसी तरह तीसरी पृथ्वी मे १५ लाख, चौथी मे दस लाख, पाचवी मे तीन लाख, छठी मे पाच कम एक लाख और सातवी मे पाच नारकावास हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी से नीचे असख्यात योजन के अन्तराल के बाद दूसरी शर्करा पृथ्वी है। इसके असख्यात हजार योजन नीचे बालुका पृथ्वी है। इस तीसरी पृथ्वी का तल भाग मध्यलोक से दो राजु प्रमाण नीचा है। तीसरी पृथ्वी से असख्यात हजार योजन नीचे जाने पर चौथी पकप्रभा पृथ्वी है। इस पृथ्वी का तल भाग मध्यलोक से तीन राजु नीचा है। इससे असख्यात हजार योजन नीचे जाने पर पाचवी धूमप्रभा पृथ्वी है। इसका तल भाग मध्यलोक से चार राजु नीचे है। पाचवी पृथ्वी से असख्यात हजार योजन नीचे जाने पर छठी तम प्रभा पृथ्वी है। इसका तल भाग मध्यलोक से पाच राजु नीचे है। छठी पृथ्वी से असख्यात हजार योजन नीचे जाने पर सातवी तमस्तम प्रभा पृथ्वी है। इसका तल भाग मध्यलोक से छह राजु नीचा है। सातवी पृथ्वी के नीचे एक राजु प्रमाण मोटा और सात राजु विस्तृत क्षेत्र हैं जहां केवल एकेन्द्रिय जीव ही रहते हैं।

ये रत्नप्रभा आदि पृथ्वियां घनोदधि, घनवात और तनुवात पर आधारित हैं। इनके नीचे अवकाशान्तर (पोलार) है। सात नरको और उनके अवकाशान्तर मे पुद्गलद्रव्यो की व्यापक स्थिति है। रत्नप्रभा से लेकर समस्त तमस्तम प्रभा पृथ्वी तक सबका आकार झल्लरि के समान बताया है।

तदनन्तर सात नरको से चारो दिशाओ मे लोकान्त का अन्तर बताया गया है। रत्नप्रभादि सातो नरको मे सब जीव कालक्रम से उत्पन्न हुए हैं और निकले हैं क्योकि ससार अनादि है। रत्नप्रभादि कथचित् शाश्वत हैं और कथचिद् अशाश्वत हैं द्रव्यापेक्षया शाश्वत और पर्यायापेक्षया अशाश्वत हैं।

नरकावासो के सस्थान, आयाम-विष्कभ, परिधि, वर्ण गध और स्पर्श का वर्णन करते हुए उनकी अशुभता बताई है। चार गतियो की अपेक्षा गति-आगति, उनके श्वासोच्छ्वास के पुद्गल, आहार के पुद्गल, लेश्याएँ, ज्ञान, अज्ञान, उपयोग, अवधिज्ञान का प्रमाण, समुद्घात, सात नरको क्षुधा-पिपासा आदि की वेदना, शीतोष्ण वेदना,

मानवलोक की उष्णता से नारकीय उष्णता की तुलना, नैरयिको के अनिष्ट पुद्‌गलपरिणमन का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर नारको की स्थिति, उद्‌वर्तना और व्युत्क्रान्ति (उत्पत्ति) का वर्णन है।

नारक उद्देशक का उपसहार करते हुए कहा गया है—नारक जीव अत्यन्त अनिष्ट एव अशुभ पुद्‌गल-परिणाम का अनुभव करते हैं। उनकी वेदना, लेश्या, नाम, गोत्र, अरति, भय, शोक, भूख-प्यास, व्याधि, उच्छ्‌वास, अनुताप, क्रोध, मान, माया, लोभ, आहार, भय, मैथुन-परिग्रहादि सज्ञा ये सब अशुभ एव अनिष्ट होते हैं। प्राय महारम्भ महापरिग्रह वाले वासुदेव, माण्डलिक राजा, चक्रवर्ती' तन्दुल मस्त्यादि जलचर कालसौकरिक आदि कौटुम्बिक (महारभ-महापरिग्रह एव क्रूर परिणामो से) नरक गति मे जाते हैं। नरक मे नारकियो को अक्षि-निमीलन मात्र के लिए भी सुख नही है। वहाँ दु ख ही दु ख है। वहाँ अति शीत, अति उष्ण, अति तृष्णा, अति क्षुधा और अति भय है। नारक जीवो को निरन्तर असाता का ही अनुभव करना पडता है।

तिर्यञ्चाधिकार

तिर्यग्‌योनिक जीवो के एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रियादि पाच प्रकार बताये हैं। एकेन्द्रिय के पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु वनस्पति रूप से पाच प्रकार कहे है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीवो के भेद-प्रभेद बताये गये हैं। पचेन्द्रिय जलचर, स्थलचर और खेचर के दो-दो भेद सम्मूर्छिम और गर्भव्युत्क्रान्तिक के रूप मे कहे हैं। खेचर आदि पचेन्द्रिय तिर्यग्‌योनिक के तीन प्रकार का योनिसग्रह कहा है—अडज, पोतज और समूर्छिम। अडज और पोतज तीनो वेद वाले होते हैं। समूर्छिम नपुसक ही होते हैं। इन जीवो का लेश्या, दृष्टि, ज्ञान-अज्ञान, योग, उपयोग, आगति, गति, स्यति समुद्‌घात आदि द्वारो से वर्णन किया गया है। तदनन्तर जाति, कुलकोटी का कथन किया गया है।

द्वितीय उद्देशक मे छह प्रकार के ससारवर्ती जीव कहे हैं—पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय। इनके भेद-प्रभेद किये है। इनकी स्थिति, सचिट्ठणा और निर्लेपना का कथन है।

प्रसगोपात्त विशुद्ध अविशुद्ध लेश्या वाले अनगार के विशुद्ध-अविशुद्ध लेश्या वाले देव-देवी को जानने सबधी प्रश्नोत्तर हैं।

मनुष्य दो प्रकार के हैं—समूर्छिम मनुष्य और गर्भव्युत्क्रातिक मनुष्य। सम्मूर्छिम मनुष्य क्षेत्र के चौदह अशुचि स्थानो मे उत्पन्न होते है। उनकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र होती है। गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के हैं—कर्म-भूमक, अकर्मभूमक और अन्तर्द्वीपक।

मनुष्याधिकार

अन्तर्द्वीपक—हिमवान पर्वत की चारो विदिशाओ मे तीन-तीन सौ योजन लवणसमुद्र के भीतर जाने पर चार अन्तर्द्वीप हैं। इसी प्रकार लवण समुद्र के भीतर चार सौ, पाच सौ, छह सौ, सात सौ, आठ सौ और नौ सौ योजन आगे जाने पर भी चारो विदिशाओ मे चार-चार अन्तर्द्वीप हैं। इस प्रकार चुल्ल हिमवान के ७×४=२८ अन्तर्द्वीप हैं। इन अन्तर्द्वीपो मे रहने वाले मनुष्य अन्तर्द्वीपक कहलाते हैं। इन अन्तर्द्वीपको के २८ नाम हैं—१ एकोरुक, २ आभाषिक, ३ वैपाणिक, ४ नागोलिक, ५ हयकर्ण, ६ गजकर्ण, ७ गोकर्ण, ८ शष्कुलीकर्ण, ९ आदर्शमुख, १० मेण्ढमुख, ११ अयोमुख, १२. गोमुख, १३ अश्वमुख, १४ हस्तिमुख, १५ सिंहमुख, १६ व्याघ्रमुख, १७ अश्वकर्ण, १८ सिंहकर्ण, १९ अकर्ण, २० कर्णप्रावरण, २१. उल्कामुख, २२ मेघमुख, २३ विद्युद्दन्त, २४

विद्युज्जिह्वा, २५ घनदन्त, २६ लष्टदन्त, २७ गूढदन्त और २८. शुद्धदन्त। इसी प्रकार शिखरी पर्वत की लवणसमुद्रगत दाढाओ पर भी २८ अन्तर्द्वीप हैं। दोनो ओर के मिलाकर ५६ अन्तर्द्वीप हो जाते हैं।

एकोरुक द्वीप का आयाम-विष्कभ तीन सौ योजन और परिधि नौ सौ उनपचास योजन है। वह एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से चारो ओर से घिरा हुआ है। इस द्वीप का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय है। वहाँ बहुत सारे द्रुम, वृक्ष, वन, लता, गुल्म आदि हैं जो नित्य कुसुमित रहते हैं। वहाँ बहुत सी हरी भरी वनराजिया हैं। वहाँ दस प्रकार के कल्पवृक्ष हैं जिनसे वहाँ के निवासियो का जीवन-निर्वाह होता है। (१) मत्ताग नामक कल्पवृक्ष से उन्हे विविध पेयपदार्थों की प्राप्ति होती है। (२) भृताग नामक कल्पवृक्ष से वर्तनो की पूर्ति होती है। (३) त्रुटिताग कल्पवृक्ष से वाद्यो की पूर्ति (४) दीपशिखा नामक कल्पवृक्ष मे प्रकाश की पूर्ति होती है। (५) ज्योति-अग नामक कल्पवृक्ष से सूर्य की तरह प्रकाश वौर सुहावनी धूप प्राप्त होती है। (६) चित्राग नामक कल्पवृक्ष विविध प्रकार के चित्र एव विविध मालाएँ प्रदान करते है। (७) चित्तरसा नामक कल्पवृक्ष विविध रसयुक्त भोजन प्रदान करते हैं। (८) मण्यग नामक कल्पवृक्ष विविध प्रकार के मणिमय आभूषण प्रदान करते हैं। (९) गेहागार नाम के कल्पवृक्ष विविध प्रकार के आवास प्रदान करते हैं और (१०) अणिगण नाम के कल्पवृक्ष उन्हें विविध प्रकार के वस्त्र प्रदान करते हैं।

एकोरुक द्वीप के मनुष्य और स्त्रिया सुन्दर अगोपाग युक्त, प्रमाणोपेत अवयव वाले, चन्द्र के समान सौम्य और अत्यन्त भोग-श्री से सम्पन्न होते हैं। नख से लेकर शिख तक के उनके अगोपागो का साहित्यिक और सरस वर्णन किया गया है। ये प्रकृति से भद्रिक होते हैं। चतुर्थ भक्त अन्तर से आहार की इच्छा होती है। ये मनुष्य आठ सौ धनुष ऊचे होते हैं, ६४ पृष्ठकरडक (पासलिया) होते हैं। उनपचास दिन तक अपत्य-पालना करते हैं। उनकी स्थिति जघन्य देशोन पल्योपम का असख्येय भाग और उत्कृष्ट पल्योपम का असख्येय भाग प्रमाण है। जब उनकी छह मास आयु शेष रहती है तब युगलिक-स्त्री सन्तान को जन्म देती है। ये युगलिक स्त्री-पुरुष सुखपूर्वक आयुष्य पूर्ण करके अन्यतर देवलोक मे उत्पन्न होते हैं।

एकोरुक द्वीप मे गृह, ग्राम, नगर, असि, मसि, कृषि आदि कर्म, हिरण्य-सुवर्ण आदि धातु, राजा और सामाजिक व्यवस्था, दास्यकर्म वैरभाव, मित्रादि, नटादि के नृत्य, वाहन, धान्य, डास-मच्छर, युद्ध, रोग, अतिवृष्टि, लोहे आदि धातु की खान, क्रय विक्रय आदि का अभाव होता है। वह भोगभूमि है। इसी तरह सब अन्तर्द्वीपो का वर्णन समझना चाहिए।

कर्मभूमिज मनुष्य कर्मभूमियो मे और अकर्मभूमिज मनुष्य अकर्मभूमि मे पैदा होते हैं। कर्मभूमि वह है जहाँ मोक्षमार्ग के उपदेष्टा तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं, जहाँ असि (शस्त्र) मषि (लेखन-व्यापार आदि) और कृषि कर्म करके मनुष्य अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। ऐसी कर्मभूमिया पन्द्रह हैं—५ भरत, ५ एरवत और ५ महाविदेह। (ये भरत आदि एक एक जम्बूद्वीप मे, दो-दो धातकीखण्ड मे और दो-दो-पुष्करार्ध द्वीप मे हैं।) यहाँ के मनुष्य अपने पुरुषार्थ के द्वारा कर्मो का क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। ये अपने-अपने पुण्य-पाप के अनुसार चारो गतियो मे उत्पन्न हो सकते हैं।

जहाँ असि-मसि-कृषि नही है किन्तु प्रकृति प्रदत्त कल्पवृक्षो द्वारा जीवननिर्वाह है वह अकर्मभूमि है। अकर्मभूमिया ३० हैं—पाच हैमवत, पाच हैरण्यवत, पाच हरिवास, पाच रम्यकवास, पाच देवकुरु और पाच उत्तर-कुरु। इनमे से एक-एक जम्बूद्वीप मे, दो-दो धातकीखण्ड मे और दो-दो पुष्करार्धद्वीप मे हैं। ३० अकर्मभूमि और ५६ अन्तर्द्वीप भोगभूमिया हैं। यहाँ युगलिक धर्म है—चारित्र धर्म यहाँ नही है।

मनुष्यो का वर्णन करने के पश्चात् चार प्रकार के देवो का कथन है—भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। भवनपति और वानव्यन्तर देवो का आवास रत्नप्रभा पृथ्वी मे—मध्यलोक मे है। ज्योतिष्क देव भी मध्यलोक मे हैं। वैमानिक देवो का निवास ऊर्ध्वलोक मे है। भवनवासी देवो के ७ करोड ७२ लाख भवनावास रत्नप्रभा पृथ्वी मे कहे गये हैं। उनमे असुरकुमार आदि दस प्रकार के भवनपति देव रहते हैं। असुरकुमारो के भवनो का वर्णन, असुरेन्द्र की ३ पर्षद्, उनमे देव-देवियो की सख्या, उनकी स्थिति, तीन पर्षदो की भिन्नता का कारण, उत्तर के असुरकुमारो का वर्णन तथा उनकी पर्षदाओ का वर्णन है। दक्षिण-उत्तर के नागकुमारेन्द्र और दक्षिण-उत्तर के धरणेन्द्र व उनकी तीन पर्षदो का भी वर्णन है। व्यन्तर देवो के भवन, इन्द्र और परिषदो का भी वर्णन है। ज्योतिष्क देवो के विमानो का सस्थान, और सूर्य चन्द्र देवो की तीन-तीन परिषदो का उल्लेख है। इसके पश्चात् द्वीप-समुद्रो का वर्णन किया गया है।

जम्बूद्वीप—जम्बूद्वीप के वृत्ताकार की उपमाएँ, उसके सस्थान की उपमाएँ, आयाम-विष्कभ, परिधि, जगती की ऊँचाई, उसके मूल मध्य और ऊपर का विष्कभ, उसका सस्थान, जगती की जाली की ऊँचाई, विष्कभ, पद्मवरवेदिका की ऊँचाई एव विष्कभ, उसकी जालिकाएँ, घोडे आदि के चित्र, वनलता आदि लताएँ, अक्षत, स्वस्तिक, विविध प्रकार के कमल, शाश्वत या अशाश्वत आदि का वर्णन है।

जम्बूद्वीप के वनखड का चक्रवाल, विष्कभ, विविध वापिकाए, उनके सोपान, तोरण, समीपवर्ती पर्वत, लतागृह, मडप, शिलापट्ट और उन पर देव देवियो की क्रीडाओ आदि का वर्णन है।

जम्बूद्वीप के विजयद्वार का स्थान, उसकी ऊचाई, विष्कभ तथा कपाट की रचना का विस्तृत वर्णन है। विजयदेव सामानिक देव, अग्रमहिषियो, तीन पर्षदो, आत्मरक्षक देवो आदि के भद्रासनो का वर्णन है। विजयद्वार के ऊपरी भाग का, उसके नाम के हेतु का तथा उसकी शाश्वतता का उल्लेख किया गया है।

जम्बूद्वीप की विजया राजधानी का स्थान, उसका आयाम-विष्कभ, परिधि, प्राकार की ऊचाई, प्राकार के मूल, मध्य और ऊपरी भाग का विष्कभ, उसका सस्थान, कपिशीर्षक का आयाम-विष्कभ, उसके द्वारो की ऊचाई और विष्कभ, चार वनखण्ड, उनका आयाम-विष्कभ, दिव्य प्रासाद, उनमे चार महर्द्धिक देव, परिधि, पद्मवर-वेदिका वनखड सोपान व तोरण प्रासादावतसक, मणिपीठिका, सिंहासन, आठ मगल, समीपवर्ती प्रासादो की ऊचाई, आयाम-विष्कभ, अन्य पार्श्ववर्ती प्रासादो की ऊचाई, आयाम, विष्कभ आदि का वर्णन है।

विजयदेव की सुधर्मा सभा, ऊचाई, आयाम-विष्कभ, उसके तीन द्वारो की ऊचाई व विष्कभ, मुखमडपो का आयाम विष्कभ और ऊचाई, प्रेक्षागृह-मडपो का आयाम-विष्कभ व ऊचाई, मणिपीठिकाओ, चैत्य वृक्षो, महेन्द्र ध्वजाओ और सिद्धायतन के आयाम-विष्कभ तथा ऊचाई का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर उपपात सभा, विजयदेव की उत्पत्ति, पर्याप्ति, मानसिक सकल्प आदि का वर्णन है। विजयदेव और उनके सामानिक देवो की स्थिति बताई गई है। जम्बूद्वीप के विजय, वैजयन्त, जयत और अपराजित द्वारो का विस्तृत वर्णन किया गया है। जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर, जम्बूद्वीप से लवणसमुद्र का और लवणसमुद्र का जम्बूद्वीप से स्पर्श का तथा परस्पर मे इनमे जीवो की उत्पत्ति का कथन है।

जम्बूद्वीप मे उत्तरकुरु का स्थान, सस्थान और विष्कभ, जीवा और वक्षस्कार पर्वत का स्पर्श, धनुपृष्ठ की परिधि उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यो की ऊचाई, पसलिया, आहारेच्छा, काल, स्थिति, अपत्यपालन-काल, आदि का वर्णन है। उत्तरकुरु के दो यमक पर्वत हैं। उनकी ऊचाई, उद्वेध, मूल, मध्य और ऊपरी भाग का आयाम-विष्कभ,

परिधि, उन पर्वतो पर प्रासाद और उनकी ऊचाई, यमक नाम का कारण, यमक पर्वत की नित्यता, यमक देवो की राजधानी के स्थान आदि का वर्णन है।

उत्तरकुरु मे नीलवत द्रह का स्थान, आयाम-विष्कभ, और उद्वेध, पद्मकमल का आयाम, विष्कभ, परिधि, वाहल्य, ऊचाई और सर्वोपरिभाग, इमी तरह कर्णिका, भवन, द्वार, मणिपीठिका १०८ कमल, कर्णिकाएँ, पद्म परिवार के आयाम-विष्कभ और परिधि वर्णित हैं।

कचनग पर्वतो का स्थान, प्रासाद, नाम का कारण, कचनगदेव और उसकी राजधानी, उत्तरकुरु द्रह का स्थान, चन्द्रद्रह ऐरावण द्रह, माल्यवत द्रह, जम्बूपीठ का स्थान, मणिपीठिका, जम्बू सुदर्शन वृक्ष की ऊचाई-आयाम-विष्कभ आदि का वर्णन है। जम्बूसुदर्शन की शाखाएँ, उन पर भवन द्वार, उपरिभाग मे सिद्धायतन के द्वारो की ऊचाई, विष्कभ आदि वर्णित हैं। पार्श्ववर्ती अन्य जम्बूसुदर्शनो की ऊचाई, अनाहत देव और उनका परिवार, चारो ओर के वनखण्ड, प्रत्येक वनखण्ड मे भवन, नन्दापुष्करिणिया, उनके मध्य प्रासाद, उनके नाम, एक महान् कूट, उसकी ऊचाई और आयाम- विष्कभ आदि का वर्णन है। जम्बूसुदर्शन पर अष्ट मगल, उसके १२ नाम, नाम का कारण, अनाहत देव की स्थिति, राजधानी का स्थान जम्बूद्वीप नाम की नित्यता और उसमे चन्द्र-सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और तारागण की सख्या आदि का वर्णन किया गया है।

लवण समुद्र—लवण समुद्र का सस्थान, उसका चक्रवाल विष्कभ, परिधि, पद्मवरवेदिका की ऊचाई और वनखड, लवण समुद्र के द्वारो का अन्तर, लवण समुद्र और धातकीखड का परस्पर स्पर्श, परस्पर मे जीवो की उत्पत्ति, नामकरण का कारण, लवणाधिपति सुस्थित देव की स्थिति, लवण समुद्र की नित्यता, उसमे चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और ताराओ की सख्या, लवण समुद्र की भरती और घटती और उसमे रहे हुए चार पाताल कलशो का वर्णन है। लवणाधिपति सुस्थित देव, गौतम द्वीप का स्थान वनखड, क्रीडास्थल, मणिपीठिका और नाम के कारण का उल्लेख है।

जबूद्वीप के चन्द्रद्वीप का स्थान, ऊचाई, आयाम-विष्कभ, क्रीडास्थल, प्रासादावतसक, मणिपीठिका का परिमाण, नाम का हेतु आदि वर्णित हैं। इसी प्रकार जबूद्वीप के सूर्य और उनके द्वीपो का वर्णन है। लवणसमुद्र के वाहर चन्द्र-सूर्य और उनके द्वीप, धातकीखण्ड के चन्द्र-सूर्य और उनके द्वीप, कालोदधि समुद्र के चन्द्र-सूर्य और उनके द्वीप, पुष्करवरद्वीप के चन्द्र सूर्य और उनके द्वीप, लवण समुद्र मे वेलधर मच्छ कच्छप, बाह्य समुद्रो मे वेलधरो का अभाव, लवण समुद्र के उदक का वर्णन, उसमे वर्षा आदि का सद्भाव किन्तु बाह्य समुद्रो मे अभाव आदि का वर्णन है।

धातकीखण्ड—धातकीखण्ड का सस्थान, चक्रवाल विष्कभ, परिधि, पद्मवरवेदिका, वनखण्ड, द्वार, द्वारो का अन्तर, धातकीखड और कालोदधि का परस्पर सस्पर्श और जीवोत्पत्ति, नाम का हेतु, धातकीखण्ड के वृक्ष और देव-देवियो की स्तुति, उसकी नित्यता तथा चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र-तारागण आदि का वर्णन है।

कालोद समुद्र—कालोद समुद्र का सस्थान, चक्रवाल विष्कभ परिधि, पद्मवरवेदिका, वनखड, चार द्वार, उनका अन्तर, कालोद समुद्र और पुष्करवर द्वीप का परस्पर स्पर्श एव जीवोत्पत्ति, नाम का कारण, काल महाकाल देव की स्थिति, कालोद समुद्र की नित्यता और उसके चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारो आदि का वर्णन किया गया है।

पुष्करवर द्वीप—पुष्करवर द्वीप का सस्थान, चक्रवाल विष्कभ, परिधि, पद्मवरवेदिका, वनखड, चार द्वार, उनका अन्तर, द्वीप और समुद्र के प्रदेशो का स्पर्श और परस्पर मे जीवोत्पत्ति, नाम का हेतु, पद्म और महापद्म वृक्ष,

पद्म और पुडरीक देवो की स्थिति तथा इस द्वीप के चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारागणो की सख्या आदि का वर्णन है।

मानुषोत्तर पर्वत बीच मे आ जाने से इस द्वीप के दो विभाग हो गये हैं। जबूद्वीप, धातकीखण्ड और अर्ध पुष्करवर द्वीप को अढाई द्वीप, मनुष्यक्षेत्र अथवा समयक्षेत्र कहते हैं। समयक्षेत्र का आयाम विष्कभ, परिधि, मनुष्य क्षेत्र के नाम का कारण तथा चन्द्र सूर्यादि का वर्णन है।

मनुष्य लोक और उसके बाहर ताराओ की गति आदि, मानुषोत्तर पर्वत की ऊचाई, पर्वत के नाम का कारण, लोकसीमा के अनेक विकल्प, मनुष्यक्षेत्र मे चन्द्रादि ज्योतिष्क देवो की मण्डलाकार गति, इन्द्र के अभाव में सामानिक देवो द्वारा शासन, इन्द्र का विरह काल, पुष्करोदधि का सस्थान, चक्रवाल विष्कभ परिधि, चार द्वार, उनका अन्तर, द्वीप समुद्र मे जीवो की परस्पर उत्पत्ति आदि का कथन किया गया है।

इसके पश्चात् वरुणवर द्वीप, वरुणवर समुद्र, क्षीरवर द्वीप, क्षीरोदसागर, घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, क्षोदवर द्वीप-क्षोदवर समुद्र, नन्दीश्वर द्वीप-नन्दीश्वर समुद्र आदि असख्यात द्वीप और समुद्र हैं और अन्त मे असख्यात योजन विस्तृत स्वयभूरमण समुद्र, हैं, ऐसा कथन किया गया है। लवणसमुद्र से लगाकर कालोद, पुष्करोद वरुणोद, क्षीरोद, घृतोद, क्षोदोद तथा शेष समुद्रो के जल का आस्वाद बताया गया है। प्रकृति-रसवाले चार समुद्र, उदगरसवाले तीन समुद्र, बहुत कच्छ मच्छ वाले तीन समुद्र, शेष समुद्र अल्पमच्छ वाले कहे गये हैं। समुद्र के मत्स्यो की कुलकोटि, अवगाहना आदि का वर्णन है।

देवो की दिव्य गति, बाह्य पुद्गलो के ग्रहण से ही विकुर्वणा, देव के वैक्रिय शरीर को छद्मस्थ नहीं देख सकता, बालक का छेदन-भेदन किये बिना बालक को छोटा-बडा करने का सामर्थ्य देव मे होता है, यह वर्णन किया गया है।

चन्द्र और सूर्यो के नीचे, बीच मे और ऊपर रहने वाले ताराओ का वर्णन, प्रत्येक चन्द्र सूर्य के परिवार का प्रमाण, जबूद्वीप के मेरु से ज्योतिष्क देवो की गति का अन्तर, लोकान्त मे ज्योतिष्क देवो की गति-क्षेत्र का अन्तर, रत्नप्रभा के ऊपरी भाग मे ताराओ का, सूर्यविमान का चन्द्रविमान का और सब से ऊपर के तारे के विमान का अन्तर भी बताया गया है।

इसी प्रकार अधोवर्ती तारे से सूर्य चन्द्र और सर्वोपरि तारे का अन्तर, जबूद्वीप मे सर्वाभ्यन्तर, सर्व बाह्य, सर्वोपरि सर्व अधो गति करने वाले नक्षत्रो का वर्णन, चन्द्र विमान यावत् तारा विमान का विष्कभ, परिधि, चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्रो के विमानो को परिवहन करने वाले देवो की सख्या, चन्द्रादि की गति, अग्रमहिषियाँ, उनकी विकुर्वणा आदि का वर्णन भी किया गया है।

वैमानिक देवो का वर्णन—वैमानिक देवो का वर्णन करते हुए शक्रेन्द्र की तीन परिषद्, उनके देवो की सख्या, स्थिति, यावत् अच्युतेन्द्र की तीन परिषद् आदि का वर्णन है। अहमिन्द्र ग्रैवेयक व अनुत्तर विमान के देवो का वर्णन है। सौधर्म-ईशान से लेकर अनुत्तर विमानो का आधार, बाहल्य, सस्थान, ऊचाई, आयाम, विष्कभ, परिधि, वर्ण, प्रभा, गध और स्पर्श का उल्लेख किया गया है।

सर्व विमानो की पौद्गलिक रचना, जीवो और पुद्गलो का चयोपचय, जीवो की उत्पत्ति का भिन्न-भिन्न क्रम, सर्व जीवो से सर्वथा रिक्त न होना, देवो की भिन्न भिन्न अवगाहना का वर्णन है। ग्रैवेयक और अनुत्तर देवो मे विक्रिया करने की शक्ति होने पर भी वे विक्रिया नहीं करते, देवो मे सहनन का अभाव है, केवल शुभ पुद्गलो का परिणमन होता है। देवो मे समचतुरस्र सस्थान है। वैमानिक देवो के अवधि ज्ञान की भिन्न भिन्न अवधि,

भिन्न भिन्न समुद्घात और भिन्न भिन्न वर्ण-गध, रस और स्पर्श होते हैं। इन देवो मे क्षुधा-पिपासा के वेदन का अभाव, भिन्न भिन्न प्रकार की वैक्रिय शक्ति, सातावेदनीय, वेशभूपा, कामभोग, भिन्न भिन्न गति का वर्णन किया गया है।

तदनन्तर नैरयिक-तिर्यंच-मनुष्य और देवो को जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति तथा जघन्य और उत्कृष्ट सचिट्ठणा काल, जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एव उनका अल्प-वहुत्व वताया गया है।

इस प्रकार इस तृतीय प्रतिपत्ति मे चार प्रकार के ससारी जीवो को लेकर विस्तृत विवेचन किया गया है।

चतुर्थ प्रतिपत्ति—इस प्रतिपत्ति मे सासारिक जीवो के पाच प्रकार वताये गये हैं—एकेन्द्रिय यावत् पचेन्द्रिय। इनके भेद-प्रभेद, जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति सस्थितिकाल और अल्पवहुत्व वताये गये हैं।

पचम प्रतिपत्ति—इस प्रतिपत्ति मे सासारिक जीवो को छह विभागो मे विभक्त किया गया है—पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय। इसके भेद-प्रभेद, स्थिति, सचिट्ठणा, अन्तर और अल्पवहुत्व वताये गये है। इसमे निगोद का वर्णन, स्थिति, सचिट्ठणा, अन्तर और अल्प-वहुत्व प्रतिपादित है।

षष्ठ प्रतिपत्ति—इस प्रतिपत्ति मे सासारिक जीव सात प्रकार के कहे गये हैं—नैरयिक, तिर्यंच, तिर्यंचनी, मनुष्य, मानुषी, देव और देवी। इनकी स्थिति, सस्थिति, अन्तर और अल्पवहुत्व वताये गये हैं।

सप्तम प्रतिपत्ति—इसमे आठ प्रकार के ससारी जीव वताये गये हैं। प्रथम समय नैरयिक, अप्रथम समय नैरयिक, प्रथम समय तिर्यंच, अप्रथम समय तिर्यंच, प्रथम समय मनुष्य, अप्रथम समय मनुष्य, प्रथम समय देव और अप्रथम समय देव। इन आठो प्रकार के ससारी जीवो की स्थिति, सस्थिति, अन्तर और अल्प-वहुत्व प्रतिपादित किया है।

अष्टम प्रतिपत्ति—इस प्रतिपत्ति मे ससारवर्ती जीवो के नौ प्रकार वताये हैं—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक द्वीन्द्रिय यावत् पचेन्द्रिय। इन नौ की स्थिति, सस्थिति, अन्तर और अल्पवहुत्व का विवेचन है।

नौवीं प्रतिपत्ति—इस प्रतिपत्ति मे ससारवर्ती जीवो के दस भेद प्रतिपादित किये हैं—प्रथम समय एकेन्द्रिय से लेकर प्रथम समय पचेन्द्रिय तक ५ और अप्रथम समय एकेन्द्रिय से लेकर अप्रथम समय पचेन्द्रिय तक पाच। दोनो मिलकर दस प्रकार हुए। इन जीवो की स्थिति, सस्थिति, अन्तर और अल्पवहुत्व का निरूपण किया गया है।

तदनन्तर इस प्रतिपत्ति मे जीवो के सिद्ध-असिद्ध सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय, ज्ञानी-अज्ञानी, आहारक-अनाहारक, भाषक-अभाषक, सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि, परित्त-अपरित्त, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सूक्ष्म-वादर, सज्ञी-असज्ञी, भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक रूप से भेदो का विधान किया गया है तथा योग, वेद, दर्शन, सयत, असयत, कषाय, ज्ञान, शरीर, काय, लेश्या, योनि इन्द्रिय आदि की अपेक्षा से वर्णन किया गया है।

उपसहार—इस प्रकार प्रस्तुत आगम मे जीव और अजीव का अभिगम है। दो विभागो मे इनका निरूपण किया गया है। प्रथम विभाग मे अजीव का और ससारी जीवो का निरूपण है तो दूसरे विभाग मे ससारी और सिद्ध दोनो का समावेश हो जाय, इस प्रकार भेद निरूपण है।

प्रस्तुत आगम मे द्वीप और सागरो का विस्तार से वर्णन है।

प्रसगोपात्त, इसमे विविध लौकिक और सामाजिक, भौगोलिक और खगोल सवधी जानकारियाँ भी उपलब्ध होती हैं। सोलह प्रकार के रत्न, अस्त्र-शस्त्रो के नाम, धातुओ के नाम, विविध प्रकार के पात्र, विविध

आभूषण भवन, वस्त्र, ग्राम, नगर आदि का वर्णन है। त्यौहार, उत्सव, नृत्य, यान आदि के विविध नाम भी इसमे वर्णित हैं। कला, युद्ध व रोग आदि के नाम भी उल्लिखित हैं। इसमे उद्यान, वापी, पुष्करिणी, कदलीघर, प्रसाधनघर और स्त्री-पुरुष के अगो का सरस एव साहित्यिक वर्णन भी है। प्राचीन सास्कृतिक सामग्री की इसमे प्रचुरता है। प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षो के अध्ययन की दृष्टि से इस आगम का बहुत महत्त्व है।

व्याख्या-साहित्य

जीवाभिगम का व्याख्या-साहित्य वर्तमान मे इस प्रकार उपलब्ध है। जीवाभिगम पर न निर्युक्ति लिखी गई और न कोई भाष्य ही लिखा गया। हाँ इस पर सर्वप्रथम व्याख्या के रूप मे चूर्णि प्राप्त होती है, पर वह चूर्णि अप्रकाशित है, इसलिए उस चूर्णि के सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से यह नही कहा जा सकता कि वह चूर्णि जिनदास गणि महत्तर की है या सघदास गणि की है।

जीवाभिगम पर सस्कृत भाषा मे आचार्य मलयगिरि की वृत्ति मिलती है। यह वृत्ति जीवाभिगम के पदो के विवेचन के रूप मे है।

जीवाभिगमवृत्ति

प्रस्तुत वृत्ति जीवाभिगम के पदो के विवेचन के रूप मे है। इस वृत्ति मे अनेक ग्रन्थो और ग्रन्थकारो का नामोल्लेख किया गया हैं—जैसे कि धर्मसग्रहणीटीका, प्रज्ञापनाटीका, प्रज्ञापना-मूल-टीका, तत्त्वार्थ मूल-टीका, सिद्धप्राभृत, विशेपणवती, जीवाभिगममूल-टीका, पचसग्रह, कर्मप्रकृति सग्रहणी, क्षेत्र-समास टीका, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-टीका, कर्मप्रकृतिसग्रहणीचूर्णि, वसुदेवचरित, जीवाभिगमचूर्णि, चन्द्रप्रज्ञप्तिटीका, सूर्यप्रज्ञप्तिटीका, देशीनाममाला, सूर्यप्रज्ञप्तिनिर्युक्ति, पचवस्तुक, आचार्य हरिभद्ररचित तत्त्वार्थटीका, तत्त्वार्थ भाष्य, विशेषावश्यक भाष्य स्वोपज्ञवृत्ति, पचसग्रहटीका प्रभृति।

इन ग्रन्थो मे से अनेक ग्रन्थो के उद्धरण भी टीका मे प्रयुक्त हुए हैं।

वृत्ति के प्रारम्भ मे मगल के प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए आगे के सूत्रो मे तन्तु और पट के सम्बन्ध मे भी विचार-चर्चा की गई है और माण्डलिक, महामाण्डलिक, ग्राम, निगम, खेट, कर्बट, मडम्ब, पत्तन, द्रोणमुख, आकर, आश्रम, सम्वाध, राजधानी प्रभृति मानव-वस्तियो के स्वरूप पर चिन्तन किया गया है। वृत्ति मे ज्ञानियो के भेदो पर चिन्तन करते हुए यह बताया है कि सिद्धप्राभृत मे अनेक ज्ञानियो का उल्लेख है। नरकावासो के सम्बन्ध मे बहुत ही विस्तार से प्रकाश डाला है और क्षेत्रसमासटीका, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिटीका के अवलोकन का सकेत किया है। नारकीय जीवो की शीत और उष्ण वेदना पर विचार करते हुए प्रावृट्, वर्षारात्र, शरद्, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म—इन छ ऋतुओ का वर्णन किया है। प्रथम शरद् कार्तिक मास को बताया गया है। ज्योतिष्क देवो के विमानो पर चिन्तन करते हुए विशेष जिज्ञासुओ को चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति एव सग्रहणी टीकाएँ देखने का निर्देश किया गया है। एकादश अलकारो का भी इसमे वर्णन है और राजप्रश्नीय में उल्लिखित ३२ प्रकार की नाट्यविधि का भी सरस वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत वृत्ति को आचार्य ने 'विवरण' शब्द से व्यवहृत किया है और इस विवरण का ग्रन्थमान १६०० श्लोक प्रमाण है।

जीवाभिगम पर आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म० ने आगम-बत्तीसी के साथ हिन्दी अनुवाद किया वह अनुवाद भावानुवाद के रूप मे है।

इसके पश्चात् स्थानकवासी परम्परा के आचार्य श्री घासीलाल जी म० ने जीवाभिगम पर सस्कृत मे अपनी विस्तृत टीका लिखी। इस टीका का हिन्दी और गुजराती मे भी अनुवाद प्रकाशित हुआ।

इसके अतिरिक्त जीवाभिगम को सन् १८८३ मे मलयगिरि वृत्ति सहित गुजराती विवेचन के साथ रायबहादुर धनपतसिंह ने अहमदाबाद से प्रकाशित किया। देवचन्द लालभाईपुस्तकोद्धारक फण्ड, बम्बई से सन् १९१९ मे जीवाभिगम का मलयगिरि वृत्ति सहित प्रकाशन हुआ है। पर हिन्दी मे ऐसे प्रकाशन की आवश्यकता चिरकाल से अनुभव की जा रही थी जो अनुवाद सरल-सुगम और मूल विषय को स्पष्ट करने वाला हो। स्वर्गीय युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी ने जैन आगम प्रकाशन समिति का निर्माण किया। उस समिति के द्वारा अनेक मूर्धन्य मनीषियो के द्वारा आगमो का अनुवाद और विवेचन प्रकाशित हुआ। उसी क्रम मे प्रस्तुत जीवाभिगम का भी प्रकाशन हो रहा है। यह अत्यन्त आह्लाद का विषय है कि बहुत ही स्वल्प समय मे अनेक मनीषियो के सहयोग के कारण आगम-बत्तीसी का कार्य प्राय पूर्ण होने जा रहा है।

प्रस्तुत आगम का सम्पादन मेरे सुशिष्य श्री राजेन्द्र मुनि के द्वारा हो रहा है। राजेन्द्र मुनि एक युवा मुनि हैं। इसके पूर्व उन्होंने उत्तराध्ययन सूत्र का भी सुन्दर सम्पादन किया था और अब द्रव्यानुयोग का यह अपूर्व आगम सम्पादन कर अपनी आगमरुचि का परिचय दिया है। अनुवाद और विवेचन मूल आगम के भावो को सुस्पष्ट करने मे सक्षम हैं। प्रस्तुत सम्पादन जन-जन के मन को भाएगा और वे इस आगम का स्वाध्याय कर अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करेंगे, ऐसी आशा है।

मैं प्रस्तुत आगम पर पूर्व आगमो की प्रस्तावनाओ की तरह विस्तृत प्रस्तावना लिखना चाहता था पर सामाजिक कार्यों मे और भीड-भरे वातावरण मे चाहते हुए भी नही लिख सका। सक्षिप्त मे जो प्रस्तावना दी जा रही है, उससे भी पाठको को आगम की महत्ता का सहज परिज्ञान हो सकेगा। परम श्रद्धेय महामहिम राष्ट्रसन्त आचार्यसम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी म. की असीम कृपा मुझ पर रही है और परमादरणीय पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनिजी म. का हार्दिक आशीर्वाद मेरे साथ है। इन महान् पुरुषो की कृपा के कारण ही मैं आज कुछ भी प्रगति कर सका हूँ। इनकी सदा-सर्वदा कृपा बनी रहे, इनकी निर्मल छत्र-छाया मे हम अपना आध्यात्मिक समुत्कर्ष करते रहें, यही मगल-मनीषा।

मन्दसौर. दिनांक 10-3-89

—उपाचार्य देवेन्द्र मुनि

विषयानुक्रम

जीवाजीवाभिगमसुत्तं

जीवाजीवाभिगमसूत्र

प्राथमिक उपोद्घात

जगत् हितकर, विश्ववद्य देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा ने जगज्जीवो को ससार-सागर से पार करने, उन्हे सामारिक आधि-व्याधि-उपाधियो से उवारने के लिए एव अनादिकालीन कर्मवन्धनो से छुटकारा दिलाकर मुक्ति के अनिर्वचनीय सुख-सुधा का पान कराने हेतु प्रवचन का प्ररूपण किया है ।[1] यह प्रवचन[2] समार के प्राणियो को भवोदधि से तारने वाला होने से 'तीर्थ' कहलाता है । प्रवचन तीर्थ है और तीर्थ प्रवचन है । प्रवचनरूप तीर्थ की रचना करने के कारण भगवान् अरिहत तीर्थंकर कहलाते हैं । प्रवचन द्वादशाग गणिपिटक रूप है । प्रवाह की अपेक्षा से प्रवचन अनादि अनन्त होने पर भी विवक्षित तीर्थंकर की अपेक्षा वह आदिमान् है । अत 'नमस्तीर्थाय' कहकर तीर्थंकर परमात्मा भी अनादि अनन्त तीर्थ को नमस्कार करते हैं । द्वादशाग गणिपिटक मे उपयोगयुक्त रहने के कारण चतुर्विध श्रमणसघ भी तीर्थ या प्रवचन कहा जाता है ।[3]

तीर्थंकर प्ररूपित यह प्रवचन द्वादशागरूप है । तीर्थंकर परमात्मा अर्थरूप से इसका निरूपण करते हैं और विशिष्ट मति वाले गणधर सूत्ररूप मे उसे ग्रथित करते है ।[4]

सर्वज्ञ सर्वदर्शी तीर्थंकर परमात्मा द्वारा उपदिष्ट और विशिष्टमतिसम्पन्न चार ज्ञान, चौदह पूर्वो के धारक गणधरो द्वारा गुम्फित यह द्वादशागी श्रुत-पुरुष के अगरूप है । जो इस द्वादशागी से अविरुद्ध और श्रुतस्थविरो द्वारा रचित हो वह श्रुत-पुरुष के उपागरूप है। इस अपेक्षा से श्रुत-साहित्य अगप्रविष्ट और अनगप्रविष्ट के रूप से दो प्रकार का हो जाता है ।

जो गणधरो द्वारा रचित हो, जो प्रश्न किये जाने पर उत्तररूप हो, जो सर्व तीर्थंकरो के तीर्थ मे नियत हो वह श्रुत अगप्रविष्टश्रुत है । आचाराग से लगाकर दृष्टिवाद पर्यन्त वारह अग, अगप्रविष्टश्रुत हैं ।

जो श्रुतस्थविरो द्वारा रचित हो, जो अप्रश्नपूर्वक मुक्तव्याकरण रूप हो तथा जो सर्व तीर्थंकरो के तीर्थ मे अनियत रूप हो वह अनगप्रविष्टश्रुत है। जैसे औपपातिक आदि वारह उपाग और मूल, छेदसूत्र आदि ।[5]

---

१ जगजीवरक्खणदयट्ठयाए भगवया पावयण कहिय । —प्रश्नव्याकरण

२. प्रगत जीवादिपदार्थव्यापक, प्रधान, प्रशस्त, आदौ वा वचन प्रवचनम् द्वादशाग गणिपिटकम् ।
—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १ टीका

३ गणिपिटकोपयोगानन्यत्वाद् वा चतुर्विधश्रीश्रमणसघोऽपि प्रवचनमुच्यते ।
—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १ टीका

४ अत्थ भासइ अरहा सुत्त गथति गणहरा निउण ।

५. गणधर थेरकय वा आएसा मुक्कवागरणओ वा ।
धुव-चलविसेसओ वा अगाणगेसु नाणत्त ।। —विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ५५०

प्रस्तुत जीवाजीवाभिगमसूत्र तृतीय उपाग है । स्थानाग नामक तीसरे अग का यह उपाग है । यह श्रुतस्थविरो द्वारा सदृब्ध (रचित) है । अगबाह्यश्रुत कालिक और उत्कालिक के भेद से दो प्रकार के है । जो श्रुत अस्वाध्याय को टालकर दिन-रात के चारो प्रहर मे पढे जा सकते है वे उत्कालिक हैं, यथा दशवैकालिक आदि और जो दिन और रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहर मे ही पढे जाते हैं वे कालिकश्रुत हैं, यथा उत्तराध्ययन आदि । प्रस्तुत जीवाजीवाभिगमसूत्र उत्कालिकसूत्र है ।[1]

जीवाजीवाभिगम-अध्ययन एक प्रवृत्ति है और कण्टकशाखा मर्दन की तरह निरर्थक प्रवृत्ति बुद्धिमानो की नही होती । अतएव ग्रन्थ के आरम्भ मे प्रयोजन, अभिधेय और सम्वन्ध के साथ मगल अवश्य ही बताया जाना चाहिए ।[2]

१ **प्रयोजन**—प्रयोजन दो प्रकार का है—(१) अनन्तरप्रयोजन और (२) परम्परप्रयोजन । पुन प्रयोजन दो प्रकार का है—(१) कर्तृ गतप्रयोजन और (२) श्रोतृगतप्रयोजन ।

कर्तृ गतप्रयोजन—प्रस्तुत जीवाजीवाभिगम अध्ययन द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से कर्तृ रहित है, क्योकि वह शाश्वत है, नित्य है । आगम मे कहा है—'यह द्वादशाग गणिपिटक पूर्वकाल मे नही था, ऐसा नही, वर्तमान मे नही है, ऐसा भी नही, भविष्य मे नही होगा, ऐसा भी नही । यह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है ।[3] नित्य वस्तु का कोई कर्त्ता नही होता ।

पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा इसके कर्त्ता अर्थापेक्षया अर्हन्त हैं और सूत्रापेक्षया गणधर है । अर्थरूप आगम तो नित्य है किन्तु सूत्ररूप आगम अनित्य है । अत· सूत्रकार का अनन्तर प्रयोजन जीवो पर अनुग्रह करना है और परम्पर प्रयोजन अपवर्गप्राप्ति है ।

यहाँ यह शका की जा सकती है कि अर्थरूप आगम के प्रणेता श्री अर्हन्त भगवान् का अर्थ-प्रतिपादन का क्या प्रयोजन है ? वे तो कृतकृत्य हो चुके है, उनमे प्रयोजनवत्ता कैसे घटित हो सकती है ?

इसका समाधान यह है कि यद्यपि तीर्थंकर परमात्मा कृतकृत्य हो चुके है, अतएव उनमे प्रयोजनवत्ता घटित नही होती तदपि वे तीर्थंकर नामकर्म के उदय से अर्थ प्रतिपादन मे प्रवृत्त होते है । जैसा कि कहा गया है—'तीर्थंकर नामकर्म का वेदन कैसे होता है ? अग्लान भाव से धर्मदेशना देने से तीर्थंकर नामकर्म का वेदन होता है ।'[4]

---

१ उक्कालिय अणेगविह पण्णत्त तजहा—दसवेयालिय, कप्पिया, कप्पिय, चुल्लकप्पसुय महाकप्पसुय, उववाइय रायपसेणिय जीवाभिगमो । —नदीसूत्र

२. प्रेक्षावता प्रवृत्त्यर्थं फलादि त्रितय स्फुटम् ।
मगलञ्चैव शास्त्रादौ वाच्यमिष्टार्थसिद्धये ॥ —जीवा. मलयगिरि टीका

३ एय दुवालसग गणिपिडग न कया वि नासी, न कयाइ वि न भवइ, न कया वि न भविस्सइ । धुव णिच्च सासय । —नन्दीसूत्र

४. त च कह वेइज्जइ ? अगिलाए धम्मदेसणाए । —आवश्यकनिर्युक्ति

श्रोतृगतप्रयोजन—श्रोता का अनन्तर प्रयोजन विवक्षित अध्ययन के अर्थ को जानना है और उसका परम्पर-प्रयोजन नि श्रेयस् पद की प्राप्ति है। विवक्षित अर्थ को समझने के पश्चात् सयम मे श्रोता की प्रवृत्ति होगी और सयम-प्रवृत्ति से सकल कर्मो का क्षय करके वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन को प्रारम्भ करने का प्रयास प्रयोजनयुक्त है, निष्प्रयोजन नही।

२ **अभिधेय**—प्रस्तुत शास्त्र का अभिधेय (विषय) जीव और अजीव के स्वरूप को प्रतिपादित करना है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है। जीवो और अजीवो का अभिगम अर्थात् परिच्छेद-ज्ञान जिसमे हो या जिसके द्वारा हो वह जीवाजीवाभिगम[1] अध्ययन है। सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र को सार्थक नाम से विभूषित किया है।

३. **सम्बन्ध**—प्रस्तुत शास्त्र मे दो प्रकार का सम्बन्ध है—(१) उपायोपेयभावसम्बन्ध और (२) गुरुपर्वक्रमरूप सम्बन्ध। तर्क का अनुसरण करने वालो की अपेक्षा से उपायोपेयभावसम्बन्ध है। नय तथा वचनरूप प्रकरण उपाय है और उसका परिज्ञान उपेय है।

गुरुपर्वक्रमरूप सम्बन्ध केवल श्रद्धानुसारियो की अपेक्षा से है। अर्थ की अपेक्षा यह जीवाजीवाभिगम तीर्थंकर परमात्मा ने कहा है और सूत्र की अपेक्षा द्वादशागो मे गणधरो ने कहा है। इसके पश्चात् मन्दमतिजनो के हित के लिए अतिशय ज्ञान वाले चतुर्दश-पूर्वधरो ने स्थानाग नाम तृतीय अग से लेकर पृथक् अध्ययन के रूप मे इस जीवाजीवाभिगम का कथन किया और उसे व्यवस्थापित किया है। अत यह तृतीय उपागरूप मे कहा गया है। ऐसे ही सम्बन्धो का विचार कर सूत्रकार ने 'थेरा भगवतो पण्णवइसु' कहा है।

४. **मंगल**—प्रस्तुत अध्ययन सम्यग्ज्ञान का हेतु होने से तथा परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला होने से स्वयमेव मगलरूप है, तथापि 'श्रेयासि बहुविघ्नानि' के अनुसार विघ्नो की उपशान्ति के लिए तथा शिष्य की बुद्धि मे मागलिकता का ग्रहण कराने के लिए शास्त्र मे मगल करने की परिपाटी है। इस शिष्टाचार के पालन मे ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त मे मगलाचरण किया जाता है। आदिमगल का उद्देश्य ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति और शास्त्रार्थ मे होने वाले विघ्नो से पार होना है। मध्यमगल उसकी स्थिरता के लिए है तथा शिष्य-प्रशिष्य परम्परा तक ग्रन्थ का विच्छेद न हो, इसलिए अन्तिम मगल किया जाता है।[2]

प्रस्तुत अध्ययन मे 'इह खलु जिणमय' आदि मगल है। जिन नाम का उत्कीर्त्तन मगल रूप है।

---

१ जीवानामजीवानामभिगम परिच्छेदो यस्मिन् तज्जीवाजीवाभिगम नाम्ना।

२. त मगलमाईए मज्झे पज्जतए य सत्थस्स।
पढम सत्थत्थाविग्घपारगमणाय निद्दिट्ठ ॥
तस्सेव य थेज्जत्थ मज्झिमय अतिमपि तस्सेव।
अव्वोच्छित्ति निमित्त सिस्सपसिस्साइवसस्स ॥ विशेषा भाष्य

द्वीप-समुद्र आदि के स्वरूप का कथन मध्यमंगल है। क्योंकि निमित्तशास्त्र में द्वीपादि को परम मंगलरूप में माना गया है। जैसा कि कहा है—'जो ज पसत्थं अत्थ पुच्छइ तस्स अत्थसंपत्ती।'

'दसविहा सव्वे जीवा' यह अन्तिम मंगल है। सब जीवों के परिज्ञान का हेतु होने से इसमें मांगलिकता है।

अथवा सम्पूर्ण शास्त्र ही मंगलरूप है। क्योंकि वह निर्जरा का हेतुभूत है। जैसे तप निर्जरा का कारण होने से मंगलरूप है। शास्त्र सम्यग्ज्ञानरूप होने से निर्जरा का कारण होता है। क्योंकि कहा गया है कि 'अज्ञानी जिन कर्मों को बहुत से करोड़ों वर्षों में खपाता है, उन्हें मन-वचन-काया से गुप्त ज्ञानी उच्छ्वासमात्र काल में खपा डालता है।'[1]

इस प्रकार प्रयोजनादि तीन तथा मंगल का कथन करने के पश्चात् अध्ययन का प्रारम्भ किया जाता है।

□□

---

१. जं अण्णाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं।
तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेणं॥

प्रथम प्रतिपत्ति

मंगलमय प्रस्तावना

१. इह खलु जिणमय, जिणाणुमय, जिणाणुलोम, जिणप्पणीय, जिणपरूविय, जिणक्खायं, जिणाणुचिन्नं, जिणपण्णत्तं, जिणदेसिय, जिणपसत्थ, अणुव्वीइय त सद्दहमाणा, तं पत्तियमाणा, तं रोयमाणा थेरा भगवतो जीवाजीवाभिगमणाममज्झयण पण्णवइंसु।

[१] इस मनुष्य लोक मे अथवा जैन प्रवचन मे तीर्थंकर परमात्मा के सिद्धान्तरूप द्वादशाग गणिपिटक का, जो अन्य सब तीर्थकरो द्वारा अनुमत है, जिनानुकूल है, जिन-प्रणीत है, जिनप्ररूपित है, जिनाख्यात है, जिनानुचीर्ण है, जिनप्रज्ञप्त है, जिनदेशित है, जिन प्रशस्त है, पर्यालोचन कर उस पर श्रद्धा करते हुए, उस पर प्रतीति करते हुए, उस पर रुचि रखते हुए स्थविर भगवतो ने जीवाजीवाभिगम नामक अध्ययन प्ररूपित किया।

विवेचन—इस प्रथम सूत्र मे मगलाचरण की शिष्टपरिपाटी का निर्वाह करते हुए ग्रन्थ की प्रस्तावना बताई गई है। विशिष्ट मतिसम्पन्न चतुर्दशपूर्वधर श्रुतस्थविर भगवतो ने तीर्थंकर परमात्मा के द्वादशागीरूप गणिपिटक का भलीभांति पर्यालोचन एव अनुशीलन कर, परम सत्य के रूप मे उस पर श्रद्धा, प्रतीति एव रुचि करके जीवाजीवाभिगम नामक अध्ययन का प्ररूपण किया। सूत्र मे आया हुआ 'जिणमय'—जैनसिद्धान्त पद विशेष्य है और 'जिणाणुमय' से लगाकर 'जिणपसत्थ' तक के पद 'जिणमय' के विशेषण हैं। इन विशेषणो के द्वारा सूत्रकार नेजैन सिद्धान्त की महिमा एव गरिमा का वर्णन किया है। ये सब विशेषण 'जैनमत' की अलग-अलग विशेषताओ का प्रतिपादन करते है। प्रत्येक विशेषण की सार्थकता इस प्रकार है—

जिणाणुमय—यह जैनसिद्धान्त जिनानुमत है। वर्तमानकालीन जैनसिद्धान्त चरम तीर्थंकर जिनशासननायक वर्तमान तीर्थाधिपति श्री वर्धमान स्वामी के आधिपत्य मे गतिमान् हो रहा है। राग-द्वेपादि अन्तरग अरियो को जीतकर केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्त करने के पश्चात् जिनेश्वर श्री वर्धमान (महावीर) स्वामी ने आचाराग से लेकर दृष्टिवाद पर्यन्त द्वादशाग का प्ररूपण किया। यह द्वादशागी ही 'जिनमत' है। प्रभु महावीर का यह 'जिनमत' सार्वभौम सत्य होने के कारण भूत-वर्तमान-भविष्य के सब तीर्थकरो के द्वारा अनुमत है। भूतकाल मे जितने ऋषभादि तीर्थंकर हुए है और भविष्य मे जो पद्मनाभ आदि तीर्थकर होगे तथा वर्तमान मे जो सीमधर स्वामी आदि तीर्थंकर हैं, उन सबके द्वारा यह अनुमोदित और मान्य है। शाश्वत सत्य सदा एकरूप होता है। उसमे कोई विसगति या भिन्नता नही होती। इस कथन द्वारा यह प्रवेदित किया गया है—सब तीर्थंकरो के वचनो मे अविसवादिता होने के कारण एकरूपता होती है।

जिणाणुलोमं—यह जैनमत जिनानुलोम है अर्थात् जिनो के लिए अनुकूल है। यहाँ 'जिन' से तात्पर्य अवधिजिन, मन पर्यायजिन और केवलजिन से है।[1] यह जैनमत अवधिजिन आदि के लिए

---

१ तओ जिणा पण्णत्ता त जहा—ओहिणाणजिणे, मणपज्जवणाणजिणे, केवलणाणजिणे।
—स्थानाग, ३ स्थान, ४ उद्दे

अनुकूल है। तात्पर्य यह है कि इस सिद्धान्त के द्वारा जिनत्व की प्राप्ति होती है। यथोक्त जिनमत का आसेवन करने से साधुवर्ग अवधिज्ञान, मन.पर्यवज्ञान और केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। अतएव जिनमत को जिनानुलोम विशेषण से अलंकृत किया गया है।

जिणप्पणीयं—यह जैनसिद्धान्त जिनप्रणीत है। अर्थात् वर्तमान तीर्थाधिपति श्री वर्धमान स्वामी द्वारा कथित है। केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर श्री वर्धमान स्वामी ने बीजबुद्धि आदि परम गुण कलित गौतमादि गणधरो को समस्तार्थ-संग्राहक मातृकापदत्रय 'उप्पन्ने इ वा, विगमे इ वा, धुवे-इ वा' का कथन किया। इन तीन मातृका पदों का अवलम्बन लेकर गौतमादि गणधरों ने द्वादशागी की रचना की। अतएव यह जिनमत जिनप्रणीत है। इस कथन से यह बताया गया है कि आगम सूत्र की अपेक्षा पौरुपेय ही है, अपौरुपेय नहीं। आगम शब्दरूप है और पुरुष-व्यापार के बिना वचनो का उच्चारण नही हो सकता। पुरुष-व्यापार के बिना शब्द आकाश मे ध्वनित नहीं होते। मीमांसक मत वाले आगम को अपौरुषेय मानते हैं। उनकी यह मान्यता इस विशेषण द्वारा खण्डित हो जाती है।

जिणपरूवियं—यह जिनमत जिनेश्वरो द्वारा प्ररूपित किया गया है। इस विशेषण द्वारा यह बताया गया है कि भगवान् वर्धमान स्वामी ने इस सिद्धान्त का इस प्रकार प्ररूपण किया कि श्रोता-जन उसके तत्त्वार्थ को भलीभाँति समझ सकें।

यहाँ कोई शंका कर सकता है कि यह अध्ययन या प्रकरण अविज्ञान अर्थ वाला ही रहने वाला है चाहे वह सर्वज्ञ से ही क्यो न सुना जाय। क्योंकि सर्वज्ञ की विवक्षा का प्रत्यक्ष द्वारा ग्रहण नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति मे उस विवक्षा के विषयभूत शब्द के अर्थ मे प्रत्यय या विश्वास कैसे जमेगा? जैसे म्लेच्छ व्यक्ति आर्य व्यक्ति के भाषण की नकल मात्र कर सकता है, उसके अर्थ को नही समझ सकता, इसी तरह श्रोता भी सर्वज्ञ के वचनो के अर्थ को नही समझ सकता है।[1]

उक्त शंका का समाधान यह है कि—यद्यपि वक्ता की विवक्षा अप्रत्यक्ष होती है फिर भी वह अनुमानादि के द्वारा जान ली जाती है। विवक्षा को जानकर संकेत की सहायता से श्रोता को शब्द के अर्थ का ज्ञान हो ही जाता है। यदि ऐसा न हो तो अनादि शब्द-व्यवहार ही ध्वस्त हो जायेगा। शब्द-व्यवहार की कोई उपयोगिता नही रहेगी। बालक भी शब्द से अर्थ की प्रतीति कर ही लेता है। अनेक अर्थ वाले सैन्धव आदि शब्द भी भगवान् के द्वारा सकेतित होकर प्रसंग और औचित्य आदि के द्वारा नियत अर्थ को बताते ही हैं। अत. अनेकार्थ वाले शब्दो से भी यथास्थित अर्थ का बोध होता है।

भगवान् इस प्रकार से तत्त्व प्ररूपित करते हैं जिससे श्रोता को सम्यग् बोध हो जाय। भगवान् सबके हितैषी हैं, वे अविप्रतारक हैं अतएव अन्यथा समझने वाले को उसकी गलती समझाकर सत्य अर्थ की प्रतीति कराते हैं। वे अन्यथा समझने वाले के प्रति उपेक्षा भी नही करते, क्योंकि वे तीर्थ-प्रवर्तन मे प्रवृत्त होते हैं। अतएव भगवान् के वचनो से गणधरों को साक्षात् और शेष श्रोताओं को परम्परा से यथावस्थित अर्थ की प्रतीति होती है। अत. आगम अविज्ञात अर्थवाला नही है।

---

१. आर्याभिप्रायमज्ञात्वा म्लेच्छ वाग्योगतुल्यता।
सर्वज्ञादपि हि श्रोतुस्तदन्यस्यार्थदर्शने ॥

जिणक्खायं—यह जिनमत जिनेश्वर द्वारा साक्षात् वचनयोग द्वारा कहा गया है। कतिपय मनीषियों का कहना है कि तीर्थंकर भगवान् प्रवचन के लिए प्रयास नही करते हैं किन्तु उनके प्रकृष्ट पुण्य प्राग्भार से श्रोताजनो को वैसा आभास होता है।[1] जैसे चिन्तामणि मे स्वय कोई रग नही होता किन्तु उपाधि-ससर्ग के कारण वह रगवाला दिखाई देता है। वैसे ही तीर्थंकर प्रवचन का प्रयास नही करते फिर भी उनके पुण्यप्रभाव से श्रोताओ को ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् तीर्थंकर ऐसा-ऐसा प्ररूपण कर रहे हैं।

यह कथन उचित नही है। इस मत का खण्डन करने के लिए 'जिनाख्यात' विशेषण दिया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि तीर्थंकर भगवान् तीर्थंकर नामकर्म के उदय से साक्षात् वचन-व्यापार द्वारा प्रवचन करते हैं। साक्षात् वचन-व्यापार के उपलब्ध होने पर भी यदि आधिपत्यमात्र से श्रोताओ को वैसा प्रतीत होना माना जाय तो अतिप्रसंग होगा। अन्यत्र भी ऐसी कल्पना की जा सकेगी। वैसी स्थिति मे प्रत्यक्षविरोध होगा। अत उक्त मान्यता तर्क और प्रमाण से सम्मत नही है।

जिणाणुचिण्णं—यह जिनमत गणधरो द्वारा समाधि रूप से परिणमित हुआ है। यहाँ 'जिन' शब्द से गणधरो का अभिप्राय समझना चाहिए। गणधर ऐसी शक्ति से सम्पन्न होते है कि उन्हे हित की प्राप्ति से कोई रोक नही सकता। वे इस जिनमत का अर्थ हृदयगम करके अनासक्ति द्वारा समभाव की प्राप्ति करके समाधिदशा का अनुभव करते हैं। गणधरो द्वारा आसेवित होने से जिनमत को 'जिणाणुचिण्ण' कहा गया है। अथवा अतीतकाल मे सामान्यकेवली आदि जिन इसका आसेवन कर जिनत्व को प्राप्त हुए हैं। इस अपेक्षा से भी जिणाणुचिण्ण की सगति समझनी चाहिए।

जिणपण्णत्तं—यह जिनमत गणधरो द्वारा प्रज्ञप्त है। पूर्वोक्त समाधिभाव से सम्प्राप्त अतिशय-विशेष के कारण गणधरो मे ऐसी विशिष्ट शक्ति आ जाती है जिसके प्रभाव से वे सूत्र के रूप मे आचारादि अगोपागादि भेद वाले श्रुत की रचना कर देते हैं। इसलिए यह जिनमत सूत्ररूप से जिनप्रज्ञप्त अर्थात् गणधरो द्वारा रचित है। आगम में कहा गया है—'तीर्थंकर अर्थरूप से कथन करते हैं और गणधर उसे सूत्ररूप से गुम्फित करते हैं। इस तरह जिनशासन के हित के लिए सूत्र प्रवर्तित होता है'।[2]

जिणदेसियं—यह जिनमत गणधरो द्वारा भी हितमार्ग मे प्रवृत्ति करने वाले योग्य जनो को ही दिया गया है। इससे यह ध्वनित होता है कि योग्यजनो को ही सूत्र-सिद्धान्त का ज्ञान दिया जाना चाहिए। यहाँ 'जिन' शब्द का अर्थ हितमार्ग मे प्रवृत्ति करने वाले विनेयादि के लिए प्रयुक्त हुआ है।[3] जो श्रोताजन हितमार्ग से अभिमुख हो और अहितमार्ग से विमुख हो, उन्ही को यह श्रुत दिया जाना चाहिए। सुधर्मा गणधर ने ऐसे ही योग्य विनेय श्री जम्बूस्वामी को यह श्रुत प्रदान किया।

---

१ तदाधिपत्यादाभास सत्वानामुपजायते।
स्वय तु यत्नरहितश्चिन्तामणिरिव स्थित ॥

२. अत्थ भासइ अरहा सुत्त गथति गणहरा निउण।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्त पवत्तइ ॥

३. जिना इह हितप्रवृत्तगोत्रविशुद्धोपायाभिमुखापायविमुखादय परिगृह्यन्ते। —मलयगिरि वृत्ति।

शका की जा सकती है कि श्रुत—सिद्धान्त प्रकृति-सुन्दर है तो क्यो नही सभी को दिया जाता है ? इसका समाधान है कि अयोग्य व्यक्तियो के प्रकृति से ही असुन्दर होने से अनर्थो की सभावना रहती है। प्राय: देखा जाता है कि पात्र की असुन्दरता के कारण प्रकृति से सुन्दर सूर्य की किरणें उलूकादि के लिए अनर्थकारी ही होती हैं। कहा है कि जो जिसके लिए हित के रूप मे परिणत हो उसी का प्रयोग किया जाना चाहिए। मछली के लिए काटे मे लगा गल आहार होने पर भी अनर्थ के लिए ही होता है।[1]

जिणपसत्थं—यह जिनमत योग्य एवं पात्र व्यक्तियो के लिए कल्याणकारी है। यहां भी 'जिन' शब्द का अर्थ हितमार्ग मे प्रवृत्ति करने वाले और अहितमार्ग से विमुख रहने वाले जनो के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैसे नीरोग के लिए पथ्याहार भविष्य मे होने वाले रोगो को रोकने वाला होने से हितावह होता है, इसी तरह यह जिनमत हितमार्ग मे प्रवृत्त और अहितमार्ग से निवृत्त जनो के लिए हितावह है। इसका सम्यग् रूप से आसेवन करने से यह जिनमत कल्याणकारी और हितावह सिद्ध होता है।

उक्त विशेषणो से विशिष्ट 'जिनमत' को औत्पत्तिकी आदि बुद्धियो द्वारा सम्यक् पर्यालोचन करके, उस पर श्रद्धा, प्रतीति एव रुचि रखने वाले स्थविर भगवतो ने 'जीवाजीवाभिगम' इस सार्थक नाम वाले अध्ययन का प्ररूपण किया। यद्यपि काल-दोष से बुद्धि आदि गुणो का ह्रास हो रहा है, फिर भी यह समझना चाहिए कि जिनमत का थोड़ा भी ज्ञान एव आसेवन भव का छेदन करने वाला है। ऐसा मानकर कोमल चित्त से जिनमत पर श्रद्धा रखनी चाहिए।

स्थविर भगवतो से अभिप्राय उन आचार्यो से है जिनका ज्ञान और चारित्र परिपक्व हो चुका है। धर्मपरिणति से जिनकी मति का असमजस दूर हो गया है और श्रुतरूपी ऐश्वर्य के योग से जिन्होंने कषायो को भग्न कर दिया है।

इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र मे गुरुपर्वक्रमलक्षण सम्बन्ध और अभिधेय आदि का कथन किया गया है।

स्वरूप और प्रकार

२. से किं तं जीवाजीवाभिगमे ?
जीवाजीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
जीवाभिगमे य अजीवाभिगमे य।

[२] जीवाजीवाभिगम क्या है ?
जीवाजीवाभिगम दो प्रकार का कहा गया है,
वह इस प्रकार—१ जीवाभिगम और २ अजीवाभिगम।

---

१. पउजियव्व धीरेण हिय ज जस्स सव्वहा।
आहारो वि हु मच्छम्म न पसत्थो गलो भुवि॥

३ से किं तं अजीवाभिगमे ?

अजीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते—

तं जहा—१ रूवि-अजीवाभिगमे य २ अरूवि-अजीवाभिगमे य ।

[३] अजीवाभिगम क्या है ?

अजीवाभिगम दो प्रकार का कहा गया है—

वह इस प्रकार—१ रूपी-अजीवाभिगम और २ अरूपी-अजीवाभिगम ।

४. से किं तं अरूवि-अजीवाभिगमे ?

अरूवि-अजीवाभिगमे दसविहे पण्णत्ते—

तं जहा—धम्मत्थिकाए एवं जहा पण्णवणाए[1] जाव (अद्धासमए), से त अरूवि-अजीवाभिगमे ।

[४] अरूपी-अजीवाभिगम क्या है ?

अरूपी-अजीवाभिगम दस प्रकार का कहा गया है—

जैसे कि—१ धर्मास्तिकाय से लेकर १० अद्धासमय पर्यन्त जैसा कि प्रज्ञापनासूत्र मे कहा गया है । यह अरूपी-अजीवाभिगम का वर्णन हुआ ।

५. से किं तं रूवि-अजीवाभिगमे ?

रूवि-अजीवाभिगमे चउव्विहे पण्णत्ते—

तं जहा—खंधा, खंधदेसा, खंधप्पएसा, परमाणुपोग्गला ।

ते समासतो पंचविहा पण्णत्ता,

तं जहा—वण्णपरिणया, गंधपरिणया, रसपरिणया, फासपरिणया, संठाणपरिणया एवं जहा पण्णवणाए[2] (जाव लुक्ख फास-परिणया वि) । से तं रूवि-अजीवाभिगमे; से तं अजीवाभिगमे ।

[५] रूपी-अजीवाभिगम क्या है ?

रूपी-अजीवाभिगम चार प्रकार का कहा गया है—

वह इस प्रकार—स्कध, स्कध का देश, स्कध का प्रदेश और परमाणुपुद्गल ।

वे सक्षेप से पाच प्रकार के कहे गये हैं—

जैसा कि—१ वर्णपरिणत, २ गधपरिणत, ३ रसपरिणत, ४ स्पर्शपरिणत और ५ सस्थान-परिणत । इस प्रकार जैसा प्रज्ञापना मे कहा गया है वैसा कथन यहाँ भी समझना चाहिए । यह रूपी-अजीव का कथन हुआ । इसके साथ ही अजीवाभिगम का कथन भी पूर्ण हुआ ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे जिज्ञासु प्रश्नकार ने प्रश्न किये हैं और गुरु—आचार्य ने उनके उत्तर दिये है । इससे यह ज्ञापित किया गया है कि यदि मध्यस्थ, बुद्धिमान् और तत्त्वजिज्ञासु प्रश्नकर्त्ता प्रश्न करे तो ही उसके समाधान हेतु भगवान् तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट तत्त्व की प्ररूपणा करनी चाहिए, अन्य अजिज्ञासुओ के समक्ष नही ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र ५

२ प्रज्ञापनासूत्र ५

इन सूत्रो मे सामान्य रूप से प्रश्न और उत्तर दिये गये है । इनके मूलपाठ मे किसी गौतमादि विशिष्ट प्रश्नकर्त्ता का उल्लेख नही और न ही उत्तर मे गौतम आदि सबोधन है । इसका तात्पर्य यह है कि सूत्र-साहित्य का अधिकाश भाग गणधरो के प्रश्न और भगवान् वर्धमान स्वामी के उत्तर रूप मे रचा गया है और थोडा भाग ऐसा है जो अन्य जिज्ञासुओ द्वारा पूछा गया है और स्थविरो द्वारा उसका उत्तर दिया गया है । पूरा का पूरा श्रुत-साहित्य गणधर-पृष्ट और भगवान् द्वारा उत्तरित ही नही है । प्रस्तुत सूत्र भी सामान्य तथा अन्य जिज्ञासुओ द्वारा पृष्ट और स्थविरो द्वारा उत्तरित है ।

प्रथम प्रश्न मे जीवाजीवाभिगम का स्वरूप पूछा गया है । उत्तर के रूप मे उसके भेद बताकर स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है । जीवाजीवाभिगम जीवाभिगम और अजीवाभिगम स्वरूप वाला है । अभिगम का अर्थ परिच्छेद, बोध या ज्ञान है । जीवद्रव्य का ज्ञान जीवाभिगम है और अजीव द्रव्यो का ज्ञान अजीवाभिगम है । इस विश्व में मूलत दो ही तत्त्व हैं—जीव तत्त्व और अजीव तत्त्व । अन्य सब इन दो ही तत्त्वो का विस्तार है । ये दोनो मूल तत्त्व द्रव्य की अपेक्षा तुल्य बल वाले है, यह ध्वनित करने के लिए दोनो पदो मे 'च' का प्रयोग किया गया है । जीव और अजीव दोनो भिन्न जातीय हैं और स्वतन्त्र अस्तित्व वाले हैं । जीव और अजीव तत्त्व का सही-सही भेद-विज्ञान करना अध्यात्मशास्त्र का मुख्य विषय है । इसीलिए शास्त्रो मे जीव और अजीव के स्वरूप के विषय मे विस्तार से चर्चा की गई है । जीव और अजीव के भेद-ज्ञान से ही सम्यग्दर्शन होता है और फिर सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्चारित्र से मुक्ति होती है । अतएव जीवाभिगम और अजीवाभिगम परम्परा से मुक्ति का कारण है ।

सूत्रकार ने पहले जीवाभिगम कहा और बाद मे अजीवाभिगम कहा है । 'यथोद्देशस्तथा निर्देश.' अर्थात् उद्देश के अनुसार ही निर्देश-कथन करना चाहिए—इस न्याय से पहले जीवाभिगम के विषय मे प्रश्नोत्तर किये जाने चाहिए थे, परन्तु ऐसा न करते हुए पहले अजीवाभिगम के विषय मे प्रश्नोत्तर किये गये हैं । इसका कारण यह है कि जीवाभिगम मे वक्तव्य-विषय बहुत है और अजीवाभिगम मे अल्पवक्तव्यता है । अत 'सूचिकटाह' न्याय से पहले अजीवाभिगम के विषय मे प्रश्नोत्तर हैं ।

अजीवाभिगम दो प्रकार का है—१ रूपी-अजीवाभिगम और अरूपी-अजीवाभिगम । सामान्यतया जिसमे रूप पाया जाय उसे रूपी कहते है । परन्तु यहाँ रूपी से तात्पर्य रूप, रस, गध, स्पर्श, चारो से है । उपलक्षण से रूप के साथ रसादि का भी ग्रहण हो जाता है, क्योकि ये चारो एक दूसरे को छोड़कर नही रहते । प्रत्येक परमाणु मे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श पाये जाते हैं ।[1] इससे इस बात का खण्डन हो जाता है कि रूप के परमाणु अलग ही है और रसादि के परमाणु सर्वथा अलग ही है । रूप-रसादि के परमाणुओ को सर्वथा अलग मानना प्रत्यक्षबाधित है । हम देखते है कि हार आदि के रूपपरमाणुओ मे स्पर्श की उपलब्धि भी साथ-साथ होती है और घृतादि रस के परमाणुओ मे रूप और गन्ध की भी उपलब्धि होती है । कपूर आदि के गन्ध परमाणुओ मे रूप की उपलब्धि भी निरन्तर रूप से होती है । इसलिए रूप, रस, गन्ध और स्पर्श परस्पर अभिन्न हैं । रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाले रूपी अजीव है और जिनमे रूप, रस, गन्ध, स्पर्श नही हैं वे अरूपी अजीव हैं ।

---

१ कारणमेव तदन्त्य सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणु ।
एकरसगधवर्णो द्विस्पर्श कार्यलिगश्च ।।

अरूपी अजीव इन्द्रियप्रत्यक्ष से नही जाने जाते हैं। वे आगमप्रमाण से जाने जाते हैं। अरूपी अजीव के दस भेद कहे गये हैं—१. धर्मास्तिकाय, २ धर्मास्तिकाय का देश, ३ धर्मास्तिकाय के प्रदेश, ४. अधर्मास्तिकाय, ५ अधर्मास्तिकाय का देश, ६ अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, ७. आकाशास्तिकाय, ८. आकाशास्तिकाय का देश, ९ आकाशास्तिकाय के प्रदेश और १० अद्धासमय। उक्त भेद प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार समझने हेतु सूत्रकार ने सूचना की है।

१ धर्मास्तिकाय—स्वत गतिपरिणत जीवों और पुद्‌गलो को गति करने मे जो सहायक होता है, निमित्तकारण होता है वह धर्मास्तिकाय है। जिस प्रकार मछली को तैरने मे जल सहायक होता है, वृद्ध को चलने मे दण्ड सहायक होता है, नेत्र वाले व्यक्ति के ज्ञान मे दीपक सहायक होता है, उसी तरह जीव और पुद्‌गलो की गति मे निमित्तकारण के रूप मे धर्मास्तिकाय सहायक होता है।[1] यह ध्यान देने योग्य है कि धर्मास्तिकाय जीव और पुद्‌गलो को गति करने मे प्रेरक नही होता है अपितु सहायक मात्र होता है। जैसे जल मछली को चलाता नही, दण्ड वृद्ध को चलाता नही, दीपक नेत्रवान् को दिखाता नही अपितु सहायक मात्र होता है। वैसे ही धर्मास्तिकाय गति मे प्रेरक न होकर सहायक होता है।

धर्मास्तिकाय की सिद्धि

धर्मास्तिकाय का अस्तित्व जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्य किन्ही भी दार्शनिको ने स्वीकार नहीं किया है। अतएव सहज जिज्ञासा होती है कि धर्मास्तिकाय के अस्तित्व मे क्या प्रमाण है?

इसका समाधान करते हुए जैन दार्शनिको और शास्त्रकारो ने कहा है कि—गतिशील जीवो और पुद्‌गलो की गति को नियमित करने वाले नियामक तत्त्व के रूप मे धर्मास्तिकाय को मानना आवश्यक है। यदि ऐसे किसी नियामक तत्त्व को न माना जाय तो इस विश्व का नियत सस्थान घटित नही हो सकता।

जड और चेतन द्रव्य की गतिशीलता अनुभवसिद्ध है। यदि वे अनन्त आकाश मे बेरोकटोक चलते ही जावे तो इस लोक का नियत सस्थान बन ही नही सकेगा। अनन्त पुद्‌गल और अनन्त जीव अनन्त आकाश मे बेरोकटोक सचार करते रहेगे तो वे इस तरह से अलग-थलग हो जावेंगे कि उनका मिलना और नियत सृष्टि के रूप मे दिखाई देना असम्भव हो जावेगा। इसलिए जीव और पुद्‌गलो की सहज गतिशीलता को नियमित करने वाला नियामक तत्त्व धर्मास्तिकाय स्वीकार किया गया है। धर्मास्तिकाय का अस्तित्व मानने पर ही लोक-अलोक का विभाग सगत हो सकता है।

सहज गतिस्वभाव वाले होने पर भी जीव और पुद्‌गल लोक से बाहर अलोक मे नही जा सकते। परमाणु जघन्य से परमाणुमात्र क्षेत्र से लगाकर उत्कृष्टत. चौदह राजुलोक प्रमाण क्षेत्र मे गति कर सकता है। इससे एक प्रदेशमात्र अधिक क्षेत्र मे उसकी गति नही हो सकती। इसका नियामक कौन है? आकाश तो इस गति का नियामक नही हो सकता क्योंकि आकाश तो अलोक मे भी समान रूप से है। अतएव जो इस गतिपरिणाम का नियामक है वह धर्मास्तिकाय है। जहाँ धर्मास्तिकाय है वही जीव-पुद्‌गलो की गति है और जहाँ धर्मास्तिकाय नही है वहाँ जीव-पुद्‌गलो की

---

१ परिणामी गतेर्धर्मो भवेत्पुद्‌गलजीवयो।
अपेक्षाकारणाल्लोके मीनस्येव जल सदा॥

गति नही होती। धर्मास्तिकाय लोकाकाश मे ही है इसीलिए जीवो और पुद्गलो की गति लोकाकाश तक ही सीमित है। इस प्रकार धर्मास्तिकाय के गतिसहायक रूप कार्य से उसके अस्तित्व की सिद्धि होती है।

सकल धर्मास्तिकाय एक अखण्ड अवयवी द्रव्य है, वह स्कन्धरूप है। उसके असख्यात प्रदेश अवयव रूप हैं। अवयवो का तथारूप सघात, परिणाम विशेष ही अवयवी है। जैसे तन्तुओ का आतान-वितान रूप सघातपरिणाम ही पट है।[1] उनसे भिन्न पट और कुछ नही है। अवयव और अवयवी कथचित् भिन्नाभिन्न हैं।

२. धर्मास्तिकाय का देश—धर्मास्तिकाय के बुद्धिकल्पित द्विप्रदेशात्मक, त्रिप्रदेशात्मक आदि विभाग को धर्मास्तिकाय का देश कहते है। वास्तव मे तो धर्मास्तिकाय एक अखण्ड द्रव्य है। उसके देश-प्रदेश आदि विभाग बुद्धिकल्पित ही हैं।

३ धर्मास्तिकाय के प्रदेश—स्कन्ध के ऐसे सूक्ष्म भाग को, जिसका फिर अश न हो सके, प्रदेश कहते हैं। 'प्रदेशा निर्विभागा भागा' अर्थात् स्कन्धादि के अविभाज्य निरश अश को प्रदेश कहते हैं। ये प्रदेश असख्यात हैं अर्थात् लोकाकाशप्रमाण हैं। ये प्रदेश केवल बुद्धि से कल्पित किये जा सकते हैं। वस्तुत. ये स्कन्ध से अलग नही हो सकते।

इस प्रकार धर्मास्तिकाय के तीन भेद बताये गये हैं—स्कन्ध, देश और प्रदेश।

प्रश्न हो सकता है कि धर्मद्रव्य को अस्तिकाय क्यो कहा गया है? इसका समाधान है कि—यहाँ 'अस्ति' का अर्थ प्रदेश है और 'काय' का अर्थ सघात या समुदाय है। प्रदेशो के समुदाय को अस्तिकाय कहा जाता है। धर्मद्रव्य असख्यात प्रदेशो का समूहरूप है अतएव उसे अस्तिकाय कहा जाता है।[2]

४. अधर्मास्तिकाय—जीव और अजीव की स्थिति मे सहायक होने वाला तत्त्व अधर्मास्तिकाय है।[3] जैसे वृक्ष की छाया पथिक के लिए ठहरने मे निमित्तकारण बनती है, इसी तरह अधर्मास्तिकाय जीव-पुद्गलो की स्थिति मे सहायक होता है।। यह भी स्थिति मे सहायक है, प्रेरक नही। जो भी स्थितिरूप भाव हैं वे सब अधर्मास्तिकाय के होने पर ही होते हैं। धर्मास्तिकाय की तरह यह भी एक अखण्ड अविभाज्य इकाई है। यह असंख्यातप्रदेशी और सर्वलोकव्यापी है।

५-६ अधर्मास्तिकाय का देश और प्रदेश—अधर्मास्तिकाय के तीन भेद हैं—स्कन्ध, देश और प्रदेश। सम्पूर्ण वस्तु को स्कन्ध कहते हैं। द्विप्रदेशी आदि बुद्धिकल्पित विभाग को देश कहते हैं और वस्तु से मिले हुए सबसे छोटे अंश को—जिनका फिर भाग न हो सके—प्रदेश कहते हैं।

---

१. तन्त्वादिव्यतिरेकेण, न पटाद्युपलम्भनम्।
तन्त्वादयोऽविशिष्टा हि, पटादिव्यपदेशिन॰॥

२ अस्त्यः प्रदेशास्तेषा काय संघात। 'गण काए य निकाए खधे वग्गे य रासी य' इति वचनात् अस्तिकाय प्रदेशसघात। —मलयगिरिवृत्ति

३. अहम्मो ठिइलक्खणो।

७-८-९. आकाशास्तिकाय के स्कन्ध, देश, प्रदेश—आकाश सर्वसम्मत अरूपी द्रव्य है। शाब्दिक व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमे अन्य सब द्रव्य अपने स्वरूप को छोडे बिना प्रकाशित—प्रतिभासित होते हैं, वह आकाश है अथवा जो सब पदार्थों मे अभिव्याप्त होकर प्रकाशित होता रहता है, वह आकाश है।[1] अवगाह प्रदान करना—स्थान देना आकाश का लक्षण है।[2] जैसे दूध शक्कर को अवगाह देता है, भीत खूटी को स्थान देती है।

आकाश द्रव्य सब द्रव्यो का आधार है। अन्य सब द्रव्य इसके आधेय है। यद्यपि निश्चयनय की दृष्टि से सब द्रव्य स्वप्रतिष्ठा हैं—अपने-अपने स्वरूप मे स्थित हैं किन्तु व्यवहारनय की दृष्टि से आकाश सब द्रव्यो का आधार है। प्रश्न हो सकता है कि जब आकाश सब द्रव्यो का आधार है तो आकाश का आधार क्या है ? इसका उत्तर यह है कि आकाश स्वप्रतिष्ठित है। वह किसी दूसरे द्रव्य के आधार पर नही है। आकाश से बडा या उसके सदृश और कोई द्रव्य है ही नही।

आकाश अनन्त है। वह सर्वव्यापक—लोकालोक व्यापी है। स्थूल दृष्टि से आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश। जिस आकाश-खण्ड मे धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्‌गल और जीवरूप पचास्तिकाय विद्यमान हैं वह लोकाकाश है। लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं। जहाँ आकाश ही आकाश है और कुछ नही, वह अलोकाकाश है। वह अनन्त प्रदेशात्मक है। असीम और अनन्त है। अलोकाकाश के महासिन्धु मे लोकाकाश बिन्दुमात्र है।

सम्पूर्ण आकाश आकाशास्तिकाय का स्कन्ध है। बुद्धिकल्पित उसका अश आकाशास्तिकाय का देश है। आकाशद्रव्य के अविभाज्य निरश अश आकाशास्तिकाय के प्रदेश है।

१० अद्धा-समय—अद्धा का अर्थ होता है—काल। वह समयादि रूप होने से अद्धा-समय कहा जाता है। अथवा काल का जो सूक्ष्मतम निर्विभाग भाग है वह अद्धासमय है।[3] यह एक समय ही, जो वर्त रहा है, तात्त्विक रूप से सत् है। जो बीत चुका है वह नष्ट हो गया और जो आगे आने वाला है वह अभी उत्पन्न ही नही हुआ। अतएव भूत और भविष्य असत् हैं, केवल वर्तमान क्षण ही सत् है। एक समय रूप होने से इसका कोई समूह नही बनता, इसलिए इसके देश-प्रदेश की कल्पना नही होती।

यह काल समयक्षेत्र और असमयक्षेत्र का विभाग करने वाला है। अढाई द्वीप पर्यन्त ज्योतिष् चक्र गतिशील है और उसके कारण अढाई द्वीप मे काल का व्यवहार होता है अतएव अढाई द्वीप को समयक्षेत्र कहते हैं। उसके आगे काल-विभाग न होने से असमयक्षेत्र कहा जाता है। यह कथन भी व्यवहारनय की अपेक्षा से समझना चाहिए।

काल द्रव्य का कार्य वर्तना, परिणाम, क्रिया और परत्वापरत्व है।[4] अपने अपने पर्याय की

---

१ आ-समन्तात् सर्वाण्यपि द्रव्याणि काशन्ते-दीप्यन्तेऽत्र व्यवस्थितानीत्याकाशम्।

२ आकाशस्यावगाह। —तत्त्वार्थसूत्र अ ५ सू १८

३ अद्धेति कालस्याख्या, अद्धा चासौ समय अद्धासमय, अथवा अद्धाया समयो निर्विभागो भागोऽद्धासमय।

४ वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य। —तत्त्वार्थसूत्र अ ५ सू २२

उत्पत्ति मे निमित्त होना वर्तना है। पूर्व पर्याय का त्याग और उत्तर पर्याय का धारण करना परिणाम है। परिस्पन्दन होना क्रिया है और ज्येष्ठत्व कनिष्ठत्व परत्वापरत्व है।

काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने के सम्बन्ध मे सर्व आचार्य एकमत नही हैं। कोई आचार्य उसे स्वतन्त्र द्रव्य कहते हैं और कोई कहते हैं कि काल स्वतन्त्र द्रव्य नही है अपितु जीवाजीवादि द्रव्यो की पर्यायो का प्रवाह ही काल है। काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने वाले आचार्यों की युक्ति है कि जिस प्रकार जीव और पुद्गल मे गति-स्थिति करने का स्वभाव होने पर भी उस कार्य के लिए निमित्त-कारण के रूप मे धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय माने जाते हैं, इसी प्रकार जीव-अजीव मे पर्याय-परिणमन का स्वभाव होने पर भी उसके लिए निमित्तकारण रूप मे कालद्रव्य मानना चाहिए। अन्यथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय मानने में भी कोई युक्ति नही। दिगम्बर परम्परा मे यही पक्ष स्वीकार किया गया है।

काल को स्वतन्त्र द्रव्य न मानने वाले पक्ष की युक्ति है कि पर्याय-परिणमन जीव-अजीव की क्रिया है, जो किसी तत्त्वान्तर की प्रेरणा के विना ही हुआ करती है। इसलिए वस्तुतः जीव-अजीव के पर्याय-पुज को ही काल कहना चाहिए। काल कोई स्वतन्त्र द्रव्य नही है। श्वेताम्वर परम्परा मे दोनो ही पक्षों का उल्लेख है।

इस प्रकार धर्मास्तिकाय के स्कन्ध, देश, प्रदेश; अधर्मास्तिकाय के स्कन्ध, देश, प्रदेश और आकाशास्तिकाय के स्कन्ध, देश, प्रदेश और अद्धासमय—ये दस अरूपी अजीव के भेद समझने चाहिए।

रूपी अजीव—रूपी अजीव के चार भेद वताये हैं—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणुपुद्गल। पुद्गल स्कन्धो की अनन्तता के कारण मूलपाठ मे वहुवचन का प्रयोग हुआ है। जैसा कि कहा गया है—'द्रव्य से पुद्गलास्तिकाय अनन्त है।'[1] स्कन्धो के वुद्धिकल्पित द्वि-प्रदेशी आदि विभाग स्कन्ध-देश हैं। स्कन्धो मे मिले हुए निर्विभाग भाग स्कन्ध-प्रदेश हैं। स्कन्धपरिणाम से रहित स्वतन्त्र निर्विभाग पुद्गल परमाणु हैं, आशय यह कि स्कन्ध या देश से जुड़े हुए परमाणु प्रदेश हैं और स्कन्ध या देश से अलग स्वतन्त्र परमाणु, परमाणु पुद्गल हैं।

एकमात्र पुद्गल द्रव्य ही रूपी अजीव है। ये पुद्गल पांच वर्ण, दो गध, पांच रस, आठ स्पर्श और पाच सस्थान के रूप मे परिणत होते हैं। प्रज्ञापनासूत्र में इन वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थानों के पारस्परिक सम्वन्ध की अपेक्षा वनने वाले विकल्पो का कथन किया गया है। सक्षेप से उनका यहाँ उल्लेख करना प्रासगिक है। वह इस प्रकार है—

काला, हरा, लाल, पीला और सफेद—इन पांच वर्ण वाले पदार्थो मे २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ सस्थान, ये वीस वोल पाये जाते हैं अत. २० × ५ = १०० भेद वर्णाश्रित हुए।

सुरभिगन्ध दुरभिगन्ध मे ५ वर्ण, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ संस्थान, ये २३ वोल पाये जाते हैं अतः २३ × २ = ४६ भेद गन्धाश्रित हुए।

---

१ 'दव्वओ ण पुग्गलत्थिकाए णं अणते।'

मधुर, कटु, तिक्त, आम्ल और कसैला—इन पाच रसो मे ५ वर्ण, २ गन्ध, ८ स्पर्श और ५ संस्थान, ये २० बोल पाये जाते हैं अत २०×५=१०० भेद रसाश्रित हुए।

गुरु और लघु स्पर्श मे ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस और ६ स्पर्श (गुरु और लघु छोडकर) और पाच सस्थान, ये २३ बोल पाये जाते हैं अत २३×२=४६ भेद गुरु-लघुस्पर्शाश्रित हुए।

शीत और उष्ण स्पर्श मे भी इसी प्रकार ४६ भेद पाये जाते हैं। अन्तर यह है कि आठ स्पर्शों मे से शीत, उष्ण को छोडकर छह स्पर्श लेने चाहिए।

स्निग्ध, रूक्ष, कोमल तथा कठोर इन मे भी पूर्वोक्त छह-छह स्पर्श लेकर २३-२३ बोल पाये जाते हैं, अत २३×४=९२ भेद हुए। ४६+४६+९२=१८४ भेद स्पर्शाश्रित हुए।

वृत्त, त्र्यस्त्र, चतुरस्त्र, परिमडल और आयत इन पाच सस्थानो मे ५ वर्ण, २ गन्ध, ५ रस और ९ स्पर्श ये बीस-बीस बोल पाये जाते हैं अत २०×५=१०० भेद सस्थान-आश्रित हुए।

इस तरह वर्णाश्रित १००, गन्धाश्रित ४६, रसाश्रित १००, स्पर्शाश्रित १८४ और सस्थान-आश्रित १००, ये सब मिलकर ५३० विकल्प रूपी अजीव के होते है।

अरूपी अजीव के धर्मास्तिकाय आदि के स्कध, देश, प्रदेश आदि १० भेद पूर्व मे बताये हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल—इन चार के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण की अपेक्षा मे २० भेद भी होते हैं। अत १०+२० मिलाकर ३० अरूपी अजीव के बन जाते हैं।

इस प्रकार रूपी अजीव के ५३० तथा अरूपी अजीव के ३० भेद मिलाकर ५६० भेद अजीवाभिगम के हो जाते है।

वर्णादि के परिणाम का अवस्थान-काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असख्यात काल है।

इस प्रकार अजीवाभिगम का निरूपण पूरा हुआ।

जीवाभिगम का स्वरूप और प्रकार

६. से किं त जीवाभिगमे ?
जीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते,
तजहा—संसारसमावण्णग-जीवाभिगमे य असंसारसमावण्णग-जीवाभिगमे य।

[६] जीवाभिगम क्या है ?
जीवाभिगम दो प्रकार का कहा गया है,
जैसे—ससारसमापन्नक जीवाभिगम और असंसारसमापन्नक जीवाभिगम।

७. से किं तं असंसारसमावण्णग-जीवाभिगमे ?
असंसारसमावण्णग-जीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते,

तंजहा—अणंतरसिद्धाससारसमावण्णग जीवाभिगमे य परपरसिद्धासंसारसमावण्णग जीवाभिगमे य ।

से किं त अणंतरसिद्धाससारसमावण्णग-जीवाभिगमे ?

अणंतरसिद्धासंसारसमावण्णग जीवाभिगमे पण्णरसविहे पण्णत्ते, तजहा—तित्थसिद्धा जाव अणेगसिद्धा ।

से तं अणतरसिद्धा० ।

से किं तं परंपरसिद्धाससारसमावण्णग-जीवाभिगमे ?

परपरसिद्धासंसारसमावण्णग-जीवाभिगमे अणेगविहे पण्णत्ते तंजहा—पढमसमयसिद्धा, दुसमयसिद्धा जाव अणंतसमयसिद्धा ।

से त परपरसिद्धासंसारसमावण्णग-जीवाभिगमे ।

से त असंसारसमावण्णग-जीवाभिगमे ।

[७] असंसार-प्राप्त जीवाभिगम क्या है ?

असंसारप्राप्त जीवाभिगम दो प्रकार का है,

यथा—अनन्तरसिद्ध असंसारप्राप्त जीवाभिगम और परपरसिद्ध असंसारप्राप्त जीवाभिगम ।

अनन्तरसिद्ध असंसारप्राप्त जीवाभिगम कितने प्रकार का कहा गया है ?

अनन्तरसिद्ध असंसारप्राप्त जीवाभिगम पन्द्रह प्रकार का कहा गया है, यथा तीर्थसिद्ध यावत् अनेकसिद्ध ।

यह अनन्तरसिद्ध असंसारप्राप्त जीवाभिगम का कथन हुआ ।

परम्परसिद्ध असंसारप्राप्त जीवाभिगम क्या है ?

परम्परसिद्ध असंसारप्राप्त जीवाभिगम अनेक प्रकार का कहा गया है । यथा—प्रथमसमय-सिद्ध, द्वितीयसमयसिद्ध यावत् अनन्तसमयसिद्ध ।

यह परम्परसिद्ध असंसारप्राप्त जीवाभिगम का कथन हुआ ।

यह असंसारप्राप्त जीवाभिगम का कथन पूर्ण हुआ ।

विवेचन—अजीवाभिगम का कथन करने के पश्चात् प्रस्तुत सूत्रों मे जीवाभिगम का कथन किया गया है । वैसे तो यह सब जीव-अजीव का ही कथन है, किन्तु इन दोनो के साथ जो 'अभिगम' पद लगा हुआ है वह यह बताने के लिए है कि इन जीवो और अजीवो मे अभिगमगम्यता धर्म पाया जाता है । अर्थात् ये जीव और अजीव ज्ञान के विषय (ज्ञेय) होते हैं । अद्वैतवादी मानते हैं कि जीव ज्ञान का विषय नही होता है । इसका खण्डन करने के लिए 'अभिगम' पद जीव-अजीव के साथ जोड़ा गया है । यदि जीव ज्ञान का विषय न हो तो उसका बोध ही नही होगा और स्वरूप को जाने बिना ससार से निवृत्ति एव मोक्ष मे प्रवृत्ति कैसे हो सकेगी ? इस तरह शास्त्ररचना का प्रयोजन ही निरर्थक हो जावेगा ।

जीवाभिगम क्या है, इस प्रश्न के उत्तर मे जीव के भेद बताकर उसका स्वरूप कथन किया गया है। जीवाभिगम दो प्रकार का है—ससारसमापन्नक अर्थात् ससारवर्ती जीवो का ज्ञान और असंसारसमापन्नक अर्थात् ससार-मुक्त जीवो का ज्ञान। ससार का अर्थ नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव भवो मे भ्रमण करना है। जो जीव उक्त चार प्रकार के भवो मे भ्रमण कर रहे हैं वे ससार-समापन्नक जीव हैं और जो जीव इस भवभ्रमण से छूटकर मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं, वे असंसार-समापन्नक जीव है।

ससारवर्ती जीव हो या मुक्तजीव हो, जीवत्व की अपेक्षा उनमे तुल्यता है। इससे यह ध्वनित होता है कि मुक्त अवस्था मे भी जीवत्व वना रहता है। कतिपय दार्शनिक मानते हैं कि जैसे दीपक का निर्वाण हो जाने पर वह लुप्त हो जाता है, उसका अस्तित्व नही रहता, इसी तरह मुक्त होने पर जीव का अस्तित्व नही रहता। इसी तरह वैशेषिकदर्शन की मान्यता है कि बुद्धि आदि नव आत्म-गुणो का उच्छेद होने पर मुक्ति होती है। इन मान्यताओ का इससे खण्डन होता है। मुक्त होने पर यदि जीव का अस्तित्व ही मिट जाता हो, अथवा उसके बुद्धि, सुख आदि आत्मगुण नष्ट हो जाते हो तो ऐसे मोक्ष के लिए कौन विवेकशील व्यक्ति प्रयत्न करेगा? कौन अपने आपको मिटाने का प्रयास करेगा? कौन स्वय को सुखहीन बनाना चाहेगा? ऐसी स्थिति मे मोक्ष का ही उच्छेद हो जावेगा।

अल्पवक्तव्यता होने से प्रथम असंसारप्राप्त जीवो का कथन किया गया है। असंसारप्राप्त, मुक्त जीव दो प्रकार के है—अनन्तरसिद्ध और परम्परसिद्ध।

अनन्तरसिद्ध—सिद्धत्व के प्रथम समय मे विद्यमान सिद्ध अनन्तरसिद्ध हैं। अर्थात् उनके सिद्धत्व में समय का अन्तर नही है।

परम्परसिद्ध—परम्परसिद्ध वे हैं जिन्हे सिद्ध हुए दो तीन यावत् अनन्त समय हो चुका हो।

अनन्तर सिद्धो के १५ प्रकार कहे गये है—१ तीर्थसिद्ध, २ अतीर्थसिद्ध, ३ तीर्थंकरसिद्ध, ४. अतीर्थंकरसिद्ध, ५ स्वयबुद्धसिद्ध, ६ प्रत्येकबुद्धसिद्ध, ७ बुद्धबोधितसिद्ध, ८ स्त्रीलिंगसिद्ध, ९. पुरुषलिंगसिद्ध, १०. नपुसकलिंगसिद्ध, ११ स्वलिंगसिद्ध, १२ अन्यलिंगसिद्ध, १३ गृहस्थलिंग-सिद्ध, १४ एकसिद्ध और १५ अनेकसिद्ध।

१ तीर्थसिद्ध—जिसके अवलम्बन से ससार-सागर तिरा जाय, वह तीर्थ है। इस अर्थ मे तीर्थंकर परमात्मा के द्वारा प्ररूपित प्रवचन और उनके द्वारा स्थापित चतुर्विध श्रमणसघ तीर्थ है। प्रथम गणधर भी तीर्थ है।[1] तीर्थकर द्वारा प्रवचनरूप एव चतुर्विध श्रमणसघरूप तीर्थ की स्थापना किये जाने के पश्चात् जो सिद्ध होते हैं, वे तीर्थसिद्ध कहलाते हैं। यथा गौतम, सुधर्मा, जम्बू आदि।

२. अतीर्थसिद्ध—तीर्थ की स्थापना से पूर्व अथवा तीर्थ के विच्छेद हो जाने के बाद जो जीव सिद्ध होते हैं, वे अतीर्थसिद्ध है। जैसे मरुदेवी माता भगवान् ऋषभदेव द्वारा तीर्थस्थापना के पूर्व ही सिद्ध हुई। सुविधिनाथ आदि तीर्थंकरो के बीच के समय मे तीर्थ का विच्छेद हो गया था। उस समय जातिस्मरणादि ज्ञान से मोक्षमार्ग को प्राप्त कर जो जीव सिद्धगति को प्राप्त हुए, वे अतीर्थसिद्ध है।

---

१. तित्थ पुण चाउव्वण्णो समणसघो पढमगणहरो वा।

३. **तीर्थंकरसिद्ध**—जो तीर्थ की स्थापना करके सिद्ध हुए वे तीर्थंकरसिद्ध है। जैसे इस अवसर्पिणी काल मे ऋषभदेव से लगाकर महावीर स्वामी तक चौबीस तोर्थंकर, तीर्थंकरसिद्ध है।

४. **अतीर्थंकरसिद्ध**—जो सामान्य केवली होकर सिद्ध होते है, वे अतीर्थंकरसिद्ध हैं। जैसे सामान्य केवली।

५ **स्वयंबुद्धसिद्ध**—जो दूसरे के उपदेश के विना स्वय ही जातिस्मरणादि ज्ञान से बोध पाकर सिद्ध होते है। यथा नमिराजर्षि।

६ **प्रत्येकबुद्धसिद्ध**—जो किसी भी वाह्य निमित्त को देखकर स्वयमेव प्रतिवोध पाकर सिद्ध होते है, वे प्रत्येकबुद्धसिद्ध हैं। यथा करकण्डु आदि।

यद्यपि स्वयबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध दोनो ही परोपदेश के बिना ही प्रतिवोध पाते है, तथापि इनमे बाह्यनिमित्त को लेकर अन्तर है। स्वयबुद्ध किसी बाह्य निमित्त के बिना ही प्रतिवोध पाते है, जबकि प्रत्येकबुद्ध वृषभ, मेघ, वृक्ष आदि बाह्य निमित्त को देखकर प्रतिबुद्ध होते हैं।[1]

स्वयबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध मे उपधि, श्रुत और लिग की अपेक्षा से भी भेद है।[2] वैसे स्वयबुद्ध दो प्रकार के होते हैं—तीर्थंकर और तीर्थंकर से भिन्न। तीर्थंकर तो तीर्थंकरसिद्ध मे आ जाते है अत यहाँ तीर्थंकरभिन्न स्वयबुद्धो का अधिकार समझना चाहिए।

स्वयबुद्धो के पात्रादि बारह प्रकार की उपधि होती है, जबकि प्रत्येकबुद्धो के जघन्यत दो और उत्कृष्टत वस्त्र को छोडकर नौ प्रकार की उपाधि होती है।

स्वयबुद्धो के पूर्वाधीत श्रुत होता भी है और नही भी होता है। अगर होता है तो देवता उन्हे वेष (लिंग) प्रदान करता है अथवा वे गुरु के पास जाकर मुनिवेष धारण कर लेते हैं। यदि वे एकाकी विचरण करने मे समर्थ हो और एकाकी विचरण की इच्छा हो तो एकाकी विचरण करते है, नही तो गच्छवासी होकर रहते है। यदि उनके पूर्वाधीत श्रुत न हो तो नियम से गुरु के सान्निध्य मे मुनिवेष लेकर गच्छवासी होकर रहते है।

प्रत्येकबुद्धो के नियम से पूर्वाधीत श्रुत होता है। जघन्यत ग्यारह अग और उत्कृष्टत दस पूर्व से कुछ कम श्रुत पूर्वाधीत होता है। उन्हे देवता मुनिलिंग देते है अथवा कदाचित् वे लिंगरहित भी रहते हैं।

७ **बुद्धबोधितसिद्ध**—आचार्यादि से प्रतिबोध पाकर जो सिद्ध होते है वे बुद्धबोधितसिद्ध है। यथा जम्बू आदि।

---

१ पत्तेय—वाह्यवृषभादिक कारणमभिसमीक्ष्य बुद्धा, वहिष्प्रत्यय प्रतिबुद्धाना च पत्तेय नियमा विहारो जम्हा तम्हा ते पत्तेय बुद्धा।

२ पत्तेयबुद्धाण जहन्नेण दुविहो उक्कोसेण नवविहो नियमा उवही पाउरणवज्जो भवइ।
सयबुद्धस्स पुव्वाहीय सुय से हवइ न वा, जइ से णत्थि तो लिंग नियमा गुरुसन्निहे पडिवज्जइ, जइ य एगविहार-विहरणसमत्थो इच्छा वा से तो एक्को चेव विहरइ, अन्नहा गच्छे विहरइ।
पत्तेयबुद्धाण पुव्वाहीय सुय नियमा होइ, जहन्नेण इक्कारस अगा उक्कोसेण भिन्नदसपुव्वा। लिंग च से देवया पयच्छइ, लिंगवज्जिओ वा हवइ।

८. **स्त्रीलिंगसिद्ध**—स्त्री शरीर से जो सिद्ध हुए हो वे स्त्रीलिंगसिद्ध हैं। यथा मल्लि तीर्थंकर, मरुदेवी आदि।

लिंग[1] तीन तरह का है—वेद, शरीरनिष्पत्ति और वेष। यहाँ शरीर-रचना रूप लिंग का अधिकार है। वेद और नेपथ्य का नही। वेद मोहकर्म के उदय से होता है। मोहकर्म के रहते सिद्धत्व नही आता। जहाँ तक वेष का सवाल है वह भी मुक्ति से कोई सम्बन्ध नही रखता। अत यहाँ स्त्री-शरीर से प्रयोजन है।

दिगम्बर परम्परा की मान्यता है कि स्त्री-शरीर से मुक्ति नही होती जबकि यहाँ 'स्त्रीलिंग-सिद्ध' कह कर स्त्रीमुक्ति को मान्यता दी गई है। 'स्त्री की मुक्ति नही होती' इस मान्यता का कोई तार्किक या आगमिक आधार नही है। मुक्ति का सम्बन्ध शरीर-रचना के साथ न होकर ज्ञान-दर्शन-चारित्र के प्रकर्ष के साथ है। स्त्री-शरीर मे ज्ञान-दर्शन-चारित्र का प्रकर्ष क्यो नही हो सकता ? पुरुष की तरह स्त्रियाँ भी ज्ञान-दर्शन-चारित्र का प्रकर्ष कर सकती है।

दिगम्बर परम्परा मे वस्त्र को चारित्र का प्रतिवन्धक माना गया है और स्त्रियाँ वस्त्र का त्याग नही कर सकती, इस तर्क से उन्होने स्त्री की मुक्ति का निषेध कर दिया है। परन्तु तटस्थ दृष्टि से सोचने पर स्पष्ट हो जाता है कि वस्त्र का रखना मात्र चारित्र का प्रतिबधक नही होता। वस्त्रादि पर ममत्व होना चारित्र का प्रतिवधक है। वस्त्रादि के अभाव मे भी शरीर पर ममत्व हो सकता है तो शरीर का त्याग भी चारित्र के लिए आवश्यक मानना होगा। शरीर का त्याग तो नही किया जा सकता, ऐसी स्थिति मे क्या चारित्र का पालन नही हो सकता ? निष्कर्ष यह है कि वस्त्रादि के रखने मात्र से चारित्र का अभाव नही हो जाता, आगम मे तो मूर्च्छा को परिग्रह कहा गया है। वस्तुओ को नही। अतः वस्त्रो का त्याग न करने के कारण स्त्रियो मे चारित्र का प्रकर्ष न मानना और फलत उन्हें मुक्ति की अधिकारिणी न मानना तर्क एव आगमसम्मत नही है।

९. **पुरुषलिंगसिद्ध**—पुरुष-शरीर मे स्थित होकर जो सिद्ध हुए हो वे पुरुषलिंगसिद्ध हैं।

१० **नपुंसकलिंगसिद्ध**—स्त्री-पुरुष से भिन्न नपुसक शरीर के रहते जो सिद्ध हो वे नपुसकलिंगसिद्ध हैं। कृत्रिम नपुसक सिद्ध हो सकते है, जन्मजात नपुसक सिद्ध नही होते।

११ **स्वलिंगसिद्ध**—जो जैनमुनि के वेप रजोहरणादि के रहते हुए सिद्ध हुए हो, वे स्वलिंग-सिद्ध हैं।

१२. **अन्यलिंगसिद्ध**—जो परिव्राजक, सन्यासी, गेरुआ वस्त्रधारी आदि अन्य मतो के वेष के रहते सिद्ध हुए हो, वे अन्यलिंग सिद्ध हैं।

१३. **गृहिलिंगसिद्ध**—जो गृहस्थ के वेष मे रहते हुए सिद्ध हुए हो, वे गृहिलिंगसिद्ध है। जैसे मरुदेवी माता।

१४ **एकसिद्ध**—जो एक समय मे अकेले ही सिद्ध हुए हो, वे एकसिद्ध है।

---

१ लिंग च तिविह—वेदो सरीरनिव्वित्ती नेवत्थ च। इह सरीरनिव्वत्तीए अहिगारो न वेय-नेवत्थेहिं।—नन्दी

१५ अनेकसिद्ध—जो एक समय मे एक साथ अनेक सिद्ध हुए हों वे अनेकसिद्ध है। सिद्धान्त मे एक समय मे अधिक से अधिक १०८ जीव सिद्ध हो सकते हैं।

इस सम्बन्ध मे सिद्धान्त की एक सग्रहणी[1] गाथा मे कहा गया है—

आठ समय तक जब निरन्तर सिद्ध होते हैं तब एक से लगाकर बत्तीस पर्यन्त सिद्ध होते है। अर्थात् प्रथम समय मे जघन्यत एक, दो और उत्कृष्ट से बत्तीस होते है, दूसरे समय मे भी इसी तरह एक से लेकर बत्तीस सिद्ध होते हैं। इस प्रकार आठवें समय मे भी एक से लेकर बत्तीस सिद्ध होते है। इसके बाद अवश्य अन्तर पडेगा।

जब तेतीस से लगाकर अडतालीस पर्यन्त सिद्ध होते है तब सात समय पर्यन्त ऐसा होता है। इसके बाद अवश्य अन्तर पडता है।

जब उनपचास से लेकर साठ पर्यन्त निरन्तर सिद्ध होते है तब छह समय तक ऐसा होता है। बाद मे अन्तर पडता है।

जब इकसठ से लगाकर बहत्तर पर्यन्त निरन्तर सिद्ध होते है तब पाँच समय तक ऐसा होता है। बाद मे अन्तर पडता है।

जब तिहत्तर से लगाकर चौरासी पर्यन्त निरन्तर सिद्ध होते हैं तव चार समय तक ऐसा होता है। बाद मे अवश्य अन्तर पडता है।

जब पचासी से लगाकर छियानवै पर्यन्त निरन्तर सिद्ध होते हैं तब तीन समय तक ऐसा होता हैं। बाद मे अवश्य अन्तर पडता हैं।

जब सत्तानवे से लगाकर एक सौ दो पर्यन्त निरन्तर सिद्ध होते हैं तव दो समय तक ऐसा होता है। बाद मे अन्तर पडता है।

जब एक सौ तीन से लेकर एक सौ आठ निरन्तर सिद्ध होते हैं तब एक समय तक ही ऐसा होता है। बाद मे अन्तर पडता ही है।

इस प्रकार एक समय मे उत्कृष्टत एक सौ आठ सिद्ध हो सकते हैं। यह अनेकसिद्धो का कथन हुआ। इसके साथ ही अनन्तरसिद्धो का कथन सम्पूर्ण हुआ।

परम्परसिद्ध—परम्परसिद्ध अनेक प्रकार के कहे गये हैं। यथा प्रथमसमयसिद्ध, द्वितीयसमय-सिद्ध, तृतीयसमयसिद्ध यावत् असख्यातसमयसिद्ध और अनन्तसमयसिद्ध।

जिनको सिद्ध हुए एक समय हुआ वे तो अनन्तरसिद्ध होते है अर्थात् सिद्धत्व के प्रथम समय मे वर्तमानसिद्ध अनन्तरसिद्ध कहलाते हैं। अत सिद्धत्व के द्वितीय आदि समय मे स्थित परम्परसिद्ध होते हैं। मूल पाठ मे जो 'पढमसमयसिद्ध' पाठ है वह परम्परसिद्धत्व का प्रथम समय अर्थात् सिद्धत्व का द्वितीय समय जानना चाहिए। अर्थात् जिन्हे सिद्ध हुए दो समय हुए वे प्रथमसमय परम्परसिद्ध

---

१ वत्तीसा अडयाला सट्ठी वावत्तरी य बोद्धव्वा।
चुलसीइ छन्नउइ उ दुरहियमट्ठुत्तरसय च ॥

है। जिन्हे सिद्ध हुए तीन समय हुए वे द्वितीयसमयसिद्ध परम्परसिद्ध जानने चाहिए। इसी तरह आगे भी जान लेना चाहिए।

यह परम्परसिद्ध असंसारसमापन्नक जीवाभिगम का कथन हुआ।

संसारसमापन्नक जीवाभिगम

८ से किं तं संसारसमापन्नकजीवाभिगमे ?

संसारसमावण्णएसु णं जीवेसु इमाओ णव पडिवत्तीओ एवमाहिज्जंति, तंजहा—

१. एगे एवमाहंसु—दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

२ एगे एवमाहंसु—तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

३ एगे एवमाहंसु—चउव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

४ एगे एवमाहंसु—पंचविहा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

५-१० एतेण अभिलावेणं जाव दसविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

[८] संसारप्राप्त जीवाभिगम क्या है ?

ससारप्राप्त जीवो के सम्बन्ध मे ये नौ प्रतिपत्तियाँ (कथन) इस प्रकार कही गई है—

१. कोई ऐसा कहते हैं कि ससारप्राप्त जीव दो प्रकार के कहे गये है।
२. कोई ऐसा कहते हैं कि ससारवर्ती जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं।
३ कोई ऐसा कहते हैं कि ससारप्राप्त जीव चार प्रकार के कहे गये हैं।
४ कोई ऐसा कहते है कि ससारप्राप्त जीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं।

५-१०. ऐसा ही कथन तब तक कहना चाहिए यावत् कोई ऐसा कहते है कि ससारप्राप्त जीव दस प्रकार के कहे गये है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे ससारवर्ती जीवो के विषय मे प्रश्नोत्तर किये गये है। प्रश्न किया गया है कि ससारवर्ती जीव का स्वरूप क्या है ? ससारवर्ती जीव के भेदो को बताकर उक्त प्रश्न का उत्तर दिया गया है। भेदो के कथन से वस्तु का स्वरूप ज्ञात हो ही जाता है। ससारवर्त्ती जीवो के प्रकार के सम्वन्ध मे यहाँ नौ प्रतिपत्तियाँ बताई गई हैं। प्रत्तिपत्ति का अर्थ है—प्रतिपादन, कथन।[१] इस सम्वन्ध मे नौ प्रकार के प्रतिपादन हैं। जैसे कि कोई आचार्य ससारवर्ती जीवो के दो प्रकार कहते है, कोई आचार्य उनके तीन प्रकार कहते है, इसी क्रम से कोई आचार्य ससारवर्ती जीवो के दस प्रकार कहते हैं। दो से लगाकर दस प्रकार के ससारी जीव हैं—यह नौ प्रकार के कथन या प्रतिपादन हुए। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि ये नौ ही प्रकार के कथन परस्पर भिन्न होते हुए भी विरोधी नही हैं। जो आचार्य ससारवर्त्ती जीवो को दो प्रकार का कहते हैं, वे ही आचार्य अन्य विवक्षा से ससारवर्त्ती जीव के तीन प्रकार भी कहते हैं, अन्य विवक्षा से चार प्रकार भी कहते है यावत् अन्य विवक्षा से

---

१. प्रतिपत्तय प्रतिपादनानि सवित्तय इति यावत्। —मलय वृत्ति

२ प्रतिपत्तय इति परमार्थतोऽनुयोगद्वाराणि, इति प्रतिपत्तव्यम्।

दस प्रकार भी कहते हैं। विवक्षा के भेद से कथनो मे भेद होता है परन्तु उनमे विरोध नही होता। जो जीवा दो प्रकार के हैं वे ही दूसरी अपेक्षा से तीन प्रकार के हैं, अन्य अपेक्षा से चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दस प्रकार के हैं। अतएव इन नौ प्रकार की प्रतिपत्तियो मे कोई विरोध नही है। अपेक्षा के भेद से सभी सम्यग् और सही हैं।

वृत्तिकार ने 'प्रतिपत्ति' शब्द के सन्दर्भ मे यह भी कहा है कि प्रतिपत्ति केवल शब्दरूप ही नही है अपितु शब्द के माध्यम से अर्थ मे प्रवृत्ति कराने वाली है। शब्दाद्वैतवादी मानते हैं कि 'शब्दमात्र विश्वम्'। सव ससार शब्दरूप ही है, ऐसा मानने से केवल शब्द ही सिद्ध होगा, विश्व नही। अत· उक्त मान्यता सत्य से परे है। सही वात यह है कि शब्द के माध्यम से अर्थ का कथन किया जाता है, तभी प्रतिपत्ति (ज्ञान) हो सकती है।

स्याद्वाद या अपेक्षावाद जैन सिद्धान्त का प्राण है। अतएव नय-निक्षेप की अपेक्षाओं को ध्यान मे रख कर वस्तुतत्त्व को समझना चाहिए।

वस्तु अनन्तधर्मात्मक है। वह एकान्त एकरूप नही है। यदि वस्तु को सर्वथा एकरूप ही माना जायगा तो विश्व की विचित्रता सगत नही होगी।

प्रथम प्रतिपत्ति का कथन

९ तत्थ णं जे एवमाहंसु 'दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता' ते एवमाहंसु तं जहा—तसा चेव थावरा चेव ॥

[९] जो दो प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो का कथन करते हैं, वे कहते है कि त्रस और स्थावर के भेद से वे दो प्रकार के हैं।

१०. से किं तं थावरा ?

थावरा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१ पुढविकाइया २. आउक्काइया ३ वणस्सइकाइया।

[१०] स्थावर किसे कहते हैं ?

स्थावर तीन प्रकार के कहे गये हैं—

यथा—१. पृथ्वीकायिक २ अप्कायिक और ३. वनस्पतिकायिक।

विवेचन—ससारसमापन्न जीवों के भेद वताने वाली नौ प्रतिपत्तियो मे से प्रथम प्रतिपत्ति का निरूपण करते हुए इस सूत्र मे कहा गया है कि ससारवर्त्ती जीव दो प्रकार के हैं—त्रस और स्थावर। इन दो भेदो मे समस्त ससारी जीवो का अन्तर्भाव हो जाता है।

त्रस—'त्रसन्तीति त्रसा' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ-जा सकते हैं, वे जीव त्रस कहलाते हैं। गर्मी से तप्त होने पर जो जीव उस स्थान से चल कर छाया वाले स्थान पर आते हैं अथवा शीत से घवरा कर धूप मे जाते हैं, वे चल-फिर सकने वाले जीव त्रस हैं। त्रसनामकर्म के उदय वाले जीव त्रस कहलाते हैं, इस अपेक्षा से द्वीन्द्रिय, त्रीरिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीव त्रस के अन्तर्गत आते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आगम मे तेजस्काय और वायुकाय को भी त्रस के अन्तर्गत माना गया है। इसी जीवाभिगमसूत्र मे आगे कहा गया है कि—त्रस तीन प्रकार के हैं—तेजस्काय, वायुकाय और औदारिक त्रस प्राणी।[1] तत्त्वार्थसूत्र मे भी 'तेजोवायुद्वीन्द्रियादयश्च त्रसा' कहा गया है।[2] अन्यत्र उन्हे स्थावर कहा गया है। इन दोनो प्रकार के कथनो की सगति इस प्रकार जाननी चाहिए—

त्रस जीवो के सम्बन्ध मे दो प्रकार की विवक्षाएँ हैं। प्रथम विवक्षा मे जो जीव अभिसन्धि-पूर्वक-समझपूर्वक इधर से उधर गमनागमन कर सकते हैं और जिनके त्रसनामकर्म का उदय है वे त्रस जीव लब्धित्रस कहे जाते हैं और इस विवक्षा से द्वीन्द्रियादि जीव त्रस की कोटि मे आते हैं, तेज और वायु नही।

दूसरी विवक्षा मे जो जीव अभिसन्धिपूर्वक अथवा अनभिसन्धिपूर्वक भी ऊर्ध्व या तिर्यक् गति करते है, वे त्रस कहलाते हैं। इस व्याख्या और विवक्षा के अनुसार तेजस् और वायु ऊर्ध्व या तिर्यक् गति करते है, इसलिए वे त्रस है। ऐसे त्रस जीवो को गतित्रस कहा गया है। तात्पर्य यह है कि जब केवल गति की विवक्षा है तव तेजस् और वायु को त्रस मे गिना गया है। परन्तु जव स्थावर नामकर्म के उदय की विवक्षा है तव उन्हे स्थावर मे गिना गया है। तेज और वायु के त्रसनामकर्म का उदय नही, स्थावरनामकर्म का उदय है। अतएव विवक्षाभेद से दोनो प्रकार के कथनो की सगति समझना चाहिए।

स्थावर—'तिष्ठन्तीत्येवशीला स्थावरा'। उष्णादि से अभितप्त होने पर भी जो उस स्थान को छोडने मे असमर्थ है, वही स्थित रहते है, ऐसे जीव स्थावर कहलाते हैं। यहाँ स्थावर जीवो के तीन भेद वताये गये है—१. पृथ्वीकाय २ अप्काय और ३ वनस्पतिकाय।

सामान्यतया स्थावर के पाच भेद गिने जाते है। तेजस् और वायु को भी स्थावरनामकर्म के उदय से स्थावर माना जाता है। परन्तु यहाँ गतित्रस की विवक्षा होने से तेजस्, वायु की गणना त्रस मे करने से स्थावर जीवो के तीन ही भेद वताये है। तत्त्वार्थसूत्र मे भी ऐसा ही कहा गया है—'पृथिव्यम्बुवनस्पतयः स्थावरा।[3]

१ **पृथ्वीकाय**—पृथ्वी ही जिन जीवो का काया—शरीर है, वे पृथ्वीकायिक है। जो लोग पृथ्वी को एक देवता रूप मानते है, इस कथन से उनका निरसन हो जाता है। पृथ्वी एकजीवरूप न होकर—असख्य जीवो का समुदाय रूप है। जैसा कि आगम मे कहा है—पृथ्वी सचित्त कही गई है, उसमे पृथक् पृथक् अनेक जीव है।

२ **अप्काय**—जल ही जिन जीवो का शरीर है, वे अप्कायिक जीव हैं।

३ **वनस्पतिकाय**—वनस्पति जिनका शरीर है, वे वनस्पतिकायिक जीव है।

---

१. तसा तिविहा पण्णत्ता त जहा—तेउकाइया, वाउकाइया ओराला तसा पाणा। —जीवाभि सूत्र १६

२. तत्त्वार्थ अ २, सू १४

३ तत्त्वार्थसूत्र अध्याय २, सूत्र १३

पृथ्वी सबका आधार होने से उसे प्रथम ग्रहण किया है। पृथ्वी के आधार पर पानी रहा हुआ है अतएव पृथ्वी के बाद जल का ग्रहण किया गया है।

'जत्थ जल तत्थ वण'[1] के अनुसार जहाँ जहाँ जल है वहाँ वहाँ वनस्पति है, इस सैद्धान्तिक तत्त्व के प्रतिपादन हेतु जल के बाद वनस्पति का ग्रहण हुआ है। इस प्रकार पृथ्वी, पानी और वनस्पतिकायिको के क्रम का निरूपण किया गया है।

पृथ्वीकाय का वर्णन

११. से किं पुढविकाइया ?

पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

सुहुमपुढविकाइया य बायरपुढविकाइया य।

[११] पृथ्वीकायिक का स्वरूप क्या है ?

पृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गये है—जैसे कि सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादर-पृथ्वीकायिक।

१२. से किं सुहुमपुढविकाइया ?

सुहुमपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता—

तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

[१२] सूक्ष्मपृथ्वीकायिक क्या हैं ?

सूक्ष्मपृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गये है—

जैसे कि—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

विवेचन—पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये है—१. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और २. बादर पृथ्वीकायिक। सूक्ष्म पृथ्वीकाय से तात्पर्य सूक्ष्मनामकर्म के उदय से है, न कि बेर और आंवले की तरह आपेक्षिक सूक्ष्मता या स्थूलता से। सूक्ष्म नामकर्म के उदय से जिन जीवो का शरीर चर्म-चक्षुओ से नही देखा जा सकता है, वे सूक्ष्म जीव है। ये सूक्ष्म जीव चतुर्दश रज्जुप्रमाण सम्पूर्ण लोक मे सर्वत्र व्याप्त हैं। इस लोक मे कोई ऐसा स्थान नही है जहाँ सूक्ष्म जीव न हो। जैसे काजल की कुप्पी मे काजल ठसाठस भरा रहता है अथवा जैसे गधी की पेटी मे सुगध सर्वत्र व्याप्त रहती है इसी तरह सूक्ष्म जीव सारे लोक मे ठसाठस भरे हुए हैं—सर्वत्र व्याप्त हैं। ये सूक्ष्म जीव किसी से प्रतिघात नही पाते। पर्वत की कठोर चट्टान से भी आर-पार हो जाते हैं। ये सूक्ष्म जीव किसी के मारने से मरते नही, छेदने से छिदते नही, भेदने से भिदते नही। विश्व की किसी भी वस्तु से उनका घात-प्रतिघात नही होता। ऐसे सूक्ष्मनामकर्म के उदय वाले ये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव सारे लोक मे व्याप्त हैं।[2]

बादर पृथ्वीकाय—बादरनामकर्म के उदय से जिन पृथ्वीकायिक जीवो का शरीर (अनेको के मिलने पर) चर्मचक्षुओ से ग्राह्य हो सकता है, जिसमे घात-प्रतिघात होता हो, जो मारने से मरते

१ पुढवी चित्तमतमक्खाया, अणेग जीवा, पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएण। —दशवै०

२ 'सुहुमा सव्वलोगम्मि'। —उत्तराध्ययन

हो, छेदने से छिदते हो, भेदने से भिदते हो, वे वादर पृथ्वीकायिक जीव हैं। ये लोक के प्रतिनियत क्षेत्र मे ही होते हैं, सर्वत्र नही।

मूल मे आये हुए 'दोनो चकार सूक्ष्म और वादर के स्वगत अनेक भेद-प्रभेद के सूचक हैं।'

सूक्ष्म पृथिवीकायिक के भेद—सूक्ष्म पृथ्विकायिक जीवो के सम्बन्ध मे बताया गया है कि वे दो प्रकार के हैं—यथा १ पर्याप्तक और २ अपर्याप्तक।

पर्याप्तक—जिन जीवो ने अपनी पर्याप्तियाँ पूरी कर ली हो वे पर्याप्तक है।

अपर्याप्तक—जिन जीवो ने अपनी पर्याप्तियाँ पूरी नही की है या पूरी करने वाले नही है वे अपर्याप्तक है।

पर्याप्तक और अपर्याप्तक के स्वरूप को समझने के लिए पर्याप्तियो को समझना आवश्यक है। पर्याप्ति का स्वरूप इस प्रकार है—

पर्याप्ति का स्वरूप

आहारादि के पुद्गलो को ग्रहण कर उन्हे शरीरादि रूप मे परिणत करने की आत्मा की शक्ति को पर्याप्ति कहते है।[1] यह शक्ति पुद्गलो के उपचय से प्राप्त होती है। जीव अपने उत्पत्तिस्थान पर पहुचकर प्रथम समय मे जिन पुद्गलो को ग्रहण करता है और इसके बाद भी जिन पुद्गलो को ग्रहण करता है—उनको शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन के रूप मे परिवर्तित करता है। पुद्गलो को इन रूपो मे परिणत करने की शक्ति को ही पर्याप्ति कहा जाता है।

पर्याप्तियाँ छह प्रकार की हैं—१. आहारपर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इन्द्रियपर्याप्ति, ४ श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, ५. भाषापर्याप्ति और ६ मन पर्याप्ति।

१ **आहारपर्याप्ति**—जिस शक्ति से जीव आहार को ग्रहण कर उसे रस और खल (असार भाग) मे परिणत करता है, उसे आहारपर्याप्ति कहते है।

२. **शरीरपर्याप्ति**—जिस शक्ति से जीव रस रूप मे परिणत आहार को रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य रूप सात धातुओ मे परिणत करता है, वह शरीरपर्याप्ति है।

३. **इन्द्रियपर्याप्ति**—जिस शक्ति से जीव सप्त धातुओ से इन्द्रिय योग्य पुद्गलो को ग्रहण कर उन्हे इन्द्रिय रूप मे परिणत करता है, वह इन्द्रियपर्याप्ति है।

४ **श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति**—जिस शक्ति से जीव श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलो को ग्रहण करके श्वास और उच्छ्वास मे परिणत करता है, वह श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति है।

५ **भाषापर्याप्ति**—जिस शक्ति से जीव भाषावर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके भाषा रूप मे वदलता है, वह भाषापर्याप्ति है।

६ **मनःपर्याप्ति**—जिस शक्ति से जीव मनोवर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण कर उन्हे मन के रूप मे वदलता है, वह मन पर्याप्ति है।

---

१. पर्याप्तिर्नामाहारादिपुद्गलग्रहणपरिणमनहेतुरात्मन शक्तिविशेष। —मलयगिरि वृत्ति।

पर्याप्तियो का क्रम और काल—सब पर्याप्तियो का प्रारभ एक साथ होता है किन्तु उनकी पूर्णता अलग-अलग समय मे होती है। पहले आहारपर्याप्ति पूर्ण होती है, फिर क्रमश शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन पर्याप्ति पूर्ण होती है। पूर्व की अपेक्षा उत्तर-उत्तर की पर्याप्ति सूक्ष्म, सूक्ष्मतर होती है। जैसे छह व्यक्ति एक साथ सूत कातने बैठे हो तो जो बारीक कातेगा उसे उसकी अपेक्षा अधिक समय लगेगा जो मोटा कातता है। आहारपर्याप्ति सबसे स्थूल है और मन पर्याप्ति सबसे सूक्ष्म है।

'आहारपर्याप्ति का काल एक समय है। वह एक समय मे पूर्ण हो जाती है। इसका प्रमाण यह है कि प्रज्ञापना के आहार पद मे यह पाठ है कि 'आहारपर्याप्ति से अपर्याप्त जीव आहारक है या अनाहारक? उत्तर मे कहा गया है कि आहारक नही है, अनाहारक है। आहारपर्याप्ति से अपर्याप्तजीव विग्रहगति मे ही होता है, उपपातक्षेत्र मे आया हुआ नही। उपपातक्षेत्र समागत जीव प्रथम समय मे ही आहारक होता है। इससे आहारपर्याप्ति की समाप्ति का काल एक समय का सिद्ध होता है। यदि उपपातक्षेत्र मे आने के बाद भी आहारपर्याप्ति से अपर्याप्त होता तो प्रज्ञापना मे 'कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक' ऐसा उत्तर दिया गया होता। जैसा कि शरीरादि पर्याप्तियो मे दिया गया है। इसके बाद शरीर आदि पर्याप्तियाँ अलग-अलग एक-एक अन्तर्मुहूर्त मे पूरी होती है। सब पर्याप्तियो का समाप्तिकाल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है क्योकि अन्तर्मुहूर्त भी अनेक प्रकार का है।

किसके कितनी पर्याप्तियाँ ?

एकेन्द्रिय जीवो के चार पर्याप्तियाँ होती हैं—१. आहार, २. शरीर, ३ इन्द्रिय और ४. श्वासोच्छ्वास।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असज्ञी पचेन्द्रिय के पाच पर्याप्तियाँ होती है—पूर्वोक्त चार और भाषापर्याप्ति।

सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के छहो पर्याप्तियाँ होती है।

आहार, शरीर और इन्द्रिय—ये तीन पर्याप्तियाँ प्रत्येक जीव पूर्ण करता है। इनको पूर्ण करके ही जीव अगले भव की आयु का बध कर सकता है। अगले भव की आयु का बध किये बिना कोई जीव नहो मर सकता। इन तीन पर्याप्तियो की अपेक्षा से तो प्रत्येक जीव पर्याप्त ही होता है परन्तु पर्याप्त-अपर्याप्त का विभाग इन तीन पर्याप्तियो की अपेक्षा से नही है, अपितु जिन जीवो के जितनी पर्याप्तियाँ कही गई हैं, उनकी पूर्णता-अपूर्णता को लेकर है।

स्वयोग्य पर्याप्तियो को जो पूर्ण करे वह पर्याप्त जीव है और स्वयोग्य पर्याप्तियो को पूर्ण न करे वह अपर्याप्त जीव है। जैसे एकेन्द्रिय जीव के स्वयोग्य पर्याप्तियाँ ४ कही गई है। इन चार पर्याप्तियो को पूर्ण करनेवाला एकेन्द्रिय जीव पर्याप्त है और इन चार को पूर्ण न करने वाला अपर्याप्त है।

पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद

पर्याप्त जीव दो प्रकार के है—१ लब्धिपर्याप्त और २. करणपर्याप्त। जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियो को अभी पूर्ण नही किया किन्तु आगे अवश्य पूरी करेगा, वह लब्धि की अपेक्षा से लब्धि-पर्याप्तक कहा जाता है। जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियां पूरी कर ली हैं वह करणपर्याप्त हैं।

अपर्याप्त जीव भी दो प्रकार के है—१ लब्धि-अपर्याप्त और २. करण-अपर्याप्त। जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तिया पूरी नही की और आगे करेगा भी नही अर्थात् अपर्याप्त ही मरेगा वह लब्धि-अपर्याप्त है। जिसने स्वयोग्य पर्याप्तियो को पूरा नही किया किन्तु आगे पूरा करेगा वह करण से अपर्याप्त है।

इस प्रकार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार हुए।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के सम्बन्ध मे शेष वक्तव्यता कहने के लिए दो सग्रहणी गाथाएँ यहाँ दी गई है, वे इस प्रकार हैं—

सरीरोगाहण सघयण संठाण कसाय तह य हुति सन्नाओ।
लेसिंदिय समुग्घाए सन्नी वेए य पज्जत्ती ॥१॥

दिट्ठी दंसण नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे।
उववाय ठिई समुग्घाय चवण गइरागई चेव ॥२॥

इसके आगे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो का २३ द्वारो द्वारा निरूपण किया जायेगा। वे तेवीस द्वार इस प्रकार हैं—

१ शरीर, २ अवगाहना, ३ सहनन, ४ सस्थान, ५ कषाय, ६ सज्ञा, ७ लेश्या, ८ इन्द्रिय, ९ समुद्घात, १० सज्ञी-असज्ञी, ११ वेद १२ पर्याप्ति, १३ दृष्टि, १४ दर्शन, १५ ज्ञान, १६ योग, १७ उपयोग, १८ आहार, १९ उपपात, २० स्थिति, २१ समवहत-असमवहत मरण २२. च्यवन और १३ गति-आगति।

आगे के सूत्रो मे क्रमश इन २३ द्वारो को लेकर प्रश्नोत्तर किये गये हैं। 'यथोद्देश तथा निर्देश' के अनुसार प्रथम क्रमश शरीर आदि द्वारो का कथन किया जाता है—

१३ [१] तेसि णं भंते! जीवाण कति सरीरया पण्णत्ता?
गोयमा! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए, तेयए, कम्मए।

[१] हे भगवन्! उन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के कितने शरीर कहे गये है?
गौतम! तीन शरीर कहे गये हैं, जैसे कि १ औदारिक २. तैजस और ३. कार्मण।

[२] तेसि णं भते! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?
गोयमा! जहन्नेणं अंगुलासखेज्जइभागं उक्कोसेणवि अंगुलासंखेज्जइभागं।

[२] भगवन्! उन जीवो के शरीर की अवगाहना कितनी बडी कही गई है?

गौतम! जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से भी अगुल का असख्यातवा भाग प्रमाण है।

[३] तेसि णं भंते ! जीवाण सरीरा किंसंघयणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! छेवट्टसंघयणा पण्णत्ता ।

[३] भगवन् ! उन जीवो के शरीर किस सहनन वाले कहे गये हैं ?
गौतम ! सेवार्तसहनन वाले कहे गये है ।

[४] तेसि णं भते ! जीवाण सरीरा किंसंठिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! मसूरचंदसठिया पण्णत्ता ।

[४] भगवन् ! उन जीवो के शरीर का सस्थान क्या है ?
गौतम ! चन्द्राकार मसूर की दाल के समान है ।

[५] तेसि णं भते ! जीवाण कति कसाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—कोहकसाए, माणकसाए, मायाकसाए, लोहकसाए ।

[५] भगवन् ! उन जीवो के कषाय कितने कहे गये है ?
गौतम ! चार कषाय कहे गये है । जैसे कि क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय ।

[६] तेसि णं भते ! जीवाणं कति सण्णा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारिसण्णा पण्णत्ता, तंजहा—आहारसण्णा जाव परिग्गहसण्णा ।

[६] भगवन् ! उन जीवो के कितनी सज्ञाएँ कही गई है ?
गौतम ! चार सज्ञाएँ कही गई हैं, यथा—आहारसज्ञा यावत् परिग्रहसज्ञा ।

[७] तेसि णं भते ! जीवाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तिन्नि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तजहा—किण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा ।

[७] भगवन् ! उन जीवो के लेश्याएँ कितनी कही गई है ?
गौतम ! तीन लेश्याएँ कही गई है । यथा—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या ।

[८] तेसि णं भंते ! जीवाणं कति इदियाइं पण्णत्ताइं ?

गोयमा ! एगे फासिदिए पण्णत्ते ।

[८] भगवन् ! उन जीवो के कितनी इन्द्रियाँ कही गई है ?
गौतम ! एक स्पर्शनेन्द्रिय कही गई है ।

[९] तेसि णं भंते ! जीवाण कति समुग्घाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ समुग्घाया पण्णत्ता, तंजहा—१. वेयणासमुग्घाए, २ कसायसमुग्घाए, ३. मारणंतियसमुग्घाए ।

[९] भगवन् ! उन जीवो के कितने समुद्घात कहे गये है ?
गौतम ! तीन समुद्घात कहे गये है, जैसे कि—१ वेदना-समुद्घात, २ कषाय-समुद्घात और ३. मारणातिक-समुद्घात ।

[१०] ते णं भंते ! जीवा किं सन्नी असन्नी ?

गोयमा ! नो सन्नी, असन्नी ।

[१०] भगवन् ! वे जीव सज्ञी है या असज्ञी ?

गौतम ! सज्ञी नही है, असज्ञी है ।

[११] ते णं भंते ! जीवा किं इत्थिवेया, पुरिसवेया, णपुंसगवेया ?

गोयमा ! णो इत्थिवेया, णो पुरिसवेया, णपुंसगवेया ।

[११] भगवन् ! वे जीव स्त्रीवेद वाले है, पुरुषवेद वाले है या नपुसकवेद वाले हैं ?

गौतम ! वे स्त्रीवेद वाले नही हैं, पुरुषवेद वाले नही है, नपुसकवेद वाले है ।

[१२] तेसि णं भंते ! जीवाणं कति पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि पज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—आहारपज्जत्ती, सरीरपज्जत्ती, इंदिय-पज्जत्ती, आणपाणुपज्जत्ती ।

तेसि णं भंते ! जीवाणं कति अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चत्तारि अपज्जत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—आहार-अपज्जत्ती जाव आणपाणु-अपज्जत्ती ।

[१२] भगवन् ! उन जीवो के कितनी पर्याप्तियां कही गई है ?

गौतम ! चार पर्याप्तियां कही गई है । जैसे १ आहारपर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इन्द्रियपर्याप्ति और ४ श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति ।

हे भगवन् ! उन जीवो के कितनी अपर्याप्तियां कही गई है ?

गौतम ! चार अपर्याप्तियां कही गई है । यथा—आहार-अपर्याप्ति यावत् श्वासोच्छ्वास-अपर्याप्ति ।

[१३] ते ण भंते ! जीवा किं सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्ममिच्छादिट्ठी ।

गोयमा ! णो सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, णो सम्ममिच्छादिट्ठी ।

[१३] भगवन् ! वे जीव सम्यग्दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि है या सम्यग्-मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) हैं ?

गौतम ! वे सम्यग्दृष्टि नही हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, सम्यग्-मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) भी नही हैं ।

[१४] ते णं भंते ! जीवा किं चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, ओहिदसणी, केवलदंसणी ।

गोयमा ! नो चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, नो ओहिदसणी, नो केवलदंसणी ।

[१४] भगवन् ! वे जीव चक्षुदर्शनी है, अचक्षुदर्शनी है, अवधिदर्शनी है या केवलदर्शनी हैं ?

गौतम ! वे जीव चक्षुदर्शनी नही है, अचक्षुदर्शनी है, अवधिदर्शनी नही है, केवलदर्शनी नही हैं ।

[१५] ते ण भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! नो णाणी, अण्णाणी। नियमा दुअण्णाणि, तंजहा—मति-अन्नाणी, सुय-अण्णाणी य।

[१५] भगवन् ! वे जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

गौतम ! वे ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं। वे नियम से (निश्चित रूप से) दो अज्ञानवाले होते हैं—मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी।

[१६] ते ण भंते ! जीवा किं मणजोगी, वयजोगी, कायजोगी ?

गोयमा ! नो मणजोगी, नो वयजोगी, कायजोगी।

[१६] भगवन् ! वे जीव क्या मनोयोग वाले, वचनयोग वाले और काययोग वाले हैं ?

गौतम ? वे मनोयोग वाले नहीं, वचनयोग वाले नहीं, काययोग वाले हैं।

[१७] ते णं भंते ! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?

गोयमा ! सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि।

[१७] भगवन् ! वे जीव क्या साकारोपयोग वाले हैं या अनाकारोपयोग वाले ?

गौतम ! साकार-उपयोग वाले भी है और अनाकार-उपयोग वाले भी हैं।

[१८] ते णं भंते ! जीवा किमाहारमाहारेंति ?

गोयमा ! दव्वओ अणंतपएसियाइं, खेत्तओ असंखेज्जपएसोवगाढाइं, कालओ अन्नयर समयट्ठिइयाइं, भावओ वण्णमंताइं, गंधमंताइं, रसमंताइं फासमंताइं जाइं भावओ वण्णमंताइं आहारेंति ताइं किं एगवण्णाइं आ०, दुवण्णाइं आ०, तिवण्णाइं आ०, चउवण्णाइं आ०, पंचवण्णाइं आहारेंति ?

गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगवण्णाइं पि दुवण्णाइं पि तिवण्णाइं पि चउवण्णाइं पिपंचवण्णाइं पि आहारेंति। विहाणमग्गणं पडुच्च कालाइं पि आ० जाव सुक्किलाइं पि आहारेंति।

जाइं वण्णओ कालाइं आहारेंति ताइं किं एगगुण कालाइं आ० जाव अणंतगुणकालाइं आहारेंति ?

गोयमा ! एगगुणकालाइं पि आ० जाव अणंतगुणकालाइं पि आ० एवं जाव सुक्किलाइं॥

जाइं भावओ गंधमंताइं आ० ताइं किं एगगंधाइं आ० दुगंधाइं आहारेंति ?

गोयमा ! ठाणमग्गणं पडुच्च एगगंधाइं पि आ० दुगंधाइं पि आ०। विहाणमग्गणं पडुच्च सुब्भिगंधाइं पि आ० दुब्भिगंधाइं पि आ०।

जाइं गंधओ सुब्भिगंधाइं आ० ताइं किं एगगुणसुब्भिगंधाइ आ० जाव अणंतगुणसुब्भिगंधाइं आहारेंति ?

गोयमा ! एगगुणसुब्भिगंधाइं पि आ० जाव अणंतगुणसुब्भिगंधाइं पि आहारेंति। एवं दुब्भिगंधाइं पि।

रसा जहा वण्णा।

जाइं भावओ फासमताइं आहारेंति ताइं किं एगफासाइं आ० जाव अट्ठफासाइं आहारेंति ?

गोयमा ! ठाणं मग्गणं पडुच्च नो एगफासाइं आ० नो दुफासाइं आ० नो तिफासाइं आ० चउफासाइं आ० पचफासाइं पि जाव अट्ठफासाइं पि आहारेंति । विहाणमग्गण पडुच्च कक्खडाइं पि आ० जाव लुक्खाइं पि आहारेंति ।

जाइं फासओ कक्खडाइं आ० ताइं किं एगगुणकक्खडाइं आ० जाव अणतगुणकक्खडाइं आहारेंति ?

गोयमा ! एगगुणकक्खडाइं पि आहारेंति जाव अणतगुणकक्खडाइं पि आहारेंति एव जाव लुक्खा णेयव्वा ।

ताइं भते किं पुट्ठाइं आहारेंति अपुट्ठाइं आ० ?

गोयमा ! पुट्ठाइं आ० नो अपुट्ठाइं आ० ।

ताइं भते ! ओगाढाइं आ० अणोगावढाइं आ० ?

गोयमा ! ओगाढाइं आ० नो अणोगाढाइं आ० ।

ताइं भते ! किं अणतरोवगाढाइं आ० परपरोवगाढाइं आ० ?

गोयमा ! अणतरोवगाढाइं आ०, नो परपरोवगाढाइं आ० ।

ताइं भते ! किं अणूइं आ०, बायराइं आ० ?

गोयमा ! अणूइं पि आ०, बायराइं पि आहारेंति ।

ताइं भते ! उड्ढं आ०, अहे आ०, तिरियं आहारेंति ?

गोयमा ! उड्ढं पि आ०, अहे वि आ०, तिरियं पि आ० ।

ताइं भंते ! किं आइं आ०, मज्झे आ०, पज्जवसाणे आहारेंति ?

गोयमा ! आइं पि आ०, मज्झे वि आ०, पज्जवसाणे पि आ० ।

ताइं भते ! किं सविसए आ०, अविसए आ० ।

गोयमा ! सविसए आ०, नो अविसए आ० ?

ताइं भते किं आणुपुव्वि आ०, अणाणुपुव्वि आ० ?

गोयमा ! आणुपुव्वि आ० नो अणाणुपुव्वि आहारेंति ।

ताइं भते ! किं तिदिसिं आहारेंति, चउदिसिं आ०, पचदिसिं आ०, छदिसिं आ० ?

गोयमा ! निव्वाघाएणं छदिसिं । वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं सिय चउदिसिं सिय पंचदिसिं ।

उस्सन्नकारणं पडुच्च वण्णओ कालाइं नीलाइं जाव सुक्किलाइं, गंधओ सुब्भिगंधाइं दुब्भिगंधाइं रसओ तित्तजावमहुराइं, फासओ कक्खडमउय जाव निद्धलुक्खाइं, तेसिं पोराणे वण्णगुणे विप्परिणामइत्ता परिपालइत्ता, परिसाडइत्ता परिविद्धसइत्ता अण्णे अपुव्वे वण्णगुणे गंधगुणे जाव फासगुणे उप्पाइत्ता आयसरीरोगाढा पोग्गले सव्वप्पणयाए आहारमाहरेंति ।

[१८] भगवन् ! वे जीव क्या आहार करते है ?

गौतम ! वे द्रव्य से अनन्तप्रदेशी पुद्‌गलो का आहार करते है, क्षेत्र से असख्यप्रदेशावगाढ पुद्‌गलो का आहार करते है, काल से किसी भी समय की स्थिति वाले पुद्‌गलो का आहार करते है, भाव से वर्ण वाले, गध वाले, रस वाले और स्पर्श वाले पुद्‌गलो का आहार करते है।

प्र —भगवन् ! भाव से जिन वर्ण वाले पुद्‌गलो का आहार करते है, वे एक वर्ण वाले, दो वर्ण वाले, तीन वर्ण वाले, चार वर्ण वाले या पच वर्ण वाले हैं ?

उ —गौतम ! स्थानमार्गणा की अपेक्षा से एक वर्ण वाले, दो वर्ण वाले, तीन वर्ण वाले, चार वर्ण वाले, पाच वर्ण वाले पुद्‌गलो का आहार करते हैं। भेदमार्गणा की अपेक्षा काले पुद्‌गलो का भी आहार करते है यावत् सफेद पुद्‌गलो का भी आहार करते हैं।

प्र —भते ! वर्ण से जिन काले पुद्‌गलो का आहार करते है वे क्या एकगुण काले है यावत् अनन्तगुण काले है ?

उ —गौतम ! एकगुण काले पुत्‌गलो का भी आहार करते है यावत् अनन्तगुण काले पुद्‌गलो का भी आहार करते हैं। इस प्रकार यावत् शुक्लवर्ण तक जान लेना चाहिए।

प्र —भते ! भाव से जिन गध वाले पुद्‌गलो का आहार करते हैं वे एक गध वाले या दो गध वाले पुद्‌गलो का आहार करते है ?

उ —गौतम ! स्थानमार्गणा की अपेक्षा एक गन्ध वाले पुद्‌गलो का भी आहार करते है और दो गन्ध वालो का भी। भेदमार्गणा की अपेक्षा से सुरभिगन्ध वाले और दुरभिगन्ध वाले दोनो का आहार करते हैं।

प्र —भते ! जिन सुरभिगन्ध वाले पुद्‌गलो का आहार करते है वे क्या एकगुण सुरभिगन्ध वाले हैं यावत् अनन्तगुण सुरभिगन्ध वाले होते है ?

उ —गौतम ! एकगुण सुरभिगन्ध वाले यावत् अनन्तगुण सुरभिगन्ध वाले पुद्‌गलो का आहार करते हैं।

इसी प्रकार दुरभिगन्ध के विषय मे भी कहना चाहिए। रसो का वर्णन भी वर्ण की तरह जान लेना चाहिए।

प्र —भते ! भाव की अपेक्षा से वे जीव जिन स्पर्श वाले पुद्‌गलो का आहार करते है वे एक स्पर्श वालो का आहार करते है यावत् आठ स्पर्श वाले पुद्‌गलो का आहार करते है ?

उ —गौतम ! स्थानमार्गणा की अपेक्षा एक स्पर्श वालो का आहार नही करते. दो स्पर्श वालो का आहार नही करते है, तीन स्पर्श वालो का आहार नही करते, चार स्पर्श वाले, पॉच स्पर्श वाले यावत् आठ स्पर्श वाले पुद्‌गलो का आहार करते है। भेदमार्गणा की अपेक्षा कर्कश स्पर्श वाले पुद्‌गलो का भी यावत् रूक्ष स्पर्श वाले पुद्‌गलो का भी आहार करते है।

प्र.—भते ! स्पर्श की अपेक्षा जिन कर्कश पुद्‌गलो का आहार करते है वे क्या एकगुण कर्कश हैं या अनन्तगुण कर्कश है ?

उ —गौतम ! एकगुण कर्कश का भी आहार करते है और अनन्तगुण कर्कश का भी आहार करते है । इस प्रकार यावत् रूक्षस्पर्श तक जान लेना चाहिए ।

प्र —भते ! वे आत्म-प्रदेशो से स्पृष्ट का आहार करते है या अस्पृष्ट का आहार करते हैं ?

उ —गौतम ! स्पृष्ट का आहार करते है, अस्पृष्ट का नही ।

प्र —भते ! वे आत्म-प्रदेशो मे अवगाढ पुद्गलो का आहार करते है या अनवगाढ का ?

उ —गौतम ! आत्म-प्रदेशो मे अवगाढ पुद्गलो का आहार करते है, अनवगाढ का नही ।

प्र.—भते ! वे अनन्तर-अवगाढ पुद्गलो का आहार करते है या परम्परा से अवगाढ पुद्गलो का आहार करते है ?

उ —गौतम ! अनन्तर-अवगाढ पुद्गलो का आहार करते है, परम्परावगाढ का नही ।

प्र —भते ! वे अणु—थोडे प्रमाण वाले पुद्गलो का आहार करते हैं या बादर—अधिक प्रमाण वाले पुद्गलो का आहार करते है ?

उ —गौतम ! वे थोडे प्रमाण वाले पुद्गलो का भी आहार करते हैं और अधिक प्रमाण वाले वाले पुद्गलो का भी आहार करते हैं ।

प्र —भते ! क्या वे ऊपर, नीचे या तिर्यक् स्थित पुद्गलो का आहार करते है ?

उ —गौतम ! वे ऊपर स्थित पुद्गलो का भी आहार करते है, नीचे स्थित पुद्गलो का भी आहार करते हैं और तिरछे स्थित पुद्गलो का भी आहार करते है ।

प्र —भते ! क्या वे आदि, मध्य और अन्त मे स्थित पुद्गलो का आहार करते हैं ?

उ.—गौतम ! वे आदि मे स्थित पुद्गलो का भी आहार करते हैं, मध्य मे स्थित पुद्गलो का भी आहार करते हैं और अन्त मे स्थित पुद्गलो का भी आहार करते है ।

प्र —भते ! क्या वे अपने योग्य पुदगलो का आहार करते हैं या अपने अयोग्य पुद्गलो का आहार करते हैं ?

उ —गौतम ! वे अपने योग्य पुद्गलो का आहार करते है, अयोग्य पुद्गलो का नही ।

प्र —भते ! क्या वे आनुपूर्वी—समीपस्थ पुद्गलो का आहार करते है या अनानुपूर्वी—दूरस्थ पुद्गलो का आहार करते है ?

उ —गौतम ! वे समीपस्थ पुद्गलो का आहार करते हैं, दूरस्थ पुद्गलो का आहार नही करते ।

प्र —भते ! क्या वे तीन दिशाओ, चार दिशाओ, पाँच दिशाओ और छह दिशाओ मे स्थित पुद्गलो का आहार करते है ?

उ —गौतम ! व्याघात न हो तो छहो दिशाओ के पुद्गलो का आहार करते है । व्याघात हो तो तीन दिशाओ, कभी चार दिशाओ और कभी पाँच दिशाओ मे स्थित पुद्गलो का आहार करते है ।

प्राय विशेप करके वे जीव कृष्ण, नील यावत् शुक्ल वर्ण वाले पुद्गलो का आहार करते है । गन्ध मे सुरभिगध दुरभिगध वाले, रस से तिक्त यावत् मधुररस वाले, स्पर्श से कर्कश-मृदु यावत् स्निग्धरूक्ष पुद्गलो का आहार करते हैं ।

वे उन आहार्यमाण पुद्गलो के पुराने (पहले के) वर्णगुणो को यावत् स्पर्शगुणो को बदलकर, हटाकर, झटककर, विध्वसकर उनमे दूसरे अपूर्व वर्णगुण, गन्धगुण, रसगुण और स्पर्शगुणो को उत्पन्न करके आत्मशरीरावगाढ पुद्गलो को सब आत्मप्रदेशो से ग्रहण करते है।

१९. ते ण भते ! जीवा कओहिंतो उववज्जति ?
किं नेरइयतिरिक्खमणुस्सदेवेहिंतो उववज्जंति ?
गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो देवेहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणियपज्जत्तापज्जत्तेहिंतो असखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जति,
मणुस्सेहिंतो अकम्मभूमिग-असंखेज्जवासाउयवज्जेहिंतो उववज्जति । वक्कति-उववाओ भाणियव्वो ।

[१९] भगवन् ! वे जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?
क्या वे नरक से, तिर्यञ्च से, मनुष्य से या देव से आकर उत्पन्न होते है ?

गौतम ! वे नरक से आकर उत्पन्न नही होते, तिर्यञ्च से आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्य से आकर उत्पन्न होते हैं, देव से आकर उत्पन्न नही होते हैं।

तिर्यञ्च से उत्पन्न होते है तो असख्यातवर्षायु वाले भोगभूमि के तिर्यञ्चो को छोडकर शेष पर्याप्त-अपर्याप्त तिर्यंचो से आकर उत्पन्न होते है।

मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो अकर्मभूमि वाले और असख्यात वर्षो की आयु वालो को छोडकर शेष मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार (प्रज्ञापना के अनुसार) व्युत्क्रान्ति-उपपात कहना चाहिए।

[२०] तेसिं ण भते ! जीवाण केवइय कालं ठिई पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[२०] उन जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त उनकी स्थिति है।

[२१] ते णं भंते ! जीवा मारणंतियसमुग्घाएणं किं समोहया मरति असमोहया मरति ?
गोयमा ! समोहयावि मरंति असमोहया वि मरंति ।

[२१] वे जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होकर मरते है या असमवहत होकर ?
गौतम ! वे मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते है।

[२२] ते णं भंते ! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जति ? किं नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति, मणुस्सेसु उववज्जति, देवेसु उववज्जति ?

गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जति, णो देवेसु उववज्जति ।

किं एगिंदिएसु उववज्जति जाव पंचिंदिएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जति, असंखेज्ज-वासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तएसु उववज्जंति ।

मणुस्सेसु अकम्मभूमग-अंतरदीवग-असंखेज्जवासाउयवज्जेसु पज्जत्तापज्जत्तेसु उववज्जति ।

[२२] भगवन् ! वे जीव वहाँ से निकलकर अगले भव मे कहाँ जाते हैं ? कहाँ उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको मे, तिर्यञ्चो मे, मनुष्यो मे और देवो मे उत्पन्न होते है ?

गौतम ! नैरयिको मे उत्पन्न नही होते, तिर्यंचो मे उत्पन्न होते हैं, मनुष्यो मे उत्पन्न होते है, देवो मे उत्पन्न नही होते ।

भते ! क्या वे एकेन्द्रियो मे यावत् पचेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है ?

गौतम ! वे एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं, यावत् पचेन्द्रियतिर्यचयोनिको मे उत्पन्न होते है, लेकिन असख्यात वर्षायु वाले तिर्यंचो को छोडकर शेष पर्याप्त-अपर्याप्त तिर्यंचो मे उत्पन्न होते है ।

अकर्मभूमि वाले, अन्तरद्वीप वाले तथा असख्यात-वर्षायु वाले मनुष्यो को छोडकर शेष पर्याप्त-अपर्याप्त मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं ।

[२३] ते णं भंते ! जीवा कतिगतिका कतिआगतिका पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुगतिका दुआगतिका परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो !

से तं सुहुमपुढविक्काइया ।।

[२३] भगवन् ! वे जीव कितनी गति मे जाने वाले और कितनी गति से आने वाले है ?

गौतम ! वे जीव दो गति वाले और दो आगति वाले है । हे आयुष्मन् श्रमण ! वे जीव प्रत्येक शरीर वाले और असख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण कहे गये हैं ।

यह सूक्ष्म पृथ्वीकायिक का वर्णन हुआ ।।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के सम्बन्ध मे २३ द्वारो के द्वारा विशेष जानकारी भगवान् श्री गौतम के प्रश्नो और देवाधिदेव प्रभु श्री महावीर के उत्तर के रूप मे दी गई है।

यहाँ मूल सूत्र मे 'भते !' पद के द्वारा श्री गौतमस्वामी ने प्रभु महावीर को सम्बोधन किया है । 'भते !' का अर्थ सामान्यतया 'भगवन्' होता है । टीकाकार ने भदन्त अर्थात् परम कल्याण-योगिन् ! अर्थ किया है । सचमुच भगवान् महावीर परम सत्यार्थ का प्रकाश करने के कारण परम कल्याणयोगी हैं ।

यहाँ सहज जिज्ञासा होती है कि भगवान् गौतम भी मातृकापद श्रवण करते ही प्रकृष्ट श्रुत-ज्ञानावरण के क्षयोपशम से चौदह पूर्वो के ज्ञाता हो गये थे । चौदह पूर्वधारियो से कोई भी प्रज्ञापनीय

भाव अविदित नही होता। विशेषत गणधर गौनम तो सर्वाक्षरसन्निपाती और सभिन्नश्रोतो-लब्धि जैसी सर्वोत्कृष्ट लब्धियो से सम्पन्न थे। वे प्रश्न किये जाने पर सख्यातीत भवो को बता सकते थे।[1] ऐसे विशिष्ट ज्ञानी भगवान् गौतम साधारण साधारण प्रश्न क्यो पूछते है ?

इस जिज्ञासा को लेकर तीन प्रकार के समाधान प्रस्तुत किये गये हैं। प्रथम समाधान यह है कि—श्री गौतम गणधर सब कुछ जानते थे और वे अपने विनेयजनो को सब प्रतिपादन भी करते थे। परन्तु उसकी यथार्थता का शिष्यो के मन मे विश्वास पैदा करने के लिए वे भगवान् से प्रश्न करके उनके श्रीमुख से उत्तर दिलवाते थे।

दूसरा समाधान यह है कि द्वादशागी मे तथा अन्य श्रुतसाहित्य मे गणधरो के प्रश्न तथा भगवान् के उत्तर रूप बहुत सारा भाग है, अतएव सूत्रकार ने इसी रूप मे सूत्र की रचना की है।

तीसरा समाधान यह है कि चौदह पूर्वधर होने पर भी आखिर तो श्री गौतम छद्मस्थ थे और छद्मस्थ मे स्वल्प भी अनाभोग (अनुपयोग) हो सकता है।[2] इसलिए भगवान् से पूछकर उस पर यथार्थता की छाप लगाने के लिए भी उनका प्रश्न करना सगत ही है।

भगवान् गौतम ने प्रश्न पूछा कि हे परमकल्याणयोगिन् ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के कितने शरीर होते है ?

प्रभु महावीर ने लोकप्रसिद्ध महागोत्र 'गौतम' सम्बोधन से सम्वोधित कर गौतम स्वामी के मन मे प्रमोद और आह्लाद्र भाव पैदा करते हुए उत्तर दिया। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिज्ञासु के असाधारण गुणो का कथन करने से उस व्यक्ति मे विशिष्ट प्रेरणा जागृत होती है, जिससे वह विषय को भलीभाँति समझ सकता है।

१ **शरीरद्वार**—भगवान् ने कहा कि—सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के तीन शरीर होते हैं—औदारिक, तैजस् और कार्मण।

सामान्यरूप से शरीर पॉच हैं—१ औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक, ४ तैजस् और ५ कार्मण।

औदारिक—उदार अर्थात् प्रधान—श्रेष्ठ पुद्गलो से बना हुआ शरीर औदारिक है। यह तीर्थकर और गणधरो के शरीर की अपेक्षा समझना चाहिए। तीर्थंकर एव गणधरो के शरीर की तुलना मे अनुत्तर विमानवासी देवो के शरीर अनन्तगुणहीन हैं।

अथवा उदार का अर्थ बृहत् (बडा) है। शेष शरीरो की अपेक्षा बडा होने से औदारिक है। औदारिक शरीर का प्रमाण कुछ अधिक हजार योजन है। यह बृहत्तर (जन्मजात) भवधारणीय वैक्रिय शरीर की अपेक्षा से है। अन्यथा उत्तरवैक्रिय तो लाखयोजन प्रमाण भी होता है।

---

१ सखातीते वि भवे साहइ ज वा परो उ पुच्छेज्जा।
न य ण अणाइसेसी वियाणइ एस छउमत्थो ॥

२. नहि नामानाभोगश्छद्मस्थस्येह कस्यचिन्नास्ति।
ज्ञानावरणीय हि ज्ञानावरणप्रकृति कर्म ॥

प्राप्त हो जाती है, उसका हेतु भी तैजस्‌शरीर है ।[1] यह सभी ससारी जीवो के होता है ।

कार्मणशरीर—आत्मप्रदेशो के साथ क्षीर-नीर की तरह मिले हुए कर्मपरमाणु ही शरीर रूप से परिणत होकर[2] कार्मणशरीर कहलाते हैं। कर्म-समूह ही कार्मणशरीर है। यह अन्य सब शरीरो का मूल है। कार्मण के होने पर ही शेष शरीर होते हैं। कार्मण के उच्छेद होते ही सब शरीरो का उच्छेद हो जाता है।

जीव जब अन्य गति मे जाता है तब तैजस् सहित कार्मण शरीर ही उसके साथ होता है। सूक्ष्म होने के कारण यह तैजस-कार्मण शरीर गत्यन्तर मे जाता-आता दृष्टिगोचर नही होता। इस विषय मे अन्यतीर्थिक भी सहमत हैं। उन्होने कहा है कि—गत्यन्तर[3] मे जाता-आता हुआ यह शरीर सूक्ष्म होने से दृष्टिगोचर नही होता। दृष्टिगोचर न होने से उसका अभाव नही मानना चाहिए।

उक्त पाच शरीरो मे से सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के तीन शरीर होते हैं—औदारिक, तैजस और कार्मण। वैक्रिय और आहारक उनके नही होते। क्योंकि ये दोनो लब्धियाँ हैं और भवस्वभाव से ही वे जीव इन लब्धियो से वचित होते हैं।

२. अवगाहनाद्वार—शरीर की ऊँचाई को अवगाहना कहते है। यह दो प्रकार की होती है—जघन्य और उत्कृष्ट। सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवो की अवगाहना जघन्य अगुल का असंख्यातवाँ भाग है और उत्कृष्ट भी अगुल का असख्यातवाँ भाग ही है, परन्तु जघन्य पद से उत्कृष्ट पद मे अपेक्षाकृत अधिक अवगाहना जाननी चाहिए।

३ संहननद्वार—हड्डियो की रचनाविशेष को संहनन कहते है। वे छह हैं—वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका और सेवार्त।

वज्रऋषभनाराच—वज्र का अर्थ कीलिका है। ऋषभ का अर्थ परिवेष्टनपट्ट है और नाराच का अर्थ दोनो तरफ मर्कटबन्ध होना है। तात्पर्य यह हुआ कि दो हड्डियाँ दोनो ओर से मर्कटबन्ध से जुडी हो, ऊपर से तीसरी हड्डीरूप पट्टे से वेष्टित हो और ऊपर मे तीनो अस्थियो को भेदता हुआ कीलक हो। इस प्रकार की मजबूत हड्डियो की रचना को वज्रऋषभनाराचसहनन कहते हैं।

ऋषभनाराच—जिसमे मर्कटबन्ध हो, पट्ट हो लेकिन कीलक न हो, ऐसी अस्थिरचना को ऋषभनाराच कहते हैं।

नाराच—जिसमे मर्कटबन्ध से ही हड्डियाँ जुडी हो वह नाराचसहनन है।

---

१. सव्वस्स उम्हासिद्ध रसाइ आहारपाकजण ग च।
तेजगलद्धिनिमित्तं च तेयग होइ नायव्व।

२. कम्मविकारो कम्मट्ठविह विचित्तकम्मनिप्फन्न।
सव्वेसि सरीराणा कारणभूय मुणेयव्व॥

३ अन्तरा भवदेहोऽपि सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते।
निष्क्रामन् प्रविशन् वाऽपि नाभावोऽनीक्षणादपि॥

अर्ध-नाराच—जिसमे एक तरफ मर्कटवन्ध हो और दूसरी ओर कीलिका हो, वह अर्ध-नाराच है।

कीलिका—जिसमे हड्डियाँ कील से जुडी हो।

सेवार्त (छेदवर्ति)—जिसमे हड्डियाँ केवल आपस मे जुड़ी हुई हो (कीलक आदि का वन्ध भी न हो) वह सेवार्त या छेदवर्ति सहनन है। प्राय मनुष्यादि के यह सहनन होने पर तेलमालिश आदि की अपेक्षा रहती है।

उक्त प्रकार के छह सहननो मे से सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के अन्तिम छेदवर्ति या सेवार्त सहनन कहा गया है। यद्यपि सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के औदारिक शरीर मे हड्डियाँ नही होती है फिर भी हड्डी होने की स्थिति मे जो शक्ति-विशेष होती है वह उनमे है, अत उनको उपचार से सहनन माना है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के औदारिक शरीर तो है, उस शरीर के कारण से सूक्ष्म शक्ति-विशेष तो होती ही है।

४ **संस्थानद्वार**—सस्थान का अर्थ है—आकृति। ये सस्थान छह बताये गये हैं। १ समचतुरस्रसस्थान, २ न्यग्रोध-परिमडलसस्थान, ३ सादिसस्थान, ४ कुब्जसंस्थान, ५ वामन-सस्थान, ५ हुडसस्थान।

१. **समचतुरस्र**—पालथी मार कर वैठने पर जिस शरीर के चारो कोण समान हो। दोनो जानुओ, दोनो स्कन्धो का अन्तर समान हो, वाम जानु और दक्षिण स्कन्ध, वाम स्कन्ध और दक्षिण जानु का अन्तर समान हो, आसन से कपाल तक का अन्तर समान हो, ऐसी शरीराकृति को समचतुरस्र-सस्थान कहते हैं। अथवा सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार जिस शरीर के सम्पूर्ण अवयव ठीक प्रमाण वाले हो, वह समचतुरस्र हैं।

२. **न्यग्रोधपरिमंडल**—न्यग्रोध का अर्थ वटवृक्ष है। वटवृक्ष की तरह जिस शरीर का नाभि से ऊपर का हिस्सा पूर्ण हो और नीचे का भाग हीन हो वह न्यग्रोधपरिमडल है।

३. **सादि**—यहाँ सादि से अर्थ नाभि से नीचे के भाग से है। जिस शरीर मे नाभि से नीचे का भाग पूर्ण हो और ऊपर का भाग हीन हो वह सादिसस्थान है।

४ **कुब्ज**—जिस शरीर मे हाथ, पैर, सिर आदि अवयव ठीक हो परन्तु छाती, पीठ, पेट हीन और टेढे हो, वह कुब्जसस्थान है।

५ **वामन**—जिस शरीर मे छाती, पीठ, पेट आदि अवयव पूर्ण हो परन्तु हाथ, पैर आदि अवयव छोटे हो वह वामनसस्थान है।

६ **हुंड**—जिस शरीर के सव अवयव हीन, अशुभ और विकृत हो, वह हुडसस्थान है।

उक्त छह सस्थानो से सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के कौनसा सस्थान है, इस प्रश्न के उत्तर मे कहा गया है कि उनका सस्थान मसूर की दाल जैसा चन्द्राकार सस्थान है। चन्द्राकार मसूर की दाल जैसा सस्थान हुडकसस्थान ही है। अन्य पाँच सस्थानो मे यह आकार नही हो सकता। अत हुड-सस्थान मे ही यह समाविष्ट होता है। जीवो के छह सस्थानो के अतिरिक्त तो और कोई सस्थान नही

होता। हुडकसस्थान का कोई एक विशिष्ट रूप नहीं है। वह असस्थित स्वरूप वाला है। अतएव सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के मसूर की दाल जैसी आकृति वाला हुडसस्थान जानना चाहिए।

५ **कषायद्वार**—जिसमे प्राणी कसे जाते है, पीड़ित होते हैं वह है कष अर्थात् ससार। जिनके कारण प्राणी संसार मे आवागमन करते हैं—भवभ्रमण करते हैं वे कषाय हैं। कषाय ४ हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो मे चारो कषाय पाये जाते हैं। यद्यपि इन जीवो मे ये कषाय और इनके बाह्य चिह्न दिखाई नही देते किन्तु मन्द परिणाम से उनमें होते अवश्य है। अनाभोग से मन्द परिणामो की विचित्रता से वे अवश्य उनमे होते हैं। भले ही दिखाई न दे।

६ **संज्ञाद्वार**—सज्ञा दो प्रकार की हैं—१ ज्ञानरूप सज्ञा और २ अनुभवरूप सज्ञा। ज्ञानरूप सज्ञा मतिज्ञानादि पाँच ज्ञानरूप है। स्वकृत असातावेदनीय कर्मफल का अनुभव करने रूप अनुभवसज्ञा है। यहाँ अनुभवसज्ञा का अधिकार है, क्योकि ज्ञानरूप सज्ञा की ज्ञानद्वार मे परिगणना की गई है। अनुभवसज्ञा चार प्रकार की है—१ आहारसज्ञा, २. भयसज्ञा, ३ मैथुनसज्ञा और ४ परिग्रहसज्ञा।

आहारसंज्ञा—क्षुधा वेदनीयकर्म से होने वाली आहार की अभिलाषा रूप आत्म-परिणाम आहारसंज्ञा है।

भयसंज्ञा—भय वेदनीय से होने वाला त्रासरूप परिणाम भयसज्ञा है।

मैथुनसंज्ञा—वेदोदय जनित मैथुन की अभिलाषा मैथुनसज्ञा है।

परिग्रहसंज्ञा—लोभ से होने वाला मूर्छा परिणाम परिग्रहसज्ञा है।

आहारादि सज्ञा इच्छारूप होने से मोहनीय कर्म के उदय से होती है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो मे ये चारो सज्ञाएँ अव्यक्त रूप मे होती हैं।

७ **लेश्याद्वार**—जिसके कारण आत्मा कर्मो के साथ चिपकती है वह लेश्या है।[1] कृष्णादि द्रव्यो के सान्निध्य से आत्मा मे होने वाले शुभाशुभ परिणाम लेश्या हैं। जैसे स्फटिक रत्न मे अपना कोई काला-पीला-नीला आदि रंग नही होता है, वह तो स्वच्छ होता है, परन्तु उसके सान्निध्य में जैसे रग की वस्तु आती है, वह उसी रंग का हो जाता है। वैसे ही कृष्णादि पदार्थो के सान्निध्य से आत्मा मे जो शुभाशुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं, वह लेश्या है।

शास्त्रकारो ने लेश्याओ के छह भेद बताये हैं—१ कृष्णलेश्या, २ नीललेश्या, ३. कापोतलेश्या, ४. तेजोलेश्या, ५ पद्मलेश्या और ६ शुक्ललेश्या।

जम्बूफलखादक छह पुरुषो के दृष्टान्त से शास्त्रकारो ने इन लेश्याओ का स्वरूप उदाहरण द्वारा समझाया है। वह इस प्रकार है—

छह पुरुष रास्ता भूल कर जगल मे एक जामुन के वृक्ष के नीचे बैठकर इस प्रकार विचारने लगे—एक पुरुष बोला कि इस पेड को जडमूल से उखाड देना चाहिए। दूसरा पुरुष बोला कि जडमूल से तो नही स्कन्ध भाग काट देना चाहिए। तीसरे ने कहा कि बड़ी-बड़ी डालियाँ काट

१ कृष्णादि द्रव्यसाचिव्यात् परिणामो य आत्मन.।
स्फटिकस्येव तत्राय, लेश्याशब्द प्रवर्तते ॥

लेनी चाहिए। चौथा बोला—जामुन के गुच्छो को ही तोडना चाहिए। पाँचवा बोला—सब गुच्छे नही केवल पके-पके जामुन तोड लेने चाहिए। छठा बोला—वृक्षादि को काटने की क्या जरूरत है, हमे जामुन खाने से मतलव है तो सहजरूप से नीचे पडे हुए जामुन ही खा लेने चाहिए।

जैसे उक्त पुरुषो की छह तरह की विचारधाराएँ हुई, इसी तरह लेश्याओ मे भी अलग-अलग परिणामो की धारा होती है।[1]

प्रारम्भ की कृष्ण, नील, कापोत—ये तीन लेश्याएँ अशुभ हैं और पिछली तेज, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्याएँ शुभ हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो मे तीन अशुभ लेश्याएँ ही पायी जाती हैं। सूक्ष्मो मे देवो की उत्पत्ति नही होती है। अतएव आदि की तीन लेश्याएँ ही इनमे होती हैं।

८ इन्द्रियद्वार—'इन्दनाद् इन्द्र' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सम्पूर्ण ज्ञानरूप परम ऐश्वर्य का अधिपति होने से आत्मा इन्द्र है। उसका अविनाभावी चिह्न इन्द्रियाँ हैं। वे इन्द्रियाँ पाँच हैं—श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय।

ये पाँचो इन्द्रियाँ दो-दो प्रकार की हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय भी दो प्रकार की हैं— १ निर्वृत्तिद्रव्येन्द्रिय और २ उपकरणद्रव्येन्द्रिय।

निर्वृत्ति का अर्थ है अलग-अलग आकृति की पौद्गलिक रचना। यह निर्वृत्तिइन्द्रिय भी वाह्य और आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार की है। कान की पपडी आदि वाह्य निर्वृत्ति है और इसका कोई एक प्रतिनियत आकार नही है। मनुष्य के कान नेत्र के आजु-वाजु और भौहो के बरावरी मे होते हैं जवकि घोडे के कान नेत्रो के ऊपर होते हैं और उनके अग्रभाग तीखे होते हैं।

आभ्यन्तर निर्वृत्तिइन्द्रिय सव जीवो के एकरूप होती है। इसको लेकर ही आगम मे कहा गया है कि—श्रोत्रेन्द्रिय का आकार कदम्व के फल के समान, चक्षुरिन्द्रिय का मसूर की चन्द्राकार दाल के समान, घ्राणेन्द्रिय का आकार अतिमुक्तक के समान, जिह्वेन्द्रिय का खुरपे जैसा और स्पर्शनेन्द्रिय का नाना प्रकार का है। स्पर्शनेन्द्रिय मे प्राय वाह्य-आभ्यन्तर का भेद नही, तत्वार्थ की मूल टीका मे यह भेद नही माना गया है।

उपकरण का अर्थ है आभ्यन्तर निर्वृत्ति की शक्ति-विशेष। वाह्य निर्वृत्ति तलवार के समान है और आभ्यन्तर निर्वृत्ति तलवार की धार के समान स्वच्छतर पुद्गल समूह रूप है। उपकरण इन्द्रिय और आभ्यन्तर निर्वृत्ति इन्द्रिय मे थोडा भेद है, जो शक्ति और शक्तिमान मे है। आभ्यन्तर निर्वृत्ति इन्द्रिय के होने पर भी उपकरणेन्द्रिय का उपघात होने पर विषय ग्रहण नही होता। जैसे कदम्वाकृति रूप आभ्यन्तर निर्वृत्ति इन्द्रिय के होने पर भी महाकठोर घनगर्जना आदि से शक्ति का उपघात होने पर शव्द सुनाई नही पडता।

---

१ पथाओ परिभट्ठा छप्पुरिसा अडविमज्झयारमि।
जम्वूतरुस्स हेट्ठा परोप्पर ते विचिंतेंति ॥१॥
निम्मूल खधसाला गोच्छे पक्के य पडियसडियाइ।
जह एएसि भावा, तह लेसाओ वि णायव्वा ॥२॥

भावेन्द्रिय दो प्रकार की है—१. लब्धि और २ उपयोग। आवरण का क्षयोपशय होना लब्धिइन्द्रिय है और अपने-अपने विषय मे लब्धि के अनुसार प्रवृत्त होना—जानना उपयोग-भावेन्द्रिय है।

द्रव्येन्द्रिय-भावेन्द्रिय आदि अनेक प्रकार की इन्द्रियाँ होने पर भी यहाँ बाह्य निर्वृत्ति रूप इन्द्रिय को लेकर प्रश्नोत्तर समझने चाहिए। इसको लेकर ही एकेन्द्रियादि का व्यवहार होता है।[1] बकुल आदि वनस्पतियाँ भावरूप से पाँचो इन्द्रियो के विषय को ग्रहण करती हैं किन्तु वे पचेन्द्रिय नही कही जाती, क्योकि उनके बाह्येन्द्रियाँ पाँच नही हैं। स्पर्शनरूप बाह्य इन्द्रिय एक होने से वे एकेन्द्रिय ही है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो मे केवल एक स्पर्शनेन्द्रिय ही होती है।

९ **समुद्घातद्वार**—वेदना आदि के साथ एकरूप होकर वेदनीयादि कर्मदलिको का प्रबलता के साथ घात करना समुद्घात[2] कहलाता है।

समुद्घात सात हैं—१ वेदनासमुद्घात, २ कपायसमुद्घात, ३ मारणान्तिकसमुद्घात, ४ वैक्रियसमुद्घात, ५ तैजससमुद्घात, ६ आहारकसमुद्घात और ७ केवलिसमुद्घात।

१ **वेदनासमुद्घात**—असातावेदनीय कर्म को लेकर वेदनासमुद्घात होता है। तीव्रवेदना से अभिभूत जीव बहुत-से वेदनीयादि कर्मपुद्गलो को, कालान्तर मे अनुभवयोग्य दलिको को भी उदीरणाकरण से उदयावलिका मे लाकर वेदता-भोग भोग कर उन्हे निर्जरित कर देता है—आत्म-प्रदेशो से अलग कर देता है। वेदना से पीडित जीव अनन्तानन्त कर्मपुद्गलो से वेष्टित आत्मप्रदेशो को शरीर से बाहर फेकता है। उन प्रदेशो से वदन-जघनादि छिद्रो को और कर्ण-स्कन्धादि अन्तरालों की पूर्ति करके आयाम-विस्तार से शरीरमात्र क्षेत्र मे व्याप्त होकर अन्तर्मुहूर्त तक स्थित होता है। उस अन्तर्मुहूर्त मे बहुत सारे असातावेदनीय के कर्मपुद्गलो की परिशातना, निर्जरा होती है। यह वेदना-समुद्घात है।

२ **कषायसमुद्घात**—यह समुद्घात कषायोदय से होता है। कषायोदय से समाकुल जीव स्वप्रदेशो को बाहर निकालकर उनसे वदनोदरादि रन्ध्रो और अन्तरालो की पूर्ति कर आयाम-विस्तार से देहमात्र क्षेत्र मे व्याप्त होकर रहता है। इस स्थिति मे वह जीव बहुत से कषायकर्म-पुद्गलो का परिशातन (निर्जरा) करता है, यह कपायसमुद्घात है।

३ **मारणांतिकसमुद्घात**—आयुकर्म को लेकर यह समुद्घात होता है। इस समुद्घात वाला जीव पूर्वविधि से बहुत सारे आयुकर्म के दलिको की परिशातना करता है, यह मारणातिकसमुद्घात है।

४ **वैक्रियसमुद्घात**—वैक्रियशरीर का प्रारम्भ करते समय वैक्रियशरीर नामकर्म को लेकर यह होता है। वैक्रियसमुद्घातगत जीव स्वप्रदेशो को शरीर से बाहर निकालकर शरीर की

---

१ पचिदिओ उ बउलो नरोव्व सव्वविसओवलभाओ।
तहवि न भण्णइ पचिदिउ त्ति बज्झिदियाभावा॥

२. समिति—एकीभावे उत्—प्राबल्ये, एकीभावेन प्राबल्येन घात समुद्घात।

चौड़ाई प्रमाण तथा सख्यातयोजन प्रमाण लम्वा दण्ड निकालता है और पहले वधे हुए वैक्रिय नाम-कर्म के स्थूल पुद्गलो की परिशातना करता है। यह वैक्रियसमुद्घात है।

५ **तैजससमुद्घात**—तैजसशरीर नामकर्म को लेकर यह होता है। वैक्रिय समुद्घात की तरह यह भी जानना चाहिए। इसमे तैजसशरीर नामकर्म की बहुत निर्जरा होती है।

६. **आहारकसमुद्घात**—आहारकशरीर की रचना करते समय यह समुद्घात होता है। इसमे आहारकशरीर नामकर्म के बहुत से पुद्गलो की निर्जरा होती है। विधि वैक्रियशरीर की तरह जानना चाहिए।

७ **केवलिसमुद्घात**—जब केवली के आयुकर्म के दलिक कम रह जाते हैं और वेदनीय, नाम, गोत्र कर्म के दलिक विशेष शेप होते हैं, तव निर्वाण के अन्तर्मुहूर्त पहले केवली समुद्घात करते हैं। इसमे वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म के बहुत सारे दलिको की निर्जरा हो जाती है। इसमे आठ समय लगते हैं। प्रथम समय मे दण्डरचना, द्वितीय समय मे कपाटरचना, तीसरे समय मे मन्थान, चौथे समय मे सम्पूर्ण लोक मे व्याप्ति, पाचवें समय मे अन्तराल के प्रदेशो का सहरण, छठे समय मे मन्थान का सहरण, सातवे समय मे कपाट का सहरण और आठवे समय मे दण्ड का सहरण कर केवली पुन स्वशरीरस्थ हो जाते है। इस प्रक्रिया से वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म के दलिको का प्रभूत शातन हो जाता है और वे आयुकर्म के दलिको के तुल्य हो जाते हैं। वेदनादि छह समुद्घातो का समय अन्तर्मुहूर्त और केवलिसमुद्घात का काल आठ समय मात्र है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो मे पूर्वोक्त सात समुद्घातो मे से तीन समुद्घात होते है—वेदना, कषाय और मारणातिक, शेष ४ समुद्घात नही होते। क्योकि उनमे वैक्रिय, तैजस, आहारक और केवल लब्धि का अभाव है।

१० **संज्ञीद्वार**—सज्ञा जिसके हो, वह सज्ञी है। यहाँ सज्ञा से तात्पर्य भूत, वर्तमान और भविष्यकाल का पर्यालोचन करने की शक्ति से है। विशिष्ट स्मरणादि रूप मनोविज्ञान वाले जीव सज्ञी हैं। उक्त मनोविज्ञान से विकल जीव असज्ञी हैं।

सज्ञा तीन प्रकार की कही गई है—१ दीर्घकालिकी सज्ञा, २ हेतुवादोपदेशिकी और ३ दृष्टिवादोपदेशिकी।

दीर्घकालिकी सज्ञा—भूतकाल का स्मरण, भविष्यकाल का चिन्तन और वर्तमान का प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप व्यापार, जिस सज्ञा द्वारा होता है, वह दीर्घकालिकी सज्ञा है। इसी सज्ञा को लेकर सज्ञी-असज्ञी का विभाग आगम मे किया गया है। यह सज्ञा देव, नारक और गर्भज तिर्यंच मनुष्यो को होती है।

हेतुवादोपदेशिकी—देहनिर्वाह हेतु इष्ट मे प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति के लिए उपयोगी केवल वर्तमानकालिक विचार ही जिस सज्ञा से हो, वह हेतुवादोपदेशिकी सज्ञा है। यह संज्ञा द्वीन्द्रियादि मे भी पाई जाती है। केवल एकेन्द्रियो मे नही पाई जाती।

दृष्टिवादोपदेशिकी—यहाँ दृष्टि से मतलब सम्यग्दर्शन से है। इसकी अपेक्षा से क्षायोपशमिक आदि सम्यक्त्व वाले जीव ही सज्ञी है। मिथ्यात्वी असज्ञी है।

उक्त तीन प्रकार की सज्ञाओ मे से दीर्घकालिक सज्ञा की अपेक्षा से ही सज्ञी-असज्ञी का व्यवहार समझना चाहिए ।

यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि एकेन्द्रिय जीवो मे भी आहारादि दस प्रकार की सज्ञाएँ आगम मे कही गई हैं तो उन्हे सज्ञी क्यो न माना जाय ?

उसका समाधान दिया गया है कि एकेन्द्रियो मे यद्यपि उक्त दस प्रकार की सज्ञाएँ अवश्य होती हैं तथापि वे अति अल्पमात्रा मे होने से तथा मोहादिजन्य होने से अशोभन होती है अतएव उनकी गणना सज्ञी मे नही की जाती है । जैसे किसी व्यक्ति के पास दो चार पैसे हो तो उसे पैसेवाला नही कहा जाता । इसी तरह कुरूप व्यक्ति मे रूप होने पर भी उसे रूपवान नही कहा जाता । यही बात यहाँ भी समझ लेनी चाहिए ।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो मे दीर्घकालिक सज्ञा नही होती है, अतएव वे सज्ञी नही है । असज्ञी ही हैं ।

११ वेदद्वार—स्त्री की पुरुष मे, पुरुष की स्त्री मे, नपुसक की दोनो मे अभिलाषा होना वेद है । वेद तीन हैं—१. स्त्रीवेद, २ पुरुषवेद और ३ नपुसकवेद ।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव नपुसकवेद वाले हैं । इनका सम्मूर्छिम जन्म होता है । नारक और सम्मूर्छिम नपुसकवेदी ही होते है ।[1]

१२. पर्याप्तिद्वार—सूत्रक्रमाक १२ के विवेचन मे पर्याप्ति-अपर्याप्ति का विवेचन कर दिया है । सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो मे आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियाँ और ये चार ही अपर्याप्तियाँ पाई जाती है ।

ये चारो अपर्याप्तियाँ करण की अपेक्षा से समझना चाहिए । लब्धि की अपेक्षा से तो एक ही प्राणापान अपर्याप्ति समझनी चाहिए । क्योकि लब्धि अपर्याप्तक भी नियम से आहार, शरीर, इन्द्रिय पर्याप्ति तो पूर्ण करते ही हैं । अगले भव की आयु बाधे विना कोई जीव मरता नही और अगले भव की आयु उक्त तीन पर्याप्तियो के पूर्ण होने पर ही बधती है ।

१३ दृष्टिद्वार—दृष्टि का अर्थ है जिनप्रणीत वस्तुतत्त्व की प्रतिपत्ति (स्वीकृति) । दृष्टि तीन प्रकार की हैं—१. सम्यग्दृष्टि, २. मिथ्यादृष्टि और ३ सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि । जिनप्रणीत वस्तुतत्त्व की सही-सही प्रतिपत्ति सम्यग्दृष्टि है । जिनप्रणीत वस्तुतत्त्व की विपरीत प्रतिपत्ति मिथ्यादृष्टि है । जैसे जिस व्यक्ति ने धतूरा खाया हो उसे सफेद वस्तु पीली प्रतीत होती है, इसी तरह जिसे जिनप्रणीत तत्त्व मिथ्या लगता हो और जो उस पर अरुचि करता हो वह मिथ्यादृष्टि है । जो दृष्टि न तो सम्यग् हो और न मिथ्या ही हो, ऐसी दृष्टि मिश्रदृष्टि है ।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव उक्त तीन दृष्टियो मे से मिथ्यादृष्टि वाले हैं । उनमे सम्यग्दृष्टि नही होती । सास्वादनसम्यक्त्व भी उनमे नही पाया जाता । सास्वादनसम्यक्त्व वाले भी उनमे

१. नारकसमूर्छिमा नपुसका—इति भगवद्वचनम् ।

उत्पन्न नही होते। सदा अतिसक्लिष्ट परिणाम वाले होने से मिश्रदृष्टि भी उनमे नही पाई जाती। न मिश्रदृष्टि वाला ही उनमे उत्पन्न होता है। क्योकि मिश्रदृष्टि मे कोई काल नही करता।[1]

१४. दर्शनद्वार—सामान्यविशेषात्मक वस्तु के सामान्यधर्म को ग्रहण करने वाला अवबोध दर्शन कहलाता है। यह चार प्रकार का है—१ चक्षुर्दर्शन, २. अचक्षुर्दर्शन, ३ अवधिदर्शन और ४. केवलदर्शन।

चक्षुर्दर्शन—सामान्य-विशेषात्मक वस्तु के रूप सामान्य को चक्षु द्वारा ग्रहण करना चक्षुर्दर्शन है।

अचक्षुर्दर्शन—चक्षु को छोडकर शेष इन्द्रियो और मन द्वारा सामान्यधर्म को जानना अचक्षुर्दर्शन है।

अवधिदर्शन—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना रूपी सामान्य को जानना अवधिदर्शन है।

केवलदर्शन—सकल संसार के पदार्थों के सामान्य धर्मो को जानने वाला केवलदर्शन है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के इन चार दर्शनो मे से एक अचक्षुर्दर्शन पाया जाता है। स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा अचक्षुर्दर्शन है, अन्य कोई दर्शन उनमे नही होता।

१५ ज्ञानद्वार—वैसे तो वस्तु-स्वरूप को जानना ही ज्ञान कहलाता है परन्तु शास्त्रकारो ने वही ज्ञान ज्ञान माना है जो सम्यक्त्वपूर्वक हो। सम्यक्त्वरहित ज्ञान को अज्ञान कहा जाता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान सम्यग्दृष्टि के तो ज्ञानरूप हैं किन्तु मिथ्यादृष्टि के मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभगज्ञान हो जाते हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव मिथ्यादृष्टि है, अतएव उनमे ज्ञान नही माना गया है और निश्चित रूप से मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान माना गया है। यह मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान भी अन्य बादर आदि जीवो की अपेक्षा अत्यन्त अल्प मात्रा मे होता है।[2]

१६ योगद्वार—मन, वचन और काया के व्यापार (प्रवृत्ति) को योग कहते हैं। ये योग तीन प्रकार के है—मनयोग, वचनयोग और काययोग। उन तीन योगो मे से सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के केवल काययोग ही होता है। वचन और मन उनके नही होता।

१७ उपयोगद्वार—आत्मा की बोधरूप प्रवृत्ति को उपयोग कहते हैं। उपयोग दो प्रकार का है—साकार-उपयोग और अनाकार-उपयोग।

---

१. न सम्ममिच्छो कुणइ काल—इति वचनात्।

२ सर्वनिकृष्टो जीवस्य दृष्ट उपयोग एष वीरेण।
सूक्ष्मनिगोदापर्याप्ताना स च भवति विज्ञेय ॥१॥
तस्मात् प्रभृति ज्ञानविवृद्धिर्दृष्टा जिनेन जीवानाम्।
लब्धिनिमित्तै करणै कायेन्द्रियवाग्मनोदृग्भि ॥२॥

साकार-उपयोग—किसी भी वस्तु के प्रतिनियत धर्म को (विशेष धर्म को) ग्रहण करने का परिणाम साकार उपयोग है ।'आगारो उ विसेसो' कहा गया है । इसलिए पांच ज्ञान और तीन अज्ञान रूप आठ प्रकार का उपयोग साकार उपयोग है ।

अनाकार-उपयोग—वस्तु के सामान्य धर्म को ग्रहण करने का परिणाम अनाकार उपयोग है । चार दर्शनरूप उपयोग अनाकार उपयोग है ।

साकार उपयोग के ८ और अनाकार उपयोग के ४, कुल मिलाकर बारह प्रकार का उपयोग कहा गया है ।

ये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान वाले होने से इन दोनों उपयोगों की अपेक्षा साकार उपयोग वाले हैं । अचक्षुर्दर्शन उपयोग की अपेक्षा अनाकार उपयोग वाले हैं ।

१८. आहारद्वार—आहार से तात्पर्य बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करना है । सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव **द्रव्य से** अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का आहार करते है । सख्यातप्रदेशी और असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध जीव के द्वारा ग्रहणप्रायोग्य नही होते हैं ।

क्षेत्र से—असख्यात प्रदेशो मे रहे हुए स्कन्धो का वे आहार करते है ।

काल से—किसी भी स्थिति वाले पुद्गलस्कधो का वे ग्रहण करते हैं । जघन्य स्थिति, मध्यम स्थिति या उत्कृष्ट स्थिति किसी भी प्रकार की स्थिति वाले आहार योग्य स्कधो को ग्रहण करते हैं ।

भाव से—वे जीव वर्ण वाले, गध वाले, रस वाले और स्पर्श वाले पुद्गलो को ग्रहण करते हैं । क्योकि प्रत्येक परमाणु मे एक वर्ण, एक गध, एक रस और दो स्पर्श तो होते ही हैं ।

वर्ण की अपेक्षा से—स्थानमार्गणा (सामान्य चिन्ता) को लेकर एक वर्ण वाले, दो वर्ण वाले, तीन वर्ण वाले, चार वर्ण वाले और पांच वर्ण वाले पुद्गलो को ग्रहण करते है और भेदमार्गणा की अपेक्षा से काले, नीले, लाल, पीले और सफेद वर्ण वाले पुद्गलो का ग्रहण करते हैं । यह कथन व्यवहारनय की अपेक्षा से जानना चाहिए । व्यवहारदृष्टि से ही एक वर्ण वाले, दो वर्ण वाले आदि व्यवहार होता है । अन्यथा निश्चयनय की अपेक्षा से तो छोटे से छोटे अनन्तप्रदेशी स्कन्ध मे पांचो वर्ण पाये जाते हैं । कृष्ण आदि प्रतिनियत वर्ण मे भी तरतमता पाई जाती है अतएव प्रश्न किया गया कि सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव जिन काले वर्ण वाले पुद्गलो को ग्रहण करते हैं वे एकगुण काले होते हैं यावत् दस गुण काले होते है, संख्यातगुण काले होते हैं, असख्यातगुण काले होते हैं या अनन्तगुण काले होते हैं? उत्तर दिया गया है कि एकगुण काले यावत् अनन्तगुण काले पुद्गलस्कधो का ग्रहण करते हैं ।

इसी प्रकार दो गध और पाच रस के विषय मे भी समझ लेना चाहिए ।

स्पर्श की अपेक्षा से एक स्पर्श वाले, दो स्पर्श वाले, तीन स्पर्श वाले पुद्गलो का ग्रहण नही करते किन्तु चार स्पर्श वाले, पांच स्पर्श वाले, यावत् आठ स्पर्श वाले पुद्गलो को ग्रहण करते हैं । भेदमार्गणा को लेकर कर्कश यावत् रूक्ष का आहार करते हैं । कर्कश आदि स्पर्शो मे एकगुण कर्कश यावत अनन्तगुण कर्कश का ग्रहण करते हैं । इसी तरह आठो स्पर्श के विषय में समझ लेना चाहिए ।

वे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव जिन वर्ण, गध, रस और स्पर्श वाले पुद्गलस्कन्धो को ग्रहण करते है वे आत्मप्रदेशो के साथ **स्पृष्ट** (छुए हुए) होते है। **अस्पृष्ट** पुद्गलस्कधो का ग्रहण नही होता ।

जो पुद्गलस्कन्ध आत्मप्रदेशो मे **अवगाढ** होते हैं, उन्हे ही वे ग्रहण करते हैं, **अनवगाढ** को नही ।

स्पर्श अवगाहक्षेत्र के बाहर भी हो सकता है जबकि अवगाहन उसी क्षेत्र मे होता है। अत अलग-अलग प्रश्न और उत्तर किये गये है।

अवगाढ पुद्गलस्कन्ध दो प्रकार के है—अनन्तरावगाढ और परम्परावगाढ। जिन आत्मप्रदेशो मे जो व्यवधानरहित होकर रहे हुए है वे **अनन्तरावगाढ** हैं और जो एक-दो-तीन आदि प्रदेशो के व्यवधान से रहे हुए है वे **परम्परावगाढ** है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव **अनन्तरावगाढ** पुद्गलो को ग्रहण करते है, **परंपरावगाढ** को नही ।

ये अनन्तरावगाढ पुद्गल **अणुरूप** (थोडे प्रदेश वाले) भी होते हैं और **बादर** (विपुल प्रदेश वाले) रूप भी होते है। ये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव दोनों प्रकार के पुद्गलो को ग्रहण करते हैं।

वह पृथ्वीकायिक जीव जितने क्षेत्र मे अवगाढ है उस क्षेत्र मे ही वह ऊर्ध्व या तिर्यक् स्थित प्रदेशो को ग्रहण करता है। जिस अन्तर्मुहूर्त प्रमाणकाल मे वह जीव उपभोगयोग्य द्रव्यो को ग्रहण करता है वह उस अन्तर्मुहूर्त काल के आदि मे, मध्य मे और अन्त मे भी ग्रहण करता है।

ये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अपने लिए उचित आहारयोग्य पुद्गलस्कधो को ग्रहण करते हैं, अपने लिए अनुचित का ग्रहण नही करते ।

ये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव स्वविषय पुद्गलो को भी आनुपूर्वी से ग्रहण करते है, अनानुपूर्वी से नही। अर्थात् ये यथासामीप्य वाले पुद्गलो को ग्रहण करते है—दूरस्थ को नही।

ये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव जिन यथा-आसन्न पुद्गलो को ग्रहण करते है उन्हे व्याघात न होने पर छहो दिशाओ से ग्रहण करते हैं। व्याघात होने पर कभी तीन दिशाओ, कभी चार दिशाओ, कभी पाच दिशाओ के पुद्गलो को ग्रहण करते हैं। व्याघात का अर्थ है—अलोकाकाश से प्रतिस्खलन (रुकावट)। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

जब कोई सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव लोकनिष्कुट मे (आखरी किनारे पर) नीचे के प्रतर के आग्नेयकोण मे रहा हुआ हो तो उसके नीचे अलोक होने से अधोदिशा मे पुद्गलो का अभाव होता है, आग्नेयकोण मे स्थित होने से पूर्वदिशा के पुद्गलो का और दक्षिणदिशा के पुद्गलो का अभाव होता है। इस तरह अधोदिक् पूर्वदिक् और दक्षिणदिक्—ये तीन दिशाएँ अलोक से व्याप्त होने से इनमे पुद्गलो का अभाव है, अत. शेष तीन दिशाओ के पुद्गलो का ही ग्रहण सभव है। इसलिए कहा गया है कि वे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव व्याघात को लेकर कभी तीन दिशाओ के पुद्गलो का आहार करते है।

जब वही जीव पश्चिमदिशा मे वर्तमान होता है तब उसके पूर्वदिशा अधिक हो जाती है। दक्षिणदिशा और अधोदिशा—ये दो दिशाएँ ही अलोक से व्याप्त होती हैं इसलिए वह जीव चार दिशाओ से—ऊर्ध्व, पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा से पुद्गलो को ग्रहण करता है।

जब वह जीव ऊपर के द्वितीयादि प्रतरगत पश्चिमदिशा मे होता है तब उसके अधोदिशा भी अधिक हो जाती है। केवल एकपर्यन्तवर्तिनी दक्षिण दिशा ही अलोक से व्याहत रहती है। ऐसी स्थिति मे वह जीव पूर्वोक्त चार और अधोदिशा मिलाकर पाँच दिशाओ मे स्थित पुद्गलो को ग्रहण करता है।

आहारद्वार का उपसहार करते हुए सूत्रकार ने कहा है कि—वे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव प्राय - बहुलता से पाँचो वर्णों के, दोनो गधवाले, पाचो रसवाले और आठो स्पर्शवाले पुद्गलो को ग्रहण करते है और उनके पूर्ववर्ती वर्ण, रस, गध और स्पर्श गुणो को परिवर्तित कर अपूर्व वर्ण, गध, रस और स्पर्श गुणो को पैदा कर अपने शरीरक्षेत्र मे अवगाढ पुद्गलो को आत्मप्रदेशो से आहार के रूप मे ग्रहण करते है।

१९ **उपपातद्वार**—जहाँ से आकर उत्पत्ति होती है वह उपपात है। ये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव नरक से आकर उत्पन्न नही होते, देवो से आकर भी उत्पन्न नही होते। ऐसा ही भवस्वभाव है कि देव और नारक सूक्ष्म पृथ्वीकाय के रूप मे उत्पन्न नही होते। ये जीव असख्यात वर्षों की आयुवाले तिर्यंचो को छोडकर शेष पर्याप्त-अपर्याप्त तिर्यंचो से आकर उत्पन्न होते हैं। असख्यात वर्षायु तिर्यंच इनमे उत्पन्न नही होते। अकर्मभूमि के, अन्तरद्वीपो के और असख्यात वर्ष की आयुवाले कर्मभूमि मे उत्पन्न मनुष्यो को छोडकर शेष पर्याप्त-अपर्याप्त मनुष्यो से आकर उत्पन्न हो सकते है।

२०. **स्थितिद्वार**—स्थिति से मतलब उसी जन्म की आयु से है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव की स्थिति जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त है और अधिक से अधिक भी अन्तर्मुहूर्त ही है। लेकिन जघन्य अन्तर्मुहूर्त से उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक समझना चाहिए।

२१ **समवहत-असमवहत द्वार**—मारणान्तिकसमुद्‌घात करके जो मरण होता है, वह समवहत है और मारणान्तिकसमुद्‌घात किये बिना जो मरण होता है, वह असमवहत है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो में दोनो प्रकार का मरण है।

२२ **च्यवनद्वार**—वर्तमान भव पूरा होने पर उस भव का अन्त होना च्यवन है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव मर कर न तो नारको मे उत्पन्न होते है और न देवो मे उत्पन्न होते है। वे तिर्यंचो और मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं। तिर्यचो मे उत्पन्न होते हैं तो असख्यात वर्षों की आयु वाले भोगभूमि के तिर्यंचो को छोड कर शेष एकेन्द्रिय यावत् पचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त सब तिर्यंचो मे उत्पन्न हो सकते हैं। यदि वे मनुष्यो मे उत्पन्न हो तो अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज और असख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यो को छोड कर शेष पर्याप्त या अपर्याप्त मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं।

इस कथन द्वारा यह भी सिद्ध किया गया है कि आत्मा सर्वव्यापक नही है और वह भवान्तर मे जाकर उत्पन्न होती है।

२३ **गति-आगति द्वार**—जीव मर कर जहाँ जाते हैं वह उनकी गति है और जीव जहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं वह उनकी आगति है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव दो गति वाले और दो आगति वाले हैं। ये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक मर कर तिर्यंच और मनुष्य गति मे उत्पन्न होते हैं, नारको और देवो मे नही। अत तिर्यंचगति और मनुष्यगति ही इनकी दो गतियाँ हैं।

ये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव देवो और नारको से आकर उत्पन्न नही होते। केवल तिर्यंचो और मनुष्यो से ही आकर उत्पन्न होते हैं, अत ये जीव दो आगति वाले हैं।

परीत—ये सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव प्रत्येकशरीरी है, असख्येय लोकाकाश प्रमाण है। इस प्रकार सब तीर्थंकरो ने प्रतिपादित किया है।

समणाउसो—हे श्रमण! हे आयुष्मान्! इस प्रकार सम्बोधन कर जिज्ञासुओ के समक्ष प्रभु महावीर ने सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के स्वरूप का प्रतिपादन किया।

बादर पृथ्वीकाय का वर्णन

१४. से किं तं बायरपुढविकाइया?

बायरपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता—

तं जहा—सण्ह बायरपुढविकाइयाय खर बायरपुढविकाइया य।

[१४] बादर पृथ्वीकायिक क्या है?

बादर पृथ्वीकायिक दो प्रकार के हैं—

यथा—श्लक्ष्ण (मृदु) बादर पृथ्वीकाय और खर बादर पृथ्वीकाय।

१५ से किं तं सण्ह बायरपुढवीकाइया?

सण्ह बायरपुढवीकाइया सत्तविहा पण्णत्ता—

तं जहा—कण्हमत्तिया, भेदो जहा पण्णवणाए जाव ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

तेसिं णं भंते! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरगा, पण्णत्ता, त जहा—ओरालिए, तेयए, कम्मए। तं चेव सव्वं नवरं चत्तारि लेसाओ अवसेसं जहा सुहुमपुढविक्काइयाण आहारो जाव णियमा छद्दिसिं।

उववाओ तिरिक्खजोणिय मणुस्स देवेहिंतो, देवेहिं जाव सोहम्मेसाणेहिंतो।

ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण बावीस वाससहस्साइ।

ते णं भते! जीवा मारणंतियसमुग्घाएणं किं समोहया मरंति असमोहया मरंति?

गोयमा! समोहया वि मरति असमोहया वि मरति।

ते णं भते! जीवा अणतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति? किं नेरइएसु उववज्जंति? पुच्छा।

नो नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जति, नो देवेसु उववज्जंति, तं चेव जाव असखेज्जवासा उवज्जेहिं।

ते णं भंते! जीवा कतिगतिया कतिआगतिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुगतिया, तिआगतिया परित्ता असखेज्जा य समणाउसो! से तं बायरपुढविक्काइया। से तं पुढविक्काइया।

[१५] श्लक्ष्ण (मृदु) बादर पृथ्वीकाय क्या हैं ?

श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकाय सात प्रकार के कहे गये हैं—काली मिट्टी आदि भेद प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार जानने चाहिए यावत् वे सक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त ।

हे भगवन् ! उन जीवो के कितने शरीर कहे गये है ?

गौतम ! तीन शरीर कहे गये हैं—जैसे कि, औदारिक, तैजस और कार्मण । इस प्रकार सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए । विशेपता यह है कि इनके चार लेश्याएँ होती हैं । शेष वक्तव्यता सूक्ष्म पृथ्वीकायिको की तरह जानना चाहिए यावत् नियम से छहो दिशा का आहार ग्रहण करते हैं । ये बादर पृथ्वीकायिक जीव तिर्यंच, मनुष्य और देवो से आकर उत्पन्न होते है । देवो से आते है तो सौधर्म और ईशान (पहले दूसरे) देवलोक से आते है । इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष की है ।

हे भगवन् ! ये जीव मारणातिकसमुद्घात से समवहत होकर मरते हैं या असमवहत होकर मरते हैं ?

गौतम ! समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं ।

भगवन् ! ये जीव वहाँ से मर कर कहाँ जाते है ? कहाँ उत्पन्न होते है ? क्या नारको मे उत्पन्न होते है आदि प्रश्न करने चाहिए ?

गौतम ! ये नारको मे उत्पन्न नही होते हैं, तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होते हैं, मनुष्यो मे उत्पन्न होते है, देवो मे उत्पन्न नही होते । तिर्यंचो और मनुष्यो मे भी असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचो और मनुष्यो मे उत्पन्न नही होते, इत्यादि ।

भगवन् ! वे जीव कितनी गति वाले और कितनी आगति वाले कहे गये है ?

गौतम ! दो गति वाले और तीन आगति वाले कहे गये है ।

हे आयुष्मन् श्रमण ! वे बादर पथ्वीकाय के जीव प्रत्येकशरीरी हैं और असख्यात लोकाकाश प्रमाण है ।

इस प्रकार बादर पृथ्वीकाय का वर्णन हुआ ।

इसके साथ ही पृथ्वीकाय का वर्णन पूरा हुआ ।

विवेचन—बादर नामकर्म के उदय से जिन पृथ्वीकायिक जीवो का शरीर बादर हो—समूहरूप मे चर्मचक्षुओ से ग्राह्य हो वे बादर पृथ्वीकायिक जीव है । बादर पृथ्वीकायिक जीवो के दो भेद है—श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकायिक और खर बादर पृथ्वीकायिक । पीसे हुए आटे के समान जो मिट्टी मृदु हो वह श्लक्ष्ण पृथ्वी है और तदात्मक जो जीव हैं वे भी उपचार से श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकायिक कहलाते हैं । कर्कशता वाली पृथ्वी खर बादर पृथ्वी है । तदात्मक जीव उपचार से खर बादर पृथ्वीकायिक कहलाते हैं ।

श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकाय—श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकाय के सात प्रकार है—काली मिट्टी आदि भेद प्रज्ञापना के अनुसार जानने की सूचना सूत्रकार ने दी है । प्रज्ञापना के उस पाठ का अर्थ इस प्रकार है—

१ काली मिट्टी, २ नीली मिट्टी, ३ लाल मिट्टी, ४ पीली मिट्टी ५ सफेद मिट्टी ६ पाडु मिट्टी और ७ पणग मिट्टी—ये सात प्रकार की मिट्टियाँ श्लक्ष्ण बादर पृथ्वी है। इनमें रहे हुए जीव श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकायिक जीव है। वर्ण के भेद से पूर्व के ५ भेद स्पष्ट ही है। पाडु मिट्टी वह है जो देशविशेष मे मिट्टीरूप होकर पाडु नाम से प्रसिद्ध है। पनकमृत्तिका का अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है—नदी आदि मे पूर आने और उसके उतरने के बाद भूमि मे जो मृदु पक शेष रह जाता है, जिसे 'जलमल' भी कहते हैं वह पनकमृत्तिका है। उसमे रहे हुए जीव भी उपचार से पनकमृत्तिका श्लक्ष्ण बादर पृथ्वीकायिक कहलाते हैं।

खरबादर पृथ्वीकायिकः—खर बादर पृथ्वीकायिक अनेक प्रकार के कहे गये हैं। मुख्यतया चार गाथाओ मे चालीस प्रकार बताये गये हैं।[1] वे इस प्रकार—१ शुद्धपृथ्वी—नदीतट भित्ति २ शर्करा—छोटे ककर आदि ३ बालुका—रेत ४ उपल—टाकी आदि उपकरण तेज करने का (सान बढाने का) पाषाण ५ शिला—घड़ने योग्य बडा पाषाण ६ लवण—नमक आदि ७ ऊस—खारवाली मिट्टी जिससे जमीन ऊसर हो जाती है ८ लोहा ९ तावा १० रागा ११ सीसा १२ चाँदी १३ सोना १४ वज्र—हीरा १५ हरताल १६ हिंगलु १७ मनःशिला १८ सासग-पारा १९ अजन २० प्रवाल—विद्रुम २१ अभ्रपटल—अभ्रक-भोडल २२ अभ्रबालुका—अभ्रक मिली हुई रेत और (नाना प्रकार की मणियो के १८ प्रकार जैसे कि) २३ गोमेज्जक २४ रुचक २५ अक २६ स्फटिक २७ लोहिताक्ष २८ मरकत २९ भुजमोचक ३० मसारगल ३१ इन्द्रनील ३२ चन्दन ३३ गैरिक ३४ हसगर्भ ३५ पुलक ३६ सौगधिक ३७ चन्द्रप्रभ ३८ वैडूर्य ३९ जलकान्त और ४० सूर्यकान्त।

उक्त रीति से मुख्यतया खर बादर पृथ्वीकाय के ४० भेद बताने के पश्चात् 'जे यावण्णे तहप्पगारा' कहकर अन्य भी पद्मराग आदि का सूचन कर दिया गया है।

ये बादर पृथ्वीकायिक सक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। जिन जीवो ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूरी नही की है उनके वर्णादि विशेष स्पष्ट नही होते हैं अतएव उनका काले आदि विशेष वर्णों से कथन नही हो सकता। शरीर आदि पर्याप्तियाँ पूर्ण होने पर ही बादर जीवों मे वर्णादि प्रकट होते हैं। ये अपर्याप्त जीवन उच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण करने के पूर्व ही मर जाते है अत. इन अपर्याप्तों के विशेष वर्णादि का कथन नही किया जा सकता। सामान्य विवक्षा मे तो शरीरपर्याप्ति पूर्ण होते ही वर्णादि होते ही है। अतएव अपर्याप्तो मे विशेष वर्णादि न होने का कथन किया गया है। सामान्य वर्णादि तो होते ही है।

---

१. पुढवी य सक्करा वालुया य उवले सिला य लोणूसे।
तंबा य तउय सीसय रुप्प सुवण्णे य वइरे य ॥१॥
हरियाले हिंगुलए मणोसिला सासगंजणपवाले।
अब्भ पडलब्भवालुय बायरकाये मणिविहाणा ॥२॥
गोमेज्जए य रुयए अके फलिहे य लोहियक्खे य।
मरगय मसारगल्ले भुयमोयग इदनीले य ॥३॥
चदण गेरुय हंसे पुलए सोगंधिए य बोद्धव्वे।
चंदप्पभ वेरुलिए जलकंते सूरकते य ॥४॥

—प्रज्ञापना, सूत्र-१५

इन बादर पृथ्वीकायिको मे जो पर्याप्त जीव हैं, उनमे वर्णभेद से, गधभेद से, रसभेद से और स्पर्शभेद से हजारो प्रकार हो जाते हैं। जैसे कि— वर्ण के ५, गध के २, रस के ५ और स्पर्श के ८। एक-एक काले आदि वर्ण के तारतम्य से अनेक अवान्तर भेद भी हो जाते हैं। जैसे भवरा, कोयला, कज्जल आदि काले हैं किन्तु इन सबकी कालिमा मे न्यूनाधिकता है, इसी तरह नील आदि वर्णों मे भी समझना चाहिए। इसी तरह गन्ध, रस और स्पर्श को लेकर भी भेद समझ लेने चाहिए। इसी तरह वर्णों के परस्पर सयोग से भी धूसर, कर्बुर आदि अनेक भेद हो जाते हैं। इसी तरह गन्धादि के सयोग से भी कई भेद हो जाते है। इसलिए कहा गया है कि वर्णादि की अपेक्षा हजारो भेद हो जाते है।

इन बादर पृथ्वीकायिको की सख्यात लाख योनियाँ हैं। एक-एक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श मे पृथ्वीकायिको की सवृतयोनि तीन प्रकार की है—सचित्त, अचित्त और मिश्र। इनमे से प्रत्येक के शीत, उष्ण, शीतोष्ण के भेद से तीन-तीन प्रकार है। शीतादि के भी तारतम्य से अनेक भेद हैं। केवल एक विशिष्ट वर्ण वाले सख्यात होते हुए भी स्वस्थान मे व्यक्तिभेद होते हुए भी योनि-जाति को लेकर एक ही योनि गिनी जाती है। ऐसी सख्यात लाख योनिया पृथ्वीकाय मे है। सूक्ष्म और बादर सब पृथ्वीकायो की सात लाख योनिया कही गई है।

ये बादर पृथ्वीकायिक जीव एक पर्याप्तक की निश्रा मे असख्यात अपर्याप्त उत्पन्न होते है। जहाँ एक पर्याप्त है वहाँ उसकी निश्रा मे नियम से असख्येय अपर्याप्त होते है।

इन बादर पृथ्वीकायिक जीवो के शरीर, अवगाहना आदि द्वारो का विचार पूर्ववर्णित सूक्ष्म पृथ्वीकायिको के समान कहना चाहिए। जो विशेषता और अन्तर है उसी का उल्लेख यहाँ किया गया है। निम्न द्वारो मे विशेषता जाननी चाहिए—

लेश्याद्वार—सूक्ष्म पृथ्वीकायिको मे तीन लेश्याएँ कही गई थी। बादर पृथ्वीकायिको मे चार लेश्याएँ जाननी चाहिए। उनमे तेजोलेश्या भी होती है। व्यन्तरदेवो से लेकर ईशान देवलोक तक के देव अपने भवन और विमानो मे अति मूर्छा होने के कारण अपने रत्न कुण्डलादि मे उत्पन्न होते हैं, वे तेजोलेश्या वाले भी होते हैं। आगम का वाक्य है कि 'जल्लेसे मरइ तल्लेसे उववज्जइ' जिस लेश्या मे मरण होता है, उसी लेश्या मे जन्म होता है। इसलिए थोडे समय के लिए अपर्याप्त अवस्था मे तेजोलेश्या भी उनमे पाई जाती है।

आहारद्वार—बादर पृथ्वीकायिक जीव नियम से छहो दिशाओ से आहार ग्रहण करते हैं। क्योकि बादर जीव नियम से लोकमध्य मे ही उत्पन्न होते हैं, किनारे नही। इसलिए व्याघात का प्रश्न ही नही रहता।

उपपातद्वार—देवो से आकर भी बादर पृथ्वीकायिक मे जन्म होता है। इसलिए तिर्यंच, मनुष्य और देवो से आकर बादर पृथ्वीकाय मे जन्म हो सकता है।

स्थिति—इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष की है।

गति-आगतिद्वार—देवो से भी इनमे आना होता है इसलिए इनकी तीन गतियो से आगति है और दो गतियो मे गति है।

इस प्रकार हे आयुष्मन् ! हे श्रमणो ! ये बादर पृथ्वीकायिक जीव प्रत्येकशरीरी है और असख्येय लोकाकाशप्रमाण कहे गये हैं। यह बादर पृथ्वीकाय का वर्णन हुआ और इसके साथ ही पृथ्वीकाय का अधिकार पूर्ण हुआ।

अप्काय का अधिकार

१६ से किं त आउक्काइया ?

आउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

सुहुमआउक्काइया य बायरआउक्काइया य।

सुहुमआउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

तेसिं णं भंते ! जीवाणं कति सरीरया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ सरीरया पण्णत्ता, तजहा—

ओरालिए, तेयए, कम्मए, जहेव सुहुम पुढविक्काइयाण, णवर थिबुगसठिता पण्णत्ता,

सेस तं चेव जाव दुगतिया दुआगतिया

परित्ता असखेज्जा पण्णत्ता।

से तं सुहुमआउक्काइया।

[१६] अप्कायिक क्या है ?

अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये है, जैसे कि सूक्ष्म अप्कायिक और बादर अप्कायिक।

सूक्ष्म अप्कायिक जीव दो प्रकार के है, जैसे कि पर्याप्त और अपर्याप्त।

भगवन् ! उन जीवो के कितने शरीर कहे गये है ?

गौतम ! उनके तीन शरीर कहे गये है, जैसे कि

औदारिक, तैजस और कार्मण। इस प्रकार सब द्वारो की वक्तव्यता सूक्ष्म पृथ्वीकायिको की तरह कहना चाहिए। विशेषता यह है कि सस्थान द्वार मे उनका स्तिवुक (बुद्बुद रूप) सस्थान कहा गया है। शेष सब उसी तरह कहना यावत् वे दो गति वाले, दो आगति वाले हैं, प्रत्येकशरीरी है और असख्यात कहे गये है। यह सूक्ष्म अप्काय का अधिकार हुआ।

बादर अप्कायिक

१७. से कि त बायरआउक्काइया ?

बायरआउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, त जहा—ओसा, हिमे, जाव जे यावन्ने तहप्पगारा,

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

तं चेव सव्वं णवरं थिबुगसंठिता, चत्तारि लेसाओ, आहारो नियमा छद्दिसिं, उववाओ तिरिक्ख जोणिय मणुस्स देवेहिं, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसं सत्तवाससहस्साइं;

सेसं तं चेव जहा बायरपुढविकाइया जाव
दुगतिया तिआगतिया परित्ता असखेज्जा पन्नत्ता समणाउसो !
से तं बायरआउक्काइया, से त आउक्काइया।

[१७] बादर अप्कायिक का स्वरूप क्या है ?

बादर अप्कायिक अनेक प्रकार के कहे गये है, जैसे—ओस, हिम यावत् अन्य भी इसी प्रकार के जल रूप।

वे सक्षेप से दो प्रकार के है—पर्याप्त और अपर्याप्त। इस प्रकार पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेषता यह है कि उनका सस्थान स्तिवुक (वुद्‌वुद) है। उनमे लेश्याएँ चार पाई जाती है, आहार नियम से छहो दिशाओ का, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देवो से उपपात, स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष जानना चाहिए। शेष बादर पृथ्वीकाय की तरह जानना चाहिए यावत् वे दो गति वाले, तीन आगति वाले है, प्रत्येकशरीरी है और असख्यात कहे गये है। हे आयुष्मन् ! हे श्रमण ! यह बादर अप्कायिको का कथन हुआ। इसके साथ ही अप्कायिको का अधिकार पूरा हुआ।

विवेचन—पृथ्वीकायिक जीवो के वर्णन के पश्चात् इन दो सूत्रो मे अप्कायिक जीवो के सबध मे जानकारी दी गई है। अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये है—सूक्ष्म अप्कायिक और बादर अप्कायिक। सूक्ष्म अप्कायिक जीव सारे लोक मे व्याप्त हैं और बादर अप्कायिक जीव घनोदधि आदि स्थानो मे हैं।

सूक्ष्म अप्कायिक जीवो के सम्बन्ध मे पूर्वोक्त २३ द्वार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो के समान ही समझना चाहिए। केवल सस्थानद्वार मे अन्तर है। सूक्ष्म पृथ्वीकायिको का सस्थान मसूर की चन्द्राकार दाल के समान बताया गया है जबकि सूक्ष्म अप्कायिक जीवो का सस्थान बुद्‌बुद के समान है।

बादर अप्कायिक जीव—बादर अप्कायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, जैसे कि ओस, बर्फ आदि। इनका विशेष वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के अनुसार जानना चाहिए। वह अधिकार इस प्रकार है—

'बादर अप्कायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये है,[1] जैसे कि ओस, हिम (जमा हुआ पानी—बर्फ) महिका (गर्भमास मे सूक्ष्म वर्षा—धूअर) करक (ओला) हरतनु (भूमि को फोडकर अकुरित होने वाला तृणादि पर रहा हुआ जलविन्दु), शुद्धोदक (आकाश से गिरा हुआ या नदी आदि का पानी) शीतोदक (ठडा कुए आदि का पानी) उष्णोदक (गरम सोता का पानी) क्षारोदक (खारा पानी) खट्टोदक (कुछ खट्टा पानी) आम्लोदक (अधिक काजी-सा खट्टा पानी) लवणोदक (लवणसमुद्र का पानी) वारुणोदक (वरुणसमुद्र का मदिरा जैसे स्वाद वाला पानी) क्षीरोदक (क्षीरसमुद्र का पानी) घृतोदक (घृतवरसमुद्र का पानी) क्षोदोदक (इक्षुरससमुद्र का पानी) और रसोदक (पुष्करवरसमुद्र का पानी) इत्यादि, और भी इसी प्रकार के पानी हैं। वे सब बादर अप्कायिक समझने चाहिए। वे बादर अप्कायिक दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। इनमे

---

१ आचारागनिर्युक्ति तथा उत्तराध्ययन अ ३६ गाथा २६ मे बादर अप्काय के पाच भेद ही बताये हैं—
१ शुद्धोदक, २ ओस, ३. हिम, ४. महिका और ५ हरतनु।

जो अपर्याप्त जीव है, उनके वर्ण, गध, रस, स्पर्श आदि अप्रकट होने से काले आदि विशेष वर्ण, गध, रस, स्पर्श वाले नही कहे जाते हैं किन्तु सामान्यतया शरीर होने से वर्णादि अप्रकट रूप से होते ही हैं। जो जीव पर्याप्त है उनमे वर्ण से, गध से, रस से और स्पर्श से नाना प्रकार हैं। वर्णादि के भेद से और तरतमता से उनके हजारो प्रकार हो जाते है। उनकी सब मिलाकर सात लाख योनियाँ हैं। एक पर्याप्त जीव की निश्रा मे असख्यात अपर्याप्त जीव उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक पर्याप्त है वहाँ नियम से असख्यात अपर्याप्त जीव है।

बादर अप्कायिक जीवो के सम्बन्ध मे २३ द्वारो को लेकर विचारणा बादर पृथ्वीकायिको के समान जानना चाहिए। जो अन्तर है वह इस प्रकार है—

संस्थानद्वार मे अप्कायिक जीवो का सस्थान बुद्बुद के आकार का जानना चाहिए।

स्थितिद्वार मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सात हजार वर्ष जानना चाहिए।

शेष सब वक्तव्यता बादर पृथ्वीकायिको की तरह ही समझना चाहिए यावत् हे आयुष्मन् श्रमण! वे अप्कायिक जीव प्रत्येकशरीरी और असंख्यात लोकाकाश प्रमाण कहे गये है। यह अप्कायिको का अधिकार हुआ।

वनस्पतिकायिक जीवो का अधिकार

१८. से किं त वणस्सइकाइया ?

वणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा सुहुमवणस्सइकाइया य बायरवणस्सइकाइया य।

[१८] वनस्पतिकायिक जीवो का क्या स्वरूप है ?

वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिक।

१९. से किं तं सुहुमवणस्सइकाइया ?

सुहुमवणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता, तजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तहेव णवरं अणित्थंत्थसंठाणसठिया, दुगतिया दुआगतिया अपरित्ता अणंता अवसेसं जहा पुढविकाइयाणं, से तं सुहुमवणस्सइकाइया।

[१९] सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव क्या हैं—कैसे है ?

सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त, इत्यादि वर्णन सूक्ष्म पृथ्वीकायियो के समान जानना चाहिए। विशेषता यह है कि सूक्ष्म वनस्पतिकायिको का सस्थान अनियत है। वे जीव दो गति मे जाने वाले और दो गतियो से आने वाले है। वे अप्रत्येकशरीरी (अनन्तकायिक) है और अनन्त हैं। हे आयुष्मन्! हे श्रमण! यह सूक्ष्म वनस्पतिकाय का वर्णन हुआ।

बादर वनस्पतिकायिक

१९ से किं तं बायरवणस्सइकाइया ?

बायरवणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया य साधारण-सरीर बायरवणस्सइकाइया य।

[१९] बादर वनस्पतिकायिक क्या हैं—कैसे हैं ?

बादर वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गये है—

जैसे—प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक और साधारणशरीर बादर वनस्पतिकायिक।

२० से किं तं पत्तेयसरीर बायरवणस्सइकाइया ?

पत्तेयसरीर बायरवणस्सइकाइया दुवालसविहा पण्णत्ता, तंजहा—

रुक्खा गुच्छा गुम्मा लता य वल्ली य पव्वगा चेव।

तण-वलय-हरित-ओसहि-जलरुह-कुहणा य बोद्धव्वा ॥१॥

से किं तं रुक्खा ?

रुक्खा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगट्ठिया य बहुबीया य।

से किं तं एगट्ठिया ?

एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—

निंबंब जंबू जाव पुण्णागणागरुक्खे सीवण्णी तहा असोगे य।

जे यावण्णे तहप्पगारा। एतेसिं णं मूला वि असंखेज्जजीविया एवं कंदा, खंधा, तया, साला, पवाला, पत्ता पत्तेयजीवा, पुप्फाइं अणेगजीवाइं फला एगट्ठिया, से तं एगट्ठिया।

से किं तं बहुबीया ?

बहुबीया अणेगविधा पण्णत्ता, तं जहा—

अत्थिय-तेंदुय-उंबर-कविट्ठ-आमलक-फणस-दाडिम णग्गोध-काउंबरी य तिलय-लउय-लोद्धे धवे, जे यावण्णे तहप्पगारा, एतेसिं णं मूला वि असंखेज्जजीविया जाव फला बहुबीयगा, से तं बहुबीयगा। से तं रुक्खा।

एवं जहा पण्णवणाए तहा भाणियव्व, जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, से तं कुहणा।

नाणाविधसंठाणा रुक्खाणं एगजीविया पत्ता।

खंधो वि एगजीवो ताल-सरल-नालिएरीणं ॥१॥

'जह सगलसरिसवाणं पत्तेयसरीराणं' गाहा ॥२॥

'जह वा तिलसक्कुलिया' गाहा ॥३॥

से तं पत्तेयसरीरबायरवणस्सइकाइया।

[२०] प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक जीवों का स्वरूप क्या है ?

प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक बारह प्रकार के है—

जैसे—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग, तृण, वलय, हरित, औषधि, जलरुह और कुहण।

वृक्ष किसे कहते है ?

वृक्ष दो प्रकार के हैं—एक बीज वाले और बहुत बीज वाले।

एक बीज वाले कौन है ?

एक बीज वाले अनेक प्रकार के है, जैसे कि—नीम, आम, जामुन यावत् पुन्नाग नागवृक्ष, श्रीपर्णी तथा अशोक तथा और भी इसी प्रकार के अन्य वृक्ष। इनके मूल असंख्यात जीव वाले हैं,

कद, स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्ते ये प्रत्येक—एक-एक जीव वाले है, इनके फूल अनेक जीव वाले हैं, फल एक बीज वाले हैं। यह एक बीज वाले वृक्षो का वर्णन हुआ।

बहुबीज वृक्ष कौन से है ?

बहुबीज वृक्ष अनेक प्रकार के है, जैसे—अस्तिक, तेंदुक, अम्बर, कबीठ, आवला, पनस, दाडिम, न्यग्रोध, कादुम्बर, तिलक, लकुच (लवक), लोध्र, धव और अन्य भी इस प्रकार के वृक्ष। इनके मूल असख्यात जीव वाले यावत् फल बहुबीज वाले है। यह बहुबीजक का वर्णन हुआ। इसके साथ ही वृक्ष का वर्णन हुआ। इस प्रकार जैसा प्रज्ञापना मे कहा वैसा यहाँ कहना चाहिए, यावत्—'इस प्रकार के अन्य भी' से लेकर 'कुहण' तक।

गाथार्थ—वृक्षो के सस्थान नाना प्रकार के हैं। ताल, सरल और नारीकेल वृक्षो के पत्ते और स्कध एक-एक जीव वाले होते है।

जैसे श्लेष (चिकने) द्रव्य से मिश्रित किये हुए अखण्ड सरसो की बनाई हुई बट्टी एकरूप होती है किन्तु उसमे वे दाने अलग-अलग होते है। इसी तरह प्रत्येकशरीरियो के शरीरसघात होते हैं।

जैसे तिलपपडी मे बहुत सारे अलग-अलग तिल मिले हुए होते है उसी तरह प्रत्येकशरीरियो के शरीरसघात अलग-अलग होते हुए भी समुदाय रूप होते है। यह प्रत्येकशरीर बादरवनस्पति-कायिको का वर्णन हुआ।

विवेचन—बादर नामकर्म का उदय जिनके है वे वनस्पतिकायिक जीव बादर वनस्पति-कायिक कहलाते हैं। इनके दो भेद है—प्रत्येकशरीरी और साधारणशरीरी। जिन जीवो का अलग-अलग शरीर है वे प्रत्येकशरीरी हैं और जिन जीवो का सम्मिलित रूप से शरीर है, वे साधारण-शरीरी हैं। इन दो सूत्रो मे बादर वनस्पतिकायिक जीवो का वर्णन किया गया है।

बादर प्रत्येकशरीरी वनस्पतिकायिक के १२ प्रकार कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) वृक्ष—नीम, आम आदि
(२) गुच्छ—पौधे रूप बैंगन आदि
(३) गुल्म—पुष्पजाति के पौधे नवमालिका आदि
(४) लता—वृक्षादि पर चढने वाली लता, चम्पकलता आदि
(५) वल्ली—जमीन पर फैलने वाली बेलें, कूष्माण्डी, त्रपुषी आदि
(६) पर्वग—पौर-गाठ वाली वनस्पति, इक्षु आदि
(७) तृण—दूब, कास, कुश आदि हरी घास
(८) वलय—जिनकी छाल गोल होती है, केतकी, कदली आदि
(९) हरित—बथुआ आदि हरी भाजी
(१०) औषधि—गेहू आदि धान्य जो पकने पर सूख जाते हैं
(११) जलरुह—जल मे उगने वाली वनस्पति, कमल, सिंघाडा आदि
(१२) कुहण—भूमि को फोडकर उगने वाली वनस्पति, जैसे कुकुरमुत्ता (छत्राक)

वृक्ष दो प्रकार के हैं—एक बीज वाले और बहुत बीज वाले। जिसके प्रत्येक फल मे एक गुठली या बीज हो वह एकास्थिक है और जिनके फल मे बहुत बीज हो वे बहुबीजक हैं।

एकास्थिक वृक्षो मे से नीम, आम आदि कुछ वृक्षो के नाम सूत्र में गिनाए है और शेष प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार जानने की सूचना दी गई है। प्रज्ञापनासूत्र मे एकास्थिक वृक्षो के नाम इस प्रकार गिनाये है—[1] 'नीम, आम, जामुन, कोशम्ब (जगली आम), शाल, अकोल्ल, (अखरोट या पिश्ते का पेड), पीलु, शेलु (लसोडा), सल्लकी (हाथ को प्रिय) मोनकी, मालुक, वकुल (मौलसरी), पलाश (ढाक), करज (नकमाल),

पुत्रजीवक, अरिष्ट (अरीठा), विभीतक (बहेडा), हरड, भल्लातक (भिलावा), उम्बेभरिया, खिरनी, धातकी (धावडा) और प्रियाल,

पूतिक (निम्ब), करज, श्लक्ष्ण, शिशपा, अशन, पुन्नाग (नागकेसर) नागवृक्ष, श्रीपर्णी और अशोक, ये सब एकास्थिक वृक्ष हैं। इसी प्रकार के अन्य जितने भी वृक्ष हैं जो विभिन्न देशो मे उत्पन्न होते है तथा जिनके फल मे एक ही गुठली हो वे सब एकास्थिक वृक्ष समझने चाहिए।

इन एकास्थिक वृक्षो के मूल असख्यात जीवो वाले होते हैं। इनके कन्द, स्कन्ध, त्वचा (छाल), शाखा और कोपल भी असख्यात जीवो वाले होते हैं। किन्तु इनके पत्ते प्रत्येकजीव (एक पत्ते मे एक जीव) वाले होते हैं। इनके फूलो मे अनेक जीव होते है, इनके फलो मे एक गुठली होती है।

बहुबीजक वृक्षो के नाम पन्नवणासूत्र मे इस प्रकार कहे गये है—

अस्थिक, तिंदुक, कवीठ, अम्बाडग, मातुलिंग (बिजौरा), बिल्व, आमलक (आवला), पनस (अनन्नास), दाडिम, अश्वत्थ (पीपल), उदुम्बर, (गूलर), वट (बड), न्यग्रोध (बडा बड),

नन्दिवृक्ष, पिप्पली, शतरी, प्लक्ष, कादुम्बरी, कस्तुम्भरी, देवदाली,

तिलक, लवक (लकुच—लीची), छत्रोपक, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण लोध्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कुरज, (कुटक) और कदम्ब, इसी प्रकार के और भी जितने वृक्ष हैं जिनके फल मे बहुत बीज है, वे सब बहुबीजक जानने चाहिए।

ऊपर जो वृक्षो के नाम गिनाये गये है उनमे कतिपय नाम ऐसे है जो प्रसिद्ध है और कतिपय नाम ऐसे है जो देशविशेष मे ही होते है। कई नाम ऐसे है जो एक ही वृक्ष के सूचक है किन्तु उनमे प्रकार भेद समझना चाहिए। भिन्न-भिन्न देशो मे भिन्न-भिन्न नाम से कहे जाने के कारण भी अलग से निर्देश समझना चाहिए।

बहुबीजको मे 'आमलक' (आवला) नाम आया है। वह प्रसिद्ध आवले का वाचक न होकर अन्य वृक्षविशेष का वाचक समझना चाहिए। क्योकि बहु-प्रसिद्ध आवला तो एक बीज वाला है, बहुबीजवाला नही।

इन बहुबीजक वृक्षो के मूल असख्यात जीवो वाले होते है। इनके कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा और प्रवाल (कोपल) असख्य जीवात्मक होते है। इनके पत्ते प्रत्येकजीवात्मक होते हैं, अर्थात् प्रत्येक पत्ते मे एक-एक जीव होता है। इनके पुष्प अनेक जीवोवाले हैं और फल बहुत बीज वाले हैं।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, प्रथमपद, गाथा १३-१४-१५

वृक्षो की तरह ही गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, पर्वग, तृण, वलय, हरित, ओषधि, जलरुह और कुहण के विभिन्न प्रकार प्रज्ञापनासूत्र मे विस्तार से बताये गये हैं।

यहाँ यह शका उठ सकती है कि यदि वृक्षो के मूल आदि अनेक प्रत्येकशरीरी जीवो से अधिष्ठित है तो वे एक शरीराकार मे कैसे दिखाई देते हैं? इस शका का समाधान सूत्रकार ने दो दृष्टान्तो द्वारा किया है—

सरसो की बट्टी का दृष्टान्त—जैसे सम्पूर्ण अखण्ड सरसो के दानो को किसी श्लेष द्रव्य के द्वारा मिश्रित कर देने पर एक बट्टी बन जाती है परन्तु उसमे वे सरसो के दाने अलग-अलग अपनी अवगाहना मे रहते हैं। यद्यपि परस्पर चिपके होने के कारण बट्टी के रूप मे वे एकाकार प्रतीत होते हैं फिर भी वे सरसों के दाने अलग-अलग होते हैं। इसी तरह प्रत्येकशरीरी जीवो के शरीरसघात भी पृथक्-पृथक् अपनी अवगाहना मे रहते है, परन्तु विशिष्ट कर्मरूपी श्लेष के द्वारा परस्पर मिश्रित होने से एक शरीराकार प्रतीत होते है।

तिलपपड़ी का दृष्टान्त—जिस प्रकार तिलपपडी मे प्रत्येक तिल अपनी-अपनी अवगाहना मे अलग-अलग होता है किन्तु तिलपपडी एक है। इसी तरह प्रत्येकशरीरी जीव अपनी-अपनी अवगाहना मे स्थित होकर भी एक शरीराकार प्रतीत होते है।

यह प्रत्येकशरीरी बादर वनस्पति का वर्णन हुआ।

साधारण वनस्पति का स्वरूप

२१ से किं तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया ?

साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया अणेगविहा पण्णत्ता, त जहा—आलुए, मूलए, सिंगबेरे, हिरिलि, सिरिलि, सिस्सिरिलि, किट्टिया, छिरिया, छिरियविरालिया, कण्हकदे, वज्जकदे, सूरणकंदे, खल्लूडे, किमिरासि, भद्दे, मोत्थापिंडे, हलिद्दा, लोहारी, णीहु [ठिहु], थिभु, अस्सकण्णी, सीहकण्णी, सीउंढी, मूसंढी—जे यावण्णे तहप्पगारा;

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

तेसि णं भते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—

ओरालिए, तेयए, कम्मए। तहेव जहा बायरपुढविकाइयाणं। णवरं सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं सातिरेग जोयणसहस्सं। सरीरगा अणित्थंत्थसंठिया, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं दसवाससहस्साइ। जाव दुगतिया, तिआगतिया, परित्ता अणंता पण्णत्ता। से तं बायरवणस्सइकाइया, से तं थावरा।

[२१] साधारणशरीर बादर वनस्पतिकायिक कैसे हैं?

साधारण शरीर बादर वनस्पतिकायिक जीव अनेक प्रकार के है, जैसे—आलू, मूला, अदरख, हिरिलि, सिरिलि, सिस्सिरिली, किट्टिका, क्षीरिका, क्षीरविडालिका, कृष्णकन्द, वज्रकन्द, सूरण-

कन्द, खल्लूट, कृमिराशि, भद्र, मुस्तापिंड, हरिद्रा, लोहारी, स्निहु, स्तिभु, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सिकुण्डी, मुषण्डी और अन्य भी इस प्रकार के साधारण वनस्पतिकायिक—अवक, पलक, सेवाल आदि जानने चाहिए।

ये सक्षेप से दो प्रकार के कहे गये है, जैसे—पर्याप्त और अपर्याप्त।

भगवन्! इन जीवों के कितने शरीर कहे गये है?

गौतम! तीन शरीर कहे गये हैं—औदारिक, तैजस और कार्मण। इस प्रकार सब कथन बादर पृथ्वीकायिको की तरह जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इनके शरीर की अवगाहना जघन्य मे अगुल का असख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट से एक हजार योजन से कुछ अधिक है। इनके शरीर के सस्थान अनियत हैं, स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की जाननी चाहिए। यावत् ये दो गति मे जाते है और तीन गति से आते हैं। प्रत्येकवनस्पति जीव असंख्यात हैं और साधारणवनस्पति के जीव अनन्त कहे गये है।

यह बादर वनस्पति का वर्णन हुआ और इसके साथ ही स्थावर का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन—एक ही शरीर मे आश्रित अनन्त साधारणवनस्पतिकायिक जीव एक साथ ही उत्पन्न होते हैं, एक साथ ही उनका शरीर बनता है, एक साथ ही वे प्राणापान के पुद्गलो को ग्रहण करते हैं और एक साथ ही श्वासोच्छ्वास लेते है। एक शरीर मे आश्रित साधारण जीवो का आहार, श्वासोच्छ्वास आदि एक साथ ही होता है। एक जीव द्वारा आहारादि का ग्रहण सब जीवो के द्वारा आहारादि का ग्रहण करना है और सबके द्वारा आहारादि का ग्रहण किया जाना ही एक जीव के द्वारा आहारादि ग्रहण करना है। यही साधारण जीवो की साधारणता का लक्षण है।

जैसे अग्नि मे प्रतप्त लोहे का गोला सारा का सारा लाल अग्निमय हो जाता है वैसे ही निगोदरूप एक शरीर मे अनन्त जीवो का परिणमन जान लेना चाहिए। एक, दो, तीन, सख्यात, असख्यात निगोद जीवो का शरीर दृष्टिगोचर नही होता। अनन्त निगोदो के शरीर ही दृष्टि-गोचर हो सकते हैं। इस विषय मे तीर्थंकर देव के वचन ही प्रमाणभूत हैं। भगवान् का कथन है कि सूई की नोक के बराबर निगोदकाय मे असख्यात गोले होते हैं, एक-एक गोले मे असंख्यात निगोद होते है और एक-एक निगोद मे अनन्त-अनन्त जीव होते है।[1]

प्रस्तुत सूत्र मे साधारण वनस्पतिकाय के अनेक प्रकार बताये गये हैं। कतिपय साधारण वनस्पतियो के नाम बताकर विशेष जानकारी के लिए प्रज्ञापनासूत्र का निर्देश कर दिया है। वहाँ इस सम्बन्ध मे विस्तार के साथ निरूपण है।

प्रासगिक और उपयोगी होने से प्रज्ञापनासूत्र मे निर्दिष्ट बादर वनस्पति और साधारण वनस्पति के लक्षणो का यहाँ उल्लेख किया जाता है—

---

१. गोला य असखेज्जा होति निगोया असखया गोले।
एक्केको य निगोओ अणतजीवो मुणेयव्वो॥

साधारणशरीरी वनस्पति की पहचान—१ जिस मूल, कद, स्कध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पुष्प, फल, वीज, आदि को तोडे जाने पर समान भग हो अर्थात् चक्राकार भग हो, समभग हो अर्थात् जो आडी-टेढी न टूटकर समरूप मे टूटती हो वह वनस्पति साधारणशरीरी है।

२ जिस मूल, कद, स्कध और शाखा के काष्ठ (मध्यवर्ती सारभाग) की अपेक्षा छाल अधिक मोटी हो वह अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए।

३ जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, पत्र, पुष्प आदि के तोडे जाने पर उसका भगस्थान चक्र के आकार का सम हो ।

४ जिसकी गाठ या पर्व को तोडने पर चूर्ण निकलता हो।

५. जिसका पृथ्वी के समान प्रतरभेद (समान दरार) होती हो वह अनन्तकायिक जानना चाहिए।

६ दूध वाले या विना दूध वाले जिस पत्र की शिराएँ दिखती न हो, अथवा जिस पत्र की सधि सर्वथा दिखाई न दे, उसे भी अनन्त जीवो वाला समझना चाहिए।

पुष्पो के सम्वन्ध मे आगम निर्देशानुसार समझना चाहिए। उनमे कोई सख्यात जीव वाले, कोई असख्यात जीव वाले और कोई अनन्त जीव वाले होते है।

प्रत्येकशरीरी वनस्पति के लक्षण—१ जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और वीज को तोडने पर उसमे हीर दिखाई दे अर्थात् जिसका भग समरूप न होकर विषम हो—दँतीला हो।

२ जिसका भगस्थान चक्राकार न होकर विषम हो।

३ जिस मूल, कन्द, स्कन्ध या शाखा के काष्ठ (मध्यवर्ती सारभाग) की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वे वनस्पतियाँ प्रत्येकशरीरी जाननी चाहिए। पूर्वोक्त साधारण वनस्पति के लक्षण जिनमे न पाये जावे वे सव प्रत्येकवनस्पति जाननी चाहिए।

प्रत्येक किशलय (कोपल) उगते समय अनन्तकायिक होता है, चाहे वह प्रत्येकशरीरी हो या साधारणशरीरी।[1] किन्तु वही किशलय बढता-वढता वाद मे पत्र रूप धारण कर लेता है तब साधारणशरीरी से प्रत्येकशरीरी हो जाता है ।

ये वादर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। जो अपर्याप्त हैं उनके वर्णादि विशेषरूप से स्पष्ट नही होते हैं। जो पर्याप्त हैं उनके वर्णादेश से, गधादेश से, रसादेश से और स्पर्शादेश से हजारो प्रकार हो जाते है। इनकी सख्यात लाख योनियाँ हैं। प्रत्येक वनस्पतिकाय की १० लाख और साधारण वनस्पति की १४ लाख योनियाँ हैं। पर्याप्त जीवो की निश्रा मे अपर्याप्त जीव उत्पन्न होते हैं। जहाँ एक वादर पर्याप्त है वहाँ कदाचित् सख्यात, कदाचित् असख्यात और कदाचित् अनन्त अपर्याप्त पैदा होते है। प्रत्येक वनस्पति की अपेक्षा सख्यात, असख्यात और साधारण वनस्पति की अपेक्षा अनन्त अपर्याप्त समझने चाहिए।

---

१ 'उग्गेमाणा अणता'।

उन बादर वनस्पतिकायिको के विषय में २३ द्वारो की विचारणा मे सब कथन बादर पृथ्वीकायिको के समान जानना चाहिए। जो अन्तर है वह इस प्रकार है—

इन बादर वनस्पतिकायिक जीवो का सस्थान नाना रूप है—अनियत है। इसकी उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन से अधिक की बताई है। वह बाह्य द्वीपो मे वल्ली आदि की अपेक्षा तथा समुद्र एव गोतीर्थो मे पद्मनाल की अपेक्षा से समझना चाहिए। इससे अधिक पद्मो की अवगाहना को पृथ्वीकाय का परिणाम समझना चाहिए। ऐसी वृद्ध आचार्यो की धारणा है। स्थितिद्वार मे उत्कृष्ट दस हजार वर्ष कहने चाहिए। गति-आगति द्वार के बाद 'अपरित्ता अणता' पाठ है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येकशरीरी वनस्पति जीव असख्यात हैं और साधारणशरीरी वनस्पति जीव अनन्त हैं। इस प्रकार हे आयुष्मन् श्रमण! यह बादर वनस्पति का कथन हुआ और इसके साथ ही स्थावर जीवो का कथन पूर्ण हुआ।

त्रसों का प्रतिपादन

२२ से किं तसा?

तसा तिविहा पण्णत्ता, तजहा—

तेउक्काइया, वाउक्काइया, ओराला तसा पाणा।

[२२] त्रसो का स्वरूप क्या है?

त्रस तीन प्रकार के कहे गये है, यथा—

तेजस्काय, वायुकाय और उदारत्रस।

२३. से किं तं तेउक्काइया?

तेउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

सुहुमतेउक्काइया य बादरतेउक्काइया य?

[२३] तेजस्काय क्या है?

तेजस्काय दो प्रकार के कहे गये है, जैसे—

सूक्ष्मतेजस्काय और बादरतेजस्काय।

२४ से किं त सुहुमतेउक्काइया?

सुहुमतेउक्काइया जहा—सुहुमपुढविक्काइया नवरं सरीरगा सूइकलावसठिया, एगगइआ, दुआगइआ, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, सेस तं चेव, से तं सुहुमतेउक्काइया।

[२४] सूक्ष्म तेजस्काय क्या है?

सूक्ष्म तेजस्काय सूक्ष्म पृथ्वीकायिको की तरह समझना। विशेषता यह है कि इनके शरीर का सस्थान सूइयो के समुदाय के आकार का जानना चाहिए।

ये जीव एक गति (तिर्यंचगति) मे ही जाते है और दो गतियो से (तिर्यंच और मनुष्यो) से आते है।

ये जीव प्रत्येकशरीर वाले है और असख्यात है ।
यह सूक्ष्म तेजस्काय का कथन हुआ ।

२५. से किं तं बादरतेउक्काइया ?
बादरतेउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता, तजहा—
इंगाले जाले मुम्मुरे जाव सूरकंतमणिनिस्सिए;
जे यावन्ने तहप्पगारा,
ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—
पज्जत्ता य अपज्जत्ता य ।
तेसिं ण भंते ! जीवाण कति सरीरगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ सरीरगा पण्णत्ता, तजहा—
ओरालिए, तेयए, कम्मए । सेसं तं चेव, सरीरगा सूइकलावसंठिया, तिन्नि लेस्सा, ठिती जहन्नेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेण तिन्नि राइंदियाइ, तिरियमणुस्सेहिंतो उववाओ, सेसं तं चेव एगगतिया दुआगतिआ, परित्ता असखेज्जा पण्णत्ता, से तं तेउक्काइया ।

[२५] बादर तेजस्कायिको का स्वरूप क्या है ?

बादर तेजस्कायिक अनेक प्रकार के कहे गये है, यथा—कोयले की अग्नि, ज्वाला की अग्नि, मुर्मुर (भूभुर) की अग्नि यावत् सूर्यकान्त मणि से निकली हुई अग्नि और भी अन्य इसी प्रकार की अग्नि । ये बादर तेजस्कायिक जीव सक्षेप से दो प्रकार के है—पर्याप्त और अपर्याप्त ।

भगवन् ! उन जीवो के कितने शरीर कहे गये हैं ?

गौतम ! उनके तीन शरीर कहे गये हैं— १ औदारिक २ तैजस और ३ कार्मण । शेष बादर पृथ्वीकाय की तरह समझना चाहिए । अन्तर यह है कि उनके शरीर सूइयो के समुदाय के आकार के हैं, उनमे तीन लेश्याएँ हैं, जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन रात-दिन की है । तिर्यंच और मनुष्यो से वे आते है और केवल एक तिर्यंचगति मे ही जाते हैं । वे प्रत्येकशरीर वाले हैं और असंख्यात कहे गये है । यह तेजस्काय का वर्णन हुआ ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे त्रसजीव तीन प्रकार के कहे गये है—तेजस्कायिक, वायुकायिक और उदार त्रस । पूर्व मे कहा जा चुका है कि त्रस जीव दो प्रकार के बताये गये है—गतित्रस और लब्धित्रस । यहाँ जो तेजस्कायिको और वायुकायिको को त्रस कहा गया है सो गतित्रस की अपेक्षा से समझना चाहिए । तेजस्काय और वायुकाय मे अनभिसधि पूर्वक गति पाई जाती है, अभिसधिपूर्वक गति नही । जो अभिसधिपूर्वक गति कर सकते है वे तो स्पष्ट रूप से उदार त्रस कहे गये है, जैसे—द्वीन्द्रियादि त्रस जीव । ये ही लब्धित्रस कहे जाते है ।

तेजस् अर्थात् अग्नि । अग्नि ही जिनका शरीर है वे जीव तेजस्कायिक कहे जाते है । ये तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गये है—सूक्ष्म तेजस्कायिक और बादर तेजस्कायिक । सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव वे हैं जो सूक्ष्मनामकर्म के उदय वाले हैं और सारे लोक मे व्याप्त हैं तथा जो

मारने से मरते नही आदि कथन सूक्ष्म पृथ्वीकायिको की तरह जानना चाहिए। तेवीस द्वारो की विचारणा मे सब कथन सूक्ष्म पृथ्वीकाय की तरह समझना चाहिए। विशेषता यह कि सूक्ष्म तेजस्कायिको का शरीर-सस्थान सूइयो के समुदाय के समान है। च्यवनद्वार मे ये सूक्ष्म तेजस्कायिक वहाँ से निकल कर तिर्यंचगति मे ही उत्पन्न होते है, मनुष्यगति मे उत्पन्न नही होते। आगम मे कहा गया है कि 'सप्तम पृथ्वी के नैरयिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक तथा असख्यात वर्षों की आयु वाले अनन्तर मर कर मनुष्य गति मे नही जाते।'[1] गति-आगति द्वार मे—तेजस्कायिक तिर्यंचगति मे ही जाते है और तिर्यंचगति, मनुष्यगति से आकर उनमे उत्पन्न होते है। इसलिए ये एक गति वाले और दो आगति वाले हैं।

बादर तेजस्कायिक—बादर तेजस्कायिक जीव वे है जो बादरनामकर्म के उदय वाले है। उनके अनेक प्रकार हैं, जैसे—इगाल, ज्वाला, मुर्मुर यावत् सूर्यकातमणिनिश्रित। यावत् शब्द से अचि, अलात, शुद्धाग्नि, उल्का, विद्युत्, अशनि, निर्घात, सघर्षसमुत्थित का ग्रहण करना चाहिए।

इंगाल का अर्थ है—धूम से रहित जाज्वल्यमान खैर आदि की अग्नि।

ज्वाला का अर्थ है—अग्नि से सबद्ध लपटें या दीपशिखा।

मुर्मुर का अर्थ है—भस्ममिश्रित अग्निकण-भोभर।

अचि का अर्थ है—मूल अग्नि से असबद्ध ज्वाला।

अलात का अर्थ है—किसी काष्ठखण्ड मे अग्नि लगाकर उसे चारो तरफ फिराने पर जो गोल चक्कर-सा प्रतीत होता है, वह उल्मुल्क या अलात है।

शुद्धाग्नि—लोहपिण्ड आदि मे प्रविष्ट अग्नि, शुद्धाग्नि है।

उल्का—एक दिशा से दूसरी तरफ जाती हुई तेजोमाला, चिनगारी।

विद्युत्—आकाश मे चमकने वाली बिजली।

अशनि—आकाश से गिरते हुए अग्निमय कण।

निर्घात—वैक्रिय सम्बन्धित वज्रपात या विद्युत्पात।

सघर्ष-समुत्थित—अरणि काष्ठ की रगड से या अन्य रगड से उत्पन्न हुई अग्नि।

सूर्यकान्तमणि-निसृत—प्रखर सूर्य किरणो के स्पर्श से सूर्यकातमणि से निकली हुई अग्नि।

और भी इसी प्रकार की अग्निया बादर तेजस्कायिक हैं। ये बादर तेजस्कायिक दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। अपर्याप्त जीवो के वर्णादि स्पष्टरूप से प्रकट नही होते हैं। पर्याप्त जीवो के वर्ण, गध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हजारो प्रकार और सख्यात योनिया हो जाती है। इनकी सात लाख योनिया हैं। एक पर्याप्त की निश्रा मे असख्यात अपर्याप्त जीव उत्पन्न होते हैं।

शरीर आदि २३ द्वारो की विचारणा सूक्ष्म तेजस्कायिको की तरह जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इनकी स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से तीन रात-दिन की है। आहार बादर पृथ्वीकायिको के समान समझना चाहिए।

---

१ सत्तमी महिनेरइया तेऊ वाऊ अणतरुव्वट्टा।
नवि पावे माणुस्स तहेवऽसखाउया सव्वे॥

वायुकाय

२६ से किं त वाउक्काइया ?

वाउक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तजहा—

सुहुमवाउक्काइया य बादरवाउक्काइया य ।

सुहुमवाउक्काइया जहा तेउक्काइया णवरं सरीरा पडागसठिया एगगतिआ दुआगतिया परित्ता असखिज्जा से त्त सुहुमवाउक्काइया ।

से किं तं बादरवाउक्काइया ?

बादरवाउक्काइया अणेगविधा पण्णत्ता, तंजहा—

पाईणवाए, पडीणवाए, एव जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य ।

तेसिं णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—

ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए ।

सरीरगा पडागसंठिया, चत्तारि समुग्घाया—

वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए, वेउव्वियसमुग्घाए ।

आहारो णिव्वाघाएण छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पचदिसिं ।

उववाओ देवमणुयनेरइएसु णत्थि । ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि वाससहस्साइं, सेसं त चेव एगगतिया, दुआगतिया, परित्ता, असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो ! से त बायर-वाउक्काइआ, से त वाउक्काइया ।

[२६] वायुकायिको का स्वरूप क्या है ?

वायुकायिक दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

सूक्ष्म वायुकायिक और बादर वायुकायिक ।

सूक्ष्म वायुकायिक तेजस्कायिक की तरह जानने चाहिए ।

विशेषता यह है कि उनके शरीर पताका (ध्वजा) के आकार के है । ये एक गति मे जाने वाले और दो गतियो से आने वाले है । ये प्रत्येकशरीरी और असख्यात लोकाकाशप्रदेश प्रमाण हैं । यह सूक्ष्म वायुकायिक का कथन हुआ ।

बादर वायुकायिको का स्वरूप क्या है ?

बादर वायुकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा—पूर्वी वायु, पश्चिमी वायु और इस प्रकार के अन्य वायुकाय । वे सक्षेप से दो प्रकार के है—पर्याप्त और अपर्याप्त ।

भगवन् ! उन जीवो के कितने शरीर कहे गये हैं ?

गौतम ! चार शरीर कहे गये है—औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण । उनके शरीर ध्वजा के आकार के हैं। उनके चार समुद्घात होते हैं—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणातिक-

समुद्घात और वैक्रियसमुद्घात। उनका आहार व्याघात न हो तो छहों दिशाओं के पुद्गलों का होता है और व्याघात होने पर कभी तीन दिशा, कभी चार दिशा और कभी पांच दिशाओं के पुद्गलों के ग्रहण का होता है। वे जीव देवगति, मनुष्यगति और नरकगति में उत्पन्न नहीं होते। उनकी स्थिति जघन्य से अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से तीन हजार वर्ष की है। शेष पूर्ववत्। हे आयुष्मन् श्रमण! एक गति वाले, दो आगति वाले, प्रत्येकशरीरी और असंख्यात कहे गये हैं।

यह बादर वायुकाय और वायुकाय का कथन हुआ।

विवेचन—वायु ही जिनका शरीर है वे जीव वायुकायिक कहे जाते हैं। ये दो प्रकार के हैं—सूक्ष्म और बादर। सूक्ष्म वायुकायिकों का वर्णन पूर्वोक्त सूक्ष्म तेजस्कायिकों की तरह जानना चाहिए। अन्तर यह है कि वायुकायिकों के शरीर का संस्थान पताका (ध्वजा) के आकार का है।

बादर वायुकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं। प्रज्ञापनासूत्र में कहे गये प्रकारों का यहाँ उल्लेख करना चाहिए। वहाँ इनके प्रकार इस तरह बताये गये हैं—

पूर्वीवात—पूर्व दिशा से आने वाली हवा।
पश्चिमीवात—पश्चिम दिशा से आने वाली हवा।
दक्षिणवात—दक्षिण दिशा से आने वाली हवा।
उदीचीनवात—उत्तर दिशा से आने वाली हवा।
ऊर्ध्ववात—ऊर्ध्व दिशा में बहने वाली हवा।
अधोवात—नीची दिशा में बहने वाली हवा।
तिर्यग्वात—तिरछी दिशा में बहने वाली हवा।
विदिशावात—विदिशाओं से आने वाली हवा।
वातोद्भ्रम—अनियत दिशाओं में बहने वाली हवा।
वातोत्कलिका—समुद्र के समान तेज बहने वाली तूफानी हवा।
वातमंडलिका—वातौली, चक्करदार हवा।
उत्कालिकावात—तेज आंधियों से मिश्रित हवा।
मण्डलिकावात—चक्करदार हवाओं से आरंभ होकर तेज आंधियों से मिश्रित हवा।
गुंजावात—सनसनाती हुई हवा।
झंझावात—वर्षा के साथ चलने वाला अंधड़ अथवा अशुभ एवं कठोर हवा।
संवर्तकवात—तिनके आदि उड़ा ले जाने वाली हवा अथवा प्रलयकाल में चलने वाली हवा।
घनवात—रत्नप्रभापृथ्वी आदि के नीचे रही हुई सघन—ठोस वायु।
तनुवात—घनवात के नीचे रही हुई पतली वायु।
शुद्धवात—मन्दवायु अथवा मशकादि में भरी हुई वायु।
इसके अतिरिक्त भी अन्य इसी प्रकार की हवाएँ बादर वायुकाय हैं।

ये बादर वायुकायिक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। अपर्याप्त जीवों के शरीर के वर्णादि पूरी तरह संप्रकट नहीं होते हैं, अतएव विशिष्ट वर्णादि की अपेक्षा उनके भेद नहीं किये गये हैं। जो पर्याप्त जीव हैं उनके वर्णादि संप्रकट होते हैं, अतएव विशिष्ट वर्णादि की अपेक्षा

उनके हजारो प्रकार हो जाते है । इनकी सात लाख योनियाँ है । एक पर्याप्त वायुकाय जीव की निश्रा मे नियम से असख्यात अपर्याप्त वायुकाय के जीव उत्पन्न होते है ।

शरीर आदि २३ द्वारो की विचारणा मे इन बादर वायुकायिक जीवो के चार शरीर होते है—औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण । समुद्घात चार होते है—वैक्रियसमुद्घात, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणातिकसमुद्घात । स्थितिद्वार मे जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से तीन हजार वर्ष की स्थिति जाननी चाहिए । आहार निर्व्याघात हो नो छहो दिशा के पुद्गलो का होता है और व्याघात की स्थिति मे कभी तीन, कभी चार और कभी पाँच दिशाओ के पुद्गलो का होता है । लोकनिष्कुट (लोक के किनारे) मे भी बादर वायुकाय की सभावना है, अतएव व्याघात की स्थिति बन सकती है । शेष द्वार सूक्ष्म वायुकाय की तरह जानने चाहिए ।

उपसंहार करते हुए कहा गया है कि हे आयुष्मन् श्रमण ! ये जीव एक तिर्यंचगति मे ही जाने वाले और तिर्यंच, मनुष्य इन दो गतियो से आने वाले है । ये प्रत्येकशरीरी है और असख्यात-लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण है । यह वायुकाय का कथन पूरा हुआ ।

औदारिक त्रसो का वर्णन

२७ से किं तं ओराला तसा पाणा ?

ओराला तसा पाणा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—

बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचेंदिया ।

[२७] औदारिक त्रस प्राणी किसे कहते है ?

औदारिक त्रस प्राणी चार प्रकार के कहे गये है,

यथा—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय ।

विवेचन—'औदारिक त्रस' पद मे दिया गया 'औदारिक' पद गतित्रस का व्यवच्छेदक है । तेजस्काय और वायुकाय रूप गतित्रस से भिन्नता बताने के लिए 'ओरा ला तसा' कहा गया है । औदारिक का अर्थ है—स्थूल, प्रधान । मुख्यतया द्वीन्द्रियादि जीव ही त्रस रूप से विवक्षित है, अतएव ये औदारिक त्रस कहलाते है । ये चार प्रकार के है—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय ।

द्वीन्द्रिय—जिन जीवो के स्पर्शन और रसना रूप दो इन्द्रियाँ हो, वे द्वीन्द्रिय है ।

त्रीन्द्रिय—जिन जीवो के स्पर्शन, रसना और घ्राण रूप तीन इन्द्रियाँ हो, वे त्रीन्द्रिय है ।

चतुरिन्द्रिय—जिन जीवो के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु रूप चार इन्द्रियाँ हो, वे चतुरिन्द्रिय है ।

पंचेन्द्रिय—जिन जीवो के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र रूप पाँच इन्द्रियाँ हो, वे पचेन्द्रिय जीव है ।

पूर्व मे कहा जा चुका है कि इन्द्रियो का यह विभाग द्रव्येन्द्रियो को लेकर है, भावेन्द्रियो की अपेक्षा से नही ।

द्वीन्द्रिय-वर्णन

२८. से किं तं बेइंदिया ?
बेइंदिया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—
पुलाकिमिआ जाव समुद्दलिक्खा।
जे यावण्णे तहप्पगारा;
ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—
पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।
तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तओ सरीरगा पण्णत्ता—
ओरालिए, तेयए, कम्मए।
तेसि णं भंते ! जीवाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?
जहन्नेणं अंगुलासखेज्जभागं उक्कोसेणं बारसजोयणाइं।

छेवट्टसघयणा, हुंडसंठिया, चत्तारि कसाया, चत्तारि सण्णाओ, तिण्णि लेसाओ, दो इंदिया, तओ समुग्घाया—वेयणा, कसाय, मारणंतिया, नो सन्नी, असन्नी, णपुंसकवेदगा, पंच पज्जत्तीओ, पंच-अपज्जत्तीओ, सम्मदिट्ठी वि, मिच्छादिट्ठी वि, णो सम्मसिच्छादिट्ठी; णो ओहिदंसणी, णो चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, णो केवलदंसणी।

ते णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

गोयमा ! णाणी वि अण्णाणी वि। जे णाणी ते णियमा दुण्णाणी, तंजहा—आभिणिवोहिय-णाणी सुयणाणी य। जे अण्णाणी ते नियमा दुअण्णाणी मतिअण्णाणी य सुयअण्णाणी य।

नो मणजोगी,वइजोगी, कायजोगी। सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि। आहारो णियमा छद्दिसि। उववाओ तिरिय-मणुस्सेसु नेरइय देव असंखेज्जवासाउय वज्जेसु। ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बारससंवच्छराणि। समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति।

कहिं गच्छंति ?
नेरइय-देव-असंखेज्जवासाउयवज्जेसु गच्छति,
दुगतिया, दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा,
से तं बेइंदिया।

[२८] द्वीन्द्रिय जीव क्या हैं ?

द्वीन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा—पुलाकृमिक यावत् समुद्रलिक्षा। और भी अन्य इसी प्रकार के द्वीन्द्रिय जीव।

ये संक्षेप से दो प्रकार के है—पर्याप्त और अपर्याप्त।

हे भगवन् ! उन जीवो के कितने शरीर कहे गये है ?

गौतम ! तीन शरीर कहे गये हैं, यथा—औदारिक, तैजस और कार्मण ।

हे भगवन् ! उन जीवो के शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है ?

गौतम ! जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से बारह योजन की अवगाहना है। उन जीवो के सेवार्तसहनन और हुडसस्थान होता है। उनके चार कषाय, चार सज्ञाएँ, तीन लेश्याएँ और दो इन्द्रियाँ होती है। उनके तीन समुद्घात होते हैं—वेदना, कषाय और मारणातिक।

ये जीव सज्ञी नही हैं, असज्ञी हैं। नपुसकवेद वाले हैं। इनके पाच पर्याप्तियाँ और पाच अपर्याप्तियाँ होती है। ये सम्यग्दृष्टि भी होते हैं और मिथ्यादृष्टि भी होते हैं, लेकिन सम्यग्-मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) नही होते है।

ये अवधिदर्शन वाले नही होते है, चक्षुदर्शन वाले नही होते है, अचक्षुदर्शन वाले होते हैं, केवलदर्शन वाले नही होते ।

हे भगवन् ! वे जीव ज्ञानी है या अज्ञानी ?

गौतम ! ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियम से दो ज्ञान वाले है—मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी। जो अज्ञानी हैं वे नियम से दो अज्ञान वाले हैं—मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी।

ये जीव मनोयोग वाले नही हैं, वचनयोग और काययोग वाले हैं। ये जीव साकार-उपयोग वाले भी हैं और अनाकार-उपयोग वाले भी है।

इन जीवो का आहार नियम से छह दिशाओ के पुद्‌गलो का है। इनका उपपात (अन्य जन्म से आकर उत्पत्ति) नैरयिक, देव और असख्यात वर्ष की आयुवालो को छोडकर शेष तिर्यंच और मनुष्यो से होता है। इनकी स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से बारह वर्ष की है।

ये मारणातिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते है और असमवहत होकर भी मरते है।

हे भगवन् ! ये मरकर कहाँ जाते है ?

गौतम ! नैरयिक, देव और असख्यात वर्ष की आयुवाले तिर्यंचो मनुष्यो को छोडकर शेष तिर्यंचो मनुष्यो मे जाते हैं। अतएव ये जीव दो गति मे जाते हैं, दो गति से आते है, प्रत्येकशरीरी है और असख्यात है।

यह द्वीन्द्रिय जीवो का वर्णन हुआ।

विवेचन—द्वीन्द्रिय जीवो के प्रकार बताते हुए सूत्रकार ने पुलाकृमि यावत् समुद्रलिक्षा कहा है। यावत् शब्द से यहाँ वे सब जीव-प्रकार ग्रहण करने चाहिए जो प्रज्ञापनासूत्र के द्वीन्द्रियाधिकार मे बताये गये है।

परिपूर्ण प्रकार इस प्रकार है—

पुलाकृमि—मल द्वार मे पैदा होने वाले कृमि।

कुक्षिकृमि—कुक्षि (उदर) मे उत्पन्न होने वाले कृमि।

गण्डोयलक—गिंडोला।

गोलोम, नुपूर, सौमगलक, वशीमुख, सूचिमुख, गोजलौका, जलौका (जोक), जालायुष्क, ये सव लोकपरम्परानुसार जानने चाहिए ।

शख— समुद्र मे उत्पन्न होने वाले शख ।

शखनक—समुद्र मे उत्पन्न होने वाले छोटे-छोटे शख ।

घुल्ला—घोघा । खुल्ला—समुद्री शख के आकार के छोटे शख ।

वराटा—कौडिया । सौत्रिक, मौलिक, कल्लुयावास, एकावर्त, द्वि-आवर्त, नन्दिकावर्त, शम्बूक, मातृवाह, ये सब विविध प्रकार के शख समझने चाहिए ।

सिप्पिसपुट—सीपडियाँ । चन्दनक—अक्ष (पासा) ।

समुद्रलिक्षा—कृमिविशेष । ये सव तथा अन्य इसी प्रकार के मृतकलेवर मे उत्पन्न होने वाले कृमि आदि द्वीन्द्रिय समझने चाहिए । ये द्वीन्द्रिय जीव पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के है ।

शरीरादि २३ द्वारो की विचारणा इस प्रकार जाननी चाहिए—

शरीरद्वार—इनके तीन शरीर होते है—औदारिक, तैजस एव कार्मण ।

अवगाहनाद्वार—इन जीवो की शरीर-अवगाहना जघन्य से अगुल के असख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट से बारह योजन की होती है ।

सहननद्वार—इन जीवो के छेदवर्ति—सेवार्त सहनन होता है । यहाँ मुख्य सहनन ग्रहण करना चाहिए, औपचारिक नही । क्योकि इन जीवो के अस्थियाँ होती हैं ।

सस्थानद्वार—इन जीवो के हुडसस्थान होता है ।

कषायद्वार—इनमे चारो कषाय पाये जाते है ।

सज्ञाद्वार—इनमे चारो आहारादि सज्ञाएँ होती हैं ।

लेश्याद्वार—इन जीवो मे आरम्भ की कृष्ण, नील, कापोत, ये तीन लेश्याएँ पायी जाती है ।

इन्द्रियद्वार—इनके स्पर्शन और रसन रूप दो इन्द्रियाँ हैं ।

समुद्घातद्वार—इनमे तीन समुद्घात पाये जाते है—वेदना, कषाय और मारणातिक समुद्घात ।

सज्ञाद्वार—ये जीव सज्ञी नही होते । असज्ञी होते है ।

वेदद्वार—ये जीव नपुसकवेद वाले होते है । ये सम्मूर्छिम होते हैं और जो समूर्छिम होते है वे नपुसक ही होते है । तत्त्वार्थसूत्र मे कहा है—नारक और समूर्छिम नपुसकवेदी होते है ।[1]

पर्याप्तिद्वार—इन जीवो के पाच पर्याप्तियाँ पर्याप्त जीवो की अपेक्षा होती हैं और पाच अपर्याप्तियाँ अपर्याप्त जीवो की अपेक्षा होती हैं ।

दृष्टिद्वार—ये जीव सम्यग्दृष्टि भी होते है और मिथ्यादृष्टि भी होते है, लेकिन मिश्रदृष्टि वाले नही होते । इसकी स्पष्टता इस प्रकार है—

---

१ नारकसमूर्च्छिनो नपु सकानि । —तत्त्वार्थ सू. अ. २ सू ५०

जिस प्रकार घण्टा को बजाये जाने पर महान् शब्द होता है और वह शब्द क्रमश हीयमान होता हुआ लटकन तक ही रह जाता है, इसी तरह सम्यक्त्व से गिरता हुआ जीव क्रमश गिरता-गिरता सास्वादन सम्यक्त्व की स्थिति मे आ जाता है और ऐसे सास्वादन सम्यक्त्व वाले कतिपय जीव मरकर द्वीन्द्रियो मे भी उत्पन्न होते है। अत. अपर्याप्त अवस्था मे थोडे समय के लिए सास्वादन सम्यक्त्व का सम्भव होने से उनमे सम्यग्दृष्टित्व पाया जाता है। शेषकाल मे मिथ्यादृष्टिता है तथा भव-स्वभाव से तथारूप परिणाम न होने से उनमे मिश्रदृष्टिता नही पाई जाती तथा कोई मिश्रदृष्टि वाला उनमे उत्पन्न नही होता। क्योकि 'मिश्रदृष्टि वाला जीव उस स्थिति मे नही मरता' यह आगम वाक्य है।[1]

दर्शनद्वार—इनमे अचक्षुदर्शन ही पाया जाता है, चक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन नही।

ज्ञानद्वार—ये ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है। सास्वादन सम्यक्त्व की अपेक्षा ज्ञानी है। ये ज्ञानी मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी है। मिथ्यादृष्टित्व की अपेक्षा अज्ञानी है। ये अज्ञानी मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी है।

योगद्वार—ये मनोयोगी नही हैं। वचनयोगी और काययोगी है।

उपयोगद्वार—ये जीव साकार-उपयोग वाले भी है और अनाकार-उपयोग वाले भी है।

आहारद्वार—नियम से छहो दिशाओ के पुद्गलो का आहार ये जीव करते है। द्वीन्द्रियादि जीव त्रसनाडी मे ही होते है अतएव व्याघात का प्रश्न नही उठता।

उपपात—ये जीव देव, नारक और असख्यात वर्षायु वाले तिर्यंचो-मनुष्यो को छोडकर शेष तिर्यंच-मनुष्यगति से आकर पैदा होते हैं।

स्थिति—उन जीवो की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष की है।

समवहतद्वार—ये समवहत होकर भी मरते है और असमवहत होकर भी मरते है।

च्यवनद्वार—ये जीव मरकर देव, नारक और असख्यात वर्षों की आयुवाले तिर्यंचो-मनुष्यो को छोडकर शेष तिर्यंच मनुष्य मे उत्पन्न होते हैं।

गति-आगतिद्वार—ये जीव पूर्ववत् दो गति मे जाते है और दो गति से आते है।

ये जीव प्रत्येकशरीरी हैं और असख्यात है। घनीकृत लोक के ऊपर-नीचे तक दीर्घ एक प्रदेश वाली श्रेणी मे जितने आकाशप्रदेश हैं, उतने ये द्वीन्द्रियजीव है। असंख्यात का यह प्रमाण बताया गया है। क्योकि असख्यात भी असख्यात प्रकार का है।

इन द्वीन्द्रिय-पर्याप्त अपर्याप्त की सात लाख जाति कुलकोडी, योनिप्रमुख होते है। पूर्वाचार्यो के अनुसार जातिपद से तिर्यंचगति समझनी चाहिए। उसके कुल हैं—कृमि, कीट, वृश्चिक आदि। ये कुल योनि-प्रमुख होते है अर्थात् एक ही योनि मे अनेक कुल होते है। जैसे एक ही गोबर या कण्डे की योनि मे कृमिकृत, कीट और वृश्चिककुल आदि होते हैं। इसी प्रकार एक ही योनि मे

---

१ 'न सम्ममिच्छो कुणइ काल' इति वचनात्।

अवान्तर जातिभेद होने से अनेक जातिकुल के योनि प्रवाह होते हैं। द्वीन्द्रियों के सात लाख जातिकुल कोटिरूप योनियाँ हैं।

यह द्वीन्द्रियो का वर्णन हुआ ।

त्रीन्द्रियों का वर्णन

२९. से किं तं तेइंदिया ?

तेइंदिया अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—

ओवइया, रोहिणीया, हत्थिसोंडा, जे यावण्णे तहप्पगारा।

ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

तहेव जहा बेइंदियाण णवर सरीरोगाहणा उक्कोसेणं तिन्नि गाउयाइं, तिन्नि इंदिया, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगूणपण्णराइंदिया, सेसं तहेव दुगतिआ, दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से त्तं तेइंदिया।

[२९] त्रीन्द्रिय जीव कौन हैं ?

त्रीन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

औपयिक, रोहिणीक, यावत् हस्तिशौण्ड और

अन्य भी इसी प्रकार के त्रीन्द्रिय जीव।

ये संक्षेप से दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। इसी तरह वह सब कथन करना चाहिए जो द्वीन्द्रियो के लिए कहा गया है। विशेषता यह है कि त्रीन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट, शरीरावगाहना तीन कोस की है, उनके तीन इन्द्रिया हैं, जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट उनपचास रात-दिन की स्थिति है। और सब वैसे ही कहना चाहिए यावत् वे दो गतिवाले, दो आगतिवाले, प्रत्येकशरीरी और असख्यात कहे गये है। यह त्रीन्द्रियो का कथन हुआ।

विवेचन—स्पर्शन, रसन और घ्राण—ये तीन इन्द्रियाँ जिन जीवो को होती हैं वे त्रीन्द्रिय जीव है। उनके कई प्रकार है। प्रज्ञापनासूत्र मे उनके भेद इस प्रकार गिनाये गये हैं—

औपयिक, रोहिणीक, कथु (कुंथुआ), पिपीलिका (चीटी), उद्देशक, उद्देहिका, (उदई-दीमक), उत्कलिक, उत्पाद, उत्कट, तृणाहार, काष्ठाहार (घुन), मालुक, पत्राहार, तृणवृन्तिक, पत्रवृन्तिक, पुष्पवृन्तिक, फलवृन्तिक, बीजवृन्तिक, तेंदुरणमज्जिक, त्रपुषभिंजिक, कार्पासस्थिभिंजक, हिल्लिक, झिल्लिक, झिंगिर (झींगुर), किंगिरिट, बाहुक, लघुक, सुभग, सौवस्तिक, शुकवृन्त, इन्द्रकायिक, इन्द्रगोपक (इन्द्रगोप—रेशमी कीडा), उरुलुचक, कुस्थलवाहक, यूका (जूं), हालाहल, पिशुक (पिस्सू या खटमल), शतपादिका (गजाई), गोम्ही (कानखजूरा) और हस्तिशौण्ड।

उक्त त्रीन्द्रिय जीवो के प्रकारो मे कुछ तो प्रसिद्ध हैं ही। शेष देशविशेष या सम्प्रदाय से जानने चाहिए।

ये त्रीन्द्रिय जीव पर्याप्त-अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के है इत्यादि सब कथन पूर्वोक्त

द्वीन्द्रिय जीवो के समान जानना चाहिए। तेवीस द्वारो मे भी वही कथन करना चाहिए केवल जो अन्तर है वह इस प्रकार है—

शरीर की अवगाहना—त्रीन्द्रियो की शरीर की अवगाहना उत्कृष्ट तीन कोस की है।

इन्द्रियद्वार—इन जीवो के तीन इन्द्रियाँ होती है।

स्थितिद्वार—इनकी स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट उनपचास रात-दिन की है।

शेष वही कथन करना चाहिए यावत् वे दो गति और दो आगति वाले है, प्रत्येकशरीरी हैं और असख्यात हैं। इनकी आठ लाख कुलकोडी हैं।

यह त्रीन्द्रियो का कथन हुआ।

चतुरिन्द्रियों का कथन

३०. से किं तं चउरिंदिआ ?

चउरिंदिआ अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—

अंधिया, पुत्तिया जाव गोमयकीडा,

जे यावन्ने तहप्पगारा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता,

तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

तेसिं णं भंते ! जीवाणं कतिसरीरगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ सरीरगा पण्णत्ता—तं चेव,

णवरं सरीरोगाहणा उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं, इंदिआ चत्तारि, चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी, ठिई उक्कोसेण छम्मासा। सेस जहा तेइंदियाणं जाव असखेज्जा पण्णत्ता।

से त्तं चउरिंदिया।

[३०] चतुरिन्द्रिय जीव कौन हैं ?

चतुरिन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं—यथा अधिक, पुत्रिक यावत् गोमयकीट, और इसी प्रकार के अन्य जीव।

ये सक्षेप से दो प्रकार के है—पर्याप्त और अपर्याप्त।

हे भगवन् ! उन जीवो के कितने शरीर कहे गये हैं ?

गौतम ! तीन शरीर कहे गये हैं। इस प्रकार पूर्ववत् कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि उनकी उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना चार कोस की है, उनके चार इन्द्रियाँ हैं, वे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी हैं, उनकी स्थिति उत्कृष्ट छह मास की है। शेष कथन त्रीन्द्रिय जीवो की तरह जानना चाहिए यावत् वे असंख्यात कहे गये हैं। यह चतुरिन्द्रियो का कथन हुआ।

विवेचन—प्रज्ञापनासूत्र मे चतुरिन्द्रिय जीवो के भेद इस प्रकार बताये गये है—

अधिक, पौत्रिक (नेत्रिक), मक्खी, मशक (मच्छर), कीट (टिड्डी), पतग, ढिंकुण, कुक्कुड, कुक्कुह, नदावर्त, शृ गिरिट, कृष्णपत्र, नीलपत्र, लोहितपत्र, हरितपत्र, शुक्लपत्र, चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष,

ओभंजलिका, जलचारिक, गभीर, नीनिक, तंतव, अक्षिरोट, अक्षिवेध, सारंग, नेवल, दोला, भ्रमर, भरिली, जरुला, तोट्ट, विच्छू, पत्रवृश्चिक, छाणवृश्चिक, जलवृश्चिक, प्रियगाल, कनक और गोमयकीट ।

इसी प्रकार के अन्य प्राणियो को चतुरिन्द्रिय जानना चाहिए ।

इनके पर्याप्त और अपर्याप्त—दो भेद हैं इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए । तेवीस द्वारो की विचारणा भी त्रीन्द्रिय जीवो की तरह समझना चाहिए । जो अन्तर है वह इस प्रकार है—

अवगाहनाद्वार—इनकी अवगाहना उत्कृष्ट चार कोस की है ।

इन्द्रियद्वार—इनके चार इन्द्रियाँ होती हैं ।

दर्शनद्वार—ये चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन वाले हैं ।

स्थितिद्वार—इनकी उत्कृष्ट स्थिति छह मास की है ।

शेष सब कथन त्रीन्द्रियो की तरह जानना चाहिए यावत् ये चतुरिन्द्रिय जीव असंख्यात कहे गये हैं ।

पंचेन्द्रियों का कथन

३१ से किं तं पंचेंदिया ?

पंचेंदिया चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—

णेरइया, तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा ।

[३१] पचेन्द्रिय का स्वरूप क्या है ?

पचेन्द्रिय चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देव ।

विवेचन—निकल गया है इष्टफल जिनमे से वे निरय[1] हैं अर्थात् नरकावास हैं । उनमे उत्पन्न होने वाले जीव नैरयिक है । प्राय तिर्यक्लोक की योनियो मे उत्पन्न होने वाले तिर्यक्योनिक या तिर्यक्योनिज हैं ।[2]

'मनु' यह मनुष्य की सज्ञा है । मनु की सन्तान मनुष्य[3] हैं । जो सदा सुखोपभोग करते हैं, सुख मे रमण करते है, वे देव[4] है ।

नैरयिक-वर्णन

३२. से किं तं नेरइया ।

नेरइया सत्तविहा पण्णत्ता, तंजहा—रयणप्पभापुढविनेरइया जाव अहेसत्तमपुढविनेरइया । ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य ।

---

१ तत्र अयम्—इष्टफल कर्म, निर्गत अय येभ्यस्तेनिरया नरकावासा । —वृत्ति ।

२ प्राय तिर्यग्लोके योनय· उत्पत्तिस्थानानि येषा ते तिर्यग्योनिका ।

३ मनुरिति मनुष्यस्य संज्ञा । मनोरपत्यानि मनुष्या ।

४. दीव्यन्तीति देवा । —मलयवृत्ति

तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?

गोयमा! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—वेउव्विए, तेयए, कम्मए।

तेसि ण भंते ! जीवाण केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तजहा—

भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असखेज्जो भागो, उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं।

तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं धणुसहस्सं।

तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरा किंसंघयणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी; णेवट्ठी, णेव छिरा, णेव ण्हारु, णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता, अप्पिया, असुभा, अमणुण्णा अमणामा ते तेसिं संघातत्ताए परिणमंति ?

तेसि णं भते ! जीवाणं सरीरा किंसंठिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य।

तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया।

तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते वि हुंडसंठिया पण्णत्ता।

चत्तारि कसाया, चत्तारि सण्णाओ, तिण्णि लेसाओ, पंचिंदिया, चत्तारि समुग्घाता आइल्ला, सन्नी वि, असन्नी वि। नपुंसकवेदा, छ पज्जत्तीओ, छ अपज्जत्तीओ, तिविहा दिट्ठी, तिण्णि दंसणा, णाणी वि अण्णाणी वि, जे णाणी ते णियमा तिन्नाणी, तंजहा—आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिनाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगइया दु-अण्णाणी, अत्थेगइया ति-अण्णाणी। जे य दुअण्णाणी ते णियमा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य। जे ति अण्णाणी ते नियमा मतिअण्णाणी य सुयअण्णाणी य विभंगणाणी य। तिविहे जोगे, दुविहे उवओगे, छद्दिसिं आहारो, ओसन्नं कारणं पडुच्च वण्णओ कालाइं जाव आहारमाहरेंति; उववाओ तिरिय-मणुस्सेहिंतो, ठिती जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेण तित्तीसं सागरोवमाइं। दुविहा मरति, उवट्टणा भाणियव्वा जतो आगता, णवरि संमुच्छिमेसु पडिसिद्धो, दुगतिया, दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो ! से तं नेरइया।

[३२] नैरयिक जीवो का स्वरूप कैसा है ?

नैरयिक जीव सात प्रकार के हैं, यथा रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक यावत् अध सप्तमपृथ्वी-नैरयिक। ये नारक जीव दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त।

भगवन् ! उन जीवो के कितने शरीर कहे गये है ?

गौतम ! तीन शरीर कहे गये है—वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

भगवन् ! उन जीवो के शरीर की अवगाहना कितनी है ?

गौतम ! उनकी शरीरावगाहना दो प्रकार की है, यथा- भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय।

इसमें से जो भवधारणीय अवगाहना है वह जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से पाँच सौ धनुष । जो उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना है वह जघन्य से अगुल का सख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन की है ।

भगवन् ! उन जीवो के शरीर का सहनन कैसा है ?

गौतम ! छह प्रकार के सहननो मे से एक भी सहनन उनके नही है क्योकि उनके शरीर मे न तो हड्डी है, न नाडी है, न स्नायु है । जो पुद्‌गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमनाम होते हैं, वे उनके शरीररूप मे इकट्ठे हो जाते है ।

भगवन् ! उन जीवो के शरीर का संस्थान कौनसा है ?

गौतम ! उनके शरीर दो प्रकार के है—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । जो भवधारणीय शरीर है वे हुड सस्थान के हैं और जो उत्तरवैक्रिय शरीर हैं वे भी हुड सस्थान वाले हैं ।

उन नैरयिक जीवो के चार कषाय, चार सज्ञाएँ, तीन लेश्याएँ, पाच इन्द्रियाँ, आरम्भ के चार समुद्‌घात होते हैं । वे जीव सज्ञी भी है, असज्ञी भी हैं । वे नपुसक वेद वाले है । उनके छह पर्याप्तियाँ और छह अपर्याप्तियाँ होती हैं । वे तीन दृष्टि वाले और तीन दर्शन वाले हैं । वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । जो ज्ञानी हैं वे नियम से तीन ज्ञान वाले है—मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी । जो अज्ञानी हैं उनमे से कोई दो अज्ञान वाले और कोई तीन अज्ञान वाले है । जो दो अज्ञान वाले हैं वे नियम से मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी हैं और जो तीन अज्ञान वाले हैं वे नियम से मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभगज्ञानी हैं ।

उनमे तीन योग, दो उपयोग एव छह दिशाओं का आहार ग्रहण पाया जाता है । प्राय: करके वे वर्ण से काले आदि पुद्‌गलो का आहार ग्रहण करते हैं । तिर्यंच और मनुष्यो से आकर वे नैरयिक रूप मे उत्पन्न होते हैं । उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है । वे दोनों प्रकार से (समवहत और असमवहत) मरते हैं । वे मरकर गर्भज तिर्यंच एव मनुष्य मे जाते हैं—सम्मूर्छिमो मे वे नही जाते, अत हे आयुष्मन् श्रमण ! वे दो गति वाले, दो आगति वाले, प्रत्येक शरीरी और असंख्यात कहे गये हैं । यह नैरयिको का कथन हुआ ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में नैरयिको के प्रकार बताकर तेवीस द्वारो के द्वारा उनका निरूपण किया गया है । नैरयिक जीव सात प्रकार के है—१ रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक, २ शर्कराप्रभापृथ्वी-नैरयिक, ३ वालुकाप्रभा-नैरयिक, ४ पंकप्रभापृथ्वी-नैरयिक, ५ धूमप्रभापृथ्वी-नैरयिक ६. तम प्रभा-पृथ्वी-नैरयिक और ७ अध.सप्तमपृथ्वी-नैरयिक ।

ये नैरयिक जीव सक्षेप से दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । इनके शरीरादि द्वारो की विचारणा इस प्रकार है—

शरीरद्वार—नैरयिकजीवो मे औदारिकशरीर नही होता । भवस्वभाव से ही उनका शरीर वैक्रिय होता है । अत वैक्रिय, तैजस और कार्मण—ये तीन शरीर उनमें पाये जाते हैं ।

अवगाहना—उनकी अवगाहना दो प्रकार की है—भवधारणीय और उत्तरवैक्रियिकी । जो जन्म से होती है वह भवधारणीय है और जो भवान्तर के वैरी नारक के प्रतिघात के लिए बाद में विचित्र रूप मे बनाई जाती है वह उत्तरवैक्रियिकी है ।

नारकियों की भवधारणीय अवगाहना तो जघन्य से अंगुल का असख्यातवां भाग है जो जन्म-काल मे होती है। उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष की है। यह उत्कृष्ट प्रमाण सातवी पृथ्वी की अपेक्षा से है।

इनकी उत्तरवैक्रियिकी अवगाहना जघन्य से अंगुल का सख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से हजार धनुष की है। यह उत्कृष्ट प्रमाण सातवी नरकभूमि की अपेक्षा से है। अलग-अलग नैरयिको की भवधारणीय और उत्तरवैक्रियिकी उत्कृष्ट अवगाहना इस कोष्टक से जाननी चाहिए—

पृथ्वी का नाम	भवधारणीय अवगाहना	उत्तरवैक्रियिकी अव.
(१) रत्नप्रभा	७॥। धनुष ६ अगुल	१५॥ धनुष १२ अगुल
(२) शर्कराप्रभा	१५॥ धनुष १२ अंगुल	३१। धनुष
(३) वालुकाप्रभा	३१। धनुष	६२॥ धनुष
(४) पकप्रभा	६२॥ धनुष	१२५ धनुष
(५) धूमप्रभा	१२५ धनुष	२५० धनुष
(६) तम प्रभा	२५० धनुष	५०० धनुष
(७) अध सप्तमपृथ्वी	५०० धनुष	१००० धनुष

सहननद्वार—नारक जीवो के शरीर सहनन वाले नही होते। छह प्रकार के सहननो मे से कोई भी सहनन उनके नही होता, क्योकि उनके शरीरो मे न तो शिराएँ (धमनी नाडियाँ) होती हैं और न स्नायु (छोटी नाड़ियाँ), उनके शरीर मे हड्डियाँ नही होती। सहनन की परिभाषा है—अस्थियो का निचय होना। जव नैरयिको के शरीर मे अस्थियां हैं ही नही तो सहनन का सवाल ही नही उठता।

यहाँ यह शका की जा सकती है कि पहले एकेन्द्रिय जीवों मे सेवार्त सहनन बताया गया है, किन्तु उनके भी अस्थियां नही होती हैं? इसका समाधान यह है कि एकेन्द्रियो के औदारिक शरीर होता है और उस शरीर के सम्वन्ध मात्र की अपेक्षा से औपचारिक सेवार्तसहनन कहा है। वास्तव में तो अस्थिनिचयात्मक ही सहनन है। प्रज्ञापना आदि मे देवो को वज्रसहनन वाले कहा गया है सो वह भी गौणरूप से और उपचारमात्र से कहा गया है। देवो मे पर्वतादि को उखाडने की शक्ति है, उन्हे इस कार्य मे जरा भी शारीरिक श्रम या थकावट नही होती, इस दृष्टि से उन्हे वज्रसहननी कहा गया है। वस्तु-दृष्टि से तो वे असहननी ही है।

कोई यह शका कर सकता है कि 'शक्तिविशेष को संहनन कहते हैं' इस परिभाषा के अनुसार देवो मे मुख्य रूप से सहनन मानना घटित हो सकता है। यह शका सिद्धान्तबाधित है, क्योकि इसी सूत्र मे सहनन की परिभाषा 'अस्थिनिचयात्म' की गई है और स्पष्ट कहा गया है कि अस्थियो के अभाव मे नैरयिको मे छह सहननो मे से कोई सहनन नही होता।

पुन. शका हो सकती है कि, यदि नारकियो के सहनन नही हैं तो उनके शरीरो का बन्ध कैसे घटित होगा? इसका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—तथाविध पुद्गलस्कन्धो की तरह उनके शरीर का वन्ध हो जाता है। जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमनाम होते हैं वे उन नैरयिको के शरीर के रूप मे परिणत हो जाते हैं।

वृत्तिकार ने अनिष्ट आदि पदो का अर्थ इस प्रकार दिया है—

अनिष्ट—जिसकी इच्छा ही न की जाय,

अकान्त—अकमनीय, जो सुहावने न हो, अत्यन्त अशुभ वर्णादि वाले,

अप्रिय—जो दिखते ही अरुचि उत्पन्न करे,

अशुभ—खराब वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श वाले,

अमनोज्ञ—जो मन मे आह्लाद उत्पन्न नही करते क्योकि विपाक दु खजनक होता है,

अमनाम—जिनके प्रति रुचि उत्पन्न न हो ।

संस्थानद्वार—नारको के भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय—दोनो प्रकार के शरीर हुण्ड-सस्थान वाले हैं । तथाविध भवस्वभाव से नारको के शरीर जडमूल से उखाडे गये पख और ग्रीवा आदि अवयव वाले रोम-पक्षी की तरह अत्यन्त वीभत्स होते है । उत्तरविक्रिया करते हुए नारक चाहते हैं कि वे शुभ-शरीर बनाये किन्तु तथाविध अत्यन्त अशुभ नामकर्म के उदय से अत्यन्त अशुभ शरीर ही बना पाते हैं अत वह भी हुण्डसस्थान वाला ही होता है ।

कषायद्वार—नारकों में चारों ही कषाय होते है ।

संज्ञाद्वार—नारको मे चारो ही सज्ञाएँ पायी जाती हैं ।

लेश्याद्वार—नारको मे शुरू की तीन अशुभ लेश्याएँ कृष्ण, नील और कापोत पाई जाती है । पहली और दूसरी नरक-भूमि मे कापोतलेश्या, तीसरी नरक के कुछ नरकावासो मे कापोतलेश्या और शेष मे नीललेश्या, चौथी नरक मे नीललेश्या, पाचवी के कुछ नरकावासो मे नीललेश्या और शेष मे कृष्णलेश्या, छठी में कृष्णलेश्या और सातवी नरक मे परम कृष्णलेश्या पाई जाती है ।

भगवतीसूत्र मे कहा है—'आदि के दो नरको मे कापोतलेश्या, तीसरी मे मिश्र (कापोत-नील), चौथी मे नील, पाचवी मे मिश्र (नील-कृष्ण), छठी मे कृष्ण और सातवी मे परम कृष्णलेश्या होती है ।'[1]

इन्द्रियद्वार—नैरयिको के स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ये पाच इन्द्रियाँ होती है ।

समुद्घातद्वार—इनके चार समुद्घात होते हैं—वेदना, कषाय, वैक्रिय और मारणान्तिक ।

सज्ञीद्वार—ये नारकी जीव सज्ञी भी होते है और असज्ञी भी होते है । जो गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) मर कर नारकी होते हैं वे सज्ञी कहे जाते हैं और जो सम्मूर्छिमो से आकर उत्पन्न होते हैं, वे असज्ञी कहलाते हैं । ये रत्नप्रभा मे ही उत्पन्न होते हैं, आगे के नरको मे नही । क्योकि अविचार-पूर्वक जो अशुभ क्रिया की जाती है उसका इतना ही फल होता है । कहा है कि—

असज्ञी जीव पहली नरक तक, सरीसृप दूसरी नरक तक, पक्षी तीसरी नरक तक, सिंह चौथी नरक तक, उरग (सर्पादि) पाचवी नरक तक, स्त्री छठी नरक तक और मनुष्य एव मच्छ सातवी नरक तक उत्पन्न होते हैं ।[2]

---

१ काऊ य दोसु तइयाए मीसिया नीलिया चउत्थिए ।
पचमियाए मीसा, कण्हा तत्तो परमकण्हा ॥ —भगवतीसूत्र

२ असन्नी खलु पढम दोच्च व सिरीसवा तइय पक्खी ।
सीहा जति चउत्थि उरगा पुण पचमि पुढवि ॥
छट्ठि व इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमि पुढवि ।
एसो परमोवाओ वोद्धव्वो नरयपुढवीसु ॥

वेदद्वार—नारक जीव नपुसक ही होते हैं ।

पर्याप्तिद्वार—इनमे छह पर्याप्तियां और छह अपर्याप्तियां होती हैं। भाषा और मन की एकत्व विवक्षा से वृत्तिकार ने पाच पर्याप्तियां और पाच अपर्याप्तियां कही हैं।

दृष्टिद्वार—नारक जीव तीनो दृष्टि वाले होते हैं—१ मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि और मिश्रदृष्टि ।

दर्शनद्वार—इनमे चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन यो तीन दर्शन पाये जाते हैं।

ज्ञानद्वार—ये ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं वे नियम से मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी हैं। जो अज्ञानी हैं वे मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभगज्ञानी होते है। भावार्थ यह समझना चाहिए कि जो नारक असज्ञी हैं वे अपर्याप्त अवस्था मे दो अज्ञान वाले और पर्याप्त अवस्था मे तीन अज्ञान वाले होते हैं। सज्ञी नारक दोनो ही अवस्था मे तीन अज्ञान वाले होते हैं। असज्ञी से उत्पद्यमान नारको मे अपर्याप्त अवस्था मे बोध की मन्दता होने से अव्यक्त अवधि भी नहीं होता।

योगद्वार—नारको मे मनोयोग, वाग्योग और काययोग, तीन योग होते हैं।

उपयोग—नारक साकार और अनाकार दोनो उपयोगवाले हैं।

आहारद्वार—नारक जीव लोक के निष्कुट (किनारे) मे नही होते, मध्य मे होते है अत उनके व्याघात नही होता। अत छहो दिशाओ के पुद्‌गलो को ग्रहण करते है और प्राय करके अशुभ वर्ण, गध, रस और स्पर्श वाले पुद्‌गलो को ग्रहण करते हैं।

उपपातद्वार—नारक जीव असख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचो और मनुष्यो को छोडकर शेष पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंचो और मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है। शेष जीवस्थानो से नही।

स्थितिद्वार—नारको की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम है। जघन्य स्थिति प्रथम नरक की अपेक्षा और उत्कृष्ट स्थिति सातवी नरक की अपेक्षा से समझनी चाहिए।

समवहतद्वार—नारक जीव मारणान्तिक समुद्‌घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

उद्वर्तनाद्वार—नारक पर्याय से निकल कर नारक जीव असख्यात वर्षायु वाले तिर्यंचो और मनुष्यो को छोडकर सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंचो और मनुष्यो मे ही उत्पन्न होते है। सम्मूर्छिम मनुष्यो मे उत्पन्न नही होते ।

गति-आगतिद्वार—नारक जीव मरकर तिर्यंचो और मनुष्यो मे ही जाते है, इसलिए दो गति वाले और तिर्यंचो मनुष्यो से ही आकर उत्पन्न होते हैं, इसलिए दो आगति वाले हैं ।

हे आयुष्मन् श्रमण ! ये नारक जीव प्रत्येकशरीरी है और असख्यात हैं ।

यह नैरयिको का वर्णन हुआ ।

तिर्यक् पंचेन्द्रियो का वर्णन

३३ से किं तं पचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता,

तंजहा—संमुच्छिम पंचेंदियतिरिक्खजोणिया य
गब्भवक्कंतिय पंचेंदियतिरिक्खजोणिया य ।

[३३] पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कौन हैं ?
पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा—
(१) सम्मूर्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक और
(२) गर्भव्युत्क्रान्तिक पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक ।

३४. से किं तं संमुच्छिम पंचेंदियतिरिक्खजोणिया ?
संमुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता,
तंजहा—जलयरा, थलयरा, खहयरा ।

[३४] सम्मूर्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कौन हैं ?
सम्मूर्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक तीन प्रकार के हैं—
जलचर, स्थलचर और खेचर ।

जलचरों का वर्णन

३५. से किं तं जलयरा ?
जलयरा पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—
मच्छगा, कच्छभा, मगरा, गाहा, सुंसुमारा ।

से किं तं मच्छा ?
एवं जहा पण्णवणाए जाव से यावण्णे तहप्पगारा । ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य ।

तेसि णं भंते ! जीवाणं कतिसरीरगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ सरीरया पण्णत्ता, तंजहा—ओरालिए, तेयए, कम्मए । सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं । छेवट्टसंघयणी । हुंडसंठिया । चत्तारि कसाया, सण्णाओ वि, लेसाओ पच, इंदिया पंच, समुग्घाया तिण्णि, णो सण्णी असण्णी, नपुंसकवेदा, पज्जत्तीओ अपज्जत्तीओ पंच, दो दिट्ठीओ, दो दंसणा, दो नाणा, दो अन्नाणा, दुविहे जोगे, दुविहे उवओगे, आहारो छद्दिसिं ।

उववाओ तिरियमणुस्सेहिंतो, नो देवेहिंतो नो नेरइएहिंतो, तिरिएहिंतो असंखेज्जवासाउय वज्जेसु, अकम्मभूमग-अंतरदीवग-असंखेज्जवासाउयवज्जेसु । ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं-पुव्वकोडी । मारणंतियसमुग्घाएण दुविहा वि मरंति । अणंतरं उव्वट्टिता कहिं (उववज्जति)? नेरइएसु वि, तिरिक्खजोणिएसु वि, मणुस्सेसु वि, देवेसु वि ।

नेरइएसु रयणपहाए सेसेसु पडिसेहो ।

तिरिएसु सव्वेसु उववज्जंति—संखेज्जवासाउएसु वि असखेज्जवासाउएसु वि, चउप्पएसु वि पक्खीसु वि। मणुस्सेसु सव्वेसु कम्मभूमिएसु, नो अकम्मभूमिएसु अतरदीवएसु वि सखिज्जवासाउएसु वि असंखिज्जवासाउएसु वि देवेसु जाव वाणमंतरा।

चउगइया, दुआगइया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता।

से त्त जलयर-समुच्छिम-पंचेंदियतिरिक्खा।

[३५] जलचर कौन हैं ?

जलचर पाँच प्रकार के कहे गये है—मत्स्य, कच्छप, मगर, ग्राह और शिशुमार (सुसुमार)।

मच्छ क्या हैं ?

मच्छ अनेक प्रकार के हैं इत्यादि वर्णन प्रज्ञापना के अनुसार जानना चाहिए यावत् इस प्रकार के अन्य भी मच्छ आदि ये सब जलचर सम्मूछिम पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव सक्षेप से दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त।

हे भगवन् ! उन जीवो के कितने शरीर कहे गये हैं ?

गौतम ! तीन शरीर कहे गये है—औदारिक, तैजस और कार्मण। उनके शरीर की अवगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन। वे सेवार्तसहनन वाले, हुण्डसस्थान वाले, चार कषाय वाले, चार सज्ञाओ वाले, पाच लेश्याओ वाले हैं। उनके पांच इन्द्रियाँ, तीन समुद्घात होते है। वे सज्ञी नही, असज्ञी हैं। वे नपुंसक वेद वाले है। उनके पाच पर्याप्तिया और पाच अपर्याप्तियाँ होती हैं। उनके दो दृष्टि, दो दर्शन, दो ज्ञान, दो अज्ञान, दो प्रकार के योग, दो प्रकार के उपयोग और आहार छहो दिशाओ के पुद्गलो का होता है।

वे तिर्यंच और मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है, देवो और नारको से नही। तिर्यंचो मे से भी असख्यात वर्षायु वाले तिर्यंच इनमे उत्पन्न नही होते। अकर्मभूमि और अन्तर्द्वीपो के असख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य भी इनमे उत्पन्न नही होते।

इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है। ये मारणातिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते है और असमवहत होकर भी मरते है।

भगवन् ! ये सम्मूच्छिम जलचर जीव मरकर कहाँ उत्पन्न होते है ?

गौतम ! ये नरक में भी उत्पन्न होते है, तिर्यंचो मे भी, मनुष्यो में भी और देवो मे भी उत्पन्न होते हैं।

यदि नरक मे उत्पन्न होते है तो रत्नप्रभा नरक तक ही उत्पन्न होते हैं, शेष नरको मे नही।

तिर्यंच मे उत्पन्न हो तो सब तिर्यंचो मे सख्यात वर्ष की आयु वालो मे भी और असख्यात वर्ष की आयु वालो मे भी, चतुष्पदो मे भी और पक्षियो मे भी।

मनुष्य मे उत्पन्न हो तो सब कर्मभूमियो के मनुष्यो में उत्पन्न होते है, अकर्मभूमि वाले मनुष्यो मे नही। अन्तर्द्वीपजो मे सख्यात वर्ष की आयुवालो मे भी और असख्यात वर्ष की आयु वालो मे भी

उत्पन्न होते हैं। यदि वे देवो मे उत्पन्न हों तो वानव्यन्तर देवो तक उत्पन्न होते हैं (आगे के देवो मे नही)।

ये जीव चार गति मे जाने वाले, दो गतियो से आने वाले, प्रत्येक शरीर वाले और असख्यात कहे गये है। यह जलचर सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचो का वर्णन हुआ।

विवेचन—(सूत्र ३३ से ३५ तक)

प्रस्तुत सूत्रो मे सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो के पांच भेद—मत्स्य, कच्छप, मकर, ग्राह और सुसुमार तो बताये हैं परन्तु मत्स्य आदि के प्रकारो के लिए प्रज्ञापनासूत्र का निर्देश किया है। प्रज्ञापनासूत्र मे वे प्रकार इस तरह बताये गये हैं—

मत्स्यो के प्रकार—श्लक्ष्ण मत्स्य, खवल्ल मत्स्य, युग मत्स्य, भिब्भिय मत्स्य, हेलिय मच्छ, मजरिया मच्छ, रोहित मच्छ, हलीसागर, मोगरावड, वडगर तिमिमच्छ, तिर्मिगला मच्छ, तदुल मच्छ, काणिक्क मच्छ, सिलेच्छिया मच्छ, लभण मच्छ, पताका मत्स्य पताकातिपताका मत्स्य, नक्र मत्स्य, और भी इसी तरह के मत्स्य।

कच्छपो के प्रकार—कच्छपो के दो प्रकार हैं—अस्थिकच्छप और मसलकच्छप।

ग्राह के पांच प्रकार—दिली, वेढग, मुदुग, पुलग और शीमागार।

मगर के दो भेद—सोंड मगर और मृट्ठ मगर।

सुंसुमार—एक ही प्रकार के हैं।

ये मत्स्यादि सब जलचर सम्मूर्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और अपर्याप्त भेद से दो प्रकार के हैं इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

शरीरादि २३ द्वारो की विचारणा चतुरिन्द्रिय की तरह जानना चाहिए। जो विशेषता है वह इस प्रकार है—

अवगाहनाद्वार में इनकी जघन्य अवगाहना अंगुल का असख्यात भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन है।

इन्द्रियद्वार मे इनके पाच इन्द्रियां कहनी चाहिए।

सज्ञीद्वार मे ये असज्ञी ही हैं, सज्ञी नही—सम्मूर्छिम होने से ये समनस्क (सज्ञी) नही होते।

उपपातद्वार मे ये असख्यात वर्षायु वालो को छोड़कर शेष तिर्यंचो मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं।

स्थितिद्वार मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटी की स्थिति है।

उद्वर्तनाद्वार मे ये चारो गतियो मे उत्पन्न होते हैं।

नरक में उत्पन्न हो तो पहली रत्नप्रभा मे ही उत्पन्न होते हैं, इससे आगे की नरको मे नही।

सब प्रकार के तिर्यंचो मे उत्पन्न होते हैं।

मनुष्यो मे कर्मभूमि के मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं।

देवो मे भवनपति और वाणव्यन्तरो मे उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार ये जीव चारो गतियो मे जाने वाले और दो गतियो से आने वाले है। हे श्रमण ! हे आयुष्मन् । ये जीव प्रत्येकशरीरी हैं और असख्यात है।

स्थलचरो का वर्णन

३६. से किं त थलयर-संमुच्छिमपचेंदिय-तिरिक्खजोणिया ?

थलयर समु० दुविहा पण्णत्ता, तजहा—

चउप्पय थल०, परिसप्प सम्मु० पचें० तिरिक्खजोणिया।

से किं त थलयर चउप्पय सम्मुच्छिम पंचें० तिरिक्खजोणिया ?

थलयर चउप्पय० चउव्विहा पण्णत्ता, तजहा—

एगखुरा, दुखुरा, गंडोपया, सणप्फया। जाव जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

तओ सरीरा, ओगाहणा जहण्णेणं अगुलस्स असखेज्जइभाग उक्कोसेण गाउयपुहुत्त।

ठिई जहण्णेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण चउरासिइवाससहस्साइ। सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दो आगतिया परित्ता असखेज्जा पेण्णत्ता। से त थलयर चउप्पय०।

से किं तं थलयर परिसप्प संमुच्छिमा ?

थलयर परिसप्प समुच्छिमा दुविहा पण्णत्ता, तजहा—

उरग परिसप्प समुच्छिमा, भुयग परिसप्प समुच्छिमा।

से किं तं उरग परिसप्प संमुच्छिमा ?

उरग परि० सं० चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—

अही अयगरा आसालिया महोरगा।

से किं त अही ?

अही दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

दव्वीकरा, मउलिणो य।

से किं त दव्वीकरा ?

दव्वीकरा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—

आसीविसा जाव से त दव्वीकरा।

से किं तं मउलिणो ?

मउलिणो अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—

दिव्वा, गोणसा जाव से त मउलिणो। से तं अही।

से किं तं अयगरा ?

अयगरा एगागारा पण्णत्ता। से त अयगरा।

से किं त आसालिया ?

आसालिया जहा पण्णवणाए। से तं आसालिया।

से किं तं महोरगा?

महोरगा जहा पण्णवणाए। से तं महोरगा।

जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तं चेव णवरि सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोयणपुहुत्तं। ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं। सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा। से तं उरगपरिसप्पा।

से किं तं भुयगपरिसप्प संमुच्छिम थलयरा?

भुयग परि० संमु० थलयरा अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—गोहा, णउला, जाव जे यावन्ने तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलासखेज्ज उक्कोसेण धणुपुहुत्तं। ठिई उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं; सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया, दुआगतिया, परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता। से तं भुजपरिसप्प संमुच्छिमा। से तं थलयरा।

से किं तं खहयरा?

खहयरा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—

चम्मपक्खी, लोमपक्खी, समुग्गपक्खी, विततपक्खी।

से किं तं चम्मपक्खी?

चम्मपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता, तंजहा—

वग्गुली जाव जे यावन्ने तहप्पगारा, से तं चम्मपक्खी।

से किं त लोमपक्खी?

लोमपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता, तजहा—

ढंका, कंका जे यावन्ने तहप्पगारा, से तं लोमपक्खी।

से किं तं समुग्गपक्खी?

समुग्गपक्खी एगागारा पण्णत्ता जहा पण्णवणाए।

एवं विततपक्खी जाव जे यावण्णे तहप्पगारा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। णाणत्तं सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं। ठिई उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं। सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया दुआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता। से तं खहयर संमु० तिरिक्खजोणिया। से तं संमु० पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया।

[३६] स्थलचर सम्मूर्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कौन हैं?

स्थलचर सम्मूर्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक दो प्रकार के हैं—चतुष्पद स्थलचर सं प तिर्यंच और परिसर्प सम्मु प ति।

चतुष्पद स्थलचर स. प तिर्यंच कौन हैं?

चतुष्पद स्थलचर स प. तिर्यंच चार प्रकार के हैं, यथा—एक खुर वाले, दो खुर वाले, गडीपद और सनखपद। यावत् जो इसी प्रकार के अन्य भी चतुष्पद स्थलचर हैं। वे सक्षेप से दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। उनके तीन शरीर, अवगाहना जघन्य अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट दो कोस से नौ कोस तक। स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्ष की होती है। शेष सव जलचरो के समय समझना चाहिए। यावत् ये चार गति मे जाने वाले और दो गति से आने वाले हैं, प्रत्येकशरीरी और असंख्यात है। यह स्थलचर चतुष्पद सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिको का कथन पूरा हुआ।

परिसर्प स्थलचर सं. प तिर्यचयोनिक क्या है?

परिसर्प स्थलचर स प तिर्यचयोनिक दो प्रकार के हैं, यथा—उरग परिसर्प समू प ति. और भुजग परिसर्प समू ।

उरग परिसर्प समू. क्या हैं?

उरग परिसर्प समू चार प्रकार के है—अहि, अजगर, असालिया और महोरग।

अहि कौन है?

अहि दो प्रकार के हैं—दर्वीकर (फणवाले) और मुकुली (फण रहित)। दर्वीकर कौन है? दर्वीकर अनेक प्रकार के है, जैसे—आशीविप आदि यावत् दर्वीकर का कथन पूरा कथन।

मुकुली क्या हैं?

मुकुली अनेक प्रकार के हैं, जैसे—दिव्य, गोनस यावत् मुकुली का कथन पूरा।

अजगर क्या हैं?

अजगर एक ही प्रकार के हैं। अजगरो का कथन पूरा।

आसालिक क्या है?

प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार आसालिको का वर्णन जानना चाहिए।

महोरग क्या है?

प्रज्ञापना के अनुसार इनका वर्णन जानना चाहिए। इस प्रकार के अन्य जो उरपरिसर्प जाति के हैं वे सक्षेप से दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। शेप पूर्ववत् जानना चाहिए। विशेषता इस प्रकार—इनकी शरीर अवगाहना जघन्य से अगुल के असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट योजन पृथक्त्व (दो से लेकर नव योजन तक)। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तिरपन हजार वर्ष। शेप द्वार जलचरो के समान जानना चाहिए यावत् ये जीव चार गति मे जाने वाले, दो गति से आने वाले, प्रत्येकशरीरी और असख्यात है। यह उरग परिसर्प का कथन हुआ।

भुजग परिसर्प संमूर्छिम स्थलचर क्या हैं?

भुजग परिसर्प समूर्छिम स्थलचर अनेक प्रकार के है, यथा—गोह, नेवला यावत् अन्य इसी प्रकार के भुजग परिसर्प। ये सक्षेप से दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। शरीरावगाहना जघन्य अंगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व (दो धनुष से नौ धनुष तक)

स्थिति उत्कृष्ट से बयालीस हजार वर्ष । शेष जलचरो की भाँति कहना यावत् ये चार गति मे जाने वाले, दो गति से आने वाले, प्रत्येकशरीरी और असख्यात हैं । यह भुजग परिसर्प सम्मूर्छिमो का कथन हुआ । इसके साथ ही स्थलचरो का कथन भी पूरा हुआ ।

खेचर का क्या स्वरूप है ?

खेचर चार प्रकार के कहे गये है, यथा—चर्मपक्षी रोमपक्षी, समुद्गकपक्षी और विततपक्षी ।

चर्मपक्षी क्या है ?

चर्मपक्षी अनेक प्रकार के है, जैसे—वल्गुली यावत् इसी प्रकार के अन्य चर्मपक्षी ।

रोमपक्षी क्या हैं ?

रोमपक्षी अनेक प्रकार के हैं, यथा—ढक, कक यावत् अन्य इसी प्रकार के रोमपक्षी ।

समुद्गकपक्षी क्या हैं ?

ये एक ही प्रकार के हैं । जैसा प्रज्ञापना मे कहा वैसा जानना चाहिए ।

इसी तरह विततपक्षी भी पन्नवणा के अनुसार जानने चाहिए ।

ये खेचर सक्षेप से दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त इत्यादि पूर्ववत् । विशेषता यह है कि इनकी शरीरावगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व है । स्थिति उत्कृष्ट बहत्तर हजार वर्ष की है । शेष सब जलचरो की तरह जानना चाहिए । यावत् ये खेचर चार गतियो मे जाने वाले, दो गतियो से आने वाले, प्रत्येकशरीरी और असख्यात हैं । यह खेचरो का वर्णन हुआ । साथ ही सम्मूर्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिको का कथन पूरा हुआ ।

विवेचन—पूर्व सूत्र मे जलचरो का वर्णन करने के पश्चात् इस सूत्र मे सम्मूर्छिम स्थलचर और खेचर का वर्णन किया गया है । स्थलचर सम्मूर्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंच दो प्रकार के हैं—चतुष्पद और परिसर्प । जिसके चार पाव हो वे चतुष्पद है, जैसे अश्व, बैल आदि । जो पेट के बल या भुजाओ के सहारे चलते हैं वे परिसर्प हैं । जैसे सर्प, नकुल आदि । सूत्र मे आये हुए दो चकार स्वगत अनेक भेद के सूचक हैं ।

चतुष्पद स्थलचर चार प्रकार के हैं—एक खुर वाले, दो खुर वाले, गडीपद और सनखपद । प्रज्ञापना सूत्र मे इन चारो के प्रकार बताये गये हैं, जो इस भाति हैं—

एक खुर वाले अनेक प्रकार के हैं यथा—अश्व, अश्वतर (खेचर), घोटक (घोड़ा), गर्दभ, गोरक्षर, कन्दलक, श्रीकन्दलक और आवर्तक आदि ।

दो खुर वाले अनेक प्रकार के हैं, यथा—ऊँट, बैल, गवय (नील गाय), रोझ, पशुक, महिष (भैंस-भैंसा), मृग, साभर, बराह, अज (बकरा-बकरी), एलक (भेड या बकरा), रुरु, सरभ, चमर (चमरीगाय), कुरग, गोकर्ण आदि ।

गंडीपद—गडी का अर्थ है— एरन । एरन के समान जिनके पाव हो वे गडीपद हैं । ये अनेक प्रकार के हैं, यथा—हाथी, हस्तिपूतनक, मत्कुण हस्ती (बिना दाँतो का छोटे कद का हाथी), खड्गी और गेडा ।

सनखपद—जिनके पावों के नख बडे-बडे हो वे सनखपद हैं। जैसे—कुत्ता, सिंह आदि। सनखपद अनेक प्रकार के हैं, जैसे—सिंह, व्याघ्र, द्वीपिका (दीपडा), रीछ (भालू), तरस, पाराशर, शृगाल (सियार), विडाल (बिल्ली), श्वान, कोलश्वान, कोकन्तिक (लोमडी), शशक (खरगोश), चीता और चित्तलक (चिल्लक) इत्यादि।

इन चतुष्पद स्थलचरों मे पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद तथा पूर्वोक्त २३ द्वारों की विचारणा जलचरों के समान जाननी चाहिए, केवल अन्तर इस प्रकार है। इनके शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असंख्यातवा भाग और उत्कृष्ट गव्यूतिपृथक्त्व (दो कोस से लेकर नौ कोस) की। आगम मे पृथक्त्व का अर्थ दो से लेकर नौ की सख्या के लिए है। इनकी स्थिति जघन्य तो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्ष की है। शेष सब वर्णन जलचरों की तरह ही है। यावत् वे चारों गतियों मे जाने वाले, दो गति से आने वाले, प्रत्येकशरीरी और असख्यात हैं।

परिसर्प स्थलचर—पेट और भुजा के बल चलने वाले परिसर्प कहलाते हैं। इनके दो भेद किये हैं—उरगपरिसर्प और भुजगपरिसर्प। उरगपरिसर्प के चार भेद हैं—अहि, अजगर, आसालिक और महोरग।

अहि—ये दो प्रकार के हैं—दर्वीकर अर्थात् फण वाले और मुकुली अर्थात् बिना फण वाले। दर्वीकर अहि अनेक प्रकार के हैं, यथा—आशीविष, दृष्टिविष, उग्रविष, भोगविष, त्वचाविष, लालाविष, उच्छ्वासविष, नि श्वासविष, कृष्णसर्प श्वेतसर्प, काकोदर, दह्यपुष्प (दर्भपुष्प) कोलाह, मेलिमिन्द और शेषेन्द्र इत्यादि।

मुकुली—बिना फन वाले मुकुली सर्प अनेक प्रकार के हैं, यथा—दिव्याक (दिव्य), गोनस, कषाधिक, व्यतिकुल, चित्रली, मण्डली, माली, अहि, अहिशलाका, वातपताका आदि।

अजगर—ये एक ही प्रकार के होते हैं।

आसालिक—प्रज्ञापनासूत्र मे आसालिक के विषय मे ऐसी प्ररूपणा की गई है—

'भते! आसालिक कैसे होते हैं और कहाँ सम्मूर्छित (उत्पन्न) होते हैं?

गौतम! ये आसालिक उर परिसर्प मनुष्य क्षेत्र के अन्दर ढाई द्वीपों मे निर्व्याघात से पन्द्रह कर्मभूमियों मे और [१] व्याघात की अपेक्षा पाच महाविदेह क्षेत्रों मे, चक्रवर्ती के स्कधावारों (छावनियों) मे, वासुदेवों के स्कधावारों मे, बलदेवों के स्कधावारों मे, मडलिक (छोटे) राजाओं के स्कधावारों मे, महामडलिक (अनेक देशों के) राजाओं के स्कधावारों मे, ग्रामनिवेशों मे, नगर-निवेशों मे, निगम (वणिक्वसति) निवेशों मे, खेट (खेडा) निवेशों मे, कर्बट (छोटे प्राकार वाले) निवेशों मे, मडल (जिसके २॥ कोस के अन्तर मे ग्राम न हो) निवेशों मे, द्रोणमुख (प्राय जल निर्गम प्रवेश वाला स्थान) निवेशों मे, पत्तन[२] और पट्टन निवेशों मे, आकरनिवेशों मे, आश्रम-निवेशों मे, सबाध (यात्रीगृह) निवेशों मे और राजधानीनिवेशों मे—जब इनका विनाश होने

---

१ सुषमसुषमादिरूपोऽतिदु षमादिरूप कालो व्याघातहेतु। —वृत्ति

२ पत्तन शकटैर्गम्य, घोटकैर्नौभिरेव च।
नौभिरेव तु यद् गम्य पट्टन तत्प्रचक्षते॥ —वृत्ति

वाला होता है तव इन पूर्वोक्त स्थानो मे आसालिक समूर्छिम रूप से उत्पन्न होता है। यह जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग जितनी अवगाहना (उत्पत्ति के समय) और उत्कृष्ट वारह योजन की अवगाहना और उसके अनुरूप ही लम्वाई-चौडाई वाला होता है। यह पूर्वोक्त स्कधावार आदि की भूमि को फाड़ कर वाहर निकलता है। यह असज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है और अन्तर्मुहूर्त की आयु भोग कर मर जाता है। यह आसालिक गर्भज नही होता, यह समूर्छिम ही होता है। यह मनुष्यक्षेत्र से वाहर नही होता। यह आसालिक का वर्णन हुआ ।

महोरग—प्रज्ञापनासूत्र मे महोरग का वर्णन इस प्रकार है—

महोरग अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा—कोई महोरग एक अगुल के भी होते हैं, कोई अगुलपृथक्त्व के, कई वितस्ति (वेत—वारह अगुल) के होते हैं, कई वितस्तिपृथक्त्व के होते हैं, कई एक रत्नि (हाथ) के होते हैं, कई रत्निपृथक्त्व (दो हाथ से नौ हाथ तक) के होते हैं, कई कुक्षि (दो हाथ) प्रमाण होते हैं, कई कुक्षिपृथक्त्व के होते हैं, कई धनुप (चार हाथ) प्रमाण होते हैं, कई धनुपपृथक्त्व के होते हैं, कई गव्यूति (कोस या दो हजार धनुप) प्रमाण होते है. कई गव्यूतिपृथक्त्व प्रमाण के होते हैं, कई योजन (चार कोस) के होते हैं, कई योजनपृथक्त्व के होते हैं। (कोई सौ योजन के, कोई दो सौ से नौ सौ योजन के होते हैं और कई हजार योजन के भी होते है।)※

ये स्थल मे उत्पन्न होते है परन्तु जल मे भी स्थल की तरह चलते हैं और स्थल मे भी चलते हैं। वे यहाँ नही होते, मनुष्यक्षेत्र के वाहर के द्वीप-समुद्रो मे होते हैं। समुद्रो मे भी पर्वत, देवनगरी आदि स्थलो मे उत्पन्न होते है, जल मे नही। इस प्रकार के अन्य भी दस अगुल आदि की अवगाहना वाले महोरग होते है। यह अवगाहना उत्सेधांगुल के मान से है। शरीर का माप उत्सेधांगुल से ही होता है।

इस प्रकार अहि, अजगर आदि उर.परिसर्प स्थलचर समूर्छिम पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव सक्षेप से दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त इत्यादि कथन तथा २३ द्वारो की विचारणा जलचरो की भांति जानना चाहिए। अवगाहना और स्थिति द्वार मे अन्तर है। इनकी अवगाहना जघन्य से अंगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से योजनपृथक्त्व होती है। स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तिरेपन हजार वर्ष की होती है। शेप पूर्ववत् यावत् ये चार गति मे जाने वाले, दो गति से आने वाले, प्रत्येकशरीरी और असख्यात होते है।

भुजगपरिसर्प—प्रज्ञापनासूत्र मे भुजगपरिसर्प के भेद इस प्रकार वताये गये है—गोह, नकुल, सरट (गिरगिट), शल्य, सरठ, सार, खार, गृहकोकिला (घरोली-छिपकली), विपम्भरा (वसुभरा), मूषक, मगूस (गिलहरी), पयोलातिक, क्षीरविडालिका आदि अन्य इसी प्रकार के भुजपरिसर्प तिर्यंच।

यह भुजपरिसर्प सक्षेप से दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। शेष वर्णन पूर्ववत् समझना। तेवीस द्वारो की विचारणा मे जलचरो की तरह कथन करना चाहिए, केवल अवगाहनाद्वार और स्थितिद्वार मे अन्तर जानना चाहिए। इनकी अवगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवां भाग और उत्कृष्ट से धनुषपृथक्त्व है। स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वयालीस हजार वर्ष की है। शेष पूर्ववत् यावत् ये जीव चार गति वाले, दो आगति वाले, प्रत्येकशरीरी और असंख्यात हैं।

※ कोष्ठक मे दिया हुआ अश गर्भज महोरग की अपेक्षा समझना चाहिए।

खेचर—खेचर के ४ प्रकार है—चर्मपक्षी, रोमपक्षी, समुद्‌गकपक्षी और विततपक्षी। प्रज्ञापना मे इनके भेद इस प्रकार कहे है—

चर्मपक्षी—अनेक प्रकार के है—वग्गुली (चिमगादड), जलौका, अडिल्ल, भारडपक्षी जीव-जीव, समुद्रवायस, कर्णत्रिक और पक्षीविडाली आदि। जिनके पख चर्ममय हो वे चर्मपक्षी है।

रोमपक्षी—जिनके पख रोममय हो वे रोमपक्षी हैं। इनके भेद प्रज्ञापनासूत्र मे इस प्रकार कहे है—

ढक, कक, कुरल, वायस, चक्रवाक, हस, कलहस, राजहस (लाल चोच एव पख वाले हस) पादहस, आड, सेडी, वक, बलाका (बकपक्ति), पारिप्लव, क्रौंच, सारस, मेसर, मसूर, मयूर, शतवत्स (सप्तहस्त), गहर, पौण्डरीक, काक, कामंजुक, बजुलक, तीतर, वर्तक (बतक),लावक, कपोत, कपिंजल, पारावत, चिटक, चास, कुक्कुट, शुक, वर्हि (मोरविशेष) मदनशलाका (मैना), कोकिल, सेह और वरिल्लक आदि।

समुद्‌गकपक्षी—उडते हुए भी जिनके पख पेटी की तरह स्थित रहते है वे समुद्‌गकपक्षी है। ये एक ही प्रकार के हैं। ये मनुष्य क्षेत्र मे नही होते। बाहर के द्वीपों समुद्रो मे होते है।

विततपक्षी—जिनके पख सदा फैले हुए होते हैं वे विततपक्षी है। ये एक ही प्रकार के है। ये मनुष्य क्षेत्र मे नही होते, बाहर के द्वीपो समुद्रो मे होते है।

ये खेचर सम्मूर्छिम तिर्यंच पचेन्द्रिय पर्याप्त, अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के है, इत्यादि वर्णन पूर्ववत्। शरीर अवगाहना आदि द्वारो की विचारणा जलचरो की तरह करनी चाहिए। जो अन्तर है वह अवगाहना और स्थितिद्वारो मे है। इनकी उत्कृष्ट अवगाहना धनुषपृथक्त्व है और स्थिति वहत्तर हजार वर्ष की है। ये जीव चार गति वाले, दो आगति वाले, प्रत्येकशरीरी और असख्यात हैं।

यहाँ स्थिति और अवगाहना को बताने वाली दो सग्रहणी गाथाएँ भी किन्ही प्रतियो मे हैं। वे इस प्रकार हैं—

जोयणसहस्स गाउयपुहुत्त तत्तो य जोयणपुहुत्त।
दोण्हं पि धणुपुहत्तं संमुच्छिम वियगपक्खीणं ॥१॥
संमुच्छ पुव्वकोडी चउरासीई भवे सहस्साइं।
तेवण्णा बायाला बावत्तरिमेव पक्खीणं ॥२॥

इनका अर्थ इस प्रकार है—सम्मूर्छिम जलचरो की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन की है, चतुष्पदो की गव्यूति (कोस) पृथक्त्व है, उरपरिसर्पों की योजनपृथक्त्व की है। सम्मूर्छिम भुजग-परिसर्प और पक्षियो की धनुषपृथक्त्व की है।

सम्मूर्छिम जलचरो की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटी है। चतुष्पदो की चौरासी हजार वर्ष की है, उरपरिसर्पों की तिरपन हजार वर्ष की है, भुजपरिसर्पो की बयालीस हजार वर्ष की है, पक्षियो की वहत्तर हजार वर्ष की है।

यह सम्मूर्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिको का कथन हुआ।

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचो का कथन

से किं त गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्खजोणिया ?

गब्भवक्कंतिय पं० तिरिक्ख जोणिया तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा, थलयरा, खहयरा।

[३७] गर्भव्युत्क्रान्तिक पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक क्या हैं ?

गर्भव्युत्क्रान्तिक पचेन्द्रिय नियंचयोनिक तीन प्रकार के कहे गये है, यथा—जलचर, स्थलचर और खेचर।

गर्भज जलचरों का वर्णन

३८, से किं तं जलयरा ?

जलयरा पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—

मच्छा, कच्छभा, मगरा, गाहा, सुंसुमारा।

सव्वेसिं भेदो भाणियव्वो तहेव जहा पण्णवणाए, जाव जे यावण्णे तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

तेसिं णं भते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि सरीरगा पण्णत्ता, तंजहा—

ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए।

सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

छव्विह संघयणी पण्णत्ता, तंजहा—

वइरोसभनारायसंघयणी, उसभनारायसंघयणी, नारायसंघयणी, अद्धनारायसंघयणी, कीलियासंघयणी, सेवट्टसंघयणी।

छव्विहा संठिया पण्णत्ता, तंजहा—

समचउरंससंठिया, णग्गोधपरिमंडलसंठिया, सादिसठिया, खुज्जसंठिया, वामणसठिया, हुंडसठिया। कसाया सव्वे, सण्णाओ चत्तारि, लेसाओ छह्, पंच इंदिया, पंच समुग्घाया आइल्ला, सण्णी, णो असण्णी, तिविह वेदा, छप्पज्जत्तीओ, छअप्पज्जत्तीओ, दिट्ठी तिविहा वि, तिण्णि दंसणा, णाणी वि अण्णाणी वि, जे णाणी ते अत्थेगइया दुणाणी, अत्थेगइया तिन्नाणी; जे दुन्नाणी ते णियमा आभिणिवोहियणाणी य सुयणाणी य। जे तिणाणी ते नियमा आभिनिवोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी। एवं अण्णाणि वि। जोगे तिविहे, उवओगे दुविहे, आहारो छद्दिसिं। उववाओ नेरइएहिं जाव अहेसत्तमा, तिरिक्खजोणिएहिं सव्वेहिं असंखेज्जवासाउयवज्जेहिं, मणुस्सेहिं अकम्मभूमग अंतरदीवग असखेज्जवासाउयवज्जेहिं, देवेहिं जाव सहस्सारो। ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी। दुविहा वि मरंति। अणंतरं उव्वट्टित्ता नेरइएसु जाव अहेसत्तमा, तिरिक्खजोणिएसु मणुस्सेसु सव्वेसु देवेसु जाव सहस्सारो, चउगतिया चउआगतिया परित्ता असंखेज्जा पण्णत्ता, से तं जलयरा।

[३८] (गर्भज) जलचर क्या हैं ?

ये जलचर पाच प्रकार के है—मत्स्य, कच्छप, मगर, ग्राह और सुसुमार ।

इन सबके भेद प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार कहना चाहिए यावत् इस प्रकार के गर्भज जलचर सक्षेप से दो प्रकार के है—पर्याप्त और अपर्याप्त ।

हे भगवन् ! इन जीवो के कितने शरीर कहे गये है ?

गौतम ! इनके चार शरीर कहे गये है, जैसे कि

औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण ।

इनकी शरीरावगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से हजार योजन की है ।

इन जीवो के छह प्रकार के सहनन होते हैं, जैसे कि वज्रऋषभनाराचसहनन, ऋषभ-नाराचसहनन, नाराचसहनन, अर्धनाराचसहनन, कीलिकासहनन और सेवार्तसहनन । इन जीवो के शरीर के सस्थान छह प्रकार के है—

समचतुरस्रसस्थान, न्यग्रोधपरिमडलसस्थान, सादिसस्थान, कुब्जसस्थान, वामनसस्थान और हुडसंस्थान ।

इन जीवो के सब कषाय, चारो सज्ञाएँ, छहो लेश्याएँ, पाचो इन्द्रियाँ, शुरू के पाच समुद्घात होते हैं । ये जीव सज्ञी होते हैं, असज्ञी नही । इनमे तीन वेद, छह पर्याप्तियाँ, छह अपर्याप्तियाँ, तीनो दृष्टियां, तीन दर्शन, पाये जाते हैं । ये जीव ज्ञानी भी होते है और अज्ञानी भी होते हैं । जो ज्ञानी है उनमे कोई दो ज्ञान वाले है और कोई तीन ज्ञान वाले । जो दो ज्ञान वाले हैं वे मतिज्ञान वाले और श्रुतज्ञान वाले हैं । जो तीन ज्ञान वाले हैं वे नियम से मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी हैं । इसी तरह अज्ञानी भी ।

इन जीवो मे तीन योग, दोनो उपयोग होते है । इनका आहार छहो दिशाओ से होता है ।

ये जीव नैरयिको मे भी आकर उत्पन्न होते है यावत् सातवी नरक से भी आकर उत्पन्न होते हैं । असख्य वर्षायु वाले तिर्यंचो को छोडकर सब तिर्यंचो से भी आकर उत्पन्न होते हैं । अकर्मभूमि, अन्तर्द्वीप और असख्य वर्षायु वाले मनुष्यो को छोडकर शेष सब मनुष्यो से भी आकर उत्पन्न होते हैं । ये सहस्रार तक के देवलोको से आकर भी उत्पन्न होते है ।

इनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटी की है । ये दोनो प्रकार के-समवहत, असमवहत मरण से मरते हैं । ये यहां से मर कर सातवी नरक तक, सब तिर्यंचो और मनुष्यो मे और सहस्रार तक के देवलोक मे जाते हैं । ये चार गति वाले, चार आगति वाले, प्रत्येक-शरीरी और असख्यात है । यह (गर्भज) जलचरो का कथन हुआ ।

विवेचन—गर्भज जलचरो के भेद प्रज्ञापना के अनुसार जानने का निर्देश दिया गया है । ये भेद मत्स्य, कच्छप आदि पूर्व के सूत्र के विवेचन मे बता दिये है । पर्याप्त, अपर्याप्त का वर्णन भी पूर्ववत् जानना चाहिए । शरीर आदि द्वार सम्मूर्छिम जलचरो के समान जानने चाहिए, जो अन्तर है, वह इस प्रकार जानना चाहिए—

शरीरद्वार मे गर्भज जलचरो मे चार शरीर पाये जाते हैं ।

इनमे वैक्रियशरीर भी पाया जाता है। अतएव औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण—ये चार शरीर पाये जाते हैं।

अवगाहनाद्वार मे इन गर्भज जलचरो की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन की जाननी चाहिए।

संहननद्वार मे इन गर्भज जलचरो मे छहो संहनन सम्भव है। वज्रऋषभनाराच, ऋषभ-नाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका और सेवार्त ये छह सहनन होते हैं। इनकी व्याख्या पहले २३ द्वारो की सामान्य व्याख्या के प्रसग मे की गई है।[1]

संस्थानद्वार—इन जीवो के शरीरो के सस्थान छहो प्रकार के सम्भव हैं। वे छह सस्थान इस प्रकार हैं—समचतुरस्रसस्थान, न्यग्रोधपरिमडलसस्थान, सादिसंस्थान,[2] वामनसस्थान, कुब्ज-सस्थान और हुडसस्थान। इनकी व्याख्या पहले सामान्य द्वारो की व्याख्या के प्रसग मे कर दी गई है।[3]

लेश्याद्वार मे छहो लेश्याएँ हो सकती हैं। शुक्ललेश्या भी सम्भव है।

समुद्घातद्वार मे आदि के पाच समुद्घात होते है। वैक्रियसमुद्घात भी सम्भव है।

संज्ञीद्वार मे ये सज्ञी ही होते हैं असज्ञी नही। **वेदद्वार** मे तीनो वेद होते हैं। इनमे नपुसक वेद के अतिरिक्त स्त्रीवेद और पुरुषवेद भी होता है।

पर्याप्तिद्वार मे छहो पर्याप्तिया और छहो अपर्याप्तिया होती है। वृत्तिकार ने पाच पर्याप्तियाँ और पाच अपर्याप्तियाँ कही है सो भाषा और मन की एकत्व-विवक्षा को लेकर समझना चाहिए।

दृष्टिद्वार मे तीनो (मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि) होते है।

दर्शनद्वार मे इन जीवो मे तीन दर्शन हो सकते है, क्योकि किन्ही मे अवधिदर्शन भी हो सकता है।

ज्ञानद्वार मे ये तीन ज्ञान वाले भी हो सकते हैं। क्योकि इनमे से किन्ही को अवधिज्ञान भी हो सकता है।

अज्ञानद्वार मे तीन अज्ञान वाले भी हो सकते है। क्योकि किन्ही को विभगज्ञान भी हो सकता है।

१　वज्जरिसहनाराय पढम वीय च रिसहनाराय।
नारायमद्धनाराय कीलिया तह य छेवट्ट ॥१॥
रिसहो य होइ पट्टो, वज्ज पुण कीलिया मुणेयव्वा।
उसओ मक्कडवधो, नाराय त वियाणाहि ॥२॥

२　'साची' ऐसा भी पाठ है। साची का अर्थ शाल्मलि वृक्ष होता है। वह नीचे से अतिपुष्ट होता है, ऊपर से तदनुरूप नही होता।

३. समचउरसे नग्गोहमडले साइखुज्जवामणए।
हुडे वि सठाणे जीवाण छ मुणेयव्वा ॥१॥

अवधिज्ञान और विभगज्ञान मे सम्यक्त्व और मिथ्यात्व को लेकर भेद है। सम्यग्दृष्टि का अवधिज्ञान होता है और मिथ्यादृष्टि का वही ज्ञान विभगज्ञान कहलाता है।[1]

उपपातद्वार मे ये जीव सातो नारको से, असख्यात वर्षायु वाले तिर्यंचो को छोडकर शेष सव तिर्यंचो से, अकर्मभूमिज अन्तर्द्वीपज और असख्यात वर्ष की आयुवालो को छोडकर शेष कर्मभूमि के मनुष्यो से और सहस्रार नामक आठवे देवलोक तक के देवो से आकर उत्पन्न होते है। इससे आगे के देव इनमे उत्पन्न नही होते।

स्थितिद्वार मे इन जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मूहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटी की है।

उद्वर्तनाद्वार मे सहस्रार देवलोक से आगे के देवो को छोडकर शेष सव जीवस्थानो मे जाते है।

अतएव गति-आगति द्वार मे ये चार गति वाले और चार आगति वाले है। ये प्रत्येकशरीरी और असख्यात हैं। यह गर्भज जलचरो का वर्णन हुआ।

गर्भज स्थलचरों का वर्णन

३९. से किं तं थलयरा ?

थलयरा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

चउप्पदा य परिसप्पा य।

से किं तं चउप्पया ?

चउप्पया चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—एगखुरा सो चेव भेदो जाव जे यावन्ने तहप्पगारा ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। चत्तारि सरीरा, ओगाहणा जहन्नेण अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेण छ गाउयाइं। ठिती उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं नवरं उव्ववट्टित्ता नेरइएसु चउत्थपुढविं गच्छंति, सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया, चउआगतिया, परित्ता असखेज्जा पण्णत्ता। से त्तं चउप्पया।

से किं तं परिसप्पा ?

परिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

उरपरिसप्पा य भुयगपरिसप्पा य।

से किं तं उरपरिसप्पा ?

उरपरिसप्पा तहेव आसालियवज्जो भेदो भाणियव्वो, सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं, ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

उववट्टित्ता नेरइएसु जाव पंचमं पुढविं ताव गच्छंति, तिरिक्खमणुस्सेसु सव्वेसु, देवेसु जाव सहस्सारा। सेसं जहा जलयराणं जाव चउगतिया चउआगतिया परित्ता असंखेज्जा। से तं उरपरिसप्पा।

---

१ सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानं मिथ्यादृष्टेर्विपर्यास। —वृत्ति

से किं तं भुयगपरिसप्पा ?

भेदो तहेव। चत्तारि सरीरगा, ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलासखेज्जइभाग उक्कोसेणं गाउय-पुहुत्तं। ठिती जहन्नेणं अतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी। सेसेसु ठाणेसु जहा उरपरिसप्पा, णवरं दोच्चं पुढविं गच्छंति।

से त भुयपरिसप्पा, से तं थलयरा।

[३९.] (गर्भज) स्थलचर क्या है ?

(गर्भज) स्थलचर दो प्रकार के हैं, यथा—चतुष्पद और परिसर्प। चतुष्पद क्या है ? चतुष्पद चार तरह के हैं, यथा—

एक खुर वाले आदि भेद प्रज्ञापना के अनुसार कहने चाहिए। यावत् ये स्थलचर सक्षेप से दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। इन जीवो के चार शरीर होते हैं। अवगाहना जघन्य मे अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से छह कोस की है। इनकी स्थिति उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। ये मरकर चौथे नरक तक जाते हैं, शेष सब वक्तव्यता जलचरो की तरह जानना यावत् ये चारो गतियो मे जाने वाले और चारो गतियो से आने वाले हैं, प्रत्येकशरीरी और असख्यात है। यह चतुष्पदो का वर्णन हुआ।

परिसर्प क्या है ?

परिसर्प दो प्रकार के है—उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प।

उरपरिसर्प क्या हैं ?

उरपरिसर्प के पूर्ववत् भेद जानने चाहिए किन्तु आसालिक नही कहना चाहिए।

इन उरपरिसर्पों की अवगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से एक हजार योजन है।

इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटि है। ये मरकर यदि नरक मे जाते हैं तो पाचवें नरक तक जाते हैं, सव तिर्यंचो और सब मनुष्यो मे भी जाते हैं और सहस्रार देवलोक तक भी जाते हैं। शेष सब वर्णन जलचरो की तरह जानना। यावत् ये चार गति वाले, चार आगति वाले, प्रत्येकशरीरी और असख्यात हैं।

यह उरपरिसर्पों का कथन हुआ।

भुजपरिसर्प क्या हैं ?

भुजपरिसर्पों के भेद पूर्ववत् कहने चाहिए।

चार शरीर, अवगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से दो कोस से नौ कौस तक, स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पूर्वकोटि। शेष स्थानों मे उरपरिसर्पो की तरह कहना चाहिए। यावत् ये दूसरे नरक तक जाते हैं। यह भुजपरिसर्प का कथन हुआ। इसके साथ ही स्थलचरो का भी कथन पूरा हुआ।

४०. से किं तं खहयरा ?

खहयरा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—

चम्मपक्खी तहेव भेदो,

ओगाहणा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं। ठिई जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असखेज्जइभागो; सेसं जहा जलयराणं नवरं जाव तच्चं पुढविं गच्छंति जाव से तं खहयर-गब्भवक्कंतिय-पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, से तं तिरिक्खजोणिया।

[४०] खेचर क्या हैं ?

खेचर चार प्रकार के हैं, जैसे कि चर्मपक्षी आदि पूर्ववत् भेद कहने चाहिए।

इनकी अवगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवां भाग और उत्कृष्ट से धनुषपृथक्त्व। स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असख्यातवा भाग, शेष सब जलचरो की तरह कहना। विशेपता यह है कि ये जीव तीसरे नरक तक जाते है।

यह खेचर गर्भव्युत्क्रातिक पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिको का कथन हुआ। इसके साथ ही तिर्यंच-योनिको का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन [३९-४०]—इन सूत्रो मे स्थलचर गर्भव्युत्क्रान्तिक और खेचर गर्भव्युत्क्रान्तिक के भेदो को बताने के लिए निर्देश किया गया है कि सम्मूर्छिम स्थलचर और खेचर की भाति इनके भेद समझने चाहिए। *सम्मूर्छिम स्थलचरो में उरपरिसर्प के भेदो मे आसालिका का वर्णन किया गया है,* वह यहाँ नही कहना चाहिए। क्योकि आसालिका सम्मूर्छिम ही होती है, गर्भव्युत्क्रान्तिक नही। दूसरा अन्तर यह है कि महोरग के सूत्र मे '**जोयणसयंपि जोयणसयपुहुत्तिया वि जोयणसहस्संपि** इतना पाठ अधिक कहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि सम्मूर्छिम महोरग की अवगाहना उत्कृष्ट योजन-पृथक्त्व की है जब कि गर्भज महोरग की अवगाहना सौ योजनपृथक्त्व एव हजार योजन की भी है। शरीरादि द्वारो मे भी सर्वत्र गर्भज जलचरो की तरह वक्तव्यता है, केवल अवगाहगा, स्थिति और उद्वर्तना द्वारो मे अन्तर है।

चतुष्पदो की उत्कृष्ट अवगाहना छह कोस की है, उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की है, चौथे नरक से लेकर सहस्रार देवलोक तक की उद्वर्तना है अर्थात् इस बीच सभी जीवस्थानो मे ये मरने के अनन्तर उत्पन्न हो सकते है।

उरपरिसर्पों की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन है। उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि है और उद्वर्तना पाचवे नरक से लेकर सहस्रार देवलोक तक की है अर्थात् इस बीच के सभी जीवस्थानो मे ये मरकर उत्पन्न हो सकते है।

भुजपरिसर्पों *की उत्कृष्ट अवगाहना गव्यूतिपृथक्त्व* अर्थात् दो कोस से लेकर *नौ कोस तक* की है। उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि है और उद्वर्तना दूसरे नरक से लेकर सहस्रार देवलोक तक है अर्थात् इस बीच के सब जीवस्थानो मे ये उत्पन्न हो सकते है।

खेचर गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यंचो के भेद सम्मूर्छिम खेचरो की तरह ही हैं। शरीरादि द्वार गर्भज जलचरो की तरह है, केवल अवगाहना, स्थिति और उद्वर्तना मे भेद है। खेचर गर्भज पचेन्द्रिय

तिर्यंचो की उत्कृष्ट अवगाहना धनुपपृथक्त्व है। जघन्य तो सर्वत्र अंगुलासख्येयभाग प्रमाण है। जघन्य स्थिति भी सर्वत्र अन्तर्मूहूर्त की है और इनकी उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवा भाग है। इनकी उद्वर्तना तीसरे नरक से लेकर सहस्रार देवलोक तक के बीच के सब जीवस्थान हैं। अर्थात् इन सब जीवस्थानो मे वे मरने के अनन्तर उत्पन्न हो सकते है।

किन्ही प्रतियो मे अवगाहना और स्थिति बताने वाली दो सग्रहणी गाथाएँ[1] दी गई हैं जिनका भावार्थ इस प्रकार है—

'गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचरो की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन की है, चतुष्पदो की छह कोस, उरपरिसर्पों की हजार योजन, भुजपरिसर्पों की गव्यूतपृथक्त्व, पक्षियो की धनुषपृथक्त्व है।

गर्भज जलचरो की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि हैं, चतुष्पदो की तीन पल्योपम, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प की पूर्वकोटि, पक्षियो की पल्योपम का असख्यातवा भाग है। नरको मे उत्पाद की स्थिति को बताने वाली दो गाथाएँ[2] हैं, जिनका भाव इस प्रकार है—

असज्ञी जीव पहले नरक तक, सरीसृप दूसरे नरक तक, पक्षी तीसरे नरक तक, सिंह चौथे नरक तक, सर्प पांचवे नरक तक, स्त्रियाँ छठे नरक तक और मत्स्य तथा मनुष्य सातवे नरक तक जा सकते हैं।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यचो का कथन पूरा हुआ। आगे मनुष्यो का प्रतिपादन करते हैं।

मनुष्यों का प्रतिपादन

४१. से किं तं मणुस्सा ?
मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—
संमुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कतियमणुस्सा य।
कहि ण भंते ! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति ?
गोयमा ! अंतो मणुस्सखेत्ते जाव करेंति।
तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! तिन्नि सरीरगा पण्णत्ता, तजहा—

---

१. जोयणसहस्स छग्गाउयाइ तत्तो य जोयणसहस्स।
गाउयपुहुत्त भुयगे, धणुयपुहुत्त च पक्खीसु ॥१॥
गब्भम्मि पुव्वकोडी, तिन्नि य पलिओवमाइ परमाउ।
उरभुजग पुव्वकोडी, पल्लिय असखेज्जभागो य ॥२॥ —वृत्ति

२ असण्णी खलु पढम दोच्च च सरीसवा तइय पक्खी।
सीहा जति चउत्थ उरगा पुण पचमि पुढवि ॥१॥
छट्ठि च इत्थियाउ, मच्छा मणुया य सत्तमि पुढवि।
एसो परमोववाओ वोद्धव्वो नरयपुढविसु ॥२॥

ओरालिए, तेयए, कम्मए। से तं संमुच्छिममणुस्सा।

से किं त गब्भवक्कतियमणुस्सा ?

गब्भवक्कतियमणुस्सा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—

कम्मभूमया, अकम्मभूमया, अतरदीवया।

एव मणुस्सभेदो भाणियव्वो जहा पण्णवणाए तहा णिरवसेस भाणियव्व जाव छउमत्था य केवली य। ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य।

तेसि णं भंते ! जीवाणं कति सरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंच सरीरा, तजहा—ओरालिए जाव कम्मए।

सरीरोगाहणा जहन्नेणं अंगुलासंखेज्जइभागं उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं। छच्चेव संघयणा छस्संठाणा।

ते णं भंते ! जीवा किं कोहकसाई जाव लोभकसाई अकसाई ?

गोयमा ! सव्वे वि।

ते णं भते ! जीवा किं आहारसन्नोवउत्ता जाव लोभसन्नोवउत्ता नोसन्नोवउत्ता ?

गोयमा ! सव्वे वि।

ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेसा य जाव अलेसा ?

गोयमा ! सव्वे वि।

सोइंदियोवउत्ता जाव नोइंदियोवउत्ता वि।

सव्वे समुग्घाया तंजहा—वेयणासमुग्घाए जाव केवलिसमुग्घाए। सन्नी वि नोसन्नी वि असन्नी वि। इत्थिवेया वि जाव अवेदा बि। पंच पज्जत्ती, तिविहा वि दिट्ठी, चत्तारि दंसणा, णाणी वि अण्णाणी वि। जे णाणी ते अत्थेगइया दुणाणी अत्थेगइया तिणाणी अत्थेगइया चउणाणी, अत्थेगइया एगणाणी।

जे दुण्णाणी ते नियमा आभिणिबोहियणाणी, सुयनाणी य। जे तिणाणी ते आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी य अहवा आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, मणपज्जवणाणी य। जे चउणाणी ते णियमा आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी य। जे एगणाणी ते नियमा केवलणाणी।

एव अण्णाणी वि दुअण्णाणी, तिअण्णाणी। मणजोगी वि वइजोगी वि, कायजोगी वि, अजोगी वि। दुविहे उवओगे, आहारो छद्दिसिं।

उववाओ नेरइएहिं अहेसत्तमवज्जेहिं, तिरिक्खजोणएहिंतो उववाओ असखेज्जवासाउयवज्जेहिं मणुएहिं अकम्मभूमग-अंतरदीवग-असखेज्जवासाउयवज्जेहिं देवेहिं सव्वेहिं।

ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं, दुविहा वि मरंति, उव्वट्टित्ता नेरइयाइसु जाव अणुत्तरोववाइएसु, अत्थेगइया सिज्झंति जाव अंतं करेंति।

ते ण भते ! जीवा कतिगतिआ कतिआगतिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंचगतिया चउआगतिया परित्ता संखिज्जा पण्णत्ता समणाउसो ! से त्तं मणुस्सा ।

[४१] मनुष्य का क्या स्वरूप है ?

मनुष्य दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—सम्मूर्छिम मनुष्य और गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य ।

भगवन् ! सम्मूर्छिम मनुष्य कहाँ सम्मूर्छित होते हैं—उत्पन्न होते हैं ?

गौतम ! मनुष्य क्षेत्र के अन्दर (गर्भज-मनुष्यो के अशुचि स्थानो मे सम्मूर्छित) होते है, यावत् अन्तर्मुहूर्त की आयु मे मृत्यु को प्राप्त हो जाते है ।

भते ! उन जीवो के कितने शरीर होते है ?

गौतम ! तीन शरीर होते हैं—औदारिक, तैजस और कार्मण । (इस प्रकार द्वार-वक्तव्यता कहनी चाहिए ।)

यह सम्मूर्छिम मनुष्यो का कथन हुआ ।

गर्भज मनुष्यो का क्या स्वरूप है ?

गौतम ! गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज । इस प्रकार मनुष्यो के भेद प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार कहने चाहिए और पूरी वक्तव्यता यावत् छद्मस्थ और केवली पर्यन्त ।

ये मनुष्य सक्षेप से पर्याप्त और अपर्याप्त रूप से दो प्रकार के है ।

भते ! उन जीवो के कितने शरीर कहे गये हैं ?

गौतम ! पाच शरीर कहे गये हैं—औदारिक यावत् कार्मण । उनकी शरीरावगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट से तीन कोस की है । उनके छह सहनन और छह सस्थान होते हैं ।

भते ! वे जीव, क्या क्रोधकषाय वाले यावत् लोभकषाय वाले या अकषाय है ?

गौतम ! सब तरह के है ।

भगवन् ! वे जीव क्या आहारसज्ञा वाले यावत् लोभसज्ञा वाले या नोसज्ञा वाले हैं ?

गौतम ! सब तरह के हैं ।

भगवन् ! वे जीव कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले या अलेश्या वाले है ?

गौतम ! सब तरह के हैं ।

वे श्रोत्रेन्द्रिय उपयोग वाले यावत् स्पर्शनेन्द्रिय उपयोग और नोइन्द्रिय उपयोग वाले है ।

उनमे सब समुद्घात पाये जाते हैं, यथा—वेदनासमुद्घात यावत् केवलीसमुद्घात ।

वे सज्ञी भी हैं, नोसज्ञी-असज्ञी भी हैं ।

वे स्त्रीवेद वाले भी हैं, पुवेद, नपुसकवेद वाले भी है और अवेदी भी हैं ।

इनमे पाच पर्याप्तियां और पाच अपर्याप्तिया होती हैं । (भाषा और मन को एक मानने की अपेक्षा) ।

इनमे तीनो दृष्टिया पाई जाती है। चार दर्शन पाये जाते है। ये ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी है—वे कोई दो ज्ञान वाले, कोई तीन ज्ञान वाले, कोई चार ज्ञान वाले और कोई एक ज्ञान वाले होते है। जो दो ज्ञान वाले है, वे नियम से मतिज्ञानी और श्रुतज्ञानी है, जो तीन ज्ञान वाले है वे मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी हैं अथवा मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और मन पर्यव-ज्ञानी हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं वे नियम से मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मन पर्यवज्ञान वाले है। जो एक ज्ञान वाले है वे नियम से केवलज्ञान वाले है।

इसी प्रकार जो अज्ञानी है वे दो अज्ञान वाले या तीन अज्ञान वाले है।

वे मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी भी हैं।

उनमे दोनो प्रकार का—साकार-अनाकार उपयोग होता है।

उनका छहो दिशाओ से (पुद्‌गल ग्रहण रूप) आहार होता है।

वे सातवे नरक को छोडकर शेष सब नरको से आकर उत्पन्न होते हैं, असख्यात वर्षायु को छोडकर शेष सब तिर्यंचो से भी उत्पन्न होते है, अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज और असख्यात वर्षायु वालो को छोडकर शेप मनुष्यो से भी उत्पन्न होते हैं और सब देवो से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है।

ये दोनो प्रकार के समवहत-असमवहत मरण से मरते हैं।

ये यहाँ से मर कर नैरयिको मे यावत् अनुत्तरोपपातिक देवो मे भी उत्पन्न होते है और कोई सिद्ध होते हैं यावत् सब दु खो का अन्त करते हैं।

भगवन्! ये जीव कितनी गति वाले और कितनी आगति वाले कहे गये है?

गौतम! पाच गति वाले और चार आगति वाले हैं। ये प्रत्येकशरीरी और सख्यात हैं। आयुष्मन् श्रमण! यह मनुष्यो का कथन हुआ।

विवेचन—मनुष्य सम्बन्धी प्रश्न किये जाने पर सूत्रकार कहते है कि मनुष्य दो प्रकार के हैं—सम्मूर्छिम मनुष्य और गर्भज मनुष्य। सम्मूर्छिम मनुष्यो के विषय मे प्रश्न किया गया है कि ये कहाँ सम्मूर्छित होते है? कहाँ उत्पन्न होते है? इस प्रश्न के उत्तर मे प्रज्ञापनासूत्र का निर्देश किया गया है। अर्थात् प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार इसका उत्तर जानना चाहिए। प्रज्ञापनासूत्र मे इस विषय मे ऐसा उल्लेख किया गया है—

"पैतालीस लाख योजन के लम्बे चौडे मनुष्यक्षेत्र मे—जिसमे अढाई द्वीप-समुद्र है, पन्द्रह कर्मभूमियां, तीस अकर्मभूमिया और छप्पन अन्तर्द्वीप है—गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यो के ही १ उच्चार (मल) मे, २ प्रस्रवण (मूत्र) मे, ३ कफ मे, ४ सिंघाण—नासिका के मल मे, ५ वमन मे, ६ पित्त मे, ७ मवाद मे, ८ खून मे, ९ वीर्य मे, १० सूखे हुए वीर्य के पुद्‌गलो के पुनः गीला होने मे, ११ मृत जीव के कलेवरो मे, १२ स्त्री-पुरुष के सयोग मे, १३ गाव-नगर की गटरो मे और १४ सब प्रकार के अशुचि स्थानो मे ये सम्मूर्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। अगुल के असख्यातवे भाग प्रमाण इनकी अवगाहना होती है। ये असज्ञी, मिथ्यादृष्टि और सब पर्याप्तियो से अपर्याप्त रह कर अन्तर्मुहूर्त मात्र की आयु पूरी कर मर जाते हैं।"

इन सम्मूर्छिम मनुष्यो मे शरीरादि द्वारो की वक्तव्यता इस प्रकार जाननी चाहिए—

शरीरद्वार—इनके तीन शरीर होते हैं—औदारिक, तैजस और कार्मण ।

अवगाहनाद्वार—इनकी अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अगुल के असख्यातवें भाग-प्रमाण है ।

सहनन, सस्थान, कषाय, लेश्याद्वार द्वीन्द्रियो की तरह जानना ।

इन्द्रियद्वार— इनके पाचो इन्द्रिया होती हैं ।

सज्ञीद्वार और वेदद्वार द्वीन्द्रिय की तरह जानना ।

पर्याप्तिद्वार मे—पाच अपर्याप्तिया होती है । ये लब्धिअपर्याप्तक होते है ।

दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, योग, उपयोग द्वार पृथ्वीकायिको के समान जानने चाहिए ।

आहारद्वार द्वीन्द्रियो की तरह है ।

उपपात—नैरयिक, देव, तेजस्काय, वायुकाय और असख्यात वर्षायु वालो को छोडकर शेष जीवस्थानो से आकर उत्पन्न होते है ।

स्थिति—जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण । जघन्य अन्तर्मुहूर्त से उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कुछ अधिक जानना चाहिए।

ये समवहत भी मरते हैं और असमवहत भी ।

उद्वर्तना—नैरयिक, देव और असख्यात वर्षायु वालो को छोडकर शेष जीवस्थानो मे मरकर उत्पन्न होते हैं । इसलिए गति-आगतिद्वार मे दो गति वाले और दो आगति वाले (तिर्यक् और मनुष्य) हैं । ये प्रत्येकशरीरी और असख्यात हैं । हे आयुष्मन् श्रमण ! यह सम्मूर्छिम मनुष्यो का वर्णन हुआ ।

गर्भज मनुष्यो का वर्णन—गर्भ से उत्पन्न होने वाले मनुष्य तीन प्रकार के है—१. कर्मभूमिक, २ अकर्मभूमिक और ३ अन्तर्द्वीपज ।

कर्मभूमिक—कर्म-प्रधान भूमियो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य कर्मभूमिक हैं । कृषि वाणिज्यादि अथवा मोक्षानुष्ठानरूप कर्म जहाँ प्रधान हो वह कर्मभूमि है । पाच भरत, पाच ऐरवत और ५ महाविदेह—ये १५ कर्मभूमियाँ हैं । इन्ही भूमियो मे जीवन-निर्वाह हेतु विविध व्यापार, व्यवसाय, कृषि, कला आदि होते हैं । इन्ही क्षेत्रो मे मोक्ष के लिए अनुष्ठान, प्रयत्न आदि हो सकते हैं । अतएव ये कर्मभूमिया हैं । इनमे ही सव सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक व्यवस्थाएँ होती हैं । इनमे उत्पन्न मनुष्य कर्मभूमिक मनुष्य हैं ।

अकर्मभूमिक—जहाँ असि (शस्त्रादि), मषि (साहित्य-व्यापार कलाएँ) और कृषि (खेती) आदि कर्म न हो तथा जहाँ मोक्षानुष्ठान हेतु धर्माराधना आदि प्रयत्न न हो ऐसी भोग-प्रधान भूमि अकर्मभूमियाँ है । पाँच हैमवत, पाच हैरण्यवत, पाच हरिवर्ष, पाच रम्यकवर्ष, पाच देव-कुरु और पाच उत्तरकुरु—ये तीस अकर्मभूमिया हैं । इन ३० अकर्मभूमियो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य अकर्मभूमिक हैं । यहाँ के मनुष्यो के भोगोपभोग के साधनो की पूर्ति कल्पवृक्षो से होती है, इसके लिए उन्हे कोई कर्म नही करना पडता ।

पाँच हैमवत और पाच हैरण्यवत क्षेत्र मे मनुष्य एक कोस ऊँचे, एक पल्योपम की आयु वाले और वज्रऋषभनाराच सहनन वाले तथा समचतुरस्रसस्थान वाले होते हैं । इनकी पीठ की पस-

लियाँ ६४ होती हैं। ये एक दिन के अन्तर से भोजन करते हैं और ७९ दिन तक सन्तान की पालना करते है।

पाच हरिवर्ष और पाच रम्यकवर्ष क्षेत्रो मे मनुष्यो की आयु दो पल्योपम की, शरीर की ऊँचाई दो कोस की होती है। ये वज्रऋषभनाराचसहनन वाले और समचतुरस्रसस्थान वाले होते हैं। दो दिन के अन्तर से आहार की अभिलाषा होती है। इनके १२८ पसलियाँ होती हैं। ६४ दिन तक संतान की पालना करते हैं।

पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्यो की आयु तीन पल्योपम की, ऊँचाई तीन कोस की होती है। इनके वज्रऋषभनाराचसहनन और समचतुरस्रसस्थान होता है। इनकी पसलियाँ २५६ होती है, तीन दिन के अन्तर से आहार करते हैं और ४९ दिन तक अपत्य-पालना करते है।

अन्तर्द्वीपज—अन्तर् शब्द 'मध्य' का वाचक है। लवणसमुद्र के मध्य मे जो द्वीप हैं वे अन्तर्द्वीप कहलाते हैं। ये अन्तर्द्वीप छप्पन हैं। इनमे रहने वाले मनुष्य अन्तर्द्वीपज कहलाते हैं।

ये अन्तर्द्वीप हिमवान और शिखरी पर्वतो की लवणसमुद्र मे निकली दाढाओ पर स्थित हैं। जम्बूद्वीप मे भरतक्षेत्र की सीमा पर स्थित हिमवान पर्वत के दोनो छोर पूर्व-पश्चिम लवणसमुद्र में फैले हुए हैं। इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र की सीमा पर स्थित शिखरी पर्वत के दोनो छोर भी लवण-समुद्र मे फैले हुए हैं। प्रत्येक छोर दो भागो मे विभाजित होने से दोनो पर्वतो के आठ भाग लवण-समुद्र मे जाते हैं। हाथी के दातो के समान आकृति वाले होने से इन्हे दाढा कहते हैं। प्रत्येक दाढा पर मनुष्यो की आवादी वाले सात-सात क्षेत्र है। इस प्रकार ८×७=५६ अन्तर्द्वीप हैं। इनमे रहने वाले मनुष्य अन्तर्द्वीपज कहलाते हैं।

हिमवान पर्वत से तीन सौ योजन की दूरी पर लवणसमुद्र मे ३०० योजन विस्तार वाले १. एकोसक, २ आभासिक, ३. वैषाणिक और ४ लागलिक नामक चार द्वीप चारो दिशाओ मे हैं। इनके आगे चार-चार सौ योजन दूरी पर चार सौ योजन विस्तार वाले ५ हयकर्ण, ६. गजकर्ण, ७ गोकर्ण और ८ शष्कुलीकर्ण नामक चार द्वीप चारो विदिशाओ मे हैं।

इसके आगे पाच सौ योजन जाने पर पाच सौ योजन विस्तार वाले ९ आदर्शमुख, १० मेढ-मुख, ११ अयोमुख, १२ गोमुख नामक चार द्वीप चारो विदिशाओ मे हैं। इनके आगे छह सौ योजन जाने पर छह सौ योजन विस्तार वाले १३ हयमुख, १४ गजमुख, १५ हरिमुख और १६ व्याघ्रमुख नामक चार द्वीप चारो विदिशाओ मे है। इसके आगे सात सौ योजन जाने पर सात सौ योजन विस्तार वाले १७. अश्वकर्ण, १८ सिंहकर्ण, १९ अकर्ण और २० कर्णप्रावरण नामक चार द्वीप चारो विदिशाओ मे हैं। इनसे आठ सौ योजन आगे आठ सौ योजन विस्तार वाले, २१ उल्कामुख, २२. मेघमुख, २३ विद्युत्मुख और २३ अमुख नाम के चार द्वीप चारो विदिशाओ मे हैं। इससे नौ सौ योजन आगे नौ सौ योजन विस्तार वाले २५ घनदन्त, २६ लष्टदन्त, २७ गूढदन्त और २८. शुद्धदन्त नाम के चार द्वीप चारो विदिशाओ मे हैं। ये सव अट्ठाईसो द्वीप जम्बूद्वीप की जगती से तथा हिमवान पर्वत से तीन सौ योजन से लगाकर नौ सौ योजन दूर हैं।

इसी तरह ऐरवत क्षेत्र की सीमा करने वाले शिखरी पर्वत की दाढो पर भी इन्ही नाम वाले २८ द्वीप हैं। इस तरह दोनों तरफ के मिलकर छप्पन अन्तर्द्वीप होते हैं। इन अन्तर्द्वीपो मे एक पल्यो-

पम के असंख्यातवें भाग की आयु वाले युगलिक मनुष्य रहते है। इन द्वीपों मे सदैव तीसरे आरे जैसी रचना रहती है।

यहाँ के स्त्री-पुरुष सर्वांग सुन्दर एव स्वस्थ होते है। वहाँ रोग तथा उपद्रवादि नही होते हैं। उनमे स्वामी-सेवक व्यवहार नही होता। उनकी पीठ मे ६४ पसलियाँ होती हैं। उनका आहार एक चतुर्थभक्त के बाद होता है तथा मिट्टी एव कल्पवृक्ष के पुष्प-फलादि का होता है। वहाँ की पृथ्वी शक्कर से भी अधिक मीठी होती है तथा कल्पवृक्ष के फलादि चक्रवर्ती के भोजन से अनेक गुण अच्छे होते हैं।

यहाँ के मनुष्य मदकषाय वाले, मृदुता-ऋजुता से सम्पन्न तथा ममत्व और वैरानुवन्ध से रहित होते है। यहाँ के युगलिक अपने अवसान के समय एक युगल (स्त्री-पुरुष) को जन्म देते है और ७९ दिन तक उसका पालन-पोषण करते है। इनका मरण जभाई, खासी या छीक आदि से होता है—पीडापूर्वक नही। ये मरकर देवलोक मे जाते है।

कर्मभूमिक मनुष्य दो प्रकार के है—आर्य और म्लेच्छ (अनार्य)। शक, यवन, किरात, शवर, बर्बर, आदि अनेक प्रकार के म्लेच्छो के नाम प्रज्ञापनासूत्र मे वताये गये हैं।

आर्य दो प्रकार के है—ऋद्धिप्राप्त आर्य और अनर्द्धिप्राप्त आर्य। ऋद्धिप्राप्त आर्य छह प्रकार के है—१ अरिहत, २ चक्रवर्ती, ३ बलदेव, ४ वासुदेव, ५ चारण और ६ विद्याधर।

अनर्द्धिप्राप्त आर्य नौ प्रकार के है—१. क्षेत्रआर्य, २. जातिआर्य, ३ कुलआर्य, ४ कर्म-आर्य, ५ शिल्पआर्य, ६ भाषाआर्य, ७ ज्ञानआर्य, ८. दर्शनआर्य और ९ चारित्रआर्य।

१ क्षेत्रआर्य—साढे पच्चीस देश[1] के निवासी क्षेत्रआर्य हैं। इन क्षेत्रो मे तीर्थंकरो, चक्रवर्तियो, बलदेवो और वासुदेवो का जन्म होता है।

२ जातिआर्य—जिनका मातृवश श्रेष्ठ हो (शिष्टजनसम्मत हो)।

३ कुलआर्य—जिनका पितृवश श्रेष्ठ हो। उग्र, भोग, राजन्य आदि कुलआर्य हैं।

४ कर्मआर्य—शिष्टजनसम्मत व्यापार आदि द्वारा आजीविका करने वाले कर्मआर्य है।

५ शिल्पआर्य—शिष्टजन सम्मत कलाओ द्वारा जीविका करने वाले शिल्पार्य है।

६ भाषाआर्य—शिष्टजन मान्य भाषा और लिपि का प्रयोग करने वाले भाषाआर्य हैं। सूत्रकार ने अर्धमागधी भाषा और ब्राह्मीलिपि का उपयोग करने वालो को भाषार्य कहा है। उपलक्षण से वे सब भाषाएँ और लिपियाँ ग्राह्य हैं जो शिष्टजनसम्मत और कोमलकान्त पदावली से युक्त हो।

७ ज्ञानआर्य—पाच ज्ञानो—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यायज्ञान और केवल-ज्ञान की अपेक्षा से पाच प्रकार के ज्ञानआर्य समझने चाहिए।

८ दर्शनआर्य—सरागदर्शन और वीतरागदर्शन की अपेक्षा दो प्रकार के दर्शनआर्य समझने चाहिए।

९ चारित्रआर्य—सरागचारित्र और वीतरागचारित्र की अपेक्षा चारित्रआर्य दो प्रकार के जानने चाहिए।

---

१. प्रज्ञापनासूत्र मे विस्तृत जानकारी दी गई है।

सरागदर्शन और सरागचारित्र से तात्पर्य कषाय की विद्यमानता जहाँ तक बनी रहती है वहाँ तक का दर्शन और चारित्र सरागदर्शन और सरागचारित्र जानना चाहिए। कषायो की उपशान्तता तथा क्षीणता के साथ जो दर्शन और चारित्र होता है वह वीतरागदर्शन और वीतराग-चारित्र है। अकषाय रूप यथाख्यातचारित्र दो प्रकार का है—छाद्मस्थिक और कैवलिक। ग्यारहवें, बारहवे गुणस्थानवर्ती जीवो के छाद्मस्थिक यथाख्यातचारित्र होता है और तेरहवें, चौदहवें गुण-स्थानवर्ती जीवो के कैवलिक यथाख्यातचारित्र होता है। इसलिये यथाख्यातचारित्र-आर्य उक्त प्रकार से दो तरह के हो जाते हैं।

यह सक्षेप मे आर्य-मनुष्यो का वर्णन हुआ। विस्तृत जानकारी के लिए प्रज्ञापनासूत्र पढना चाहिए।

ये मनुष्य सक्षेप से पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के हैं, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इन मनुष्यो के सम्बन्ध मे २३ द्वारो की विचारणा इस प्रकार है—

शरीरद्वार—मनुष्यो मे पाचो—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर पाये जाते हैं।

अवगाहना—जघन्य से इनकी अवगाहना अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से तीन कोस है।

संहनन—छहो सहनन पाये जाते हैं।

संस्थान—छहो सस्थान पाये जाते है।

कषायद्वार—क्रोधकषाय वाले, मानकषाय वाले, मायाकषाय वाले, लोभकषाय वाले और अकषाय वाले (वीतराग मनुष्य की अपेक्षा) भी होते है।

संज्ञाद्वार—चारो सज्ञा वाले भी है और नोसज्ञी भी है। निश्चय से वीतराग मनुष्य और व्यवहार से सब चारित्री नोसज्ञोपयुक्त हैं।[1] लोकोत्तर चित्त की प्राप्ति से वे दसो प्रकार की सज्ञा से युक्त हैं।

लेश्याद्वार—छहो लेश्या भी पायी जाती हैं और अलेश्यी भी हैं।

परम शुक्लध्यानी अयोगिकेवली अलेश्यी हैं।

इन्द्रियद्वार—पांचों इन्द्रियो के उपयोग से उपयुक्त भी होते है और केवली की अपेक्षा नो-इन्द्रियोपयुक्त भी हैं।

समुद्घातद्वार—सातो समुद्घात पाये जाते हैं। क्योकि मनुष्यो मे सब भाव सभव हैं।

संज्ञीद्वार—सज्ञी भी हैं और नोसज्ञी-नोअसज्ञी भी है। केवली की अपेक्षा नोसज्ञी-नो-असज्ञी हैं।

---

१. निर्वाणसाधक सर्वं ज्ञेय लोकोत्तराश्रयम्।
सज्ञा लोकाश्रया सर्वा भवाकुरजल पर॥

वेदद्वार—तीनो वेद पाये जाते है और अवेदी भी होते है। सूक्ष्मसपराय आदि गुणस्थान वाले अवेदी है।

पर्याप्तिद्वार—पाचो पर्याप्तिया और पाचो अपर्याप्तिया होती हैं। भाषा और मन पर्याप्ति को एक मानने की अपेक्षा से पाच पर्याप्तिया कही हैं।

दृष्टिद्वार—तीनो दृष्टिया पाई जाती है। कोई मिथ्यादृष्टि होते हैं, कोई सम्यग्दृष्टि होते हैं और कोई मिश्रदृष्टि होते है।

दर्शनद्वार—चारो दर्शन पाये जाते है।

ज्ञानद्वार—मनुष्य ज्ञानी भी होते है और अज्ञानी भी होते है। जो मिथ्यादृष्टि हैं वे अज्ञानी हैं और जो सम्यग्दृष्टि हैं वे ज्ञानी हैं। इनमे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना कही गई है। वह इस प्रकार है—कोई मनुष्य दो ज्ञान वाले हैं, कोई तीन ज्ञान वाले हैं, कोई चार ज्ञान वाले है और कोई एक ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं, वे नियम से मतिज्ञान और श्रुतज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं अथवा मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और मनःपर्यायज्ञानी है। क्योकि अवधिज्ञान के विना भी मन पर्यायज्ञानी हो सकता है। सिद्धप्राभृत आदि मे अनेक स्थानो पर ऐसा कहा गया है।

जो चार ज्ञान वाले हैं वे मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मन पर्यायज्ञानी है।

जो एक ज्ञान वाले हैं वे केवलज्ञानी है। केवलज्ञान होने पर शेष चारो ज्ञान चले जाते हैं। आगम मे कहा गया है कि केवलज्ञान होने पर छाद्मस्थिकज्ञान नष्ट हो जाते हैं।[1]

केवल ज्ञान होने पर शेष ज्ञानो का नाश कैसे ?

यहाँ शका हो सकती है कि केवलज्ञान का प्रादुर्भाव होने पर शेष ज्ञान चले क्यो जाते है ? अपने-अपने आवरण के आशिक क्षयोपशम होने पर ये मति आदि ज्ञान होते हैं तो अपने-अपने आवरण के निर्मूल क्षय होने पर वे अधिक मात्रा मे होने चाहिए, जैसे कि चारित्रपरिणाम होते हैं।

इसका समाधान मरकत मणि के उदाहरण से किया गया है। जैसे जातिवत श्रेष्ठ मरकत मणि मल आदि से लिप्त होने पर जब तक उसका समूल मल नष्ट नही होता तब तक थोड़ा थोडा मल दूर होने पर थोडी थोडी मणि की अभिव्यक्ति होती है। वह क्वचित्, कदाचित् और कथचिद् होने से अनेक प्रकार की होती है। इसी तरह आत्मा स्वभाव से समस्त पदार्थो को जानने की शक्ति से सम्पन्न है परन्तु उसका यह स्वभाव आवरण रूप मल-पटल से तिरोहित है। जब तक पूरा मल दूर नही होता तब तक आशिक रूप से मलोच्छेद होने से उस स्वभाव की आशिक अभिव्यक्ति होती है। वह क्वचित् कदाचित् और कथचित् होने से अनेक प्रकार की हो सकती है। वह मति, श्रुत आदि के भेद से होती है। जब मरकतमणि का सम्पूर्ण मल दूर हो जाता है तो वह मणि एक रूप मे ही अभिव्यक्त होती है। इसी तरह जब आत्मा के सम्पूर्ण आवरण दूर हो जाते हैं तो आंशिक ज्ञान नष्ट

---

१ नट्ठम्मि उ छाउमत्थिए नाणे'—इति वचनात्।

होकर सम्पूर्ण ज्ञान (केवलज्ञान) एक ही रूप मे अभिव्यक्त हो जाता है।[1]

जो अज्ञानी हैं, वे दो अज्ञान वाले भी है और तीन अज्ञान वाले भी है। जो दो अज्ञान वाले है वे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी है। जो तीन अज्ञान आले है वे मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभगज्ञानी है।

योगद्वार—मनुष्य मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी भी है और अयोगी भी है। शैलेशी अवस्था मे अयोगित्व है।

उपयोगद्वार और आहारद्वार द्वीन्द्रियो की तरह जानना।

उपपातद्वार—सातवी नरक को छोडकर शेष सब स्थानो से मनुष्यो मे जन्म हो सकता है। सातवी नरक का नैरयिक मनुष्य नही होता। सिद्धान्त मे कहा गया है कि—सप्तम पृथ्वी नैरयिक, तेजस्काय, वायुकाय और असंख्य वर्षायु वाले अनन्तर उद्वर्तित होकर मनुष्य नही होते।

स्थितिद्वार—मनुष्यो को जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

समवहतद्वार—मनुष्य मारणातिक समुद्‌घात से समवहत होकर भी मरते है और असमवहत होकर भी मरते है।

उद्‌वर्तनाद्वार—ये सब नारको मे, सब तिर्यंचो मे, सब मनुष्यो मे और सब अनुत्तरोपपातिक देवो तक उत्पन्न होते हैं और कोई सब कर्मो से मुक्त होकर सिद्ध-बुद्ध हो जाते है और निर्वाण को प्राप्त कर सब दु खो का अन्त कर देते हैं।

गति-आगतिद्वार—मनुष्य पाच गतियो मे (सिद्धगति सहित) जाने वाले और चार गतियो से आने वाले हैं। हे आयुष्मन् श्रमण ! ये प्रत्येकशरीरी है ओर सख्येय हैं। मनुष्यो की सख्या सख्येय कोटी प्रमाण है।

इस प्रकार मनुष्यो का कथन सम्पूर्ण हुआ।

देवों का वर्णन

४२ से किं तं देवा ?

देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—

भवणवासी, वाणमंतरा, जोइसिया, वेमाणिया।

से किं तं भवणवासी ?

---

१ शका—आवरणदेसविगमे जाइ विज्जति मइसुयाई णि।
आवरणसव्वविगमे कह ताइ न होति जीवस्स ॥
समाधान—मलविद्धमणेर्व्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारत ।
कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथाऽनेकप्रकारत ॥
यथा जात्यस्य रत्नस्य नि शेषमलहानित ।
स्फुटैकरूपाऽभिव्यक्तिर्विज्ञप्तिस्तद्वदात्मन ॥

भवणवासी दसविहा पण्णत्ता, तंजहा—

असुरा जाव थणिया। से त भवणवासी।

से किं तं वाणमंतरा ?

देवभेदो सव्वो भाणियव्वो जाव ते दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। तओ सरीरगा—वेउव्विए, तेयए, कम्मए। ओगाहणा दुविहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं सत्त रयणीओ। उत्तरवेउव्विया जहन्नेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं।

सरीरगा छण्हं संघयणाणं असंघयणी णेवट्ठी, णेव छिरा णेव ण्हारू णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला इट्ठा कंता जाव ते तेसिं संघायत्ताए परिणमति।

किंसंठिया ? गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ ण जे भवधारणिज्जा ते ण समचउरंससठिया पण्णत्ता, तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते णं नाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, चत्तारि कसाया, चत्तारि सण्णाओ, छ लेस्साओ, पंच इंदिया, पंच समुग्घाया, सन्नी वि, असन्नी वि, इत्थिवेया वि, पुरिसवेया वि, णो णपुंसकवेदी, पज्जत्ती अपज्जत्तीओ पंच, दिट्ठी तिण्णि, तिण्णि दंसणा, णाणी वि अण्णाणी वि, जे नाणी ते नियमा तिण्णाणी, अण्णाणी भयणाए, दुविहे उवओगे, तिविहे जोगे, आहारो णियमा छद्दिसिं; ओसन्नं कारणं पडुच्चं वण्णओ हालिद्दसुक्किलाइं जाव आहारमाहरेंति। उववाओ तिरियमणुस्सेहिं, ठिती जहन्नेण दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, दुविहा वि मरंति, उव्वट्टित्ता नो नेरइएसु गच्छंति तिरियमणुस्सेसु जहासंभव, नो देवेसु गच्छति, दुगतिआ, दुआगतिआ परित्ता असखेज्जा पण्णत्ता समणाउसो, से तं देवा; से त पंचेंदिया; से तं ओराला तसा पाणा।

[४२] देव क्या हैं ?

देव चार प्रकार के हैं, यथा—भवनवासी, वानव्यतर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

भवनवासी देव क्या है ?

भवनवासी देव दस प्रकार के कहे गये है—

असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार।

वाणमन्तर क्या है ?

(प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार) देवो के भेद कहने चाहिए। यावत् वे संक्षेप से पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो प्रकार के हैं।

उनके तीन शरीर होते हैं—वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

अवगाहना दो प्रकार की होती है—भवधारणीय और उत्तरवैक्रियिकी। इनमे जो भवधारणीय है वह जघन्य से अंगुल का असंख्यातवा भाग और उत्कृष्ट सात हाथ की है। उत्तरवैक्रियिकी जघन्य से अगुल का सख्यातवां भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन की है।

देवो के शरीर छह सहननो मे से किसी सहनन के नही होते हैं, क्योकि उनमे न हड्डी होती है न शिरा (धमनी नाड़ी) और न स्नायु (छोटी नसें) हैं, इसलिए संहनन नही होता। जो पुद्गल

इष्ट कात यावत् मन को आह्लादकारी होते है उनके शरीर रूप मे एकत्रित हो जाते है—परिणत हो जाते है।

भगवन्! देवो का सस्थान क्या है?

गौतम! सस्थान दो प्रकार के है—भवधारणीय और उत्तरवैक्रियिक। उनमे जो भवधारणीय है वह समचतुरस्रसस्थान है और जो उत्तरवैक्रियिक है वह नाना आकार का है।

देवो मे चार कषाय, चार सज्ञाएँ, छह लेश्याएँ, पाच इन्द्रिया, पाच समुद्घात होते है। वे सज्ञी भी है और असज्ञी भी है। वे स्त्रीवेद वाले, पुरुषवेद वाले हैं, नपुसकवेद वाले नही हैं। उनमे पाच पर्याप्तिया और पाच अपर्याप्तिया होती है। उनमे तीन दृष्टिया, तीन दर्शन होते हैं। वे ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियम से तीन ज्ञान वाले हैं और अज्ञानी हैं वे भजना से तीन अज्ञान वाले हैं। उनमे साकार अनाकार दोनो उपयोग पाये जाते हैं। उनमे तीनो योग होते है। उनका आहार नियम से छहो दिशाओ के पुद्गलो को ग्रहण करना है। प्राय करके पीले और सफेद शुभ वर्ण के यावत् सुभगध, शुभरस, शुभस्पर्श वाले पुद्गलो का आहार करते हैं।

वे तिर्यच और मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं। उनकी स्थिति जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। वे मारणातिकसमुद्घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

वे वहाँ से च्युवित होकर नरक मे उत्पन्न नही होते, यथासम्भव तिर्यंचो मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं, देवो मे उत्पन्न नही होते। इसलिए वे दो गति वाले, दो आगति वाले, प्रत्येकशरीरी और असंख्यात कहे गये है। हे आयुष्मन् श्रमण! यह देवो का वर्णन हुआ। इसके साथ हो पचेन्द्रिय का वर्णन हुआ और साथ ही उदार त्रसो का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन—प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार देवो के भेद-प्रभेद जानने चाहिए, वह इस प्रकार है—

देव चार प्रकार के है—१ भवनवासी, २ वाणव्यतर, ३ ज्योतिष्क और ४ वैमानिक।

भवनवासी—जो देव प्राय भवनो मे निवास करते है वे भवनवासी कहलाते है। यह नागकुमार आदि की अपेक्षा से समझना चाहिए। असुरकुमार प्राय आवासो मे रहते है और कदाचित् भवनो मे भी रहते है। नागकुमार आदि प्राय भवनो मे रहते है और कदाचित् आवासो मे रहते है।

भवन और आवास का अन्तर स्पष्ट करते हुए वृत्तिकार ने लिखा है कि भवन बाहर से गोलाकार और अन्दर से समचौरस होते है और नीचे कमल की कर्णिका के आकार के होते है। जबकि आवास कायप्रमाण स्थान वाले महामण्डप होते है, जो अनेक मणिरत्नो से दिशाओ को प्रकाशित करते हैं।

भवनवासी देवो के दस भेद है—१ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ सुपर्णकुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७ उदधिकुमार, ८ दिशाकुमार ९ पवनकुमार और १० स्तनितकुमार। इनके प्रत्येक के दो-दो भेद है—पर्याप्त और अपर्याप्त। ये कुमारो के समान विभूषाप्रिय, क्रीडा-परायण, तीव्र अनुराग वाले और सुकुमार होते हैं अतएव ये 'कुमार' कहे जाते हैं।

वाणव्यन्तर—'वि' अर्थात् विविध प्रकार के 'अन्तर' अर्थात् आश्रय जिनके हो वे व्यन्तर है। भवन, नगर और आवासो मे—विविध जगहो पर रहने के कारण ये देव व्यन्तर कहलाते हैं। व्यन्तरो

के भवन रत्नप्रभापृथ्वी के प्रथम रत्नकाण्ड मे ऊपर-नीचे सौ-सौ योजन छोड़कर शेष आठ सौ योजन प्रमाण मध्य भाग मे हैं। इनके नगर तिर्यग्लोक मे भी हैं और इनके आवास तीनो लोको मे हैं। अथवा जो वनो के विविध पर्वतान्तरो, कदरान्तरो आदि आश्रयो मे रहते हैं वे वाणव्यन्तर देव है।

वाणव्यन्तरो के आठ भेद है—किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिचाश। इनके प्रत्येक के दो-दो भेद है—पर्याप्त और अपर्याप्त।

ज्योतिष्क—जो जगत् को द्योतित—प्रकाशित करते है वे ज्योतिष्क कहलाते है अर्थात् विमान। जो ज्योतिष् विमानो मे रहते है वे ज्योतिष्क देव है। अथवा जो अपने अपने मुकुटो मे रहे हुए चन्द्रसूर्यादि मण्डलो के चिह्नो से प्रकाशमान है वे ज्योतिष्क देव है। इनके पाँच भेद है—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा। इनके भी दो भेद है—पर्याप्त और अपर्याप्त।

वैमानिक—जो ऊर्ध्वलोक के विमानो मे रहते है वे वैमानिक है। ये दो प्रकार के है—कल्पोपन्न और कल्पातीत। कल्पोपन्न का अर्थ है—जहाँ कल्प-आचार-मर्यादा हो अर्थात् जहाँ इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि की मर्यादा और व्यवहार हो, वे कल्पोपपन्न है। जहाँ उक्त व्यवहार या मर्यादा न होवे वे कल्पातीत हैं।

कल्पोपन्न के वारह भेद है—१ सौधर्म, २ ईशान, ३ सानत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ आनत, १० प्राणन, ११ आरण और १२ अच्युत। इनके प्रत्येक के दो-दो भेद है—पर्याप्त और अपर्याप्त।

कल्पातीत देव दो प्रकार के हैं—ग्रैवेयक और अनुत्तरोपपातिक। ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के है—१ अधस्तन-अधस्तन, २ अधस्तन-मध्यम, ३ अधस्तन-उपरिम, ४ मध्यम-अधस्तन, ५ मध्यम-मध्यम, ६ मध्यम-उपरिम, ७ उपरिम-अधस्तन, ८ उपरिम-मध्यम और ९ उपरिम-उपरिम। इनके भी पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो भेद हैं।

अनुत्तरोपपातिक देवो के ५ भेद है—१ विजय, २ वैजयत, ३ जयंत, ४ अपराजित और ५ सर्वार्थसिद्ध। इनके भी प्रत्येक के दो भेद है—पर्याप्त और अपर्याप्त।

देवो मे जो पर्याप्त, अपर्याप्त का भेद बताया है उसमे अपर्याप्तत्व अपर्याप्तनामकर्म के उदय से नही समझना चाहिए। किन्तु उत्पत्तिकाल में ही अपर्याप्तत्व समझना चाहिए। सिद्धान्त मे कहा है—नारक, देव, गर्भज तिर्यंच, मनुष्य और असख्यात वर्ष की आयु वाले उत्पत्ति के समय ही अपर्याप्त होते है।[1]

देवो की शरीरादि २३ द्वारो की अपेक्षा निम्न प्रकार की वक्तव्यता है—

शरीरद्वार—देवो के तीन शरीर होते है—वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

अवगाहनाद्वार—भवधारणीय अवगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट सात हाथ प्रमाण है।

उत्तरवैक्रियिकी जघन्य से अगुल का सख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से एक लाख योजन।

---

१ नारयदेवातिरियमणुय गब्भजा जे असखवासाऊ।
एए उ अपज्जत्ता, उववाए चेव बोद्धव्वा॥

सहननद्वार—छहो सहननो मे से एक भी सहनन नही होता, क्योकि अस्थियो की रचना विशेष को सहनन कहते है और देवो के शरीर मे न अस्थि है, न शिरा है और न स्नायु है। अतएव वे असहननी हैं।

किन्तु जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मन को सतुष्ट करने वाले नरम और कमनीय होते हैं, वे पुद्गल उनके शरीररूप मे एकत्रित हो जाते हैं—परिणत हो जाते हैं।

संस्थानद्वार—भवधारणीय सस्थान तो समचौरस सस्थान है और उत्तरवैक्रिय नाना प्रकार का होता है, क्योकि वे इच्छानुसार आकार बना सकते है।

कषाय—चारो कषाय होते हैं।
संज्ञा—चारो सज्ञाएँ होती हे।
लेश्या—छहो लेश्याएँ होती है।
इन्द्रिय—पाचो इन्द्रिया होती हैं।

समुद्घात—पाच समुद्घात होते है—वैक्रिय, कषाय, मारणातिक, वैक्रिय और तैजस समुद्घात।

संज्ञीद्वार—ये सज्ञी भी होते हैं और असंज्ञी भी होते हैं। जो गर्भव्युत्क्रान्तिक मर कर देव होते है वे सज्ञी हैं और जो सम्मूर्छिमो से आकर उत्पन्न होते हैं वे असज्ञी कहलाते है।

वेदद्वार—ये स्त्रीवेदी और पुवेदी होते हैं। नपुसकवेद वाले नही होते।
पर्याप्तिद्वार, दृष्टिद्वार और दर्शनद्वार—नैरयिको की तरह।

ज्ञानद्वार—ये ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी है। जो ज्ञानी है वे नियम से तीन ज्ञान वाले हैं—मति, श्रुत और अवधि। जो अज्ञानी हैं उनमे कोई दो अज्ञान वाले हैं और कोई तीन अज्ञान वाले हैं। जो तीन अज्ञान वाले हैं वे मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान वाले हैं। जो दो अज्ञान वाले हैं वे—मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान वाले हैं। जो असज्ञियो से आकर उत्पन्न होते हैं, उनकी अपेक्षा से दो अज्ञान होते है। यह भजना का तात्पर्य है।

उपयोग और आहारद्वार—नैरयिकवत् जानना चाहिए। अर्थात् साकार और अनाकार दोनो तरह से उपयोग होते हैं। छहो दिशाओ से आहार ग्रहण करते हैं।

उपपातद्वार—सज्ञीपचेन्द्रिय, असंज्ञीपचेन्द्रिय तिर्यच और गर्भज मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते हैं, शेष जीवस्थानो से नही।

स्थितिद्वार—इनकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है।

समवहतद्वार—मारणातिकसमुद्घात से समवहत होकर भी मरते है और असमवहत होकर भी।

च्यवनद्वार—ये देव मरकर पृथ्वी, पानी, वनस्पतिकाय मे, गर्भज और सख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं। शेष जीवस्थान मे नही जाते।

गति-आगतिद्वार—इसलिए वे दो गति मे जाने वाले और दो गति से आने वाले हैं।

हे आयुष्मन् श्रमण ! ये देव प्रत्येकशरीरी हैं और असख्यात हैं ।

इस प्रकार देवो का वर्णन हुआ । इसके साथ पचेन्द्रियो का वर्णन पूरा हुआ और साथ ही उदार त्रसो की वक्तव्यता पूर्ण हुई ।

आगे के सूत्र मे स्थावरभाव और त्रसभाव की भवस्थिति का प्रतिपादन करते हुए सूत्रकार कहते है—

भवस्थिति का प्रतिपादन

४३ थावरस्स णं भंते ! केवइय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता ।

तसस्स णं भंते ! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

थावरे ण भते ! थावरे ति कालओ केवच्चिर होइ ?

जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणत काल अणंताओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ कालओ । खेत्तओ अणंता लोया असंखेज्जा पुग्गलपरियट्टा । ते णं पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो ।

तसे णं भंते ! तसे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ ?

जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखेज्जकालं असंखेज्जाओ उस्सप्पिणीओ अवसप्पिणीओ कालओ । खेत्तओ असंखेज्जा लोगा ।

थावरस्स णं भंते ! केवतिकालं अंतरं होइ ?

जहा तससंचिट्ठणाए ।

तसस्स णं भंते ! केवइकालं अंतरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

एएसि णं भंते ! तसाणं थावराण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसा, थावरा अणंतगुणा ।

से तं दुविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ।

दुविहपडिवत्ती समत्ता ।

[४३] भगवन् ! स्थावर की कालस्थिति (भवस्थिति) कितने समय की कही गई है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से बावीस हजार वर्ष की है ।

भगवन् ! त्रस की भवस्थिति कितने समय की कही है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से तेतीस सागरोपम की कही है ।

भते ! स्थावर जीव स्थावर के रूप मे कितने काल तक रह सकता है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अनतकाल तक—अनन्त उत्सर्पिणी

अवसर्पिणियों तक। क्षेत्र से अनन्त लोक, असख्येय पुद्गलपरावर्त तक। आवलिका के असख्यातवे भाग मे जितने समय होते हैं उतने पुद्गलपरावर्त तक स्थावर स्थावररूप मे रह सकता है।

भते! त्रस जीव त्रस के रूप मे कितने काल तक रह सकता है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो तक। क्षेत्र से असख्यात लोक।

भगवन्! स्थावर का अन्तर कितना है?

गौतम! जितना उनका संचिट्ठणकाल है अर्थात् असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल से; क्षेत्र से असख्येय लोक।

भगवन्! त्रस का अन्तर कितना है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल।

भगवन्! इन त्रसो और स्थावरो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे थोडे त्रस है। स्थावर जीव उनसे अनन्तगुण है।

यह दो प्रकार के ससारी जीवो की प्ररूपणा हुई।

यह द्विविध प्रतिपत्ति नामक प्रथम प्रतिपत्ति पूर्ण हुई।

विवेचन—इस सूत्र मे त्रस और स्थावर जीवो की भवस्थिति, कायस्थिति, अन्तर और अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया है।

स्थावर जीवो की भवस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से बावीस हजार वर्ष की कही है। यह स्थिति पृथ्वीकाय को लेकर समझना चाहिए, क्योकि अन्य स्थावरकाय को उत्कृष्ट भवस्थिति इतनी सभव नही है।

त्रसकाय की जघन्य भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से तेतीस सागरोपम की कही है। यह देवो और नारको की अपेक्षा से समझना चाहिए। अन्य त्रसो की इतनी उत्कृष्ट भवस्थिति नही होती।

कायस्थिति का अर्थ है—पुन. पुन उसी काय मे जन्म लेने पर उन भवो की कालगणना। जैसे स्थावरकाय वाला जितने समय तक स्थावर के रूप मे जन्म लेता रहता है, वह सब काल उसकी कायस्थिति समझनी चाहिए।

स्थावर जीव की कायस्थिति कितनी है? इसका अर्थ यह है कि स्थावर जीव कितने समय तक स्थावर के रूप मे लगातार जन्म लेता रहता है।

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है कि जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अनन्त काल तक स्थावर स्थावर के रूप मे जन्म-मरण करता रहता है। इस अनन्तकाल को काल और क्षेत्र की अपेक्षा से स्पष्ट किया गया है। काल से अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल तक स्थावर स्थावर के रूप मे रह सकता है। क्षेत्र की अपेक्षा से इस अनन्तता को इस प्रकार समझाया गया है कि अनन्त लोको मे जितने आकाश-प्रदेश है उन्हे प्रतिसमय एक-एक का अपहार करने से जितना समय लगता है वह समय अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीमय है। इसी अनन्तता को पुद्गलपरावर्त के मान से बताते हुए कहा गया है कि असख्येय पुद्गलपरावर्तो (क्षेत्रपुद्गलपरावर्तो) मे जितनी उत्सर्पिणिया-

अवसर्पिणियां होती हैं, उतनी अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी तक स्थावर के रूप मे रह सकता है। पुद्गलपरावर्तों की असख्येयता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि आवलिका के असख्यातवे भाग मे जितने समय होते हैं उतने पुद्गलपरावर्त जानने चाहिए।

इतना कालमान वनस्पतिकाय की अपेक्षा से समझना चाहिए, पृथ्वीकाय-अप्काय की अपेक्षा से नही। क्योकि पृथ्वीकाय अप्काय की उत्कृष्ट कायस्थिति असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है। प्रज्ञापनासूत्र मे यह बात स्पष्ट की गई है। यह वनस्पतिकायस्थिति काल साव्यवहारिक जीवो की अपेक्षा से समझना चाहिए। असाव्यवहारिक जीवो की कायस्थिति को अनादि समझना चाहिए। जैसा कि विशेषणवती ग्रन्थ मे कहा गया है—'ऐसे अनत जीव हैं जिन्होने त्रसत्व को पाया ही नही है। जो निगोद मे रहते हैं वे जीव अनन्तानन्त है।'[1] कतिपय असव्यवहार राशि वाले जीवो की कायस्थिति अनादि-अनन्त है। अर्थात् वे अव्यवहार राशि से निकल कर कभी व्यवहार राशि मे आवेंगे ही नही। कतिपय असव्यवहारराशि वाले जीव ऐसे हैं जिनकी कायस्थिति अनादि किन्तु अन्त वाली है अर्थात् वे व्यवहारराशि मे आ सकते हैं। जैसाकि जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषणवती मे कहा है कि 'संव्यवहारराशि से जितने जीव सिद्ध होते हैं, अनादि वनस्पतिराशि से उतने ही जीव व्यवहारराशि में आ जाते हैं।'[2]

त्रसजीव त्रसरूप मे कितने समय तक रह सकते हैं, इसका उत्तर दिया गया है कि जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से असख्येय काल तक। उस असख्येय काल को काल और क्षेत्र से स्पष्ट किया गया है। काल से असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तक और क्षेत्र से असंख्यात लोको मे जितने आकाश-प्रदेश हैं उनका प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार करने में जितनी उत्सर्पिणी-अवसर्पिणिया लगती है, उतने काल तक त्रसजीव त्रस के रूप में रह सकता है। इतनी कायस्थिति गतित्रस—तेजस्काय और वायुकाय की अपेक्षा से ही सम्भव है, लब्धित्रस की अपेक्षा से नही। लब्धित्रस की उत्कर्ष से कायस्थिति कतिपय वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम की ही है।

अन्तर—स्थावर जीव के स्थावरत्व को छोडने के बाद फिर कितने समय बाद वह पुन स्थावर बन सकता है? इसके उत्तर में कहा गया है कि असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल से और क्षेत्र से असख्यात लोक का अन्तर पडता है। इतना अन्तर तेजस्काय, वायुकाय मे जाने की अपेक्षा से सम्भव है। अन्यत्र जाने पर इतना अन्तर सम्भव नही है।

त्रसकाय के त्रसत्व को छोडने के बाद कितने समय बाद पुन त्रसत्व प्राप्त हो सकता है? इसके उत्तर मे कहा गया है कि उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल जितना अन्तर है। अर्थात् उत्कृष्ट से अनन्त-अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियो का और क्षेत्र से अनन्त लोक का अन्तर पड़ता है। इसकी

---

१ अत्थि अणता जीवा, जेहिं न पत्तो तसाइपरिणामो।
तेवि अणताणता निगोयवास अणुवसति॥ —विशेषणवती

२ सिज्झति जत्तिया किर इह सववहारजीवरासिमज्झाओ।
इति अणाइवणस्सइरासीओ तत्तिया तमि॥ —विशेषणवती

स्पष्टता ऊपर की जा चुकी है। इतना अन्तर वनस्पतिकाय मे जाने पर ही सम्भव है, अन्यत्र जाने पर नही।

अल्पबहुत्व मे सबसे थोडे त्रस जीव है क्योकि वे असख्यात हैं। उनसे स्थावर अनन्तगुण हैं, क्योकि वे अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्त हैं।

इस प्रकार दो प्रकार के ससारी जीवो की प्रतिपत्ति का वर्णन हुआ। यह दो प्रकार के जीवो की प्रतिपत्तिरूप प्रथम प्रतिपत्ति का प्रतिपादन हुआ।

॥ प्रथम प्रतिपत्ति पूर्ण ॥

□□

त्रिविधाख्या द्वितीय प्रतिपत्ति

प्रथम प्रतिपत्ति मे दो प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो का प्रतिपादन किया गया। अब क्रमप्राप्त द्वितीय प्रतिपत्ति मे तीन प्रकार के ससारप्रतिपन्नक जीवो का प्रतिपादन अपेक्षित है। अतएव त्रिविधा नामक द्वितीय प्रतिपत्ति का आरम्भ किया जाता है, जिसका यह आदि सूत्र है—

तीन प्रकार के संसारसमापन्नक जीव

४४. तत्थ जे ते एवमाहंसु—तिविधा संसार-समावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तंजहा—

इत्थी पुरिसा णपुंसका।

[४४] (पूर्वोक्त नौ प्रतिपत्तियो मे से) जो कहते है कि ससारसमापन्नक जीव तीन प्रकार के हैं, वे ऐसा कहते हैं कि ससारसमापन्नक जीव तीन प्रकार के हैं—१ स्त्री, २ पुरुष और ३ नपुसक।

विवेचन—प्रथम प्रतिपत्ति मे त्रस और स्थावर के रूप मे दो प्रकार के संसारसमापन्नक जीवो का निरूपण कर २३ द्वारो के द्वारा विस्तार के साथ उनकी विवेचना की गई है। अब इस दूसरी प्रतिपत्ति मे तीन प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो का वर्णन करना अभिप्रेत है। पूर्व में कहा गया है कि ससारसमापन्नक जीवो के विषय में विवक्षाभेद को लेकर नौ प्रतिपत्तियां हैं। ये सब प्रतिपत्तियां भिन्न-भिन्न रूप वाली होते हुए भी अविरुद्ध और यथार्थ हैं। विवक्षाभेद के कारण भेद होते हुए भी वस्तुत ये सब प्रतिपत्तिया सत्य तत्त्व के विविध रूपो का ही प्रतिपादन करती हैं।

जो प्ररूपक तीन प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो की प्ररूपणा करते हैं, वे कहते हैं कि ससारसमापन्नक जीव तीन प्रकार के हैं—१ स्त्री, २ पुरुष और ३ नपुंसक। यह भेद वेद को लेकर किया गया है। जब ससारी जीवो का वर्णन वेद की दृष्टि से किया जाता है, तब उनके तीन भेद हो जाते हैं। सब प्रकार के ससारी जीवो का समावेश वेद की दृष्टि से इन तीन भेदो मे हो जाता है। अर्थात् जो भी ससारी जीव हैं वे या तो स्त्रीवेद वाले हैं या पुरुषवेद वाले हैं या नपुसकवेद वाले है। वे अवेदी नही है।

वेद का अर्थ है—रमण की अभिलाषा। नोकषायमोहनीय के उदय से वेद की प्रवृत्ति होती है।

स्त्रीवेद—जिस कर्म के उदय से पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा हो, उसे स्त्रीवेद कहते हैं। स्त्रीवेद का वाह्य चिह्न योनि, स्तन आदि है। स्त्रियो मे मृदुत्व की प्रधानता होती है, अतः उन्हे कठोर-भाव की अपेक्षा रहती है। स्त्रीवेद का विकार करीषाग्नि (छाणे की अग्नि) के समान है, जो जल्दी प्रकट भी नही होता और जल्दी शान्त भी नही होता। व्यवहार (स्थूल) दृष्टि से

स्त्रीत्व के सात लक्षण माने गये हैं—१ योनि, २ मृदुत्व, ३ अस्थैर्य, ४ मुग्धता, ५ अबलता, ६ स्तन और ७ पुस्कामिता (पुरुष के साथ रमण की अभिलाषा) ।[1]

पुरुषवेद—जिस कर्म के उदय से स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा हो उसे पुरुषवेद कहते हैं। पुरुषवेद का वाह्य चिह्न लिंग, श्मश्रु-केश आदि है। पुरुष मे कठोर भाव की प्रधानता होती है अत उसे कोमल तत्त्व की अपेक्षा रहती है। पुरुषवेद का विकार तृण की अग्नि के समान है जो शीघ्र प्रदीप्त हो जाती है और शीघ्र शान्त हो जाती है। स्थूल दृष्टि से पुरुष के सात लक्षण कहे गये है—१ मेहन (लिंग), २ कठोरता, ३ दृढता, ४ शूरता, ५ श्मश्रु (दाढी-मूछ), ६ धीरता और ७ स्त्रीकामिता ।[2]

नपुंसकवेद—स्त्री और पुरुष दोनो के साथ रमण करने की अभिलाषा जिस कर्म के उदय से हो वह नपुसकवेद है। नपुसक मे स्त्री और पुरुष दोनो के मिले-जुले भाव होते हैं। नपुसक की कामाग्नि नगरदाह या दावानल के समान होती है जो बहुत देर से शान्त होती है। नपुसक मे स्त्री और पुरुष दोनो के चिह्नो का सम्मिश्रण होता है।[3] नपुसक मे दोनो—मृदुत्व और कठोरत्व का मिश्रण होने से उसे दोनो—स्त्री और पुरुष की अपेक्षा रहती है।

नारक जीव नपुसकवेद वाले ही होते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय जीव और असज्ञी पचेन्द्रिय नपुसकवेद वाले ही होते हैं। सब सम्मूर्छिम जीव नपुसकवेदी होते है। गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्यो मे तीनो वेद पाये जाते है। देवो मे स्त्रीवेद और पुरुषवेद ही होता है, नपुसकवेद नही होता। उक्त तीनो वेदो मे सब ससारी जीवो का समावेश हो जाता है। वेदमोहनीय की उपशमदशा मे उसकी सत्ता मात्र रहती है, उदय नही रहता। वेद का सर्वथा क्षय होने पर अवेदी-अवस्था प्राप्त हो जाती है।

स्त्रियों का वर्णन

४५ [१] से किं त इत्थीओ ?

इत्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

१. तिरिक्खजोणियाओ, २ मणुस्सित्थीओ, ३ देवित्थिओ।

से किं त तिरिक्खजोणिणित्थीओ ?

तिरिक्खजोणिणित्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तजहा—

१ जलयरीओ, २ थलयरीओ, ३ खहयरीओ।

---

१ योनिर्मृदुत्वमस्थैर्यं मुग्धताऽवलता स्तनौ ।
पुस्कामितेति चिह्नानि सप्त स्त्रीत्वे प्रचक्षते ।। —मलयगिरिवृत्ति

२ मेहन खरता दार्ढ्यं, शौण्डीर्यं श्मश्रु धृष्टता ।
स्त्रीकामितेति लिंगानि सप्त पुस्त्वे प्रचक्षते ।। —मलयगिरिवृत्ति

३ स्तनादिश्मश्रुकेशादि भावाभावसमन्वित ।
नपुंसक बुधा प्राहुर्मोहानलसुदीपितम् ।। —मलयगिरिवृत्ति

से किं तं जलयरीओ ?

जलयरीओ पंचविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

मच्छीओ जाव सुंसुमारीओ।

से किं तं थलयरीओ ?

थलयरीओ दुविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

चउप्पदीओ य परिसप्पीओ य।

से किं तं चउप्पदीओ ?

चउप्पदीओ चउव्विहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

एगखुरीओ जाव सणप्फईओ।

से किं तं परिसप्पीओ ?

परिसप्पीओ दुविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

उरपरिसप्पीओ य भुजपरिसप्पीओ य।

से किं तं उरपरिसप्पीओ ?

उरपरिसप्पीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

१. अहीओ, २. अयगरीओ, ३. महोरगीओ। से त्तं उरपरिसप्पीओ।

से किं तं भुयपरिसप्पीओ ?

भुयपरिसप्पीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

गोहीओ, णउलीओ, सेधाओ, सेलीओ सरडीओ, सेरंधीओ[1], ससाओ, खाराओ, पंचलोइयाओ, चउप्पइयाओ, मूसियाओ, मंगुसियाओ, घरोलियाओ, गोल्हियाओ, जोह्लियाओ, विरसिरालियाओ, से त्तं भयपरिसप्पीओ।

से किं तं खहयरीओ ?

खहयरीओ चउव्विहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

चम्मपक्खिणीओ जाव विययपक्खिणीओ, से त्तं खहयरीओ, से तं तिरिक्खजोणियाओ।

[४५] स्त्रियाँ कितने प्रकार की हैं ?

स्त्रियाँ तीन प्रकार की कही गई हैं, यथा—१ तिर्यंचयोनिकस्त्रियां, २ मनुष्यस्त्रियां और ३ देवस्त्रियां।

तिर्यंचयोनिक स्त्रिया कितने प्रकार की है ?

---

१. यहाँ अनेक वाचना-भेद दृष्टिगोचर होते हैं। आगमोदय समिति से प्रकाशित प्रति मे 'सरडीओ सेरधिओ गोहीओ णउलीओ सेधाओ सण्णाओ सरडीओ सेरधीओ, भावाओ खाराओ पवण्णइयाओ चउप्पइयाओ मूसियाओ इस प्रकार पाठ दिया गया है। कई वाचनाओ मे गोहीओ जाव विरचिरालिया' पाठ है।

—सम्पादक

तिर्यंचयोनिक स्त्रिया तीन प्रकार की हैं। जैसे कि—१ जलचरी, २ स्थलचरी और ३ खेचरी।

जलचरी स्त्रिया कितने प्रकार की हैं ?

जलचरी स्त्रिया पाच प्रकार की हैं। यथा—मत्स्यी यावत् सुसुमारो।

स्थलचरी स्त्रिया कितने प्रकार की हैं ?

स्थलचरी स्त्रिया दो प्रकार की हैं—चतुष्पदी और परिसर्पी।

चतुष्पदी स्त्रिया कितने प्रकार की हैं ?

चतुष्पदी स्त्रिया चार प्रकार की हैं। यथा—एकखुर वाली यावत् सनखपदी।

परिसर्पी स्त्रिया कितने प्रकार की है ?

परिसर्पी स्त्रिया दो प्रकार की हैं। यथा—उरपरिसर्पी और भुजपरिसर्पी।

उरपरिसर्पी स्त्रिया कितने प्रकार की हैं ?

उरपरिसर्पी स्त्रियां तीन प्रकार की है। यथा—१ अहि, २ अजगरी और ३ महोरगी। यह उरपरिसर्पी स्त्रियो का कथन हुआ।

भुजपरिसर्पी स्त्रिया कितने प्रकार की हैं ?

भुजपरिसर्पी स्त्रिया अनेक प्रकार की कही गई हैं, यथा—गोधिका, नकुली, सेधा, सेला, सरटी (गिरगिटी), शशकी, खारा, पंचलौकिक, चतुष्पदिका, मूषिका, मुगुसिका (टाली), घरोलिया (छिपकली), गोल्हिका, योधिका, वीरचिरालिका आदि भुजपरिसर्पी स्त्रिया हैं।

खेचरी स्त्रियां कितने प्रकार की हैं ?

खेचरी स्त्रिया चार प्रकार की है। यथा—चर्मपक्षिणी यावत् विततपक्षिणी। यह खेचरी स्त्रियो का वर्णन हुआ। इसके साथ ही तिर्यंचस्त्रियो का वर्णन भी पूरा हुआ।

[२] से किं तं मणुस्सित्थीओ ?

मणुस्सित्थीओ तिविहाओ पण्णत्ताओ, तजहा—

१. कम्मभूमियाओ, २. अकम्मभूमियाओ, ३. अंतरदीवियाओ।

से किं तं अंतरदीवियाओ ?

अंतरदीवियाओ अट्ठावीसइविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

एगोरुइयाओ आभासियाओ जाव सुद्धदंतीओ। से त्तं अंतरदीवियाओ।

से किं तं अकम्मभूमियाओ ?

अकम्मभूमियाओ तीसविहाओ पण्णत्ताओ तंजहा—

पंचसु हेमवएसु, पंचसु एरण्णवएसु, पंचसु हरिवासेसु, पंचसु रम्मगवासेसु, पंचसु देवकुरासु, पंचसु उत्तरकुरासु। से त्तं अकम्मभूमियाओ।

से किं तं कम्मभूमियाओ ?

कम्मभूमियाओ पण्णरसविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

पंचसु भरतेसु, पंचसु एरवएसु, पंचसु महाविदेहेसु । से त्तं कम्मभूमिगमणुस्सीओ । से त्तं मणुस्सित्थीओ ।

मनुष्य स्त्रिया कितने प्रकार की हैं ?

मनुष्य स्त्रियां तीन प्रकार की कही गई हैं—कर्मभूमिजा, अकर्मभूमिजा और अन्तर्द्वीपजा ।

अन्तर्द्वीपजा स्त्रियां कितने प्रकार की हैं ?

अन्तर्द्वीपजा स्त्रियां अट्ठावीस प्रकार की हैं, यथा—

एकोरुकद्वीपजा, आभाषिकद्वीपजा यावत् शुद्धदंतद्वीपजा । यह अन्तर्द्वीपजा स्त्रियों का वर्णन हुआ ।

अकर्मभूमिजा स्त्रिया कितने प्रकार की हैं ?

अकर्मभूमिजा स्त्रिया तीस प्रकार की है । यथा—

पाच हैमवत मे उत्पन्न, पाच एरण्यवत मे उत्पन्न, पाच हरिवर्ष मे उत्पन्न, पांच रम्यकवर्ष मे उत्पन्न, पाच देवकुरु मे उत्पन्न, पांच उत्तरकुरु मे उत्पन्न । यह अकर्मभूमिजा स्त्रियो का वर्णन हुआ ।

कर्मभूमिजा स्त्रिया कितने प्रकार की हैं ?

कर्मभूमिजा स्त्रियां पन्द्रह प्रकार की हैं । यथा—

पाच भरत मे उत्पन्न, पांच ऐरवत मे उत्पन्न और पांच महाविदेहो मे उत्पन्न । यह कर्मभूमिजा स्त्रियो का वर्णन हुआ । यह मनुष्य स्त्रियो का वर्णन हुआ ।

[३] से किं तं देवित्थियाओ ?

देवित्थियाओ चउव्विहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

१. भवणवासिदेवित्थियाओ, २. वाणमंतरदेवित्थियाओ, ३. जोइसियदेवित्थियाओ, ४. वेमाणियदेवित्थियाओ ।

से किं तं भवणवासिदेवित्थियाओ ?

भवणवासिदेवित्थियाओ दसविहा पण्णत्ता, तंजहा—

असुरकुमारभवणवासिदेवित्थियाओ जाव थणियकुमारभवणवासिदेवित्थियाओ । से तं भवणवासिदेवित्थियाओ ।

से किं तं वाणमंतरदेवित्थियाओ ?

वाणमंतरदेवित्थियाओ अट्ठविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—पिसायवाणमंतरदेवित्थियाओ जाव गंधव्व वाणमंतरदेवित्थीओ, से त्तं वाणमंतरदेवित्थियाओ ।

से किं तं जोइसियदेवित्थियाओ ?

जोइसियदेवित्थियाओ पंचविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

चंदविमाणजोइसियदेवित्थियाओ, सूर० गह० नक्खत्त० ताराविमाणजोइसियदेवित्थियाओ। से त्तं जोइसियाओ।

से किं तं वेमाणियदेवित्थियाओ ?

वेमाणियदेवित्थियाओ दुविहाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—

सोहम्मकप्पवेमाणियदेवित्थियाओ, ईसाणकप्पवेमाणियदेवित्थियाओ [। से त्तं वेमाणियदेवित्थियाओ।

[३] देवस्त्रिया कितने प्रकार की है ?

देवस्त्रिया चार प्रकार की हैं। यथा—

१ भवनपतिदेवस्त्रिया, २ वानव्यन्तरदेवस्त्रिया, ३ ज्योतिष्कदेवस्त्रिया और ४ वैमानिकदेवस्त्रिया।

भवनपतिदेवस्त्रिया कितने प्रकार की है ?

भवनपतिदेवस्त्रिया दस प्रकार की है। यथा—

असुरकुमार-भवनवासी-देवस्त्रिया यावत् स्तनितकुमार-भवनवासी-देवस्त्रिया। यह भवनवासी देवस्त्रियो का वर्णन हुआ।

वानव्यन्तरदेवस्त्रिया कितने प्रकार की हैं ?

वानव्यन्तरदेवस्त्रिया आठ प्रकार की है। यथा—

पिशाचवानव्यन्तरदेवस्त्रिया यावत् गन्धर्ववानव्यन्तरदेवस्त्रिया। यह वानव्यन्तरदेवस्त्रियो का वर्णन हुआ।

ज्योतिष्कदेवस्त्रिया कितने प्रकार की है ?

ज्योतिष्कदेवस्त्रिया पाच प्रकार की हैं। यथा—

चन्द्रविमान-ज्योतिष्क देवस्त्रिया, सूर्यविमान-ज्योतिष्क देवस्त्रिया, ग्रहविमान-ज्योतिष्क देवस्त्रिया, नक्षत्रविमान-ज्योतिष्क देवस्त्रिया और ताराविमान-ज्योतिष्क देवस्त्रिया। यह ज्योतिष्क देवस्त्रियो का वर्णन हुआ।

वैमानिक देवस्त्रिया कितने प्रकार की है ?

वैमानिक देवस्त्रिया दो प्रकार की है। यथा—

सौधर्मकल्प-वैमानिक देवस्त्रिया और ईशानकल्प-वैमानिक देवस्त्रिया। यह वैमानिक देवस्त्रियो का वर्णन हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे स्त्रियो का वर्णन किया गया है। चार गतियो मे से नरकगति मे स्त्रिया नही हैं क्योकि नारक केवल नपुसकवेद वाले ही होते हैं। अतएव शेष तीन गतियो मे—तिर्यंच, मनुष्य और देवगति मे स्त्रिया हैं। इसलिए सूत्र मे कहा गया है कि तीन प्रकार की स्त्रिया हैं—तिर्यंचस्त्री, मनुष्यस्त्री और देवस्त्री। तिर्यंचगति मे भी एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पचेन्द्रिय

तथा सम्मूर्छिम जन्म वाले नपुंसकवेदी होते हैं। अतएव गर्भजतिर्यंचो, गर्भजमनुष्यों मे और देवो मे स्त्रिया होती हैं। इसलिए स्त्रियो के तोन प्रकार कहे गये हैं। तिर्यंचस्त्रियों के तीन भेद हैं, जलचरी, थलचरी और खेचरी। तिर्यंचो के अवान्तर भेद के अनुसार इनकी स्त्रियो के भी भेद जानने चाहिए। इसी तरह मनुष्यस्त्रियो के भी कर्मभूमिका, अकर्मभूमिका और अन्तरद्वीपिका भेद हैं। मनुष्यों के अवान्तर भेदो के अनुसार इनकी स्त्रियो के भी भेद समझने चाहिए। जैसे कर्मभूमिका स्त्रियो के १५, अकर्मभूमिका स्त्रियो के ३० और अन्तरद्वीपिकाओ के २८ भेद समझने चाहिए। भवनपति, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देवो के भेद के अनुसार ही इनकी स्त्रियों के भेद समझने चाहिए। वैमानिक देवो मे केवल पहले सौधर्म देवलोक मे और दूसरे ईशान देवलोक मे ही स्त्रिया हैं। आगे के देवलोको मे स्त्रियां नही हैं। अतएव वैमानिक देवियो के दो भेद बताये हैं—सौधर्मकल्प वैमानिक देवस्त्री और ईशानकल्प वैमानिक देवस्त्री। इस प्रकार स्त्रियों के तीन भेदो का वर्णन किया गया है।

स्त्रियों की भवस्थिति का प्रतिपादन

४६. इत्थीण भंते ! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगेणं आएसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं।

एक्केणं आएसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं।

एक्केणं आएसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं।

एक्केणं आएसेणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पन्नासं पलिओवमाइं।

[४६] हे भगवन् ! स्त्रियों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

गौतम ! एक अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मूहूर्त और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की स्थिति है।

दूसरी अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मूहूर्त और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की स्थिति कही गई है।

तीसरी अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मूहूर्त और उत्कृष्ट सात पल्योपम की स्थिति कही गई है।

चौथी अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मूहूर्त और उत्कृष्ट पचास पल्योपम की स्थिति कही गई है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सामान्य रूप से स्त्रियो की भवस्थिति का प्रतिपादन किया गया है। समुच्चय रूप से स्त्रियो की स्थिति यहाँ चार अपेक्षाओं से बताई गई है। सूत्र में आया हुआ 'आदेश' शब्द प्रकार का वाचक है।[1] प्रकार शब्द अपेक्षा का भी वाचक है। ये चार आदेश (प्रकार) इस प्रकार हैं—

(१) एक अपेक्षा से स्त्रियो की भवस्थिति जघन्य से अन्तर्मूहूर्त है। यह तिर्यंच और मनुष्य-स्त्री की अपेक्षा से जानना चाहिए। अन्यत्र इतनी जघन्य स्थिति नही होती। उत्कृष्ट स्थिति पचपन पल्योपम की है। यह ईशानकल्प की अपरिगृहीता देवी की अपेक्षा से समझना चाहिए।

(२) दूसरी अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मूहूर्त (पूर्ववत्) और उत्कृष्ट नौ पल्योपम। यह ईशान-कल्प की परिगृहीता देवी की अपेक्षा से समझना चाहिए।

(३) तीसरी अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मूहूर्त (पूर्ववत्) और उत्कृष्ट सात पल्योपम। यह सौधर्म-कल्प की परिगृहीता देवी की अपेक्षा से है।

---

१. 'आदेसो त्ति पगारो' इति वचनात्।

(४) चौथी अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त (पूर्ववत्) और उत्कृष्ट पचास पल्योपम। यह सौधर्म कल्प की अपरिगृहीता देवी की अपेक्षा से है।[1]

तिर्यंचस्त्री आदि की पृथक् पृथक् भवस्थिति

४७. [१] तिरिक्खजोणित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

जलयर-तिरिक्ख-जोणित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण पुव्वकोडी।

चउप्पद-थलयर-तिरिक्ख-जोणित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहा तिरिक्खजोणित्थीओ।

उरगपरिसप्प-थलयर-तिरिक्ख-जोणित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसं पुव्वकोडी।

एवं भुयपरिसप्प-थलयर-तिरिक्ख-जोणित्थीणं।

एवं खहयर-तिरिक्खित्थीणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो।

[४७] (१) हे भगवन्! तिर्यक्योनिस्त्रियों की स्थिति कितने समय की कही गई है?
गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से तीन पल्योपम की स्थिति कही गई है।

भगवन्! जलचर तिर्यक्योनिस्त्रियों की स्थिति कितने समय की कही गई है?
गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति कही गई है।

भगवन्! चतुष्पद स्थलचरतिर्यक्स्त्रियों की स्थिति कितनी कही गई है?
गौतम! जैसे तिर्यंचयोनिक स्त्रियों की (औघिक) स्थिति कही है वैसी जानना।

भंते! उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यक्स्त्रियों की स्थिति कितने समय की कही गई है?
गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि।

इसी तरह भुजपरिसर्प स्त्रियों की स्थिति भी समझना।
इसी तरह खेचरतिर्यक्स्त्रियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग है।

मनुष्यस्त्रियों की स्थिति

[२] मणुस्सित्थीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं। धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

---

१ उक्तं च संग्रहण्याम्—
अपरिग्गहेयराण सोहम्मीसाण पलियसाहिय।
उक्कोस सत्त पन्ना नव पणपन्ना य देवीण॥

कम्मभूमय-मणुस्सित्थीणं भते ! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! खित्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं। धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

भरहेरवयकम्मभूभग-मणुस्सित्थीणं भते ! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं। धम्मचरण पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

पुव्वविदेह-अवरविदेहकम्मभूमग-मणुस्सित्थीणं भते ! केवइय कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी। धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

अकम्मभूभग-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं काल ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं ऊणगं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

हेमवय-एरण्णवए जम्मणं पडुच्च जहन्नेण देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं पलिओवमं। सहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

हरिवास-रम्मयवास अकम्मभूभग-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणयाइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

देवकुरु-उत्तरकुरु-अकम्मभूमग-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं काल ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणयाइं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

अंतरदीवग-अकम्मभूमग-मणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणयं, उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं। संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

[४७] (२) हे भगवन् ! मनुष्यस्त्रियो की कितने समय की स्थिति कही गई है ?

गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति है। चारित्रधर्म की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि।

भगवन् ! कर्मभूमि की मनुष्यस्त्रियो की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! क्षेत्र को लेकर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति है और चारित्रधर्म को लेकर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि।

भगवन् ! भरत और एरवत क्षेत्र की कर्मभूमि की मनुष्य स्त्रियो की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति है। चारित्रधर्म की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि ।

भंते ! पूर्वविदेह और पश्चिमविदेह की कर्मभूमि को मनुष्यस्त्रियो की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि । चारित्रधर्म की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि ।

भते ! अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रियो की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! जन्म की अपेक्षा से जघन्य कुछ कम पल्योपम । कुछ कम से तात्पर्य पल्योपम के असंख्यातवे भाग से कम समझना चाहिए । उत्कृष्ट से तीन पल्योपम की स्थिति है । सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि है ।

हेमवत-ऐरण्यवत क्षेत्र की मनुष्यस्त्रियो की स्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य से देशोन पल्योपम अर्थात् पल्योपम के असंख्यावें भाग कम एक पल्योपम की है और सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि है ।

भंते ! हरिवर्ष-रम्यकवर्ष की अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियो की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य से देशोन दो पल्योपम अर्थात् पल्योपम के असख्यातवें भाग कम दो पल्योपम की है और उत्कृष्ट से दो पल्योपम की हैं । महरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि है ।

भते ! देवकुरु-उत्तरकुरु की अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रियो की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य से देशोन तीन पल्योपम की अर्थात् पल्योपम का असख्यातवां भाग कम तीन पल्योपम की है और उत्कृष्ट से तीन पल्योपम की है । सहरण की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि है ।

भते ! अन्तरद्वीपो की अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रियो की स्थिति कितनी कही गई है ।

गौतम ! जन्म की अपेक्षा देशोन पल्योपम का असख्यातवा भाग । यहाँ देशोन से तात्पर्य पल्योपम का असंख्यातवा भाग है । अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम पल्योपम का असख्यातवा भाग उनकी जघन्य स्थिति है, उत्कृष्ट पल्योपम का असख्यातवा भाग है । सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृट देशोनपूर्वकोटि है ।

देवस्त्रियों की स्थिति

[३] देवित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं ।

भवणवासिदेवित्थीणं भंते ?

जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्ध पंचमाइं पलिओवमाइं। एवं असुरकुमार-भवण-वासि-देवित्थियाए, नागकुमार-भवणवासि-देवित्थियाए वि जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेण देसूणाइं पलिओवमाइं, एवं सेसाण वि जाव थणियकुमाराणं।

वाणमंतरीणं जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसं अद्धपलिओवमं।

जोइसियदेवित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं पलिओवमं अट्ठभागं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासाएहिं वाससहस्सेहिं अब्भहियं।

चंदविमाण-जोतिसिय। देवित्थियाए जहन्नेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेण तं चेव।

सूरविमाण-जोतिसिय-देवित्थियाए जहन्नेण चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवम पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं।

गहविमाण-जोतिसिय-देवित्थीणं जहन्नेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

णक्खत्तविमाण-जोतिसिय-देवित्थीणं जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं चउभाग-पलिओवमं साइरेगं।

ताराविमाण-जोतिसिय-देवित्थियाए जहन्नेणं अट्ठभागं पलिओवमं उक्कोसेणं सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं।

वेमाणिय-देवित्थिाए जहन्नेणं पलिओवमं उक्कोसेणं पणपन्नं पलिओवमाइं।

सोहम्मकप्पवेमाणिय-देवित्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं।

ईसाण-देवित्थीणं जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवमं उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं।

[४७] (३) हे भगवन् ! देवस्त्रियों की कितने काल की स्थिति है ?
गौतम ! जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट से पचपन पल्योपम की स्थिति कही गई है।

भगवन् ! भवनवासीदेवस्त्रियों की कितनी स्थिति है ?
गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट साढे चार पल्योपम।

इसी प्रकार असुरकुमार भवनवासी देवस्त्रियों की, नागकुमार भवनवासी देवस्त्रियों की जघन्य दस दजार वर्ष और उत्कृष्ट देशोनपल्योपम की स्थिति जाननी चाहिए। इसी प्रकार शेष रहे सुपर्णकुमार आदि यावत् स्तनितकुमार देवस्त्रियों की स्थिति जाननी चाहिए।

वानव्यन्तरदेवस्त्रियों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष उत्कृष्ट स्थिति आधा पल्योपम की है।

भंते ! ज्योतिष्कदेवस्त्रियों की स्थिति कितने समय की कही गई है ?

गौतम ! जघन्य से पल्योपम का आठवां भाग और उत्कृष्ट से पचास हजार वर्ष अधिक आधा पल्योपम है।

चन्द्रविमान-ज्योतिष्कदेवस्त्रियो की जघन्य स्थिति पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट स्थिति वही पचास हजार वर्ष अधिक आधे पल्योपम की है।

सूर्यविमान-ज्योतिष्कदेवस्त्रियो की स्थिति जघन्य से पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट से पाच सौ वर्ष अधिक आधा पल्योपम है।

ग्रहविमान-ज्योतिष्कदेवस्त्रियो की स्थिति जघन्य से पल्योपम का चौथा भाग, उत्कृष्ट से आधा पल्योपम।

नक्षत्रविमान-ज्योतिष्कदेवस्त्रियो की स्थिति जघन्य से पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट पाव पल्योपम से कुछ अधिक।

ताराविमान-ज्योतिष्कदेवस्त्रियो की जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवा भाग और उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक पल्योपम का आठवा भाग है।

वैमानिकदेवस्त्रियो की जघन्य स्थिति एक पल्योपम है और उत्कृष्ट स्थिति पचपन पल्योपम की है।

भगवन् ! सौधर्मकल्प की वैमानिकदेवस्त्रियो की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! जघन्य से एक पल्योपम और उत्कृष्ट सात पल्योपम की स्थिति है।

ईशानकल्प की वैमानिकदेवस्त्रियो की स्थिति जघन्य से एक पल्योपम से कुछ अधिक और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे तिर्यक्स्त्रियो, मनुष्यस्त्रियो और देवस्त्रियो की कालस्थिति को औधिक रूप से और पृथक् पृथक् रूप से बताया गया है। सर्वप्रथम तिर्यञ्चस्त्रियो की औघिकस्थिति बतलाई गई है। स्थिति दो तरह की है—जघन्य और उत्कृष्ट। जघन्य स्थिति का अर्थ है—कम से कम काल तक रहना और उत्कृष्ट का अर्थ है—अधिक से अधिक काल तक रहना।

तिर्यंचस्त्रियो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की कही गई है। यह उत्कृष्ट स्थिति देवकुरु आदि मे चतुष्पदस्त्री की अपेक्षा से है।

विशेष विवक्षा मे जलचरस्त्रियो की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि की, स्थलचरस्त्रियो की औघिक—अर्थात् तीन पल्योपम की, खेचरस्त्रियो की पल्योपम का असख्येयभाग स्थिति कही गई हैं। (उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि है।) जघन्य स्थिति सबकी अन्तर्मुहूर्त है।

मनुष्यस्त्रियो की स्थिति—मनुष्यस्त्रियो की स्थिति दो अपेक्षाओ से बताई गई है। एक है क्षेत्र को लेकर और दूसरी है धर्माचरण (चारित्र) को लेकर। मनुष्यस्त्रियो की औघिकस्थिति क्षेत्र को लेकर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। यह उत्कृष्ट स्थिति देवकुरु आदि मे तथा भरत आदि क्षेत्र मे एकान्त सुषमादिकाल की अपेक्षा से है।

धर्माचरण (चारित्रधर्म) की अपेक्षा से मनुष्यस्त्रियो की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति देशोनपूर्वकोटि है।

जो चारित्रधर्म की अपेक्षा से मनुष्यस्त्रियो की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त कही गई है वह उसी भव मे परिणामो की धारा वदलने पर चारित्र से गिर जाने की अपेक्षा से समझना चाहिए। कम से कम अन्तर्मुहूर्त काल तक तो चारित्र रहता ही है। किसी स्त्री ने तथाविध क्षयोपशमभाव से सर्व-विरति रूप चारित्र को स्वीकार कर लिया तथा उसी भाव मे कम से कम अन्तर्मुहूर्त वाद वह परिणामो की धारा वदलने से पतित होकर अविरत सम्यग्दृष्टि हो गई या मिथ्यात्वगुणस्थान मे चली गई तो इस अपेक्षा से चारित्रधर्म की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त काल को रही अथवा चारित्र स्वीकार करने के वाद मृत्यु भी हो जाय तो भी अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में अन्तर्मुहूर्तकाल को संभावना है ही।

दूसरी दृष्टि से भी इसकी सगति की जाती है। धर्माचरण से यहाँ देशविरति समझना चाहिए, सर्वविरति नही। देशविरति जघन्य से भी अन्तर्मुहूर्त की ही होती है क्योकि देशविरति के वहुत से भग (प्रकार) हैं। शंका की जा सकती है कि उभयरूप चारित्र की संभावना होते हुए भी देशविरति का ही ग्रहण क्यो किया जाय ? इसका समाधान है कि प्रायः सर्वविरति देशविरति पूर्वक होती है, यह वतलाने के लिए ऐसा ग्रहण किया जा सकता है। वृद्ध आचार्यों ने कहा है कि 'सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् (अधिक से अधिक) पल्योपमपृथक्त्वकाल मे श्रावकत्व की प्राप्ति और चारित्रमोहनीय का उपशम या क्षय सख्यात सागरोपम के पश्चात् होता है।[1]

चारित्रधर्म की उत्कृष्ट स्थिति देशोनपूर्वकोटि कही गई है। आठ वर्ष की अवस्था के पूर्व चारित्र परिणाम नही होते। आठ वर्ष की अवस्था के वाद चारित्र स्वीकार करके उससे गिरे विना चारित्रधर्म का पालन पूर्वकोटि के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त तक करते रहने की अपेक्षा से कहा गया है। आठ वर्ष की अवधि को कम करने से देशोनपूर्वकोटि चारित्रधर्म की दृष्टि से मनुष्यस्त्रियो की स्थिति वताई गई है।

पूर्वकोटि से तात्पर्य एक करोड़ पूर्व से है। पूर्व का परिमाण इस प्रकार है—७० लाख ५६ हजार करोड वर्षों का एक पूर्व होता है (७०,५६०००,००००००० =सत्तर, छप्पन और दस शून्य)।[2]

मनुष्यस्त्रियो की औघिक स्थिति वताने के पश्चात् कर्मभूमिक आदि विशेष मनुष्यस्त्रियो की वक्तव्यता कही गई है। कर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियों की स्थिति क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से तीन पल्योपम है। यह भरत और ऐरवत क्षेत्र मे सुषमसुषम नामक आरक में समझना चाहिए। चारित्रधर्म की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोनपूर्वकोटि है। यह कर्म-भूमि के सामान्य लक्षण को लेकर वक्तव्यता हुई। विशेष की वक्तव्यता इस प्रकार है—भरत और ऐरवत मे तीन पल्योपम की स्थिति सुषमसुषम आरे मे होती है। पूर्व-पश्चिम विदेहों में क्षेत्र से

---

१. सम्मतम्मि उ लद्धे पलिय पुहुत्तेण सावओ होइ।
चरणोवसमखयाणं सागर सखतरा होंति॥

२ पुव्वस्स उ परिमाण सयरिं खलु होंति कोडिलक्खाओ।
छप्पण्णं च सहस्सा वोद्धव्वा वासकोडीण॥

पूर्वकोटि स्थिति है, क्योकि क्षेत्रस्वभाव से इससे अधिक आयु वहाँ नही होती। चारित्रधर्म को लेकर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोनपूर्वकोटि है।

अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियो की स्थिति दो अपेक्षाओ से कही गई है। एक जन्म की अपेक्षा से और दूसरी संहरण की अपेक्षा से। संहरण का अर्थ है—कर्मभूमिज स्त्री को अकर्मभूमि मे ले जाना। जैसे कोई मगध आदि देश से सौराष्ट्र के प्रति रवाना हुआ और चलते-चलते सौराष्ट्र मे पहुँच गया और वहाँ रहने लगा तो तथाविध प्रयोजन होने पर उसे सौराष्ट्र का कहा जाता है, वैसे ही कर्मभूमि से उठाकर अकर्मभूमि मे संहृत की गई स्त्री अकर्मभूमि की कही जाती है। औघिक रूप से जन्म को लेकर जघन्य से अकर्मभूमिज स्त्रियो की स्थिति देशोन (पल्योपम का असख्यातवा भाग कम) एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट से तीन पल्योपम की है। यह हैमवत, हैरण्यवत क्षेत्र की अपेक्षा से समझना चाहिए। क्योकि वहाँ जघन्य से इतनी स्थिति सम्भव है। उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति देवकुरु-उतरकुरु की अपेक्षा से जाननी चाहिए।

संहरण की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि स्थिति है। कर्मभूमि से अकर्मभूमि मे किसी स्त्री का संहरण किया गया हो और वह वहाँ केवल अन्तर्मुहूर्त मात्र जीवित रहे या वहाँ से उसका पुन: संहरण हो जाय, इस अपेक्षा से जघन्य की स्थिति अन्तर्मुहूर्त कही है। यदि वह स्त्री वहाँ पूर्वकोटि आयुष्य वाली हो तो उसकी अपेक्षा देशोनपूर्वकोटि उत्कृष्ट स्थिति बतलाई है।

यह शका हो सकती है कि भरत और एरवत क्षेत्र भी कर्मभूमि मे हैं, वहाँ भी एकान्त सुषमादि काल मे तीन पल्योपम की स्थिति होती है और संहरण भी सम्भव है तो उत्कृष्ट से देशोन-पूर्वकोटि कैसे सगत है? इसका समाधान है कि कर्मभूमि होने पर भी कर्मकाल की विवक्षा से ऐसा कहा गया है। भरत, एरवत क्षेत्र मे एकान्त सुषमादि काल मे भोगभूमि जैसी रचना होती है अत: वह कर्मकाल नही है। कर्मकाल मे तो पूर्वकोटि आयुष्य ही होता है अतएव यथोक्त देशोनपूर्वकोटि सगत है।

हैमवत, हैरण्यवत अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियो की स्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य देशोन पल्योपम (पल्योपम के असख्येय भाग न्यून) है और उत्कर्ष से परिपूर्ण पल्योपम है। संहरण को लेकर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से देशोनपूर्वकोटि है।

हरिवर्ष और रम्यकवर्ष की स्त्रियो की स्थिति जन्म की अपेक्षा पल्योपम का असख्यातवा भाग कम दो पल्योपम की है और उत्कर्ष से परिपूर्ण दो पल्योपम की है। संहरण की अपेक्षा जघन्य एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूवकोटि है।

देवकुरु-उत्तरकुरु मे जन्म की अपेक्षा से पल्योपम के असख्येयभागहीन तीन पल्योपम की जघन्यस्थिति और उत्कृष्टस्थिति परिपूर्ण तीन पल्योपम की है। संहरण की अपेक्षा जघन्य एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि है।

अन्तरद्वीपो की मनुष्यस्त्रियो की स्थिति जन्म की अपेक्षा से जघन्य कुछ कम पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण है और उत्कर्ष से पल्योपम के असख्यातवें भाग प्रमाण है। तात्पर्य यह है कि

उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण आयुष्य से जघन्य आयु पल्योपम का असख्यातवा भाग प्रमाण न्यून है। सहरण की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि है।

देवस्त्रियो की स्थिति—देवस्त्रियो की औघिकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति पचपन पल्योपम की है। भवनपति और व्यन्तर देवियो की अपेक्षा से जघन्य स्थिति का कथन है और ईशान देवलोक की देवी को लेकर उत्कृष्ट स्थिति का विधान किया गया है।

विशेष विवक्षा मे भवनवासी देवियो की सामान्यत दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से साढ़े चार पल्योपम की स्थिति है। यह असुरकुमार देवियो की अपेक्षा से है। यहाँ भी विशेष विवक्षा में असुर-कुमार देवियो की सामान्यत जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट साढे चार पल्योपम, नागकुमार देवियो की जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट देशोनपल्योपम, इसी तरह शेष सुपर्णकुमारी से लगाकर स्तनितकुमारियो की स्थिति जानना चाहिए।

व्यन्तरदेवियों की स्थिति जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से आधा पल्योपम है।

ज्योतिष्कस्त्रियों की जघन्य से पल्योपम का आठवा भाग और उत्कर्ष से पचास हजार वर्ष अधिक आधा पल्योपम है। विशेष विवक्षा मे चन्द्रविमान की स्त्रियों की स्थिति जघन्य से पल्योपम का चौथा भाग और उत्कर्ष से पचास हजार वर्ष अधिक आधा पल्योपम है।

सूर्यविमान की स्त्रियो की स्थिति जघन्य से पल्योपम का चौथा भाग और उत्कर्ष से पांच सौ वर्ष अधिक अर्धपल्योपम है।

ग्रहविमान की देवियो की स्थिति जघन्य से पाव पल्योपम और उत्कर्ष से आधा पल्योपम है।

नक्षत्रविमान की देवियो की स्थिति जघन्य से पाव पल्योपम और उत्कर्ष से पाव पल्योपम से कुछ अधिक।

ताराविमान की देवियो की स्थिति जघन्य से $\frac{१}{८}$ पल्योपम और उत्कर्ष से $\frac{१}{८}$ पल्योपम से कुछ अधिक है।

वैमानिकदेवियो की स्थिति

वैमानिक देवियो की औघिकी जघन्यस्थिति एक पल्योपम की और उत्कर्ष से ५५ पल्योपम की है। विशेष चिन्ता में **सौधर्मकल्प** की देवियो की जघन्यस्थिति एक पल्योपम और उत्कर्ष से सात पल्योपम की है। यह स्थितिपरिमाण परिगृहीता देवियो की अपेक्षा से है। अपरिगृहीता देवियो की जघन्य से एक पल्योपम और उत्कर्ष से ५५ पल्योपम हैं। ईशानकल्प की देवियो की जघन्यस्थिति कुछ अधिक एक पल्योपम और उत्कर्ष से नौ पल्योपम है। यहाँ भी यह स्थितिपरिमाण परिगृहीतादेवियों की अपेक्षा से है। अपरिगृहीता देवियो की जघन्यस्थिति पल्योपम से कुछ अधिक और उत्कर्ष से ५५ पल्योपम की है।

वृत्तिकार ने लिखा है कि कई प्रतियो मे यह स्थितिसम्बन्धी पूरा पाठ पाया जाता है और कई प्रतियो में केवल यह अतिदेश किया गया है—'एवं देवीणं ठिई भाणियव्वा जहा पण्णवणाए जाव ईसाणदेवीण।'

स्त्रीत्व की निरन्तरता का कालप्रमाण

४८ [१] इत्थीण भंते ! इत्थित्ति कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसं दसुत्तरं पलिओवमसयं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं ॥१॥

एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समय उक्कोसेण अट्ठारस पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं ॥२॥

एक्केणादेसेण जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं चउदस पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं ॥३॥

एक्केणादेसेणं जहन्नेणं एक्कं समय उक्कोसेणं पलिओवमसयं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहिय ॥४॥

एक्केणादेसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसं पलिओवमपुहुत्तं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियं ॥५॥

[४८-१] हे भगवन् ! स्त्री, स्त्रीरूप मे लगातार कितने समय तक रह सकती है ?

गौतम ! एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक सौ दस पल्योपम तक स्त्री, स्त्रीरूप मे रह सकती है ।१।

दूसरी अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक अठारह पल्योपम तक रह सकती है ।२।

तीसरी अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक चौदह पल्योपम तक कह सकती है ।३।

चौथी अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक सौ पल्योपम तक रह सकती है ।४।

पाचवी अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पल्योपम-पृथक्त्व तक रह सकती है ।५।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रश्न किया गया है कि स्त्री, स्त्री के रूप मे लगातार कितने समय तक रह सकती है ? इस प्रश्न के उत्तर मे पाच आदेश (प्रकार—अपेक्षाएँ) बतलाये गये हैं । वे पाच अपेक्षाएँ क्रम से इस प्रकार हैं—

(१) पहली अपेक्षा से स्त्री, स्त्री के रूप मे लगातार जघन्य से एक समय एक और उत्कृष्ट से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक सौ दस (११०) पल्योपम तक हो सकती है, इसके पश्चात् अवश्य परिवर्तन होता है । इस आदेश की भावना इस प्रकार है—

कोई स्त्री उपशमश्रेणी पर आरूढ हुई और वहाँ उसने वेदत्रय का उपशमन कर दिया और अवेदकता का अनुभव करने लगी । बाद मे वह वहाँ से पतित हो गई और एक समय तक स्त्रीवेद मे रही और द्वितीय समय मे काल करके (मरकर) देव (पुरुष) बन गई । इस अपेक्षा से उसके स्त्रीत्व का काल एक समय का ही रहा । अत. जघन्य से स्त्रीत्व का काल समय मात्र ही रहा ।

स्त्री का स्त्रीरूप मे अवस्थानकाल उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक सौ दस पल्योपम कहा गया है, उसकी भावना इस प्रकार है—

कोई जीव पूर्वकोटि की आयु वाली मनुष्यस्त्रियो मे अथवा तिर्यंचस्त्रियो में उत्पन्न हो जाय और वह वहाँ पाच अथवा छह वार उत्पन्न होकर ईशानकल्प की अपरिगृहीता देवी के रूप मे पचपन पल्योपम की स्थिति युक्त होकर उत्पन्न हो जाय, वहाँ से आयु का क्षय होने पर पुन: मनुष्यस्त्री या तिर्यंचस्त्री के रूप मे पूर्वकोटि आयुष्य सहित उत्पन्न हो जाय। वहाँ से पुन. द्वितीय वार ईशान देवलोक मे ५५ पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली अपरिगृहीता देवी वन जाय, इसके वाद अवश्य ही वेदान्तर को प्राप्त होती है। इस प्रकार पान्च-छह वार पूर्वकोटि आयु वाली मनुष्यस्त्री या तिर्यंच-स्त्री के रूप मे उत्पन्न होने का काल और दो वार ईशान देवलोक मे उत्पन्न होने का काल ५५+५५=११० पल्योपम—ये दोनो मिलाकर पूर्वकोटि पृथक्त्व एक सौ दस पल्योपम का कालमान होता है। यहाँ पृथक्त्व का अर्थ वहुत वार है। इतने काल के पश्चात् अवश्य ही वेदान्तर होता है।

यहाँ कोई शका कर सकता है कि कोई जीव देवकुरु-उत्तरकुरु आदि क्षेत्रो मे तीन पल्योपम आयुवाली स्त्री के रूप मे जन्म ले तो इससे भी अधिक स्त्रीवेद का अवस्थानकाल हो सकता है। इस शका का समाधान यह है कि देवी के भव से च्यवित देवी का जीव असख्यात वर्षायु वाली स्त्रियों मे स्त्री होकर उत्पन्न नही होता और न वह असख्यात वर्षायु वाली स्त्री उत्कृष्ट आयु वाली देवियो मे उत्पन्न हो सकती है, क्योकि प्रज्ञापनासूत्र-टीका मे कहा गया है—'जतो असंखेज्जवासाउया उक्कोसिय ठिइ न पावेइ' अर्थात् असख्यात वर्ष की आयुवाली स्त्री उत्कृष्ट स्थिति को प्राप्त नही करती। इसलिए यथोक्त प्रमाण ही स्त्रीवेद का उत्कृष्ट अवस्थानकाल है।१।

(२) दूसरी अपेक्षा से स्त्रीवेद का अवस्थानकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक अठारह पल्योपम है। जघन्य एक समय की भावना प्रथम आदेश के समान है। उत्कृष्ट अवस्थानकाल की भावना इस प्रकार है—

कोई जीव मनुष्यस्त्री और तिर्यंचस्त्री के रूप मे लगातार पाँच वार रहकर पूर्ववत् ईशान-देवलोक मे दो वार उत्कृष्ट स्थिति वाली देवियो मे उत्पन्न होता हुआ नियम से परिगृहीता देवियो मे ही उत्पन्न होता है, अपरिगृहीता देवियो में उत्पन्न नही होता। परिगृहीता देवियो की उत्कृष्ट स्थिति नौ पल्योपम की है, अत ९+९=१८ पल्योपम का ही उसका ईशान देवलोक का काल होता है। मनुष्य, तिर्यंच भव का कालमान पूर्वकोटिपृथक्त्व जोडने से यथोक्त पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक १८ पल्योपम का स्त्रीवेद का अवस्थान-काल होता है।२।

(३) तीसरी अपेक्षा से स्त्रीवेद का अवस्थानकाल जघन्य एक समय और उत्कर्ष से पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक चौदह पल्योपम है। एक समय की भावना प्रथम आदेश की तरह है। उत्कर्ष की भावना इस प्रकार है—द्वितीय आदेश की तरह कोई जीव पाच छह वार पूर्वकोटि प्रमाण वाली मनुष्यस्त्री या तिर्यंचस्त्री मे उत्पन्न हुआ और वाद मे सौधर्म देवलोक की सात पल्योपम प्रमाण आयु वाली परिगृहीता देवियो मे दो वार देवी रूप मे उत्पन्न हो, इस अपेक्षा से स्त्रीवेद का उत्कृष्ट अवस्थान-काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक चौदह पल्योपम है।३।

(४) चौथी अपेक्षा से स्त्रीवेद का अवस्थानकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम है। एक समय की भावना प्रथम आदेशानुसार है। उत्कृष्ट की भावना इस प्रकार है—

पूर्वकोटि आयु वाली मनुष्यस्त्री या तिर्यंचस्त्री रूप मे पाच छह बार पूर्व की तरह रहकर सौधर्मदेवलोक मे ५० पल्योपम की उत्कृष्ट आयुवाली अपरिगृहीता देवी के रूप मे दो बार उत्पन्न होने पर ५०+५०=१०० पल्योपम और पूर्वकोटिपृथक्त्व तिर्यंच-मनुष्यस्त्री का काल मिलाने पर यथोक्त अवस्थानकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम होता है।४।

(५) पाचवी अपेक्षा से स्त्रीवेद का अवस्थानकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक पल्योपमपृथक्त्व है। जघन्य की भावना पूर्ववत्। उत्कृष्ट की भावना इस प्रकार है—

कोई जीव मनुष्यस्त्री या तिर्यंचस्त्री के रूप मे पूर्वकोटि आयुष्य सहित सात भव करके आठवें भव मे देवकुरु आदि की तीन पल्योपम की स्थिति वाली स्त्रियो मे स्त्रीरूप से उत्पन्न हो, वहाँ से मर कर सौधर्म देवलोक की जघन्यस्थिति वाली (पल्योपम स्थिति वाली) देवियो मे देवीरूप से उत्पन्न हो, इसके बाद अवश्य वेदान्तर होता है। इस प्रकार पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पल्योपम, पृथक्त्व प्रमाण स्त्रीवेद का अवस्थानकाल होता है।५।

उक्त पांच आदेशो मे से कौनसा आदेश समीचीन है, इसका निर्णय अतिशय ज्ञानी या सर्वोत्कृष्ट श्रुतलब्धिसम्पन्न ही कर सकते हैं। वर्तमान मे वैसी स्थिति न होने से सूत्रकार ने पाचो आदेशो का उल्लेख कर दिया है और अपनी ओर से कोई निर्णय नही दिया है। हमे तत्त्व केवलिगम्य मानकर पाचो आदेशो को अलग अलग अपेक्षाओ को समझना चाहिए।

तिर्यञ्चस्त्री का तद्रूप मे अवस्थानकाल

[२] तिरिक्खजोणित्थी ण भंते! तिरिक्खजोणित्थित्ति कालओ केवच्चिरं होति ?

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं।

जलयरीए जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण पुव्वकोडिपुहुत्त।

चउप्पदथलयरतिरिक्खजोणित्थी जहा ओहिया तिरिक्खजोणित्थी।

उरपरिसप्पी-भुयपरिसप्पित्थीणं जहा जलयरीणं, खहयरित्थी णं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहिय।

[४८] (२) हे भगवन्! तिर्यञ्चस्त्री तिर्यञ्चस्त्री के रूप मे कितने समय तक (लगातार) रह सकती है ?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है।

जलचरी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व तक रह सकती है।

चतुष्पदस्थलचरी के सम्बन्ध मे औधिक तिर्यंचस्त्री की तरह जानना।

उरपरिसर्पस्त्री और भुजपरिसर्पस्त्री के सबध मे जलचरी की तरह कहना चाहिए ।

खेचरी खेचरस्त्री के रूप मे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पल्योपम के असख्यातवे भाग प्रमाण काल तक रह सकती है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे तिर्यंचस्त्री का तिर्यञ्चस्त्री के रूप मे लगातार रहने का कालप्रमाण बताया गया है । जघन्य से अन्तर्मुहूर्त काल तक और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक तिर्यंचस्त्री तिर्यंचस्त्रीरूप मे रह सकती है । इसकी भावना इस प्रकार है—

किसी तिर्यंचस्त्री की आयु अन्तर्मुहूर्त मात्र हो और वह मर कर वेदान्तर को प्राप्त कर ले अथवा मनुष्यादि विलक्षण भाव को प्राप्त कर ले तो उसकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त का जघन्य अवस्थान-काल सगत होता है । उत्कृष्ट अवस्थानकाल की भावना इस प्रकार है—

मनुष्य और तिर्यञ्च उसी रूप मे उत्कर्ष से आठ भव लगातार कर सकते है, अधिक नही ।[1] इनमे से सात भव तो सख्यात वर्ष की आयु वाले होते हैं और आठवा भव असख्यात वर्ष की आयु वाला ही होता है । पर्याप्त मनुष्य या पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च निरन्तर यथासंख्य सात पर्याप्त मनुष्य भव या सात पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच के भवो का अनुभव करके आठवे भव मे पुन: पर्याप्त मनुष्य या पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च मे उत्पन्न हो तो नियम से असख्येय वर्षायु वाला ही होता है, सख्येय वर्षायु वाला नही । असख्येय वर्षायुवाला मर कर नियम से देवलोक मे उत्पन्न होता है, अत लगातार नौवा भव मनुष्य या सज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च का नही होता । अतएव जब पीछे के सातो भव उत्कर्ष से पूर्वकोटि आयुष्य के हो और आठवा भव देवकुरु आदि मे उत्कर्ष से तीन पल्योपम का हो, इस अपेक्षा से तिर्यक्स्त्री का अवस्थानकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम का होता है ।

विशेष चिन्ता मे जलचरी स्त्री जलचरी स्त्री के रूप मे लगातार जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व तक रह सकती है । पूर्वकोटि आयु की जलचरी के सात भव करके अवश्य ही जलचरीभव का परिवर्तन होता है ।

चतुष्पद स्थलचरी की वक्तव्यता औघिक तिर्यंचस्त्री की तरह है । अर्थात् जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है ।

उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प स्त्री की वक्तव्यता जलचरस्त्री की वक्तव्यता के अनुसार है । अर्थात् जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व है ।

खेचरस्त्री का अवस्थानकाल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पल्योपम का असख्यातवा भाग है । इस प्रकार तिर्यंचस्त्रियो का अवस्थानकाल सामान्य और विशेष रूप से कहा गया है ।

मनुष्यस्त्रियों का तद्रूप मे अवस्थानकाल

[३] मणुस्सित्थी णं भंते ! मणुस्सित्थित्ति कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्त-मब्भहियाइं । धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी ।

---

१ 'नरतिरियाण सतट्ठभवा' इति वचनात्

एवं कम्मभूमिया वि, भरहेरवया वि, णवरं खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडिमब्भहियाइ। धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

पुव्वविदेह-अवरविदेहित्थी णं खेत्त पडुच्च जहन्नेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेण पुव्वकोडिपुहुत्त। धम्मचरण पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थी णं भते! अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थित्ति कालओ केवच्चिर होइ?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणं पलिओवमं पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागेणं ऊणं, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइ। सहरण पडुच्च जहन्नेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं।

हेमवय-एरण्णवय-अकम्मभूमियमणुस्सित्थी णं भंते! हेमवय-एरण्णवय अकम्मभूमिय-मणुस्सित्थित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेण देसूणं पलिओवम पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणगं, उक्कोसेणं पलिओवमं। सहरणं पडुच्च जहन्नेणं अतोमुहुत्त उक्कोसेणं पलिओवमं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं।

हरिवास-रम्मयवास-अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थी णं हरिवास-रम्मयवास-अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइ दो पलिओवमाइ पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणाइं, उक्कोसेण दो पलिओवमाइं। संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अतोमुहुत्त उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणपुव्वकोडिमब्भहियाइ।

देवकुरुत्तरकुरूणं, जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूणाइं तिन्नि पलिओवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगाइ, उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं। सहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं।

अंतरदीवगाकम्मभूमिग-मणुस्सित्थी णं भते! अंतरदीवगाकम्मभूमिग-मणुस्सित्थित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं देसूण पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पलिओवमस्स असखेज्जइभागेणं ऊणं, उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जइभागं। सहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असखेज्जइभागं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियं।

देवित्थीणं भते! देवित्थित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जच्चेव भवट्ठिई सच्चेव संचिट्ठणा भाणियव्वा।

[४८] (३) भते ! मनुष्यस्त्री मनुष्यस्त्री के रूप मे कितने काल तक रहती है ?

गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रहती है। चारित्रधर्म की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि तक रह सकती है।

इसी प्रकार कर्मभूमिक स्त्रियो के विषय मे और भरत ऐरवत क्षेत्र की स्त्रियो के सम्बन्ध मे जानना चाहिए। विशेषता यह है कि क्षेत्र की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है। चारित्रधर्म की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि तक अवस्थानकाल है।

पूर्वविदेह पश्चिमविदेह की स्त्रियो के सम्बन्ध मे क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अवस्थानकाल कहना चाहिए। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि।

भगवन् ! अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्री अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्री के रूप मे कितने काल तक रह सकती है ?

गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य से देशोन अर्थात् पल्योपम का असख्यातवा भाग न्यून एक पल्योपम और उत्कृष्ट से तीन पल्योपम तक। सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोनपूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तक रह सकती है।

भगवन् ! हेमवत-एरण्यवत-अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्री हेमवत-एरण्यवत-अकर्मभूमिक मनुष्य-स्त्री के रूप मे कितने काल तक रह सकती है ?

गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य से देशोन अर्थात् पल्योपम का असख्यातवा भाग कम एक पल्योपम और उत्कर्ष से एक पल्योपम तक। सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि अधिक एक पल्योपम तक।

भगवन् ! हरिवास-रम्यकवास-अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्री हरिवास-रम्यकवास-अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्री के रूप मे कितने काल तक रह सकती है ?

गौतम ! जन्म की अपेक्षा से जघन्यत पल्योपम का असख्यातवा भाग न्यून दो पल्योपम तक और उत्कृष्ट से दो पल्योपम तक। सहरण की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन-पूर्वकोटि अधिक दो पल्योपम तक।

देवकुरु-उत्तरकुरु की स्त्रियो का अवस्थानकाल जन्म की अपेक्षा पल्योपम का असख्यातवा भाग न्यून तीन पल्योपम और उत्कृष्ट से तीन पल्योपम है। सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम।

भगवन् ! अन्तरद्वीपो की अकर्मभूमि की मनुष्य स्त्रियो का उस रूप मे अवस्थानकाल कितना है ?

गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य से देशोनपल्योपम का असख्यातवा भाग कम पल्योपम का असख्यातवा भाग है और उत्कृष्ट से पल्योपम का असख्यातवा भाग है। सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असख्यातवा भाग।

भगवन् ! देवस्त्री देवस्त्री के रूप मे कितने काल तक रह सकती है ?
गौतम ! जो उसकी भवस्थिति है, वही उसका अवस्थानकाल है ।

विवेचन—मनुष्यस्त्रियो का सामान्यत अवस्थानकाल वही है जो सामान्य तिर्यंचस्त्रियों का कहा गया है । अर्थात् जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम है । इसकी भावना तिर्यंचस्त्री के अधिकार मे पहले कही जा चुकी है, तदनुसार जानना चाहिए ।

कर्मभूमि की मनुष्यस्त्री का अवस्थानकाल क्षेत्र की अपेक्षा अर्थात् सामान्यत कर्मक्षेत्र को लेकर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, इसके वाद उसका परित्याग सम्भव है। उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम का है। इसमे सात भव महाविदेहो मे और आठवा भव भरत-ऐरावतो मे। एकान्त सुषमादि आरक मे तीन पल्योपम का प्रमाण समझना चाहिए । धर्माचरण को लेकर जघन्य से एक समय है, क्योकि तदावरणकर्म के क्षयोपशम की विचित्रता से एक समय की सम्भावना है। इसके वाद मरण हो जाने से चारित्र का प्रतिपात हो जाता है । उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि है, क्योकि चारित्र का परिपूर्ण काल भी उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि ही है ।

भरत-ऐरवत कर्मभूमिक मनुष्यस्त्री का अवस्थानकाल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम का है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

पूर्वविदेह अथवा पश्चिमविदेह की पूर्वकोटि आयु वाली स्त्री को किसी ने भरतादि क्षेत्र मे एकान्त सुषमादि काल मे सहृत किया । वह यद्यपि महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न हुई है तो भी पूर्वोक्त मागध पुरुष के दृष्टान्त से भरत-ऐरावत की कही जाती है। वह स्त्री पूर्वकोटि तक जीवित रहकर अपनी आयु का क्षय होने पर वही भरतादि क्षेत्र मे एकान्त सुषम आरक के प्रारम्भ मे उत्पन्न हुई । इस अपेक्षा से देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम का उसका अवस्थानकाल हुआ। धर्माचरण की अपेक्षा कर्मभूमिज स्त्री की तरह जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि जानना चाहिए ।

पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह कर्मभूमिज स्त्री का अवस्थानकाल क्षेत्र को लेकर जघन्य से अन्तर्मूहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व है। वही पुन उत्पत्ति की अपेक्षा से समझना चाहिए । धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि है । यह कर्मभूमिज स्त्रियो की वक्तव्यता हुई ।

अकर्मभूमिज मनुष्यस्त्री का सामान्यत अवस्थानकाल जन्म की अपेक्षा से जघन्यत देशोन पल्योपम है। अष्ट भाग आदि भी देशोन होता है अत' ऊनता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि पल्योपम का असख्यातवा भाग न्यून एक पल्योपम है । उत्कर्ष से तीन पल्योपम है । सहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त । यह अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहते सहरण होने से अपेक्षा से है। उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

कोई पूर्वविदेह या पश्चिमविदेह की मनुष्यस्त्री जो देशोन पूर्वकोटि की आयु वाली है, उसका देवकुरु आदि मे सहरण हुआ, वह पूर्व मागधदृष्टान्त से देवकुरु की कहलाई । वह वहाँ देशोन

पूर्वकोटि तक जी कर कालधर्म प्राप्त कर वही तीन पल्योपम की आयु लेकर उत्पन्न हुई। इस तरह देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम का अवस्थानकाल हुआ।

सहरण को लेकर इस जघन्य और उत्कृष्ट अवस्थानकालमान प्रदर्शित करने से यह प्रतिपादित किया गया है कि कुछ न्यून अन्तर्मुहूर्त आयु शेष वाली स्त्री का तथा गर्भस्थ का सहरण नही होता है। अन्यथा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पूर्वकोटि की देशोनता सिद्ध नही हो सकती है।

विशेष-विवक्षा से हैमवत ऐरण्यवत हरिवर्ष रम्यकवर्ष देवकुरु-उत्तरकुरु और अन्तर्द्वीपिज स्त्रियो का जन्म की अपेक्षा जो जिसकी स्थिति है, वही उसका अवस्थानकाल है। सहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से जो जिसकी स्थिति है उससे देशोन पूर्वकोटि अधिक अवस्थानकाल जानना चाहिए। इस सक्षिप्त कथन को स्पष्टता के साथ इस प्रकार जानना चाहिए—

हैमवत ऐरण्यवत की मनुष्यस्त्री का अवस्थानकाल जन्म की अपेक्षा पल्योपमासख्येय भाग न्यून एक पल्योपम और उत्कर्ष से परिपूर्ण पल्योपम। सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक एक पल्योपम।

हरिवर्ष रम्यकवर्ष की मनुष्यस्त्री का अवस्थानकाल जन्म की अपेक्षा पल्योपमासख्येय भाग कम दो पल्योपम और उत्कर्ष से परिपूर्ण दो पल्योपम। सहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि अधिक दो पल्योपम।

देवकुरु-उत्तरकुरु की मनुष्यस्त्री का अवस्थानकाल जन्म की अपेक्षा जघन्य से पल्योपमासख्येय भाग न्यून तीन पल्योपम और उत्कर्ष से तीन पल्योपम। सहरण की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम।

अन्तर्द्वीपो की मनुष्यस्त्री का अवस्थानकाल जन्म की अपेक्षा जघन्यत पल्योपमासख्येय भाग न्यून पल्योपम का असख्यातवा भाग और उत्कर्ष से पल्योपम का असख्येय भाग। सहरण को लेकर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असख्येय भाग है।

देवस्त्रियो का अवस्थानकाल—देवस्त्रियो की जो भवस्थिति है, वही उनका अवस्थानकाल है। क्योकि तथाविध भवस्वभाव से उनमे कायस्थिति नही होनी। क्योकि देव देवी मरकर पुन. देव देवी नही होते।

अन्तरद्वार

४९ इत्थी णं भंते ! केवइयं कालं अतर होइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंत कालं, वणस्सइकालो, एवं सव्वासिं तिरिक्खत्थीणं।

मणुस्सित्थीए खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वणस्सइकालो; धम्मचरण पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अणंत कालं जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं, एवं जाव पुव्वविदेह-अवरविदेहियाओ।

अकम्मभूमगमणुस्सित्थीणं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

गोयमा ! जम्मण पडुच्च जहन्नं दसवाससहस्साइ अतोमुहुत्तमब्भहियाइ; उक्कोसेणं वणस्सइकालो । संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वणस्सइकालो । एवं जाव अतरदीवियाओ ।

देवित्थियाणं सव्वासिं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वणस्सइकालो ।

[४९] भगवन् ! स्त्री के पुन स्त्री होने मे कितने काल का अन्तर होता है ? (स्त्री, स्त्रीत्व का त्याग करने के बाद पुन कितने समय बाद स्त्री होती है ?)

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल । ऐसा सब तिर्यंचस्त्रियो के विषय मे कहना चाहिए ।

मनुष्यस्त्रियो का अन्तर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल । धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्तन । इसी प्रकार यावत् पूर्वविदेह और पश्चिमविदेह की मनुष्यस्त्रियो की वक्तव्यता कहनी चाहिए ।

भंते ! अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियो का अन्तर कितना कहा गया है ?

गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल । सहरण की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल । इस प्रकार यावत् अन्तर्द्वीपो की स्त्रियो का अन्तर कहना चाहिए ।

सभी देवस्त्रियो का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे अन्तर बताया गया है । अन्तर का अर्थ है काल का व्यवधान । स्त्री स्त्रीपर्याय का परित्याग करके पुन जितने समय के बाद स्त्रीपर्याय को प्राप्त करती है वह कालव्यवधान स्त्री का अन्तर कहलाता है ।

सामान्य विवक्षा मे स्त्रीवेद का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल है । इसकी भावना इस प्रकार है—

कोई स्त्री मरकर स्त्रीपर्याय से च्युत होकर पुरुषवेद या नपुसकवेद का अन्तर्मुहूर्त काल तक अनुभव करके वहां से मरकर पुन स्त्रीरूप मे उत्पन्न हो, इस अपेक्षा से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तकाल का होता है । उत्कर्ष से वनस्पतिकाल का अन्तर होता है । असख्येय पुद्गलपरावर्त का वनस्पतिकाल होता है । इस अनन्तकाल मे काल की अपेक्षा अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी बीत जाती है, क्षेत्र से अनन्त लोक और असख्येय पुद्गलपरावर्त निकल जाते हैं । ये पुद्गलपरावर्त आवलिका के अन्दर जितने समय होते हैं उसका असख्यातवे भाग प्रमाण हैं ।[1] इतने लम्बे काल तक स्त्रीत्व का व्यवच्छेद हो जाता है और फिर स्त्रीत्व की प्राप्ति होती है ।

इसी प्रकार औधिक तिर्यंचस्त्रियो का, जलचर थलचर खेचर स्त्रियो का और औधिक मनुष्यस्त्रियो का अन्तर जानना चाहिए ।

---

१. 'अणताओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणी कालओ, खेत्तओ अणता लोगा, असखेज्जा पोग्गलपरियट्टा,' एव वनस्पतिकाल ।

कर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियो का अन्तर कर्मभूमिक्षेत्र की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से अनन्तकाल अर्थात् वनस्पतिकाल प्रमाण जानना चाहिए। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कर्ष से अनन्तकाल अर्थात् देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरावर्त जितना अन्तर है। इससे अधिक चरणलब्धि का प्रतिपातकाल नही है। दर्शनलब्धि के प्रतिपात का काल सम्पूर्ण अपार्ध पुद्गल परावर्त होने का स्थान-स्थान पर निषेध हुआ है।

इसी तरह भरत-ऐरवत मनुष्यस्त्रियो का और पूर्वविदेह पश्चिमविदेह की स्त्रियो का अन्तर क्षेत्र और धर्माचरण की अपेक्षा से समझना चाहिए।

अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रियो का अन्तर जन्म की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष है। इसका स्पष्टीकरण इस तरह है—कोई अकर्मभूमि की स्त्री मर कर जघन्य स्थिति के देवो मे उत्पन्न हुई। वहाँ दस हजार वर्ष की आयु पाल कर उसके क्षय होने पर वहाँ से च्यवकर कर्मभूमि मे मनुष्यपुरुष या मनुष्यस्त्री के रूप मे. उत्पन्न हुई (क्योकि देवलोक से कोई सीधा अकर्मभूमि मे पैदा नही होता), अन्तर्मुहूर्त काल मे मरकर फिर अकर्मभूमि की स्त्री रूप मे उत्पन्न हुई, इस अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष का जघन्य अन्तर होता है। उत्कर्ष से अन्तर वनस्पतिकाल है। सहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त का अन्तर इस अपेक्षा से है कि कोई अकर्मभूमिज स्त्री को कर्मभूमि मे सहृत कर अन्तर्मुहूर्त बाद हो बुद्धिपरिवर्तन होने से पुन. उसी स्थान पर रख दे। उत्कर्ष से अन्तर वनस्पतिकाल प्रमाण है। इतने लम्बे काल मे कर्मभूमि मे उत्पत्ति की तरह सहरण भी निश्चय से होता ही है। कोई अकर्मभूमि की स्त्री कर्मभूमि मे सहृत की गई। वह अपनी आयु के क्षय के अनन्तर अनन्तकाल तक वनस्पति आदि मे भटक कर पुन अकर्मभूमि मे उत्पन्न हुई। वहाँ से किसी ने उसका सहरण किया तो यथोक्त सहरण का उत्कृष्ट कालमान हुआ।

इसी प्रकार हैमवत हैरण्यवत हरिवर्ष रम्यकवर्ष देवकुरु उत्तरकुरु और अन्तर्द्वीपो की मनुष्यस्त्रियो का भी जन्म से और सहरण की अपेक्षा से जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए। देवस्त्रियो का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। कोई देवीभाव से च्यवकर गर्भज मनुष्य मे उत्पन्न हुई। वहाँ वह पर्याप्ति की पूर्णता के पश्चात् तथाविध अध्यवसाय से मृत्यु पाकर देवी के रूप मे उत्पन्न हो गई—इस अपेक्षा से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त हुआ। उत्कर्ष से वनस्पति काल का अन्तर स्पष्ट ही है।

इसी प्रकार असुरकुमार देवी से लगाकर ईशानकल्प की देवियो का अन्तर भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल जानना चाहिए।

अल्पबहुत्व

५०. (१) एतासि णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थियाणं, मणुस्सित्थियाणं देवित्थियाणं कयरा कयराहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सित्थिओ,
तिरिक्खजोणियाओ असखेज्जगुणाओ,
देवित्थियाओ असंखिज्जगुणाओ ।

(२) एतासि ण भंते ! तिरिक्खजोणित्थियाणं जलयरीणं थलयरीण खहयरीण य कयरा कयराहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ,
थलयर तिरिक्खजोणित्थियाओ सखेज्जगुणाओ,
जलयर तिरिक्खयोणित्थियाओ सखेज्जगुणाओ।

(३) एतासि णं भंते ! मणुस्सित्थियाणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाण य कयरा कयराहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ अंतरदीवग-अकम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ,
देवकुरूत्तरकुरु-अकम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ,
हरिवास रम्मगवास अकम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ सखेज्जगुणाओ,
हेमवतेरण्णवय अकम्मभूमिग-मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ संखिज्जगुणाओ,
भरहेरवतवासकम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ सखिज्जगुणाओ,
पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ सखेज्जगुणाओ।

(४) एतासि णं भंते ! देवित्थियाण भवणवासीण वाणमंतरीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीणं य कयरा कयराहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ वेमाणियदेवित्थियाओ,
भवणवासिदेवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ,
वाणमंतरदेवियाओ असखेज्जगुणाओ,
जोतिसियदेवित्थियाओ सखेज्जगुणाओ।

(५) एतासि णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थियाणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं, मणुस्सित्थियाणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाणं, देवित्थियाणं भवणवासियाणं वाणमतरीण जोतिसियाणं वेमाणिणीण य कयराओ कयराहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ अंतरदीवग अकम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ,
देवकुरु-उत्तरकुरु अकम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ संखिज्जगुणाओ,
हरिवास रम्मगवास अकम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ सखिज्जगुणाओ,
हैमवतहेरण्णवयवास अकम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ सखिज्जगुणाओ,
भरहेरवयवास कम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ सखेज्जगुणाओ,
पुव्वविदेह-अवरविदेहवास कम्मभूमग-मणुस्सित्थियाओ दो वि तुल्लाओ सखेज्जगुणाओ,
वेमाणियदेवत्थियाओ असखेज्जगुणाओ,
भवणवासिदेवित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ,

खहयरतिरिक्खजोणित्थियाओ असंखेज्जगुणाओ,
थलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ संखिज्जगुणाओ,
जलयरतिरिक्खजोणित्थियाओ सखिज्जगुणाओ,
वाणमंतरदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
जोइसियदेवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ ।

[५०] (१) हे भगवन् ! इन तिर्यक्योनिक स्त्रियो मे, मनुष्यस्त्रियो मे और देवस्त्रियो मे कौन किससे अल्प है, अधिक है, तुल्य है या विशेपाधिक है ?

गौतम ! सबसे थोडी मनुष्यस्त्रिया, उनसे तिर्यक्योनिक स्त्रिया असख्यातगुणी, उनसे देव-स्त्रिया असख्यातगुणी हैं ।

(२) भगवन् ! इन तिर्यक्योनि की जलचरी, स्थलचरी और खेचरी मे कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोडी खेचर तिर्यक्योनि की स्त्रियां, उनसे स्थलचर तिर्यक्योनि की स्त्रियां सख्यात गुणी, उनसे जलचर तिर्यक्योनि की स्त्रिया सख्यातगुणी हैं ।

(३) हे भगवन् ! कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक और अतरद्वीप की मनुष्य स्त्रियो मे कौन किससे अल्प, अधिक ,तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोडी अतर्द्वीपो की मनुष्यस्त्रिया, उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु-अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया दोनो परस्पर तुल्य और सख्यातगुणी हैं, उनसे

हरिवास-रम्यकवास-अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया परस्पर तुल्य और सख्यातगुणी हैं, उनसे
हेमवत और एरण्यवत अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया परस्पर तुल्य और सख्यातगुणी हैं, उनसे
भरत-एरवत क्षेत्र की कर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया दोनो परस्पर तुल्य और सख्यातगुणी हैं, उनसे

पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह कर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया दोनो परस्पर तुल्य और संख्यातगुणी हैं ।

(४) भगवन् ! भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवस्त्रियो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ।

गौतम ! सबसे थोडी वैमानिक देविया, उनसे भवनवासी देविया असख्यातगुणी, उनसे वानव्यन्तरदेविया असख्यातगुणी, उनमे ज्योतिष्कदेविया सख्यातगुणी हैं ।

(५) हे भगवन् ! तिर्यंचयोनि की जलचरी, स्थलचरी, खेचरी और कर्मभूमिक, अकर्म-भूमिक और अन्तर्द्वीप की मनुष्यस्त्रिया और भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवियो मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ।

गौतम ! सबसे थोडी अकर्मभूमि की अन्तर्द्वीपो की मनुष्यस्त्रिया, उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु की अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया दोनो परस्पर तुल्य और सख्यातगुणी, उनसे

हरिवास-रम्यकवास अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया दोनो परस्पर तुल्य और सख्यातगुणी, उनसे

हैमवत-हैरण्यवत अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया दोनो परस्पर तुल्य और सख्यातगुणी, उनसे
भरत-ऐरवत कर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया दोनो परस्पर तुल्य और सख्यातगुणी, उनसे
पूर्वविदेह और पश्चिमविदेह कर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया दोनो परस्पर तुल्य और सख्यात गुणी, उनसे

वैमानिकदेविया असख्यातगुणी, उनसे
भवनवासीदेविया असख्यातगुणी, उनसे
खेचरतिर्यक्योनि की स्त्रिया असख्यातगुणी, उनसे
स्थलचरस्त्रिया सख्यातगुणी, उनसे
जलचरस्त्रियां सख्यातगुणी, उनसे
वानव्यन्तरदेविया सख्यातगुणी, उनसे
ज्योतिष्कदेविया सख्यातगुणी हैं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे पाच प्रकार से अल्पबहुत्व बताया गया है। पहले प्रकार मे तीनो प्रकार की स्त्रियो का सामान्य से अल्पबहुत्व बताया है। दूसरे प्रकार मे तीन प्रकार की तिर्यंच-स्त्रियो का अल्पबहुत्व है। तीसरे प्रकार मे तीन प्रकार की मनुष्यस्त्रियो का अल्पबहुत्व है। चौथे प्रकार मे चार प्रकार की देवस्त्रियो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व है और पाचवें प्रकार मे सब प्रकार की मिश्र स्त्रियो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व बताया गया है।

(१) सामान्य रूप से तीन प्रकार की स्त्रियो मे सबसे थोडी मनुष्यस्त्रिया है, क्योकि उनका प्रमाण संख्यात कोटाकोटी है। उनसे तिर्यंचस्त्रिया असख्येयगुण हैं, क्योकि प्रत्येक द्वीप और प्रत्येक समुद्र मे तिर्यचस्त्रियो की अति बहुलता है और द्वीप-समुद्र असख्यात है। उनसे देवस्त्रियां असख्येय-गुणी है, क्योकि भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशान की देविया प्रत्येक असख्येय श्रेणी के आकाश-प्रदेशप्रमाण है। यह प्रथम अल्पबहुत्व हुआ।

(२) दूसरा अल्पबहुत्व तीन प्रकार की तिर्यंचस्त्रियो की अपेक्षा से है। सबसे थोडी खेचर तिर्यक्योनि की स्त्रिया, उनसे स्थलचरस्त्रिया सख्येयगुण हैं क्योकि खेचरो से स्थलचर स्वभाव से प्रचुर प्रमाण मे है। उनसे जलचरस्त्रिया सख्यातगुणी हैं, क्योकि लवणसमुद्र मे, कालोद मे और स्वयभूरमण समुद्र मे मत्स्यो की अति प्रचुरता है और स्वयंभूरमणसमुद्र अन्य समस्त द्वीप-समुद्रो से अति विशाल है।

(३) तीसरा अल्पबहुत्व तीन प्रकार की मनुष्यस्त्रियो को लेकर है। सबसे थोडी अन्तर्द्वीपो की अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रिया हैं, क्योकि वह क्षेत्र छोटा है। उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु की स्त्रिया सख्येयगुण है, क्योकि क्षेत्र सख्येयगुण है। स्वस्थान मे परस्पर दोनो तुल्य है, क्योकि दोनो का क्षेत्र समान प्रमाण वाला है। उनसे हरिवर्ष रम्यकवर्ष अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया सख्येयगुणी हैं, क्योकि देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्र की अपेक्षा हरिवर्ष रम्यकवर्ष का क्षेत्र बहुत अधिक है। स्वस्थान मे दोनो तुल्य हैं, क्योकि क्षेत्र समान है। उनसे हैमवत-हैरण्यवत अकर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया संख्येयगुण है, क्योकि क्षेत्र की अल्पता होने पर भी अल्प स्थिति वाली होने से वहाँ उनकी बहुलता है। स्वस्थान मे परस्पर तुल्य है, क्योकि दोनो क्षेत्रो मे समानता है। उनसे भरत और ऐरवत कर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया

सख्येयगुण हैं, क्योकि कर्मभूमि होने से स्वभावत उनकी वहाँ प्रचुरता है। स्वस्थान मे परस्पर तुल्य हैं, क्योकि दोनो क्षेत्रो की समान रचना है। उनसे पूर्वविदेह और पश्चिमविदेह कर्मभूमि की मनुष्य-स्त्रिया सख्येयगुण हैं, क्योकि क्षेत्र की बहुलता होने से अजितनाथ तीर्थंकर के काल के समान स्वभावत. वहाँ उनकी बहुलता है। स्वस्थान मे परस्पर तुल्य हैं, समान क्षेत्ररचना होने से।

(४) चौथा अल्पबहुत्व चार प्रकार की देवियो को लेकर है, सबसे थोडी वैमानिक देवस्त्रियां हैं, क्योकि अगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेशराशि का जो द्वितीय वर्गमूल है उसे तृतीय वर्गमूल से गुणा करने पर जितनी प्रदेशराशि होती है, उतनी घनीकृत लोक की एक प्रादेशिक श्रेणियो मे जितने आकाश प्रदेश हैं, उनका बत्तीसवा भाग कम कर देने पर जो राशि आवे उतने प्रमाण की सौधर्मदेवलोक की देविया हैं और उतनी ही ईशानदेवलोक की देविया है।

वैमानिकदेवियो मे भवनवासीदेविया असंख्यातगुणी है, क्योकि अगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेश-राशि का जो प्रथम वर्गमूल है उसको द्वितीय वर्गमूल से गुणा करने पर जो प्रदेशराशि होती है उतनी श्रेणियो के जितने प्रदेश हैं उनका बत्तीसवां भाग कम करने पर जो राशि होती है उतनी भवनवासी-देविया हैं।

भवनवासीदेवियो से व्यन्तरदेविया असख्येयगुणी है, क्योकि एक प्रतर मे सख्येय योजन प्रमाण वाले एक प्रादेशिक श्रेणी प्रमाण जितने खण्ड हो, उनमे से बत्तीसवा भाग कम करने पर जो शेष राशि रहती है, उतने प्रमाण की व्यन्तरदेविया हैं।

व्यन्तरदेवियो से ज्योतिष्कदेविया संख्येयगुण हैं। क्योकि २५६ अगुल प्रमाण के जितने खण्ड एक प्रतर मे होते हैं, उनमे से बत्तीसवा भाग कम करने पर जितनी प्रदेशराशि होती है उतनी ज्योतिष्कदेविया हैं।

(५) पाचवा अल्पबहुत्व समस्त स्त्री विषयक है। सबसे थोड़ी अन्तर्द्वीपो की अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रिया, उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु की मनुष्यस्त्रिया सख्येयगुणी, उनसे हरिवर्ष-रम्यकवर्ष की स्त्रिया संख्येयगुणी, उनसे हैमवत-हैरण्यवत की स्त्रियां सख्येयगुणी, उनसे भरत-एरवत कर्मभूमि की मनुष्यस्त्रिया सख्येयगुण, उनसे पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह की मनुष्यस्त्रिया सख्येयगुण है। इनका स्पष्टी-करण पूर्ववत् जानना चाहिए। पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह की मनुष्यस्त्रियो से वैमानिकदेवस्त्रिया असख्येयगुण हैं, क्योकि वे असख्येय श्रेणी के आकाशप्रदेश की राशि के जितनी हैं। उनसे भवनवासी-देविया असख्यातगुण हैं, इसकी युक्ति पहले कही हो है। उनसे खेचरस्त्रिया असख्येयगुण हैं। वे प्रतर के असख्येय भागवर्ती असख्येय श्रेणियों के आकाशप्रदेशो के बराबर हैं। उनसे स्थलचरस्त्रिया सख्येय-गुण हैं, क्योकि वे सख्येयगुण बडे प्रतर के असख्यातवे भाग मे रही हुई असख्येय श्रेणियो के आकाश-प्रदेश जितनी हैं। उनसे जलचर तिर्यंचस्त्रिया सख्येयगुण हैं क्योकि वे बृहत्तम प्रतर के असख्यातवे भाग मे रही हुई असख्येय श्रेणियो के आकाशप्रदेश जितनी हैं। उनसे व्यन्तरस्त्रिया सख्येयगुण हैं, क्योकि सख्येय कोटाकोटी योजन प्रमाण एक प्रदेश की श्रेणी जितने खण्ड एक प्रतर मे होते हैं, उनमे से बत्तीसवा भाग कम करने पर जो राशि होती है उतनी व्यन्तरदेविया हैं।

व्यन्तरदेवियो से ज्योतिष्कदेवियां सख्येयगुणी हैं, इसकी स्पष्टता पूर्व मे की जा चुकी है।

स्त्रीवेद की स्थिति

५१ इत्थिवेदस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं सागरोवमस्स दिवड्ढो सत्तभागो पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेण ऊणो; उक्कोसेणं पन्नरस सागरोवमकोडाकोडीओ, पण्णरस वाससयाइं अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिती कम्मणिसेओ।

इत्थिवेदे णं भंते ! किंपगारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! फुंफुअग्गिसमाणे पण्णत्ते; से त्तं इत्थियाओ।

[५१] हे भगवन् ! स्त्रीवेदकर्म की कितने काल की बन्धस्थिति कही गई है ?

गौतम ! जघन्य से पल्योपम के असख्यातवें भाग कम १।। सागरोपम के सातवें भाग ($\frac{1.5}{7}$) प्रमाण है। उत्कर्ष से पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की बन्धस्थिति है। पन्द्रह सौ वर्ष का अबधाकाल है। अवाधाकाल से रहित जो कर्मस्थिति है वही अनुभवयोग्य होती है, अत वही कर्मनिषेक (कर्म-दलिको की रचना) है।

हे भगवन् ! स्त्रीवेद किस प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! स्त्रीवेद फुफु अग्नि (कारिष—वनकण्डे की अग्नि) के समान होता है। इस प्रकार स्त्रियो का अधिकार पूरा हुआ।

विवेचन—स्त्री पर्याय का अनुभव स्त्रीवेद कर्म के उदय से होता है अतः स्त्रीवेद कर्म की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण प्रस्तुत सूत्र मे बताया गया है।

गौतमस्वामी ने प्रश्न किया कि भगवन् ! स्त्रीवेद की बन्धस्थिति कितने काल की है ? इसके उत्तर मे प्रभु ने फरमाया कि स्त्रीवेद की जघन्य वन्धस्थिति डेढ सागरोपम के सातवें भाग मे पल्योपम का असख्यातवा भाग कम है। जघन्य स्थिति लाने की विधि इस प्रकार है—

जिस प्रकृति का जो उत्कृष्ट स्थितिवन्ध है, उसमे मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागरोपम का भाग देने पर जो राशि प्राप्त होती है उसमे पल्योपम का असख्यातवा भाग कम करने पर उस प्रकृति की जघन्य स्थिति प्राप्त होती है। स्त्रीवेद की उत्कृष्ट स्थिति १५ कोडाकोडी सागरोपम है। इसमे ७० कोडाकोडी सागरोपम का भाग दिया तो $\frac{15}{70}$ कोडाकोडी सागरोपम प्राप्त होता है। छेद्य-छेदक सिद्धान्त के अनुसार इस राशि मे १० का भाग देने पर $\frac{1.5}{7}$ कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति वनती है। इसमे पल्योपम का असख्यातवा भाग कम करने से यथोक्त स्थिति बन जाती है।[1] यह व्याख्या मूल टीका के अनुसार है। पचसग्रह के मत से भी यही जघन्यस्थिति का परिमाण है, केवल पल्योपम का असख्यातवा भाग न्यून नही कहना चाहिए।

कर्मप्रकृति सग्रहणीकार ने जघन्य स्थिति लाने की दूसरी विधि बताई है।[2] ज्ञानावरणी-

---

१ 'सेसाणुक्कोसाओ मिच्छत्तुक्कोसएण ज लद्ध' इति वचनप्रामाण्यात्।

२ वग्गुक्कोसठिईण मिच्छत्तुक्कोसगेण ण लद्ध।
सेसाण तु जहण्णं पलियासखेज्जगेणूण ॥ —कर्मप्रकृति स

यादि कर्मों की अपनी-अपनी प्रकृतिया ज्ञानावरणीयादि वर्ग कहलाती है। वर्गों की जो अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति हो उसमे मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति का भाग देने पर जो लब्ध होता है उसमे पल्योपम का सख्येयभाग कम करने से जघन्य स्थिति निकल आती है। यहाँ स्त्रीवेद नोकषायमोहनीयवर्ग की प्रकृति है। उसकी उत्कृष्ट स्थिति वीस कोडाकोडी सागरोपम की है। उसमे सत्तर कोडाकोडी सागरोपम का भाग देने से (शून्य को शून्य से काटने पर) $\frac{२}{७}$ कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति वनती है। अर्थात् दो कोडाकोडी सागरोपम का सातवा भाग, उसमे से पल्योपमासख्येय भाग कम करने से स्त्रीवेद की जघन्यस्थिति इस विधि से $\frac{२}{७}$ कोडाकोडी सागरोपम मे पल्योपमासख्येय भाग न्यून प्राप्त होती है।

स्त्रीवेद की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम है।

स्थिति दो प्रकार की है—कर्मरूपतावस्थानरूप और अनुभवयोग्य। यहाँ जो स्थिति बताई गई है वह कर्मरूपतावस्थानरूप है। अनुभवयोग्य स्थिति तो अवाधाकाल से हीन होती है। जिस कर्म की जितने कोडाकोडी सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति होती है उतने ही सौ वर्ष उसकी अबाधा होती है। जैसे स्त्रीवेद की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह कोडाकोडी सागरोपम की है तो उसका अबाधाकाल पन्द्रह सौ वर्ष का होता है। अर्थात् इतने काल तक वह वन्धी हुई प्रकृति उदय मे नही आती और अपना फल नही देती। अबाधाकाल बीतने पर ही कर्मदलिको की रचना होती है अर्थात् वह प्रकृति उदय मे आती है। इसको कर्मनिषेक कहा जाता है। अवाधाकाल से हीन कर्मस्थिति ही अनुभवयोग्य होती हैं।

स्त्रीवेद की बन्धस्थिति के पश्चात् गौतमस्वामी ने स्त्रीवेद का प्रकार पूछा है। इसके उत्तर मे भगवान् ने कहा कि स्त्रीवेद फुम्फुक (कारीष-छाणे) की अग्नि के समान होता है, अर्थात् वह धीरे धीरे जागृत होता है और देर तक बना रहता है। इस प्रकार स्त्रीविषयक अधिकार समाप्त हुआ।

पुरुष-सम्बन्धी प्रतिपादन

५२ से किं तं पुरिसा?

पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—तिरिक्खजोणियपुरिसा, मणुस्सपुरिसा, देवपुरिसा।

से किं तं तिरिक्खजोणियपुरिसा?

तिरिक्खजोणियपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—जलयरा, थलयरा, खहयरा।

इत्थिभेदो भाणियव्वो जाव खहयरा।

से त्तं खहयरा, से त खहयर तिरिक्खजोणियपुरिसा।

से किं त मणुस्सपुरिसा?

मणुस्सपुरिसा तिविधा पण्णत्ता, तंजहा—कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा। से त्तं मणुस्सपुरिसा।

से किं तं देवपुरिसा?

देवपुरिसा चउव्विहा पण्णत्ता, इत्थीभेदो भाणियव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धा।

[५२] पुरुष क्या है—कितने प्रकार के है ?

पुरुष तीन प्रकार के हैं—यथा तिर्यंक्योनिक पुरुष, मनुष्य पुरुष और देव पुरुष ।

तिर्यंक्योनिक पुरुष कितने प्रकार के हैं ?

तिर्यंक्योनिक पुरुष तीन प्रकार के कहे गये है, यथा—जलचर, स्थलचर और खेचर ।

इस प्रकार जैसे स्त्री अधिकार मे भेद कहे गये है, वैसे यावत् खेचर पर्यन्त कहना । यह खेचर का और उसके साथ ही खेचर तिर्यंक्योनिक पुरुषो का वर्णन हुआ ।

भगवन् ! मनुष्य पुरुष कितने प्रकार के है ?

गौतम ! मनुष्य पुरुष तीन प्रकार के हैं—कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक और अन्तर्द्वीपिक । यह मनुष्यो के भेद हुए ।

देव पुरुष कितने प्रकार के हैं ?

देव पुरुष चार प्रकार के हैं । इस प्रकार पूर्वोक्त स्त्री अधिकार मे कहे गये भेद कहते जाने चाहिए यावत् सर्वार्थसिद्ध तक देव भेदो का कथन करना ।

विवेचन—पुरुष के भेदो मे पूर्वोक्त स्त्री अधिकार मे कहे गये भेद कहने चाहिए । विशेषता केवल देव पुरुषो मे हैं । देव पुरुष चार प्रकार के हैं—भवनपति, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक । भवनपति के असुरकुमार आदि १० भेद हैं । वानव्यन्तर के पिशाच आदि आठ भेद है, ज्योतिष्क के चन्द्रादि पाच भेद हैं और वैमानिक देव दो प्रकार के हैं—कलोपपन्न और कल्पातीत । सौधर्म आदि बारह देवलोक कल्पोपपन्न हैं और ग्रैवेयक तथा अनुत्तरोपपातिक देव कल्पातीत हैं । अनुत्तरोपपातिक के पाच भेद हैं—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध । अत. 'जाव सव्वट्ठसिद्धा' कहा गया है ।

कालस्थिति

५३. पुरिसस्स ण भंते ! केवइयं कालठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तोसं सागरोमाइं ।

तिरिक्खजोणियपुरिसाणं मणुस्सपुरिसाणं जाव चेव इत्थीण ठिई सा चेव भाणियव्वा ।

देवपुरिसाण वि जाव सव्वट्ठसिद्धाणं ठिई जहा पण्णवणाए (ठिइपए) तहा भाणियव्वा ।

[५३] हे भगवन् ! पुरुष की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से तेतीस सागरोपम ।

तिर्यंचयोनिक पुरुषो की और मनुष्य पुरुषो की वही स्थिति जाननी चाहिए जो तिर्यंचयोनिक स्त्रियो और मनुष्य स्त्रियो की कही गई है । देवयोनिक पुरुषो की यावत् सर्वार्थसिद्ध विमान के देव पुरुषो की स्थिति वही जाननी चाहिए जो प्रज्ञापना के स्थितिपद मे कही गई है ।

विवेचन—अपने अपने भव को छोडे बिना पुरुषो की कितने काल तक की स्थिति है, ऐसा प्रश्न किये जाने पर भगवान् ने कहा कि जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से तेतीस सागरोपम की स्थिति है । अन्तर्मुहूर्त मे मरण हो जाने की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त की जघन्य स्थिति कही है और अनुत्तरोपपातिक देवो की अपेक्षा तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति कही गई है ।

औघिक तिर्यंच पुरुषो की, जलचर, स्थलचर, खेचर पुरुषो की स्थिति वही है जो तिर्यंचस्त्री की पूर्व मे कही गई है। मनुष्य पुरुष की औघिक तथा कर्मभूमि-अकर्मभूमि-अन्तर्द्वीपो के मनुष्य पुरुषो की सामान्य और विशेष से वही स्थिति समझ लेनी चाहिये जो अपने-अपने भेद मे स्त्रियो की कही गई है। स्पष्टता के लिए उसका उल्लेख निम्न प्रकार है—

तिर्यंच पुरुषो की स्थिति

औघिक तिर्यंचयोनिक पुरुषो को जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से तीन पल्योपम।

जलचर पुरुषो की जघन्य से अन्तर्मुहूर्त, उत्कर्ष से पूर्वकोटि।

चतुष्पद स्थलचर पुरुषो की जघन्य से अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम, उरपरिसर्प स्थलचर पुरुषो की जघन्य से अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटि।

भुजपरिसर्प स्थलचर पुरुषो की तथा खेचर पुरुषो की जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पल्योपम का असख्येयभाग।

मनुष्य पुरुषो की स्थिति

औघिक मनुष्य पुरुषों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की है। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि। जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति बाह्यलिंग प्रव्रज्या-प्रतिपत्ति की अपेक्षा से है अन्यथा चरणपरिणाम तो एक सामयिक भी सम्भव है। अथवा देशविरति के बहुत भग होने से जघन्य से अन्तर्मुहूर्त का सम्भव है। आठ वर्ष की वय के बाद चरण-प्रतिपत्ति होने से पूर्वकोटि आयु वाले की अपेक्षा से देशोन पूर्वकोटि उत्कर्ष से स्थिति कही है।

कर्मभूमिक मनुष्यो की जघन्य स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। चारित्रधर्म की अपेक्षा इनकी स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है।

भरत और ऐरवत कर्मभूमिक मनुष्य पुरुषो की जघन्य स्थिति क्षेत्र की अपेक्षा एक अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। यह सुषमासुषम काल की अपेक्षा से है। चारित्रधर्म की अपेक्षा जघन्यस्थिति एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है।

पूर्वविदेह पश्चिमविदेह पुरुषो की क्षेत्र को अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि है। चरणधर्म को लेकर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि है।

अकर्मभूमिक मनुष्य पुरुषो की सामान्यत जन्म की अपेक्षा जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवे भाग से हीन एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्वकोटि।

हैमवत और ऐरण्यवत के मनुष्य पुरुषो की स्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य से पल्योपमासंख्येयभाग हीन एक पल्योपम की है। उत्कर्ष से पूर्ण एक पल्योपम की है। सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है।

हरिवर्ष, रम्यकवर्ष के मनुष्य पुरुषो की स्थिति जन्म की अपेक्षा पल्योपमासख्येयभाग हीन दो

पल्योपम की है और उत्कृष्ट परिपूर्ण दो पल्योपम की है। सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है।

देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्य पुरुषो की स्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपमासख्येय भाग हीन तीन पल्योपम है और उत्कृष्ट परिपूर्ण तीन पल्योपम है। सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है।

अन्तर्द्वीपो के मनुष्य पुरुषो की स्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य से पल्योपम के देशोन असंख्यातवें भाग रूप है और उत्कृष्ट से देशोन पूर्वकोटि है। सहरण की अपेक्षा जघन्य से एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्वकोटि है।

देव पुरुषो की स्थिति

प्रज्ञापना मे देव पुरुषो की स्थिति इस प्रकार कही गई है—
देव पुरुषो की औघिक स्थिति जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम।

विशेष विचारणा मे असुरकुमार पुरुषो की जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम। नागकुमार पुरुषो की जघन्य से दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम। सुवर्णकुमार आदि शेष स्तनितकुमार पर्यन्त सब भवनपतियो की भी यही स्थिति है।

व्यन्तरो की जघन्य दस हजार की, उत्कृष्ट एक पल्योपम, ज्योतिष्क पुरुषो की जघन्य से पल्योपम का आठवा भाग और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक परिपूर्ण पल्योपम।

सौधर्मकल्प के देव पुरुषो की स्थिति जघन्य से एक पल्योपम और उत्कृष्ट से दो सागरोपम की है।

ईशानकल्प के देव पुरुषो की जघन्य से कुछ अधिक एक पल्योपम और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम है।

सनत्कुमार देव पुरुषो की जघन्य दो सागरोपम और उत्कृष्ट सात सागरोपम है।

माहेन्द्रकल्प के देवो की जघन्य से कुछ अधिक दो सागरोपम और उत्कृष्ट से कुछ अधिक सात सागरोपम है।

ब्रह्मलोक देवो की जघन्य से सात सागरोपम और उत्कृष्ट से दस सागरोपम है।
लान्तक देवो की जघन्य से दस सागरोपम और उत्कृष्ट से चौदह सागरोपम है।
महाशुक्रकल्प के देवो की जघन्य चौदह सागरोपम और उत्कृष्ट सत्रह सागरोपम है।

सहस्रारकल्प के देवो की जघन्य स्थिति सत्रह सागरोपम है और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम है।

आनतकल्प के देवो की स्थिति जघन्य अठारह सागरोपम और उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम है।

प्राणतकल्प के देवो की जघन्य स्थिति उन्नोस सागरोपम की और उत्कृष्ट बीस सागरोपम की है।

आरणकल्प के देवो की जघन्य स्थिति बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम है।

अच्युतकल्प के देवो की जघन्य स्थिति इक्कीस सागरोपम है और उत्कृष्ट बावीस सागरोपम है।

अधस्तनाधस्तन ग्रैवेयक देवपुरुषो की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट तेवीस सागरोपम है।

अधस्तनमध्यम ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति तेवीस सागरोपम और उत्कृष्ट चौवीस सागरोपम है।

अधस्तनोपरितन ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति चौवीस सागरोपम और उत्कृष्ट पच्चीस सागरोपम है।

मध्यमाधस्तन ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति पच्चीस सागरोपम है, उत्कृष्ट छव्वीस सागरोपम है।

मध्यममध्यम ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति छव्वीस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्तावीस सागरोपम की है।

मध्यमोपरितन ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति सत्तावीस सागरोपम और उत्कृष्ट अट्ठावीस सागरोपम है।

उपरितनाधस्तन ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति अट्ठावीस सागरोपम और उत्कृष्ट स्थिति उनतीस सागरोपम है।

उपरितनमध्यम ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति उनतीस सागरोपम और उत्कृष्ट तीस सागरोपम है।

उपरितनोपरितन ग्रैवेयक देवो की जघन्य स्थिति तीस सागरोपम और उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम है।

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमान गत देवपुरुषो की जघन्य स्थिति इकतीस सागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम है।

सर्वार्थसिद्धविमान के देवो की स्थिति तेतीस सागरोपम की है। यहाँ स्थिति मे जघन्य-उत्कृष्ट का भेद नही।

पुरुष का पुरुषरूप में निरन्तर रहने का काल

५४ पुरिसे णं भंते ! पुरिसेत्ति कालओ केवच्चिरं होई ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं।

तिरिक्खजोणियपुरिसे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्तमब्भहियाइं।

एवं तं चेव संचिट्ठणा जहा इत्थीणं जाव खहयर तिरिक्खजोणियपुरिसस्स संचिट्ठणा।

मणुस्सपुरिसाणं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिन्नि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहुत्त-मब्भहियाइं; धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी ।

एवं सव्वत्थ जाव पुव्वविदेह-अवरविदेह कम्मभूमिग मणुस्सपुरिसाणं । अकम्मभूमग मणुस्स-पुरिसाणं जहा अकम्मभूमग मणुस्सित्थीणं जाव अंतरदीवगाणं ।

देवाणं जच्चेव ठिई सच्चेव संचिट्ठणा जाव सव्वत्थसिद्धगाणं ।

[५४] हे भगवन् ! पुरुष, पुरुषरूप मे निरन्तर कितने काल तक रह सकता है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से सागरोपम शतपृथक्त्व (दो सौ से लेकर नौ सौ सागरोपम) से कुछ अधिक काल तक पुरुष पुरुषरूप मे निरन्तर रह सकता है ।

भगवन् ! तिर्यंचयोनि-पुरुष काल से कितने समय तक निरन्तर उसी रूप मे रह सकता है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक ।

इस प्रकार से जैसे स्त्रियो की संचिट्ठणा कही, वैसे खेचर तिर्यंचयोनिपुरुष पर्यन्त की संचिट्ठणा है ।

भगवन् ! मनुष्यपुरुष उसी रूप मे काल से कितने समय तक रह सकता है ?

गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक । धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि ।

इसी प्रकार सर्वत्र पूर्वविदेह, पश्चिमविदेह कर्मभूमिक मनुष्य-पुरुषो तक के लिए कहना चाहिए ।

अकर्मभूमिक मनुष्यपुरुषो के लिए वैसा ही कहना जैसा अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियो के लिए कहा है । इसी प्रकार अन्तरद्वीपो के अकर्मभूमिक मनुष्यपुरुषो तक वक्तव्यता जानना चाहिए ।

देवपुरुषो की जो स्थिति कही है, वही उसका संचिट्ठणा काल है । ऐसा ही कथन सर्वार्थसिद्ध के देवपुरुषो तक कहना चाहिए ।

विवेचन—पुरुष पुरुषपर्याय का त्याग किये बिना कितने काल तक निरन्तर पुरुषरूप मे रह सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर मे भगवान् ने कहा कि जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कर्ष से दो सौ सागरोपम से लेकर नौ सौ सागरोपम से कुछ अधिक काल तक पुरुष पुरुष-पर्याय मे रह सकता है । जो पुरुष अन्तर्मुहूर्त काल जी कर मरने के बाद स्त्री आदि रूप मे जन्म लेता है उसकी अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहा गया है । सामान्यरूप से तिर्यक्, नर और देव भवो मे इतने काल तक पुरुषरूप मे रहने की सम्भावना है । मनुष्य के भवो की अपेक्षा से सातिरेकता (कुछ अधिकता) समझना चाहिए । इससे अधिक काल तक निरन्तर पुरुष नामकर्म का उदय नही रह सकता । नियमत: वह स्त्री आदि भाव को प्राप्त करता है ।

तिर्यक्योनि पुरुषो के विषय में वही वक्तव्यता है, जो तिर्यक्योनि स्त्रियो के विषय मे कही गई है । वह इस प्रकार है—

तिर्यक्योनि पुरुष अपने उस पुरुषत्व को त्यागे बिना निरन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त रह सकता है। उसके बाद मरकर गत्यन्तर या वेदान्तर को प्राप्त होता है। उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक रह सकता है। इसमे सात भव तो पूर्वकोटि आयुष्य के पूर्वविदेह आदि मे और आठवा भव देवकुरु-उत्तरकुरु मे जहाँ तीन पल्योपम की आयु है। इस तरह पल्योपम और पूर्वकोटिपृथक्त्व (बहुत पूर्वकोटिया) काल तक उसी रूप मे रह सकता है। जलचरपुरुष जघन्य से अन्तर्मुहूर्त, उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व तक। पूर्वकोटि आयु वाले पुरुष के पुनः पुन वही दो तीन चार बार उत्पन्न होने की अपेक्षा से समझना चाहिए।

चतुष्पदस्थलचर पुरुष जघन्य से अन्तर्मुहूर्त, उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक। भावना पूर्वोक्त औघिक तिर्यक् पुरुष की तरह समझना चाहिए।

उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प स्थलचर पुरुष जघन्य से अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट से पूर्वकोटिपृथक्त्व तक। भावना पूर्वोक्त जलचर पुरुष की तरह समझना।

खेचर पुरुष जघन्य से अन्तर्मुहूर्त, उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पल्योपम का असख्येय भाग। यह सात बार तो पूर्वकोटि की आयु वाले भवो मे और आठवी बार अन्तर्द्वीपादि खेचर पुरुषो मे (पल्योपमासंख्येय भाग स्थिति वालो मे) उत्पन्न होने की अपेक्षा से समझना चाहिए।

मनुष्यपुरुषो का निरन्तर तद्रूप मे रहने का काल पूर्व मे कही गई मनुष्यस्त्रियो की वक्तव्यता के अनुसार है। वह निम्नानुसार है—

सामान्य से मनुष्य-पुरुष का तद्रूप मे निरन्तर रहने का कालमान जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम। इसमें सात भव तो महाविदेह मे पूर्वकोटि आयु के और आठवा भव देवकुरु आदि मे तीन पल्योपम की आयु का जानना चाहिए। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट से देशोन पूर्वकोटि। आठ वर्ष की आयु के बाद चारित्र-प्रतिपत्ति होती है, अत आठ वर्ष कम होने से देशोनता कही है।

विशेष विवक्षा मे कर्मभूमि का मनुष्य-पुरुष कर्मभूमि क्षेत्र की अपेक्षा से जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम तक निरन्तर तद्रूप मे रह सकता है। यह सात बार पूर्वकोटि आयु वालो मे उत्पन्न होकर आठवी बार भरत-ऐरावत मे एकान्त सुषमा आरे मे तीन पल्योपम की स्थिति सहित उत्पन्न होने वाले की अपेक्षा से है। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य से एक समय (सर्वविरति परिणाम एक समय का भी सभव है) और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि तक। समग्र चारित्रकाल भी इतना है।

भरत-ऐरावत कर्मभूमिक मनुष्य पुरुष भी भरत-ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तक तद्रूप मे निरन्तर रह सकता है। यह पूर्वकोटि आयु वाले किसी विदेहपुरुष को भरतादिक्षेत्र मे सहरण कर लाने पर भरतक्षेत्रीय व्यपदेश होने से भवायु के क्षय होने पर एकान्त सुषमाकाल के प्रारभ मे उत्पन्न होने वाले मनुष्यपुरुष की अपेक्षा से समझना चाहिए।

धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि तक संचिट्ठणा समझनी चाहिए।

पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह कर्मभूमिक मनुष्यपुरुष उसी रूप मे निरन्तर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व तक रह सकता है। वह बार बार वही सात बार उत्पत्ति की अपेक्षा से समझना चाहिए। इसके बाद अवश्य गति और योनि का परिवर्तन होता ही है।

धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि।

अकर्मभूमिक मनुष्य पुरुष तद्भाव को छोडे बिना निरन्तर जन्म की अपेक्षा से पल्योपमासंख्येयभाग न्यून एक पल्योपम तक और उत्कर्ष से तीन पल्योपम तक रह सकता है। सहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त (यह अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर अकर्मभूमि मे सहरण की अपेक्षा से है।) है और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तक। यह देशोन पूर्वकोटि आयु वाले पुरुष का उत्तरकुरु आदि मे सहरण हो और वह वही मर कर वही उत्पन्न हो, इस अपेक्षा से है। देशोनता गर्भकाल की अपेक्षा से है। गर्भस्थित के सहरण का प्रतिषेध है।

हैमवत-हैरण्यवत अकर्मभूमिक मनुष्य पुरुष जन्म की अपेक्षा जघन्य से पल्योपमासख्येयभाग न्यून एक पल्योपम तक और उत्कर्ष से परिपूर्ण पल्योपम तक उसी रूप मे रह सकता है। सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि अधिक एक पल्योपम रह सकता है।

हरिवर्ष-रम्यकवर्ष अकर्मभूमिक मनुष्य-पुरुष जन्म की अपेक्षा जघन्य पल्योपमासख्येय भाग न्यून दो पल्योपम तक और उत्कर्ष से परिपूर्ण दो पल्योपम तक। जघन्य और उत्कर्ष से वहाँ इतनी ही आयु सम्भव है। सहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त (क्योकि अन्तर्मुहूर्त से कम आयु वाले पुरुष का सहरण नही होता) और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि अधिक दो पल्योपम तक तद्रूप मे रह सकता है।

देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य-पुरुष क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य से पल्योपमासख्येय भाग न्यून तीन पल्योपम और उत्कर्ष से परिपूर्ण तीन पल्योपम तक उसी रूप मे रह सकता है। सहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से देशोनपूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम तक उसी रूप मे रह सकता है।

अन्तर्द्वीपक मनुष्य-पुरुष जन्म की अपेक्षा देशोन पल्योपम का असख्येय भाग तक और उत्कर्ष से परिपूर्ण पल्योपम का असख्येय भाग तक रह सकता है। सहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिअधिक पल्योपमासख्येय भाग तक उसी पुरुषपर्याय मे रह सकता है।

देवपुरुषो की जो स्थिति पहले बताई गई है, वही उनकी सचिट्ठणा (कायस्थिति) भी है।

शका की जा सकती है कि अनेक भव-भावो की अपेक्षा से कायस्थिति होती है वह एक ही भव मे कैसे हो सकती है? यह दोष नही है क्योकि यहाँ केवल उतनी ही विवक्षा है कि देवपुरुष देव पुरुषत्व को छोडे बिना कितने काल तक रह सकता है। देव मर कर अनन्तर भव मे देव नही होता अत यह अतिदेश किया गया है कि जो देवो की भवस्थिति है वही उनकी सचिट्ठणा है।

अन्तरद्वार

५५. पुरिसस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेण वणस्सइकालो ।

तिरिक्खजोणियपुरिसाणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। एवं जाव खहयर-तिरिक्खजोणियपुरिसाणं।

मणुस्सपुरिसाणं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वणस्सइकालो। धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेण अणंतकालं अणंताओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ जाव अवड्ढ पोग्गल-परियट्टं देसूणं।

कम्मभूमगाणं जाव विदेहो जाव धम्मचरणे एक्को समओ सेस जहित्थीणं जाव अंतरदीवगाण।

देवपुरिसाणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। भवणवासिदेवपुरिसाणं ताव जाव सहस्सारो, जहन्नेणं अंतोमुहूत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

आणतदेवपुरिसाणं भते! केवइयं कालं अंतरं होई?

गोयमा! जहन्नेण वासपुहुत्तं उक्कोसेण वणस्सइकालो। एवं जाव गेवेज्जदेवपुरिसस्स वि। अणुत्तरोववाइयदेवपुरिसस्स जहन्नेणं वासपुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं साइरेगाइं।

[५५] भते! पुरुष का अन्तर कितना कहा गया है? (अर्थात् पुरुष, पुरुष-पर्याय छोड़ने के बाद फिर कितने काल पश्चात् पुरुष होता है?)

गौतम! जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल के वाद पुरुष पुन पुरुष होता है।

भगवन्! तिर्यक्योनिक पुरुषो का अन्तर कितना कहा गया है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का अन्तर है। इसी प्रकार खेचर तिर्यक्योनि पर्यन्त के विषय मे जानना चाहिए।

भगवन्! मनुष्य पुरुषो का अन्तर कितने काल का है?

गौतम! क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का अन्तर है। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से अनन्त काल अर्थात् इस अवधि में अनन्त उत्सर्पिणिया-अवसर्पिणिया वीत जाती है यावत् वह देशोन अर्धपुद्गल परावर्तकाल होता है।

कर्मभूमि के मनुष्य का यावत् विदेह के मनुष्यो का अन्तर यावत् धर्माचरण की अपेक्षा एक समय इत्यादि जो मनुष्यस्त्रियो के लिए कहा गया है वही यहाँ कहना चाहिए। अन्तर्द्वीपो के अन्तर तक उसी प्रकार कहना चाहिए।

देवपुरुषो का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। यही कथन भवनवासी देवपुरुष से लगा कर सहस्रार देवलोक तक के देव पुरुषो के विषय मे समझना चाहिए।

भगवन्! आनत देवपुरुषो का अन्तर कितने काल का कहा गया है?

गौतम! जघन्य से वर्षपृथक्त्व (आठ वर्ष) और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल का अन्तर होता है।

इसी प्रकार ग्रैवेयक देवपुरुषो का भी अन्तर जानना चाहिये ।

अनुत्तरोपपातिक देवपुरुषो का अन्तर जघन्य से वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट सख्यात सागरोपम से कुछ अधिक का होता है ।

विवेचन—पूर्व सूत्र मे उसी पर्याय मे निरन्तर रहने का कालमान वताया गया था । इस सूत्र मे जीव अपनी वर्तमान पर्याय को छोडने के वाद पुन. उस पर्याय को जितने समय बाद पुन प्राप्त करता है, यह कहा है उसको अन्तर कहा जाता है । यहाँ तिर्यंच, मनुष्य और देव पुरुषो के अन्तर की विवक्षा है ।

सामान्य रूप से पुरुष, पुरुषपर्याय छोडने के पश्चात् कितने काल के बाद पुन. पुरुषपर्याय प्राप्त करता है, ऐसा गौतमस्वामी द्वारा प्रश्न किये जाने पर भगवान् कहते हैं कि गौतम ! जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल का अन्तर होता है । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

जव कोई पुरुष उपशमश्रेणी पर चढ कर पुरुषवेद को उपशान्त कर देता है और एक समय के वाद ही मर कर वह देव-पुरुष मे ही नियम से उत्पन्न होता है, इस अपेक्षा से एक समय का अन्तर कहा गया है ।

यहाँ कोई शका करता है कि स्त्री और नपुसक भी श्रेणी पर चढते हैं तो उनका अन्तर एक समय का क्यो नही कहा ? इसका उत्तर है कि श्रेणी पर आरूढ स्त्री या नपुसक वेद का उपशमन करने के अनन्तर मर कर तथाविध शुभ अध्यवसाय से मर कर नियम से देव पुरुषो मे ही उत्पन्न होते हैं देव स्त्रियो या नपुसको मे नही । अत उनका अन्तर एक समय नही होता ।

उत्कर्ष से पुरुष का अन्तर वनस्पतिकाल कहा गया है । वनस्पतिकाल को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'काल से अनन्त उत्सर्पिणिया और अनन्त अवसर्पिणिया उसमे बीत जाती हैं, क्षेत्र से अनन्त लोक के प्रदेशो का अपहार हो जाता है और असख्येय पुद्गलपरावर्त बीत जाते हैं । वे पुद्गलपरावर्त आवलिका के समयो के असख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं ।'[1]

सामान्य से पुरुष का अन्तर वताने के पश्चात् तिर्यक् पुरुष आदि विशेषणो—भेदो की अपेक्षा अन्नर का कथन किया गया है ।

तिर्यक्योनि पुरुषो का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है । इस प्रकार जैसा तिर्यंच स्त्रियो का अन्तर वताया गया है, वही अन्तर तिर्यंक् पुरुषो का भी समझना चाहिए । जलचर, स्थलचर, खेचर पुरुषो का भी जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमश अन्तर्मुहूर्त और वनस्पतिकाल जानना चाहिए ।

मनुष्य स्त्रियो का जो अन्तर पूर्व मे कहा गया है, वही मनुष्य पुरुषो का भी अन्तर समझना चाहिए । वह इस प्रकार है—

सामान्यत मनुष्य-पुरुष का क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल का अन्तर है । धर्मचरण की अपेक्षा जघन्य से एक समय (क्योकि चारित्र स्वीकार करने के पश्चात् गिरकर पुन एक समय मे चारित्रपरिणाम हो सकते हैं), उत्कर्ष से देशोन अपार्धपुद्गलपरावर्त है ।

---

१ 'अणताओ उस्सप्पिणीओ ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणता लोगा, असखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते ण पुग्गलपरियट्टा आवलियाए असखेज्जइ भागो ।' इति

इसी प्रकार भरत, ऐरवत, पूर्वविदेह, अपरविदेह कर्मभूमि के मनुष्य का जन्म को लेकर, तथा चारित्र को लेकर जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए।

सामान्य से अकर्मभूमिक मनुष्य पुरुष का जन्म को लेकर अन्तर जघन्य मे अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष है, क्योकि वह मर कर जघन्य स्थिति के देवो मे उत्पन्न होकर वहाँ से च्यव कर कर्मभूमि मे स्त्री या पुरुष के रूप मे पैदा होकर पुन अकर्मभूमि मनुष्य के रूप मे उत्पन्न हो सकता है। बीच मे कर्मभूमि मे पैदा होकर मरने का कथन इसलिए किया गया है कि देवभव से च्यवकर कोई जीव सीधा अकर्मभूमियो मे मनुष्य या तिर्यक् सज्ञी पचेन्द्रिय के रूप मे उत्पन्न नही होता। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल का अन्तर है।

सहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त (अकर्मभूमि से कर्मभूमि मे सहृत किये जाने के बाद अन्तर्मुहूर्त मे तथाविध बुद्धिपरिवर्तन होने से पुनः वही लाकर रख देने की अपेक्षा से) उत्कर्ष से वनस्पतिकाल। इतने काल के बीतने पर अकर्मभूमियो मे उत्पत्ति की तरह संहरण भी नियम से होता है।

इसी तरह हैमवत हैरण्यवतादि अकर्मभूमियो मे जन्म से और सहरण से जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए। इसी तरह अन्तर्द्वीपक अकर्मभूमिक मनुष्य पुरुष की वक्तव्यता तक पूर्ववत् अन्तर कहना चाहिए।

मनुष्य-पुरुष का अन्तर बताने के पश्चात् देवपुरुष का अन्तर बताते हुए सूत्रकार कहते हैं कि सामान्य से देवपुरुष का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है। देवभव से च्यवकर गर्भज मनुष्य मे उत्पन्न होकर पर्याप्ति पूरी करने के बाद तथाविध अध्यवसाय से मरकर पुन. वह जीव देवरूप मे उत्पन्न हो सकता है, इस अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल का अन्तर बताया है, उत्कर्ष से वनस्पतिकाल का अन्तर है। इस प्रकार असुरकुमार से लगाकर सहस्रार (आठवे) देवलोक तक के देवो का अन्तर कहना चाहिए।

आनतकल्प (नौवें देवलोक) के देव का अन्तर जघन्य से वर्षपृथक्त्व है। क्योकि आनत आदि कल्प से च्यवित होकर पुन आनत आदि कल्प मे उत्पन्न होने वाला जीव नियम से (मनुष्यभव मे) चारित्र लेकर ही वहाँ उत्पन्न हो सकता है। चारित्र लिए बिना कोई जीव आनत आदि कल्पो मे जन्म नही ले सकता। चारित्र आठ वर्ष की अवस्था से पूर्व नही होता अत आठ वर्ष तक की अवधि का अन्तर बताने के लिए वर्षपृथक्त्व कहा है। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल का अन्तर है। अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत देवपुरुष का अन्तर जन्घय से वर्षपृथक्त्व और उत्कर्ष से कुछ अधिक सख्येय सागरोपम है। अन्य वैमानिक देवो मे उत्पत्ति के कारण सख्येय सागर और मनुष्यभवो मे उत्पत्ति को लेकर कुछ अधिकता समझनी चाहिए।

यद्यपि यह कथन सामान्य रूप से सब अनुत्तरोपपातिक देवो के लिए है तथापि यह विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानो की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि सर्वार्थसिद्ध विमान मे एक बार ही उत्पत्ति होती है, अत अन्तर की संभावना ही नही है।

वृत्तिकार ने अन्तर के विषय मे मतान्तर का उल्लेख करते हुए कहा है कि भवनवासी से लेकर ईशान देवलोक तक के देव का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, सनत्कुमार से लगाकर सहस्रार तक

जघन्य अन्तर नौ दिन, आनतकल्प से लगाकर अच्युतकल्प तक नौ मास, नव ग्रैवेयकों में और सर्वार्थसिद्ध को छोड़कर शेष अनुत्तरोपपातिक देवों का अन्तर नौ वर्ष का है। ग्रैवेयक तक सर्वत्र उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल है। विजयादि चार महाविमानों में दो सागरोपम का उत्कृष्ट अन्तर है।[1]

अल्पबहुत्व

५६. अप्पाबहुयाणि जहेवित्थीणं जाव एतेसिं णं भंते ! देवपुरिसाणं भवणवासीणं वाणमंतराणं जोतिसियाणं वेमाणियाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वेमाणियदेवपुरिसा, भवणवइदेवपुरिसा असंखेज्जगुणा, वाणमंतर-देवपुरिसा असंखेज्जगुणा, जोइसियादेवपुरिसा संखेज्जगुणा।

एतेसिं णं भंते ! तिरिक्खजोणिय-पुरिसाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं, मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमगाणं अकम्मभूमगाणं अंतरदीवगाणं, देवपुरिसाणं भवणवासीणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं सोहम्माणं जाव सव्वट्ठसिद्धगाणं य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अंतरदीवगमणुस्सपुरिसा, देवकुरुत्तरकुरुअकम्मभूमग मणुस्सपुरिसा दो वि संखेज्जगुणा हरिवास रम्मगवास अकम्मभूमग मणुस्सपुरिसा दो वि संखेज्जगुणा, हेमवत हेरण्यवतवास अकम्मभूमग मणुस्सपुरिसा दोवि संखेज्जगुणा;

भरहेरवतवास कम्मभूमग मणुस्सपुरिसा दोवि संखेज्जगुणा,
पुव्वविदेह अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्सपुरिसा दोवि संखेज्जगुणा,
अणुत्तरोववाइय देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
उवरिमगेविज्ज देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
मज्झिमगेविज्ज देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
हेट्ठिमगेविज्ज देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
अच्चुयकप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा, जाव
आणतकप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
जाव माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

---

१ आईसाणादमरस्स अंतरं हीणयं मुहुत्ततो।
आसहसारे अच्चुयणुत्तर दिणमासवास नव ॥१॥
थावरकालुक्कोसो सव्वट्ठे बीयओ न उववाओ।
दो अयरा विजयादिसु · ॥ —मलयगिरिवृत्ति

सणंकुमारकप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
ईसाणकप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
सोहम्मे कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
भवणवासिदेवपुरिसा असखेज्जगुणा,
खहयर तिरिक्खजोणिय पुरिसा असखेज्जगुणा,
थलयर तिरिक्खजोणिय पुरिसा संखेज्जगुणा,
जलयर तिरिक्खजोणिय पुरिसा असंखेज्जगुणा,
वाणमंतर देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
जोतिसियंदेवपुरिसा सखेज्जगुणा।

[५६] स्त्रियो का जैसा अल्पवहुत्व कहा यावत् हे भगवन् ! देव पुरुषो—भवनपति, वानव्यतर, ज्योतिष्क और वैमानिको मे कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ?

गौतम ! सबसे थोडे वैमानिक देवपुरुष, उनसे भवनपति देवपुरुष असख्येयगुण, उनसे वानव्यन्तर देवपुरुष असख्येय गुण, उनसे ज्योतिष्क देवपुरुष सख्येयगुणा है।

हे भगवन् ! इन तिर्यंचयोनिक पुरुषो—जलचर, स्थलचर और खेचर; मनुष्य पुरुषो—कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक, अन्तर्द्वीपको मे, देवपुरुषो—भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको—सौधर्म देवलोक यावत् सर्वार्थसिद्ध देवपुरुषो मे कौन किससे अल्प, वहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े अन्तर्द्वीपो के मनुष्यपुरुष, उनसे देवकुरु उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्यपुरुष दोनो सख्यातगुण, उनसे हरिवास रम्यकवास अकर्मभूमिक मनुष्यपुरुष दोनो सख्यातगुण, उनसे हेमवत हैरण्यवत अकर्मभूमिक मनुष्यपुरुष दोनो सख्यातगुण, उनसे भरत ऐरवतवास कर्मभूमि के मनुष्यपुरुष दोनो सख्यातगुण, उनसे पूर्वविदेह अपरविदेह कर्मभूमि मनुष्यपुरुष दोनो सख्यातगुण, उनसे अनुत्तरोपपातिक देवपुरुष असख्यातगुण, उनसे उपरिम ग्रैवेयक देव पुरुष सख्यातगुण, उनसे मध्यम ग्रैवेयक देवपुरुष सख्यातगुण, उनसे अधस्तन ग्रैवेयक देवपुरुष सख्यातगुण, उनसे अच्युतकल्प के देवपुरुष सख्यातगुण, उनसे यावत् आनतकल्प के देवपुरुष सख्यातगुण, उनसे सहस्रारकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण, उनसे महाशुक्रकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण, उनसे यावत् महेन्द्रकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण, उनसे सनत्कुमारकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण, उनसे ईशानकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण, उनसे सौधर्मकल्प के देवपुरुष सख्यातगुण, उनसे भवनवासी देवपुरुष असख्यातगुण, उनसे खेचर तिर्यंचयोनिक पुरुष असख्यातगुण, उनसे स्थलचर तिर्यंचयोनिक पुरुष सखेयगुण, उनसे जलचर तिर्यंचयोनिक पुरुष असखेयगुण, उनसे वाणव्यन्तर देवपुरुष सखेयगुण, उनसे ज्योतिषी देवपुरुष सखेयगुण हैं।

विवेचन—सामान्य स्त्री-प्रकरण मे स्त्रियो के अल्पबहुत्व का कथन जिस प्रकार किया गया है, उसी प्रकार से सामान्य पुरुषो का अल्पबहुत्व कहना चाहिए। यहाँ पर अल्पबहुत्व का प्रकरण यावत् देवपुरुषो के अल्पबहुत्व प्रकरण से पहले पहले का गृहीत हुआ है। यहाँ पाच प्रकार से अल्प

बहुत्व बताया है। जिसमे पहला सामान्य से तिर्यंच, मनुष्य और देव पुरुषो को लेकर, दूसरा तिर्यंच-योनिक जलचर, स्थलचर, खेचर पुरुषो को लेकर, तीसरा कर्मभूमिक आदि तीन प्रकार के मनुष्यो को लेकर, चौथा चार प्रकार के देवो को लेकर और पाचवा सबको मिश्रित करके अल्पबहुत्व बताया है।

आदि के तीन अल्पबहुत्व तो जैसे इनकी स्त्रियो को लेकर कहे हैं वैसे ही यहाँ पुरुषो को लेकर कहना चाहिए। इन तीन अल्पबहुत्वो का यहाँ 'यावत्' पद से ग्रहण किया है। वह स्त्री-प्रकरण के अल्पबहुत्व मे देख लेना चाहिए। अन्तर केवल यह है कि 'स्त्री' की जगह 'पुरुष' पद का प्रयोग करना चाहिए।

चौथा देवपुरुष सम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र मे साक्षात् कहा है। वह इस प्रकार है—सबसे थोड़े अनुत्तरोपपातिक देवपुरुष हैं, क्योकि उनका प्रमाण क्षेत्रपल्योपम के असख्येय भागवर्ती आकाशप्रदेशो की राशि तुल्य हैं। उनसे उपरितन ग्रैवेयक देवपुरुष सख्येयगुण हैं। क्योकि वे बृहत्तर क्षेत्रपल्योपम के असख्येयभागवर्ती आकाश प्रदेशो की राशि प्रमाण है। विमानो की बहुलता के कारण सख्येयगुणता है। अनुत्तर देवो के पाच विमान हैं और उपरितन ग्रैवेयक देवो के सौ विमान हैं। प्रत्येक विमान मे असख्येय देव हैं। जैसे-जैसे विमान नीचे है उनमे देवो की सख्या प्रचुरता से है। इससे जाना जाता है कि अनुत्तरविमान देवपुरुषो से उपरितन ग्रैवेयक देवपुरुष सख्येयगुण हैं।

उपरितन ग्रैवेयक देवपुरुषो की अपेक्षा मध्यम ग्रैवेयक देवपुरुष सख्येयगुण हैं। उनसे अधस्तन ग्रैवेयक देवपुरुष सख्येयगुण हैं, उनसे अच्युतकल्प के देव पुरुष सख्येयगुण हैं। उनसे आरणकल्प के देव पुरुष सख्येयगुण हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि यद्यपि आरण और अच्युत कल्प दोनो समश्रेणी और समान विमानसख्या वाले है तो भी कृष्णपाक्षिक जीव तथास्वभाव से दक्षिण दिशा मे अधिक रूप मे उत्पन्न होते है।

जीव दो प्रकार के हैं—कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक। जिन जीवो का कुछ कम अर्ध-पुद्गलपरावर्त ससार शेष रहा है वे शुक्लपाक्षिक हैं। इससे अधिक दीर्घ ससार वाले कृष्ण-पाक्षिक हैं।[1]

कृष्णपाक्षिको की अपेक्षा शुक्लपाक्षिक थोडे हैं। अल्पससारी जीव थोडे ही हैं। कृष्ण-पाक्षिक बहुत है, क्योकि दीर्घससारी जीव अनन्तानन्त हैं।

शका हो सकती है कि यह कैसे माना जाय कि कृष्णपाक्षिक प्रचुरता से दक्षिणदिशा मे पैदा होते हैं? आचार्यो ने कहा है कि ऐसा स्वाभाविक रूप से ही होता है। कृष्णपाक्षिक प्राय दीर्घससारी होते हैं और दीर्घससारी प्राय बहुत पापकर्म के उदय से होते हैं। बहुत पाप का उदय वाले जीव प्राय क्रूरकर्मा होते है और क्रूरकर्मा जीव प्राय तथास्वभाव से भवसिद्धिक होते हुए भी दक्षिण दिशा मे उत्पन्न होते हैं।[2] अत दक्षिण दिशा मे कृष्णपाक्षिको की प्रचुरता होने से अच्युतकल्प देव-पुरुषो की अपेक्षा आरणकल्प के देवपुरुष सख्येयगुण है।

---

१ जेसिमवड्ढो पुग्गलपरियट्टो सेसओ य ससारो।
ते सुक्कपक्खिया खलु अहिए पुण कण्हपक्खीआ॥

२ पायमिह कूरकम्मा भवसिद्धिया वि दाहिणिल्लेसु।
नेरइय-तिरिय-मणुया, सुराइठाणेसु गच्छन्ति॥

आरणकल्प के देवपुरुषो की अपेक्षा प्राणतकल्प के देवपुरुष संख्येयगुण हैं। उनसे आनतकल्प के देवपुरुष सख्येयगुण हैं। यहाँ भी प्राणतकल्प की अपेक्षा आनतकल्प मे कृष्णपाक्षिक दक्षिणदिशा मे ज्यादा होने से सख्येयगुण हैं। सब अनुत्तरवासी देव और आनतकल्प वासी पर्यन्त देवपुरुष प्रत्येक क्षेत्रपल्योपम के असख्येय भागवर्ती आकाश प्रदेशो की राशि प्रमाण है। केवल असख्येय भाग असख्येय प्रकार का है इसलिए पूर्वोक्त सख्येयगुणत्व मे कोई विरोध नही है।

आनतकल्प देवपुरुषो से सहस्रारकाल वासी देवपुरुष असख्येयगुण हैं क्योकि वे घनीकृत लोक की एक प्रादेशिक श्रेणी के असख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश है, उनके तुल्य हैं। उनसे महाशुक्रकल्पवासी देवपुरुष असख्येयगुण है। क्योकि वे वृहत्तर श्रेणी के असखयेय भागवर्ती आकाश प्रदेश राशि तुल्य हैं। विमानो की बहुलता से यह असख्येय गुणता जाननी चाहिए। सहस्रारकल्प मे विमानो की सख्या छह हजार है जबकि महाशुक्र विमान मे चालीस हजार विमान हैं। नीचे-नीचे के विमानो मे ऊपर के विमानों की अपेक्षा अधिक देवपुरुष होते हैं।

महाशुक्रकल्प के देवपुरुषो की अपेक्षा लान्तक देवपुरुष असख्येयगुण हैं। क्योकि वे वृहत्तम श्रेणी के असख्येय भागवर्ती आकाश प्रदेश राशि प्रमाण हैं। उनसे ब्रह्मलोकवासी देवपुरुष असख्येय-गुण हैं। क्योकि वे अधिक वृहत्तम श्रेणी के असख्येयभागगत आकाशप्रदेशराशि प्रमाण हैं। उनसे माहेन्द्रकल्पवासी देवपुरुष असख्येयगुण हैं क्योकि वे और अधिक वृहत्तम श्रेणी के असख्येय भागगत आकाश प्रदेशराशि तुल्य हैं। उनसे सनत्कुमारकल्प के देव असख्येयगुण हैं। क्योकि विमानो की बहुलता है। सनत्कुमारकल्प में बारह लाख विमान हैं और माहेन्द्रकल्प मे आठ लाख विमान हैं। दूसरी बात यह है कि सनत्कुमारकल्प दक्षिणदिशा मे है और माहेन्द्रकल्प उत्तर दिशा मे है। दक्षिणदिशा मे बहुत से कृष्णपाक्षिक उत्पन्न होते है। इसलिए माहेन्द्रकाल से सनत्कुमारकल्प मे देवपुरुष असख्येयगुण हैं। सहस्रारकल्प से लगाकर सनत्कुमारकल्प के देव सभी अपने-अपने स्थान में घनीकृत लोक की एक श्रेणी के असख्येयभाग मे रहे हुए आकाशप्रदेशो की राशि प्रमाण हैं परन्तु श्रेणी का असख्येय भाग असख्येय तरह का होने से असख्यातगुण कहने मे कोई विरोध नही आता।

सनत्कुमारकल्प के देवपुरुषो से ईशानकल्प के देवपुरुष असख्येयगुण हैं क्योकि वे अगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेशराशि के द्वितीय वर्गमूल को तृतीय वर्गमूल से गुणित करने पर जितनी प्रदेशराशि होती है उतनी घनीकृत लोक की एक प्रादेशिक श्रेणियो मे जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उसका जो बत्तीसवा भाग है, उतने प्रमाण वाले हैं।

ईशानकल्प के देवपुरुषो से सौधर्मकल्पवासी देवपुरुष सख्येयगुण हैं। यह विमानों की बहुलता के कारण जानना चाहिए। ईशानकल्प मे अट्ठावीस लाख विमान हैं और सौधर्मकल्प मे बत्तीस लाख विमान हैं। दूसरी बात यह है कि सौधर्मकाल दक्षिणदिशा मे है और ईशानकल्प उत्तरदिशा मे है। दक्षिण दिशा में तथास्वभाव से कृष्णपाक्षिक अधिक उत्पन्न होते हैं अत: ईशानदेवलोक के देवो से सौधर्मदेवलोक के देव सख्यातगुण होते हैं।

यहाँ एक शका होती है कि सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प में भी उक्त युक्ति कही है। फिर वहाँ तो माहेन्द्र की अपेक्षा सनत्कुमार मे देवो की संख्या असख्यातगुण कही है और यहाँ सौधर्म मे

ईशान मे संख्यातगुण ही प्रमाण बताया है, ऐसा क्यो ? इसका उत्तर यही है कि तथास्वभाव से ही ऐसा है। प्रज्ञापना आदि मे सर्वत्र ऐसा ही कहा गया है।

सौधर्म देवो से भवनवासी देव असख्येयगुण हैं। क्योकि वे अंगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेशराशि के प्रथम वर्गमूल मे द्वितीय वर्गमूल का गुणा करने से जितनी प्रदेशराशि होती है, उतनी घनीकृत लोक की एक प्रादेशिकी श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश हैं, उनके वत्तीसवें भाग प्रमाण है।

उनसे व्यन्तर देव असख्येयगुण हैं क्योकि वे एक प्रतर के सख्येय कोडाकोडी योजन प्रमाण एक प्रादेशिकी श्रेणी प्रमाण जितने खण्ड होते हैं, उनका वत्तीसवें भाग प्रमाण हैं। उनसे ज्योतिष्क देव सख्येयगुण हैं। क्योकि दो सौ छप्पन अंगुल प्रमाण एक प्रादेशिकी श्रेणी जितने एक प्रतर मे जितने खण्ड होते हैं, उनके वत्तीसवें भाग प्रमाण हैं।

अव पाचवा अल्पवहुत्व कहते हैं—

सवसे थोड़े अन्तर्द्वीपिक मनुष्य है, क्योकि क्षेत्र थोड़ा है, उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यपुरुष संख्येयगुण है, क्योकि क्षेत्र वहुत है। स्वस्थान मे दोनो परस्पर तुल्य हैं क्षेत्र समान होने से। उनसे हरिवर्ष रम्यकवर्ष के मनुष्यपुरुष संख्येयगुण हैं, क्योकि क्षेत्र अतिबहुल होने से। स्वस्थान मे परस्पर तुल्य हैं क्योकि क्षेत्र समान हैं।

उनसे हैमवत हैरण्यवत के मनुष्यपुरुष सख्येयगुण हैं क्योंकि क्षेत्र की अल्पता होने पर भी स्थिति की अल्पता के कारण उनकी प्रचुरता है। स्वस्थान मे परस्पर तुल्य हैं।

उनसे भरत ऐरवत कर्मभूमि के मनुष्यपुरुष सख्येयगुण है, क्योकि अजित प्रभु के काल मे उत्कृष्ट पद मे स्वभावतः ही मनुष्यपुरुषो की अति प्रचुरता होती है। स्वस्थान मे दोनो परस्पर तुल्य हैं, क्योंकि क्षेत्र की तुल्यता है।

उनसे पूर्वविदेह पश्चिमविदेह के मनुष्य पुरुष सख्येयगुण हैं। क्योकि क्षेत्र की बहुलता होने से अजितस्वामी के काल की तरह स्वभाव से ही मनुष्यपुरुषो की प्रचुरता होती है। स्वस्थान मे परस्पर दोनो तुल्य हैं।

उनसे अनुत्तरोपपातिक देव असख्येयगुण हैं, क्योकि वे क्षेत्रपल्योपम के असख्येय भागवर्ती आकाश प्रदेशराशि प्रमाण हैं।

उनसे उपरितन ग्रैवेयक देवपुरुष, मध्यम ग्रैवेयक देवपुरुष, अधस्तन ग्रैवेयक देवपुरुष, अच्युत-कल्प देवपुरुष, आरणकल्प देवपुरुष, प्राणतकल्प देवपुरुष, आनतकल्प देवपुरुष यथोत्तर (क्रमश) सख्येयगुण हैं।

उनसे सहस्रारकल्प देवपुरुष, लान्तककल्प देवपुरुष, ब्रह्मलोककल्प देवपुरुष, माहेन्द्रकल्प देव-पुरुष, सनत्कुमारकल्प देवपुरुष, ईशानकल्प देवपुरुष यथोत्तर (क्रमश) असख्येयगुण हैं। उनसे सौधर्म-कल्प के देवपुरुष संख्येयगुण हैं।

सौधर्मकल्प देवपुरुषो से भवनवासी देवपुरुष असख्येयगुण हैं।

उनसे खेचर तिर्यंचयोनिक पुरुष असख्येयगुण हैं। क्योंकि वे प्रतर के असख्येय भागवर्ती असख्यातश्रेणिगत आकाश प्रदेशराशि प्रमाण हैं।

उनसे स्थलचर सख्येयगुण, उनसे जलचर सख्येय गुण, उनसे वानव्यन्तर देव सख्येयगुण हैं। क्योकि वानव्यन्तर देव एक प्रतर मे सख्येय योजन कोटि प्रमाण एक प्रादेशिक श्रेणी के बराबर जितने खण्ड होते हैं, उनके बत्तीसवें भाग प्रमाण हैं। उनसे ज्योतिष्क देव सख्यात गुण है। युक्ति पहले कही जा चुकी है।

पुरुषवेद की स्थिति

५७. पुरिसवेदस्स णं भंते। केवइयं कालं बंधट्ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अट्ठसंवच्छराणि उक्कोसेणं दस सागरोवमकोडाकोडीओ। दसवाससयाइं अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिई कम्मणिसेओ।

पुरिसवेदे णं भंते ! किंपगारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! वणदवग्गिजालसमाणे पण्णत्ते। से त्तं पुरिसा।

[५७] हे भगवन् ! पुरुषवेद की कितने काल की बधस्थिति है ?

गौतम ! जघन्य आठ वर्ष और उत्कृष्ट दस कोडाकोडी सागरोपम की बधस्थिति है। एक हजार वर्ष का अबाधाकाल है। अबाधाकाल से रहित स्थिति कर्मनिषेक है (उदययोग्य है)।

भगवन् ! पुरुषवेद किस प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! वन को अग्निज्वाला के समान है। यह पुरुष का अधिकार पूरा हुआ।

विवेचन—पुरुषवेद की जघन्य स्थिति आठ वर्ष की है क्योकि इससे कम स्थिति के पुरुषवेद के बध के योग्य अध्यवसाय ही नही होते। उत्कर्ष से उसकी स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है।

स्थिति दो प्रकार की कही गई है—(१) कर्मरूप से रहने वाली और (२) अनुभव मे आने वाली। यह जो स्थिति कही गई है वह कर्म-अवस्थान रूप है। अनुभवयोग्य जो स्थिति होती है वह अबाधाकाल से रहित होती है। अबाधाकाल पूरा हुए बिना कोई भी कर्म अपना फल नही दे सकता। अबाधाकाल का प्रमाण यह बताया है कि जिस कर्म की उत्कृष्ट स्थिति जितने कोडाकोडी सागरोपम की होती है उसकी अबाधा उतने ही सौ वर्ष की होती है। पुरुषवेद की उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागरोपम की है, अत उसकी अबाधा दस सौ (एक हजार) वर्ष होती है। अबाधा-काल से रहित स्थिति ही अनुभवयोग्य होती है—यही कर्मनिषेक है अर्थात् कर्मदलिको की उदया-वलिका मे आने की रचनाविशेष है।

पुरुषवेद को दावाग्नि-ज्वाला समान कहा है अर्थात् वह प्रारम्भ मे तीव्र कामाग्नि वाला होता है और शीघ्र शान्त भी हो जाता है।

नपुंसक निरूपण

५८ से किं तं णपुंसका ?

णपुंसका तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—नेरइय नपुंसका, तिरिक्खजोणिय-नपुंसका, मणुस्स-जोणिय-णपुंसका।

से किं तं नेरइयनपुंसका ?

नेरइयनपुंसका सत्तविहा पण्णत्ता, तंजहा—

रयणप्पभापुढविनेरइयनपुंसका,

सक्करपभापुढविनेरइयनपुंसका,

जाव अहेसत्तमपुढविनेरइयनपुंसका।

से तं नेरइयनपुंसका।

से किं तं तिरिक्खजोणियनपुंसका ?

तिरिक्खजोणियनपुंसका पंचविहा पण्णत्ता—

एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका,

बेइंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका,

तेइंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका,

चउरिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका,

पंचिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका।

से किं त एगिन्दियतिरिक्खजोणियनपुंसका ?

एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—

पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका जाव वणस्सइकाइयतिरिक्खजोणियनपुंसका।

से त्तं एगिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका।

से किं तं बेइंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका ?

बेइंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका अणेगविहा पण्णत्ता।

से त्तं बेइंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका।

एव तेइंदिया वि, चउरिंदिया वि।

से किं तं पंचिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका ?

पंचिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका तिविहा पण्णत्ता, तजहा—

जलयरा, थलयरा, खहयरा।

से किं तं जलयरा ?

सो चेव पुव्वुत्तभेदो आसालियवज्जिओ भाणियव्वो। से त पंचिंदियतिरिक्खजोणियनपुंसका।

से किं त मणुस्सनपुंसका ?

मणुस्सनपुंसका तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—

कम्मभूमगा, अकम्मभूमगा, अंतरदीवगा भेदो जाव भाणियव्वो।

[५९] भते ! नपुसक क्या हैं—कितने प्रकार के हैं ?

गौतम ! नपुसक तीन प्रकार के हैं, यथा—१ नैरयिक नपुसक, २ तिर्यक्योनिक नपुसक और ३ मनुष्ययोनिक नपुसक ।

नैरयिक नपुसक कितने प्रकार के है ?

नैरयिक नपुसक सात प्रकार के हैं, यथा—रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक नपुसक, शर्कराप्रभापृथ्वी नैरयिक यावत् अध सप्तमपृथ्वी नैरयिक नपुसक ।

तिर्यंचयोनिक नपुसक कितने प्रकार के है ?

तिर्यंचयोनिक नपुसक पाच प्रकार के हैं, यथा—एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुसक, द्वीन्द्रिय, तिर्यंचयोनिक नपुसक, त्रीन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक, चतुरिन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक और पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुसक ।

एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक कितने प्रकार के हैं ?

एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक पाच प्रकार के हैं, यथा—

पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक यावत् वनस्पतिकायिक तिर्यक्योनिक नपुसक ।

यह एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुसक का अधिकार हुआ ।

भते ! द्वीन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक कितने प्रकार के है ?

गौतम ! अनेक प्रकार के हैं । यह द्वीन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुमक का अधिकार हुआ ।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय का कथन करना ।

पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपु सक कितने प्रकार के हैं ?

वे तीन प्रकार के हैं—जलचर, स्थलचर और खेचर ।

जलचर कितने प्रकार के हैं ?

वही पूर्वोक्त भेद आसालिक को छोडकर कहने चाहिए ।

ये पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपु सक का अधिकार हुआ ।

भते ! मनुष्य नपु सक कितने प्रकार के है ?

वे तीन प्रकार के हैं, यथा—कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक और अन्तरद्वीपिक पूर्वोक्त भेद कहने चाहिए ।

विवेचन—पुरुष सम्बन्धी वर्णन पूरा करने के पश्चात् शेष रहे नपु सक के सम्बन्ध मे यहाँ भेद-प्रभेद सहित निरूपण किया गया है । नपु सक के तीन भेद गति की अपेक्षा है—नारकनपु सक, तिर्यञ्चनपु सक और मनुष्यनपु सक । देव नपु सक नही होते । नारक नपु सको के नारकपृथ्वियो की अपेक्षा से सात भेद बताये हैं—१ रत्नप्रभापृथ्वीनारक नपु सक, २. शर्कराप्रभापृथ्वीनारक नपु सक, ३ वालुकाप्रभापृथ्वीनारक नपुंसक, ४ पकप्रभापृथ्वीनारक नपु सक, ५ धूमप्रभापृथ्वीनारक नपु सक, ६ तम.प्रभापृथ्वीनारक नपु सक और ७ अध सप्तमपृथ्वीनारक नपुंसक ।

तिर्यक्योनिक नपु सक के जाति की अपेक्षा से पाच भेद बताये हैं—एकेन्द्रियजाति नपु सक, द्वीन्द्रियजाति नपु सक, त्रीन्द्रियजाति नपु सक, चतुरिन्द्रियजाति नपु सक और पंचेन्द्रियजाति नपु सक ।

एकेन्द्रियजाति नपुसको के पाच भेद है—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय नपु सक।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय नपु सको के भेद अनेक प्रकार के है। प्रथम प्रतिपत्ति मे इनके जो भेद-प्रभेद बताये है, वे सब यहाँ कहने चाहिए।

पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनि नपु सक के तीन भेद—जलचर नपु सक, स्थलचर नपु सक और खेचर नपु सक हैं। इनके अवान्तर भेद-प्रभेद प्रथम प्रतिपत्ति के अनुसार कहने चाहिए। केवल उरपरिसर्प मे आसालिका का अधिकार नही कहना चाहिए। क्योकि आसालिका चक्रवर्ती के स्कन्धावार आदि मे कभी कभी उत्पन्न होते है और अन्तर्मुहूर्त मात्र आयु वाले होते हैं अत उनकी यहाँ विवक्षा नही है।

मनुष्य नपु सक तीन प्रकार के हैं—कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक और अन्तर्द्वीपिक नपु सक। इनके भेद-प्रभेद प्रथम प्रतिपत्ति के अनुसार कहने चाहिए।

नपुंसक की स्थिति

५९. [१] णपुंसगस्स णं भंते! केवइय कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइं।

णेरइय नपुंसगस्स णं भते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?

गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

सव्वेसिं ठिई भाणियव्वा जाव अधेसत्तमपुढविनेरइया।

तिरियजोणिय णपुंसकस्स णं भंते! केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?

गोयमा! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

एगिदिय तिरिक्खजोणिय णपु सकस्स णं भते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइ।

पुढविकाइय एगिदिय तिरिक्खजोणिय णपु सकस्स ण भते! केवइय काल ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइं। सव्वेसिं एगिदिय नपुंसकाणं ठिती भाणियव्वा।

बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय णपुंसगाण ठिई भाणियव्वा।

पंचिदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसकस्स णं भंते! केवइयं काल ठिती पण्णत्ता?

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

एवं जलयरतिरिक्खचउप्पद-थलयर-उरगपरिसप्प-भुयगपरिसप्प-खहयरतिरिक्खजोणियणपु सकाणं सव्वेसिं जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

मणुस्स णपुंसकस्स ण भते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी। धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

कम्मभूमग भरहेरवय-पुव्वविदेह-अवरविदेह मणुस्सणपुंसगस्स वि तहेव।

अकम्मभूमग मणुस्सणपुंसगस्स णं भंते ! केवइय काल ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं। साहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी। एवं जाव अंतरदीवगाण।

[५९] भगवन् ! नपुसक की कितने काल की स्थिति कही है ?
गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम।

भगवन् ! नैरयिक नपुसक की कितनी स्थिति कही है ?
गौतम ! जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम। सव नारक नपुसको की स्थिति कहनी चाहिए अध सप्तमपृथ्वीनारक नपुसक तक।

भगवन् ! तिर्यक्योनिक नपुसक की स्थिति कितनी है ?
गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि।

भगवन् ! एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक की कितनी स्थिति कही है ?
गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वावीस हजार वर्ष।

भते ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक की स्थिति कितनी कही है ?
गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वावीस हजार वर्ष। सव एकेन्द्रिय नपुसको की स्थिति कहनी चाहिए। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय नपुसको की स्थिति कहनी चाहिए।

भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक की कितनी स्थिति कही गई है ?
गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि।

इसी प्रकार जलचरतिर्यंच, चतुष्पदस्थलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प, खेचर तिर्यक्योनिक नपुसक इन सवकी जघन्य से अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटि स्थिति है।

भगवन् ! मनुष्य नपुसक की स्थिति कितनी कही है ?
गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि स्थिति।

कर्मभूमिक भरत-एरवत, पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह के मनुष्य नपुसक की स्थिति भी उसी प्रकार कहनी चाहिए।

भगवन् ! अकर्मभूमिक मनुष्य नपुसक की कितनी स्थिति कही है ?

गौतम ! जन्म की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त। संहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्वकोटि। इसी प्रकार अन्तर्द्वीपिक मनुष्य नपुंसको तक की स्थिति कहनी चाहिए।

विवेचन—नपुंसकाधिकार मे उसके भेद-प्रभेद बताने के पश्चात् उसकी स्थिति का निरूपण इस सूत्र मे किया गया है। सामान्यतया नपुंसक की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति तिर्यंच और मनुष्य नपुसक की अपेक्षा से है और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम भी स्थिति सप्तमपृथ्वी नारक नपुसक की अपेक्षा से है।

विशेष विवक्षा मे प्रथम नारक नपुसको की स्थिति कहते है। सामान्यत नैरयिक नपुसक की जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। विशेष विवक्षा मे अलग-अलग नरकपृथ्वियो के नारको की स्थिति निम्न है—

नारक नपुंसको की स्थिति

नारकपृथ्वी नपुंसक का नाम	जघन्य	उत्कृष्ट
१ रत्नप्रभानारक नपुंसक	दस हजार वर्ष	एक सागरोपम
२ शर्कराप्रभानारक नपुंसक	एक सागरोपम	तीन सागरोपम
३. वालुकाप्रभानारक नपुंसक	तीन सागरोपम	सात सागरोपम
४ पकप्रभानारक नपुंसक	सात सागरोपम	दस सागरोपम
५ धूमप्रभानारक नपुंसक	दस सागरोपम	सत्रह सागरोपम
६ नम.प्रभानारक नपुंसक	सत्रह सागरोपम	बावीस सागरोपम
७ अध सप्तमनारक नपुंसक	बावीस सागरोपम	तेतीस सागरोपम

सामान्यत तिर्यंच नपुंसको की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है।

तिर्यञ्च नपुंसको की स्थिति

तिर्यक्नपुंसकों के भेद	जघन्य	उत्कृष्ट
समुच्चय एकेन्द्रिय नपुंसक	अन्तर्मुहूर्त	बावीस हजार वर्ष
पृथ्वीकाय नपुंसक	,,	बावीस हजार वर्ष
अप्काय ,,	,,	सात हजार वर्ष
तेजस्काय ,,	,,	तीन अहोरात्रि
वायुकाय ,,	,,	तीन हजार वर्ष
वनस्पतिकाय ,,	,,	दस हजार वर्ष
द्वीन्द्रिय ,,	,,	बारह वर्ष
त्रीन्द्रिय ,,	,,	उनपचास अहोरात्रि
चतुरिन्द्रिय ,,	,,	छह मास
सामान्य पचेन्द्रिय तिर्यंच नपुंसक	,,	पूर्वकोटि
जलचर ,, ,, ,,	,,	,,
स्थलचर ,, ,, ,,	,,	,,
खेचर ,, ,, ,,	,,	,,

मनुष्य नपुंसको की स्थिति

	मनुष्य नपुंसकों के भेद	जघन्य	उत्कृष्ट
१	समुच्चय मनुष्य नपुसक	अन्तर्मुहूर्त	पूर्वकोटि
२	कर्मभूमि मनुष्य नपुसक क्षेत्र से	,,	पूर्वकोटि
३	कर्मभूमि मनुष्य नपुसक धर्माचरण से	,,	देशोन पूर्वकोटि
४	भरत-एरवत कर्म म न क्षेत्र से	,,	पूर्वकोटि
५.	,, ,, ,, धर्माचरण से	,,	देशोन पूर्वकोटि
६	पूर्वविदेह मनुष्य नपु क्षेत्र से	,,	पूर्वकोटि
७	पश्चिमविदेह मनुष्य नपु धर्माचरण से	,,	देशोन पूर्वकोटि
८	अकर्मभूमि मनुष्य नपुसक (जन्म से) (केवल सम्मूर्छिम होते हैं, गर्भज नही। युगलियो में नपुसक नही होते)	,,	वृहत्तर अन्तर्मुहूर्त
९	अकर्मभूमि मनुष्य नपुसक संहरण से	,,	देशोन पूर्वकोटि
१०	हैमवत हैरण्यवत म नपुसक जन्म से	,,	वृहत्तर अन्तर्मुहूर्त
११	,, ,, सहरण से	,,	देशोन पूर्वकोटि
१२	हरिवर्ष रम्यकवर्ष म नपुसक जन्म से	,,	वृहत्तर अन्तर्मुहूर्त
१३	,, ,, सहरण से	,,	देशोन पूर्वकोटि
१४	देवकुरु उत्तरकुरु म नपुंसक जन्म से	,,	वृहत्तर अन्तर्मुहूर्त
१५	,, ,, सहरण से	,,	देशोन पूर्वकोटि

इस प्रकार नारक नपुसक, तिर्यक् नपुसक और मनुष्य नपुंसको की स्थिति बताई गई है।

कायस्थिति (नपुंसकों की संचिट्ठणा)

५९. [२] णपुंसए णं भंते! णपुंसए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहन्नेण एक्कं समय उक्कोसेणं तरुकालो।

णेरइय णपुंसए णं भंते!०?

गोयमा! जहन्नेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। एवं पुढवीए ठिई भाणियव्वा।

तिरिक्खजोणिय णपुंसए णं भंते०?

गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। एवं एगिंदिय णपुंसकस्स, वणस्सइकाइयस्स वि एवमेव। सेसाणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोया।

बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय नपुंसकाण य जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं।

पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसकाणं णं भंते!०?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं। एवं जलयरतिरिक्ख चउप्पद थलयर उरगपरिसप्प भुयगपरिसप्प महोरगाण वि।

मणुस्स णपुंसकस्स णं भंते !० ?

गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं। धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

एवं कम्मभूमग भरहेरवय-पुव्वविदेह-अवरविदेहेसु वि भाणियव्वं।

अकम्मभूमक मणुस्स णपुंसए णं भंते !० ?

गोयमा ! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण मुहुत्तपुहुत्तं। साहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

एवं सव्वेसिं जाव अंतरदीवगाणं।

[५९] (२) भगवन् ! नपुसक, नपुसक के रूप मे निरन्तर कितने काल तक रह सकता है ?
गौतम ! जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल तक रह सकता है।

भंते ! नैरयिक नपुसक के विषय मे पृच्छा ?

गौतम ! जघन्य से दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट से तेतीस सागरोपम तक। इस प्रकार सब नारकपृथ्वियो की स्थिति कहनी चाहिए।

भते ! तिर्यक्योनिक नपुसक के विषय मे पृच्छा ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल, इस प्रकार एकेन्द्रिय नपुसक और वनस्पतिकायिक नपुसक के विषय मे जानना चाहिए। शेष पृथ्वीकाय आदि जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असख्यातकाल तक रह सकते हैं। इस असख्यातकाल मे असख्येय उत्सर्पिणिया और अवसर्पिणिया (काल की अपेक्षा) बीत जाती है और क्षेत्र की अपेक्षा असख्यात लोक के आकाश प्रदेशो का अपहार हो सकता है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय नपुसक जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से सख्यातकाल तक रह सकते हैं।

भते ! पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक के लिए पृच्छा ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व पर्यन्त रह सकते हैं।

इसी प्रकार जलचर तिर्यक्योनिक, चतुष्पद स्थलचर उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और महोरग नपुसको के विषय मे भी समझना चाहिए।

भगवन् ! मनुष्य नपुसक के विषय मे पृच्छा ?

गौतम ! क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कर्ष से देशोन पूर्वकोटि।

इसी प्रकार कर्मभूमि के भरत-ऐरवत, पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह नपुसको के विषय मे भी कहना चाहिए।

भते ! अकर्मभूमिक मनुष्य-नपुसक के विषय मे पृच्छा ?

गौतम ! जन्म की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट मुहूर्तपृथक्त्व । सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक उसी रूप मे रह सकते हैं ।

विवेचन—पूर्वसूत्र मे नपुसको की भवस्थिति बताई गई थी । इस सूत्र मे उनकी कायस्थिति बताई गई है । कायस्थिति का अर्थ है उस पर्याय को छोडे विना लगातार उसी मे बना रहना । सतत रूप से उस पर्याय मे भवस्थिति को कायस्थिति भी कहते है और संचिट्ठणा भी कहते हैं ।

सामान्य विवक्षा मे नपुसक रूप मे उस पर्याय को छोडे विना लगातार जघन्य से एक समय और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल तक रह सकता है। एक समय की स्पष्टता इस प्रकार है—कोई नपुसक उपशमश्रेणी पर चढा और अवेदक होने के बाद उपशमश्रेणी से गिरा । नपुसकवेद का उदय हो जाने पर एक समय के अनन्तर मर कर देव हो गया और पुरुषवेद का उदय हो गया । इस अपेक्षा से नपुसकवेद जघन्य से एक समय तक रहा ।

उत्कर्ष से नपुसकवेद वनस्पतिकाल तक रहता है । वनस्पतिकाल आवलिका के असख्येय भाग मे जितने समय है, उतने पुद्गलपरावर्तकाल का होता है। तथा इस काल मे अनन्त उत्सर्पिणिया और अनन्त अवसर्पिणिया बीत जाती है । क्षेत्र की अपेक्षा से कहे तो एक समय मे एक आकाश-प्रदेश का अपहार करने पर अनन्त लोको के आकाश प्रदेशो का अपहार इतने काल मे हो सकता है ।[1]

नैरयिक नपुसक की कायस्थिति की विचारणा मे जो उनकी स्थिति है वही जघन्य और उत्कर्ष से उनकी अवस्थिति (सचिट्ठणा) है । क्योकि कोई नैरयिक मरकर निरन्तर नैरयिक नही होता, अत भवस्थिति ही उनकी कायस्थिति जाननी चाहिए । भवस्थिति से अतिरिक्त उनमे कायस्थिति सभव नही है ।

सामान्य तिर्यंच नपुसको की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल है । अन्तर्मुहूर्त के बाद मरकर दूसरी गति मे जाने से या दूसरे वेद मे हो जाने से जघन्य भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त है । उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है, जिसका स्वरूप ऊपर बताया गया है ।

विशेष विवक्षा मे एकेन्द्रिय नपुसक की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष मे वनस्पतिकाल है ।

पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय नपुसक की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असख्येय-काल है,[2] जो असख्येय उत्सर्पिणिया और असख्येय अवसर्पिणिया प्रमाण है और क्षेत्र से असंख्यात लोको के आकाश प्रदेशो के अपहार तुल्य है ।

इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक की कायस्थिति भी कहनी चाहिए । वनस्पति की कायस्थिति वही है जो सामान्य एकेन्द्रिय की कायस्थिति बताई है । अर्थात् जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल ।

---

१ अणताओ उस्सप्पिणी ओसाप्पिणी कालओ, खेत्तओ अणता लोया, असखेज्जा पोग्गलपरियट्टा—वणस्सइ कालो ।

२ उक्कोसेण असखेज्ज काल असखेज्जाओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ कालओ खेत्तओ असखिज्जा लोगा ।

द्वीन्द्रिय नपुसक की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से सख्यातकाल है। यह सख्यातकाल सख्येय हजार वर्ष का समझना चाहिए। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय नपुसको की कायस्थिति भी कहनी चाहिए।

पचेन्द्रियतिर्यक् नपुसक की कायस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूर्वकोटिपृथक्त्व की है। इसमें निरन्तर सात भव तो पूर्वकोटि आयु के नपुसक भवो का अनुभव करने की अपेक्षा से हैं। इसके बाद अवश्य वेद का और भव का परिवर्तन होता है।

इसी प्रकार जलचर, स्थलचर, खेचर नपुसको के विषय मे भी समझना चाहिए।

सामान्यत. मनुष्य नपुसक की कायस्थिति भी इसी तरह—अर्थात् जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से पूर्वकोटिपृथक्त्व है।

कर्मभूमि के मनुष्य नपुसक की कायस्थिति क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से पूवकोटिपृथक्त्व है। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य से एक समय, उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि है। भावना पूर्ववत्। इसी तरह भरत-ऐरवत कर्मभूमिक मनुष्य नपुसक की कायस्थिति और पूर्वविदेह-पश्चिम-विदेह कर्मभूमिक मनुष्य-नपुसक की कायस्थिति भी जाननी चाहिए।

सामान्य से अकर्मभूमिक मनुष्य-नपुसक की कायस्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है। इतने से काल मे वे कई वार जन्म-मरण करते है। उत्कर्ष से अन्तर्मुहूर्तपृथक्त्व है। इसके बाद वहाँ उसकी उत्पत्ति नही होती। संहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से देशोन पूर्व-कोटि है। हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु, अन्तर्द्वीपिक मनुष्य नपुसको की कायस्थिति भी इसी तरह की जाननी चाहिए। यह कायस्थिति का वर्णन हुआ।

अन्तर

[२] नपुंसकस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं सातिरेगं।

णेरइय नपुंसकस्स णं भंते ! केवतियं कालं अंतरं होइ ?

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तरुकालो।

रयणप्पभापुढवी नेरइय णपुंसकस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तरुकालो।

एवं सव्वेसिं जाव अधेसत्तमा।

तिरिक्खजोणिय णपुंसगस्स जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं सागरोपमसयपहुत्त सातिरेगं।

एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसकस्स जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं।

पुढवि-आउ-तेउ-वाऊणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

वणस्सइकाइयाणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असखेज्जं कालं जाव असंखेज्जा लोया।

सेसाणं बेइंदियादीणं जाव खहयराणं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

मणुस्स णपुंसकस्स खेत्तं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। धम्मचरणं पडुच्च जहन्नेणं एगं समयं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं।

एवं कम्मभूमगस्स वि भरहेरवय-पुव्वविदेह-अवरविदेहकस्स वि।

अकम्मभूमक मणुस्स णपुंसकस्स णं भंते! केवइयं कालं अंतरं होइ?

गोयमा! जम्मणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो। संहरणं पडुच्च जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वणस्सइकालो एवं जाव अंतरदीवग त्ति।

[५९] (३) भगवन्! नपुसक का कितने काल का अन्तर होता है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से सागरोपमशतपृथक्त्व से कुछ अधिक।

भगवन्! नैरयिक नपुसक का अन्तर कितने काल का है?

गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल।

रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक नपुसक का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल।

इसी प्रकार अध.सप्तमपृथ्वी नैरयिक नपुसक तक कहना चाहिए।

तिर्यक्योनि नपुंसक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपमशत-पृथक्त्व।

एकेन्द्रिय तिर्यक्योनि नपुसक का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सख्यातवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम।

पृथ्वी-अप्-तेजस्काय और वायुकाय का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का अन्तर है। वनस्पतिकायिको का जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असख्येयकाल—यावत् असख्येय-लोक।

शेष रहे द्वीन्द्रियादि यावत् खेचर नपुसको का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्प से वनस्पतिकाल है।

मनुष्य नपुसक का अन्तर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् देशोन अर्धपुद्गल-परावर्त।

इसी प्रकार कर्मभूमिक मनुष्य नपुसक का, भरत-एरवत-पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह मनुष्य नपुसक का भी कहना चाहिए।

भगवन्! अकर्मभूमिक मनुष्य नपुसक का अन्तर कितने काल का होता है?

गौतम! जन्म को लेकर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल। सहरण की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से वनस्पतिकाल, इस प्रकार अन्तर्द्वीपिक नपुसक तक का अन्तर कहना चाहिए।

विवेचन—नपुसकों की भवस्थिति और कायस्थिति वताने के पश्चात् इस सूत्र मे उनका

अन्तर बताया गया है। अर्थात् नपुंसक, नपुसकपर्याय को छोडने पर पुन कितने काल के पश्चात् नपुंसक होता है।

सामान्यत. नपुसक का अन्तर बताते हुए भगवान् कहते हैं कि गौतम! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से कुछ अधिक सागरोपमशतपृथक्त्व का अन्तर होता है। क्योकि व्यवधान रूप पुरुषत्व और स्त्रीत्व का कालमान इतना ही होता है। जैसा कि सग्रहणीगाथाओ मे कहा है—स्त्री और नपुसक की सचिट्ठणा (कायस्थिति) और पुरुष का अन्तर जघन्य से एक समय है तथा पुरुष की संचिट्ठणा और नपुंसक का अतर उत्कर्ष से सागरपृथक्त्व—(पदैकदेशे पदसमुदायोपचार से) सागरोपमशतपृथक्त्व है।[1]

सामान्य विवक्षा मे नैरयिक नपुसक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सप्तमनारकपृथ्वी से निकलकर तन्दुलमत्स्यादि भव मे अन्तर्मुहूर्त तक रहकर पुन सप्तमपृथ्वीनरक मे जाने की अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त कहा गया है। उत्कृष्ट अन्तर वनस्पतिकाल है। यह नरकभव से निकलकर परम्परा से निगोद मे अनन्तकाल रहने की अपेक्षा से समझना चाहिए। इसी प्रकार सातो नरकपृथ्वी के नपुसको का अन्तर समझ लेना चाहिए।

सामान्य विवक्षा मे तिर्यक्योनि नपुसक का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से सागरोपमशतपृथक्त्व है। पूर्ववत् स्पष्टीकरण जानना चाहिए।

विशेष विवक्षा मे सामान्यत एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुंसक का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त (क्योकि द्वीन्द्रियादिकाल का व्यवधान इतना ही है) और उत्कर्ष से सख्येय वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है, क्योकि व्यवधान रूप त्रसकाय की इतनी ही कालस्थिति है। इतने व्यवधान के बाद पुन. एकेन्द्रिय होता ही है।

पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय नपुंसक का अन्तर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। इसी तरह अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एकेन्द्रिय नपुसको का भी अन्तर कहना चाहिए।

वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय नपुसको का जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से असख्येय काल है। यह असख्येय काल, काल से असख्येय उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप होता है और क्षेत्र से असख्येय लोक प्रमाण होता है। इसका तात्पर्य यह है कि असख्येय लोकाकाश के प्रदेशो का प्रतिसमय एक एक प्रदेश का अपहार करने पर जितने समय मे उन प्रदेशो का सम्पूर्ण अपहार हो जाय, उतने काल को अर्थात् उतनी उत्सर्पिणियो और अवसर्पिणियो का वह असख्येय काल होता है। वनस्पतिभव से छूटने पर अन्यत्र उत्कृष्ट से इतने काल तक जीव रह सकता है। इसके अनन्तर ससारी जीव नियम से पुन वनस्पतिकायिक मे उत्पन्न होता है।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसको का अन्तर जलचर, स्थलचर, खेचर पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसको का अन्तर और सामान्यत मनुष्य नपुसक का अन्तर

---

१ इत्थिनपुसा सचिट्ठणेसु पुरिसतरे य समओ उ।
पुरिसनपुसा सचिट्ठणतरे सागरपुहुत्त॥

जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल है। वह अनन्त काल, वनस्पतिकाल है, जिसका स्वरूप पहले बताया गया है।

कर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक का अन्तर क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। धर्माचरण की अपेक्षा जघन्य से एक समय क्योकि सर्वजघन्य लब्धिपात का काल एक समय का ही होता है। उत्कर्ष से अनन्तकाल। इस अनन्तकाल मे अनन्त उत्सर्पिणिया और अनन्त अवसर्पिणिया बीत जाती हैं और क्षेत्र से असख्येय लोकाकाश के प्रदेशो का अपहार हो जाता है। और यह देशोन अर्धपुद्गलपरावर्त जितना है।

इसी तरह भरत, ऐरवत, पूर्वविदेह और अपरविदेह कर्मभूमिक नपुसको का क्षेत्र और धर्माचरण को लेकर जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए।

अकर्मभूमिक मनुष्य नपुसक का जन्म की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त (अन्य गति मे जाने की अपेक्षा इतना व्यवधान होता है) और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का अन्तर होता है। संहरण की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्ष से वनस्पतिकाल है। किसी ने कर्मभूमि के मनुष्य नपुंसक का अकर्मभूमि मे सहरण किया, वह अकर्मभूमिक हो गया। थोड़े समय बाद तथाविध बुद्धिपरिवर्तन से पुन. कर्मभूमि मे संहृत कर दिया, वहाँ अन्तर्मुहूर्त रोक कर पुन. अकर्मभूमि मे ले आया, इस अपेक्षा से अन्तर्मुहूर्त का अन्तर होता है। उत्कर्ष से वनस्पतिकाल। विशेष विवक्षा मे हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक का और अन्तरद्वीपिक मनुष्य नपुसक का जन्म और सहरण की अपेक्षा से जघन्य और उत्कर्ष से अन्तर कहना चाहिए।

नपुंसकों का अल्पबहुत्व

६०. [१] एतेसि णं भंते! णेरइयनपुंसकाण, तिरिक्खनपुंसकाणं, मणुस्सनपुंसकाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सणपुंसका, नेरइयणपुंसगा असंखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणियनपुंसका अणंतगुणा।

[२] एतेसि णं भंते! रयणप्पहापुढवि णेरइयणपुंसकाणं जाव अहेसत्तमपुढवि णेरइयणपुंसकाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा अहेसत्तमपुढवि-नेरइय णपुंसका, छट्ठपुढवि णेरइय नपुंसगा असंखेज्जगुणा जाव दोच्चपुढवि णेरइय णपुंसका असंखेज्जगुणा। इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए णेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा।

[३] एतेसि णं भंते! तिरिक्खजोणिय णपुंसकाणं, एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसकाणं, पुढविकाइय जाव वणस्सइकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं, बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसकाणं जलयराणं थलयराणं खहयराण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा खहयरतिरिक्खजोणियणपुंसगा,

थलयर तिरिक्खजोणिय नपुंसका संखेज्जगुणा,
जलयर तिरिक्खजोणिय नपुंसका संखेज्जगुणा,
चउरिंदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसका विसेसाहिया,
तेइंदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसका विसेसाहिया,
बेइंदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसका विसेसाहिया,
तेउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसका असंखेज्जगुणा,
पुढविक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसका विसेसाहिया,
एवं आउ-वाउ-वणस्सइकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसका अणतगुणा।

[४] एतेसि णं भंते! मणुस्सणपुंसकाणं, कम्मभूमगणपुंसकाणं अकम्मभूमगणपुंसकाणं अंतरदीवगणपुंसगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा अंतरदीवग अकम्मभूमग मणुस्स णपुंसका,

देवकुरु-उत्तरकुरु अकम्मभूमगा दोवि संखेज्जगुणा एवं जाव पुव्वविदेह-अवरविदेह कम्मभूमग-मणुस्स नपुंसका दो वि संखेज्जगुणा।

[५] एतेसि णं भंते! णेरइय णपुंसकाणं, रयणप्पभापुढवि नेरइय नपुंसकाणं जाव अधेसत्तम-पुढवि णेरइय णपुंसकाणं, तिरिक्खजोणिय नपुंसकाणं, एगिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्स णपुंसकाणं कम्मभूमिगाणं अकम्मभूमिगाण अतरदीवगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा अहेसत्तमपुढवि णेरइय नपुंसका, छट्ठ पुढवि नेरइय णपुंसगा असंखेज्ज-गुणा जाव

दोच्च पुढवि णेरइय नपुंसका असंखेज्जगुणा,
अंतरदीवग मणुस्स णपुंसका असंखेज्जगुणा,
देवकुरु-उत्तरकुरु अकम्मभूमग मणुस्स णपुंसका दो वि संखेज्जगुणा, जाव
पुव्वविदेह-अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्स णपुंसका दो वि संखेज्जगुणा,
रयणप्पभा पुढवि णेरइय णपुंसका असखेज्जगुणा,
खहयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसका असखेज्जगुणा,
थलयर पंचि० ति०जो० णपुंसका संखिज्जगुणा,
जलयर पंचि० ति०जो० णपुंसका संखिज्जगुणा,
चउरिंदिय ति०जो० णपुंसका विसेसाहिया,
तेइंदिय ति०जो० णपुंसका विसेसाहिया,
बेइंदिय ति०जो० णपुंसका विसेसाहिया,

तेउक्काइय एगिंदिय ति०जो० णपुंसका असंखेज्जगुणा,
पुढविकाइय एगिंदिय ति० जो० णपुंसका विसेसाहिया,
आउक्काइय एगिं० ति० जो० णपुंसका विसेसाहिया,
वाउक्काइय एगिं० ति० जो० णपुंसका विसेसाहिया,
वणस्सकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसका अणंतगुणा ।

[६०] (१) भगवन् इन नैरयिक नपुसक, तिर्यक्योनिक नपुसक और मनुष्ययोनिक नपुंसको मे कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ?

गौतम ! सवसे थोडे मनुष्य नपुंसक, उनसे नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुण, उनसे तिर्यक्योनिक नपुंसक अनन्तगुण हैं ।

(२) भगवन् ! इन रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक नपुंसको मे यावत् अधःसप्तमपृथ्वी नैरयिक नपुंसको मे कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ।

गौतम ! सवसे थोड़े अध.सप्तमपृथ्वी के नैरयिक नपुंसक, उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असख्यातगुण, यावत् दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक क्रमशः असंख्यात-असख्यात गुण कहने चाहिए ।

उनसे इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असख्यातगुण हैं ।

(३) भगवन् ! इन तिर्यक्योनिक नपुसको मे एकेन्द्रिय तिर्यक् नपुंसको मे पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुंसको मे, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुंसको मे, जलचरो में, स्थलचरो में, खेचरो मे कौन किससे अल्प, वहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सवसे थोड़े खेचर तिर्यक्योनिक नपुंसक,
उनसे स्थलचर तिर्यक्योनिक नपुंसक संख्येयगुण,
उनसे जलचर तिर्यक्योनिक नपुंसक सख्येयगुण,
उनसे चतुरिन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक विशेषाधिक,
उनसे त्रीन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक विशेषाधिक,
उनसे द्वीन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक विशेषाधिक.
उनसे तेजस्काय एकेन्द्रिय तिर्यक् नपुसक असंख्यातगुण,
उनसे पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक् नपुंसक विशेषाधिक ।

उनसे अप्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुंसक अनन्तगुण हैं ।

(४) भगवन् ! इन मनुष्य नपुसको मे, कर्मभूमिक मनुष्य नपुंसको मे, अकर्मभूमिक मनुष्य नपुंसको मे और अन्तर्द्वीपों के मनुष्य नपुसको में कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सबसे थोड़े अन्तर्द्वीपिक मनुष्य नपुसक, उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमि के मनुष्य नपुसक दोनो सख्यातगुण, इस प्रकार यावत् पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह के कर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक दोनो सख्येयगुण हैं ।

(५) हे भगवन् ! इन नैरयिक नपुसक, रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक नपुसक यावत् अध.सप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसको मे, तिर्यंचयोनिक नपुसको मे—एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिको मे, पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक् नपुंसको मे, यावत् वनस्पतिकायिक तिर्यक् नपुसको मे, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसको मे, जलचरो मे, स्थलचरो मे, खेचरो मे, मनुष्य नपुसको मे, कर्मभूमिक मनुष्य नपुसको मे, अकर्मभूमिक मनुष्य नपुंसको मे अतर्द्वीपिक मनुष्य नपुसको मे कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ?

गौतम ! सबसे थोडे अध सप्तमपृथ्वी नैरयिक नपुसक,
उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुसक असख्यातगुण,
उनसे यावत् दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुसक असख्यातगुण,
उनसे अन्तर्द्वीप के मनुष्य नपुसक असख्यातगुण,
उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमिक म नपुसक दोनो सख्यातगुण,
उनसे यावत् पूर्वविदेह पश्चिमविदेह कर्मभूमिक मनुष्य नपुसक दोनों सख्यातगुण,
उनसे रत्नप्रभा के नैरयिक नपुसक असख्यातगुण,
उनसे खेचर पचेन्द्रियतिर्यक्योनिक नपुसक असख्यातगुण,
उनसे स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यक् नपुंसक सख्यातगुण,
उनसे जलचर पचेन्द्रिय तिर्यक् नपुसक सख्यातगुण,
उनसे चतुरिन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुंसक विशेषाधिक,
उनसे त्रीन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक विशेषाधिक,
उनसे द्वीन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुंसक विशेषाधिक,
उनसे तेजस्काय एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक असख्यातगुण,
उनसे पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय ति यो नपुंसक विशेषाधिक,
उनसे अप्कायिक एकेन्द्रिय ति यो नपुंसक विशेषाधिक,
उनसे वायुकायिक एकेन्द्रिय ति यो. नपुंसक विशेषाधिक,
उनसे वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक अनन्तगुण हैं ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे पाच प्रकार से अल्पबहुत्व बताया गया है । प्रथम प्रकार मे नैरयिक, तिर्यक्योनिक और मनुष्य नपुंसको का सामान्य रूप से अल्पबहुत्व है । दूसरे मे नैरयिको के सात भेदो का अल्पबहुत्व है । तीसरे प्रकार मे तिर्यक्योनिक नपुसको के भेदो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व है । चौथे प्रकार मे मनुष्यो के भेदो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व है और पाचवें प्रकार मे सामान्य और विशेष दोनो प्रकारो का मिश्रित अल्पबहुत्व है ।

(१) प्रथम प्रकार के अल्पबहुत्व मे पूछा गया है कि नैरयिक नपुंसक, तिर्यंक्योनिक नपुसक और मनुष्य नपुसको मे कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है । इसके उत्तर मे कहा गया है—

सबसे थोड़े मनुष्य नपुंसक हैं, क्योंकि वे श्रेणी के असख्येयभागवर्ती प्रदेशो की राशि-प्रमाण हैं।

उनसे नैरयिक नपुसक असख्येयगुण हैं, क्योकि वे अगुलमात्र क्षेत्र की प्रदेशराशि के प्रथम वर्गमूल को द्वितीय वर्गमूल से गुणित करने पर जो प्रदेशराशि होती है, उसके बरावर घनीकृत लोक की एक प्रादेशिक श्रेणियो मे जितने आकाश प्रदेश हैं, उनके बरावर हैं। नैरयिक नपुंसको से तिर्यक्योनिक नपुसक अनन्तगुण हैं, क्योकि निगोद के जीव अनन्त हैं।

(२) नैरयिक नपुसक भेद सम्बन्धी अल्पबहुत्व—

सबसे थोडे सातवी पृथ्वी के नैरयिक नपुसक हैं, क्योकि इनका प्रमाण आभ्यन्तर श्रेणी के असख्येयभागवर्ती आकाशप्रदेश राशितुल्य है।

उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असख्येयगुण हैं,
उनसे पाचवी पृथ्वी के नैरयिक नपु असख्येयगुण हैं,
उनसे चौथी पृथ्वी के नैरयिक नपु . असंख्येयगुण हैं,
उनसे तीसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुं असख्येयगुण हैं,
उनसे दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपु असख्येयगुण हैं।

क्योकि ये सभी पूर्व-पूर्व नैरयिको के परिमाण की हेतुभूत श्रेणी के असख्येयभाग की अपेक्षा असख्येयगुण असख्येयगुण श्रेणी के भागवर्ती नभ -प्रदेशराशि प्रमाण हैं। दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुसक असख्येयगुण हैं, क्योकि ये अगुल मात्र प्रदेश की प्रदेशराशि के प्रथम वर्गमूल मे द्वितीय वर्गमूल का गुणा करने पर जितनी प्रदेशराशि होती है, उसके बरावर घनीकृत लोक की एक प्रादेशिक श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश है, उतने प्रमाण वाले हैं।

प्रत्येक नरकपृथ्वी के पूर्व, उत्तर, पश्चिम दिशा के नैरयिक सर्वस्तोक है, उनसे दक्षिणदिशा के नैरयिक असख्येयगुण हैं। पूर्व पूर्व की पृथ्वियो की दक्षिणदिशा के नैरयिक नपुसको की अपेक्षा पश्चानुपूर्वी से आगे आगे की पृथ्वियो मे उत्तर और पश्चिम दिशा मे रहे हुए नैरयिक नपुंसक असख्यातगुण अधिक हैं। प्रज्ञापनासूत्र मे ऐसा ही कहा है।[1]

(३) तिर्यक्योनिक नपुसक विषय आल्पबहुत्व

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यक् नपुसक सबसे थोड़े, क्योकि वे प्रतर के असख्येयभागवर्ती असख्येय श्रेणीगत आकाश प्रदेशराशि प्रमाण हैं।

उनसे स्थलचर तिर्यक्योनिक नपुसक संख्येयगुण हैं, क्योकि वे बृहत्तर प्रतर के असख्येय-भागवर्ती असंख्येय श्रेणिगत आकाश-प्रदेशराशिप्रमाण हैं।

उनसे जलचर नपुसक सख्येयगुण है क्योकि वे बृहत्तम प्रतर के असख्येयभागवर्ती असंख्येय श्रेणिगत प्रदेशराशिप्रमाण हैं।

---

१ दिसाणुवायेण सव्वत्थोवा अहेसत्तमपुढविनेरइया पुरत्थिम पच्चत्थिम उत्तरेण, दाहिणेण असखेज्जगुणा · · इत्यादि। —प्रज्ञापनासूत्र पद ३।

उनसे चतुरिन्द्रिय ति यो नपुसक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे असख्येय योजन कोटीकोटी-प्रमाण आकाशप्रदेश राशिप्रमाण घनीकृत लोक की एक प्रादेशिक श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश हैं, उतने प्रमाण वाले हैं।

उनसे त्रीन्द्रिय ति. यो नपुसक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रभूततर श्रेणिगत आकाशप्रदेश-राशिप्रमाण हैं।

उनसे द्वीन्द्रिय ति. यो नपुसक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रभूततम श्रेणिगत आकाशप्रदेश-राशिप्रमाण है।

उनसे तेजस्कायिक एकेन्द्रिय ति. यो नपुसक असख्यातगुण हैं, क्योकि वे सूक्ष्म और बादर मिलकर असख्येय लोकाकाश प्रदेशप्रमाण हैं।

उनसे पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय ति यो नपुसक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रभूत असख्येय लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं।

उनसे अप्कायिक एके ति यो नपुसक विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रभूततर असख्येय लोका-काशप्रदेशप्रमाण हैं।

उनसे वायुकायिक एके. ति यो नपुसक विशेषाधिक हैं, क्योकि वे प्रभूततम असख्येय लोकाकाशप्रदेशप्रमाण हैं।

उनसे वनस्पतिकायिक एके तिर्यक्योनिक नपुंसक अनन्तागुण हैं, क्योकि वे अनन्त लोकाकश-प्रदेशराशिप्रमाण हैं।

(४) मनुष्यनपुंसकसबधी अल्पबहुत्व

सबसे थोडे अन्तर्द्वीपिज मनुष्य-नपुसक। ये सम्मूर्छिम समझने चाहिए, क्योकि गर्भज मनुष्य-नपुसको का वहाँ सद्भाव नही होता। कर्मभूमि से सहृत हुए हो भी सकते हैं।

अन्तर्द्वीपिज मनुष्य नपुसकों से देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमि के मनुष्य नपुसक सख्येयगुण हैं, क्योकि तद्गत गर्भजमनुष्य अन्तर्द्वीपिक गर्भजमनुष्यो से सख्येयगुण हैं, क्योकि गर्भजमनुष्यो के उच्चार आदि मे सम्मूर्छिम-मनुष्यो की उत्पत्ति होती है। स्वस्थान मे परस्पर तुल्य हैं।

उनसे हरिवर्ष-रम्यकवर्ष अकर्मभूमिक मनुष्य नपुसक सख्येयगुण हैं और स्वस्थान मे तुल्य हैं।

उनसे हैमवत-हैरण्यवत के अकर्मभूमिक मनुष्य नपुसक सख्येयगुण है और स्वस्थान मे तुल्य हैं।

उनसे भरत-ऐरवत कर्मभूमि के मनुष्य नपुसक सख्येयगुण हैं और स्वस्थान मे तुल्य है।

उनसे पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह कर्मभूमि के मनुष्य नपुसक सख्येयगुण है और स्वस्थान में दोनो परस्पर तुल्य हैं।

सर्वत्र युक्ति पूर्ववत् जाननी चाहिए।

(५) मिश्रित अल्पबहुत्व

सबसे थोडे अध सप्तमपृथ्वी नैरयिक नपुंसक,

उनसे छठी, पांचवी, चौथी, तीसरी, दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुसक यथोत्तर असख्येयगुण,

उनसे अन्तर्द्वीपिक म नपुसक असख्येयगुण (सम्मूर्छिम मनुष्य की अपेक्षा),

उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमि के म नपुंसक सख्येयगुण,

उनसे हरिवर्ष-रम्यकवर्ष अकर्मभूमि के म नपुं सख्येयगुण,

उनसे हैमवत-हैरण्यवत अकर्मभूमिक म नपु. सख्येयगुण,

उनसे भरत-एरवत कर्मभूमिक मनुष्य नपु. सख्येयगुण,

उनसे पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह कर्म म नपु सख्येयगुण हैं और स्वस्थान मे परस्पर तुल्य है,

उनसे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक नपुसक असख्येयगुण है,

उनसे खेचर पचे तिर्यक्योनिक नपुसक असख्येयगुण हैं,

उनसे स्थलचर पचे ति. यो नपुंसक सख्येयगुण हैं,

उनसे जलचर पचे ति यो नपुसक संख्येयगुण है,

उनसे चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय ति यो नपुसक विशेषाधिक है,

उनसे तेजस्कायिक एके ति यो नपुं. असख्येयगुण हैं,

उनसे पृथ्वी, अप्, वायुकायिक एके. ति यो नपुसक यथोत्तर विशेषाधिक है,

उनसे वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपुसक अनन्तगुण है।

युक्ति सर्वत्र पूर्ववत् जाननी चाहिए।

नपुंसकवेद की बंधस्थिति और प्रकार

६१ णपुंसकवेदस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइयं कालं बंधठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं सागरोवमस्स दोण्णि सत्तभागा, पलिओवमस्स असंखेज्जइभागेणं ऊणगा, उक्कोसेणं बीसं सागरोवमकोडाकोडीओ, दोण्णि य वाससहस्साइं अबाधा, अबाहूणिया कम्मठिई कम्मणिसेगो।

णपुंसक वेदे णं भंते ! किंपगारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! महाणगरदाहसमाणे पण्णत्ते समणाउसो !

से त्तं णपुंसका।

[६१] हे भगवन् ! नपुसकवेद कर्म की कितने काल की स्थिति कही है ?

गौतम ! जघन्य से सागरोपम के $\frac{2}{7}$ (दो सातिया भाग) भाग मे पल्योपम का असख्यातवां भाग कम और उत्कृष्ट से बीस कोडाकोडी सागरोपम की बंधस्थिति कही गई है। दो हजार वर्ष

का अवाधाकाल है। अवाधाकाल से हीन स्थिति का कर्मनिषेक है अर्थात् अनुभवयोग्य कर्मदलिक की रचना है।

भगवन् ! नपुंसक वेद किस प्रकार का है ?

हे आयुष्मान् श्रमण गौतम ! महानगर के दाह के समान (सब अवस्थाओं मे धधकती कामाग्नि के समान) कहा गया है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नपुंसकवेद की बंधस्थिति कही गई है। स्थिति दो प्रकार की होती है—१ बंधस्थिति और २ अनुभवयोग्य (उदयावलिका मे आने योग्य) स्थिति। नपुंसकवेद की बंधस्थिति जघन्य से पल्योपम के असख्यातवें भाग से न्यून एक सागरोपम का $\frac{2}{7}$ भाग प्रमाण है। उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है। यहाँ जघन्यस्थिति प्राप्त करने की जो विधि पूर्व मे कही है, वह ध्यान मे रखनी चाहिए। वह इस प्रकार है कि जिस प्रकृति की जो उत्कृष्ट स्थिति है, इसमे मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोडाकोडी सागरोपम का भाग देने पर जो राशि प्राप्त होती है, उसमे पल्योपम का असख्यातवा भाग कम करने पर उस प्रकृति की जघन्य स्थिति प्राप्त होती है। यहाँ नपुंसकवेद की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोडाकोडी सागरोपम की है, उसमें सत्तर कोडाकोडी का भाग देने पर (शून्य शून्येन पातयेत्—शून्य को शून्य से काटने पर) $\frac{2}{7}$ सागरोपम लब्धाक होता है। इसमे पल्योपम का असख्यातवा भाग कम करने पर नपुंसकवेद की जघन्य स्थिति प्राप्त होती है।

नपुंसकवेद का अवाधाकाल दो हजार वर्ष का है। अबाधाकाल प्राप्त करने का नियम यह है कि जिस कर्मप्रकृति की उत्कृष्टस्थिति जितने कोडाकोडी सागरोपम की है, उतने सौ वर्ष की उसकी अवाधा होती है। वीस कोडाकोडी सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले नपुंसकवेद की अवाधा वीस सौ वर्ष अर्थात् दो हजार वर्ष की हुई। वधस्थिति मे से अवाधा कम करने पर जो स्थिति वनती है वही जीव को अपना फल देती है अर्थात् उदय मे आती है। इसलिए अबाधाकाल से हीन शेष स्थिति का कर्मनिषेक होता है अर्थात् अनुभवयोग्य कर्मदलिकों की रचना होती है—कर्मदलिक उदय मे आने लगते हैं।

नपुंसकवेद की वधस्थिति सम्बन्धी प्रश्न के पश्चात् गौतम स्वामी ने नपुंसकवेद का वेदन किस प्रकार का होता है, यह प्रश्न पूछा। इसके उत्तर मे प्रभु ने फरमाया कि हे आयुष्मान् श्रमण गौतम ! नपुंसकवेद का वेदन महानगर के दाह के समान होता है। जैसे किसी महानगर मे फैली हुई आग की ज्वालाएँ चिरकाल तक धधकती रहती हैं तथा उत्कट होती हैं, उसी प्रकार नपुंसक की कामाग्नि चिरकाल तक धधकती रहती है और अतितीव्र होती है। वह आदि, मध्य और अन्त तक सव अवस्थाओ मे उत्कट वनी रहती है।

इस प्रकार नपुंसक सम्बन्धी प्रकरण पूरा हुआ।

नवविध अल्पबहुत्व

६२. [१] एतेसि णं भंते ! इत्थीण पुरिसाणं नपुंसकाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पुरिसा, इत्थीओ संखिज्जगुणाओ, णपुंसगा अणंतगुणा ।

[२] एएसिं[1] णं भते ! तिरिक्खजोणि-इत्थीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं तिरिक्खजोणिय-णपुंसकाण य कयरे कयरेहिन्तो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणियपुरिसा, तिरिक्खजोणि-इत्थीओ असंखेज्जगुणाओ, तिरिक्खजोणियनपुंसगा अणंतगुणा ।

[३] एतेसिं णं भते ! मणुस्सित्थीणं, मणुस्सपुरिसाणं, मणुस्सनपुंसकाण य कयरे कयरेहिन्तो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सपुरिसा, मणुस्सित्थीओ संखेज्जगुणाओ, मणुस्सनपुंसका असंखेज्जगुणा ।

[४] एतेसिं ण भंते ! देवित्थीणं देवपुरिसाणं णेरइयणपुंसकाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा णेरइयणपुंसका, देवपुरिसा असंखेज्जगुणा देवित्थीओ संखेज्जगुणाओ ।

[५] एतेसिं ण भंते ! तिरिक्खजोणित्थीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं तिरिक्खजोणियनपुंसगाणं, मणुस्सित्थीण, मणुस्सपुरिसाणं, मणुस्सनपुसगाण, देवित्थीणं, देवपुरिसाणं णेरइयणपुंसकाण य कयरे कयरेहिंतो, अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वोत्थोवा मणुस्सपुरिसा, मणुस्सित्थीओ, सखेज्जगुणाओ, मणुस्सणपुंसगा असखेज्जगुणा, णेरइयणपुंसका असखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणियपुरिसा असंखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणित्थियाओ सखेज्जगुणाओ, देवपुरिसा असखेज्जगुणा, देवित्थियाओ सखेज्जगुणाओ, तिरिक्खजोणियणपुंसगा अणंतगुणा ।

[६] एतेसिं णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थीणं, जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं तिरिक्खजोणियपुरिसाणं, जलयराणं थलयराणं खहयराणं तिरिक्खजोणियनपुंसगाणं एगिंदियतिरिक्खजोणियणपुसगाणं पुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं जाव वणस्सइकाइय-एगिंदिय तिरिक्खजोणियणपुंसकाणं, बेइंदिय-तिरिक्खजोणियणपुंसगाणं तेइंदिय० चउरिंदिय० पंचेंदिय तिरिक्खजोणियणपुंसगाणं जलयराणं थलयराण खहयराणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा खहयरतिरिक्खजोणिय पुरिसा, खहयर तिरिक्खजोणित्थियाओ सखेज्जगुणाओ, थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियपुरिसा सखेज्जगुणा, थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, जलयर तिरिक्खजोणिय पुरिसा सखिज्जगुणा, जलयर तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ, खहयरपंचिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसका असंखेज्जगुणा, थलयर-

१ 'एयासिं ण' ऐसा पाठ वृत्तिकार ने माना है ।

पंचिदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसगा संखेज्जगुणा, जलयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिय नपुंसगा सखेज्ज-गुणा, चउरिंदिय तिरि० विसेसाहिया, तेइंदिय णपुंसका विसेसाहिया, बेइंदिय नपुंसका विसेसाहिया, तेउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसका असखेज्जगुणा, पुढवि० णपुंसका विसेसाहिया, आउ० विसेसाहिया, वाउ० विसेसाहिया, वणप्पइ० एगिंदिय णपुंसका अणंतगुणा।

[७] एतेसिं णं भते ! मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं, अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाणं, मणुस्स-पुरिसाणं कम्मभूमकाणं अकम्मभूमकाण अंतरदीवकाणं, मणुस्सनपुंसकाणं कम्मभूमाणं अकम्मभूमाण अंतरदीवकाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! अंतरदीवगा मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा य, एते णं दुन्नि वि तुल्ला वि सव्वत्थो-वा, देवकुरु-उत्तरकुरु अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा एतेणं दोन्नि वि तुल्ला संखेज्जगुणा,

हरिवास-रम्मयवास-अकम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसा य एते णं दोन्नि वि तुल्ला संखेज्जगुणा,

हेमवत हेरण्यवत अकम्मभूमक मणुस्सित्थियाओ मणुस्स पुरिसा य दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा,

भरहेरवत-कम्मभूमग मणुस्सपुरिसा दो वि सखेज्जगुणा,

भरहेरवत कम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दो वि सखेज्जगुणाओ।

पुव्वविदेह-अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्सपुरिसा दो वि संखेज्जगुणा,

पुव्वविदेह-अवरविदेह कम्मभूमग मणुस्सित्थियाओ दो वि संखेज्जगुणाओ,

अंतरदीवग मणुस्सणपुंसका असखेज्जगुणा,

देवकुरु-उत्तरकुरु अकम्मभूमगमणुस्स नपुंसका दो वि संखेज्जगुणा,

तहेव जाव पुव्वविदेह कम्मभूमक मणुस्सणपुंसका दो वि संखेज्जगुणा।

[८] एतासिं ण भते ! देवित्थीण भवणवासिणीण वाणमंतरिणीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीण; देवपुरिसाणं भवणवासीण जाव वेमाणियाणं सोहम्मकाणं जाव गेवेज्जकाणं अणुत्तरोववाइयाण, णेरइय-णपुंसकाण रयप्पभापुढविणेरइय णपुंसगाणं जाव अहेसत्तमपुढवि नेरइयाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणुत्तरोववाइयदेव पुरिसा, उवरिम गेवेज्जदेव पुरिसा संखेज्जगुणा, त चेव जाव आणए कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा;

अहेसत्तमाए पुढवीए णेरइय णपुंसका असखेज्जगुणा,

छट्ठीए पुढवीए णेरइय नपुंसका असंखेज्जगुणा,

सहस्सारे कप्पे देव पुरिसा असखेज्जगुणा,

महासुक्के कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,

पंचमाए पुढवीए णेरइय णपुंसका असंखेज्जगुणा,

लंतए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा,
चउत्थीए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
तच्चाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
सणंकुमारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
दोच्चाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
ईसाणे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
ईसाणे कप्पे देवित्थियाओ सखेज्जगुणाओ,
सोहम्मे कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
सोहम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
भवणवासि देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
भवणवासि देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
इमीसे रयप्पभापुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा,
वाणमंतर देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,
वाणमंतर देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
जोतिसिय देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
जोतिसिय देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ ।

[९] एतरसि णं भंते ! तिरिक्खजोणित्थीणं जलयरीणं थलयरीणं खहयरीणं तिरिक्खजोणिय-पुरिसाणं, जलयराणं थलयराणं खहयराणं तिरिक्खजोणिय नपुंसगाणं, एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसगाणं पुढविकाइयएगिंदिय ति० जो० नपुंसकाणं, आउक्काइय एगिंदिय ति० जो० णपुंसगाणं जाव वणस्सइकाइय एगिंदिय ति० जो० णपुंसगाणं, बेइंदिय ति० जो० णपुंसगाणं, तेइंदिय ति० जो० णपुंसकाणं, चउरिंदिय ति० जो० णपुंसगाणं, पंचिंदिय ति० जो० णपुंसगाणं जलयराणं थलयराणं खहयराणं मणुस्सित्थीणं कम्मभूमियाणं अकम्मभूमियाणं अंतरदीवियाण मणुस्सपुरिसाणं कम्मभूमगाणं अकम्मभूमगाण अतरदीवयाणं मणुस्सणपुंसगाणं कम्मभूमकाणं अकम्मभूमकाणं अंतरदीवयाणं देविस्थीणं भवणवासिणीणं वाणमंतरिणीणं जोतिसिणीणं वेमाणिणीणं देवपुरिसाणं भवणवासिणीणं वाणमंतराणं जोतिसियाणं वेमाणियाणं सोहम्मकाणं जाव गेवेज्जगाणं अणुत्तरोववाइयाणं नेरइय-णपुंसकाणं रयणप्पमापुढविनेरइय नपुंसकाणं जाव अहेसत्तमपढविणेरइय णपुंसकाण य कयरे कयरेहिन्तो अप्पा वा बहुआ वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! अतरदीवग-अकम्मभूमग मणुस्सित्थीओ मणुस्सपुरिसा य, एते ण दोवि तुल्ला सव्वत्थोवा,

देवकुरु-उत्तरकुरु-अकम्मभूमग मणुस्सित्थिओ पुरिसा य, एते णं दोवि तुल्ला सखेज्जगुणा,

एवं हरिवास-रम्मगवास० अकम्मभूमग मणुस्सित्थीओ मणुस्सपुरिसा य एए णं दोवि तुल्ला संखेज्जगुणा, 'एव' हेमवय-हेरण्णवय-अकम्मभूमगमणुस्सित्थीओ मणुस्सपुरिसा य एए णं दोवि तुल्ला सखेज्जगुणा, भरहेरवय कम्मभूमग मणुस्सपुरिसा दोविसखेज्जगुणा,

भरहेरवय कम्मभूमिगमणुस्सित्थिओ दोवि सखेज्जगुणाओ,

पुव्वविदेह-अवरविदेह कम्मभूमक मणुस्सपुरिसा दोवि सखेज्जगुणा,

पुव्वविदेह-अवरविदेह कम्मभूमक मणुस्सित्थियाओ दोवि संखेज्जगुणाओ,

अणुत्तरोववाइय देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

उवरिमगेविज्जा देवपुरिसा संखेज्जगुणा,

जाव आणए कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणा,

अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइयणपुंसका असखेज्जगुणा,

छट्ठीए पुढवीए नेरइय नपुसका असंखेज्जगुणा,

सहस्सारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

महासुक्के कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

पंचमाए पुढवीए नेरइयनपुंसका असंखेज्जगुणा,

लतए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

चउत्थीए पुढवीए नेरइय नपुंसका असंखेज्जगुणा,

बंभलोए कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

तच्चए पुढवीए नेरइय णपुंसका असखेज्जगुणा,

माहिंदे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

सणंकुमारे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

दोच्चाए पुढवीए नेरइय नपुंसका असंखेज्जगुणा,

अंतरदीवग-अकम्मभूमग मणुस्सनपुंसका असंखेज्जगुणा,

देवकुरु-उत्तरकुरु-अकम्मभूमग मणुस्सणपुंसका दो वि संखेज्जगुणा एवं जाव विदेह त्ति,

ईसाणे कप्पे देवपुरिसा असंखेज्जगुणा,

ईसाणे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणा,

सोहम्मे कप्पे देवपुरिसा संखेज्जगुणाओ,

सोहम्मे कप्पे देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,

भवनवासि देवपुरिसा असखेज्जगुणा,

भवनवासि देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,

इमीसे रयणप्पयाए पुढवीए णेरइयणपुंसका असंखेज्जगुणा,
खहयर तिरिक्खजोणिय पुरिसा सखेज्जगुणा,
खहयर तिरिक्खजोणित्थियाओ सखेज्जगुणाओ,
थलयर तिरिक्खजोणिय पुरिसा संखेज्जगुणा,
थलयर तिरिक्खजोणित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
जलयर तिरिक्ख पुरिसा सखेज्जगुणा,
जलयर तिरिक्खजोणित्थियाओ सखेज्जगुणाओ,
वाणमंतर देवपुरिसा सखेज्जगुणा,
वाणमतर देवित्थियाओ संखेज्जगुणाओ,
जोइसिय देवपुरिसा संखेज्जगुणा,
जोइसियदेवित्थियाओ सखेज्जगुणाओ,
खहयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिय णपुसगा सखेज्जगुणा,
थलयर णपुसका संखेज्जगुणा,
जलयरणपुंसगा संखिज्जगुणा,
चउरिंदिय णपुसका विसेसाहिया,
तेइंदिय णपुसका विसेसाहिया,
बेइदिय णपुसका विसेसाहिया,
तेउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसका असंखेज्जगुणा,
पुढविकाइय० णपुसका विसेसाहिया,
आउक्काइय० णपुसका विसेसाहिया,
वाउक्काइय० णपुंसका विसेसाहिया,
वणप्फइकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिय णपुंसका अणंतगुणा।

[६२] (१) भगवन्! इन स्त्रियो मे, पुरुषो मे और नपुसको मे कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है?

गौतम! सबसे थोडे पुरुष, स्त्रिया सख्यातगुणी और नपुसक अनन्तगुण हैं।

(२) भगवन्! इन तिर्यक्योनिक स्त्रियो मे, तिर्यक्योनिक पुरुषो मे और तिर्यक्योनिक नपुसको मे कौन किससे कम, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

गौतम! सबसे थोडे तिर्यक्योनिक पुरुष, तिर्यक्योनिक स्त्रिया उनसे असंख्यातगुणी और उनसे तिर्यक्योनिक नपुसक अनन्तगुण हैं।

(३) भगवन्! इन मनुष्यस्त्रियो मे, मनुष्यपुरुषो मे और मनुष्यनपुंसको मे कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे थोडे मनुष्यपुरुष, उनसे मनुष्यस्त्रिया सख्यातगुणी, उनसे मनुष्यनपुसक असख्यातगुण है।

(४) भगवन् ! इन देवस्त्रियो मे, देवपुरुषो मे और नैरयिकनपुसको मे कौन किससे कम, वहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सवसे थोडे नैरयिकनपुसक, उनसे देवपुरुष असख्यातगुण, उनसे देवस्त्रिया सख्यातगुणा है ।

(५) हे भगवन् ! इन तिर्यक्योनिकस्त्रियो, तिर्यक्योनिकपुरुषो, तिर्यक्योनिकनपु सको मे, मनुष्यस्त्रियो, मनुष्यपुरुषो और नपुसको मे, देवस्त्रियो, देवपुरुषो और नैरयिकनपुसको मे कौन किससे अल्प, वहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

गौतम ! सवसे थोडे मनुष्यपुरुष,
उनसे मनुष्यस्त्रिया सख्यातगुणी,
उनसे मनुष्यनपुसक असख्यातगुण,
उनसे नैरयिकनपुसक असख्यातगुण,
उनसे तिर्यक्योनिकपुरुष असख्यातगुण,
उनसे तिर्यक्योनिकस्त्रिया सख्यातगुणी,
उनसे देवपरुष असख्यातगुण,
उनसे देवस्त्रिया सख्यातगुण,
उनसे तिर्यक्योनिक नपु सक अनन्तगुण हैं ।

(६) हे भगवन् ! इन तिर्यक्योनिकस्त्रियो—जलचरी, स्थलचरी, खेचरी, तिर्यक्योनिक-पुरुष—जलचर, स्थलचर, खेचर, तिर्यंचयोनिक नपू सक एकेन्द्रिय ति यो. नपु सक, पृथ्वीकायिक एके ति यो नपु सक यावत् वनस्पतिकायिक एके ति यो नपु सक, द्वीन्द्रिय ति यो नपु सक, त्रीन्द्रिय ति यो. नपु सक, चतुरिन्द्रिय ति यो नपु सक, पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपु सक, जलचर, स्थलचर और खेचर नपु सको मे कौन किससे कम, वहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! सवसे थोडे खेचर तिर्यक्योनिक पुरुष,
उनसे खेचर तिर्यक्योनिक स्त्रियां सख्यातगुणी,
उनसे स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक पुरुष सख्यातगुण,
उनसे स्थल पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक स्त्रिया सख्यातगुणी,
उनसे जलचर तिर्यक्योनिक पुरुष सख्यातगुण,
उनसे जलचर तिर्यक्योनिक स्त्रिया सख्यातगुणी,
उनसे खेचर पचे तिर्यक्योनिक नपु सक असख्यातगुण,
उनसे स्थलचर पचे तिर्यक्योनिक नपु सक सख्यातगुण,
उनसे जलचर पचे तिर्यक्योनिक नपु सक सख्यातगुण,
उनसे चतुरिन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपु सक विशेषाधिक,
उनसे त्रीन्द्रिय ति यो नपु सक विशेषाधिक,
उनसे द्वीन्द्रिय ति यो नपु सक विशेषाधिक,
उनसे तेजस्कायिक एकेन्द्रिय ति यो नपु सक असख्यातगुण,

उनसे पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक,
उनसे अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक,
उनसे वायुकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक विशेषाधिक,
उनसे वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसक अनन्तगुण हैं।

(७) हे भगवन्! इन मनुष्यस्त्रियों में—कर्मभूमिक स्त्रियों, अकर्मभूमिक स्त्रियों और अन्तरर्द्वीपिक मनुष्यस्त्रियों में, मनुष्यपुरुषों—कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक और अन्तरर्द्वीपकों में, मनुष्य नपुंसक—कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक और अन्तरर्द्वीपिक नपुंसकों में कौन किससे कम, अधिक तुल्य या विशेषाधिक हैं?

गौतम! अन्तरर्द्वीपिक मनुष्यस्त्रियां और मनुष्यपुरुष—ये दोनों परस्पर तुल्य और सबसे थोड़े हैं,

उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियां और मनुष्यपुरुष—ये दोनों परस्पर तुल्य और संख्यातगुण हैं,

उनसे हरिवर्ष-रम्यकवर्ष अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियां और मनुष्यपुरुष परस्पर तुल्य और संख्यातगुण हैं,

उनसे हैमवत-हैरण्यवत अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियां और मनुष्यपुरुष परस्पर तुल्य और संख्यातगुण हैं,

उनसे भरत-ऐरवत-कर्मभूमिक मनुष्यपुरुष दोनों संख्यातगुण हैं,
उनसे भरत-ऐरवत-कर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियां दोनों संख्यातगुण हैं,
उनसे भरत-ऐरवत-कर्मभूमिक मनुष्यपुरुष दोनों संख्यातगुण हैं,
उनसे पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह कर्मभूमक मनुष्यपुरुष दोनों संख्यातगुण हैं,
उनसे पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह कर्मभूमक मनुष्यस्त्रियां दोनों संख्यातगुणी हैं,
उनसे अन्तरर्द्वीपिक मनुष्यनपुंसक असंख्यातगुण हैं,
उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य नपुंसक दोनों संख्यातगुण हैं,

इसी तरह यावत् पूर्वविदेहकर्मभूमिक मनुष्यनपुंसक, पश्चिमविदेह कर्मभूमिक मनुष्यनपुंसक दोनों संख्यातगुण हैं।

(८) भगवन्! इन देवस्त्रियों में, भवनवासिनियों में, वाणव्यन्तरियों में, ज्योतिषीस्त्रियों में और वैमानिकस्त्रियों में, देवपुरुषों में भवनवासी यावत् वैमानिकों में, सौधर्मकल्प यावत् ग्रैवेयक देवों में अनुत्तरोपपातिक देवों में, नैरयिक नपुंसकों में—रत्नप्रभा नैरयिक नपुंसकों, यावत् अधःसप्तमपृथ्वी नैरयिक नपुंसकों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे थोड़े अनुत्तरोपपातिक देवपुरुष,
उनसे उपरिम ग्रैवेयक देवपुरुष संख्यातगुण,
इसी तरह यावत् आनतकल्प के देवपुरुष संख्यातगुण,
उनसे अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असंख्यातगुण,

उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असख्यातगुण,
उनसे सहस्रारकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण,
उनसे महाशुक्रकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण,
उनसे पाचवी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असख्यातगुण,
उनसे लान्तककल्प के देव असख्यातगुण,
उनसे चौथी पृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुण,
उनसे ब्रह्मलोककल्प के देवपुरुष असख्यातगुण,
उनसे तीसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असख्यातगुण,
उनसे माहेन्द्रकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण,
उनसे सनत्कुमारकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण,
उनसे दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असख्यातगुण,
उनसे ईशानकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण,
उनसे ईशानकल्प की देवस्त्रिया सख्यातगुणी,
उनसे सौधर्मकल्प के देवपुरुष सख्यातगुण,
उनसे सौधर्मकल्प की देवस्त्रिया सख्यातगुणी,
उनसे भवनवासी देवपुरुष असख्यातगुण,
उनसे भवनवासी देवस्त्रिया सख्यातगुणी,
उनसे इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक नपुंसक असख्यातगुण,
उनसे वानव्यन्तर देवपुरुष असख्यातगुण,
उनसे वानव्यन्तर देवस्त्रिया सख्यातगुणी,
उनसे ज्योतिष्कदेवपुरुष सख्यातगुण,
उनसे ज्योतिष्क देवस्त्रिया सख्यातगुणी है ।

(९) हे भगवन् ! इन तिर्यक्योनिक स्त्रियो—जलचरी स्थलचरी व खेचरियो मे, तिर्यक्योनिक पुरुषो—जलचर, स्थलचर खेचरो मे, तिर्यक्योनिक नपुंसको—एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक नपुंसको, पृथ्वीकायिक एके ति नपुंसको, अप्कायिक एके ति नपुंसको यावत् वनस्पतिकायिक एके ति नपुंसको मे, द्वीन्द्रिय ति नपुंसको मे त्रीन्द्रिय ति नपुंसको मे, चतुरिन्द्रिय ति नपुंसको मे, पचेन्द्रिय ति नपुंसको—जलचर, स्थलचर, खेचर नपुंसको मे, मनुष्यस्त्रियो—कर्मभूमिका, अकर्मभूमिका, अन्तर्द्वीपिका स्त्रियो मे, मनुष्यपुरुषो—कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक, अन्तर्द्वीपिको मे, मनुष्य नपुंसको—कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक, अन्तरद्वीपको मे, देवस्त्रियो—भवनवासिनियो, वानव्यन्तरियो, ज्योतिषिणियो मे, वैमानिक देवियो मे, देवपुरुषो मे—भवनवासी, वानव्यन्तर ज्योतिष्क, वैमानिक देवो मे, सौधर्मकल्प यावत् ग्रैवेयको मे, अनुत्तरोपपातिक देवो मे, नैरयिक नपुंसको—रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक नपुंसको यावत् अध सप्तम पृथ्वी नैरयिक नपुंसको मे कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

गौतम ! अन्तर्द्वीपिक अकर्मभूमिक मनुष्यस्त्रिया और मनुष्यपुरुष—ये दोनो परस्पर तुल्य और सबसे थोडे है,

उनसे देवकुरु—उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य स्त्रियां और पुरुष दोनो तुल्य और सख्यातगुण है,

इसी प्रकार अकर्मभूमिक हरिवर्ष-रम्यकवर्ष को मनुष्यस्त्रिया और मनुष्यपुरुष दोनो तुल्य और सख्यातगुण हैं। इसी प्रकार हैमवत-हैरण्यवत के स्त्री पुरुष तुल्य व सख्यातगुण हैं। भरत-ऐरवत कर्मभूमिग मनुष्यपुरुष दोनो यथोत्तर सख्यातगुण हैं,

उनसे भरत-एरवत कर्मभूमिक मनुष्यस्त्रिया दोनो सख्यातगुण हैं,
उनसे पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह कर्मभूमिक मनुष्यपुरुष दोनो सख्यातगुण है,
उनसे पूर्वविदेह-पश्चिमविदेह कर्मभूमिक मनुष्यस्त्रिया दोनो सख्यातगुण हैं,
उनसे अनुत्तरोपपातिक देवपुरुष असख्यातगुण हैं,
उनसे उपरिम ग्रैवेयक देवपुरुष सख्यातगुण हैं,
उनसे यावत् आनतकल्प के देवपुरुष यथोत्तर सख्यातगुण हैं,
उनसे अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिक नपुसक असख्यातगुण हैं,
उनसे छठी पृथ्वी के नैरयिक नपुसक असख्यातगुण हैं,
उनसे सहस्रारकल्प मे देवपुरुष असख्यातगुण हैं,
उनसे महाशुक्रकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण हैं,
उनसे पाचवी पृथ्वी के नैरयिक नपुसक असख्यातगुण है,
उनसे लान्तककल्प के देवपुरुष असख्यातगुण है,
उनसे चौथी पृथ्वी के नैरयिक नपुसक असख्यातगुण हैं,
उनसे ब्रह्मलोककल्प के देवपुरुष असख्यातगुण हैं,
उनसे तीसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुसक असख्यातगुण हैं,
उनसे माहेन्द्रकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण हैं,
उनसे सनत्कुमारकल्प के देवपुरुष असख्यातगुण हैं,
उनसे दूसरी पृथ्वी के नैरयिक नपुसक असंख्यातगुण हैं,
उनसे अन्तर्द्वीपिक अकर्मभूमिक मनुष्य नपुसक असख्यातगुण है,
उनसे देवकुरु-उत्तरकुरु अकर्मभूमिक मनुष्य नपुसक दोनो सख्यातगुण हैं,
इस प्रकार यावत् विदेह तक यथोत्तर संख्यातगुण कहना चाहिए,
उनसे ईशानकल्प मे देवपुरुष असख्यातगुण हैं,
उनसे ईशानकल्प मे देवस्त्रिया सख्यातगुणी हैं,
उनसे सौधर्मकल्प मे देवपुरुष संख्यातगुण हैं,
उनसे सौधर्मकल्प मे देवस्त्रियां सख्यातगुणी हैं,
उनसे भवनवासी देवपुरुष असख्यातगुण हैं,
उनसे भवनवासी देवस्त्रिया सख्यातगुणी हैं,
उनसे इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक नपुसक असंख्यातगुण है,
उनसे खेचर तिर्यक्योनिक पुरुष सख्यातगुण हैं,
उनसे खेचर तिर्यक्स्त्रिया सख्यातगुणी हैं,
उनसे स्थलचर तिर्यक्योनिक पुरुष सख्यातगुण है,

उनसे स्थलचर तिर्यक्योनिक स्त्रिया सख्यातगुणी है,
उनसे जलचर तिर्यक्योनिक पुरुष सख्यातगुण हैं,
उनसे जलचर तिर्यक्योनिक स्त्रिया सख्यातगुण हैं,
उनसे वानव्यन्तर देवपुरुष सख्यातगुण है,
उनसे वानव्यन्तर देविया सख्यातगुणी है,
उनसे ज्योतिष्क देवपुरुष सख्यातगुण हैं,
उनसे ज्योतिष्क देवास्त्रिया सख्यातगुण है,
उनसे खेचर पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपु सक सख्यातगुण है,
उनसे स्थलचर ति यो नपु सक सख्यातगुण है,
उनसे जलचर ति यो नपु सक सख्यातगुण हैं,
उनसे चतुरिन्द्रिय नपु सक विशेषाधिक हैं,
उनसे त्रीन्द्रिय नपु सक विशेषाधिक है,
उनसे द्वीन्द्रिय नपु सक विशेपाधिक है,
उनसे तेजस्कायिक एके ति यो नपु मक असख्यातगुण है,
उनसे पृथ्वीकायिक एके ति यो नपु सक विशेषाधिक हैं,
उनसे अप्कायिक एके ति यो नपु सक विशेषाधिक है,
उनसे वायुकायिक एके ति. यो नपु सक विशेषाधिक है,
उनसे वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक नपु सक अनन्तगुण है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नौ अल्पवहुत्व की वक्तव्यता है ।

(१) प्रथम अल्पवहुत्व सामान्य से स्त्री, पुरुष और नपु सक को लेकर है। (२) दूसरा अल्पवहुत्व सामान्य से तिर्यक्योनिक स्त्री, पुरुष और नपु सक विषयक है। (३) तीसरा अल्पवहुत्व सामान्य से मनुष्य स्त्री, पुरुप और नपु सक को लेकर है । (४) चौथा अल्पवहुत्व सामान्य से देवी स्त्री, पुरुप और नारक नपु सक को लेकर है। देवो मे नप सक नही होते और नारक केवल नपु मक ही होते हैं, अत देवस्त्री देवपुरुष के साथ नारकनपु सको का अल्पबहुत्व वताया गया है। (५) पाचवें अल्पवहुत्व मे सामान्य की अपेक्षा पूर्वोक्त सवका मिश्रित अल्पबहुत्व कहा है ।

(६) छठा अल्पवहुत्व विशेप को लेकर (भेदो की अपेक्षा से) तिर्यक्योनिक स्त्री, पुरुष नपु सक विपयक हैं। (७) सातवा अल्पवहुत्व विशेष-भेदो की अपेक्षा से मनुष्य स्त्री, पुरुष, नपु सक के सवध मे है। (८) आठवा अल्पवहुत्व विशेष की अपेक्षा से देव स्त्री, पुरुष और नारक नपु सको को लेकर कहा गया है। (९) नौवा अल्पबहुत्व तिर्यंच और मनुष्य के स्त्री पुरुष एव नपु सक तथा देवो के स्त्री, पुरुप तथा नारक नपु सको का—सव विजातीय व्यक्तियो का मिश्रित अल्पवहुत्व है।

मलयगिरिवृत्ति मे यहां आठ ही अल्पवहुत्व का उल्लेख है। पहला अल्पवहुत्व जो सामान्य स्त्री- पुरुष-नपु सक को लेकर कहा गया है, उसका वृत्ति मे उल्लेख नही है। वृत्तिकार ने 'एयासि ण भते ! तिरिक्खजोणियइत्थीण' पाठ से ही अल्पवहुत्व का आरभ किया है ।

अल्पबहुत्व की व्याख्या मूलार्थ से ही स्पष्ट है और पूर्व मे अलग-अलग प्रसगो मे सब प्रकार के जीवो का प्रमाण और उसकी समझाइश हेतुपूर्वक दे दी गई है, अतएव यहाँ पुनः उसे दोहराना अनावश्यक ही है।

समुदाय रूप मे स्त्री-पुरुष-नपुंसकों की स्थिति

६३ इत्थीणं भंते ! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगेण आएसेण जहा पुव्वि भाणिय, एव पुरिसस्स वि नपुंसकस्स वि। सचिट्ठणा पुनरवि तिण्हपि जहा पुव्वि भाणिया, अंतरं पि तिण्ह पि जहा पुव्वि भाणियं तहा नेयव्व।

[६३] भगवन् ! स्त्रियो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

गौतम ! 'एक अपेक्षा से' इत्यादि कथन जो स्त्री-प्रकरण मे किया गया है, वही यहाँ कहना चाहिए। इसी प्रकार पुरुष और नपुसक की भी स्थिति आदि का कथन पूर्ववत् समझना चाहिए। तीनो की सचिट्ठणा (कायस्थिति) और तीनो का अन्तर भी जो अपने-अपने प्रकरण मे कहा गया है, वही यहाँ (समुदाय रूप से) कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे स्त्री, पुरुष और नपुंसको को लेकर जो कालस्थिति (भवस्थिति), सचिट्ठणा (कायस्थिति) और अन्तर आदि का पूर्व मे पृथक्-पृथक् प्रकरण मे वर्णन किया गया है, उसी का समुदायरूप मे सकलन है। जो कथन पहले अलग-अलग प्रकरणो मे किया गया है, उसका यहाँ समुदाय रूप से कथन अभिप्रेत होने से पुनरुक्ति दोष का प्रसग नही है।

वृत्तिकार ने यहाँ वह पाठ माना है जो अल्पवहुत्व सम्वन्धी पूर्ववर्ती सूत्र के प्रथम अल्पवहुत्व के रूप मे दिया गया है। वह इस प्रकार है—'एयासि ण भते इत्थीण पुरिसाण नपुंसकाण य कयरे कयरेहिन्तो अप्पा वा ४ ? सव्वथोवा पुरिसा, इत्थीओ सखेज्जगुणाओ, नपुसका अणतगुणा।'

उक्त अल्पवहुत्व मे समुदायरूप स्त्री-पुरुष एव नपुसको का कथन होने से वृत्तिकार ने इसे सामुदायिक प्रकरण मे लिया है। सामुदायिक स्थिति, सचिट्ठणा और अन्तर के साथ ही सामुदायिक अल्पवहुत्व होने से यहाँ यह पाठ विशेष सगत होता है। लेकिन अल्पवहुत्व के साधर्म्य से आठ अल्पबहुत्वो के साथ उसे प्रथम अल्पवहुत्व के रूप मे पूर्वसूत्र मे दे दिया है। इस प्रकार केवल स्थान-भेद है—आशय भेद नही है।

स्त्रियो की पुरुषो से अधिकता

६४. तिरिक्खजोणित्थियाओ तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो तिगुणाओ तिरूवाधियाओ, मणुस्सित्थियाओ मणुस्सपुरिसेहिंतो सत्तावीसइगुणाओ सत्तावीसइरूवाहियाओ देवित्थियाओ देवपुरिसेहिंतो बत्तीसइगुणाओ बत्तीसइरूवाहियाओ।

से त्तं तिविहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता।

तिविहेसु होइ भेयो, ठिई य संचिट्ठणंतरप्पवहुं।
वेदाण य बंधठिई वेओ तह किंपगारो उ ॥१॥

से त्त तिविहा संसारसमापन्नगा जीवा पण्णत्ता।

[६४] तिर्यक्योनि की स्त्रियां तिर्यक्योनि के पुरुषों से तीन गुनी और त्रिरूप अधिक हैं।

मनुष्यस्त्रियां मनुष्यपुरुषों से सत्तावीसगुनी और सत्तावीसरूप अधिक हैं।

देवस्त्रियां देवपुरुषों से बत्तीसगुनी और बत्तीसरूप अधिक हैं।

इस प्रकार संसार समापन्नक जीव तीन प्रकार के हैं, यह प्रतिपादन पूरा हुआ।

(संकलित गाथा) तीन वेदरूप दूसरी प्रतिपत्ति में प्रथम अधिकार भेदविषयक है, इसके बाद स्थिति, संचिट्ठणा, अन्तर और अल्पबहुत्व का अधिकार है। तत्पश्चात् वेदों की बंधस्थिति तथा वेदों का अनुभव किस प्रकार का है, यह वर्णन किया गया है।

॥ त्रिविधसंसार समापन्नक जीवरूप दूसरी प्रतिपत्ति समाप्त ॥

विवेचन—पहले कहा गया है कि पुरुषों से स्त्रियां अधिक हैं तो सहज प्रश्न होता है कि कितनी अधिक हैं? इस जिज्ञासा का समाधान इस सूत्र में किया गया है।

तिर्यक्योनि की स्त्रियां तिर्यक् पुरुषों से तीन गुनी हैं अर्थात् संख्या में तीनगुनीविशेष हैं। 'गुण' शब्द गुण-दोष के अर्थ में भी आता है, अतः उसे स्पष्ट करने के लिए त्रिरूप अधिक विशेषण दिया है। 'गुण' से यहां संख्या अर्थ अभिप्रेत है।

मनुष्यस्त्रियां मनुष्यपुरुषों से सत्तावीसगुनी हैं और देवस्त्रियां देवपुरुषों से बत्तीसगुनी हैं।[1]

उपसंहार

इस दूसरी प्रतिपत्ति के अन्त में विषय को संकलित करने वाली गाथा दी गई है। उसमें कहा गया है कि त्रिविध वेदों की वक्तव्यता वाली इस दूसरी प्रतिपत्ति में पहले भेद, तदनन्तर क्रमशः स्थिति, संचिट्ठणा (कायस्थिति), अन्तर एवं अल्पबहुत्व का प्रतिपादन है। इसके पश्चात् वेदों की बंधस्थिति और वेदों के अनुभवप्रकार का कथन किया गया है।

॥ त्रिविध संसारसमापन्नक जीव वक्तव्यतारूप द्वितीय प्रतिपत्ति समाप्त ॥

□□

---

१. तिगुणा तिरूव अहिया तिरियाणं इत्थिया मुणयव्वा।
सत्तावीसगुणा पुण मणुयाणं तदहिया चेव ॥१॥
बत्तीसगुणा बत्तीस रूप अहिया उ होंति देवाणं।
देवीओ पण्णत्ता जिणेहिं जियरागदोसेहिं ॥२॥

चतुर्विधाख्या तृतीय प्रतिपत्ति

द्वितीय प्रतिपत्ति मे ससारसमापन्नक जीवो के तीन भेदो का विवेचन किया गया है। अब क्रम प्राप्त तीसरी प्रतिपत्ति मे ससारसमापन्नक जीवो के चार भेदो को लेकर विवेचन किया जा रहा है। उसका आदिसूत्र इस प्रकार है—

चार प्रकार के संसारसमापन्नक जीव

९५. तत्थ जे ते एवमाहंसु—चउव्विहा ससारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ते एवमाहसु, तंजहा—नेरइया, तिरिक्खजोणिया, मणुस्सा, देवा।

[९५] जो आचार्य इस प्रकार कहते हैं कि ससारसमापन्नक जीव चार प्रकार के हैं, वे ऐसा प्रतिपादन करते हैं, यथा—नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देव।

९६ से किं तं नेरइया ?

नेरइया सत्तविहा पण्णत्ता, तंजहा—

पढमापुढविनेरइया, दोच्चापुढविनेरइया, तच्चापुढविनेरइया चउत्थापुढविनेरइया, पचमापुढविनेरइया, छट्ठापुढविनेरइया, सत्तमा पुढविनेरइया।

[९६] नैरयिको का स्वरूप क्या है ?

नैरयिक सात प्रकार के कहे गये हैं, यथा—प्रथमपृथ्वीनैरयिक, द्वितीयपृथ्वीनैरयिक, तृतीय पृथ्वीनैरयिक, चतुर्थपृथ्वीनैरयिक, पचमपृथ्वीनैरयिक, षष्ठपृथ्वीनैरयिक और सप्तमपृथ्वीनैरयिक।

९७ पढमा ण भंते ! पुढवी किंनामा किंगोत्ता पण्णत्ता ?

गोयमा ! णामेणं घम्मा, गोत्तेण रयणप्पभा।

दोच्चा णं भंते ! पुढवी किंनामा किंगोत्ता पण्णत्ता ?

गोयमा ! णामेणं वंसा गोत्तेणं सक्करप्पभा ?

एवं एतेणं अभिलावेण सव्वासि पुच्छा,

णामाणि इमाणि सेला तच्चा, अंजणा चउत्थी, रिट्ठा पचमी, मघा छट्ठी, माघवती सत्तमा जाव तमतमागोत्तेणं पण्णत्ता।

[९७] हे भगवन् ! प्रथम पृथ्वी का क्या नाम और क्या गोत्र है ?

गौतम ! प्रथम पृथ्वी का नाम 'घम्मा' है और उसका गोत्र रत्नप्रभा है।

भगवन् ! द्वितीय पृथ्वी का क्या नाम और क्या गोत्र कहा गया है ?

गौतम ! दूसरी पृथ्वी का नाम वशा है और गोत्र शर्कराप्रभा है।

इस प्रकार सब पृथ्वियो के सम्बन्ध मे प्रश्न करने चाहिए।

उनके नाम इस प्रकार हैं—तीसरी पृथ्वी का नाम शैला, चौथी पृथ्वी का नाम अजना, पाचवी पृथ्वी का नाम रिष्ठा है, छठी पृथ्वी का नाम मघा और सातवी पृथ्वी का नाम माघवती है। इस प्रकार तीसरी पृथ्वी का गोत्र वालुकाप्रभा, चोथी का पकप्रभा, पाचवी का धूमप्रभा, छठी का तम प्रभा और सातवी का गोत्र तमस्तम प्रभा है।

६८. इमा णं भते ! रयणप्पभापुढवी केवइया वाहल्लेण पण्णत्ता ?

गोयमा ! इमा णं रयणप्पभापुढवी असिउत्तर जोयणसयसहस्स बाहल्लेण पण्णत्ता, एव एतेणं अभिलावेण इमा गाहा अणुगतव्वा—

असीयं वत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं य।
अट्ठारस सोलसग अट्ठुत्तरमेव हिट्ठिमिया ॥१॥

[६८] भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी कितनी मोटी कही गई है ?

गौतम ! यह रत्नप्रभापृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है। इसी प्रकार शेष पृथ्वियो की मोटाई इस गाथा से जानना चाहिए—

'प्रथम पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन की है। दूसरी की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन की है। तीसरी की मोटाई एक लाख अट्ठाईस हजार योजन की है। चौथी की मोटाई एक लाख बीस हजार योजन की है। पाचवी की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन की है। छठी की मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन की है। सातवी की मोटाई एक लाख आठ हजार योजन की है।

विवेचन—(सू ६५ से ६६ तक)

पूर्व प्रतिपादित दस प्रकार की प्रतिपत्तियो मे से जो आचार्य ससारसमापन्नक जीवो के चार प्रकार कहते हैं वे चार गतियो के जीवो को लेकर ऐसा प्रतिपादन करते हैं, यथा—१ नरकगति के नैरयिक जीव, २ तिर्यंचगति के जीव, ३ मनुष्यगति के जीव और ४ देवगति के जीव। ऐसा कहे जाने पर सहज जिज्ञासा होती है कि नैरयिक आदि जीव कहाँ रहते है, उनके निवास रूप नरकभूमियो के नाम, गोत्र, विस्तार आदि क्या और कितने है ? नरकभूमियो और नारको के विषय मे विविध जानकारी इन सूत्रो मे और आगे के सूत्रो मे दी गई है।

सर्वप्रथम नारक जीवो के प्रकार को लेकर प्रश्न किया गया है। उसके उत्तर मे कहा गया है कि नारक जीव सात प्रकार के हैं। सात नरकभूमियो की अपेक्षा से नारक जीवो के सात प्रकार बनाये है, जैसे कि प्रथमपृथ्वीनैरयिक से लगा कर सप्तमपृथ्वीनैरयिक तक। इसके पश्चात् नरकपृथ्वियो के नाम और गोत्र को लेकर प्रश्न और उत्तर हैं। नाम और गोत्र मे अन्तर यह है कि नाम अनादिकालसिद्ध होता है और अन्वर्थरहित होता है अर्थात् नाम मे उसके अनुरूप गुण होना आवश्यक नही है, जबकि गोत्र गुणप्रधान होता है। सात पृथ्वियो के नाम और गोत्र इस प्रकार है—

पृथ्विया	नाम	गोत्र	वाहल्य (योजनो मे)
प्रथम पृथ्वी	घम्मा	रत्नप्रभा	एक लाख अस्सी हजार
द्वितीय पृथ्वी	वशा	शर्कराप्रभा	एक लाख वत्तीस हजार
तृतीय पृथ्वी	शैला	वालुकाप्रभा	एक लाख अट्ठावीस हजार
चतुर्थ पृथ्वी	अजना	पकप्रभा	एक लाख वीस हजार
पचम पृथ्वी	रिष्टा	धूमप्रभा	एक लाख अठारह हजार
षष्ठ पृथ्वी	मधा	तमप्रभा	एक लाख सोलह हजार
सप्तम पृथ्वी	माघवती	तमस्तमप्रभा	एक लाख आठ हजार

नाम की अपेक्षा गोत्र की प्रधानता है, अतएव रत्नप्रभादि गोत्र का उल्लेख करके प्रश्न किये गये हैं तथा उसी रूप मे उत्तर दिये गये है। नरकभूमियो के गोत्र अर्थानुसार हैं, अतएव उनके अर्थ को स्पष्ट करते हुए पूर्वाचार्यों ने कहा है कि रत्नो की जहाँ वहुलता हो वह रत्नप्रभा है।[1] यहाँ 'प्रभा' का अर्थ वाहुल्य है। इसी प्रकार शेष पृथ्वियो के विषय मे भी समझना चाहिए। जहाँ शर्करा (ककर) की प्रधानता हो वह शर्कराप्रभा। जहाँ वालू की प्रधानता हो वह वालुकाप्रभा। जहाँ कीचड की प्रधानता हो पकप्रभा।[2] धुए की तरह जहाँ प्रभा हो वह धूमप्रभा है। जहाँ अन्धकार का वाहुल्य हो वह तम प्रभा और जहाँ वहुत घने अन्धकार की वहुलता हो वह तमस्तम.प्रभा है।

यहाँ किन्ही किन्ही प्रतियो मे इन पृथ्वियो के नाम और गोत्र को वताने वाली दो सग्रहणी गाथाएँ दी गई हैं, जो नीचे टिप्पण मे दी गई हैं।[3]

इसके पश्चात् प्रत्येक नरकपृथ्वी की मोटाई को लेकर प्रश्नोत्तर है। नरकपृथ्वियो का वाहुल्य (मोटाई) ऊपर कोष्ठक मे बता दिया गया है। इस विषयक सग्रहणी गाथा इस प्रकार है—

असीयं बत्तीस अट्ठावीसं तहेव वीसं च।
अट्ठारस सोलसगं अट्ठुत्तरमेव हिट्ठिमिया॥

इस गाथा का अर्थ मूलार्थ मे दे दिया है। स्पष्टता के लिए पुन यहाँ दे रहे हैं। रत्नप्रभा-नरकभूमि की मोटाई १ लाख ८० हजार योजन, शर्कराप्रभा की १ लाख ३२ हजार, वालुका-प्रभा की १ लाख २८ हजार, पकप्रभा की १ लाख २० हजार, धूमप्रभा की १ लाख १८ हजार, तम प्रभा की १ लाख १६ हजार और तमस्तम प्रभा की मोटाई १ लाख ८ हजार योजन की है।

अव आगे के सूत्र मे रत्नप्रभा आदि नरकपृथ्वियो के भेद को लेकर प्रश्नोत्तर हैं—

---

१ रत्नाना प्रभा—वाहुल्य यत्र सा रत्नप्रभा रत्नवहुलेति भाव ।—वृत्ति

२ धूमस्येव प्रभा यस्या सा धूमप्रभा।

३ घम्मा वसा सेला अजण रिट्ठा मघा या माघवती।
सत्तण्ह पुढवीण एए नामा उ नायव्वा॥ १॥
रयणा सक्कर वालुय पका धूमा तमा य तमतमा।
सत्तण्ह पुढवीण एए गोत्ता मुणेयव्वा॥ २॥

६९. इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तजहा—खरकडे, पकबहुले कडे, आवबहुले कंडे ।

इमीसे णं भते ! रयणप्पभापुढवीए खरकडे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! सोलसविधे पण्णत्ते, तजहा—१ रयणकडे, २ वइरे ३ वेरुलिए, ४ लोहितयक्खे, ५ मसारगल्ले, ६ हंसगब्भे, ७ पुलए, ८ सोयधिए, ९ जोतिरसे, १० अंजणे, ११ अजणपुलए, १२ रयए, १३ जातरूवे, १४ अंके, १५ फलिहे, १६ रिट्ठेकडे ।

इमीसे णं भते ! रयणप्पभापुढवीए रयणकडे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते । एव जाव रिट्ठे ।

इमीसे णं भते ! रयणप्पभापुढवीए पकबहुले कंडे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते ।

एवं आवबहुले कंडे कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते ।

सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवी कतिविधा पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगागारा पण्णत्ता । एवं जाव अहेसत्तमा ।

[६९] भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी कितने प्रकार की कही गई है ?

गौतम ! तीन प्रकार की कही गई है, यथा—१ खरकाण्ड, २ पकबहुलकाड और अप्बहुल (जल की अधिकता वाला) काड ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का खरकाण्ड कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! सोलह प्रकार का कहा गया है, यथा—

१ रत्नकाड, २ वज्रकाड, ३ वैडूर्य, ४ लोहिताक्ष, ५ मसारगल्ल, ६ हसगर्भ, ७ पुलक, ८. सौगधिक, ९ ज्योतिरस, १० अजन, ११ अजनपुलक, १२ रजत, १३ जातरूप, १४ अक, १५ स्फटिक और १६. रिष्ठकाड ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का रत्नकाण्ड कितने प्रकार का है ?

गौतम ! एक ही प्रकार का है । इसी प्रकार रिष्टकाण्ड तक एकाकार कहना चाहिए ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का पकवहुलकाड कितने प्रकार का है ?

गौतम ! एक ही प्रकार का कहा गया है ।

इसी तरह अप्वहुलकाड कितने प्रकार का है ।

गौतम ! एकाकार है ।

भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी कितने प्रकार की है ?

गौतम ! एक ही प्रकार की है ।

इसी प्रकार अध सप्तमपृथ्वी तक एकाकार कहना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे रत्नप्रभा आदि पृथ्वियो के प्रकार (विभाग) की पृच्छा है। उत्तर मे कहा गया है कि रत्नप्रभापृथ्वी के तीन प्रकार (विभाग) है, यथा—खरकाड, पकबहुलकाड और अप्‌बहुलकाण्ड। काण्ड का अर्थ है—विशिष्ट भूभाग। खर का अर्थ है कठिन। रत्नप्रभापृथ्वी का प्रथम खरकाण्ड १६ विभाग वाला है। रत्नकाण्ड नामक प्रथम विभाग, वज्रकाण्ड नामक द्वितीय विभाग, वैडूर्यकाण्ड नामक तृतीय विभाग, इस प्रकार रिष्टरत्नकाण्ड नामक सोलहवा विभाग है। सोलह रत्नो के नाम के अनुसार रत्नप्रभा के खरकाण्ड के सोलह विभाग है। प्रत्येक काण्ड एक हजार योजन की मोटाई वाला है। इस प्रकार खरकाण्ड सोलह हजार योजन की मोटाई वाला है। उक्त रत्नकाण्ड से लगाकर रिष्टकाण्ड पर्यन्त सब काण्ड एक ही प्रकार के है, अर्थात् इनमे फिर विभाग नही है।

दूसरा काण्ड पकबहुल है। इसमे कीचड की अधिकता है और इसका और विभाग न होने से यह एक प्रकार का ही है। यह दूसरा काण्ड ८४ हजार योजन की मोटाई वाला है। तीसरे अप्‌बहुल-काण्ड मे जल की प्रचुरता है और इसका कोई विभाग नही है, एक ही प्रकार का है। यह ८० हजार योजन की मोटाई वाला है। इस प्रकार रत्नप्रभा के तीनो काण्डो को मिलाने से रत्नप्रभा की कुल मोटाई (१६+८४+८०) एक लाख अस्सी हजार हो जाती है।

दूसरी नरकपृथ्वी शर्कराप्रभा से लेकर अध सप्तमपृथ्वी तक की नरकभूमियो के कोई विभाग नही हैं। सब एक ही आकार वाली है।

नरकावासो की संख्या

७०. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता?

गोयमा! तीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, एवं एएणं अभिलावेणं सव्वासि पुच्छा, इमा गाहा अणुगतव्वा—

तीसा य पण्णवीसा पण्णरस दसेव तिण्णि य हवंति।
पंचूण सयसहस्सं पंचेव अणुत्तरा णरगा ॥१॥

जाव अहेसत्तमाए पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणरगा पण्णत्ता, तंजहा—काले, महाकाले, रोरुए, महारोरुए, अपइट्ठाणे।

[७०] भगवन्! इस रत्नप्रभापृथ्वी मे कितने लाख नरकावास कहे गये हैं?

गौतम! तीस लाख नरकावास कहे गये हैं। इस गाथा के अनुसार सातो नरको मे नरकावासो की सख्या जाननी चाहिए। प्रथम पृथ्वी मे तीस लाख, दूसरी मे पच्चीस लाख, तीसरी मे पन्द्रह लाख, चौथी मे दस लाख, पाचवी मे तीन लाख, छठी मे पाच कम एक लाख और सातवी पृथ्वी मे पाच अनुत्तर महान रकावास हैं।

अधःसप्तमपृथ्वी मे जो बहुत बडे अनुत्तर महान रकावास कहे गये है, वे पाच हैं, यथा—१ काल, २ महाकाल, ३ रौरव, ४ महारौरव और ५ अप्रतिष्ठान।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रत्येक नरकापृथ्वी मे नारकावासो की सख्या बताई गई है।

(१) प्रथम रत्नप्रभापृथ्वी से लगाकर छठी तम प्रभापृथ्वी पर्यन्त पृथ्वियो मे नरकावास दो प्रकार के हैं—आवलिकाप्रविष्ट और प्रकीर्णक रूप। जो नरकावास पक्तिबद्ध हैं वे आवलिका-प्रविष्ट हैं और जो विखरे-विखरे हैं, वे प्रकीर्णक रूप हैं। रत्नप्रभापृथ्वी के तेरह प्रस्तर (पाथडे) हैं। प्रस्तर गृहभूमि तुल्य होते हैं। पहले प्रस्तर मे पूर्वादि चारो दिशाओ मे ४९-४९ नरकावास हैं। चार विदिशाओ मे ४८-४८ नरकावास हैं। मध्य मे सीमन्तक नाम का नरकेन्द्रक है। ये सव मिलकर ३८९ नरकावास होते हैं। शेष वारह प्रस्तरो मे प्रत्येक मे चारो दिशाओ और चारो विदिशाओ मे एक-एक नरकावास कम होने से आठ-आठ नरकावास कम-कम होते गये हैं। अर्थात् प्रथम प्रस्तर मे ३८९, दूसरे मे ३८१, तीसरे मे ३७३ इस प्रकार आगे-आगे के प्रस्तर मे आठ-आठ नरकावास कम हैं। इस प्रकार तेरह प्रस्तरो मे कुल ४४३३ नरकावास आवलिकाप्रविष्ट हैं और शेष २९९५५६७ (उनतीस लाख पचानवै हजार पाच सौ सडसढ) नारकावास प्रकीर्णक रूप हैं। कुल मिलाकर प्रथम रत्नप्रभा-पृथ्वी मे तीस लाख नरकावास हैं।[1]

(२) शर्कराप्रभा के ग्यारह प्रस्तर है। पहले प्रस्तर मे चारो दिशाओ मे ३६-३६ आवलिका-प्रविष्ट नरकावास हैं। चारो विदिशाओ मे ३५-३५ नरकावास और मध्य मे एक नरकेन्द्रक, सब मिलाकर २८५ नरकवास पहले प्रस्तर मे आवलिकाप्रविष्ट हैं। शेष दस प्रस्तरो मे प्रत्येक मे आठ-आठ की हानि होने से सव प्रस्तरो के मिलाकर २६९५ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं। शेष २४९७३०५ (चौवीस लाख सित्तानवै हजार तीन सौ पाच) पुष्पावकीर्णक नरकावास हैं। दोनो मिलाकर पच्चीस लाख नरकावास दूसरी शर्कराप्रभा मे हैं।

(३) तीसरी वालुकाप्रभा मे नौ प्रस्तर हैं। पहले प्रस्तर मे प्रत्येक दिशा मे २५-२५, विदिशा मे २४-२४ और मध्य मे एक नरकेन्द्रक—कुल मिलाकर १९७ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं। शेष आठ प्रस्तरो मे प्रत्येक मे आठ-आठ की हानि है, सव मिलाकर १४८५ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं। शेप १४९८५१५ पुष्पावकीर्णक नरकावास हैं। दोनो मिलाकर पन्द्रह लाख नरका-वास तीसरी पृथ्वी मे हैं।[3]

(४) चौथी पकप्रभा मे सात प्रस्तर हैं। पहले प्रस्तर मे प्रत्येक दिशा मे १६-१६ आवलिका-प्रविष्ट नरकावास हैं और विदिशा मे १५-१५ हैं, मध्य मे एक नरकेन्द्रक है। सब मिलकर १२५ नरकावास हुए। शेष छह प्रस्तरो मे प्रत्येक मे आठ-आठ की हानि है अत सब मिलाकर ७०७ आव-लिकाप्रविष्ट नरकावास हैं—शेश ९९९२९३ (नौ लाख निन्यानवै हजार दो सौ तिरानवै) पुष्पाव-कीर्णक नरकावास हैं। दोनो मिलाकर दस लाख नरकावास पकप्रभा मे हैं।[4]

---

१ सत्तट्ठी पचसया पणनउइसहस्स लक्खगुणतीस ।
रयणाए सेढिगया चोयालसया उ तित्तीस ॥१॥

२ सत्ता णउइसहस्सा चउवीस लक्ख तिसय पचअहिया ।
वीयाए सेढिगया छव्वीससया उ पणनउया ॥

३ पचसया पन्नारा अडनवइसहस्स लक्ख चोद्दस य ।
तइयाए सेढिगया पणसीया चोद्दस सया उ ॥

४ तेणउया दोण्णि सया नवनउइसहस्स नव य लक्खा य ।
पकाए सेढिगया सत्तसया हुति सत्तहिया ॥

(५) पाचवी धूमप्रभा मे ५ प्रस्तर हैं। पहले प्रस्तर मे एक-एक दिशा मे नौ-नौ आवलिका-प्रविष्ट विमान हैं और विदिशाओ मे आठ-आठ हैं। मध्य मे एक नरकेन्द्रक है। सब मिलाकर ६९ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं। शेष चार प्रस्तरो मे पूर्ववत् आठ-आठ की हानि है। अत सब मिलाकर २६५ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं। शेष २९९७३५ (दो लाख निन्यानवै हजार सात सौ पैतीस) पुष्पावकीर्णक नरकावास हैं। दोनो मिलकर तीन लाख नरकावास पाचवी पृथ्वी मे हैं।

(६) छठी तम·प्रभा मे तीन प्रस्तर हैं। प्रथम प्रस्तर की प्रत्येक दिशा मे चार-चार और प्रत्येक विदिशा मे ३-३, मध्य मे एक नरकेन्द्रक सब मिलाकर २९ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास हैं। शेष दो प्रस्तरो मे क्रम से आठ-आठ की हानि है। अत· सब मिलाकर ६३ आवलिकाप्रविष्ट नरकावास है। शेष ९९९३२ (निन्यानवै हजार नौ सौ बत्तीस) पुष्पावकीर्णक हैं। दोनो मिलाकर छठी पृथ्वी मे ९९९९५ नरकावास हैं।

(७) सातवी पृथ्वी मे केवल पाच नरकावास हैं। काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान उनके नाम हैं। अप्रतिष्ठान नामक नरकावास मध्य मे है और उसके पूर्व मे काल नरकावास, पश्चिम मे महाकाल, दक्षिण मे रौरव और उत्तर मे महारौरव नरकावास हैं।

पृथ्वी का नाम	आवलिकाप्रविष्ट नरकावास	पुष्पावकीर्णक नरकावास	कुल नरकावास
रत्नप्रभा	४४३३	२९९५५६७	३००००००
शर्कराप्रभा	२६९५	२४९७३०५	२५०००००
बालुकाप्रभा	१४८५	१४९८५१५	१५०००००
पकप्रभा	७०७	९९९२९३	१००००००
धूमप्रभा	२६५	२९९७३५	३०००००
तम प्रभा	६३	९९९३२	९९९९५
तमस्तम प्रभा	१ मध्य मे	४ चारो दिशाओ मे	५

१ सत्तसया पणतीसा नवनवइसहस्स दो य लक्खा य।
धूमाए सेढिगया पणसट्ठा दो सया होति ॥

२ नवनउई य सहस्सा नव चेव सया हवति बत्तीसा।
पुढवीए छट्ठीए पइण्णगाणेस सखेवो ॥

३ पुव्वेण होइ कालो अवरेण अप्पइट्ठ महकालो।
रोरु दाहिणपासे उत्तरपासे महारोरू ॥

घनोदधि आदि की पृच्छा

७१. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे घणोदहीति वा, घणवातेति वा, तणुवातेति वा, ओवासंतरेति वा ?

हंता अत्थि । एवं जाव अहेसत्तमाए ।

[७१] हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे घनोदधि है, घनवात है, तनुवात है और शुद्ध आकाश है क्या ?

हाँ गौतम ! है । इसी प्रकार सातो पृथ्वियो के नीचे घनोदधि, घनवात, तनुवात और शुद्ध आकाश है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नरकपृथ्वियो का आधार बताया गया है । सहज ही यह प्रश्न हो सकता है कि ये सातो नरकपृथ्विया किसके आधार पर स्थित हैं ? इसका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते है कि ये पृथ्विया जमे हुए जल पर स्थित हैं । जमे हुए जल को घनोदधि कहते हैं । पुनः प्रश्न होता है कि घनोदधि किसके आधार पर रहा हुआ है तो उसका समाधान किया गया है कि घनोदधि, घनवात पर स्थित है । अर्थात् पिण्डीभूत वायु के आधार पर घनोदधि स्थित है । घनीभूत वायु (घनवात) तनुवात (हल्की वायु) पर आधारित है और तनुवात आकाश पर प्रतिष्ठित है । आकाश किसी पर अवलम्बित न होकर स्वयं प्रतिष्ठित है । तात्पर्य यह है कि आकाश के आधार पर तनुवात, तनुवात पर घनवात और घनवात पर घनोदधि और घनोदधि पर ये रत्नप्रभादि पृथ्विया स्थित हैं ।[1]

प्रश्न हो सकता है कि वायु के आधार पर उदधि और उदधि के आधार पर पृथ्वी कैसे ठहर सकती है ? इसका समाधान एक लौकिक उदाहरण के द्वारा किया है गया । कोई व्यक्ति मशक (वस्ती) को हवा से फुला दे । फिर उसके मुह को फीते से मजबूत गाठ देकर बाध दे तथा उस मशक के बीच के भाग को भी बाध दे । ऐसा करने से मशक मे भरे हुए पवन के दो भाग हो जावेंगे, जिससे थैली डुगडुगी जैसी लगेगी । तब उस मशक का मुह खोलकर ऊपर के भाग की हवा निकाल दे और उसकी जगह पानी भरकर फिर उस मशक का मुह बांध दे और बीच का बन्धन खोल दे । तब ऐसा होगा कि जो पानी उस मशक के ऊपरी भाग मे है, वह ऊपर के भाग मे ही रहेगा, अर्थात् नीचे भरी हुई वायु के ऊपर ही वह पानी रहेगा, नीचे नही जा सकता । जैसे वह पानी नीचे भरी वायु के आधार पर ऊपर ही टिका रहता है, उसी प्रकार घनवात के ऊपर घनोदधि रह सकता है ।

दूसरा उदाहरण यह है कि जैसे कोई व्यक्ति हवा से भरे हुए डिब्बे या मशक को कमर पर बाधकर अथाह जल मे प्रवेश करे तो वह जल के ऊपरी सतह पर ही रहेगा नीचे नही डूबेगा । वह जल के आधार पर स्थित रहेगा । उसी तरह घनाम्बु पर पृथ्विया टिकी रह सकती हैं ।

ये सातो नरकभूमिया एक दूसरी के नीचे हैं, परन्तु बिल्कुल सटी हुई नही हैं । इनके बीच मे बहुत अन्तर है । इस अन्तर मे घनोदधि, घनवात, तनुवात और शुद्ध आकाश नीचे-नीचे हैं । प्रथम

---

१ रत्नशर्करावालुकापकधूमतमोमहातम प्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठा सप्ताधोध पृथुत्तरा तत्त्वार्थ०
—तत्त्वार्थसूत्र अ ३

नरकभूमि के नीचे घनोदधि है, इसके नीचे घनवात है, इसके नीचे तनुवात है और इसके नीचे आकाश है। आकाश के बाद दूसरी नरकभूमि है। दूसरी और तीसरी नरकभूमि के बीच मे भी क्रमश घनोदधि, घनवात, तनुवात और आकाश है। इसी तरह सातवी नरकपृथ्वी तक सब भूमियो के नीचे उसी क्रम से घनोदधि आदि हैं।

अब सूत्रकार रत्नकाण्डादि का बाहल्य (मोटाई) बताते हैं—

रत्नादिकाण्डो का बाहल्य

७२. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाएपुढवीए खरकंडे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
गोयमा ! सोलस जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।
इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाएपुढवीए रयणकंडे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ते। एवं जाव रिट्ठे।
इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाएपुढवीए पंकबहुले कंडे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
गोयमा ! चउरसीति जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।
इमीसे णं भते ! रयणप्पभाए पुढवीए आवबहुल्ले कंडे केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
गोयमा ! असीति जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।
इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदही केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
गोयमा ! वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।
इमीसे णं भते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणवाए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
गोयमा ! असंखेज्जइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। एव तणुवाए वि, ओवासंतरे वि।
सक्करप्पभाए णं पुढवीए घणोदही केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
गोयमा ! बीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।
सक्करप्पभाए णं पुढवीए घणवाए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?
गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। एवं तणुवाए वि, ओवासंतरे वि।
जहा सक्करप्पभाए पुढवीए एवं जाव अहेसत्तमाए।

[७२] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का खरकाण्ड कितनी मोटाई वाला कहा गया है ?
गौतम ! सोलह हजार योजन की मोटाई वाला कहा गया है।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का रत्नकाण्ड कितनी मोटाई वाला है ?
गौतम ! वह एक हजार योजन की मोटाई वाला है।

इसी प्रकार रिष्टकाण्ड तक की मोटाई जानना।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का पकबहुल काड कितनी मोटाई का है ?
गौतम ! वह चौरासी हजार योजन की मोटाई वाला है।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का अप्‌बहुलकाण्ड कितनी मोटाई का है ?
गौतम ! वह अस्सी हजार योजन की मोटाई का है ।
भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का घनोदधि कितना मोटा है ?
गौतम ! वह बीस हजार योजन की मोटाई का है ।
भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का घनवात कितना मोटा है ?
गौतम ! वह असख्यात हजार योजन का मोटा है ।
इसी प्रकार तनुवात भी और आकाश भी असख्यात हजार योजन की मोटाई वाले हैं ।
भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी का घनोदधि कितना मोटा है ?
गौतम ! बीस हजार योजन का है ।
भगवन् ! शर्कराप्रभा का घनवात कितना मोटा है ?
गौतम ! असख्यात हजार योजन की मोटाई वाला है ।
इसी प्रकार तनुवात और आकाश भी असख्यात हजार योजन की मोटाई वाले हैं ।

जैसी शर्कराप्रभा के घनोदधि, घनवात, तनुवात और आकाश की मोटाई कही है, वही शेष सब पृथ्वियो की (सातवी पृथ्वी तक) जाननी चाहिए ।

विवेचन—पहले नरकपृथ्वियो का बाहल्य कहा गया था । इस सूत्र मे रत्नप्रभापृथ्वी के तीन काण्डो का और घनोदधि, घनवात, तनुवात तथा आकाश का बाहल्य बताया गया है । काण्ड केवल रत्नप्रभापृथ्वी मे ही हैं । खरकाण्ड के सोलह विभाग हैं और प्रत्येक विभाग का बाहल्य एक हजार योजन का बताया है । सोलह काण्डो का कुल बाहल्य सोलह हजार योजन का है । पकबहुल दूसरे काण्ड का बाहल्य चोरासी हजार और अप्‌बहुल तीसरे काण्ड का बाहल्य अस्सी हजार योजन है । इस प्रकार रत्नप्रभा के तीनो काण्डो का बाहल्य मिलाने से रत्नप्रभा की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन की है ।

प्रत्येक पृथ्वी के नीचे क्रमश. घनोदधि, घनवात, तनुवात और आकाश है । अत उनका बाहल्य भी बता दिया गया है । घनोदधि का बाहल्य बीस हजार योजन का है । घनवात का बाहल्य असख्यात हजार योजन का है । तनुवात और आकाश का बाहल्य भी प्रत्येक असख्यात हजार योजन का है । सभी पृथ्वियो के घनोदधि आदि का बाहल्य समान है ।

रत्नप्रभादि में द्रव्यों की सत्ता

७३ इमीसे णं भते ! रयणप्पभापुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्सबाहल्लाए खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णओ कालनीललोहितहालिद्दसुक्किलाइं, गंधओ, सुरभिगंधाइं दुब्भिगंधाइं, रसओ तित्तकडुयकसायअंबिलमहुराइं, फासओ कक्खड-मउय-गरुय-लहु-सीय-उसिण-णिद्ध-लुक्खाइं, संठाणओ परिमडल-वट्ट-तंस-चउरंस--आयय सठाणपरिणयाइं अन्नमन्नबद्धाइं अन्नमन्न-पुट्ठाइं, अन्नमन्नओगाढाइं, अण्णमण्णसिणेहपडिबद्धाइं अण्णमण्णघडत्ताए चिट्ठन्ति ?

हंता अत्थि ।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाएपुढवीए खरकंडस्स सोलसजोयणसहस्सबाहल्लस्स खेतच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ काल जाव परिणयाइं ।

हंता अत्थि ।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाएपुढवीए रयणनामगस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेतच्छेएणं छिज्जमाणस्स तं चेव जाव हंता अत्थि ।

एवं जाव रिट्ठस्स ।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाएपुढवीए पंकबहुलस्स कंडस्स चउरासीति जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएण छिज्जमाणस्स० तं चेव । एवं जाव बहुलस्स वि असीतिजोयणसहस्सबाहल्लस्स ।

इमीसे णं भंते । रयणप्पभापुढवीए घणोदधिस्स वीसं जोयणसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं तहेव । एवं घणवातस्स असंखेज्जजोयणसहस्सबाहल्लस्स तहेव । ओवासंतरस्स वि तं चेव ।

सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लस्स खेत्तच्छेएण छिज्जमाणीए अत्थि दव्वाइं वण्णओ जाव घडत्ताए चिट्ठंति ?

हंता अत्थि ।

एवं घणोदहिस्स वीसजोयणसहस्सबाहल्लस्स घणवातस्स असंखेज्जजोयणसहस्सबाहल्लस्स, एवं जाव ओवासंतरस्स । जहा सक्करप्पभाए एवं जाव अहेसत्तमाए ।

[७२] भगवन् ! एक लाख अस्सी हजार योजन बाहल्य वाली और प्रतर-काण्डादि रूप में (बुद्धि द्वारा) विभक्त इस रत्नप्रभापृथ्वी में वर्ण से काले-नीले-लाल-पीले और सफेद, गंध से सुरभिगंध वाले और दुर्गन्ध वाले, रस से तिक्त-कटुक-कसैले-खट्टे-मीठे तथा स्पर्श से कठोर-कोमल-भारी-हल्के-शीत-उष्ण-स्निग्ध और रूक्ष, संस्थान से परिमंडल (लड्डू की तरह गोल), वृत्त (चूडी के समान गोल), त्रिकोण, चतुष्कोण और आयात (लम्बे) रूप में परिणत द्रव्य एक-दूसरे से बंधे हुए, एक दूसरे से स्पृष्ट—छुए हुए, एक दूसरे में अवगाढ़, एक दूसरे से स्नेह द्वारा प्रतिबद्ध और एक दूसरे से सम्बद्ध हैं क्या ?

हाँ, गौतम ! हैं ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के सोलह हजार योजन बाहल्य वाले और बुद्धि द्वारा प्रतरादि रूप में विभक्त खरकांड में वर्ण-गंध-रस-स्पर्श और संस्थान रूप में परिणत द्रव्य यावत् एक दूसरे से सम्बद्ध हैं क्या ?

हाँ, गौतम ! है ।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन बाहल्य वाले और प्रतरादि रूप में बुद्धि-द्वारा विभक्त रत्न नामक काण्ड में पूर्व विशेषणों से विशिष्ट द्रव्य हैं क्या ?

हाँ, गौतम ! हैं ।

इसी प्रकार रिष्ट नामक काण्ड तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के पंकबहुल काण्ड में जो चौरासी हजार योजन बाहल्य वाला और बुद्धि द्वारा प्रतरादि रूप में विभक्त है, (उसमें) पूर्ववर्णित द्रव्यादि हैं क्या ?

हाँ, गौतम ! हैं ।

इसी प्रकार अस्सी हजार योजन बाहल्य वाले अप्वहुल काण्ड मे भी पूर्वविशिष्ट द्रव्यादि हैं ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के वीस हजार योजन बाहल्य वाले और बुद्धि से विभक्त घनोदधि मे पूर्व विशेषण वाले द्रव्य हैं ?

हाँ, गौतम ! हैं ।

इसी प्रकार असख्यात हजार योजन वाहल्य वाले घनवात और तनुवात मे तथा आकाश मे भी उसी प्रकार द्रव्य हैं ।

हे भगवन् ! एक लाख वत्तीस हजार योजन बाहल्य वाली और बुद्धि द्वारा प्रतरादि रूप में विभक्त शर्कराप्रभा पृथ्वी मे पूर्व विशेषणो से विशिष्ट द्रव्य यावत् परस्पर सम्वद्ध हैं क्या ?

हाँ, गौतम ! हैं ।

इसी तरह वीस हजार योजन वाहल्य वाले घनोदधि, असख्यात हजार योजन वाहल्य वाले घनवात और आकाश के विषय मे भी समझना चाहिए ।

शर्कराप्रभा की तरह इसी क्रम से सप्तम पृथ्वी तक वक्तव्यता समझनी चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सातो नरकपृथ्वियो मे, रत्नप्रभापृथ्वी के तीनो काण्डो मे, घनोदधियो मे, घनवातो मे, तनुवातो मे और अवकाशान्तरो मे द्रव्यो की सत्ता का कथन किया गया है । सव जगह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा विविध पर्यायो मे परिणत द्रव्यो का सद्भाव वताया गया है । प्रश्नोत्तर का क्रम इस प्रकार है—

सर्वप्रथम रत्नप्रभापृथ्वी मे द्रव्यो का सद्भाव कहा है । इसके वाद क्रमश खरकाण्ड, रत्नकाण्ड से लेकर रिष्टकाण्ड तक, पुकवहुलकाण्ड, अप्वहुलकाण्ड, घनोदधि, घनवात, तनुवात, अवकाशान्तरो में द्रव्यों का सद्भाव कहा है । इसके पश्चात् शर्करापृथ्वी मे, उसके घनोदधि-घनवात-तनुवात और अवकाशान्तरो मे द्रव्यो का सद्भाव वताया है । शर्करापृथ्वी की तरह ही सातो पृथ्वियो की वक्तव्यता कही है ।

सूत्र मे आये हुए 'अन्नमन्नवद्धाइ' आदि पदो का अर्थ इस प्रकार है—

अन्नमन्नवद्धाइ—एक दूसरे से सम्वन्धित ।

अन्नमन्नपुट्ठाइ—एक दूसरे को स्पर्श किये हुए—छुए हुए ।

अन्नमन्नोगाढाइ—जहाँ एक द्रव्य रहा है, वही देश या सर्व से दूसरे द्रव्य भी रहे हुए हैं ।

अन्नमन्नसिणेहपडिवद्धाइ—स्नेह गुण के कारण परस्पर मिले हुए रहते हैं, जिससे एक के चलायमान होने पर दूसरा भी चलित होता है, एक के गृहीत होने पर दूसरा भी गृहीत होता है ।

अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठ ति—क्षीर-नीर की तरह एक दूसरे मे प्रगाढरूप से मिले हुए या समुदित रहते हैं ।

नरकों का संस्थान

७४. इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी किंसंठिता पण्णत्ता ?

गोयमा ! झल्लरिसंठिया पण्णत्ता ।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए खरकंडे किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! झल्लरिसंठिए पण्णत्ते ।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए रयणकंडे किंसंठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! झल्लरिसंठिए पण्णत्ते । एवं जाव रिट्ठे । एवं पंकबहुले वि एवं आवबहुले वि, घणोदधी वि, घणवाए वि, तणुवाए वि, ओवासंतरे वि । सव्वे झल्लरिसंठिए पण्णत्ते ।

सक्करप्पभा णं भंते ! पुढवी किंसंठिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! झल्लरिसंठिए पण्णत्ते । एवं जाव ओवासंतरे, जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया एवं जाव अहेसत्तमाए वि ।

[७४] हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का आकार कैसा है ?
गौतम ! झालर के आकार का है । अर्थात् विस्तृत वलयाकार है ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के खरकाड का कैसा आकार है ?
गौतम ! झालर के आकार का है ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के रत्नकाण्ड का क्या आकार है ?
गौतम ! झालर के आकार का है । इसी प्रकार रिष्टकाण्ड तक कहना चाहिए । इसी तरह पकवहुलकांड, अप्‌वहुलकांड, घनोदधि, घनवात, तनुवात और अवकाशान्तर भी सब झालर के आकार के हैं ।

भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी का आकार कैसा है ?
गौतम ! झालर के आकार का है ।

भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के घनोदधि का आकार कैसा है ?
गौतम ! झालर के आकार का है । इसी प्रकार अवकाशान्तर तक कहना चाहिए ।

शर्कराप्रभा की वक्तव्यता के अनुसार शेष पृथ्वियो की अर्थात् सातवी पृथ्वी तक की वक्तव्यता जाननी चाहिए ।

सातों पृथ्वियों की अलोक से दूरी

७५. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लाओ उवरिमंताओ केवइयं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ?

गोयमा ! दुवालसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयंते पण्णत्ते, एवं दाहिणिल्लाओ, पच्चत्थिमिल्लाओ, उत्तरिल्लाओ ।

सक्करप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ केवइय अबाधाए लोयंते पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिभागूर्णेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयते पण्णत्ते । एवं चउद्दिसिं वि ।

वालुयप्पभाए पुढविए पुरत्थिमिल्लाओ पुच्छा ?

गोयमा ! सतिभागेहिं तेरसहिं जोयणेहिं अबाधाए लोयते पण्णत्ते । एवं चउद्दिसिं पि; एवं सव्वासिं चउसु दिसासु पुच्छियव्वं ।

पंकप्पभापुढवीए चोद्दसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयते पण्णत्ते । पंचमाए तिभागूर्णेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयते पण्णत्ते । छट्ठीए सतिभागेहिं पन्नरसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयते पण्णत्ते । सत्तमीए सोलसहिं जोयणेहिं अबाहाए लोयते पण्णत्ते । एवं जाव उत्तरिल्लाओ ।

इमीसे ण भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमते कतिविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—घणोदधिवलए, घणवायवलए, तणुवायवलये ।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए दाहिणिल्ले चरिमंते कतिविधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तंजहा—एवं जाव उत्तरिल्ले, एवं सव्वासिं जाव अधेसत्तमाए उत्तरिल्ले ।

[७५] हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वदिशा के उपरिमान्त से कितने अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है ?

गौतम ! बारह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है। इसी प्रकार दक्षिण-दिशा के, पश्चिमदिशा के और उत्तरदिशा के उपरिमान्त से बारह योजन अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है।

हे भगवन् ! शर्कराप्रभा पृथ्वी के पूर्वदिशा के चरमांत से कितने अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है ?

गौतम ! त्रिभाग कम तेरह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है । इसी प्रकार चारों दिशाओं को लेकर कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! वालुकाप्रभा पृथ्वी के पूर्वदिशा के चरमांत से कितने अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है ?

गौतम ! त्रिभाग सहित तेरह योजन के अपान्तराल बाद लोकान्त है। इस प्रकार चारों दिशाओं को लेकर कहना चाहिए । सब नरकपृथ्वियों की चारों दिशाओं को लेकर प्रश्न करना चाहिए ।

पंकप्रभा में चौदह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त है। पांचवीं धूमप्रभा में त्रिभाग कम पन्द्रह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त है । छठी तमप्रभा में त्रिभाग सहित पन्द्रह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त है । सातवीं पृथ्वी में सोलह योजन के अपान्तराल के बाद लोकान्त कहा गया है । इसी प्रकार उत्तरदिशा के चरमान्त तक जानना चाहिए ।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वदिशा का चरमान्त कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—घनोदधिवलय, घनवातवलय और तनुवातवलय ।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के दक्षिणदिशा का चरमान्त कितने प्रकार का है ।

गौतम ! तीन प्रकार का कहा गया है, यथा घनोदधिवलय, घनवातवलय और तनुवातवलय ।

इसी प्रकार उत्तरदिशा के चरमान्त तक कहना चाहिए ।

इसी प्रकार सातवी पृथ्वी तक की सब पृथ्वियो के उत्तरी चरमान्त तक सब दिशाओ के चरमान्तो के प्रकार कहने चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नरकपृथ्वियो के चरमान्त से अलोक कितना दूर है, यह प्रतिपादित किया है । रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वदिशा के चरमान्त से अलोक बारह योजन की दूरी पर है । अर्थात् रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वदिशा वाले चरमान्त और अलोक के बीच मे बारह योजन का अपान्तराल है । इसी तरह रत्नप्रभापृथ्वी के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के चरमान्त से भी बारह योजन की दूरी पर अलोक है । यहाँ दिशा का ग्रहण उपलक्षण है अत चारो विदिशाओ के चरमान्त से भी अलोक बारह योजन की दूरी पर है और बीच मे अपान्तराल है ।

शर्कराप्रभापृथ्वी के सब दिशाओ और विदिशाओ से चरमान्त से अलोक त्रिभागन्यून तेरह ($१२\frac{२}{३}$) योजन दूरी पर है । अर्थात् चरमान्त और अलोक के बीच इतना अपान्तराल है ।

बालुकाप्रभा के सब दिशा-विदिशाओ के चरमान्त से अलोक पूर्वोक्त त्रिभागसहित तेरह योजन (परिपूर्ण तेरह योजन) की दूरी पर है । बीच मे इतना अपान्तराल है ।

पकप्रभा और अलोक के बीच १४ योजन का अपान्तराल है । धूमप्रभा और अलोक के बीच त्रिभागन्यून १५ योजन का अपान्तराल है । तम प्रभा और अलोक के बीच पूर्वोक्त त्रिभाग सहित पन्द्रह योजन का अपान्तराल है । अध सप्तमपृथ्वी के चरमान्त और अलोक के बीच परिपूर्ण सोलह योजन का अपान्तराल है ।

इस प्रकार अपान्तराल बताने के पश्चात् प्रश्न किया गया है कि ये अपान्तराल आकाशरूप हैं या इनमे घनोदधि आदि व्याप्त है ? उत्तर मे कहा गया है कि ये अपान्तराल घनोदधि, घनवात और तनुवात से व्याप्त हैं । यहाँ ये घनोदधि आदि वलयाकार हैं, अतएव ये घनोदधिवलय, घनवात-वलय और तनुवातवलय कहे जाते हैं । पहले सब नरकपृथ्वियो के नीचे घनोदधि आदि का जो बाहल्य-प्रमाण कहा गया है, वह उनके मध्यभाग का है । इसके बाद प्रदेश-हानि से घटते-घटते अपनी-अपनी पृथ्वी के पर्यन्त मे तनुतर होकर अपनी-अपनी पृथ्वी को वलयाकार वेष्टित करके रहे हुए हैं, इसलिए इनको वलय कहते हैं । इन वलयो का उच्चत्व तो सर्वत्र अपनी-अपनी पृथ्वी के अनुसार ही है । तिर्यग् बाहल्य आगे बताया जायेगा । यहाँ तो अपान्तरालो का विभागमात्र बताया है ।

घनोदधिवलय का तिर्यग् बाहल्य

७६. (१) इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! छ जोयणाणि बाहल्लेण पण्णत्ते ।

सक्करप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए केवइयं बाहल्लेण पण्णत्ते ?

गोयमा ! सतिभागाइं छ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते। वालुयप्पभाए पुच्छा; गोयमा ! तिभागूणाइ सत्त जोयणाइ बाहल्लेणं पण्णत्ते। एव एतेण अभिलावेण पकप्पभाए सत्तजोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

धूमप्पभाए सतिभागाइ सत्तजोयणाइं पण्णत्ते।

तमप्पभाए तिभागूणाइ अट्ठजोयणाइं।

तमतमप्पभाए अट्ठजोयणाइ।

इमीसे णं भते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणवायवलए केवइय बाहल्लेणं पण्णत्ते ?

गोयमा ! अद्धपचमाइ जोयणाइं बाहल्लेणं।

सक्करप्पभाए पुच्छा,

गोयमा ! कोसूणाइं पचजोयणाइं बाहल्लेण पण्णत्ते।

एवं एएण अभिलावेणं वालुप्पभाए पचजोयणाइं वाहल्लेण पण्णत्ते, पंकप्पभाए सक्कोसाइं पचजोयणाइ वाहल्लेण पण्णत्ते। धूमप्पभाए अद्धछट्ठाइ जोयणाइ बाहल्लेणं पण्णत्ते। तमप्पभाए कोसूणाइ छ जोयणाइं वाहल्लेणपुण्णत्ते। अहेसत्तमाए छ जोयणाइं बाहल्लेण पण्णत्ते।

इमीसे ण भते ! रयणप्पभापुढवीए तणुवायवलए केवइयं वाहल्लेण पण्णत्ते ?

गोयमा ! छक्कोसेण वाहल्लेण पण्णत्ते। एव एएणं अभिलावेण सक्करप्पभाए सतिभागे छक्कोसे वाहल्लेण पण्णत्ते। वालुयप्पभाए तिभागूणे सत्तकोस बाहल्लेणं पण्णत्ते। पकप्पभाए पुढवीए सत्तकोस वाहल्लेण पण्णत्ते। धूमप्पभाए सतिभागे सत्तकोसे। तमप्पभाए तिभागूणे अट्ठकोसे बाहल्लेणं पण्णत्ते। अधेसत्तमाए पुढवीए अट्ठकोसे वाहल्लेण पण्णत्ते।

[७६-१] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का घनोदधिवलय कितना मोटा है ?

गौतम ! छह योजन की मोटाई वाला है।

भते ! शर्कराप्रभापृथ्वी का घनोदधिवलय कितना मोटा है ?

गौतम ! त्रिभागसहित छह योजन मोटा है।

वालुकाप्रभा की पृच्छा—गौतम ! त्रिभागन्यून सात योजन का है। इसी अभिलाप से पकप्रभा का घनोदधिवलय सात योजन का, धूमप्रभा का त्रिभागसहित सात योजन का, तम प्रभा का त्रिभागन्यून आठ योजन का और तमस्तम प्रभा का आठ योजन का है।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का घनवातवलय कितनी मोटाई वाला है ?

गौतम ! साढे चार योजन का मोटा है। शर्कराप्रभा का एक कोस कम पाच योजन का है। इसी प्रकार वालुकाप्रभा का पाच योजन का, पकप्रभा का एक कोस अधिक पाच योजन का, धूमप्रभा का साढे पाच योजन का और तमस्तम प्रभापृथ्वी का एक कोस कम छह योजन का बाहल्य है।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी का तनुवातवलय कितनी मोटाई वाला कहा गया है ?

गौतम ! छह कोस की मोटाई का है। इसी प्रकार शर्कराप्रभा का त्रिभागसहित छह कोस, वालुकाप्रभा का त्रिभागन्यून सात कोस, पकप्रभा का सात कोस, धूमप्रभा का त्रिभागसहित सात-

कोस का, तम प्रभा का त्रिभागन्यून आठ कोस और अध सप्तमपृथ्वी का तनुवातवलय आठ कोस वाहल्य वाला है।

अपान्तराल और बाहल्य का यन्त्र

पृथ्वी का नाम	अपान्तराल का प्रमाण	घनोदधिवलय का वाहल्य	घनवातवलय का वाहल्य	तनुवातवलय का वाहल्य
१ रत्नप्रभा	वारह योजन	६ योजन	४॥ योजन	६ कोस
२ शर्कराप्रभा	त्रिभाग कम १३ योजन	त्रिभागसहित ६ योजन	कोस कम ५ योजन	६⅓ कोस
३ वालुकाप्रभा	१३ योजन	त्रिभागन्यून ७ योजन	५ योजन	त्रिभागन्यून ७ कोस
४ पकप्रभा	१४ योजन	७ योजन	१ कोस ५ योजन	७ कोस
५ धूमप्रभा	त्रिभागन्यून १५ योजन	त्रिभागसहित ७ योजन	५॥ योजन	७⅓ कोस
६ तम प्रभा	१५ योजन	त्रिभागन्यून ८ योजन	कोस कम ६ योजन	त्रिभागन्यून ८ कोस
७ तमस्तम प्रभा	१६ योजन	८ योजन	६ योजन	८ कोस

[२] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलयस्स छ जोयणवाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स अत्थि दव्वाइं वण्णओ काल जाव हंता अत्थि।

सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए घणोदधिवलयस्स सतिभागछज्जोयण वाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स जाव हंता अत्थि। एवं जाव अघेसत्तमाए जं जस्स वाहल्लं।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणवातवलयस्स अद्धपंचम जोयणवाहल्लस्स खेत्तच्छेएणं छिज्जमाणस्स जाव हंता अत्थि। एवं जाव अहेसत्तमाए जं जस्स वाहल्लं।

एवं तणुवायवलयस्स वि जाव अहेसत्तमा जं जस्स वाहल्लं।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलए किंसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए पण्णत्ते। जे णं इमं रयणप्पभं पुढविं सव्वओ

संपरिक्खित्ता णं चिट्ठइ, एव जाव अधेसत्तमाए पुढवीए घणोदधिवलए; णवरं अप्पणप्पणं पुढविं संपरिक्खित्ताण चिट्ठति।

इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए घणवातवलए किंसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! वट्टे वलयागारे तहेव जाव जे ण इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए घणोदधिवलयं सव्वओ समंता सपरिक्खित्ताण चिट्ठइ एवं जाव अहेसत्तमाए घणवातवलए।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तणुवातवलए किंसठिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! वट्टे वलयागारसंठाणसठिए जाव जे णं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए घणवातवलयं सव्वओ समता सपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ। एव जाव अहेसत्तमाए तणुवातवलए।

इमा ण भंते ! रयणप्पभापुढवी केवइ आयामविक्खभेण पण्णत्ता ?

गोयमा ! असंखेज्जाइ जोयणसहस्साइ आयामविक्खभेण असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेण पण्णत्ता। एव जाव अधेसत्तमा।

इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी अते य मज्झे य सव्वत्थ समा बाहल्लेण पण्णत्ता ?

हता गोयमा ! इमा णं रयणप्पभापुढवी अते य मज्झे य सव्वत्थ समा बाहल्लेणं, एवं जाव अधेसत्तमा।

[७९-२] हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के छह योजन बाहल्य वाले और बुद्धिकल्पित प्रतरादि विभाग वाले घनोदधिवलय मे वर्ण से काले आदि द्रव्य हैं क्या ?

हाँ, गौतम ! हैं।

हे भगवन् ! इस शर्कराप्रभापृथ्वी के त्रिभागसहित छह योजन बाहल्य वाले और प्रतरादि विभाग वाले घनोदधिवलय मे वर्ण से काले आदि द्रव्य हैं क्या ?

हाँ, गौतम ! हैं। इस प्रकार जितना बाहल्य है, वह विशेषण लगाकर सप्तमपृथ्वी के घनोदधिवलय तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के साढे चार योजन बाहल्य वाले और प्रतरादि रूप मे विभक्त घनवातवलय मे वर्णादि परिणत द्रव्य हैं क्या ?

हाँ, गौतम हैं ! इसी प्रकार जिसका जितना बाहल्य है, वह विशेषण लगाकर सातवी पृथ्वी तक कहना चाहिए।

इसी प्रकार तनुवातवलय के सम्बन्ध मे भी अपने-अपने बाहल्य का विशेषण लगाकर सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधिवलय का आकार कैसा कहा गया है ?

गौतम ! वर्तुल और वलयाकार कहा गया है, क्योकि वह इस रत्नप्रभा पृथ्वी को चारो ओर से घेरकर रहा हुआ है। इसी प्रकार सातो पृथ्वियो के घनोदधिवलय का आकार समझना चाहिए। विशेषता यह है कि वे सब अपनी-अपनी पृथ्वी को घेरकर रहे हुए हैं।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनवातवलय का आकार कैसा कहा गया है ?

गौतम ! वर्तुल और वलयाकार कहा गया है, क्योकि वह इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधिवलय को चारो ओर से घेरकर रहा हुआ है। इसी तरह सातो पृथ्वियो के घनवातवलय का आकार जानना चाहिए।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तनुवातवलय का आकार कैसा कहा गया है ?

गौतम ! वर्तुल और वलयाकार कहा गया है, क्योकि वह घनवातवलय को चारो ओर मे घेरकर रहा हुआ है। इसी प्रकार सप्तमपृथ्वी तक के तनुवातवलय का आकार जानना चाहिए।

हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी कितनी लम्बी-चौडी कही गई है ?

गौतम ! असख्यात हजार योजन लम्बी और चौडी तथा असख्यात हजार योजन की परिधि (घेराव) वाली है। इसी प्रकार सप्तमपृथ्वी तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी अन्त मे और मध्य मे सर्वत्र समान वाहल्य वाली कही गई है ?

हाँ, गौतम ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी अन्त मे, मध्य मे सर्वत्र समान वाहल्य वाली कही गई है। इसी प्रकार सातवी पृथ्वी तक कहना चाहिए।

सर्व जीव-पुद्‌गलों का उत्पाद

७७ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए सव्वजीवा उववण्णपुव्वा ? सव्वजीवा उववण्णा ?

गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए सव्वजीवा उववण्णपुव्वा, नो चेव णं सव्वजीवा उववण्णा।

एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए।

इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा सव्वजीवेहिंविजढा ?

गोयमा ! इमा णं रयणप्पभापुढवी सव्वजीवेहिं विजढपुव्वा, नो चेव णं सव्वजीवविजढा।

एव जाद अधेसत्तमा।

इमीसे णं भते ! रयणप्पभाए पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा, सव्वपोग्गला पविट्ठा।

गोयमा ! इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा, नो चेव णं सव्वपोग्गला पविट्ठा।

एवं जाव अधेसत्तमाए पुढवीए।

इमा णं भते ! रयणप्पभापुढवी सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा ? सव्वपोग्गला विजढा ?

गोयमा ! इमा णं रयणप्पभापुढवी सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा, नो चेव णं सव्वपोग्गलेहिं विजढा।

एवं जाव अधेसत्तमा।

[७७] हे भगवन्! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी मे सब जीव पहले काल-क्रम से उत्पन्न हुए हैं तथा युगपत् (एक साथ) उत्पन्न हुए हैं ?

गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी मे कालक्रम से सब जीव पहले उत्पन्न हुए हैं किन्तु सब जीव एक साथ रत्नप्रभा मे उत्पन्न नही हुए।

इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी तक प्रश्न और उत्तर कहने चाहिए।

हे भगवन्! यह रत्नप्रभापृथ्वी कालक्रम से सव जीवो के द्वारा पूर्व मे परित्यक्त है क्या ? तथा सब जीवो के द्वारा पूर्व मे एक साथ छोडी गई है क्या ?

गौतम! यह रत्नप्रभापृथ्वी कालक्रम मे सब जीवो के द्वारा पूर्व मे परित्यक्त है परन्तु सव जीवो ने पूर्व मे एक साथ इसे नही छोडा है।

इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी तक प्रश्नोत्तर कहने चाहिए।

हे भगवन्! इस रत्नप्रभापृथ्वी मे कालक्रम से सव पुद्‌गल पहले प्रविष्ट हुए है क्या ? तथा क्या एक साथ सव पुद्‌गल इसमे पूर्व मे प्रविष्ट हुए हैं ?

गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी मे कालक्रम से सब पुद्‌गल पहले प्रविष्ट हुए हैं परन्तु एक साथ सव पुद्‌गल पूर्व मे प्रविष्ट नही हुए है।

इसी प्रकार सातवी पृथ्वी तक कहना चाहिए।

हे भगवन्! यह रत्नप्रभापृथ्वी कालक्रम से सव पुद्‌गलो के द्वारा पूर्व मे परित्यक्त है क्या ? तथा सव पुद्‌गलो ने एक साथ इसे छोडा है क्या ?

गौतम! यह रत्नप्रभापृथ्वी कालक्रम से सव पुद्‌गलो द्वारा पूर्व मे परित्यक्त है परन्तु सब पुद्‌गलो द्वारा एक साथ पूर्व मे परित्यक्त नही है।

इस प्रकार सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रश्न किया गया है कि क्या ससार के सव जीवो और सव पुद्‌गलो ने रत्नप्रभा आदि पृथ्वियो मे गमन और परिणमन किया है ? प्रश्न का आशय यह है कि क्या सब जीव रत्नप्रभा आदि मे कालक्रम से उत्पन्न हुए है या एक साथ सव जीव उत्पन्न हुए है ? पुद्‌गलो के सम्वन्ध मे भी रत्नप्रभादि के रूप मे कालक्रम से या युगपत् परिणमन को लेकर प्रश्न समझना चाहिए।

भगवान् ने कहा—गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी मे सब जीव कालक्रम से—अलग-अलग समय मे पहले उत्पन्न हुए है। यहाँ सब जीवो से तात्पर्य सव्यवहार राशि वाले जीव ही समझने चाहिए, अव्यवहार राशि के जीव नही। ससार अनादिकालीन होने से अलग-अलग समय मे सब जीव रत्नप्रभा आदि मे उत्पन्न हुए हैं। परन्तु सव जीव एक साथ रत्नप्रभादि मे उत्पन्न नही हुए। यदि सव जीव एक साथ रत्नप्रभादि मे उत्पन्न हो जाएँ तो देव, तिर्यंच, मनुष्यादि का अभाव प्राप्त हो जावेगा। ऐसा कभी नही होता। जगत् का स्वभाव ही ऐसा है। तथाविध जगत्-स्वभाव से चारो गतिया शाश्वत हैं। अत. एक साथ सब जीव रत्नप्रभादि मे उत्पन्न नही हो सकते।

पहला प्रश्न उत्पाद को लेकर है। निर्गम को लेकर दूसरा प्रश्न किया है कि हे भगवन्! सब जीवो ने पूर्व मे कालक्रम से रत्नप्रभादि पृथ्वियो को छोडा है या सब जीवो ने पूर्व मे एक साथ रत्नप्रभादि को छोडा है ?

भगवान् ने कहा—गौतम! सब जीवो ने भूतकाल मे कालक्रम से, अलग-अलग समय में रत्नप्रभादि भूमियो को छोडा है परन्तु सब जीवो ने एक साथ उन्हे नही छोडा। सब जीव एक साथ रत्नप्रभादि का परित्याग कर ही नही सकते। क्योकि तथाविध निमित्त ही नही है। यदि एक साथ सब जीवो द्वारा रत्नप्रभादि का त्याग किया जाना माना जाय तो रत्नप्रभादि मे नारको का अभाव हो जायगा। ऐसा कभी नही होता।

जीवो को लेकर हुए प्रश्नोत्तर के पश्चात् पुद्गल सम्बन्धी प्रश्न हैं। क्या सब पुद्गल भूतकाल मे रत्नप्रभादि के रूप मे कालक्रम से परिणत हुए है या एक साथ सब पुद्गल रत्नप्रभादि के रूप मे परिणत हुए हैं ? भगवान् ने कहा—सब पुद्गल कालक्रम से अलग-अलग समय मे रत्नप्रभादि के रूप मे परिणत हुए हैं, क्योकि ससार अनादिकाल से है और उसमे ऐसा परिणमन हो सकता है। परन्तु सब पुद्गल एक साथ रत्नप्रभादि के रूप मे परिणत नही हो सकते। सब पुद्गलो के तद्रूप मे परिणत होने पर रत्नप्रभादि को छोडकर अन्यत्र सब जगह पुद्गलो का अभाव हो जावेगा। ऐसा तथाविध जगत्-स्वभाव के कारण कभी नही होता।

इसी प्रकार सब पुद्गलो ने कालक्रम से रत्नप्रभादि रूप परिणमन का परित्याग किया है। क्योकि ससार अनादि है, किन्तु सब पुद्गलो ने एक साथ रत्नप्रभादि रूप परिणमन का त्याग नही किया है। क्योकि यदि वैसा माना जाय तो रत्नप्रभादि के स्वरूप का अभाव हो जावेगा। ऐसा हो नही सकता। क्योकि तथाविध जगत्-स्वभाव से रत्नप्रभादि शाश्वत है।

शाश्वत या अशाश्वत

७८ इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी किं सासया असासया ?

गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सिय सासया, सिय असासया ?

गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, वण्णपज्जवेहिं, गंधपज्जवेहिं, रसपज्जवेहिं, फासपज्जवेहिं असासया; से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—तं चेव जाव सिय असासया।

एवं जाव अधेसत्तमा।

इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी कालओ केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! न कयाइ ण आसि, न कयाइ णत्थि, न कयाइ न भविस्सइ; भुविं च भवइ य भविस्सइ य; धुवा, णियया, सासया, अक्खया, अव्वया, अवट्ठिआ णिच्चा। एवं चेव अधेसत्तमा।

[७८] हे भगवन्! यह रत्नप्रभापृथ्वी शाश्वत है या अशाश्वत ?

गौतम ! कथञ्चित् शाश्वत है और कथञ्चित् अशाश्वत है।

भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है—कथचित् शाश्वत है, कथचित् अशाश्वत है ?

गौतम ! द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से शाश्वत है और वर्ण-पर्यायो से, गधपर्यायो से, रस-पर्यायो से, स्पर्शपर्यायो से अशाश्वत है । इसलिए गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि यह रत्नप्रभापृथ्वी कथचित् शाश्वत है और कथचित् अशाश्वत है ।

इसी प्रकार अध सप्तमपृथ्वी तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी काल से कितने समय तक रहने वाली है ?

गौतम ! यह रत्नप्रभापृथ्वी 'कभी नही थी', ऐसा नही, 'कभी नही है', ऐसा भी नही और 'कभी नही रहेगी', ऐसा भी नही । यह अतीतकाल मे थी, वर्तमान मे है और भविष्य मे भी रहेगी । यह ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है ।

इसी प्रकार अध.सप्तमपृथ्वी तक जाननी चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे रत्नप्रभापृथ्वी को शाश्वत भी कहा है और अशाश्वत भी कहा है । इस पर शका होती है कि शाश्वतता और अशाश्वतता परस्पर विरोधी धर्म हैं तो एक ही वस्तु मे दो विरोधी धर्म कैसे रह सकते हैं ? यदि वह शाश्वत है तो अशाश्वत नही हो सकती और अशाश्वत है तो शाश्वत नही हो सकती । जैसे शीतत्व और उष्णत्व एकत्र नही रह सकते । एकान्तवादी दर्शनो की ऐसी ही मान्यता है । अतएव नित्यैकान्तवादी अनित्यता का अपलाप करते हैं और अनित्यैकान्तवादी नित्यता का अपलाप करते हैं । साख्य आदि दर्शन एकान्त नित्यता का समर्थन करते हैं जबकि बौद्धादि दर्शन एकान्त क्षणिकता-अनित्यता का समर्थन करते हैं । जैनसिद्धान्त इन दोनो एकान्तो का निषेध करता है और अनेकान्त का समर्थन करता है । जैनआगम और जैनदर्शन प्रत्येक वस्तु को विविध दृष्टिकोणो से देखकर उसकी विविधरूपता और एकरूपता को स्वीकार करता है । वस्तु भिन्न-भिन्न विवक्षाओ और अपेक्षाओ से भिन्न रूप वाली है और उस भिन्नरूपता मे भी उसका एकत्व रहा हुआ है । एकान्तवादी दर्शन केवल एक धर्म को ही समग्र वस्तु मान लेते हैं । जबकि वास्तव मे वस्तु विविध पहलुओ से विभिन्न रूप वाली है । अतएव एकान्तवाद अपूर्ण है, एकागी है । वह वस्तु के समग्र और सही स्वरूप को प्रकट नही करता । जैनसिद्धान्त वस्तु को समग्र रूप मे देख कर प्ररूपणा करता है कि प्रत्येक वस्तु अपेक्षाभेद से नित्य भी है, अनित्य भी है, सामान्यरूप भी है, विशेषरूप भी है, एकरूप भी है और अनेकरूप भी है । भिन्न भी है और अभिन्न भी है । ऐसा मानने पर एकान्तवादी दर्शन जो विरुद्धधर्मता का दोष देते हैं वह यथार्थ नही है । क्योकि विरोध दोष तो तब हो जब एक ही अपेक्षा या एक ही विवक्षा से उसे नित्यानित्य आदि कहा जाय । अपेक्षा या विवक्षा के भेद से ऐसा मानने पर कोई दोष या असगति नही है । जैसे एक ही व्यक्ति विविध रिश्तो को लेकर पिता, पुत्र, मामा, काका आदि होता ही है । इसमे क्या विरोध है ? यह तो अनुभव-सिद्ध और व्यवहारसिद्ध तथ्य है ।

जैनसिद्धान्त अपने इस अनेकान्तवादी दृष्टिकोण को नयो के आधार से प्रमाणित करता है । सक्षेप मे नय दो प्रकार के हैं—१ द्रव्यार्थिकनय और २ पर्यायार्थिकनय । द्रव्यनय वस्तु के सामान्य स्वरूप को ग्रहण करता है और पर्यायनय वस्तु के विशेषस्वरूप को ग्रहण करता है । प्रत्येक वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक है ।[1]

---

१. उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत् । —तत्वार्थसूत्र
द्रव्य-पर्यायात्मक वस्तु ।

वस्तु न एकान्त द्रव्यरूप है और न एकान्त पर्याय रूप है। वह उभयात्मक है।[1] द्रव्य को छोडकर पर्याय नही रहते और पर्याय के विना द्रव्य नही रहता। द्रव्य, पर्यायो का आधार है और पर्याय द्रव्य का आधेय है। आधेय के विना आधार और आधार के विना आधेय की स्थिति ही नही है। द्रव्य के बिना पर्याय और पर्याय के विना द्रव्य नही रह सकता। अतएव कहा जा सकता है कि परपरिकल्पित एकान्त द्रव्य असत् है क्योकि वह पर्यायरहित है। जो पर्यायरहित है वह द्रव्य असत् है जैसे बालत्वादिपर्याय से शून्य वन्ध्यापुत्र। इसी तरह यह भी कहा जा सकता है कि परपरिकल्पित एकान्त पर्याय असत् है क्योकि वह द्रव्य से भिन्न है। जो द्रव्य से भिन्न है वह असत् है जसे वन्ध्यापुत्र की बालत्व आदि पर्याय। अतएव सिद्ध होता है कि वस्तु द्रव्य-पर्यायात्मक है और उभयदृष्टि से उसका समग्र विचार करना चाहिए।

उक्त अनेकान्तवादी एव प्रमाणित दृष्टिकोण को लेकर ही सूत्र मे कहा गया है कि रत्नप्रभा-पृथ्वी द्रव्य की अपेक्षा से शाश्वत है। अर्थात् रत्नप्रभापृथ्वी का आकारादि भाव उसका अस्तित्व आदि सदा से था, है और रहेगा। अतएव वह शाश्वत है। परन्तु उसके कृष्णादि वर्ण पर्याय, गधादि पर्याय, रस पर्याय, स्पर्श पर्याय आदि प्रतिक्षण पलटते रहते हैं अतएव वह अशाश्वत भी है। इस प्रकार द्रव्यार्थिकनय की विवक्षा से रत्नप्रभापृथ्वी शाश्वत है और पर्यायार्थिक नय से वह अशाश्वत है। इसी प्रकार सातो नरकपृथ्वियो की वक्तव्यता जाननी चाहिए।

रत्नप्रभादि की शाश्वतता द्रव्यापेक्षया कही जाने पर शका हो सकती है कि यह शाश्वतता सकलकालावस्थिति रूप है या दीर्घकाल-अवस्थितिरूप है, जैसा कि अन्यतीर्थी कहते हैं—यह पृथ्वी आकल्प शाश्वत है ?[2] इस शका का समाधान करते हुए कहा गया है कि यह पृथ्वी अनादिकाल से सदा से थी, सदा है और सदा रहेगी। यह अनादि-अनन्त है। त्रिकालभावी होने से यह ध्रुव है, नियत स्वरूप वाली होने से धर्मास्तिकाय की तरह नियत है, नियत होने से शाश्वत है, क्योकि इसका प्रलय नही होता। शाश्वत होने से अक्षय है और अक्षय होने से अव्यय है और अव्यय होने से स्वप्रमाण मे अवस्थित है। अतएव सदा रहने के कारण नित्य है। अथवा ध्रुवादि शब्दो को एकार्थक भी समझा जा सकता है। शाश्वतता पर विशेष भार देने हेतु विविध एकार्थक शब्दो का प्रयोग किया गया है।

इसी प्रकार सातो पृथ्वियो की शाश्वतता जाननी चाहिए।

पृथ्वियों का विभागवार अन्तर

७९ इमीसे ण भते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमताओ हेट्ठिल्ले चरिमते एस णं केवतियं अबाधाए अतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! असिउत्तर जोयणसयसहस्स अबाधाए अतरे पण्णत्ते।

इमीसे णं भते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमंताओ खरस्स कडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते एस ण केवइय अबाधाए अतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! सोलस जोयणसहस्साइं अबाधाए अंतरे पण्णत्ते।

---

१ द्रव्य पर्यायवियुत, पर्याया द्रव्यवर्जिता। क्व कदा केन किंरूपा, दृष्टा मानेन केन वा।

२ 'आकप्पट्ठाई पुढवी सासया।'

इमीसे ण भंते ! रयण० पु० उवरिल्लाओ चरिमताओ रयणकंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमते एस णं केवइयं अवाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्सं अवाधाए अतरे पण्णत्ते ?

इमीसे णं भंते ! रयण० पु० उवरिल्लाओ चरिमताओ वइरस्स कडस्स उवरिल्ले चरिमते एस णं केवइयं अवाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एक्कं जोयणसहस्स अवाधाए अतरे पण्णत्ते ?

इमीसे ण रयण० पु० उवरिल्लाओ चरिमताओ वइरस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमते एस णं भते ! केवइयं अवाधाए अतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! दो जोयणसहस्साइ इमीसे ण अवाधाए अतरे पण्णत्ते। एव जाव रिट्ठस्स उवरिल्ले पन्नरस जोयणसहस्साइं, हेट्ठिल्ले चरमते सोलस जोयणसहस्साइं।

इमीसे णं भते ! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्लाओ चरमताओ पंकवहुलस्स कडस्स उवरिल्ले चरिमते एस ण अवाहाए केवइय अतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! सोलस जोयणसहस्साइ अवाधाए अंतरे पण्णत्ते। हेट्ठिल्ले चरमते एक्क जोयणसय-सहस्संआवबहुलस्स उवरि एक्क जोयणसयसहस्स हेट्ठिल्ले चरिमते असीउत्तरं जोयणसयसहस्स।

घणोदधि उवरिल्ले असिउत्तर जोयणसयसहस्स, हेट्ठिल्ले चरिमंते दो जोयणसयसहस्साइं।

इमीसे णं भते ! रयण० पु० घणवातस्स उवरिल्ले चरिमते दो जोयणसयसहस्साइं। हेट्ठिल्ले चरिमंते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइ।

इमीसे ण भते ! रयण० पु० तणुवायस्स उवरिल्ले चरमते असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अवाधाए अतरे, हेट्ठिल्ले वि असखेज्जाइ जोयणसयसहस्साइं। एवं ओवासतरे वि।

दोच्चाए णं भते ! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमताओ हेट्ठिल्ले चरिमते एस णं केवइयं अवाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! वत्तीसुत्तर जोयणसयसहस्स अवाहाए अतरे पण्णत्ते।

सक्करप्पभाए पुढवीए उवरि घणोदधिस्स हेट्ठिल्ले चरिमते वावण्णुत्तर जोयणसयसहस्सं अवाधाए। घणवातस्स असखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइ पण्णत्ताइं। एवं जाव ओवासंतरस्स वि। जाव अधेसत्तमाए, णवर जीसे जं वाहल्लं तेण घणोदीघ सबधेयव्वो बुद्धीए।

सक्करप्पभाए अणुसारेण घणोदधिसहियाणं इम पमाणं—तच्चाए ण भते ! अडयालीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं। पकप्पभाए पुढवीए चत्तालीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं। धूमप्पभाए पुढवीए अट्ठ-तीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं। तमाए पुढवीए छत्तीसुत्तर जोयणसयसहस्सं। अहेसत्तमाए पुढवीए अट्ठा-वीसुत्तरं जोयणसयसहस्सं जाव अधेसत्तमाए। एस णं भते ! पुढवीए उवरिल्लाओ चरिमताओ ओवासंतरस्स हेट्ठिल्ले चरिमते केवइय अवाधाए अंतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं अवाधाए अंतरे पण्णत्ते।

[७९] भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के चरमात से नीचे के चरमान्त के बीच कितना अन्तर कहा गया है ?

गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन का अन्तर है ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से खरकांड के नीचे के चरमान्त के बीच कितना अन्तर है ?

गौतम ! सोलह हजार योजन का अन्तर है ।]

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से रत्नकाड के नीचे के चरमान्त के बीच कितना अन्तर है ?

गौतम ! एक हजार योजन का अन्तर है ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से वज्रकाड के ऊपर के चरमान्त के बीच कितना अन्तर है ?

गौतम ! एक हजार योजन का अन्तर है ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से वज्रकाड के नीचे के चरमान्त के बीच कितना अन्तर है ?

गौतम ! दो हजार योजन का अन्तर है । इस प्रकार रिष्टकाण्ड के ऊपर के चरमान्त के बीच पन्द्रह हजार योजन का अन्तर है और नीचे के चरमान्त तक सोलह हजार का अन्तर है ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से पकवहुलकाण्ड के ऊपर के चरमान्त के बीच कितना अन्तर है ?

गौतम ! सोलह हजार योजन का अन्तर है । नीचे के चरमान्त तक एक लाख योजन का अन्तर है । अप्‌वहुलकाण्ड के ऊपर के चरमान्त तक एक लाख योजन का और नीचे के चरमान्त तक एक लाख अस्सी हजार योजन का अन्तर है ।

घनोदधि के ऊपर के चरमान्त तक एक लाख अस्सी हजार और नीचे के चरमान्त तक दो लाख योजन का अन्तर है ।

इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनवात के ऊपर के चरमान्त तक दो लाख योजन का अन्तर है और नीचे के चरमान्त तक असख्यात लाख योजन का अन्तर है ।

इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से तनुवात के ऊपर के चरमान्त तक असख्यात लाख योजन का अन्तर है और नीचे के चरमान्त तक भी असख्यात लाख योजन का अन्तर है । इसी प्रकार अवकाशान्तर के दोनो चरमान्तो का भी अन्तर समझना चाहिए ।

हे भगवन् ! दूसरी पृथ्वी (शर्कराप्रभा) के ऊपर के चरमान्त से नीचे के चरमान्त के बीच कितना अन्तर है ?

गौतम ! एक लाख वत्तीस हजार योजन का अन्तर है । घनोदधि के उपरि चरमान्त के बीच एक लाख वत्तीस हजार योजन का अन्तर है । नीचे के चरमान्त तक एक लाख वावन हजार योजन का

अन्तर है। घनवात के उपरितन चरमान्त का अन्तर भी इतना ही है। घनवात के नीचे के चरमान्त तक तथा तनुवात और अवकाशान्तर के ऊपर और नीचे के चरमान्त तक असख्यात लाख योजन का अन्तर है। इस प्रकार सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए। विशेषता यह है कि जिस पृथ्वी का जितना वाहल्य है उससे घनोदधि का सवध बुद्धि से जोड लेना चाहिए। जैसे कि तीसरी पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से घनोदधि के चरमान्त तक एक लाख अडतालीस हजार योजन का अन्तर है। पकप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से उसके घनोदधि के चरमान्त तक एक लाख चवालीस हजार का अन्तर है। धूमप्रभा के ऊपरी चरमान्त से उसके घनोदधि के चरमान्त तक एक लाख अडतीस हजार योजन का अन्तर है। तम.प्रभा मे एक लाख छत्तीस हजार योजन का अन्तर तथा अध सप्तम पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त से उसके घनोदधि का चरमान्त एक लाख अट्ठावीस हजार योजन है।

इसी प्रकार घनवात के अधस्तन चरमान्त की पृच्छा मे तनुवात और अवकाशान्तर के उपरितन और अधस्तन की पृच्छा मे असख्यात लाख योजन का अन्तर कहना चाहिए।

वाहल्य की अपेक्षा तुल्यतादि

८० इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय वाहल्लेणं किं तुल्ला, विसेसाहिया, संखेज्जगुणा ? वित्थरेणं किं तुल्ला विसेसहीणा संखेज्जगुणहीणा ?

गोयमा ! इमा णं रयणप्पभा पुढवी दोच्च पुढविं पणिहाय वाहल्लेण नो तुल्ला, विसेसाहिया नो संखेज्जगुणा, वित्थारेणं नो तुल्ला, विसेसहीणा, णो संखेज्जगुणहीना।

दोच्चा णं भते ! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय वाहल्लेणं किं तुल्ला ? एवं चेव भाणियव्वं। एवं तच्चा चउत्थी पचमी छट्ठी। छट्ठी णं भते ! पुढवी सत्तमं पुढविं पणिहाय बाहल्लेणं किं तुल्ला, विसेसाहिया, संखेज्जगुणा ?

एवं चेव भाणियव्वं।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! नेरइयउद्देसओ पढमो।

[८०] हे भगवन् ! यह रत्नप्रभापृथ्वी दूसरी नरकपृथ्वी की अपेक्षा मोटाई मे क्या तुल्य है, विशेषाधिक है या सख्येयगुण है ? और विस्तार की अपेक्षा क्या तुल्य है, विशेषहीन है या सख्येयगुणहीन है ?

गौतम ! यह रत्नप्रभापृथ्वी दूसरी नरकपृथ्वी की अपेक्षा मोटाई मे तुल्य नही है, विशेषाधिक है, सख्यातगुणहीन है। विस्तार की अपेक्षा तुल्य नही है, विशेषहीन है, सख्यातगुणहीन नहीं है।

भगवन् ! दूसरी नरकपृथ्वी तीसरी नरकपृथ्वी की अपेक्षा मोटाई मे क्या तुल्य है इत्यादि उसी प्रकार कहना चाहिए। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाचवी और छठी नरक पृथ्वी के विषय में समझना चाहिए।

भगवन् ! छठी नरकपृथ्वी सातवी नरकपृथ्वी की अपेक्षा बाहल्य मे क्या तुल्य है, विशेषाधिक है या सख्येयगुण है ? उसी प्रकार कहना चाहिए।

हे भगवन् ! (जैसा आपने कहा) वह वैसा ही है, वह वैसा ही है। इस प्रकार प्रथम नैरयिक उद्देशक पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नरकपृथ्वियो के बाहल्य और विस्तार को लेकर आपेक्षिक तुल्यता, विशेषाधिकता या विशेषहीनता अथवा सख्यातगुणविशेषाधिकता या सख्यातगुणहीनता को लेकर प्रश्न किये गये हैं। यहाँ यह शका हो सकती है कि पूर्वसूत्रो मे नरकपृथ्वियो का बाहल्य बता दिया गया है, उससे अपने आप यह बात ज्ञात हो जाती है तो फिर इन प्रश्नो की क्या उपयोगिता है ? यह शका यथार्थ है परन्तु समाधान यह है—यह प्रश्न स्वय जानते हुए भी दूसरे मदमतियो की अज्ञान-निवृत्ति हेतु और उन्हे समझाने हेतु किया गया है। प्रश्न दो प्रकार के हैं—एक ज्ञ-प्रश्न और दूसरा अज्ञ-प्रश्न। स्वय जानते हुए भी जो दूसरो को समझाने की दृष्टि से प्रश्न किया जाय वह ज्ञ-प्रश्न है और जो अपनी जिज्ञासा के लिए किया जाता है वह अज्ञ-प्रश्न है। ऊपर जो प्रश्न किया गया है वह ज्ञ- प्रश्न है जो मदमतियो के लिए किया गया है। यह कैसे कहा जा सकता है कि यह ज्ञ-प्रश्न है ? क्योकि इसके आगे जो प्रश्न किया गया है वह स्व-अवबोध के लिए है।

सूत्र मे प्रश्न किया गया है कि दूसरी नरकपृथ्वी की अपेक्षा यह रत्नप्रभापृथ्वी मोटाई मे तुल्य है, विशेषाधिक है या सख्येयगुण है ? उत्तर मे कहा गया है तुल्य नही है, विशेषाधिक है किन्तु सख्येयगुण नही हैं। क्योकि रत्नप्रभा की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन की है और दूसरी शर्करापृथ्वी की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन है। दोनो मे अड़तालीस हजार योजन का अन्तर है। इतना ही अन्तर होने के कारण विशेषाधिकता ही घटती है तुल्यता और सख्येयगुणता घटित नही होती। सब पृथ्वियो की मोटाई यहाँ उद्धृत कर देते हैं ताकि स्वयमेव यह प्रतीत हो जावेगा कि दूसरी पृथ्वी की अपेक्षा प्रथम पृथ्वी बाहल्य मे विशेषाधिक है और तीसरी की अपेक्षा दूसरी विशेषाधिक है तथा चौथी की अपेक्षा तीसरी विशेषाधिक है, इसी तरह सातवी की अपेक्षा छठी पृथ्वी मोटाई मे विशेषाधिक है। सब पृथ्वियो की मोटाई इस प्रकार है—

प्रथम पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन की है।

दूसरी पृथ्वी की मोटाई एक लाख बत्तीस हजार योजन की है।

तीसरी पृथ्वी की एक लाख अट्ठाईस हजार योजन की है।

चौथी पृथ्वी की एक लाख बीस हजार योजन की है।

पाचवी पृथ्वी की एक लाख अठारह हजार योजन की है।

छठी पृथ्वी की मोटाई एक लाख सोलह हजार योजन की है।

सातवी पृथ्वी की मोटाई एक लाख आठ हजार योजन की है।

अतएव बाहल्य की अपेक्षा से पूर्व-पूर्व की पृथ्वी अपनी पिछली पृथ्वी की अपेक्षा विशेषाधिक ही है, तुल्य या सख्येयगुण नही।

विस्तार की अपेक्षा पिछली-पिछली पृथ्वी की अपेक्षा पूर्व-पूर्व की पृथ्वी विशेषहीन है, तुल्य या सख्येयगुणहीन नही। रत्नप्रभा मे प्रदेशादि की वृद्धि से प्रवर्धमान होने पर उतने ही क्षेत्र मे शर्कराप्रभादि मे भी वृद्धि होती है, अतएव विशेषहीनता ही घटित होती है।

इस प्रकार भगवान् के द्वारा प्रश्नो के उत्तर दिये जाने पर श्री गौतमस्वामी भगवान् के प्रति अपनी अटूट और अनुपम श्रद्धा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि भगवन्! आपने जो कुछ फरमाया, वह पूर्णतया वैसा ही है, सत्य है, यथार्थ है। ऐसा कह कर गौतमस्वामी भगवान् को वन्दन-नमस्कार करके सयम एव तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते है।

इस प्रकार जीवाजीवाभिगम की तीसरी प्रतिपत्ति का प्रथम नरक-उद्देशक समाप्त।

□□

तृतीय प्रतिपत्ति

द्वितीय उद्देशक

प्रथम उद्देशक मे नरक-पृथ्वियो के नाम, गोत्र, वाहल्य आदि विविध जानकारियां दी गई हैं। अब क्रमप्राप्त द्वितीय उद्देशक मे नरक पृथ्वियो के किस प्रदेश मे कितने नरकावास हैं और वे कैसे हैं, इत्यादि वर्णन किया जा रहा है। उसका आदि सूत्र यह है—

८१. कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा।

इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्सवाहल्लाए उवरिं केवइयं ओगाहित्ता हेट्ठा केवइयं वज्जित्ता मज्झे केवइए केवइया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर जोयणसयसहस्सवाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठावि एगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अडसत्तरी जोयणसयसहस्सा, एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं तीसं निरयावाससयसहस्साइं भवंति त्ति मक्खाया।

ते णं णरगा अंतोवट्टा बाहिं चउरंसा जाव असुभा णरएसु वेयणा। एवं एएणं अभिलावेणं उवजुंजिऊण भाणियव्वं ठाणप्पयाणुसारेण, जत्थ जं वाहल्लं जत्थ जत्तिया वानिरयावाससयसहस्सा जाव अहे सत्तमाए पुढवीए- अहे सत्तमाए मज्झिमं केवइए कति अणुत्तरा महइमहालया महाणिरया पण्णत्ता, एवं पुच्छियव्वं वागरेयव्वं पि तहेव।

[८१] हे भगवन् ! पृथ्वियां कितनी कही गई हैं ?

गौतम ! सात पृथ्विया कही गई हैं—जैसे कि रत्नप्रभा यावत् अध.सप्तम पृथ्वी।

भगवन् ! एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण वाहल्य वाली इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर से कितनी दूर जाने पर और नीचे के कितने भाग को छोड़कर मध्य के कितने भाग मे कितने लाख नरकावास कहे गये हैं ?

गौतम ! इस एक लाख अस्सीहजार योजनप्रमाण वाहल्यवाली रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन का ऊपरी भाग छोड़ कर और नीचे का एक हजार योजन का भाग छोड़कर मध्य मे एक लाख अठहत्तर हजार योजनप्रमाणक्षेत्र मे तीस लाख नरकावास हैं, ऐसा कहा गया है।

ये नरकावास अन्दर से मध्य भाग मे गोल हैं वाहर से चौकोन है यावत् इन नरकावासो मे अशुभ वेदना है। इसी अभिलाप के अनुसार प्रज्ञापना के स्थानपद के मुताविक सब वक्तव्यता कहनी चाहिए। जहाँ जितना वाहल्य है और जहाँ जितने नरकावास हैं, उन्हे विशेषण के रूप मे जोड़कर सप्तम पृथ्वी पर्यन्त कहना चाहिए, यथा—अध.सप्तमपृथ्वी के मध्यवर्ती कितने क्षेत्र मे कितने अनुत्तर, वड़े से वड़े महानरक कहे गये हैं, ऐसा प्रश्न करके उसका उत्तर भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

विवेचन—पृथ्वियाँ कितनी हैं ? यह प्रश्न पहले किया जा चुका है और उसका उत्तर भी पूर्व मे दिया जा चुका है कि पृथ्वियाँ सात हैं—यथा रत्नप्रभा से लगाकर अध सप्तम पृथ्वी तक। फिर यह प्रश्न दुबारा क्यों किया गया है, यह शका सहज होती है। इसका समाधान करते हुए पूर्वाचार्यों ने कहा है कि[1] 'जो पूर्ववर्णित विषय पुन कहा जाता है वह किसी विशेष कारण को लेकर होता है। वह विशेष कारण प्रतिषेध या अनुज्ञारूप भी हो सकता है और पूर्व विषय मे विशेषता प्रतिपादन रूप भी हो सकता है।' यहाँ दुबारा किया गया यह प्रश्न और पूर्ववर्णित विषय मे अधिक और विशेष जानकारी देने के अभिप्राय से समझना चाहिए।

यहाँ विशेष प्रश्न यह है कि नरकावासो की स्थिति नरक-पृथ्वियो के कितने भाग मे है तथा उन नरकावासो का आकार कैसा है तथा वहाँ के नारक जीव कैसी वेदना भोगते है ?

इन प्रश्नो के सदर्भ मे प्रभु ने फरमाया कि एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण बाहल्य (मोटाई) वाली रत्नप्रभापृथ्वी के उपरी भाग से एक हजार योजन की दूरी पार करने पर और अन्तभाग का एक हजार योजन प्रमाण भाग छोडकर मध्य के एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रमाण क्षेत्र मे तीस लाख नरकावास कहे गये हैं। यह कथन जैसे मैं कर रहा हूँ वैसा ही अतीत काल के तीर्थंकरो ने भी किया है। सब तीर्थंकरो के वचनो मे अविसवादिता और एकरूपता होती है।

ये नरकावास मध्य मे गोल हैं और बाहर से चतुष्कोण हैं। पीठ के ऊपर वर्तमान जो मध्य-भाग है उसको लेकर गोलाकृति कही गई है तथा सकलपीठादि की अपेक्षा से तो आवलिका प्रविष्ट नरकावास तिकोण, चतुष्कोण सस्थान वाले कहे गये है और जो पुष्पावकीर्ण नरकावास है वे अनेक प्रकार के हैं—सूत्र मे आये हुए 'जाव असुभा' पद से[2] टिप्पण मे दिये पाठ का सग्रह हुआ है, जिसका अर्थ इस प्रकार है—

अहेखुरप्पसंठाणा—ये नरकावास नीचे के भाग से क्षुरा (उस्तरा) के समान तीक्ष्ण आकार के हैं। इसका अर्थ यह है कि इन नरकावासो का भूमितल चिकना या मुलायम नही है किन्तु ककरो से युक्त है, जिनके स्पर्शमात्र से नारकियो के पाव कट जाते है—छिल जाते हैं और वे वेदना का अनुभव करते हैं।

णिच्चधयारतमसा—उन नरकावासो मे सदा गाढ अन्धकार बना रहता है। तीर्थंकरादि के जन्मादि प्रसगो के अतिरिक्त वहाँ प्रकाश का सर्वथा अभाव होने से जात्यन्ध की भाति या मेघाच्छन्न अर्धरात्रि के अन्धकार से भी अतिघना अन्धकार वहाँ सदाकाल व्याप्त रहता है, क्योकि वहाँ प्रकाश करने वाले सूर्यादि हैं ही नही। इसी को विशेष स्पष्ट करने के लिए आगे और विशेषण दिया है—

ववगयगहचंदसूरनक्खत्तजोइसपहा—उन नरकावासो मे ग्रह-चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र-तारा आदि ज्योतिष्को का पथ सचार रास्ता नही है अर्थात् ये प्रकाश करने वाले तत्त्व वहाँ नही है।

---

१ पुव्वभणिय पि ज पुण भण्णइ तत्थ कारणमत्थि।
पडिसेहो य अणुण्णा कारणविसेसोवलभो वा ॥

२ 'अहे खुरप्पसठाणसठिया, णिच्चधयारतमसा, ववगयगह-चद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा, मेयवसापूयरुहिरमसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला, असुइवीभच्छा, परमदुब्भिगधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुहा नरएसु वेयणा।'

मेयवसापूयरुहिरमंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला—उन नरकावासो का भूमितल मेद, चर्वी, पूति (पीप), खून और मास के कीचड से सना हुआ है, पुन पुन अनुलिप्त है।

असुइबीभच्छा—मेदादि के कीचड के कारण अशुचिरूप होने से अत्यन्त घृणोत्पादक और वीभत्स हैं। उन्हे देखने मात्र से ही अत्यन्त ग्लानि होती है।

परमदुब्भिगंधा—वे नरकावास अत्यन्त दुर्गन्ध वाले हैं। उनसे वैसी दुर्गन्ध निकलती रहती है जैसे मरे हुए जानवरो के कलेवरो से निकलती है।

काउअगणिवण्णाभा—लोहे को धमधमाते समय जैसे अग्नि की ज्वाला का वर्ण वहुत काला हो जाता है—इस प्रकार के वर्ण के वे नरकावास है। अर्थात् वर्ण की अपेक्षा से अत्यन्त काले हैं।

कक्खडफासा—उन नरकावासो का स्पर्श अत्यन्त कर्कश है। असिपत्र (तलवार की धार) की तरह वहाँ का स्पर्श अति दु सह है।

दुरहियासा—वे नरकावास इतने दु खदायी है कि उन दु खो को सहन करना वहुत ही कठिन होता है।

असुभा वेयणा—वे नरकावास वहुत ही अशुभ है। देखने मात्र से ही उनकी अशुभता मालूम होती है। वहाँ के वर्ण, गध, रस, स्पर्श और शव्द—सव अशुभ ही अशुभ हैं तथा वहाँ जीवो को जो वेदना होती है वह भी अतीव असातारूप होती है अतएव 'अशुभवेदना' ऐसा विशेषण दिया गया है। नरकावासो मे उक्त प्रकार की तीव्र एव दु सह वेदनाएँ होती हैं।

रत्नप्रभापृथ्वी को लेकर जो वक्तव्यता कही है, वही वक्तव्यता शर्करापृथ्वी के सम्वन्ध मे भी है। केवल शर्करापृथ्वी की मोटाई तथा उसके नरकावासो की सख्या का विशेषण उसके साथ जोडना चाहिए। उदाहरण के लिए शर्कराप्रभा-पृथ्वी सवधी पाठ इस प्रकार होगा—

'सक्करप्पभाए ण भते! पुढवीए वत्तीसुत्तर-जोयणसयसहस्सवाहल्लाए उवरिं केवइय ओगाहित्ता हेट्ठा केवइय वज्जेत्ता मज्झे चेव केवइए केवइया णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

गोयमा! सक्करप्पभाए वत्तीसुत्तर-जोयणसयसहस्सवाहल्लाए उवरिं एग जोयणसहस्स-मोगाहित्ता हेट्ठा एग जोयणसहस्स वज्जेत्ता मज्झे तीसुत्तर जोयणसयसहस्से, एत्थ ण सक्करप्पभाए पुढविनेरइयाण पणवीसा नरयावाससय सहस्सा भवति ति मक्खाय, ते ण णरगा अतो वट्टा जाव असुभा नरएसु वेयणा।'

इसी प्रकार बालुकाप्रभा, पकप्रभा धूमप्रभा, और तम प्रभा तथा अध सप्तमपृथ्वी तक का पाठ कहना चाहिए। सब पृथ्वियो का बाहल्य और नरकावासो की सख्या निम्न कोष्ठक से जानना चाहिए[1]—

---

१ इस सवध मे निम्न सगृहणी गाथाएँ उपयोगी हैं—

आसीय वत्तीस अट्ठावीस तहेव वीस च। अट्ठारस सोलसग अट्ठुत्तरमेव हिट्ठिमया ॥१॥ अट्ठुत्तर च तीस छव्वीस चेव सयसहस्स तु। अट्ठारस सोलसग चोद्दसमहिय तु छट्ठीए ॥२॥ अद्धतिवण्णसहस्सा उवरिमहे वज्जिऊण भणिया। मज्झे तिसु सहस्सेसु होति निरया तमतमाए ॥३॥ तीसा य पण्णवीसा पण्णरस दस चेव सयसहस्साइ। तिन्नि य पचूणेग पचेव अणुत्तरा निरया ॥४॥

सख्या	पृथ्वीनाम	बाहल्य (योजन)	मध्यभाग पोलार (योजन)	नरकावास सख्या
१	रत्नप्रभा	१,८००००	१,७८०००	तीस लाख
२	शर्कराप्रभा	१,३२०००	१,३००००	पच्चीस लाख
३	वालुकाप्रभा	१,२८०००	१,२६०००	पन्द्रह लाख
४	पकप्रभा	१,२००००	१,१८०००	दस लाख
५	धूमप्रभा	१,१८०००	१,१६०००	तीन लाख
६	तम प्रभा	१,१६०००	१,१४०००	निन्यानवै हजार नौ सौ पिच्यानवै
७	अध सप्तम पृ	१,०८०००	३०००	पाच

नरकावासो का संस्थान

८२ [१] इमीसे ण भते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरका किसठिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—आवलियपविट्ठा य आवलियबाहिरा य। तत्थ णं जे ते आवलियपविट्ठा ते तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—वट्टा, तंसा, चउरंसा। तत्थ णं जे ते आवलियबाहिरा ते णाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता, तजहा—अयकोट्ठसंठिया, पिट्ठपयणगसंठिया, कंडूसठिया, लोही-संठिया, कडाहसंठिया, थालीसंठिया, पिढरगसंठिया, किमियडसंठिया, किन्नपुडगसंठिया, उडय सठिया, मुरयसंठिया, मुयगसठिया, नंदिमुयंगसठिया, आलिंगकसठिया, सुघोससंठिया, दद्दरय-सठिया, पणवसंठिया, पडहसठिया, भेरीसंठिया, झल्लरिसठिया, कुतुंवकसठिया, नालिसठिया, एवं जाव तमाए।

अहे सत्तमाए णं भते ! पुढवीए णरका किसंठिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—वट्टे य तसा य।

[८२-१] हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावासो का आकार कैसा कहा गया है ?

गौतम ! ये नरकावास दो तरह के हैं—१ आवलिकाप्रविष्ट और २ आवलिकाबाह्य। इनमे जो आवलिकाप्रविष्ट (श्रेणीबद्ध) हैं वे तीन प्रकार के हैं—१ गोल, २ त्रिकोण और ३ चतुष्कोण। जो आवलिका से बाहर (पुष्पावकीर्ण) है वे नाना प्रकार के आकारो के है, जैसे कोई लोहे की कोठी के आकार के हैं, कोई मदिरा बनाने हेतु पिष्ट आदि पकाने के बर्तन के आकार के हैं, कोई कदू—हलवाई के पाकपात्र जैसे हैं, कोई लोही-तवा के आकार के है, कोई कडाही के आकार के है, कोई थाली- ओदन पकाने के बर्तन जैसे है, कोई पिठरक (जिसमे बहुत से मनुष्यो के लिए भोजन पकाया जाता है वह बर्तन) के आकार के हैं, कोई कृमिक (जीवविशेष) के आकार के हैं, कोई कीर्णपुटक जैसे हैं, कोई तापस के आश्रम जैसे, कोई मुरज (वाद्यविशेष) जैसे, कोई मृदग के आकार के, कोई नन्दिमृदंग (बारह प्रकार के वाद्यो मे से एक) के आकार के, कोई आलिंगक (मिट्टी का मृदग) के जैसे, कोई सुघोषा घंटे के समान, कोई दर्दर (वाद्यविशेष) के समान, कोई पणव (ढोलविशेष) जैसे, कोई

पटह (ढोल) जैसे, भेरी जैसे, झल्लरी जैसे, कोई कुस्तुम्बक (वाद्य-विशेष) जैसे और कोई नाडी-घटिका जैसे है। इस प्रकार छठी नरक पृथ्वी तक कहना चाहिए।

भगवन्! सातवी पृथ्वी के नरकावासो का सस्थान कैसा है?
गौतम वे दो प्रकार के है—वृत्त (गोल) और त्रिकोण।

[२] इमीसे ण भते! रयणप्पभाए पुढवीए नरका केवइय बाहल्लेण पण्णत्ता?

गोयमा! तिण्णि जोयणसहस्साइ बाहल्लेण पण्णत्ता, तजहा—हेट्ठा घणा सहस्स मज्झे झुसिरा सहस्स, उप्पि सकुइया सहस्स; एव जाव अहेसत्तमाए।

इमीसे ण भते! रयणप्पभाए पुढवीए नरका केवइय आयाम-विक्खभेण केवइयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तजहा—सखेज्जवित्थडा य असखेज्जवित्थडा य। तत्थ ण जे ते सखेज्जवित्थडा ते णं सखेज्जाइ जोयणसहस्साइ आयामविक्खभेण सखेज्जाइ जोयणसहस्साइं परिक्खेवेण पण्णत्ता। तत्थ ण जे ते असखेज्जवित्थडा ते ण असखेज्जाइ जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खभेण असखेज्जाइं जोयणसहस्साइ परिक्खेवेण पण्णत्ता, एव जाव तमाए।

अहेसत्तमाए ण भते! पुच्छा; गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सखेज्जवित्थडे य, असखेज्जवित्थडा य। तत्थ ण जे ते सखेज्जवित्थडे से ण एक्क जोयणसहस्सं आयाम-विक्खभेण तिन्नि जोयणसहस्साइ सोलस सहस्साइ दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि कोसे य अट्ठावीस च धणुसय तेरस य अंगुलाइ अद्धगुलयं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेण पण्णत्ता; तत्थ ण जे ते असखेज्जवित्थडा ते ण असखेज्जाइ जोयणसहस्साइ आयामविक्खभेणं असखेज्जाइं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

[८२-२] हे भगवन्! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावासो की मोटाई कितनी कही गई है?

गौतम! तीन हजार योजन की मोटाई है। वे नीचे एक हजार योजन तक घन है, मध्य मे एक हजार योजन तक झुषिर (खाली) है और ऊपर एक हजार योजन तक सकुचित है। इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए।

भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासो की लम्बाई-चौडाई तथा परिक्षेप (परिधि) कितनी है?

गौतम! वे नरकावास दो प्रकार के है। यथा—१. सख्यात योजन के विस्तार वाले और २ असख्यात योजन के विस्तार वाले। इनमे जो सख्यात योजन विस्तार वाले है, उनका आयाम-विष्कभ सख्यात हजार योजन है और परिधि भी सख्यात हजार योजन की है। उनमे जो असख्यात योजन विस्तार वाले है, उनका आयाम-विष्कभ असख्यात हजार योजन और परिधि भी असख्यात हजार योजन की है।

इसी तरह छठी पृथ्वी तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! सातवी नरकपृथ्वी के नरकावासो का आयाम-विष्कभ और परिधि कितनी है ?

गौतम ! सातवी पृथ्वी के नरकावास दो प्रकार के है—(१) सख्यात हजार योजन विस्तार वाले और (२) असख्यात हजार योजन विस्तार वाले । इनमे जो सख्यात हजार योजन विस्तार वाला है वह एक लाख योजन आयाम-विष्कभ वाला है उसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठावीस धनुष, साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक है। जो असख्यात हजार योजन विस्तार वाले हैं, उनका आयाम-विष्कभ असख्यात हजार योजन का और परिधि भी असख्यात हजार योजन की है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नरकावासो के सस्थान और आयाम-विष्कम्भ तथा परिधि वताई गई है । नरकावास दो प्रकार के हैं—आवलिकाप्रविष्ट और आवलिकाबाह्य । आठो दिशाओ मे जो समश्रेणी मे (श्रेणीवद्ध-कतारवद्ध) हैं, वे आवलिकाप्रविष्ट कहलाते हैं । वे तीन प्रकार के हैं, वृत्त, तिकोन और चौकोन । जो पुष्पो की तरह विखरे-विखरे हैं वे नरकावास नाना प्रकार के हैं । उन नाना प्रकारो को दो सग्रहणी गाथाओ मे वताया गया है[1]—

लोहे की कोठी, मदिरा वनाने हेतु आटे को पकाने का वर्तन, हलवाई की भट्टी, तवा, कढाई, स्थाली (डेगची), पिठरक (वडा चरु), तापस का आश्रम, मुरज, नन्दीमृदग, आलिगक मिट्टी का मृदग, मुघोषा, दर्दर (वाद्यविशेष), पणव (भाण्डो का ढोल), पटह (सामान्य ढोल), झालर, भेरी, कुस्तुम्वक (वाद्यविशेष) और नाडी (घटिका) के आकार के नरकावास हैं । ऊपर से सकुचित और नीचे से विस्तीर्ण है वह मृदग है और ऊपर और नीचे दोनों जगह सम हो वह मुरज है ।

उक्त वक्तव्यता रत्नप्रभा से लेकर तमप्रभा नरकपृथ्वी के लिए समझनी चाहिए । सातवी पृथ्वी के नरकावास आवलिकाप्रविष्ट ही हैं, आवलिकावाह्य नही । आवलिकाप्रविष्ट ये नरकावास पांच हैं । चारो दिशाओ मे चार हैं और मध्य मे एक है । मध्य का अप्रतिष्ठान नरकावास गोल है और शेष ४ नरकावास तिकोने हैं ।

रत्नप्रभादि के नरकावासो का वाहल्य तीन हजार योजन का है । एक हजार योजन का नीचे का भाग घन है, एक हजार योजन का मध्यभाग झुषिर है और ऊपर का एक हजार योजन का भाग सकुचित है । इसी तरह सातो पृथ्वियो के नरकावासो का वाहल्य है । आयाम-विष्कम्भ और परिधि मूलपाठ से ही स्पष्ट है ।

नरकावासो के वर्णादि

८३ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरया केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! काला कालावभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, एवं जाव अहे सत्तमाए ।

---

१ अय कोट्ठ पिट्ठपयणग कडूलोही कडाह सठाणा ।
थालीपिहडग किण्ह(ग) उडए मुखे मुयगे य ॥१॥
नंदिमुइगे आलिग सुघोसे दद्दरे य पणवे य ।
पडहगझल्लरि भेरी कुत्थुवग नाडिसठाणा ॥२॥

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केरिसगा गधेण पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहाणामए अहिमडेइ वा गोमडेइ वा, सुणगमडेइ वा मज्जारमडेइ वा मणुस्समडेइ वा महिसमडेइ वा मूसगमडेइ वा आसमडेइ वा हत्थिमडेइ वा सीहमंडेइ वा वग्घमडेइ वा विगमडेइ वा दीवियमडेइ वा मयकुहियचिरविणट्ठकुणिम-वावण्णदुब्भिगंधे असुइविलीणविगय-बीभत्थ-दरिसणिज्जे किमिजालाउलससत्ते, भवेयारूवे सिया ?

णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरका चेव अकंततरका चेव जाव अमणामतरा चेव गंधेणं पण्णत्ता । एवं जाव अहे सत्तमाए पुढवीए ।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा केरिसया फासेणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! से जहानामए असिपत्तेइ वा खुरपत्तेइ वा कलंवचीरियापत्तेइ वा, सत्तग्गेइ वा कुंतग्गेइ वा तोमरग्गेइ वा नारायग्गेइ वा सूलग्गेइ वा लउडग्गेइ वा भिंडिपालग्गेइ वा सूचिकलावेइ वा कवियच्छूइ वा विंचुयकंठएइ वा, इंगालेइ वा जालेइ वा मुम्मुरेइ वा अच्चिइ वा अलाएइ वा सुद्धागणी इवा भवे एतारूवे सिया ?

णो तिणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! इमीसे ण रयणप्पभाए पुढवीए णरगा एत्तो अणिट्ठतरा चेव जाव अमणामतरका चेव फासेण पण्णत्ता । एव जाव अहे सत्तमाए पुढणीए ।

[८३] हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकवास वर्ण की अपेक्षा कैसे कहे गये हैं ?

गौतम ! वे नरकावास काले हैं, अत्यन्तकाली कान्तिवाले हैं, नारक जीवो के रोगटे खडे कर देने वाले हैं, भयानक हैं, नारक जीवो को अत्यन्त त्रास करने वाले है और परम काले हैं—इनसे वढकर और अधिक कालिमा कही नही है । इसी प्रकार सातो पृथ्वियो के नारकवासो के विषय मे जानना चाहिए ।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावास गध की अपेक्षा कैसे कहे गये है ?

गौतम ! जैसे सर्प का मृतकलेवर हो, गाय का मृनकलेवर हो, कुत्ते का मृतकलेवर हो, विल्ली का मृतकलेवर हो, इसी प्रकार मनुष्य का, भैस का, चूहे का, घोडे का, हाथी का, सिंह का व्याघ्र का, भेडिये का, चीते का मृतकलेवर हो जो धीरे-धीरे सूज-फूलकर सड़ गया हो और जिसमे से दुर्गन्ध फूट रही हो, जिसका मास सड-गल गया हो, जो अत्यन्त अशुचिरूप होने से कोई उसके पास फटकना तक न चाहे ऐसा घृणोत्पादक और वीभत्सदर्शन वाला और जिसमे कोड़े विलविला रहे हो ऐसे मृतकलेवर होते हैं—(ऐसा कहते ही गौतम वोले कि) भगवन् ! क्या ऐसे दुर्गन्ध वाले नरकावास हैं ? तो भगवान् ने कहा कि नही गौतम ! इससे अधिक अनिष्टतर, अकांततर यावत् अमनोज्ञ उन नरकावासो की गन्ध है।

इसी प्रकार अध.सप्तमपृथ्वी तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावासो का स्पर्श कैसा कहा गया है ?

गौतम ! जैसे तलवार की धार का, उस्तरे की धार का, कदम्वचीरिका (तृणविशेष जो वहुत तीक्ष्ण होता है) के अग्रभाग का, शक्ति (शस्त्रविशेष) के अग्रभाग का, भाले के अग्रभाग का, तोमर के अग्रभाग का, वाण के अग्रभाग का, शूल के अग्रभाग का, लगुड के अग्रभाग का, भिण्डीपाल

के अग्रभाग का, सूइयो के समूह के अग्रभाग का, कपिकच्छु (खुजली पैदा करने वाली, वल्ली), बिच्छू का डक, अगार, ज्वाला, मुर्मुर (भोभर की अग्नि), अर्चि, अलात (जलती लकडी), शुद्धाग्नि (लोह-पिण्ड की अग्नि) इन सबका जैसा स्पर्श होता है, क्या वैसा स्पर्श नरकावासो का है ? भगवान् ने कहा कि ऐसा नही है। इनसे भी अधिक अनिष्टतर यावत् अमणाम उनका स्पर्श होता है। इसी तरह अध.सप्तमपृथ्वी तक के नरकावासो का स्पर्श जानना चाहिए।

नरकावास कितने बड़े हैं ?

८४. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नरगा केमहालिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! अयं णं जबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वभंतरए सव्वखुड्डाए वट्टे, तेल्लापूय-संठाणसठिए वट्टे, रयचक्कवालसठिए वट्टे, पुक्खरकण्णियासंठाणसठिए वट्टे, पडिपुण्णचंदसंठाण-संठिए एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खमेण जाव किंचि विसेसाहिए परिक्खेवे णं, देवे ण महड्ढिए जाव महाणुभागे जाव इणामेव इणामेव त्ति कट्टु इमं केवलकप्प जबुद्दीव दीवं तिहिं अच्छरानिवाएहिं तिसत्तक्खुत्तो अणुपरियट्टित्ता ण हव्वमागच्छेज्जा, से ण देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चडाए सिग्घाए उद्धुयाए जयणाए छेगाए दिव्वाए दिव्वगईए वीइवयमाणे वीइवयमाणे जहण्णेण एगाहं वा दुयाहं वा तिआहं वा, उक्कोसेणं छम्मासेणं वीतिवएज्जा, अत्थेगइए वीइवएज्जा अत्थेगइए नो वीइवएज्जा, एमहालया ण गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए णरगा पण्णत्ता; एवं जाव अहे सत्तमाए, णवरं अहेसत्तमाए अत्थेगइयं नरग वीइवएज्जा, अत्थेगइए नरगे नो वीतिवएज्जा।

[८४] हे भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावास कितने बडे कहे गये है ?

गौतम ! यह जम्बूद्वीप नाम का द्वीप जो सबसे आभ्यन्तर—अन्दर है, जो सब द्वीप-समुद्रो मे छोटा है, जो गोल है क्योकि तेल मे तले पूए के आकार का है, यह गोल है क्योकि रथ के पहिये के आकार का है, यह गोल है क्योकि कमल की कर्णिका के आकार का है, यह गोल हैं क्योकि परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार का है, जो एक लाख योजन का लम्बा-चौडा है, जिसकी परिधि (३ लाख १६ हजार २ सौ २७ योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठावीस धनुष और साढे तेरह अगुल से) कुछ अधिक है। उसे कोई देव जो महर्द्धिक यावत् महाप्रभाव वाला है, 'अभी-अभी' कहता हुआ (अवज्ञा से) तीन चुटकियां बजाने जितने काल मे इस सम्पूर्ण जम्बू द्वीप के २१ चक्कर लगाकर आ जाता है, वह देव उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, शीघ्र, उद्धत वेगवाली, निपुण, ऐसी दिव्य देवगति से चलता हुआ एक दिन, दो दिन, तीन यावत् उत्कृष्ट छह मास पर्यन्त चलता रहे तो भी वह उन नरकावासो मे से किसी को पार कर सकेगा और किसी को पार नही कर सकेगा। हे गौतम ! इतने विस्तार वाले इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावास कहे गये हैं। इस प्रकार सप्तम पृथ्वी के नरकावासो के सम्बन्ध मे भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि वह उसके किसी नरकावास को पार कर सकता है शेष चार किसी को पार नही कर सकता है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नरकावासो का विस्तार उपमा द्वारा बताया गया है। नरकावासो के विस्तार के सम्बन्ध मे पहले प्रश्न किया जा चुका है और उसका उत्तर देते हुए कहा गया हैं कि कोई नरकावास असंख्येय हजार योजन विस्तार वाले है। असख्येय हजार योजन कहने से यह स्पष्ट

नही होता कि यह असख्येयता कितनी है ? अत उस असख्येयता को स्पष्ट करते हुए भगवान् ने एक उपमा के द्वारा उसे स्पष्ट किया है। वह उपमा इस प्रकार है—

हम जहाँ रह रहे हैं वह द्वीप जम्बूद्वीप है। आठ योजन ऊँचे रत्नमय जम्बूवृक्ष को लेकर इस द्वीप का यह नामकरण है। यह जम्बूद्वीप सर्व द्वीपो और सर्व समुद्रो मे आभ्यन्तर है अर्थात् आदिभूत है और उन सब द्वीप-समुद्रो मे छोटा है। क्योकि आगे के सब लवणादि समुद्र और धातकीखण्डादि द्वीप क्रमश इस जम्बूद्वीप से दूने-दूने आयाम-विष्कम्भ वाले हैं। यह जम्बूद्वीप गोलाकार है क्योकि यह तेल मे तले हुए पूए के समान आकृति वाला है। यहाँ 'तेल मे तले हुए' विशेषण देने का तात्पर्य यह है कि तेल मे तला हुआ पूआ प्राय जैसा गोल होता है वैसा घी मे तला हुआ पूआ गोल नही होता। वह रथ के पहिये के समान, कमल की कर्णिका के समान तथा परिपूर्ण चन्द्रमा के समान गोल है। नाना देश के विनेयो को समझाने के लिए विविध प्रकार से उपमान-उपमेय बताये हैं। इस जम्बूद्वीप का आयाम-विष्कम्भ एक लाख योजन है। इसकी परिधि (घेराव) तीन लाख, सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठावीस धनुष और साढे तेरह अगुल से कुछ अधिक है।

इतने विस्तारवाले इस जम्बूद्वीप को कोई देव जो बहुत बडी ऋद्धि का स्वामी है, महाद्युति वाला है, महाबल वाला है, महायशस्वी है, महा ईश है अर्थात् बहुत सामर्थ्य वाला है अथवा महा सुखी है अथवा महाश्वास है—जिसका मन और इन्द्रिया बहुत व्यापक और स्वविषय को भलीभाति ग्रहण करने वाली हैं, तथा जो विशिष्ट विक्रिया करने मे अचिन्त्य शक्तिवाला है, वह अवज्ञापूर्वक (हेलया) 'अभी पार कर लेता हूँ अभी पार कर लेता हूँ' ऐसा कहकर तीन चुटकिया बजाने मे जितना समय लगता है उतने मात्र समय मे उक्त जम्बूद्वीप के २१ चक्कर लगाकर वापस आ जावे—इतनी तीव्र गति से, इतनी उत्कृष्ट गति से, इतनी त्वरित गति से, इतनी चपल गति से, इतनी प्रचण्ड गति से, इतने वेग वाली गति से, इतनी उद्धत गति से, इतनी दिव्य गति से यदि वह देव एक दिन से लगाकर छह मास पर्यन्त निरन्तर चलता रहे तो भी रत्नप्रभादि के नरकावासो मे किसी को तो वह पार पा सकता है और किसी को पार नही पा सकता। इतने विस्तार वाले वे नरकावास हैं। इसी तरह तम प्रभा तक ऐसा ही कहना चाहिए। सातवी पृथ्वी मे ५ नरकावास है। उनमे से मध्यवर्ती एक अप्रतिष्ठान नामक नरकावास लाख योजन विस्तार वाला है अतः उसका पार पाया जा सकता है। शेष चार नरकावास असख्यात कोटि-कोटि योजन प्रमाण होने से उनका पार पाना सम्भव नही है। इस तरह उपमान प्रमाण द्वारा नरकावासो का विस्तार कहा गया है।

नरकावासों में विकार

८५ इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णरगा किमया ?

गोयमा ! सव्ववइरामया पण्णत्ता; तत्थ णं णरएसु बहवे जीवा य पोग्गला य अवक्कमंति विउक्कमंति चयंति उववज्जंति सासया णं ते णरगा दव्वट्ठयाए, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया। एवं जाव अहे सत्तमाए।

[८५] हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावास किसके बने हुए हैं ?

गौतम ! वे नरकावास सम्पूर्ण रूप से वज्र के बने हुए हैं। उन नरकावासो में बहुत से

(खरबादर पृथ्वीकायिक) जीव और पुद्गल च्यवते हैं और उत्पन्न होते है, पुराने निकलते है और नये आते हैं। द्रव्यार्थिकनय से वे नरकावास शाश्वत है परन्तु वर्णपर्यायो से, गन्धपर्यायो से, रसपर्यायो से और स्पर्शपर्यायो से वे अशाश्वत हैं। ऐसा अध सप्तमपृथ्वी तक कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रश्न है कि रत्नप्रभादि के नरकावास किंमय है अर्थात् किस वस्तु के बने हुए हैं ? उत्तर मे कहा गया है कि वे सर्वथा वज्रमय हैं अर्थात् वज्र से बने हुए है। उनमे खरबादर पृथ्वीकाय के जीव और पुद्गल च्यवते हैं और उत्पन्न होते हैं। अर्थात् पहले वाले जीव निकलते हैं और नये जीव आकर उत्पन्न होते हैं। इसी तरह पुद्गल भी कोई च्यवते है और कोई नये आकर मिलते हैं। यह आने-जाने की प्रक्रिया वहाँ निरन्तर चलती रहती है। इसके बावजूद भी रत्नप्रभादि नरको की रचना शाश्वत है। इसलिए द्रव्यनय की अपेक्षा से वे नित्य है, सदाकाल से थे, सदाकाल से हैं और सदाकाल रहेगे। इस प्रकार द्रव्य से शाश्वत होते हुए भी उनमे वर्ण, गंध, रस और स्पर्श बदलते रहते हैं, इस अपेक्षा से वे अशाश्वत हैं। जैनसिद्धान्त विविध अपेक्षाओ से वस्तु को विविधरूप मे मानता है। इनमे कोई विरोध नही है। अपेक्षाभेद से शाश्वत और अशाश्वत मानने मे कोई विरोध नही है। स्याद्वाद सर्वथा सुसगत सिद्धान्त है।

उपपात

८६ [१] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया कओहिंतो उववज्जंति ? किं असण्णीहिंतो उववज्जंति, सरीसिवेहिंतो उववज्जंति पक्खीहिंतो उववज्जंति चउप्पएहिंतो उववज्जंति उरगेहिंतो उववज्जंति इत्थियाहिंतो उववज्जंति मच्छमणुएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव मच्छमणुएहिंतो वि उववज्जंति,[1]

असण्णी खलु पढमं दोच्चं च सरीसिवा ततिय पक्खी।
सीहा जंति चउत्थिं उरगा पुण पंचमिं जंति ॥१॥
छट्ठिं च इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं जंति।

जाव अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइया णो असण्णीहिंतो उववज्जंति जाव णो इत्थियाहिंतो उववज्जंति, मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

[८९] (१) भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ? क्या असज्ञी जीवो से आकर उत्पन्न होते है, सरीसृपो से आकर उत्पन्न होते हैं, पक्षियो से आकर उत्पन्न होते हैं, चौपदो से आकर उत्पन्न होते हैं, (सर्पादि) उरगो से आकर उत्पन्न होते है, स्त्रियो से आकर उत्पन्न होते हैं या मत्स्यो और मनुष्यो से आकर उत्पन्न होते है ?

गौतम ! असज्ञी जीवो से आकर भी उत्पन्न होते है और यावत् मत्स्य और मनुष्यो से आकर भी उत्पन्न होते है। (यहाँ यह गाथा अनुसरणीय है)

असज्ञी जीव प्रथम नरक तक, सरीसृप दूसरी नरक तक, पक्षी तीसरी नरक तक, सिंह चौथी

---

१ सेसासु इमाए गाहाए अणुगतव्वा, एवं एतेणं अभिलावेणं इमा गाथा घोसेयव्वा।

नरक तक, उरग पाचवी नरक तक, स्त्रिया छठी नरक तक और मत्स्य एव मनुष्य सातवी नरक तक जाते हैं।

विवेचन—उपपात का वर्णन करते हुए इस सूत्र मे जो दो गाथाए दी गई हैं, उनका अर्थ यह समझना चाहिए कि असज्ञी जीव प्रथम नरक तक ही जाते हैं, न कि असज्ञीजीव ही प्रथम नरक मे जाते हैं। इसी तरह सरीसृप—गोधा नकुल आदि दूसरी पृथ्वी तक ही जाते हैं, न कि सरीसृप ही दूसरी नरक मे जाते है। पक्षी तीसरी नरक तक जाते हैं, न कि पक्षी ही तीसरी नरक मे जाते हैं। इसी तरह आगे भी समझना चाहिए।

शर्कराप्रभा आदि नरकपृथ्वी को लेकर पाठ इस प्रकार होगा—

'सक्करप्पभाए ण भते ! पुढवीए नेरइया कि असण्णीहिंतो उववज्जति जाव मच्छमणुएहिंतो उववज्जति ? गोयमा ! नो असन्नीहिंतो उववज्जति सरीसिवेहिंतो उववज्जति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जति। वालुयप्पभाए ण भते ! पुढवीए नेरइया कि असण्णीहिंतो उववज्जति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जति ? गोयमा ! नो असण्णीहिंतो उववज्जति नो सरीसिवेहिंतो उववज्जति, पक्खीहिंतो उववज्जति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जति।'

उक्त रीति से उत्तर-उत्तर पृथ्वी मे पूर्व-पूर्व के प्रतिषेध सहित उत्तरप्रतिषेध तव तक कहना चाहिए जव तक कि सप्तम पृथ्वी मे स्त्री का भी प्रतिषेध हो जाए। वह पाठ इस प्रकार होगा—'अहेसत्तमाए ण भते पुढवीए नेरइया कि असण्णीहिंतो उववज्जति जाव मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जति ? गोयमा ! नो असण्णीहिंतो उववज्जति जाव नो इत्थीहिंतो उववज्जति, मच्छमणुस्सेहिंतो उववज्जति।'

संख्याद्वार

८६. [२] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया एक्कसमयेणं केवइया उववज्जंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखिज्जा वा उववज्जंति, एवं जाव अहेसत्तमाए।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा केवइकालेणं अवहिया सिया ?

गोयमा ! ते णं असंखेज्जा समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा असंखेज्जाहि उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहि अवहीरंति नो चेव णं अवहिया सिया। जाव अहेसत्तमाए।

[८६] (२) हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी मे नारकजीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ?

गौतम ! जघन्य से एक, दो, तीन, उत्कृष्ट से संख्यात या असख्यात भी उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार सप्तमपृथ्वी तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको का प्रतिसमय एक-एक का अपहार करने पर कितने काल मे यह रत्नप्रभापृथ्वी खाली हो सकती है ?

गौतम ! नैरयिक जीव असख्यात है । प्रतिसमय एक-एक नैरयिक का अपहार किया जाय तो असख्यात उत्सर्पिणिया असख्यात अवसर्पिणिया वीत जाने पर भी यह खाली नही हो सकते ।

इसी प्रकार सातवी पृथ्वी तक कहना चाहिए ।

विवेचन—नारकजीवो की सख्या वताने के लिए असत्कल्पना के द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रतिसमय एक-एक नारक का अपहार किया जाय तो असख्यात उत्सर्पिणिया और असख्यात अवसर्पिणिया वीतने पर उनका अपहार होता है । इस प्रकार का अपहार न तो कभी हुआ, न होता है और न होगा ही । यह केवल कल्पना मात्र है, जो नारक जीवो की सख्या बताने के लिए की गई है ।

अवगाहनाद्वार

८६ [३] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तंजहा—भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य । तत्थ जा सा भवधारणिज्जा सा जहन्नेण अगुलस्य असखेज्जइभागं उक्कोसेण सत्त धणूइ तिण्णि य रयणीओ छच्च अंगुलाइं ।

तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से जहन्नेणं अंगुलस्स सखेज्जइभागं उक्कोसेण पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ ।

दोच्चाए, भवधारणिज्जे जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ,

उत्तरवेउव्विया जहन्नेणं अगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं एक्कतीसं धणूइं एक्कारयणी ।

तच्चाए, भवधारणिज्जे एक्कतीसं धणू एक्का रयणी,

उत्तरवेउव्विया वासट्ठि धणूइं दोण्णि रयणीओ ।

चउत्थीए, भवधारणिज्जे बासट्ठ धणूइं दोण्णि य रयणीओ,

उत्तरवेउव्विया पणवीस धणुसय ।

पचमीए भवधारणिज्जे पणवीस धणुसयं,

उत्तरवेउव्विया अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं ।

छट्ठीए भवधारणिज्जा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं,

उत्तरवेउव्विया पंच धणुसयाइं ।

सत्तमाए भवधारणिज्जा पंच धणुसयाइं,
उत्तरवेउव्विए धणुसहस्सं ।

[८६] (३) हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको की शरीर-अवगाहना कितनी कही गई है ?

गौतम ! दो प्रकार की शरीरावगाहना कही गई है, यथा—भवधारणीय और उत्तर-वैक्रिय । भवधारणीय अवगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कृष्ट से सात धनुष, तीन हाथ और छह अगुल है । उत्तरवैक्रिय अवगाहना जघन्य से अगुल का सख्यातवा भाग, उत्कृष्ट से पन्द्रह धनुष, अढाई हाथ है ।

दूसरी शर्कराप्रभा के नैरयिको की भवधारणीय अवगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग, उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष अढाई हाथ है । उत्तरवैक्रिय जघन्य से अगुल का सख्यातवा भाग, उत्कृष्ट से इकतीस धनुष एक हाथ है ।

तीसरी नरक मे भवधारणीय इकतीस धनुष, एक हाथ और उत्तरवैक्रिय बासठ धनुष दो हाथ है ।

चौथी नरक मे भवधारणीय बासठ धनुष दो हाथ है और उत्तरवैक्रिय एक सौ पचीस धनुष है ।

पाचवी नरक मे भवधारणीय एक सौ पचीस धनुष और उत्तरवैक्रिय अढाई सौ धनुष है ।

छठी नरक मे भवधारणीय अढाई सौ धनुष और उत्तरवैक्रिय पाच सौ धनुष है ।

सातवी नरक मे भवधारणीय पाच सौ धनुष है और उत्तरवैक्रिय एक हजार धनुष है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नैरयिको के शरीर की अवगाहना का कथन किया गया है । इनके शरीर की अवगाहना दो प्रकार की है । एक भवधारण के समय होने वाली और दूसरी वैक्रियलब्धि से की जाने वाली उत्तरवैक्रियिकी । दोनो प्रकार की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से दो प्रकार की है । इस तरह प्रत्येक नरक के नारक की चार तरह की अवगाहना का प्ररूपण किया गया है ।

(१) रत्नप्रभा के नैरयिको की भवधारणीय अवगाहना जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग है और उत्कृष्ट से सात धनुष तीन हाथ और छह अगुल है । उत्तरवैक्रिय जघन्य से अगुल का सख्येय भाग और उत्कर्ष से पन्द्रह धनुष, दो हाथ और एक वेत (दो वेत का एक हाथ होता है) अत. मूल मे ढाई हाथ कहा गया है ।

(२) शर्कराप्रभा मे भवधारणीय जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्कर्ष से १५ धनुष, २॥ हाथ है । उत्तरवैक्रिय जघन्य से अगुल का सख्यातवा भाग और उत्कर्ष से ३१ धनुष १ हाथ है ।

इसी प्रकार आगे की पृथ्वियो मे भी भवधारणीय जघन्य से अगुल का असख्यातवा भाग और उत्तरवैक्रिय जघन्य से अगुल का सख्यातवा भाग कहना चाहिए । क्योकि तथाविध प्रयत्न के अभाव

मे उत्तरविक्रिया प्रथम समय मे ही अगुल के सख्यातवे भाग प्रमाण ही होती है। इस प्रकार अति-देश समझना चाहिए। अत आगे की पृथ्वियो मे उत्कृष्ट भवधारणीय और उत्कृष्ट उत्तरवैक्रिय अवगाहना का कथन मूल पाठ मे किया गया है।

(३) तीसरी वालुकाप्रभा मे भवधारणीय उत्कृष्ट ३१ धनुष १ हाथ है और उत्तरवैक्रिय ६२।। धनुष है।

(४) चौथी पकप्रभा मे उत्कृष्ट भवधारणीय ६२।। धनुष है और उत्तरवैक्रिय १२५ धनुष है।

(५) पाचवी धूमप्रभा मे उत्कृष्ट भवधारणीय १२५ धनुष है और उत्तरवैक्रिय २५० धनुष है।

(६) छठी तम प्रभा मे उत्कृष्ट भवधारणीय २५० धनुष है और उत्तरवैक्रिय पाच सौ धनुष है।

(७) सातवी तमस्तम प्रभा मे उत्कृष्ट भवधारणीय पाच सौ धनुष है और उत्तरवैक्रिय एक हजार धनुष है।

प्रत्येक नरकपृथ्वी की उत्कृष्ट भवधारणीय अवगाहना पूर्व पृथ्वी से दुगुनी-दुगुनी है तथा प्रत्येक पृथ्वी के नैरयिको की भवधारणीय अवगाहना से उनकी उत्तरवैक्रिय अवगाहना दुगुनी-दुगुनी है। निम्न यत्र से अवगाहना जानने मे सहूलियत होगी—

अवगाहना का यत्र

पृथ्वी का नाम	भवधारणीय		उत्तरवैक्रिय	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
१ रत्नप्रभा	अगुल का असख्यातवा	७ धनुष ३ हाथ ६ अगु	अगुल का	१५ ध २।। हाथ
२ शर्कराप्रभा	भाग	१५ धनुष २।। हाथ	स भाग	३१ ध १ हाथ
३ वालुकाप्रभा	,,	३१ ध १ हाथ	,,	६२ ध २ हाथ
४ पकप्रभा	,,	६२ ध. २ हाथ	,,	१२५ धनुष
५ धूमप्रभा	,,	१२५ धनुष	,,	२५० धनुष
६ तम प्रभा	,,	२५० धनुष	,,	५०० धनुष
७ तमस्तम प्रभा	,,	५०० धनुष	,,	१००० धनुष

रत्नप्रभादि के प्रस्तटो मे अवगाहना का प्रमाण इस प्रकार है—रत्नप्रभा के १३ प्रस्तट हैं। पहले प्रस्तट मे उत्कृष्ट अवगाहना ३ हाथ की है। इसके बाद प्रत्येक प्रस्तट मे ५६।। अगुल की वृद्धि कहनी चाहिए। इस मान से १३ प्रस्तटो की अवगाहना निम्न है—

रत्नप्रभा के प्रस्तटो में अवगाहना

प्रस्तट	धनुष	हाथ	अगुल
१	०	३	०
२	१	१	८॥
३	१	३	१७
४	२	२	१॥
५	३	०	१०
६	३	२	१८॥
७	४	१	३
८	४	३	११॥
९	५	१	२०
१०	६	०	४॥
११	६	२	१३
१२	७	०	२१॥
१३	७	३	६

शर्कराप्रभा के ११ प्रस्तट हैं। इसके पहले प्रस्तट मे वही अवगाहना है जो रत्नप्रभा के १३ वे प्रस्तट मे है अर्थात् ७ धनुष ३ हाथ और ६ अगुल। इसके बाद प्रत्येक प्रस्तट मे ३ हाथ ३ अगुल की वृद्धि कहनी चाहिए तो उसका प्रमाण इस प्रकार होगा—

शर्कराप्रभा के प्रस्तटों में अवगाहना

	धनुष	हाथ	अगुल
१	७	३	६
२	८	२	९
३	९	१	१२
४	१०	०	१५
५	१०	३	१८
६	११	२	२१
७	१२	२	०
८	१३	१	३
९	१४	०	६
१०	१४	३	९
११	१५	२	१२

इसी प्रकार वालुकाप्रभा के प्रथम प्रस्तट मे वही अवगाहना है जो दूसरी पृथ्वी के अन्तिम प्रस्तट मे है—अर्थात् १५ धनुष २ हाथ और १२ अगुल। इसके बाद प्रत्येक प्रस्तट मे ७ हाथ १९।। अंगुल की वृद्धि कहनी चाहिए। उसका प्रमाण इस प्रकार होगा—

पहले प्रस्तट मे	१५ धनुष	२ हाथ	१२ अगुल
दूसरे मे	१७ धनुष	२ हाथ	७।। अगुल
तीसरे मे	१९ धनुष	२ हाथ	३ अगुल
चौथे मे	२१ धनुष	१ हाथ	२२।। अगुल
पाचवें मे	२३ धनुष	१ हाथ	१८ अगुल
छठे मे	२५ धनुष	१ हाथ	१३।। अगुल
सातवें मे	२७ धनुष	१ हाथ	९ अगुल
आठवें मे	२९ धनुष	१ हाथ	४।। अगुल
नौवें मे	३१ धनुष	१ हाथ	० अगुल

पंकप्रभा मे सात प्रस्तट हैं। उनमे से प्रथम प्रस्तट मे वही अवगाहना है जो पूर्व की वालुकाप्रभा के नौवें प्रस्तट की है। इसके आगे प्रत्येक मे ५ धनुष २० अगुल की वृद्धि कहनी चाहिए। प्रत्येक प्रस्तट की अवहगाहना का प्रमाण इस प्रकार होगा—

पहले प्रस्तट मे	३१ धनुष	१ हाथ	
दूसरे मे	३६ धनुष	१ हाथ	२० अगुल
तीसरे मे	४१ धनुष	२ हाथ	१६ अगुल
चौथे मे	४६ धनुष	३ हाथ	१२ अगुल
पाचवे मे	५२ धनुष	० हाथ	८ अगुल
छठे मे	५७ धनुष	१ हाथ	४ अगुल
सातवें मे	६२ धनुष	२ हाथ	० अगुल

धूमप्रभा के पाच प्रस्तट है। प्रथम प्रस्तट मे वही अवगाहना है जो पूर्व की पृथ्वी के अन्तिम प्रस्तट की है। इसके बाद १५ धनुष २।। हाथ प्रत्येक प्रस्तट मे वृद्धि कहनी चाहिए। वह प्रमाण इस प्रकार होगा—

पहले प्रस्तट मे	६२ धनुष	२ हाथ
दूसरे मे	७८ धनुष	१ वितस्ति(वेंत—आधा हाथ)
तीसरे मे	९३ धनुष	३ हाथ
चौथे मे	१०९ धनुष	१ हाथ १ वितस्ति
पाचवें मे	१२५ धनुष	

तमःप्रभापृथ्वी के तीन प्रस्तट हैं। प्रथम प्रस्तट की वही अवगाहना है जो इसके पूर्व की पृथ्वी के अन्तिम प्रस्तट की है। इसके पश्चात् प्रत्येक प्रस्तट मे ६२।। धनुष की वृद्धि कहनी चाहिए। वह प्रमाण इस प्रकार होता है—

पहले प्रस्तट मे	१२५ धनुष
दूसरे मे	१८७।। धनुष
तीसरे मे	२५० धनुप

तमस्तमा पृथ्वी मे प्रस्तट नही है। उनकी भवधारणीय उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुप की है उत्तरवैक्रिय एक हजार योजन है।

संहनन-सस्थान-द्वार

८७. [१] इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं सरीरया किंसंघयणी पण्णत्ता?

गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणा, णेवट्ठी, णेव छिरा, णवि ण्हारु, णेव संघयणमत्थि, जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं सरीरसंघायत्ताए परिणमंति। एवं जाव अहेसत्तमाए।

[८७] (१) हे भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के शरीरो का सहनन क्या है?

गौतम! छह प्रकार के सहननो मे से उनके कोई सहनन नही है, क्योकि उनके शरीर मे हड्डिया नही हैं, शिराए नही हैं, स्नायु नही हैं। जो पुद्गल अनिष्ट और अमणाम होते हैं वे उनके शरीर रूप मे एकत्रित हो जाते हैं। इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए।

८७ [२] इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाण सरीरा किंसंठिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तजहा—

भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य। तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पण्णत्ता, तत्थ ण जे ते उत्तरवेउव्विया ते वि हुडसंठिया पण्णत्ता। एवं जाव अहेसत्तमाए।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं सरीरगा केरिसया वण्णेणं पण्णत्ता?

गोयमा! काला कालोभासा जाव परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता। एवं जाव अहेसत्तमाए।

इमीसे ण भते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाण सरीरया केरिसया गंधेण पण्णत्ता?

गोयमा! से जहानामए अहिमडेइ वा तं चेव जाव अहेसत्तमा।

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं सरीरया केरिसया फासेण पण्णत्ता?

गोयमा! फुडितच्छविविच्छविया खरफरुस झामभुसिरा फासेण पण्णत्ता। एवं जाव अहेसत्तमा।

[८७] (२) हे भगवन्! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के शरीरो का सस्थान कैसा है?

गौतम! उनके सस्थान दो प्रकार के हैं—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। भवधारणीय की अपेक्षा वे हुडकसस्थान वाले हैं और उत्तरवैक्रिय की अपेक्षा भी वे हुडकसस्थान वाले ही हैं। इसी प्रकार सप्तमपृथ्वी तक के नैरयिको के सस्थान हैं।

भगवन्! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के शरीर वर्ण की अपेक्षा कैसे कहे गये हैं?

गौतम! काले, काली छाया (कान्ति) वाले यावत् अत्यन्त काले कहे गये हैं। इसी प्रकार सप्तमपृथ्वी तक के नैरयिको का वर्ण जानना चाहिए।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के शरीर की गन्ध कैसी कही गई है ?

गौतम ! जैसे कोई मरा हुआ सर्प हो, इत्यादि पूर्ववत् कथन करना चाहिए। सप्तमीपृथ्वी तक के नारको की गन्ध इसी प्रकार जाननी चाहिए।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के शरीरो का स्पर्श कैसा कहा गया है ?

गौतम ! उनके शरीर को चमडी फटी हुई होने से तथा झुर्रिया होने से कान्तिरहित है, कर्कश है, कठोर है, छेद वाली है और जली हुई वस्तु की तरह खुरदरी है। (पकी हुई ईंट की तरह खुरदरे शरीर हैं)। इसी प्रकार सप्तमपृथ्वी तक कहना चाहिए।

विवेचन—इनका विवेचन पूर्व मे किया जा चुका है।

८८ [१] इमीसे ण भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं केरिसया पोग्गला उसासत्ताए परिणमंति ?

गोयमा ! जे पोग्गला अणिट्ठा जाव अमणामा ते तेसिं उसासत्ताए परिणमंति। एव जाव अहेसत्तमाए। एवं आहारस्सवि सत्तसु वि।

[८८] (१) भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के श्वासोच्छ्वास के रूप मे कैसे पुद्गल परिणत होते हैं ?

गौतम ! जो पुद्गल अनिष्ट यावत् अमणाम होते है वे नैरयिको के श्वासोच्छ्वास के रूप मे परिणत होते है।

इसी प्रकार सप्तमपृथ्वी तक के नैरयिको का कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार जो पुद्गल अनिष्ट एव अमणाम होते हैं, वे नैरयिको के आहार रूप मे परिणत होते हैं। ऐसा ही कथन रत्नप्रभादि सातो नरकपृथ्वियो के नारको के सम्बन्ध मे जानना चाहिए।

लेश्यादिद्वार

८८ [२] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं कति लेसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! एक्का काउलेसा पण्णत्ता। एवं सक्करप्पभाए वि।

वालुयप्पभाए पुच्छा, दो लेसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा नीललेसा कापोतलेसा य। तत्थ जे काउलेसा ते बहुतरा,

जे णीललेसा पण्णत्ता ते थोवा।

पंकप्पभाए पुच्छा, एक्का नीललेसा पण्णत्ता,

धूमप्पभाए पुच्छा, गोयमा ! दो लेस्साओ पण्णत्ताओ,

तंजहा—किण्हलेस्सा य नीललेस्सा य। ते बहुयरगा जे नीललेस्सा, ते थोवतरगा जे किण्हलेसा।

तमाए पुच्छा, गोयमा ! एक्का किण्हलेसा।

अधेसत्तमाए एक्का परमकिण्हलेस्सा।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया किं सम्मदिट्ठी मिच्छदिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी ?

गोयमा ! सम्मदिट्ठी वि मिच्छदिट्ठी वि सम्मामिच्छदिट्ठी वि, एवं जाव अहेसत्तमाए।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया किं णाणी अण्णाणी ?

गोयमा ! णाणी वि अण्णाणि वि। जे णाणी ते णियमा तिणाणी, तंजहा—आभिणिबोहिय-णाणी, सुयणाणी, अवधिणाणी।

जे अण्णाणी ते अत्थेगइया दु अण्णाणि, अत्थेगइया ति अन्नाणी। जे दु अन्नाणि ते णियमा मतिअन्नाणी य सुय-अण्णाणी य।

जे ति अन्नाणि ते णियमा मति-अण्णाणी, सुय-अण्णाणी, विभंगणाणी वि,

सेसा णं णाणी वि अण्णाणि वि तिण्णि, जाव अहेसत्तमाए।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया किं मणजोगी वइजोगी कायजोगी ? तिण्णि वि एवं जाव अहेसत्तमाए।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?

गोयमा ! सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया ओहिणा केवइयं खेत्तं जाणंति पासंति ?

गोयमा ! जहण्णेणं अद्धुट्ठगाउयाइं उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं। सक्करप्पभाए पु०, जहन्नेणं तिन्नि गाउयाइं, उक्कोसेणं अद्धुट्ठाइं। एवं अद्धद्धगाउयं पारिहायइ जाव अहेसत्तमाए जहन्नेणं अद्ध-गाउयं उक्कोसेणं गाउयं।

इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं कति समुग्घाता पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि समुग्घाता पण्णत्ता, तंजहा—

वेदणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए। एवं जाव अहे-सत्तमाए।

[८८] (२) हे भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में कितनी लेश्याएँ कही गई हैं ?

गौतम ! एक कापोतलेश्या कही गई है। इसी प्रकार शर्कराप्रभा में भी कापोतलेश्या है। वालुकाप्रभा में दो लेश्याएँ हैं—नीललेश्या और कापोतलेश्या। कापोतलेश्या वाले अधिक हैं और नीललेश्या वाले थोड़े हैं। पंकप्रभा के प्रश्न में एक नीललेश्या कही गई है। धूमप्रभा के प्रश्न में दो लेश्याएँ कही गई हैं—कृष्णलेश्या और नीललेश्या। नीललेश्या वाले अधिक हैं और कृष्णलेश्या वाले थोड़े हैं। तमःप्रभा में एक कृष्णलेश्या है। सातवीं पृथ्वी में एक परमकृष्णलेश्या है।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक क्या सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्-मिथ्यादृष्टि हैं ?

गौतम ! सम्यग्दृष्टि भी हैं, मिथ्यादृष्टि भी हैं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी हैं। इसी प्रकार सप्तमपृथ्वी तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

गौतम ! ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे निश्चय से तीन ज्ञान वाले हैं—आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी। जो अज्ञानी हैं उनमे कोई दो अज्ञान वाले हैं और कोई तीन अज्ञान वाले हैं। जो दो अज्ञान वाले हैं वे नियम से मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी हैं और जो तीन अज्ञान वाले हैं वे नियम से मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभगज्ञानी हैं।

शेष शर्कराप्रभा आदि पृथ्वियो के नारक ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी है वे तीनो ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं वे तीनो अज्ञान वाले हैं। सप्तमपृथ्वी तक के नारको के लिए ऐसा ही कहना चाहिए।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक मनयोग वाले हैं, वचनयोग वाले हैं या काययोग वाले हैं ?

गौतम ! तीनो योग वाले हैं। सप्तमपृथ्वी तक ऐसा ही कहना चाहिए।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नारक साकार उपयोग वाले हैं या अनाकार उपयोग वाले हैं ?

गौतम ! साकार उपयोग वाले भी हैं और अनाकार उपयोग वाले भी है। सप्तमपृथ्वी तक ऐसा ही कहना चाहिए।

[हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक अवधि से कितना क्षेत्र जानते हैं, देखते हैं ?

गौतम ! जघन्य से साढे तीन कोस, उत्कृष्ट से चार कोस क्षेत्र को जानते हैं, देखते हैं। शर्कराप्रभा के नैरयिक जघन्य तीन कोस, उत्कर्ष से साढे तीन कोस जानते-देखते हैं। इस प्रकार आधा-आधा कोस घटाकर कहना चाहिए यावत् अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिक जघन्य आधा कोस और उत्कर्ष से एक कोस क्षेत्र जानते-देखते हैं।]

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के कितने समुद्घात कहे गये हैं ?

गौतम ! चार समुद्घात कहे गये हैं—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणातिकसमुद्घात और वैक्रियसमुद्घात। ऐसा ही सप्तमपृथ्वी तक के नारको का कथन करना चाहिए।

विवेचन—टीकाकार ने उल्लेख किया है कि यहाँ कई प्रतियो मे कई तरह का पाठ है। उन सवका वाचनाभेद भी पूरा पूरा नही वताया जा सकता। केवल जो पाठ बहुतसी प्रतियो मे पाया गया और जो अविसवादी है वही लिया गया है। पाठभेद होते हुए भी आशयभेद नही है। मूलपाठ में कोष्ठक के अन्तर्गत दिया गया पाठ टीका मे नही है।

प्रस्तुत सूत्र मे प्रतिपाद्य विषय पूर्व मे स्पष्ट किये जा चुके हैं। लेश्याद्वार मे श्री भगवतीसूत्र मे कही हुई एक सग्रहणी गाथा इस प्रकार है—

'काऊ दोसु तइयाए मीसिया नीलिया चउत्थीए।
पचमियाए मीसा कण्हा तत्तो परमकण्हा ॥

अज्ञानद्वार मे किन्ही मे दो अज्ञान और किन्ही मे तीन अज्ञान कहे गये हैं, उसका तात्पर्य यह है कि जो असंज्ञी पंचेन्द्रियो से आकर उत्पन्न होते हैं उनके अपर्याप्त अवस्था मे विभंगज्ञान नही होता अतएव दो ही अज्ञान सम्भव हैं। शेषकाल में तीनो अज्ञान होते हैं। संज्ञी पचेन्द्रियो से आकर जो उत्पन्न होते हैं उनके तो अपर्याप्त अवस्था मे भी विभंग होता है, अतएव तीनो अज्ञान सदा सम्भव हैं।

शर्कराप्रभा आदि आगे की नरकपृथ्वियो मे सज्ञी पंचेन्द्रिय जीव ही उत्पन्न होते हैं। अतएव पहली रत्नप्रभापृथ्वी को छोड़कर शेष पृथ्वियो मे तीनो अज्ञान पाये जाते हैं। शेष सब मूलपाठ से ही स्पष्ट है।

नारकों की भूख-प्यास

८८. [१] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं खुहप्पिवासं पच्चणुभवमाणा विहरंति ?

गोयमा ! एगमेगस्स णं रयणप्पभापुढविनेरइयस्स असब्भावपट्ठवणाए सव्वोदधी वा सव्वपोग्गले वा आसगंसि पक्खिवेज्जा णो चेव णं से रयणप्पभापुढवीए नेरइए तित्ते वा सिया, वितण्हे वा सिया, एरिसिया णं गोयमा ! रयणप्पभाए णेरइया खुहप्पिवासं पच्चणुभवमाणा विहरंति एवं जाव अहेसत्तमाए।

[८९] (१) हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक भूख और प्यास की कैसी वेदना का अनुभव करते हैं ?

गौतम ! असत्कल्पना के अनुसार यदि किसी एक रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक के मुख मे सब समुद्रो का जल तथा सब खाद्यपुद्गलों को डाल दिया जाय तो भी उस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक की भूख तृप्त नही हो सकती और न उसकी प्यास ही शान्त हो सकती है। हे गौतम ! ऐसी तीव्र भूख-प्यास की वेदना उन रत्नप्रभा नारकियो को होती है। इसी तरह सप्तमपृथ्वी तक के नैरयिकों के सम्बन्ध मे भी जानना चाहिए।

एक-अनेक-विकुर्वणा

८९ [२] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए पुहुत्तं पि पभू विउव्वित्तए ?

गोयमा ! एगत्तं पि पभू पुहुत्तं पि पभू विउव्वित्तए। एगत्तं विउव्वेमाणा एगं महं मोग्गररूवं वा एवं मुसुंढि करवत असि सत्ती हल गया मुसल चक्कणाराय कुंत तोमर सूल लउड भिंडमाला य जाव भिंडमालरूवं वा पुहुत्तं विउव्वेमाणा, मोग्गररूवाणि वा जाव भिंडमालरूवाणि वा ताइं संखेज्जाइं णो असंखेज्जाइं, संबद्धाइं नो असंबद्धाइं, सरिसाइं नो असरिसाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता अण्णमण्णस्स कायं अभिहणमाणा अभिहणमाणा वेयण उदीरेंति उज्जलं विउलं पगाढं कक्कसं कडुयं फरुसं निट्ठुरं चंडं तिव्वं दुक्खं दुग्गं दुरहियासं एवं जाव धूमप्पभाए पुढवीए। छट्ठसत्तमासु णं पुढवीसु नेरइया बहु

महंताइं लोहियकुंथुरूवाइं वइरामयतुंडाइं गोमयकोडसमाणाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता अन्नमन्नस्स कायं समतुरंगेमाणा खायमाणा खायमाणा सयपोरागकिमिया विव चालेमाणा चालेमाणा अंतो अंतो अणुप्पविसमाणा अणुप्पविसमाणा वेदणं उदीरंति उज्जलं जाव दुरहियासं।

[८९] (२) हे भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक क्या एक रूप बनाने मे समर्थ हैं या बहुत से रूप बनाने मे समर्थ हैं ?

गौतम ! वे एक रूप भी बना सकते हैं और बहुत रूप भी बना सकते हैं। एक रूप बनाते हुए वे एक मुद्गर रूप बनाने मे समर्थ हैं, इसी प्रकार एक भुसडी (शस्त्रविशेष), करवत, तलवार, शक्ति, हल, गदा, मूसल, चक्र, बाण, भाला, तोमर, शूल, लकुट (लाठी) और भिण्डमाल (शस्त्रविशेष) बनाते है और बहुत रूप बनाते हुए बहुत से मुद्गर भुसंढी यावत् भिण्डमाल बनाते हैं। इन बहुत शस्त्र रूपो की विकुर्वणा करते हुए वे सख्यात शस्त्रो की ही विकुर्वणा कर सकते हैं, असख्यात की नही। अपने शरीर से सम्बद्ध की विकुर्वणा कर सकते हैं, असम्बद्ध की नही, सदृश की रचना कर सकते हैं, असदृश की नही। इन विविध शस्त्रो की रचना करके एक दूसरे नैरयिक पर प्रहार करके वेदना उत्पन्न करते हैं। वह वेदना उज्ज्वल अर्थात् लेशमात्र भी सुख न होने से जाज्वल्यमान होती है—उन्हे जलाती है, वह विपुल है—सकल शरीरव्यापी होने से विस्तीर्ण है, वह वेदना प्रगाढ है—मर्मदेशव्यापी होने से अतिगाढ होती है, वह कर्कश होती है (जैसे पाषाणखड का सघर्ष शरीर के अवयवो को तोड देता है उसी तरह से वह वेदना आत्मप्रदेशो को तोड़-सी देती है। वह कटुक औषधिपान की तरह कड़वी होती है, वह परुष—कठोर (मन मे रूक्षता पैदा करने वाली) होती है, निष्ठुर होती है (अशक्य प्रतीकार होने से दुर्भेद्य होती है) चण्ड होती है (रौद्र अध्यवसाय का कारण होने से), वह तीव्र होती है (अत्यधिक होने से) वह दु.खरूप होती है, वह दुर्लंघ्य और दु सह्य होती है। इस प्रकार धूमप्रभापृथ्वी (पाचवी नरक) तक कहना चाहिए।

छठी और सातवी पृथ्वी के नैरयिक बहुत और बडे (गोबर के कीट के समान) लाल कुन्थुओ की रचना करते हैं, जिनका मुख मानो वज्र जैसा होता है और जो गोबर के कीडे जैसे होते है। ऐसे कुन्थुरूप की विकुर्वणा करके वे एक दूसरे के शरीर पर चढते हैं, उनके शरीर को बार बार काटते हैं और सौ पर्व वाले इक्षु के कीडो की तरह भीतर ही भीतर सनसनाहट करते हुए घुस जाते है और उनको उज्ज्वल यावत् असह्य वेदना उत्पन्न करते हैं।

८९ [३] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया किं सीयवेदणं वेदंति, उसिण-वेयणं वेदंति, सीओसिणवेयणं वेदेंति ?

गोयमा ! णो सीयं वेदणं वेदेंति, उसिणं वेदणं वेदेंति, णो सीयोसिणं, एवं जाव बालुयप्पभाए।

पंकप्पभाए पुच्छा—गोयमा ! सीयं पि वेयणं वेदेंति, उसिणं पि वेयणं वेयंति, नो सीओसिण-वेयणं वेयंति। ते बहुतरगा जे उसिणं वेदणं वेदेंति, ते थोवयरगा जे सीतं वेदणं वेयंति।

१, यहां प्रतियो मे ('ते अप्पयरा उण्हजोणिया वेदेंति') पाठ अधिक हैं जो सगत नही है। भूल से लिखा गया प्रतीत होता है।—सपादक

धूमप्पभाए पुच्छा । गोयमा ! सीतं पि वेदणं वेदेंति उसिणं पि वेयणं वेयंति णो सीतोसिणं वेयणं वेदेंति । ते बहुतरगा जे सीयवेदणं वेदेंति, ते थोवयरगा जे उसिणवेयणं वेयंति ।

तमाए पुच्छा । गोयमा ! सीयं वेयणं वेदेंति णो उसिणं वेदणं वेदिंति णो सीतोसिणं वेयणं वेदेंति । एवं अहेसत्तमाए णवरं परमसीयं ।

[८६] (३) हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक क्या शीत वेदना वेदते हैं, उष्ण वेदना वेदते है या शीतोष्ण वेदना वेदते हैं ?

गौतम ! वे शीत वेदना नही वेदते हैं, उष्ण वेदना वेदते है, शीतोष्ण वेदना नही वेदते हैं। इस प्रकार शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा के नैरयिको के संवध मे भी जानना चाहिए ।

पकप्रभा के विषय मे प्रश्न करने पर गौतम ! वे शीतवेदना भी वेदते हैं, उष्ण वेदना भी वेदते हैं, शीतोष्ण वेदना नही वेदते हैं । वे नैरयिक बहुत है जो उष्णवेदना वेदते हैं और वे कम हैं जो शीत वेदना वेदते हैं ।

धूमप्रभा के विषय मे प्रश्न किया तो हे गौतम ! वे सीत वेदना भी वेदते हैं और उष्ण वेदना भी वेदते हैं, शीतोष्ण वेदना नही वेदते हैं । वे नारकजीव अधिक है जो शीत वेदना वेदते हैं और वे थोडे हैं जो उष्ण वेदना वेदते है ।

तम. प्रभा के प्रश्न पर हे गौतम ! वे शीत वेदना वेदते हैं, उष्ण वेदना नही वेदते हैं और शीतोष्ण वेदना नही वेदते हैं ।

तमस्तमा पृथ्वी की पुच्छा मे गौतम ! परमशीत वेदना वेदते हैं उष्ण या शीतोष्ण वेदना नहीं वेदते है ।

८९. [४] इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइया केरिसयं णिरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति ?

गोयमा ! ते णं तत्थ णिच्चं भीता णिच्चं तसिया णिच्चं छुहिया णिच्चं उव्विग्गा निच्चं उवप्पुआ णिच्चं वहिया[1] निच्चं परममसुभमउलमणुबद्धं निरयभवं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

एवं जाव अधेसत्तमाए णं पुढवीए पंच अणुत्तरा महतिमहालया महाणरगा पन्नत्ता, तंजहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए अप्पतिट्ठाणे । तत्थ इमे पंच महापुरिसा अणुत्तरेहिं दंडसमादाणेहिं कालमासे कालं किच्चा अप्पइट्ठाणे णरए णेरइयत्ताए उववण्णा, तंजहा—१ रामे जमदग्गिपुत्ते २ दढाउ लच्छइपुत्ते ३ वसु उवरिचरे ४ सुभूमे कोरव्वे ५ बंभदत्ते चुलणिसुए । ते णं तत्थ नेरइया जाया काला कालोभासा जाव परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता, तंजहा—ते णं तत्थ वेदणं वेदेंति उज्जलं विउलं जाव दुरहियासं ।

[८९] (४) हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के नरक भव का अनुभव करते हुए विचरते हैं ?

१, 'णिच्च वहिया' यह पाठ टीका मे नही है ।—सपादक

गोतम ! वे वहाँ नित्य डरे हुए रहते हैं, नित्य त्रसित रहते हैं, नित्य भूखे रहते हैं, नित्य उद्विग्न रहते है, नित्य उपद्रवग्रस्त रहते हैं, नित्य वधिक के समान क्रूर परिणाम वाले, नित्य परम अशुभ, अनन्य सदृश अशुभ और निरन्तर अशुभ रूप से उपचित नरकभव का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए।

सप्तम पृथ्वी मे पाच अनुत्तर वडे से बडे महानरक कहे गये हैं, यथा—काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान। वहाँ ये पाच महापुरुष सर्वोत्कृष्ट हिंसादि पाप कर्मों को एकत्रित कर मृत्यु के समय मर कर अप्रतिष्ठान नरक मे नैरयिक के रूप मे उत्पन्न हुए,—१ जमदग्नि का पुत्र परशुराम, २ लच्छतिपुत्र दृढायु, ३ उपरिचर वसुराज, ४ कौरव्य सुभूम और ५ चुलणिसुत ब्रह्मदत्त।

ये वहाँ नैरयिक के रूप मे उत्पन्न हुए जो वर्ण से काले, काली छवि वाले यावत् अत्यन्त काले हैं, इत्यादि वर्णन करना चाहिए यावत् वे वहाँ अत्यन्त जाज्वल्यमान विपुल एव यावत् असह्य वेदना को वेदते हैं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नारक जीवो की भूख-प्यास सबधी वेदना, एक-अनेक शस्त्रो की विकुर्वणा कर परस्पर दी गई वेदना, शीतवेदना, उष्णवेदना और नरकभव से होने वाली वेदनाओ का वर्णन किया है।

भूखवेदना—नारक जीवो की भूख-प्यास को असत् कल्पना के द्वारा व्यक्त करते हुए कहा गया है कि यदि किसी एक नारक जीव के मुख मे सर्व खाद्य पुद्गलो को डाल दिया जाय और सारे समुद्रो का पानी पिला दिया जाय तो भी न तो उसकी भूख शान्त होगी और न प्यास ही बुझ पायगी। इसकी थोडी-सी कल्पना हमे इस मनुष्यलोक मे प्रबलतम भस्मक व्याधि वाले पुरुष की दशा से आ सकती हैं। ऐसी तीव्र भूख-प्यास की वेदना वे नारक जीव सहने को बाध्य हैं।

शस्त्रविकुर्वणवेदना—वे नारक जीव एक प्रकार के और बहुत प्रकार के नाना शस्त्रो की विकुर्वणा करके एक दूसरे नारक जीव पर तीव्र प्रहार करते हैं। वे परस्पर मे तीव्र वेदना देते हैं, इसलिए परस्परोदीरित वेदना वाले हैं। पाठ मे आया हुआ 'पुहुत्त' शब्द बहुत्व का वाचक है। इस विक्रिया द्वारा वे दूसरो को उज्ज्वल, विपुल, प्रगाढ, कर्कश, कटुक, परुष, निष्ठुर, चण्ड, तीव्र, दु खरूप, दुर्लंघ्य और दु मह्य वेदना देते हैं। यह विकुर्वणा रूप वेदना पाचवी नरक तक समझना चाहिए। छठी और सातवी नरक मे तो नारक जीव वज्रमय मुखवाले लाल और गोबर के कीडे के समान, वडे कुन्थुओ का रूप बनाकर एक दूसरे के शरीर पर चढते हैं और काट-काट कर दूसरे नारक के शरीर मे अन्दर तक प्रवेश करके इक्षु का कीडा जैसे इक्षु को खा-खाकर छलनी कर देता है, वैसे वे नारक के शरीर को छलनी करके वेदना पहुँचाते हैं।

शीतादि वेदना—रत्नप्रभापृथ्वी के नारक शीतवेदना नही वेदते है, उष्णवेदना वेदते हैं, शीतोष्णवेदना नही वेदते हैं। वे नारक शीतयोनि वाले है। योनिस्थान के अतिरिक्त समस्त भूमि खैर के अगारो से भी अधिक प्रतप्त है, अतएव वे नारक उष्णवेदना वेदते है, शीतवेदना नही। शीतोष्णस्वभाव वाली सम्मिलित वेदना का नरको मे मूल से ही अभाव है।

शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा मे भी उष्णवेदना ही है। पकप्रभा मे शीतवेदना भी और

उष्णवेदना भी है। नरकावासो के भेद से कतिपय नारक शीतवेदना वेदते हैं और कतिपय नारक उष्णवेदना वेदते हैं। उष्णवेदना वाले नारक जीव अधिक हैं और शीतवेदना वाले कम हैं।

धूमप्रभा मे भी दोनो प्रकार की वेदनाएँ हैं परन्तु वहां शीतवेदना वाले अधिक हैं और उष्ण-वेदना वाले कम हैं।

छठी नरक मे शीत वेदना है। क्योकि वहाँ के नारक उष्णयोनिक हैं। योनिस्थानों को छोड़कर सारा क्षेत्र अत्यन्त वर्फ की तरह ठंढा है, अतएव उन्हे शीतवेदना भोगनी पड़ती है। सातवी पृथ्वी मे अतिप्रवल शीतवेदना है।

भवानुभववेदना—रत्नप्रभा आदि नरक भूमियो के नारक जीव क्षेत्रस्वभाव से ही अत्यन्त गाढ अन्धकार से व्याप्त भूमि को देखकर नित्य डरे हुए और शंकित रहते हैं। परमाधार्मिक देव तथा परस्परोदीरित दु खसघात से नित्य त्रस्त रहते हैं। वे नित्य दु.खानुभव के कारण उद्विग्न रहते हैं, वे नित्य उपद्रवग्रस्त होने से तनिक भी साता नही पाते हैं, वे सदा अशुभ, अशुभ रूप से अनन्य-सदृश तथा अशुभरूप से निरन्तर उपचित नरकभव का अनुभव करते हैं। यह वक्तव्यता सब नरको मे हैं।

सप्तमपृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरकावास मे अत्यन्त क्रूर कर्म करने वाले जीव ही उत्पन्न होते हैं, अन्य नही। उदाहरण के रूप मे यहाँ पांच महापुरुषो का उल्लेख किया गया है जो अत्यन्त उत्कृष्ट स्थिति के और उत्कृष्ट अनुभाग का वन्ध कराने वाले क्रूर कर्मों को वाँधकर सप्तमपृथ्वी के प्रति-ष्ठान नरकावास मे उत्पन्न हुए हैं। वे हैं—१. जमदग्नि का पुत्र परशुराम, २. लच्छति पुत्र दृढायु (टीकाकार के अनुसार छातीसुत दाढादाल), ३. उपरिचर वसुराजा, ४. कोरव्य गोत्रवाला अष्टम-चक्रवर्ती सुभूम और ५ चुलनीसुत ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती।

ऐसा कहा जाता है कि परशुराम ने २१ वार क्षत्रियो का नाश करके क्षत्रियहीन पृथ्वी कर दी थी। सुभूम आठवाँ चकवर्ती हुआ, इसने सात वार पृथ्वी को ब्राह्मणरहित किया। ऐसी किंवदन्ती है। तीव्र क्रूर अध्यवसायो से ही ऐसा हो सकता है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अत्यन्त भोगासक्त था तथा उसके अध्यवसाय अत्यन्त क्रूर थे। वसु राजा उचरिचर के विषय मे प्रसिद्ध है कि वह वहुत सत्यवादी था और इस कारण देवताधिष्ठित स्फटिक सिंहासन पर वैठा हुआ भी वह स्फटिक सिंहासन जनता को दृष्टिगोचर न होने से ऐसी बात फैल गई थी कि राजा प्राण जाने पर भी असत्य भाषण नही करता। इसके प्रताप से वह भूमि से ऊपर उठकर अधर मे स्थित होता है। एक वार पर्वत और नारद में वेद मे आये हुए 'अज' शव्द के विषय मे विवाद हुआ। पर्वत अज का अर्थ वकरा करता था और उससे यज्ञ करने का हिंसामय प्रतिपादन करता था। जवकि सम्यग्दृष्टि नारद 'अज' का अर्थ 'न उगने वाला धान्य' करता था। दोनो न्याय के लिए वसु राजा के पास आये। किन्ही कारणो से वसु राजा ने पर्वत का पक्ष लिया, हिंसामय यज्ञ को प्रोत्साहित किया। इस झूठ के कारण देवता कुपित हुआ और उसे चपेटा मार कर सिंहासन से गिरा दिया। वह रौद्रध्यान और क्रूर परिणामों से मरकर सप्तम पृथ्वी के अप्रतिष्ठान नरकावास मे उत्पन्न हुआ।

उक्त पंच महापुरुष और ऐसे ही अन्य अत्यन्त क्रूरकर्मा प्राणी सर्वोत्कृष्ट पाप कर्म का उपार्जन करके वहाँ उत्पन्न हुए और अशुभ वर्ण-गंध-स्पर्शादिक की उज्ज्वल, विपुल और दु सह्य वेदना को भोग रहे हैं।

उष्णवेदना का स्वरूप

८९. [५] उसिणवेदणिज्जेसु ण भंते ! णरएसु णेरइया केरिसयं उसिणवेयण पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

गोयमा ! से जहानामए कम्मारदारए सिया तरुणे बलव जुगवं अप्पायंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपादपास पिट्ठंतरोरु [संघाय] परिणए लंघण-पवण-जवण-वग्गण-पमद्दणसमत्थे तलजमलजुयल (फलिहणिभ) बाहू घणणिचियवलियवट्टखंधे, चम्मेट्ठगदुहणमुट्ठियसमाहयणिचितगत्तगत्ते उरस्स बल समण्णागए छेए दक्खे पट्ठे कुसले णिउणे मेहावी णिउणसिप्पोवगए एगं महं अयपिंडं उदगवारसमाणं गहाय तं ताविय ताविय कोट्टिय कोट्टिय उब्भिंदिय उब्भिंदिय चुण्णिय चुण्णिय जाव एगाहं वा दुयाहं या तियाहं वा उक्कोसेणं अद्धमासं संहणेज्जा, से णं तं सीतं सीतीभूतं अओमएणं संदंसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेदणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्जा, से णं तं उम्मिसिय णिमिसियंतरेण पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामित्तिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा, पविलीणमेव पासेज्जा, पविद्धत्थमेव पासेज्जा णो चेव णं संचाएति अविरायं वा अविलीणं वा अविद्धत्थं वा पुणरवि पच्चद्धरित्तए।

से जहा वा मत्तमातंगे दिवे कुंजरे सट्ठिहायणे पढमसरयकालसमयंसि वा चरमनिदाघकालसमयंसि वा उण्हाभिहए तण्हाभिहए दवग्गिजालाभिहए आउरे सुसिए पिवासिए दुब्बले किलंते एक्कं महं पुक्खरिणिं पासेज्जा चाउक्कोणं समतीरं अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरशीतलजल संछण्णपत्त भिसमुणालं बहुउप्पलकुमुदणलिण-सुभग-सोगंधिय-पुंडरीय-महपुंडरीय-सयपत्त-सहस्सयपत्त-केसर फुल्लोवचियं छप्पयपरिभुज्जमाणकमलं अच्छविमलसलिलपुण्णं परिहत्थभमंत मच्छ कच्छभं अणेगसउणिगणमिहुणय विरइय सद्दुन्नइयमहुरसरनाइय तं पासइ, त पासित्ता तं ओगाहइ, ओगाहित्ता से ण तत्थ उण्हंपि पविणेज्जा तिण्हंपि पविणेज्जा खुहं पि पविणिजा जरंपि पविणेज्जा दाहं पि पविणेज्जा णिद्दाएज्ज वा पयलाएज्ज वा सइं वा रइं वा धिइं वा मतिं वा उवलभेज्जा, सीए सीयभूए संकममाणे संकममाणे सायासोक्खबहुले यावि विहरिज्जा, एवामेव गोयमा ! असब्भावपट्ठवणाए उसिणवेयणिज्जेहिंतो णरएहिंतो णेरइए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं मणुस्सलोयंसि भवंति गोलियालिछाणि वा सोंडियालिछाणि वा भिंडियालिछाणि वा अयागराणि वा तंबागराणि वा तउयागराणि वा सीसागराणि वा रूप्पागराणि वा सुवन्नागराणि वा हिरण्णागराणि वा कुंभारागणीइ वा मुसागणी वा इट्टयागणी वा कवेल्लुयागणी वा लोहारंबरीसे इवा जंतवाडचुल्ली वा हंडियलित्थाणि वा सोंडियलित्थाणि वा णलागणी इवा तिलागणी वा तुसागणी ति वा तत्ताइं समज्जोईभूयाइ फुल्लकिसुय-समाणाइ उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणाइं जालासहस्साइं पमुच्चमाणाइं इंगालसहस्साइं पविक्खरमाणाइं अंतो अंतो हुहुयमाणाइं चिट्ठंति ताइं पासइ, ताइं पासित्ता ताइं ओगाहइ, ताइं ओगाहित्ता से ण तत्थ उण्हं पि पविणेज्जा तण्हं पि पविणेज्जा खुहं पि पविणेज्जा जरंपि पविणेज्जा दाहंयि पविणेज्जा णिद्दाएज्जा वा

पयलाएज्जा वा सइं वा रइं वा धिइं वा मइं वा उवलभेज्जा, सीए सीयभूयए संकममाणे संकममाणे सायासोक्खबहुले या वि विहरेज्जा, भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा ! उसिणवेदणिज्जेसु णरएसु नेरइया एत्तो अणिट्ठतरियं चेव उसिण वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

[८९] (५) हे भगवन् ! उष्णवेदना वाले नरको मे नारक किस प्रकार की उष्णवेदना का अनुभव करते हैं ?

गौतम ! जैसे कोई लुहार का लडका, जो तरुण (युवा—विशिष्ट अभिनव वर्णादि वाला) हो, बलवान हो, युगवान् (कालादिजन्य उपद्रवो से रहित) हो, रोग रहित हो, जिसके दोनो हाथों का अग्रभाग स्थिर हो, जिसके हाथ, पाव, पसलिया, पीठ और जघाए सुदृढ और मजबूत हो, जो लाघने मे, कूदने मे, वेग के साथ चलने मे, फादने मे समर्थ हो और जो कठिन वस्तु को भी चूर-चूर कर सकता हो, जो दो ताल वृक्ष जैसे सरल लबे पुष्ट बाहु वाला हो, जिसके कधे घने पुष्ट और गोल हो, (व्यायाम के समय) चमडे की बेंत, मुदगर तथा मुट्ठी के आघात से घने और पुष्ट बने हुए अवयवो वाला हो, जो आन्तरिक उत्साह से युक्त हो, जो छेक (बहत्तर कला निपुण), दक्ष (शीघ्रता से काम करने वाला), प्रष्ठ—हितमितभाषी, कुशल (कार्य कुशल), निपुण, बुद्धिमान, निपुणशिल्पयुक्त हो, वह एक छोटे घडे के समान बडे लोहे के पिण्ड को लेकर उसे तपा-तपा कर कूट कूट कर काट-काट कर उसका चूर्ण बनावे, ऐसा एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् अधिक से अधिक पन्द्रह दिन तक ऐसा ही करता रहे । (चूर्ण का गोला बनाकर उसी क्रम से चूर्णादि करता रहे और गोला बनाता रहे, ऐसा करने से वह मजबूत फौलाद का गोला बन जावेगा) फिर उसे ठंडा करे । उस ठंडे लोहे के गोले को लोहे की सडासी से पकड कर असत् कल्पना से उष्णवेदना वाले नरको मे रख दे, इस विचार के साथ कि मैं एक उन्मेष-निमेष मे (पलभर मे) उसे फिर निकाल लूगा । परन्तु वह क्षण भर मे ही उसे फूटता हुआ देखता है, मक्खन की तरह पिघलता हुआ देखता है, सर्वथा भस्मीभूत होते हुए देखता है । वह लुहार का लडका उस लोहे के गोले को अस्फुटित, अगलित और अविध्वस्त रूप मे पुन निकाल लेने मे समर्थ नही होता । (तात्पर्य यह है कि वह फौलाद का गोला वहाँ की उष्णता से क्षणभर मे पिघल कर नष्ट हो जाता है , इतनी भीषण वहाँ की उष्णता है ।)

(दूसरा दृष्टान्त) जैसे कोई मद वाला मातग हाथी द्विप कु जर जो साठ वर्ष का है प्रथम शरत् काल समय मे (आश्विन मास मे) अथवा अन्तिम ग्रीष्मकाल समय मे (ज्येष्ठ मास मे) गरमी से पीडित होकर, तृषा से बाधित होकर, दावाग्नि की ज्वालाओ से झुलसता हुआ, आतुर, शुषित, पिपासित, दुर्बल, और क्लान्त बना हुआ एक बडी पुष्करिणी (सरोवर) को देखता है, जिसके चार कोने हैं, जो समान किनारे वाली है, जो क्रमश आगे-आगे गहरी है, जिसका जलस्थान अथाह है, जिसका जल शीतल है, जो कमलपत्र कद और मृणाल से ढकी हुई है । जो बहुत से खिले हुए केसर-प्रधान उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगधिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि विविध कमल की जातियो से मुक्त है, जिसके कमलो पर भ्रमर रसपान कर रहे हैं, जो स्वच्छ निर्मल जल से भरी हुई है, जिसमे बहुत से मच्छ और कछुए इधर-उधर घूम रहे हो, अनेक पक्षियो के जोडो के चहचहाने के शब्दों के कारण से जो मधुर स्वर से सुनिनादित (शब्दायमान) हो रही है, ऐसी पुष्पकरिणी को देखकर वह उसमे प्रवेश करता है, प्रवेश करके अपनी गरमी को शान्त करता है, तृषा को दूर करता है, भूख को मिटाता है, तापजनित ज्वर को नष्ट करता है और दाह को उपशान्त

करता है। इस प्रकार उष्णता आदि के उपशान्त होने पर वह वहाँ निद्रा लेने लगता है, आँखें मूदने लगता है, उसकी स्मृति, रति (आनन्द), धृति (धैर्य) तथा मति (चित्त की स्वस्थता) लौट आती है, वह इस प्रकार शीतल और शान्त होकर धीरे-धीरे वहाँ से निकलता-निकलता अत्यन्त साता-सुख का अनुभव करता है।

इसी प्रकार हे गौतम ! असत्कल्पना के अनुसार उष्णवेदनीय नरको से निकल कर कोई नैरयिक जीव इस मनुष्यलोक मे जो गुड पकाने की भट्टिया, शराब बनाने की भट्टियाँ, बकरी की लिण्डियो की अग्निवाली भट्टिया, लोहा गलाने की भट्टिया, ताँबा गलाने की भट्टिया, इसी तरह रागा सीसा, चादी, सोना हिरण्य को गलाने की भट्टिया, कुम्भकार के भट्टे की अग्नि, मूस की अग्नि, ईंटें पकाने के भट्टे की अग्नि, कवेलु पकाने के भट्टे की अग्नि, लोहार के भट्टे की अग्नि, इक्षुरस पकाने की चूल की अग्नि, तिल की अग्नि, तुष की अग्नि, नड—बास की अग्नि आदि जो अग्नि और अग्नि के स्थान हैं, जो तप्त है और तपकर अग्नि-तुल्य हो गये हैं, फूले हुए पलास के फूलो की तरह लाल-लाल हो गये है, जिनमे से हजारो चिनगारिया निकल रही हैं, हजारो ज्वालाएँ निकल रही हैं, हजारो अगारे जहाँ बिखर रहे हैं और जो अत्यन्त जाज्वल्यमान हैं, जो अन्दर ही अन्दर धू-धू धधकते हैं, ऐसे अग्निस्थानो और अग्नियो को वह नारक जीव देखे और उनमे प्रवेश करे तो वह अपनी उष्णता को (नरक की उष्णता को) शान्त करता है, तृषा, क्षुधा और दाह को दूर करता है और ऐसा होने से वह वहाँ नीद भी लेता है, आंखे भी मूंदता है, स्मृति, रति, धृति और मति (चित्त की स्वस्थता) प्राप्त करता है और ठडा होकर अत्यन्त शान्ति का अनुभव करता हुआ धीरे-धीरे वहाँ से निकलता हुआ अत्यन्त सुख-साता का अनुभव करता है। भगवान् के ऐसा कहने पर गौतम ने पूछा कि भगवन् ! क्या नारको की ऐसी उष्णवेदना है ? भगवान् ने कहा—नही, यह बात नही है, इससे भी अनिष्टतर उष्णवेदना को नारक जीव अनुभव करते हैं।

शीतवेदना का स्वरूप

८९. [५] सीयवेदणिज्जेसु ण भते ! णरएसु णेरइया केरिसियं सीयवेयणं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

गोयमा ! से जहानामए कम्मारदारए सिया तरुणे जुगवं बलव जाव सिप्पोवगए एगं महं अयपिंडं दगवारसमाण गहाय ताविय कोट्टिय कोट्टिय जहन्नेण एगाह वा दुआहं वा तियाहं वा उक्कोसेण मास हणेज्जा, से ण त उसिण उसिणभूत अयोमएणं सदसएणं गहाय असब्भावपट्ठवणाए सीयवेदणिज्जेसु णरएसु पक्खिवेज्जा, तं [उमिसियनिमिसियतरेणं पुणरवि पच्चुद्धरिस्सामि त्तिकट्टु पविरायमेव पासेज्जा, तं चेव ण जाव णो चेव णं संचाएज्जा पुणरवि पच्चुद्धरित्तए। से ण से जहाणामए मत्तमायगे तहेव जाव सोक्खबहुले यावि विहरेज्जा] एवामेव गोयमा ! असब्भावपट्ठवणाए सीयवेदणेहिंतो णरएहिंतो नेरइए उव्वट्टिए समाणे जाइं इमाइं इहं माणुस्सलोए हवंति, तंजहा—हिमाणि वा हिमपुंजाणि वा हिमपडलाणि वा हिमपडलपुंजाणि वा, तुसाराणि वा, तुसारपुंजाणि वा, हिमकुंडाणि वा हिमकुंडपुंजाणि वा सीयाणि वा ताइ पासइ, पासित्ता ताइं ओगाहति, ओगाहित्ता से णं तत्थ सीयंपि पविणेज्जा, तण्हंपि पविणेज्जा खुहंपि प० जरंपि प० दाहं पि पविणेज्जा निद्दाएज्ज

वा पयलाएज्ज वा जाव उसिणे उसिणभूए संकसमाणे संकसमाणे सायासोक्खबहुले यावि विहरेज्जा।

गोयमा! सीयवेयणिज्जेसु नरएसु नेरइया एत्तो अणिट्ठतरियं चेव सीयवेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[८९] (५) हे भगवन्! शीतवेदनीय नरको मे नैरयिक जीव कैसी शीतवेदना का अनुभव करते हैं?

गौतम! जैसे कोई लुहार का लडका जो तरुण, युगवान् बलवान् यावत् शिल्पयुक्त हो, एक बडे लोहे के पिण्ड को जो पानी के छोटे घडे के बराबर हो, लेकर उसे तपा-तपाकर, कूट-कूटकर जघन्य एक दिन, दो दिन, तीन दिन उत्कृष्ट से एक मास तक पूर्ववत् सब क्रियाएँ करता रहे तथा उस उष्ण और पूरी तरह उष्ण गोले को लोहे की सडासी से पकड़ कर असत् कल्पना द्वारा उसे शीतवेदनीय नरको मे डाले (मैं अभी उन्मेष-निमेष मात्र समय मे उसे निकाल लूंगा, इस भावना से डाले परन्तु वह पल-भर बाद उसे फूटता हुआ, गलता हुआ, नष्ट होता हुआ देखता है, वह उसे अस्फुटित रूप से निकालने मे समर्थ नही होता है। इत्यादि वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए। तथा मस्त हाथी का उदाहरण भी वैसे ही कहना चाहिए यावत् वह सरोवर से निकलकर सुखशान्ति से विचरता है।) इसी प्रकार हे गौतम! असत् कल्पना से शीतवेदना वाले नरको से निकला हुआ नैरयिक इस मनुष्यलोक मे शीतप्रधान जो स्थान है जैसे कि हिम, हिमपुज, हिमपटल, हिमपटल के पुज, तुषार, तुषार के पुज, हिमकुण्ड, हिमकुण्ड के पुज, शीत और शीतपुज आदि को देखता है, देखकर उनमे प्रवेश करता है, वह वहां अपने नारकीय शीत को, तृषा को, भूख को, ज्वर को, दाह को मिटा लेता है और शान्ति के अनुभव से नीद भी लेता है, नीद से आखें बद कर लेता है यावत् गरम होकर अति गरम होकर वहां से धीरे धीरे निकल कर साता-सुख का अनुभव करता है। हे गौतम! शीतवेदनीय नरको मे नैरयिक इससे भी अनिष्टतर शीतवेदना का अनुभव करते हैं।

नैरयिकों की स्थिति

९०. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहन्नेण वि उक्कोसेण वि ठिई भाणियव्वा जाव अहेसत्तमाए।

[९०] हे भगवन्! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको की स्थिति कितनी कही गई है?

गौतम! जघन्य से और उत्कर्ष से पन्नवणा के स्थितिपद के अनुसार अध सप्तमीपृथ्वी तक स्थिति कहनी चाहिए।

उद्वर्तना

९१. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए णेरइया अणतरं उव्वट्टिय कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति? किं नेरइएसु उववज्जंति, किं तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति, एवं उव्वट्टणा भाणियव्वा जहा वक्कंतीए तहा इह वि जाव अहेसत्तमाए।

[९१] हे भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक वहाँ से निकलकर सीधे कहां जाते है? कहाँ

उत्पन्न होते है ? क्या नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं, तिर्यक्योनिको मे उत्पन्न होते है ? इस प्रकार उद्वर्तना कहनी चाहिए जैसी कि प्रज्ञापना के व्युत्क्रान्तिपद मे कहा गया है वैसा यहाँ भी अध.सप्तम-पृथ्वी तक कहना चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नैरयिको की स्थिति और उद्वर्तना के विषय मे प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार वक्तव्यता जाननी चाहिए, ऐसा कहा गया है । प्रज्ञापना मे क्या कहा गया है, वह यहाँ उल्लेखित किया जाना आवश्यक है । वह कथन इस प्रकार का है—

	पृथ्वी का नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
१	रत्नप्रभा	दस हजार वर्ष	एक सागरोपम
२	शर्कराप्रभा	एक सागरोपम	तीन सागरोपम
३	वालुकाप्रभा	तीन सागरोपम	सात सागरोपम
४	पकप्रभा	सात सागरोपम	दस सागरोपम
५	धूमप्रभा	दस सागरोपम	सत्रह सागरोपम
६	तम प्रभा	सत्रह सागरोपम	बावीस सागरोपम
७	तमस्तम प्रभा	बावीस सागरोपम	तेतीस सागरोपम

प्रस्तट के अनुसार स्थिति

१ रत्नप्रभा के १३ प्रस्तट हैं, उनकी स्थिति इस प्रकार है—

प्रस्तट	जघन्य स्थिनि	उत्कृष्ट स्थिति
(१) प्रथम प्रस्तट	दस हजार वर्ष	नब्बे हजार वर्ष
(२) दूसरा प्रस्तट	दस लाख वर्ष	नब्बे लाख वर्ष
(३) तीसरा प्रस्तट	नब्बे लाख वर्ष	पूर्व कोटि
(४) चौथा प्रस्तट	पूर्वकोटि	सागरोपम का दसवा भाग
(५) पाचवा प्रस्तट	सागरोपम का दसवा भाग	सागरोपम के दो दशभाग
(६) छठा प्रस्तट	सागरोपम के दो दशभाग	सागरोपम के तीन दशभाग
(७) सातवा प्रस्तट	सागरोपम के तीन दशभाग	सागरोपम के चार दशभाग
(८) आठवा प्रस्तट	सागरोपम के चार दशभाग	सागरोपम के पाच दशभाग
(९) नौवा प्रस्तट	सागरोपम के पाच दशभाग	सागरोपम के छह दशभाग
(१०) दसवा प्रस्तट	सागरोपम के छह दशभाग	सागरोपम के सात दशभाग
(११) ग्यारहवा प्रस्तट	सागरोपम के सात दशभाग	सागरोपम के आठ दशभाग
(१२) बारहवा प्रस्तट	सागरोपम के आठ दशभाग	सागरोपम के नौ दशभाग
(१३) तेरहवा प्रस्तट	सागरोपम के नौ दशभाग	सागरोपम के दस दशभाग अर्थात् पूरा एक सागरोपम

२ शर्कराप्रभा की प्रस्तट के अनुसार स्थिति

प्रस्तव	जघन्य	उत्कृष्ट
पहला प्रस्तट	एक सागरोपम	एक सागरोपम और २/११ सागरोपम
दूसरा ,,	१ २/११ ,,	१ ४/११ ,,
तीसरा ,	१ ४/११ ,,	१ ६/११ ,,
चौथा ,,	१ ६/११ ,,	१ ८/११ ,,
पाचवा ,,	१ ८/११ ,,	१ १०/११ ,,
छठा ,,	१ १०/११ ,,	२ १/११ ,,
सातवा ,,	२ १/११ ,,	२ ३/११ ,,
आठवा ,,	२ ३/११ ,,	२ ५/११ ,,
नौवा ,,	२ ५/११ ,,	२ १/११ ,,
दसवा ,,	२ ७/११ ,,	२ ९/११ ,,
ग्यारहवा ,,	२ ९/११ ,,	३ सागरोपम पूर्ण

३. बालुकाप्रभा

	जघन्य	उत्कृष्ट
प्रथम प्रस्तट	३ सागरोपम	३ ४/९ सागरोपम
द्वितीय ,,	३ ४/९ ,,	३ ८/९ ,,
तृतीय ,,	३ ८/९ ,,	४ ३/९ ,,
चतुर्थ ,,	४ ३/९ ,,	४ ७/९ ,,
पचम ,,	४ ७/९ ,,	५ २/९ ,,
छठा ,,	५ २/९ ,,	५ ६/९ ,,
सप्तम ,,	५ ६/९ ,,	६ १/९ ,,
अष्टम ,,	६ १/९ ,,	६ ५/९ ,,
नवम ,,	६ ५/९ ,,	७ सागरोपम पूर्ण

४ पंकप्रभा

	जघन्य	उत्कृष्ठ
प्रथम प्रस्तट	७ सागरोपम	७ ३/७ सागरोपम
द्वितीय ,,	७ ३/७ ,,	७ ६/७ ,,
तृतीय ,,	७ ६/७ ,,	८ २/७ ,,
चतुर्थ ,,	८ २/७ ,,	८ ५/७ ,,
पचम ,,	८ ५/७ ,,	९ १/७ ,,
षष्ठ ,,	९ १/७ ,,	९ ४/७ ,,
सप्तम ,,	९ ४/७ ,,	१० सागरोपम परिपूर्ण

५ धूमप्रभा

	जघन्य	उत्कृष्ट
प्रथम प्रस्तट	१० सागरोपम	११$\frac{२}{५}$ सागरोपम
दूसरा ,,	११$\frac{२}{५}$,,	१२$\frac{४}{५}$,,
तीसरा ,,	१२$\frac{४}{५}$,,	१४$\frac{१}{५}$,,
चौथा ,,	१४$\frac{१}{५}$,,	१५$\frac{३}{५}$,,
पाचवा ,,	१५$\frac{३}{५}$,,	१७ सागरोपम प्रतिपूर्ण

६. तमःप्रभा

		जघन्य	उत्कृष्ट
१	प्रथम प्रस्तट	१७ सागरोपम	१८$\frac{२}{३}$ सागरोपम
२	द्वितीय ,,	१८$\frac{२}{३}$,,	२०$\frac{१}{३}$ सागरोपम
३	तृतीय ,,	२०$\frac{१}{३}$,,	२२ सागरोपम प्रतिपूर्ण

तमस्तमःप्रभा

	जघन्य	उत्कृष्ट
एक ही प्रस्तट है	२२ सागरोपम	तेंतीस सागरोपम

उद्वर्तना

प्रज्ञापना के व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार उद्वर्तना कहनी चाहिए। वह बहुत विस्तृत है अत. वही से जानना चाहिए। सक्षेप मे भावार्थ यह है कि प्रथम नरक पृथ्वी से लेकर छठी नरक पृथ्वी के नैरयिक वहाँ से सीधे निकलकर नैरयिक, देव, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूछिम पचेन्द्रिय और असख्येय वर्षायु वाले तिर्यंच मनुष्य को छोडकर शेष तिर्यञ्चो और मनुष्यो मे उत्पन्न होते है। सप्तम पृथ्वी नैरयिक गर्भज तिर्यक् पचेन्द्रियो मे ही उत्पन्न होते हैं, शेष मे नही।

नरको में पृथ्वी आदि का स्पर्शादि प्ररूपण

९२ इमीसे ण भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसय पुढविफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणाम। एवं जाव अहेसत्तमाए।

इमीसे णं भते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं आउफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ?

गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणामं। एवं जाव अहेसत्तमाए। एवं जाव वणप्फइफासं अहेसत्तमाए पुढवीए।

इमा ण भते ! रयणप्पभापुढवो दोच्च पुढविं पणिहाय सव्वमहतिया वाहल्लेणं सव्वक्खुड्डिया सव्वतेसु ?

हता ! गोयमा ! इमा णं रयणप्पभापुढवी दोच्च पुढविं पणिहाय जाव सव्वक्खुड्डिया सव्वतेसु ।

दोच्चा णं भते ! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया वाहल्लेणं पुच्छा ?

हंता गोयमा ! दोच्चा णं पुढवी जाव सव्वक्खुड्डिया सव्वतेसु । एवं एएणं अभिलावेणं जाव छट्ठिया पुढवी अहेसत्तम पुढविं पणिहाय सव्वक्खुड्डिया सव्वंतेसु ।

[९२] हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के भूमिस्पर्श का अनुभव करते हैं ?

गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमणाम भूमिस्पर्श का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए ।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के जलस्पर्श का अनुभव करते हैं ?

गौतम ! अनिष्ट यावत् अमणाम जलस्पर्श का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए ।

इसी प्रकार तेजस्, वायु और वनस्पति के स्पर्श के विपय मे रत्नप्रभा से लेकर सप्तम पृथ्वी तक के नैरयिको के विषय मे जानना चाहिए ।

हे भगवन् ! क्या यह रत्नप्रभापृथ्वी दूसरी पृथ्वी की अपेक्षा वाहल्य (मोटाई) मे बड़ी है और सर्वान्तो मे लम्वाई-चौडाई मे सवसे छोटी है ?

हाँ, गौतम ! यह रत्नप्रभापृथ्वी दूसरी पृथ्वी की अपेक्षा वाहल्य मे वडी है और लम्वाई-चौडाई मे छोटी है ।

भगवन् ! क्या शर्कराप्रभा नामक दूसरी पृथ्वी तीसरी पृथ्वी से वाहल्य मे वड़ी और सर्वान्तो मे छोटी है ?

हाँ, गौतम ! दूसरी पृथ्वी तीसरी पृथ्वी से वाहल्य मे वडी और लम्वाई-चौडाई मे छोटी है ।

इसी प्रकार तब तक कहना चाहिए यावत् छठी पृथ्वी सातवी पृथ्वी की अपेक्षा वाहल्य मे वडी और लम्वाई-चौडाई मे छोटी है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे नरक-पृथ्वियो के भूमिस्पर्श, जलस्पर्श, तेजस्-स्पर्श, वायुस्पर्श और वनस्पतिस्पर्श के विषय को लेकर नैरयिको के अनुभव की चर्चा है। नैरयिक जीवो को तनिक भी सुख के निमित्त नही हैं अतएव उनको वहाँ की भूमि का स्पर्श आदि सव अनिष्ट, अकात, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम लगते हैं। यद्यपि नरकपृथ्वियो मे साक्षात् वादरअग्निकाय नही है, तथापि उष्णरूपता मे परिणत नरकभित्तियो का स्पर्श तथा परोदीरित वैक्रियरूप उष्णता वहाँ समझनी चाहिए ।

साथ ही इस सूत्र मे यह भी बताया गया है कि यह रत्नप्रभापृथ्वी बाहल्य की अपेक्षा सबसे वडी है क्योकि इसकी मोटाई १ लाख ८० हजार योजन है और आगे-आगे की पृथ्वियो की मोटाई कम है। दूसरी की १ लाख बत्तीस हजार, तीसरी की एक लाख अट्ठावीस हजार, चौथी की एक लाख वीस हजार, पाचवी की एक लाख अठारह हजार, छठी की एक लाख सोलह हजार और सातवी की मोटाई एक लाख आठ हजार है। लम्बाई-चौडाई मे रत्नप्रभापृथ्वी सबसे छोटी है। इसकी लम्बाई-चौडाई एक राजू है। दूसरी पृथ्वी की लम्बाई-चौडाई दो राजू की है। तीसरी की तीन राजू, चौथी की ४ राजू, पाचवी की ५ राजू, छठी की छह राजू और सातवी की सात राजू लम्बाई-चौडाई है। वाहल्य मे आगे-आगे की पृथ्वी छोटी है और लम्बाई-चौडाई मे आगे-आगे की पृथ्वी वडी है।

९३ इमीसे ण भते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए नरयावास-सयसहस्सेसु इक्कमिक्कसि निरयावासंसि सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता पुढवीकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वा ?

हता गोयमा ! असइ अदुवा अणतखुत्तो। एव जाव अहेसत्तमाए पुढवीए णवर जत्थ जत्तिया णरका।

इमीसे ण भते ! रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामतेसु जे पुढविकाइया जाव वणप्फइ-काइया, ते ण भते ! जीवा महाकम्मतरा चेव महाकिरियतरा चेव महाआसवतरा चेव महावेयणतरा चेव ?

हंता गोयमा ! इमीसे णं भते ! रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामतेसु त चेव जाव महा-वेयणतरका चेव। एवं जाव अधेसत्तमाए।

[९३] हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासो मे से प्रत्येक मे सब प्राणी सव भूत, सव जीव और सव सत्त्व पृथ्वीकायिक रूप मे अप्कायिक रूप मे वायुकायिक रूप मे वनस्पतिकायिक रूप मे और नैरयिक रूप मे पूर्व मे उत्पन्न हुए हैं क्या ?

हां गौतम ! अनेक वार अथवा अनत वार उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए। विशेषता यह है—जिस पृथ्वी मे जितने नरकावास हैं उनका उल्लेख वहाँ करना चाहिए।

भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नरकावासो के पर्यन्तवर्ती प्रदेशो मे जो पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव है, वे जीव महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले और महाआस्रव वाले और महावेदना वाले हैं क्या ?

हां, गौतम ! वे रत्नप्रभापृथ्वी के पर्यन्तवर्ती प्रदेशो के पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआस्रव वाले और महावेदना वाले हैं।

इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न और उनके उत्तर है। पहला प्रश्न है कि भगवन्! उक्त प्रकार के नरकावासो मे सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्त्व पहले उत्पन्न हुए हैं क्या? भगवान् ने कहा—हाँ गौतम! सब ससारी जीव इन नरकावासो मे से प्रत्येक मे अनेक वार अथवा अनन्त वार पूर्व मे उत्पन्न हो चुके है। ससार अनादिकाल से है और अनादिकाल से सब ससारी जीव जन्म-मरण करते चले आ रहे हैं। अतएव वे वहुत वार अथवा अनन्त वार इन नरकावासो मे उत्पन्न हुए हैं। कहा है—

'न सा जाई न सा जोणी जत्थ जीवो न जायइ' ऐसी कोई जाति और ऐसी कोई योनि नही है जहाँ इस जीव ने अनन्तवार जन्म-मरण न किया हो।

मूल पाठ मे प्राण, भूत, जीव और सत्त्व शब्द आये है, इनका स्पष्टीकरण आचार्यों ने इस प्रकार किया है[1]—

'द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो का ग्रहण 'प्राण' शब्द से, वनस्पति का ग्रहण 'भूत' शब्द से, पचेन्द्रियो का ग्रहण 'जीव' शब्द से, शेष रहे पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वायुकाय के जीव 'सत्त्व' शब्द से गृहीत होते हैं।'[1]

प्रस्तुत सूत्र मे 'पुढवीकाइयात्ताए जाव' वणस्सइकाइयत्ताए' पाठ है। इससे सामान्यतया पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवो का ग्रहण होता है। यहाँ रत्नप्रभादि मे तत् तत् रूप मे उत्पन्न होने वाले जीवो के विषय मे पृच्छा है। वादर तेजस्कायिक के रूप मे जीव इन नरकपृथ्वियो मे उत्पन्न नही होते अतएव उनको छोडकर शेष के विषय में यह समझना चाहिए। वृत्तिकार ने भी ऐसा ही उल्लेख किया है।[2] अतएव मूलार्थ मे ऐसा ही अर्थ किया है।

दूसरा प्रश्न यह कि क्या वे रत्नप्रभादि के पर्यन्तवर्ती पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआश्रव वाले और महावेदना वाले है? भगवान् ने कहा— हाँ गौतम! वे महाकर्म वाले यावत् महावेदना वाले हैं।

प्रस्तुत प्रश्न का उद्‌भव इस शका से होता है कि वे जीव अभी एकेन्द्रिय अवस्था मे है। अभी वे इस स्थिति मे नही हैं और न ऐसे साधन उनके पास हैं जिनसे वे महा पापकर्म और महारम्भ आदि कर सके तो वे महाकर्म, महाक्रिया, महाआश्रव और महावेदना वाले कैसे हैं? इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि उन जीवो ने पूर्वजन्म मे जो प्राणातिपात आदि महाक्रिया की है उसके अध्यवसायो से वे निवृत्त नही हुए हैं। अतएव वे वर्तमान मे भी महाक्रिया वाले हैं। महाक्रिया का हेतु महाआश्रव है। वह महाआश्रव भी पूर्वजन्म मे उनके था इससे वे निवृत्त नही हुए अतएव

---

१ प्राणा द्वित्रिचतु प्रोक्ता भूताश्च तरव स्मृता।
जीवा पचेन्द्रिया ज्ञेया शेषा सत्त्वा उदीरिता॥

२ 'पृथ्वीकायिकतया अप्कायिकतया वायुकायिकतया वनस्पतिकायिकतया नैरयिकतया उत्पन्ना उत्पन्नपूर्वा? भगवानाह-हतेत्यादि। —मलयवृत्ति

महाआश्रव भी उनके मोजूद है। महाआश्रव और महाक्रिया के कारण असातावेदनीयकर्म उनके प्रचुरमात्रा मे है, अतएव वे महाकर्म वाले हैं और इसी कारण वे महावेदना वाले भी हैं।

उद्देशकार्थसंग्रहणिगाथाएँ

९४. पुढवि ओगाहित्ता नरगा संठाणमेव बाहल्लं।
विक्खंभपरिक्खेवे वण्णो गंधो य फासो य ॥१॥

तेसिं महालयाए उवमा देवेण होइ कायव्वा।
जीवा य पोग्गला वक्कमंति तह सासया निरया ॥२॥

उववायपरीमाणं अवहारुच्चत्तमेव संघयणं।
संठाण वण्ण गंधा फासा ऊसासमाहारे ॥३॥

लेसा दिट्ठी नाणे जोगुवओगे तहा समुग्घाया।
तत्तो खुहा पिवासा विउव्वणा वेयणा य भए ॥४॥

उववाओ पुरिसाणं ओवम्मं वेयणाए दुविहाए।
उव्वट्टण पुढवी उ उववाओ सव्वजीवाणं ॥५॥
एयाओ संगहणिगाहाओ।

॥ बीओ उद्देसओ समत्तो ॥

[९४] इस उद्देशक मे निम्न विषयो का प्रतिपादन हुआ है—पृथ्वियो की सख्या, कितने क्षेत्र में नरकवास हैं, नारको के सस्थान, तदनन्तर मोटाई, विष्कम्भ, परिक्षेप (लम्बाई-चौड़ाई और परिधि) वर्ण, गन्ध, स्पर्श, नरको की विस्तीर्णता वताने हेतु देव की उपमा, जीव और पुद्गलो की उनमे व्युत्क्रान्ति, शाश्वत् अशाश्वत प्ररूपणा, उपपात (कहाँ से आकर जन्म लेते हैं), एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं, अपहार, उच्चत्व, नारको के सहनन, सस्थान, वर्ण, गन्ध, स्पर्श, उच्छ्वास, आहार, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, समुद्घात, भूख-प्यास, विकुर्वणा, वेदना, भय, पाच महापुरुषो का सप्तम पृथ्वी मे उपपात, द्विविध वेदना—उष्णवेदना शीतवेदना, स्थिति, उद्वर्तना, पृथ्वी का स्पर्श और सर्वजीवो का उपपात।

॥ द्वितीय उद्देशक सम्पूर्ण ॥

□□

तृतीय प्रतिपत्ति

तृतीय उद्देशक

नैरयिको के विषय मे और अधिक प्रतिपादन करने के लिए तृतीय उद्देशक का आरम्भ किया गया है। उसका आदिसूत्र इस प्रकार है—

नारकों का पुद्गलपरिणाम

९५ इमीसे ण भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केरिसयं पोग्गलपरिणामं पच्चणुभव-माणा विहरंति ?

गोयमा ! अणिट्ठं जाव अमणाम। एवं जाव अहेसत्तमाए एव नेयव्वं।

एत्थ किर अतिवयति नरवसभा केसवा जलचरा य।
मंडलिया रायाणो जे य महारंभ कोडुंबी ॥१॥
भिन्नमुहुत्तो नरएसु होई तिरियमणुएसु चत्तारि।
देवेसु अद्धमासो उक्कोस विउव्वणा भणिया ॥२॥
जे पोग्गला अणिट्ठा नियमा सो तेसि होइ आहारो।
संठाणं तु जहण्णं नियमा हुंड तु नायव्वं ॥३॥
असुभा विउव्वणा खलु नेरइयाणं उ होइ सव्वेसिं।
वेउव्वियं सरीरं असंघयण हुंडसंठाणं ॥४॥
अस्साओ उववण्णो अस्साओ चेव चयइ निरयभवं।
सव्वपुढवीसु जीवो सव्वेसु ठिइ विसेसेसुं ॥५॥
उववाएण व सायं नेरइओ देव-कम्मुणा वावि।
अज्झवसाण निमित्तं अहवा कम्माणुभावेण ॥६॥
नेरइयाणुप्पाओ उक्कोसं पंचजोयणसयाइं।
दुक्खेणाभिद्दुयाण वेयणसय संपगाढाणं ॥७॥
अच्छिनिमीलियमेत्त नत्थि सुहं दुक्खमेव पडिबद्धं।
नरए नेरइयाण अहोनिसं पच्चमाणाणं ॥८॥
तेयाकम्मसरीरा सुहुमसरीरा य जे अपज्जत्ता।
जीवेण मुक्कमेत्ता वच्चति सहस्ससो भेयं ॥९॥

अतिसीयं अतिउण्हं अतिखुहा अतिभयं वा ।
निरये नेरइयाणं दुक्खसयाइं अविस्सामं ॥१०॥
एत्थ य भिन्नमुहुत्तो पोग्गल असुहा य होई अस्साओ ।
उववाओ उप्पाओ अच्छिसरीरा उ बोद्धव्वा ॥११॥

नारयउद्देसओ तइओ । से त नेरइया ॥

[९५] हे भगवन् ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के पुद्गलो के परिणमन का अनुभव करते हैं ?

गौतम ! अनिष्ट यावत् अमनाम पुद्गलो के परिणमन का अनुभव करते हैं ।

इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी के नैरयिको तक कहना चाहिए ।

इस सप्तमपृथ्वी मे प्राय करके नरवृषभ (लौकिक दृष्टि से बडे समझे जाने वाले और अति भोगासक्त) वासुदेव, जलचर, माडलिक राजा और महा आरम्भ वाले गृहस्थ उत्पन्न होते हैं । १ ॥

नारको मे अन्तर्मुहूर्त, तिर्यक् और मनुष्य मे चार अन्तर्मुहूर्त और देवो मे पन्द्रह दिन का उत्तर विकुर्वणा का उत्कृष्ट अवस्थानकाल है ॥ २ ॥

जो पुद्गल निश्चित रूप से अनिष्ट होते हैं, उन्ही का नैरयिक आहार (ग्रहण) करते हैं । उनके शरीर की आकृति अति निकृष्ट और हुडसस्थान वाली होती है । ३ ॥

सव नैरयिको की उत्तरविक्रिया भी अशुभ ही होती है । उनका वैक्रियशरीर असहनन वाला और हुडसस्थान वाला होता है । ४ ॥

नारक जीवो का—चाहे वे किसी भी नरकपृथ्वी के हो और चाहे जैसी स्थिति वाले हो—जन्म असातावाला होता है, उनका सारा नारकीय जीवन दु ख मे ही बीतता है । (सुख का लेश भी वहाँ नही है ।) ॥ ५ ॥

(उक्त कथन का अपवाद वताते हैं—) नैरयिक जीवो मे से कोई जीव उपपात (जन्म) के समय ही साता का वेदन करता है, पूर्व सागतिक देव के निमित्त से कोई नैरयिक थोडे समय के लिए साता का वेदन करता है, कोई नैरयिक सम्यक्त्व-उत्पत्तिकाल मे शुभ अध्यवसायो के कारण साता का वेदन करता है अथवा कर्मानुभाव से—तीर्थंकरो के जन्म, दीक्षा, ज्ञान तथा निर्वाण कल्याणक के निमित्त से साता का वेदन करते हैं ॥ ६ ॥

सैकडो वेदनाओ से अवगाढ होने के कारण दु खो से सर्वात्मना व्याप्त नैरयिक (दु खो से छटपटाते हुए) उत्कृष्ट पाच सौ योजन तक ऊपर उछलते है ॥ ७ ॥

रात-दिन दु खो से पचते हुए नैरयिको को नरक मे पलक मूदने मात्र काल के लिए भी सुख नही है किन्तु दु ख ही दु ख सदा उनके साथ लगा हुआ है ॥ ८ ॥

तैजस-कार्मण शरीर, सूक्ष्मशरीर और अपर्याप्त जीवो के शरीर जीव के द्वारा छोडे जाते ही तत्काल हजारो खण्डो में खण्डित होकर बिखर जाते हैं । ९ ॥

नरक मे नैरयिको को अत्यन्त शीत, अत्यन्त उष्णता, अत्यन्त भूख, अत्यन्त प्यास और अत्यन्त भय और सैकडो दु ख निरन्तर (विना रुके हुए लगातार) वने रहते हैं ।। १० ।।

इन गाथाओ मे विकुर्वणा का अवस्थानकाल, अनिष्ट पुद्गलो का परिणमन, अशुभ विकुर्वणा, नित्य असाता, उपपात काल मे क्षणिक साता, ऊपर छटपटाते हुए उछलना, अक्षिनिमेष के लिए भी साता न होना, वैक्रियशरीर का विखरना तथा नारको को होने वाली सैकड़ो प्रकार की वेदनाओ का उल्लेख किया गया है ।। ११ ।।

तृतीय नारक उद्देशक पूरा हुआ । नैरयिको का वर्णन समाप्त हुआ ।

विवेचन—इस सूत्र एव गाथाओ मे नैरयिक जीवो के आहारादि पुद्गलो के परिणाम के विषय मे उल्लेख किया गया है । नारक जीव जिन पुद्गलो को ग्रहण करते हैं उनका परिणमन अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनाम रूप मे ही होता है । रत्नप्रभा से लेकर तमस्तम - प्रभा तक के नैरयिको द्वारा गृहीत पुद्गलो का परिणमन अशुभ रूप मे ही होता है ।

इसी प्रकार वेदना, लेश्या, नाम, गोत्र, अरति, भय, शोक, भूख, प्यास, व्याधि, उच्छ्वास, अनुताप, क्रोध, मान, माया, लोभ, आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मैथुनसज्ञा, परिग्रहसज्ञा सम्वन्धी सूत्र भी कहने चाहिए । अर्थात् इन वीस का परिणमन भी नारकियो के लिए अशुभ होता है अर्थात् अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमनाम रूप होता है ।[1]

यहाँ परिग्रहसज्ञा परिणाम की वक्तव्यता मे चरमसूत्र सप्तम पृथ्वी विषयक है और इसके आगे प्रथम गाथा कही गई है अतएव गाथा मे आये हुए 'एत्थ' पद से सप्तम पृथ्वी का ग्रहण करना चाहिए । इस सप्तम पृथ्वी मे प्राय कैसे जीव जाते हैं, उसका उल्लेख प्रथम गाथा मे किया गया है ।

जो नरवृषभ वासुदेव—जो वाह्य भौतिक दृष्टि से वहुत महिमा वाले, वल वाले, समृद्धि वाले, कामभोगादि मे अत्यन्त आसक्त होते हैं, वे वहुत युद्ध आदि सहाररूप प्रवृत्तियो मे तथा परिग्रह एव भोगादि मे आसक्त होने के कारण प्राय यहाँ सप्तम पृथ्वी मे उत्पन्न होते हैं । इसी तरह तन्दुलमत्स्य जैसे भावहिंसा और क्रूर अध्यवसाय वाले, वसु आदि माण्डलिक राजा तथा सुभूम जैसे चक्रवर्ती तथा महारम्भ करने वाले कालसोकरिक सरीखे गृहस्थ प्राय इस सप्तम पृथ्वी मे उत्पन्न होते हैं । गाथा मे आया हुआ 'अतिवयति' शब्द 'प्राय ' का सूचक है । (१)

दूसरी गाथा मे नैरयिको की तथा प्रसगवश अन्य की भी विकुर्वणा का उत्कृष्ट काल वताया है—नारको की उत्कृष्ट विकुर्वणा अन्तर्मुहूर्त काल तक रहती है । तिर्यञ्च और मनुष्यो की विकुर्वणा उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त रहती है तथा देवो की विकुर्वणा उत्कृष्ट पन्द्रह दिन (अर्धमास) तक रहती है । (२)

---

१. सग्रहणी गाथाएँ—पोग्गलपरिणामे वेयणा य लेसा य नाम गोए य ।
अरई भए य सोगे, खुहा पिवासा य वाही य ।। १ ।।
उस्सासे अणुतावे कोहे माणे य मायलोभे य ।
चत्तारि य सण्णाओ नेरइयाण तु परिणामा ।। २ ।।

जो पुद्गल अनिष्ट होते हैं वे ही नैरयिकों के द्वारा आहारादि रूप मे ग्रहण किये जाते हैं। उनके शरीर का संस्थान हुडक होता है और वह भी निकृष्टतम होता है। यह भवधारणीय को लेकर है क्योकि उत्तरवैक्रिय सस्थान के विषय मे आगे की गाथा मे कहा गया है। (३)

सब नैरयिको की विकुर्वणा अशुभ ही होती है। यद्यपि वे अच्छी विक्रिया बनाने का विचार करते हैं तथापि प्रतिकूल कर्मोदय से उनकी वह विकुर्वणा निश्चित ही अशुभ होती है। उनका उत्तर-वैक्रिय शरीर और उपलक्षण से भवधारणीय शरीर सहनन रहित होता है, क्योकि उनमे हड्डियो का ही अभाव है तथा उत्तरवैक्रिय शरीर भी हुडसस्थान वाला है, क्योकि उनके भवप्रत्यय से ही हुण्डसंस्थान नामकर्म का उदय होता है ।। ४ ।।

रत्नप्रभादि सब नरकभूमियो मे कोई जीव चाहे वह जघन्यस्थिति का हो या उत्कृष्ट-स्थिति का हो, जन्म के समय भी असाता का ही वेदन करता है। पहले के भव मे मरणकाल में अनुभव किये हुए महादु खो की अनुवृत्ति होने के कारण वह जन्म से ही असाता का वेदन करता है, उत्पत्ति के पश्चात् भी असाता का ही अनुभव करता है और पूरा नारक का भव असाता मे ही पूरा करता है। सुख का लेशमात्र भी नही है ।। ५ ।।

यद्यपि ऊपर की गाथा मे नारकियो को सदा दु ख ही दु ख होना कहा है, परन्तु उसका थोडा-सा अपवाद भी है। वह इस छठी गाथा मे बताया है—

उपपात से—कोई नारक जीव उपपात के समय मे साता का वेदन करता है। जो पूर्व के भव मे दाह या छेद आदि के बिना सहज रूप मे मृत्यु को प्राप्त हुआ हो वह अधिक सक्लिष्ट परिणाम वाला नही होता है। उस समय उसके न तो पूर्वभव मे बाधा हुआ आधिरूप (मानसिक) दु ख है और न क्षेत्रस्वभाव से होने वाली पीडा है और न परमाधार्मिक कृत या परस्परोदीरित वेदना ही है। इस स्थिति मे दु·ख का अभाव होने से कोई जीव साता का वेदन करता है।

देवप्रभाव से—कोई जीव देव के प्रभाव से थोडे समय के लिए साता का वेदन करता है। जैसे कृष्ण वासुदेव की वेदना के उपशम के लिए बलदेव नरक मे गये थे। इसी प्रकार पूर्वसागतिक देव के प्रभाव से थोडे समय के लिए नैरयिको को साता का अनुभव होता है। उसके बाद तो नियम से क्षेत्र-स्वभाव से होने वाली या अन्य-अन्य वेदनाएँ उन्हे होती ही हैं।

अध्यवसाय से—कोई नैरयिक सम्यक्त्व उत्पत्ति के काल मे अथवा उसके बाद भी कदाचित् तथाविध विशिष्ट शुभ अध्यवसाय से बाह्य क्षेत्रज आदि वेदनाओ के होते हुए भी साता का अनुभव करता है। आगम मे कहा है कि सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय जीव को वैसा ही प्रमोद होता है जैसे किसी जन्मान्ध को नेत्रलाभ होने से होता है। इसके बाद भी तीर्थंकरो के गुणानुमोदन आदि विशिष्ट भावना भाते हुए बाह्य क्षेत्रज वेदना के सहभाव मे भी वे सातोदय का अनुभव करते हैं।

कर्मानुभव से—तीर्थंकरो के जन्म, दीक्षा, ज्ञान तथा निर्वाण कल्याणक आदि बाह्य निमित्त को लेकर तथा तथाविध साता वेदनीयकर्म के विपाकोदय के निमित्त से नैरयिक जीव क्षणभर के लिए साता का अनुभव करते हैं ।।६।।

नैरयिक जीव कुभियो मे पकाये जाने पर तथा भाले आदि से भिद्यमान होने पर भय से त्रस्त होकर छटपटाते हुए पाच सौ योजन तक ऊपर उछलते हैं। जघन्य से एक कोस और उत्कर्ष से पाच सौ योजन उछलते हैं। ऐसा भी कही पाठ है [1] ॥७॥

नैरयिक जीवो को, जो रात-दिन नरको मे पचते रहते हैं, उन्हें आँख मूदने जितने काल के लिए (निमेषमात्र के लिए) भी सुख नही है। वहाँ सदा दु.ख ही दु ख है, निरन्तर दु.ख है ॥८॥

नैरयिको के वैक्रिय शरीर के पुद्गल उन जीवो द्वारा शरीर छोड़ते ही हजारों खण्डों में छिन्न-भिन्न होकर विखर जाते हैं। इस प्रकार विखरने वाले अन्य शरीरो का कथन भी प्रसंग से कर दिया है। तैजस कार्मण शरीर, सूक्ष्म शरीर अर्थात् सूक्ष्म नामकर्म के उदय वाले पर्याप्त और अपर्याप्त जीवो के शरीर, औदारिक शरीर, वैक्रिय और आहारक शरीर भी चर्मचक्षुओ द्वारा ग्राह्य न होने से सूक्ष्म हैं तथा अपर्याप्त जीवो के शरीर जीवो द्वारा छोड़े जाते ही विखर जाते हैं। उनके परमाणुओ का सघात छिन्न-भिन्न हो जाता है ॥९॥

उन नारक जीवो को नरको मे अति शीत, अति उष्णता, अति तृषा, अति भूख, अति भय आदि सैकडो प्रकार के दु.ख निरन्तर होते रहते हैं ॥१०॥

उक्त दस गाथाओ के पश्चात् ग्यारहवी गाथा मे पूर्वोक्त सव गाथाओ मे कही गई वातो का सकलन किया गया है जो मूलार्थ से ही स्पष्ट है।

इस प्रकार नारक वर्णन का तृतीय उद्देशक पूर्ण।

इसके साथ ही नैरयिकों का वर्णन भी पूरा हुआ ॥

□□

---

१. 'नेरइयाणुप्पाओ गाउय उक्कोस पचजोयणसयाइ' इति क्वचित् पाठ ।

तृतीय प्रतिपत्ति

तिर्यग् अधिकार

तृतीय प्रतिपत्ति के नरकोद्देशक मे तीन उद्देशक कहे गये हैं। उक्त तीन उद्देशको मे नरक और नारक के सम्वन्ध मे विविध प्रकार की जानकारिया दी गई है। चार प्रकार के ससारसमापन्नक जीवो की प्रतिपत्ति मे प्रथम भेदरूप नारक का वर्णन करने के पश्चात् अब क्रमप्राप्त तिर्यञ्चो का अधिकार कहते हैं—

तिर्यक्योनिकों के भेद

९६ [१] से कि त तिरिक्खजोणिया ?

तिरिक्खजोणिया पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—

एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया, बेइंदिय-तिरिक्खजोणिया, तेइंदिय-तिरिक्खजोणिया, चउरिंदिय-तिरिक्खजोणिया, पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिया।

से किं तं एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया ?

एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—

पुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया जाव वणस्सइकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया।

से किं तं पुढविकाइय-एगिंदिय-तिरिक्खजोणिया ?

पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तजहा—सुहुमपुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया, बादर-पुढविकाइयएगिंदियतिरिक्खजोणिया य।

से किं तं सुहुम पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया ?

सुहुम पुढविकाइय एगिंदिय० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

पज्जत्त सुहुम० अपज्जत्त सुहुम पुढवि०। से त सुहुमा।

से किं तं बादर पुढविकाइय० ?

बादर पुढविकाइय० दुविहा पण्णत्ता, तजहा—पज्जत्त बादर पु०, अपज्जत्त बादर पुढविकाइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया। से त पुढविकाइय एगिंदिया।

से किं तं आउक्काइय एगिंदिय तिरिक्खजोणिया ?

आउक्काइय एगिंदिय० दुविहा पण्णत्ता, एवं जहेव पुढविकाइयाणं तहेव चउक्कओ भेदो जाव वणस्सइकाइया। से तं वणस्सइकाइयएगिंदिया।

[९६] (१) तिर्यक्योनिक जीवो का क्या स्वरूप है ?

तिर्यक्योनिक जीव पांच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

१. एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक, २. द्वीन्द्रिय तिर्यक्योनिक, ३. त्रीन्द्रिय तिर्यक्योनिक, ४ चतुरिन्द्रिय तिर्यक्योनिक और ५. पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक ।

एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक का क्या स्वरूप है ?

एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक पाच प्रकार के हैं, यथा—

पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय ति यावत् वनस्पतिकायिक तिर्यक्योनिक ।

पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय ति. का क्या स्वरूप है ?

वे दो प्रकार के हैं, यथा—सूक्ष्म पृथ्वीकायिक ए. ति और वादर पृथ्वीकायिक ए. ति. ।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक क्या हैं ?

वे दो प्रकार के हैं, यथा—पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक ए. ति और अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक ए तिर्यँचयोनिक । यह सूक्ष्मपृथ्वीकाय का वर्णन हुआ ।

वादर पृथ्वीकायिक क्या हैं ?

वे दो प्रकार के हैं—पर्याप्त वादर पृथ्वीकायिक और अपर्याप्त वादर पृथ्वीकायिक । यह वादर पृथ्वीकायिक ए ति का वर्णन हुआ । यह पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिको का वर्णन हुआ ।

अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यक्योनिक क्या हैं ?

वे दो प्रकार के हैं, इस प्रकार पृथ्वीकायिक की तरह चार भेद कहने चाहिए । वनस्पतिकायिक एके तिर्यक्योनिक पर्यन्त ऐसे ही भेद कहने चाहिए । यह वनस्पतिकायिक एके. तिर्यक्योनिको का कथन हुआ ।

९६. [२] से किं तं वेइंदिय तिरिक्खजोणिया ?

वेइदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

पज्जत्त वेइंदिय तिरिक्खजोणिया, अपज्जत्त वेइंदिय तिरिक्खजोणिया ।

से तं वेइंदिय तिरिक्खजोणिया एवं जाव चउरिंदिया ।

पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—

जलयर पंचिंदिय ति. थलयर पंचिंदिय ति. खहयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया ।

से किं तं जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया ?

जलयर पंचि ति० जोणिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

संमुच्छिमजलयरपंचिंदिय तिरिक्खजोणिया य गब्भवक्कंतियजलयरपंचिंदिय तिरिक्खजोणिया य ।

से किं तं सम्मुच्छिम जलयर पंचि० ति० जोणिया ?

संमुच्छिम जलयर पंचि० ति० जोणिया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

पज्जत्तगसमुच्छिम०, अपज्जत्तसंमुच्छिम० जलयरा, से तं संमुच्छिम जलयर पंचि ति. जोणिया।

से किं तं गब्भवक्कंतिय जलयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया ?

गब्भवक्कंतिय जलयर० दुविधा पण्णत्ता, तंजहा—

पज्जत्तग गब्भवक्कंतिय०, अपज्जत्तग गब्भवक्कतिय०। से त गब्भवक्कतिय जलयरा। से तं जलयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया।

से किं तं थलयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया ?

थलयर पंचिदिय ति. जो दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

चउप्पयथलयरपंचिदिय०, परिसप्प थलयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया।

से किं तं चउप्पयथलयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया ?

चउप्पयथलयर पं० ति० जो० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

संमुच्छिम चउप्पयथलयर पंचिदिय० गब्भवक्कंतिय चउप्पयथलयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया य। जहेव जलयराणं तहेव चउक्कओ भेदो, से तं चउप्पदथलयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया।

से किं तं परिसप्प थलयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया ?

परिसप्पथलयर० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—उरगपरिसप्पथलयर पंचिदिय ति०, भुयगपरिसप्प थलयर पंचिदिय ति०।

से किं तं उरगपरिसप्प थल० पं० तिरिक्खजोणिया ?

उरगपरिसप्प० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—जहेव जलयराणं तहेव चउक्कओ भेदो। एवं भुयगपरिसप्पाण वि भाणियव्व। से त भुयग परिसप्प०, से तं थलयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया।

से किं तं खहयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया ?

खहयर० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिम खहयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया, गब्भवक्कंतिय खहयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया य।

से किं तं संमुच्छिमखहयर० ?

संमुच्छिमखहयर० दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—

पज्जत्तग संमुच्छिम खह०, अपज्जत्तग संमु० खह० य। एवं गब्भवक्कंतिया वि।

खहयर पंचिदिय तिरिक्खजोणिया णं भंते ! कइविहे जोणिसगहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तजहा—अंडया पोयया संमुच्छिमा।

अंडया तिविहा पण्णत्ता, तजहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

पोतया तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी, पुरिसा, णपुंसगा।

तत्थ ण जे ते संमुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा।

९६ [२] द्वीन्द्रिय तिर्यक्योनिक जीवो का स्वरूप क्या है ?

वे दो प्रकार के हैं, यथा—पर्याप्त द्वीन्द्रिय और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय। यह द्वीन्द्रिय तिर्यक्-योनिकों का कथन हुआ।

इसी प्रकार चतुरिन्द्रियों तक कहना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक क्या है?

वे तीन प्रकार के हैं, यथा—जलचर पंचेन्द्रिय ति., स्थलचर पंचेन्द्रिय ति. और खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक।

जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक क्या है?

वे दो प्रकार के हैं, यथा—सम्मूर्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच और गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च।

सम्मूर्छिम जलचर पंचे. ति. क्या हैं?

वे दो प्रकार के हैं, यथा—पर्याप्त संमूर्छिम और अपर्याप्त सम्मूर्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यक्-योनिक। यह संमूर्छिम जलचरों का कथन हुआ।

गर्भव्युत्क्रांतिक जलचर पंचेन्द्रिय ति. क्या है?

वे दो प्रकार के है, यथा—पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक और अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च। यह गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचरों का वर्णन हुआ।

स्थलचरपंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक क्या है?

वे दो प्रकार के हैं, यथा—चतुष्पदस्थलचर पंचेन्द्रिय और परिसर्पस्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक।

चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय क्या है?

वे दो प्रकार के हैं, यथा—सम्मूर्छिम चतुष्पदस्थलचर पंचेन्द्रिय और गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पदस्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च। जैसा जलचरों के विषय में कहा वैसे चार भेद इनके भी जानने चाहिए। यह चतुष्पदस्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का कथन हुआ।

परिसर्पस्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच क्या हैं?

वे दो प्रकार के हैं, यथा—उरगपरिसर्पस्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच और भुजगपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच।

उरगपरिसर्पस्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक क्या हैं?

वे दो प्रकार के हैं, यथा—जैसे जलचरों के चार भेद कहे वैसे यहाँ भी कहने चाहिए। इसी तरह भुजगपरिसर्पों के भी चार भेद कहने चाहिए। यह भुजगपरिसर्पों का कथन हुआ। इसके साथ ही स्थलचरपंचेन्द्रिय तिर्यंचों का कथन भी पूरा हुआ।

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक क्या है?

वे दो प्रकार के हैं, यथा—सम्मूर्छिम खेचर प ति और गर्भव्युत्क्रातिक खेचर प. तिर्यक्योनिक।

सम्मूर्छिम खेचर प ति. क्या हैं ?

वे दो प्रकार के है, यथा—पर्याप्तसम्मूर्छिम खेचर प ति और अपर्याप्तसम्मूर्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक। इसी प्रकार गर्भव्युत्क्रान्तिको के सम्बन्ध मे भी कहना चाहिए।

हे भगवन् ! खेचर पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिको का योनिसग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! तीन प्रकार का योनि-सग्रह कहा गया है, यथा—अण्डज, पोतज और सम्मूर्छिम[1]। अण्डज तीन प्रकार के कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुसक। पोतज तीन प्रकार के हैं स्त्री, पुरुष और नपुंसक। सम्मूर्छिम सब नपु सक होते हैं।

विवेचन—तिर्यक्योनिको के भेद पाठसिद्ध ही हैं, अतएव स्पष्टता की आवश्यकता नही है। केवल योनिसग्रह की स्पष्टता इस प्रकार है—

योनिमग्रह का अर्थ है—योनि (जन्म) को लेकर किया गया भेद। पक्षियो के जन्म तीन प्रकार के हैं—अण्ड से होने वाले, यथा मोर आदि, पोत से होने वाले वागुली आदि और सम्मूर्छिम जन्म वाले पक्षी हैं—खञ्जरीट आदि।

वैसे सामान्यतया चार प्रकार का योनिसग्रह है—१. जरायुज २ अण्डज ३. पोतज और ४ सम्मूर्छिम। पक्षियो मे जरायुज की प्रसिद्धि नही है। फिर भी अण्डज को छोडकर शेष सब जरायुज अजरायुज गर्भजो का पोतज मे समावेश करने पर तीन प्रकार का योनिसग्रह सगत होता है।

अण्डज तीनो प्रकार के हैं—स्त्री, पुरुष और नपु सक। पोतज भी तीनो लिंग वाले हैं। सम्मूर्छिम जन्म वाले नपुंसक ही होते हैं, क्योकि उनके नपुंसकवेद का उदय अवश्य ही होता है।

द्वारप्ररूपणा

९७. [१] एएसि णं भंते ! जीवाणं कतिलेसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ, तंजहा—कण्हलेसा जाव सुक्कलेसा।

ते णं भंते ! जीवा किं सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी ?

गोयमा ! सम्मदिट्ठी वि मिच्छदिट्ठी वि सम्मामिच्छदिट्ठी वि।

ते णं भते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?

गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि, तिण्णि णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

ते ण भंते ! जीवा किं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी ?

---

१. अण्डज को छोडकर शेष सब जरायु वाले या विना जरायु वाले गर्भव्युत्क्रान्तिक पचेन्द्रियो का पोतज मे समावेश किया गया है। अतएव तीन प्रकार का योनिसग्रह कहा है, चार प्रकार का नही। वैसे पक्षियो मे जरायुज होते ही नही हैं, अतएव यहाँ तीन प्रकार का योनिसग्रह कहा है।

गोयमा ! तिविहा वि ।

ते णं भंते ! जीवा किं सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता ?

गोयमा ! सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि ।

ते णं भंते ! जीवा कओ उववज्जंति, किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिं उववज्जंति ? पुच्छा ।

गोयमा ! असंखेज्ज वासाउय अकम्मभूमग अंतरदीवग वज्जेहिंतो उववज्जंति ।

तेसि णं भंते ! जीवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागं ।

तेसि णं भंते ! जीवाणं कति समुग्घाया पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंच समुग्घाया पण्णत्ता, तंजहा—वेदणासमुग्घाए जाव तेयासमुग्घाए ।

ते ण भते ! जीवा मारणांतियसमुग्घाएणं किं समोहया मरंति, असमोहया मरंति ?

गोयमा ! समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति ।

ते णं भंते ! जीवा अणतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति ? किं नेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति । पुच्छा ?

गोयमा ! एवं उव्ववट्टणा भाणियव्वा जहा वक्कंतीए तहेव ।

तेसि णं भंते ! जीवाणं कइ जातिकुलकोडिजोणिपमुह सयसहस्सा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बारस जातिकुलकोडिजोणिपमुह सयसहस्सा ।

[९७] (१) हे भगवन् ! इन जीवो (पक्षियो) के कितनी लेश्याएँ है ?

गौतम ! छह लेश्याएँ हो सकती हैं—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या । (द्रव्य और भाव से छहो लेश्याओ का सम्भव है, क्योकि वैसे परिणाम हो सकते है ।)

हे भगवन् ! ये जीव सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि है या सम्यग् मिथ्यादृष्टि है ।

गौतम ! सम्यग्दृष्टि भी है, मिथ्यादृष्टि भी हैं और मिश्रदृष्टि भी हैं ।

भगवन् ! वे जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी है ?

गौतम ! ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी है । जो ज्ञानी हैं वे दो या तीन ज्ञान वाले है और जो अज्ञानी है वे दो या तीन अज्ञान वाले हैं ।

भगवन् ! वे जीव क्या मनयोगी हैं, वचनयोगी है, काययोगी है ?

गौतम ! वे तीनो योग वाले है ।

भगवन् ! वे जीव साकार-उपयोग वाले है या अनाकार-उपयोग वाले हैं ?

गौतम ! साकार-उपयोग वाले भी है और अनाकार-उपयोग वाले भी हैं ।

भगवन् ! वे जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या नैरयिको से आते है या तिर्यक्योनि से आते हैं इत्यादि प्रश्न कहना चाहिए ।

गौतम ! असंख्यात वर्ष की आयु वालो, अकर्मभूमिको और अन्तर्द्वीपिको को छोडकर सब जगह से उत्पन्न होते हैं।

हे भगवन् ! उन जीवो की स्थिति कितने काल की है ?

गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असख्यातवा भाग-प्रमाण स्थिति है।

भगवन् ! उन जीवो के कितने समुद्घात कहे गये है ?

गौतम ! पाच समुद्घात कहे गये हैं, यथा—वेदनासमुद्घात यावत् तैजससमुद्घात।

भगवन् ! वे जीव मारणातिकसमुद्घात से समवहत होकर मरते हैं या असमवहत होकर मरते हैं ?

गौतम ! समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते है।

भगवन् ! वे जीव मरकर अनन्तर कहाँ उत्पन्न होते हैं ? कहाँ जाते हैं ? क्या नैरयिको मे पैदा होते हैं, तिर्यक्योनिको मे पैदा होते हैं ? आदि प्रश्न करना चाहिए।

गौतम ! जैसे प्रज्ञापना के व्युत्क्रातिपद मे कहा गया है, वैसा यहाँ कहना चाहिए। (दूसरी प्रतिपत्ति मे वह कहा गया है, वहाँ देखें।)

हे भगवन् ! उन जीवो की कितने लाख योनिप्रमुख जातिकुलकोटि कही गई हैं ?

गौतम ! बारह लाख योनिप्रमुख जातिकुलकोटि कही गई हैं।

विवेचन—खेचर (पक्षियो) मे पाये जाने वाले लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग आदि द्वारो की स्पष्टता मूल पाठ से ही सिद्ध है। व्युत्क्रातिपद से उद्वर्तना समझनी चाहिए, ऐसी सूचना यहाँ की गई है। प्रज्ञापनासूत्र मे व्युत्क्रातिपद है और उसमे जो उद्वर्तना कही गई है वह यहाँ समझनी है। इसी जीवाभिगम सूत्र की द्वितीय प्रतिपत्ति मे उसको बताया गया है सो जिज्ञासु वहाँ भी देख सकते हैं।

इस सूत्र मे खेचर की योनिप्रमुख जातिकुलकोडी बारह लाख कही है। जातिकुलयोनि का स्थूल उदाहरण पूर्वाचार्यो ने इस प्रकार बताया है—जाति से भावार्थ है तिर्यग्जाति, उसके कुल हैं—कृमि, कीट, वृश्चिक आदि। ये कुल योनिप्रमुख हैं अर्थात् एक ही योनि मे अनेक कुल होते हैं, जैसे छगण योनि मे कृमिकुल, कीटकुल, वृश्चिककुल आदि। अथवा 'जातिकुल' को एक पद माना जा सकता है। जातिकुल और योनि मे परस्पर यह विशेषता है कि एक ही योनि मे अनेक जातिकुल होते हैं—यथा एक ही छगण योनि मे कृमिजातिकुल, कीटजातिकुल और वृश्चिकजातिकुल इत्यादि। इस प्रकार एक ही योनि मे अवान्तर जातिभेद होने से अनेक योनिप्रमुख जातिकुल होते हैं। द्वारो के सम्बन्ध मे सग्रहणी गाथा इस प्रकार है—

जोणीसगह लेस्सा दिट्ठी नाणे य जोग उवओगे।
उववाय ठिई समुग्घाय चयण जाई-कुलविही उ ॥

पहले योनिसग्रह, फिर लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, उपपात, स्थिति, समुद्घात, च्यवन, जातिकुलकोटि का इस सूत्र मे प्रतिपादन किया गया है।

९७ [२] भुयगपरिसप्पथलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते ! कतिविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! तिविहे जोणिसंगहे पण्णत्ते, तंजहा—अंडया, पोयया संमुच्छिमा; एवं जहा खहयराणं तहेव; णाणत्तं जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी। उव्वट्टित्ता दोच्चं पुढविं गच्छंति, णव जातिकुलकोडी जोणीपमुह सयसहस्सा भवंतीति मक्खायं, सेसं तहेव।

उरगपरिसप्पथलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते ! पुच्छा, जहेव भुयगपरिसप्पाणं तहेव, णवरं ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी, उव्वट्टित्ता जाव पंचमिं पुढविं गच्छंति, दसजातिकुलकोडी।

चउप्पयथलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—जराउया (पोयया) य सम्मुच्छिमा य।

से किं त जराउया (पोयया) ? तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—इत्थी, पुरिसा, नपुंसगा। तत्थ णं जे ते संमुच्छिमा ते सव्वे नपुंसया।

तेसिं णं भंते ! जीवाणं कति लेस्साओ पण्णत्ताओ ? से जहा पक्खीणं। णाणत्तं ठिई जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं; उव्वट्टित्ता चउत्थि पुढविं गच्छंति, दस जातिकुलकोडी।

जलयरपंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा, जहा भुयगपरिसप्पाणं, णवरं उव्वट्टित्ता जाव अहेसत्तमं पुढविं, अद्धतेरस जातिकुलकोडी जोणिपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता।

चउरिंदियाणं भंते ! कइ जातिकुलकोडी जोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता ?

गोयमा ! नव जाइकुलकोडी जोणिपमुहसयसहस्सा समक्खाया।

तेइंदियाणं पुच्छा, गोयमा ! अट्ठ जाइकुल जाव समक्खाया।

बेइंदियाणं भंते ! कइ जाइकुल पुच्छा,

गोयमा ! सत्त जाइकुलकोडी जोणिपमुहसयसहस्सा, पण्णत्ता।

[९७] (२) हे भगवन् ! भुजपरिसर्पस्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिको का कितने प्रकार का योनिसग्रह कहा गया है ?

गौतम ! तीन प्रकार का योनिसग्रह कहा गया है, यथा अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम। इस तरह जैसा खेचरो मे कहा वैसा, यहाँ भी कहना चाहिए। विशेषता यह है—इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है। ये मरकर चारो गति मे जाते हैं। नरक मे जाते हैं तो दूसरी पृथ्वी तक जाते हैं। इनकी नौ लाख जातिकुलकोडी कही गई हैं। शेष पूर्ववत्।

भगवन् ! उरपरिसर्पस्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिको का योनिसंग्रह कितने प्रकार का है ? इत्यादि प्रश्न कहना चाहिए।

गौतम ! जैसे भुजपरिसर्प का कथन किया, वैसा यहाँ भी कहना चाहिए। विशेषता यह है

कि इनकी स्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि है। ये मरकर यदि नरक मे जावें तो पाचवी पृथ्वी तक जाते है। इनकी दस लाख जातिकुलकोडी हैं।

चतुष्पदस्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिको की पृच्छा ?

गौतम ! इनका योनिसग्रह दो प्रकार का है, यथा जरायुज (पोतज) और सम्मूर्च्छिम। जरायुज तीन प्रकार के हैं, यथा—स्त्री, पुरुष और नपुसक। जो सम्मूर्च्छिम हैं वे सब नपुसक हैं। हे भगवन् ! उन जीवो के कितनी लेश्याएँ कही गई है, इत्यादि सब खेचरो की तरह कहना चाहिए। विशेषता इस प्रकार है—इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम है। मरकर यदि ये नरक मे जावे तो चौथी नरकपृथ्वी तक जाते हैं। इनकी दस लाख जातिकुलकोडी हैं।

जलचर पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिको की पृच्छा ?

गौतम ! जैसे भुजपरिसर्पो का कहा वैसे कहना। विशेषता यह है कि ये मरकर यदि नरक मे जावे तो सप्तम पृथ्वी तक जाते हैं। इनकी साढे बारह लाख जातिकुलकोडी कही गई हैं।

हे भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवो की कितनी जातिकुलकोडी कही गई हैं ?
गौतम ! नौ लाख जातिकुलकोडी कही गई हैं।

हे भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीवो की कितनी जातिकुलकोडी है ?
गौतम ! आठ लाख जातिकुलकोडी कही हैं।

भगवन् ! द्वीन्द्रियो की कितनी जातिकुलकोडी हैं ?
गौतम ! सात लाख जातिकुलकोडी हैं।

विवेचन—अन्य सब कथन पाठसिद्ध ही है। केवल चतुष्पदस्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यक्योनिको का योनिसग्रह दो प्रकार का कहा है, यथा—पोयया य सम्मुच्छिमा य। यहाँ पोतज मे अण्डजो से भिन्न जितने भी जरायुज या अजरायुज गर्भज जीव है उनका समावेश कर दिया गया है। अतएव दो प्रकार का योनिसग्रह कहा है, अन्यथा गौ आदि जरायुज हैं और सर्पादि अण्डज है—ये दो प्रकार और एक सम्मूर्च्छिम यो तीन प्रकार का योनिसग्रह कहा जाता। लेकिन यहाँ दो ही प्रकार का कहा है, अतएव पोतज मे जरायुज अजरायुज सब गर्भजो का समावेश समझना चाहिए।

यहाँ तक योनि जातीय जातिकुलकोटि का कथन किया, अब भिन्न जातीय का अवसर प्राप्त है अतएव भिन्न जातीय गधागो का प्ररूपण करते है—

गंधांग प्ररूपण

९८ कइ णं भंते ! गंधा पण्णत्ता ? कइ ण भंते ! गंधसया पण्णत्ता ?

गोयमा ! सत्तगंधा सत्तगंधसया पण्णत्ता।

कइ णं भंते ! पुप्फजाइ-कुलकोडीजोणिपमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सोलस पुप्फजातिकुलकोडी जोणीपमुहसयसहस्सा पण्णत्ता, तंजहा—चत्तारि जलयाणं, चत्तारि थलयाणं, चत्तारि महारुक्खियाणं, चत्तारि महागुम्मियाणं।

कइ णं भंते ! वल्लीओ कइ वल्लिसया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि वल्लीओ चत्तारि वल्लिसया पण्णत्ता ।

कइ णं भंते ! लयाओ कति लयासया पण्णत्ता ?

गोयमा ! अट्ठलयाओ, अट्ठलयासया पण्णत्ता ।

कइ णं भते ! हरियकाया हरियकायसया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तओ हरियकाया तओ हरियकायसया पण्णत्ता—फलसहस्सं च विंटबद्धाणं, फलसहस्सं य णालबद्धाणं, ते सव्वे हरितकायमेव समोमरंति । ते एवं समणुगम्ममाणा समणुगम्ममाणा एवं समणुगाहिज्जमाणा २, एवं समणुपेहिज्जमाणा २, एवं समणुचिंतिज्जमाणा २, एएसु चेव दोसु काएसु समोयरंति, तंजहा—तसकाए चेव थावरकाए चेव । एवमेव सपुव्वावरेणं आजीवियदिट्ठंतेणं चउरासीति जातिकुलकोडी जोणिपमुहसयसहस्सा भवंतीति मक्खाया ।

[९८] हे भगवन् ! गध (गधाग) कितने कहे गये है ? हे भगवन् ! गन्धशत कितने हैं ?

गौतम ! सात गध (गधाग) हैं और सात ही गन्धशत हैं ।

हे भगवन् ! फूलो की कितनी लाख जातिकुलकोडी कही गई हैं ?

गौतम ! फूलो की सोलह लाख जातिकुलकोडी कही गई हैं, यथा—चार लाख जलज पुष्पो की, चार लाख स्थलज पुष्पो की, चार लाख महावृक्षो के फूलो की और चार लाख महागुल्मिक फूलो की ।

हे भगवन् ! वल्लियाँ और वल्लिशत कितने प्रकार के हैं ?

गौतम ! वल्लियो के चार प्रकार हैं और चार वल्लिशत हैं । (वल्लियो के चार सौ अवान्तर भेद हैं ।)

हे भगवन् ! लताएँ कितनी हैं और लताशत कितने हैं ?

गौतम ! आठ प्रकार की लताएँ हैं और आठ लताशत हैं । अर्थात् (आठ सौ लता के अवान्तर भेद हैं ।)

भगवन् ! हरितकाय कितने हैं और हरितकायशत कितने हैं ?

गौतम ! हरितकाय तीन प्रकार के हैं और तीन ही हरितकायशत हैं । (अर्थात् हरितकाय की तीन सौ अवान्तर जातिया हैं ।) बिंटबद्ध फल के हजार प्रकार और नालबद्ध फल के हजार प्रकार, ये सब हरितकाय मे ही समाविष्ट हैं । इस प्रकार सूत्र के द्वारा स्वय समझे जाने पर, दूसरो द्वारा सूत्र से समझाये जाने पर, अर्थालोचन द्वारा चिन्तन किये जाने पर और युक्तियो द्वारा पुन. पुन पर्यालोचन करने पर सब दो कायो मे त्रसकाय और स्थावरकाय मे समाविष्ट होते हैं । इस प्रकार पूर्वापर विचारणा करने पर समस्त ससारी जीवो की (आजीविक दृष्टान्त से) चौरासी लाख योनिप्रमुख जातिकुलकोडी होती हैं, ऐसा जिनेश्वरो ने कहा है ।

विवेचन—यहाँ मूलपाठ मे 'गधा' पाठ है, यह पद के एकदेश मे पदसमुदाय के उपचार से 'गधाङ्ग' का वाचक समझना चाहिए । अर्थात् 'गधाग' कितने है, यह प्रश्न का भावार्थ है । दूसरा प्रश्न है कि गन्धाग की कितनी सौ अवान्तर जातिया हैं ?

भगवान् ने कहा—गौतम ! सात गधाङ्ग है और सातसौ गन्धाग की उपजातिया है । मोटे रूप मे सात गधाग इस प्रकार बताये हैं—१ मूल, २ त्वक्, ३ काष्ठ, ४ निर्यास, ५. पत्र, ६ फूल और ७ फल ।

मुस्ता, वालुका, उसीर आदि 'मूल' शब्द से गृहीत हुए है । सुवर्ण छाल आदि त्वक् हैं । चन्दन, अगुरु आदि काष्ठ से लिये गये हैं । कपूर आदि निर्यास है । पत्र से जातिपत्र, तमालपत्र, का ग्रहण है । पुष्प से प्रियगु, नागर का ग्रहण है । फल से जायफल, इलायची, लौंग आदि का ग्रहण हुआ है । ये सात मोटे रूप मे गधाग है ।

इन सात गधागो को पाच वर्ण से गुणित करने पर पैतीस भेद हुए । ये सुरभिगध वाले ही हैं अत एक से गुणित करने पर (३५ × १ = ३५) पैतीस ही हुए । एक-एक वर्णभेद मे द्रव्यभेद से पाच रस पाये जाते है अत पूर्वोक्त ३५ को ५ से गुणित करने पर १७५ (३५ × ५ = १७५) हुए । वैसे स्पर्श आठ होते है किन्तु यथोक्तरूप गधागो मे प्रशस्त् स्पर्शरूप मृदु-लघु-शीत-उष्ण ये चार स्पर्श ही व्यवहार से परिगणित होते हैं अतएव पूर्वोक्त १७५ भेदो को ४ से गुणित करने पर ७०० (१७५ × ४ = ७००) गधागो की अवान्तर जातिया होती हैं ।[1]

इसके पश्चात् पुष्पो की कुलकोटि के विषय मे प्रश्न किया गया है । उत्तर मे प्रभु ने कहा कि फूलो की १६ लाख कुलकोटिया हैं । जल मे उत्पन्न होने वाले कमल आदि फूलो की चार लाख कुलकोटि हैं । कोरण्ट आदि स्थलज फूलो की चार लाख कुलकोटि (उपजातिया) हैं । महुबा आदि महावृक्षो के फूलो की चार लाख कुलकोटि हैं और जाती आदि महागुल्मो के फूलो की चार लाख कुलकोटी है । इस प्रकार फूलो की सोलह लाख कुलकोटि गिनाई हैं ।

वल्लियो के चार प्रकार और चारसौ उपजातिया कही हैं । मूल रूप से वल्लियो के चार प्रकार हैं और अवान्तर जातिभेद से चारसौ प्रकार हैं । चार प्रकारो की स्पष्टता उपलब्ध नही हैं । मूल टीकाकार ने भी इनकी स्पष्टता नही की है ।

लता के मूलभेद आठ और उपजातिया आठसौ है हरितकाय के मूलत तीन प्रकार और अवान्तर तीनसौ भेद हैं । हरितकाय तीन प्रकार के है—जलज, स्थलज और उभयज । प्रत्येक की सौ-सौ उपजातिया हैं, इसलिए हरितकाय के तीनसौ अवान्तर भेद कहे हैं ।

वेंगन आदि वीट वाले फलो के हजार प्रकार कहे हैं और नालबद्ध फलो के भी हजार प्रकार हैं । ये सव तीन सौ ही प्रकार और अन्य भी तथाप्रकार के फलादि सब हरितकाय के अन्तर्गत आते

---

१ मूलतयकट्ठनिज्जासपत्तपुप्फफलमेव गधगा ।
वण्णादुत्तरभेया गधरसया मुणेयव्वा ॥१॥
अस्य व्याख्यानरूप गाथाद्वय—
मुत्थासुवण्णछल्ली अगुरु वाला तमालपत्त च ।
तह य पियगू जाईफल च जाईए गधगा ॥१॥
गुणणाए सत्तसया पर्चाह् वण्णेहिं सुरभिगधेण ।
रसपणएण तह फासेहिं य चउहिं पसत्येहिं ॥२॥

हैं। हरितकाय वनस्पतिकाय के अन्तर्गत और वनस्पति स्थावरकाय मे और स्थावरकाय का जीवो मे समावेश हो जाता है। इस प्रकार सूत्रानुसार स्वय समझने से या दूसरो के द्वारा समझाया जाने से अर्थालोचन रूप से विचार करने से, युक्ति आदि द्वारा गहन चिन्तन करने से, पूर्वापर पर्यालोचन से सब ससारी जीवो का इन दो—त्रसकाय और स्थावरकाय मे समवतार होता है। इस विपय मे आजीव दृष्टान्त समझना चाहिए। अर्थात् जिस प्रकार 'जीव' शब्द मे समस्त त्रस, स्थावर, सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त और षट्काय आदि का समावेश होता है, उसी प्रकार इन चौरासी लाख जीवयोनियो मे समस्त ससारवर्ती जीवो का समावेश समझना चाहिए।

यहाँ जो चौरासी लाख योनियो का उल्लेख किया है, यह उपलक्षण है। इससे अन्यान्य भी जातिकुलकोटि समझना चाहिए। क्योकि पक्षियो की बारह लाख, भुजपरिसर्प की नौ लाख, उर-परिसर्प की दश लाख, चतुष्पदो की दश लाख, जलचरो की साढे बारह लाख, चतुरिन्द्रियो की नौ लाख, त्रीन्द्रियो की आठ लाख, द्वीन्द्रियो की सात लाख, पुष्पजाति की सोलह लाख—इनको मिलाने से साढे तिरानवै लाख होती हैं, अत यहाँ जो चौरासी लाख योनियो का कथन किया गया है वह उपलक्षणमात्र है। अन्यान्य भी कुलकोटिया होती हैं।

अन्यत्र कुलकोटिया इस प्रकार गिनाई है—

पृथ्वीकाय की १२ लाख, अप्काय की सात लाख, तेजस्काय की तीन लाख, वायुकाय की सात लाख, वनस्पति की अट्ठावीस लाख, द्वीन्द्रिय की सात लाख, त्रीन्द्रिय की आठ लाख, चतुरिन्द्रिय की नौ लाख, जलचर की साढे बारह लाख, स्थलचर की दस लाख, खेचर की बारह लाख, उरपरिसर्प की दस लाख, भुजपरिसर्प की नौ लाख, नारक की पच्चीस लाख, देवता की छव्वीस लाख, मनुष्य की बारह लाख—कुल मिलाकर एक करोड साढे सित्याणु लाख कुलकोटिया है।

चौरासीलाख जीवयोनियो की परिगणना इस प्रकार भी सगत होती है, त्रस जीवो की जीवयोनिया ३२ लाख हैं। वह इस प्रकार—दो लाख द्वीन्द्रिय की, दो लाख त्रीन्द्रिय की, दो लाख चतुरिन्द्रिय की, चार लाख तिर्यक्पचेन्द्रिय की, चार लाख नारक की, चार लाख देव की और चौदह लाख मनुष्यो की—ये कुल मिलाकर ३२ त्रसजीवो की योनिया है। स्थावरजीवो की योनिया ५२ लाख हैं—सात लाख पृथ्वीकाय की, सात लाख अप्काय की, ७ लाख तेजस्काय की, ७ लाख वायुकाय की, २४ लाख वनस्पति की—यो ५२ लाख स्थावरजीवो की योनिया हैं। त्रस की ३२ लाख और स्थावर की ५२ लाख मिलकर ८४ लाख जीवयोनिया है।

विमानो के विषय मे प्रश्न

९९ अत्थि णं भंते ! विमाणाइं[1] सोत्थियाणि सोत्थियावत्ताइं सोत्थियपभाइं सोत्थिय-कन्ताइं, सोत्थियवन्नाइं, सोत्थियलेसाइं सोत्थियज्झयाइं सोत्थियसिंगाराइं, सोत्थियकूडाइं, सोत्थिय-सिट्ठाइं सोत्थियउत्तरवडिंसगाइं ?

हंता अत्थि।

---

१ टीकाकार के अनुसार 'अच्चियाइ अच्चियावत्ताइ' इत्यादि पाठ है।

ते णं विमाणा केमहालया पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावइए णं सूरिए उदेइ जावइएणं य सूरिए अत्थमइ एवइया तिण्णोवासंतराइं अत्थेगइयस्स देवस्स एक्के विक्कमे सिया । से ण देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देवगइए वीइवयमाणे वीइवयमाणे जाव एगाह वा दुयाहं वा उक्कोसेणं छम्मासा वीइवएज्जा, अत्थेगइया विमाणं वीइवएज्जा अत्थेगइया विमाणं नो वीइवएज्जा, एमहालया ण गोयमा । ते विमाणा पण्णत्ता ।

अत्थि णं भते ! विमाणाइं[1] अच्चीणि अच्चिरावत्ताइं तहेव जाव अच्चुत्तरवडिंसगाइं ?

हता अत्थि ।

ते विमाणा केमहालया पण्णत्ता ?

गोयमा ! एवं जहा सोत्थियाईणि णवरं एवइयाइ पंच उवासतराइं अत्थेगइयस्स देवस्स एगे विक्कमे सिया, सेसं तं चेव ।

अत्थि णं भते ! विमाणाइं कामाइं कामावत्ताइं जाव कामुत्तरवडिसगाइ ? हता अत्थि ।

ते णं भंते ! विमाणा केमहालया पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहा सोत्थीणि णवरं सत्त उवासतराइं विक्कमे, सेसं तहेव ।

अत्थि णं भते ! विमाणाइ विजयाइं वेजयंताइं जयंताइं अपराजिताइं ? हता अत्थि ।

ते णं भंते ! विमाणा केमहालिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! जावइए सूरिए उदेइ एवइयाइं नव ओवासंतराइ, सेसं तं चेव; नो चेव णं ते विमाणे वीइवएज्जा एमहालया णं विमाणा पण्णत्ता, समणाउसो !

तिरिक्खजोणियउद्देसओ समत्तो ।

[९९] हे भगवन् ! क्या स्वस्तिक नामवाले, स्वस्तिकावर्त नामवाले, स्वस्तिकप्रभ, स्वस्तिककान्त, स्वस्तिकवर्ण, स्वस्तिकलेश्य, स्वस्तिकध्वज, स्वस्तिकश्रृंगार, स्वस्तिककूट, स्वस्तिकशिष्ट और स्वस्तिकोत्तरावतसक नामक विमान हैं ?

हाँ, गौतम ! हैं ।

भगवन् ! वे विमान कितने वडे हैं ?

गौतम ! जितनी दूरी से सूर्य उदित होता दीखता है और जितनी दूरी से सूर्य अस्त होता दीखता है (यह एक अवकाशान्तर है), ऐसे तीन अवकाशान्तरप्रमाण क्षेत्र किसी देव का एक विक्रम (पदन्यास) हो और वह देव उस उत्कृष्ट, त्वरित यावत् दिव्य देवगति से चलता हुआ यावत् एक दिन, दो दिन उत्कृष्ट छह मास तक चलता जाय तो किसी विमान का तो पार पा सकता है और किसी विमान का पार नही पा सकता है । हे गौतम ! इतने वडे वे विमान कहे गये हैं ।

हे भगवन् ! क्या अर्चि, अर्चिरावर्त आदि यावत् अर्चिरुत्तरावतसक नाम के विमान हैं ?

हाँ, गौतम ! हैं ।

---

१. टीकाकार के अनुसार 'सोत्थियाइ' आदि पाठ यहाँ है ।

जम्बूद्वीप मे सर्वोत्कृष्ट दिन मे कर्कसक्रान्ति के प्रथम दिन मे सूर्य सैतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन और एक योजन के $\frac{21}{60}$ भाग (इक्कीस साठिया भाग) जितनी दूरी से उदित होता हुआ दीखता है।[1] ४७२६३ $\frac{21}{60}$ योजन उसका उदयक्षेत्र है और इतना ही उसका अस्तक्षेत्र है। उदयक्षेत्र और अस्तक्षेत्र मिलकर ९४५२६ $\frac{42}{60}$ योजन क्षेत्र का परिमाण होता है। यह एक अवकाशान्तर का परिमाण है। यहाँ ऐसे तीन अवकाशान्तर होने से उसका परिमाण अट्ठाईस लाख तीन हजार पाच सौ अस्सी योजन और एक योजन के $\frac{6}{60}$ भाग (२८,०३,५८० $\frac{6}{60}$) इतना उस देव के एक पदन्यास का परिमाण होता है। इतने सामर्थ्यवाला कोई देव लगातार एक दिन, दो दिन उत्कृष्ट छह मास तक चलता रहे तो भी उन विमानो मे से किन्ही का पार पा सकता है और किन्ही का नही। इतने बड़े वे विमान है। स्वस्तिक आदि विमानो की महत्ता के विषय मे यह उपमा है।

अर्चि, अर्चिरावर्त आदि की महत्ता के उत्तर मे वही सब जानना चाहिए—अन्तर यह है कि यहाँ पाच अवकाशान्तर जितना क्षेत्र उस देव के एक पदन्यास का प्रमाण समझना चाहिए।

काम, कामावर्त आदि विमानो की महत्ता मे भी वही सब जानना चाहिए, केवल देव के पदन्यास का प्रमाण सात अवकाशान्तर समझना चाहिए।

विजय, वैजयत, जयत और अपराजितो के विषय मे भी वही जानना चाहिए। अन्तर यह है कि यहाँ नौ अवकाशान्तर जितना क्षेत्र उस देव के एक पदन्यास का प्रमाण समझना चाहिए। हे आयुष्मन् श्रमण! वे विमान इतने बडे है।[2]

॥ प्रथम तिर्यक् उद्देशक पूर्ण ॥

□

---

१ जावइ उदेइ सूरो जावइ सो अत्थमेइ अवरेण।
तियपणसत्तनवगुण काउ पत्तेय पत्तेय ॥१॥
सीयालीस सहस्सा दो य सया जोयणाण तेवट्ठा।
इगवीम सट्ठिभागा कक्खडमाइमि पेच्छ नरा ॥२॥

२. एव दुगुण काउ गुणिज्जए तिपणसत्तमाईहिं।
आगयफल च ज त कमपरिमाण वियाणाहि ॥३॥
चत्तारि वि सकम्मेहिं, चडाइगईहिं जति छम्मास।
तहवि य न जति पार केसिंचि सुरा विमाणाइ ॥४॥

भगवन् ! वे विमान कितने वडे कहे गये है ?

गौतम ! जैसी वक्तव्यता स्वस्तिक आदि विमानो की कही है, वैसी ही यहाँ कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहाँ वैसे पाच अवकाशान्तर प्रमाण क्षेत्र किसी देव का एक पदन्यास (एक विक्रम) कहना चाहिए। शेप वही कथन है।

हे भगवन् ! क्या काम, कामावर्त यावत् कामोत्तरावतसक विमान है ?

हाँ, गौतम ! हैं।

भगवन् ! वे विमान कितने वडे है ?

गौतम ! जैसी वक्तव्यता स्वस्तिकादि विमानो की कही है वैसी ही कहना चाहिये। विशेपता यह है कि यहाँ वैसे सात अवकाशान्तर प्रमाण क्षेत्र किसी देव का एक विक्रम (पदन्यास) कहना चाहिए। शेष सब वही कथन है।

हे भगवन् ! क्या विजय, वैजयत, जयत और अपराजित नाम के विमान है ?

हाँ, गौतम ! है।

भगवन् ! वे विमान कितने वडे है ?

गौतम ! वही वक्तव्यता कहनी चाहिए यावत् यहाँ नौ अवकाशान्तर प्रमाण क्षेत्र किसी एक देव का एक पदन्यास कहना चाहिए। इस तीव्र और दिव्यगति से वह देव एक दिन, दो दिन उत्कृष्ट छह मास तक चलता रहे तो किन्ही विमानो के पार पहुच सकता है और किन्ही विमानो के पार नही पहुच सकता है। हे आयुष्मन् श्रमण ! इतने वडे विमान वे कहे गये है।

प्रथम तिर्यक्योनिक उद्देशक पूर्ण ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे विशेष नाम वाले विमानो के विपय मे तथा उनके विस्तार के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर हैं। 'विमान' शब्द की व्युत्पत्ति वृत्तिकार ने इस प्रकार की है—जहाँ वि—विशेप-रूप से पुण्यशाली जीवो के द्वारा मन्यन्ते—तद्गत सुखो का अनुभव किया जाता है वे विमान हैं।[1]

विमानो के नामो मे यहाँ प्रथम स्वस्तिक आदि नाम कहे गये हैं, जवकि वृत्तिकार मलयगिरि ने पहले अर्चि, अर्चिरावर्त आदि पाठ मानकर व्याख्या की है। उन्होने स्वस्तिक, स्वस्तिकावर्त आदि नामो का उल्लेख दूसरे नम्वर पर किया है। इस प्रकार नाम के क्रम मे अन्तर है। वक्तव्यता एक ही है।

विमानो की महत्ता को वताने के लिए देव की उपमा का सहारा लिया गया है। जैसे कोई देव सर्वोत्कृष्ट दिन मे जितने क्षेत्र मे सूर्य उदित होता है और जितने क्षेत्र मे वह अस्त होता है इतने क्षेत्र को अवकाशान्तर कहा जाता है, ऐसे तीन अवकाशान्तर जितने क्षेत्र को (वह देव) एक पदन्यास से पार कर लेता है। इस प्रकार की उत्कृष्ट, त्वरित और दिव्यगति से लगातार एक दिन, दो दिन और उत्कृष्ट छह मास तक चलता रहे तो भी वह किसी विमान के पार पहुच जाता है और किसी विमान को पार नही कर सकता है। इतने वडे वे विमान है।

---

१ विशेषत पुण्यप्राणिभिर्मन्यन्ते—तद्गतसौख्यानुभवनेनानुभूयन्ते इति विमानानि ।

तृतीय प्रतिपत्ति

तिर्यंचयोनिक अधिकार का द्वितीयोद्देशक

तिर्यक्योनि अधिकार मे प्रथम उद्देशक कहने के वाद क्रमप्राप्त द्वितीय उद्देशक का अवसर है। उसका आदि सूत्र इस प्रकार है—

[१००] कइविहा णं भंते ! संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! छव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—पुढविकाइया जाव तसकाइया।

से किं तं पुढविकाइया ?

पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—सुहुमपुढविकाइया य वादरपुढविकाइया य।

से किं तं सुहुमपुढविकाइया ?

सुहुमपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता, तजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से तं सुहुम-पुढविकाइया।

से किं तं बादरपुढविक्काइया ?

बादरपुढविक्काइया दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एवं जहा पण्णवणापदे, सण्हा सत्तविहा पण्णत्ता, खरा अणेगविहा पण्णत्ता, जाव असंखेज्जा, से तं बादर-पुढविकाइया। से तं पुढविकाइया।

एवं जहा पण्णवणापदे तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव वणप्फइकाइया, एवं जाव जत्थेको तत्थ सिया सखेज्जा सिया असखेज्जा सिया अणंता। से तं बादरवणप्फइकाइया, से तं वणस्सइकाइया।

से किं तं तसकाइया ?

तसकाइया चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया।

से किं तं बेइंदिया ?

बेइंदिया अणेगविधा पण्णत्ता, एवं जं चेव पण्णवणापदे तं चेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव सव्वट्ठसिद्धगदेवा, से तं अणुत्तरोववाइया, से तं देवा, से तं पंचेंदिया, से तं तसकाइया।

[१००] हे भगवन् ! ससारसमापन्नक जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं ?
गौतम ! छह प्रकार के कहे गये हैं, यथा—पृथ्वीकायिक यावत् त्रसकायिक।

पृथ्वीकायिक जीव कितने प्रकार के हैं ?
पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और वादरपृथ्वीकायिक।
सूक्ष्मपृथ्वीकायिक कितने प्रकार के हैं ?

सूक्ष्मपृथ्वीकायिक दो प्रकार के है—पर्याप्त और अपर्याप्त। यह सूक्ष्मपृथ्वीकायिक का कथन हुआ।

बादरपृथ्वीकायिक क्या हैं ?

बादरपृथ्वीकायिक दो प्रकार के है—पर्याप्त और अपर्याप्त। इस प्रकार जैसा प्रज्ञापनापद मे कहा, वैसा कहना चाहिए। श्लक्ष्ण (मृदु) पृथ्वीकायिक सात प्रकार के हैं और खरपृथ्वीकायिक अनेक प्रकार के कहे गये है, यावत् वे असख्यात हैं। यह बादरपृथ्वीकायिको का कथन हुआ। यह पृथ्वीकायिको का कथन हुआ। इस प्रकार जैसा प्रज्ञापनापद मे कहा वैसा पूरा कथन करना चाहिए। वनस्पतिकायिक तक ऐसा ही कहना चाहिए, यावत् जहाँ एक वनस्पतिकायिक जीव है वहाँ कदाचित् सख्यात, कदाचित् असख्यात और कदाचित् अनन्त वनस्पतिकायिक जानना चाहिए। यह बादर-वनस्पतिकायिको का कथन हुआ। यह वनस्पतिकायिको का कथन हुआ।

त्रसकायिक जीव क्या है ?

वे चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय।

द्वीन्द्रिय जीव क्या हैं ? वे अनेक प्रकार के कहे गये है। इस प्रकार जैसा प्रज्ञापनापद मे कहा गया है, वह सम्पूर्ण कथन तब तक करना चाहिए जब तक सर्वार्थसिद्ध देवो का अधिकार है। यह अनुत्तरोपपातिक देवो का कथन हुआ। इसके साथ ही देवो का कथन हुआ, इसके साथ ही पचेन्द्रियो का कथन हुआ और साथ ही त्रसकाय का कथन भी पूरा हुआ।

विवेचन—यहाँ छह प्रकार के ससारसमापन्नक जीव है, ऐसा प्रतिपादन करनेवाले आचार्यो का मन्तव्य बताया गया है। १ पृथ्वीकाय, २ अप्‌काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय और ६ त्रसकाय—इन छह भेदो मे सब ससारी जीवो का समावेश हो जाता है। इस प्रसग पर वही सब कहा गया है जो पहले त्रस और स्थावर की प्रतिपत्ति मे कहा गया है। अतएव इनके विषय मे प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद मे कही गई वक्तव्यता के अनुसार वक्तव्यता जाननी चाहिए, ऐसी सूचना सूत्रकार ने यहाँ प्रदान की है। जिज्ञासु जन वहाँ से विशेप जानकारी प्राप्त कर सकते है।

पृथ्वीकायिकों के विषय मे विशेष जानकारी

१०१. कइविहा णं भंते ! पुढवी पण्णत्ता ?

गोयमा ! छव्विहा पुढवी पण्णत्ता, त जहा—सण्हापुढवी, सुद्धपुढवी, बालुयापुढवी, मणोसिला-पुढवी, सक्करापुढवी, खरपुढवी।

सण्हा पुढवी णं भंते ! केवइय कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं अतोमुहुत्त उक्कोसेण एगं वाससहस्स।

सुद्धपुढवीय पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्त उक्कोसेणं बारसवाससहस्साइ।

वालुयापुढवीए पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चोद्दसवाससहस्साइ।

मणोसिलापुढवीए पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सोलसवाससहस्साइं।

सक्करापुढवीए पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेणं अतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अट्ठारसवाससहस्साइं।

खरपुढवीए पुच्छा, गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं बावीस वाससहस्साइं ।

नेरइयाणं भंते ! केवइय कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेण दसवाससहस्साइ उक्कोसेणं तेत्तीस सागरोवमाइ ठिई; एव सव्व भाणियव्वं जाव सव्वट्ठसिद्धदेवत्ति ।

जीवे णं भते ! जीवे त्ति कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! सव्वद्धं ।

पुढविकाइए णं भंते ! पुढविकाइएत्ति कालओ केवच्चिर होइ ?

गोयमा ! सव्वद्धं । एवं जाव तसकाइए ।

[१०१] हे भगवन् ! पृथ्वी कितने प्रकार की कही है ?

गौतम ! पृथ्वी छह प्रकार की कही गई है, यथा—श्लक्ष्ण (मृदु) पृथ्वी, शुद्धपृथ्वी, वालुका-पृथ्वी, मन शिलापृथ्वी, शर्करापृथ्वी और खरपृथ्वी ।

हे भगवन् ! श्लक्ष्णपृथ्वी की कितनी स्थिति है ?
गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट एकहजारवर्ष ।

हे भगवन् ! शुद्धपृथ्वी की स्थिति कितनी है ?
गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारहहजारवर्ष ।

भगवन् ! बालुकापृथ्वी की पृच्छा ?
गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चौदहहजारवर्ष ।

भगवन् ! मन शिलापृथ्वी की पृच्छा ?
गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सोलहहजारवर्ष ।

भगवन् ! शर्करापृथ्वी की पृच्छा ?
गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अठारहहजारवर्ष ।

भगवन् ! खरपृथ्वी की पृच्छा ?
गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीसहजारवर्ष ।

भगवन् ! नैरयिको की कितनी स्थिति कही है ?

गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति है । इस प्रकार सर्वार्थसिद्ध के देवो तक की स्थिति (प्रज्ञापना के स्थितिपद के अनुसार) कहनी चाहिए ।

भगवन् ! जीव, जीव के रूप मे कब तक रहता है ?
गौतम ! सब काल तक जीव जीव ही रहता है ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक के रूप मे कब तक रहता है ?
गौतम ! (पृथ्वीकाय सामान्य की अपेक्षा) सर्वकाल तक रहता है । इस प्रकार त्रसकाय तक कहना चाहिए ।

विवेचन —प्रस्तुत सूत्र मे पृथ्वीकायिक आदि के विषय मे कई विशिष्ट विषयो का उल्लेख करने के लिए पुन पृथ्वीविषयक प्रश्न किये गये हैं। पृथ्वी के प्रकारो के सम्बन्ध मे किये गये प्रश्न के उत्तर मे प्रभु ने फरमाया है कि पृथ्वी छह प्रकार की है—

१ श्लक्ष्णापृथ्वी—यह मृदु मुलायम मिट्टी का वाचक है। यह चूर्णित आटे के समान मुलायम होती है।
२ शुद्धपृथ्वी—पर्वतादि के मध्य मे जो मिट्टी है वह शुद्धपृथ्वी है।
३ वालुकापृथ्वी—बारीक रेत वालुकापृथ्वी है।
४ मन शिलापृथ्वी—मैनशिल आदि मन शिलापृथ्वी है।
५. शर्करापृथ्वी—ककर, मुरुण्ड आदि शर्करापृथ्वी है।
६ खरापृथ्वी—पाषाण रूप पृथ्वी खरापृथ्वी है।

उक्त छह प्रकार की पृथ्वी का निरूपण करने के पश्चात् उनकी कालस्थिति के विषय मे प्रश्न किये गये हैं। उत्तर मे कहा गया है कि—

१ श्लक्ष्णापृथ्वी की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट एक हजार वर्ष है।
२ शुद्धपृथ्वी की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह हजार वर्ष है।
३ वालुकापृथ्वी की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चौदह हजार वर्ष है।
४ मन शिलापृथ्वी की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सोलह हजार वर्ष है।
५ शर्करापृथ्वी की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अठारह हजार वर्ष है।
६ खरपृथ्वी की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष है।[1]

पृथ्वीस्थिति यन्त्र

पृथ्वी का प्रकार	जघन्य	उत्कृष्ट स्थिति
१ श्लक्ष्णापृथ्वी	अन्तर्मुहूर्त	एक हजार वर्ष
२ शुद्धपृथ्वी	,,	बारह हजार वर्ष
३. वालुकापृथ्वी	,,	चौदह हजार वर्ष
४ मन शिलापृथ्वी	,,	सोलह हजार वर्ष
५ शर्करापृथ्वी	,,	अठारह हजार वर्ष
६ खरपृथ्वी	,,	बावीस हजार वर्ष

स्थितिनिरूपण का प्रसग होने से चौवीस दण्डक के क्रम से नैरयिको आदि की स्थिति के विषय मे प्रश्न हैं। ये प्रश्न और उनके उत्तर प्रज्ञापनापद के चतुर्थ स्थितिपद के अनुसार सर्वार्थसिद्ध के देवो तक की स्थिति तक समझ लेना चाहिए। वहाँ विस्तार के साथ स्थिति का वर्णन है। अतएव यहाँ उसका उल्लेख न करते हुए वहाँ से जान लेने की सूचना की गई है। यह भवस्थिति विषयक कथन करने के पश्चात् कायस्थितिविषयक प्रश्न है कि जीव कितने समय तक जीवरूप मे

१ सण्हा य सुद्ध वालुअ मणोसिला सक्करा य खरपुढवी।
इग बार चोद्दस सोलढार बावीस समसहस्सा ॥१॥

रहता है। कायस्थिति का अर्थ है—जीव की सामान्यरूप अथवा विशेषरूप से जो विवक्षित पर्याय है उसमे स्थित रहना। भवस्थिति मे वर्तमान भव की स्थिति गृहीत होती है और कायस्थिति में जब तक जीव अपने जीवनरूप पर्याय से युक्त रहता है तब तक की स्थिति विवक्षित है। प्रकृत प्रसग मे जीव की कायस्थिति पूछी गई है। जो प्राणो को धारण करे वह जीव है। प्राण दो प्रकार के है—द्रव्यप्राण और भावप्राण। पाच इन्द्रिया, मन-वचन-काय ये तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये दस द्रव्यप्राण हैं और ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य ये चार भावप्राण हैं।[1] यहाँ दोनो प्रकार के प्राणो का ग्रहण है। अत प्रश्न का भाव यह हुआ कि जीव प्राण धारणरूप जीवत्व की अपेक्षा से कब तक रहता है? भगवान् ने उत्तर दिया कि सर्वकाल के लिए जीवरूप मे रहता है। वह ससारी अवस्था मे द्रव्य-भावप्राणो को लेकर और मुक्तावस्था मे भावप्राणो को लेकर जीवित रहता है, अतएव सर्वाद्धा के लिए जीव जीवरूप मे रहता है। एक भी क्षण ऐसा नही है कि जीव अपनी इस जीवनावस्था से रहित हो जाय।

अथवा 'जीव' पद से यहाँ किसी एक खास जीव का ग्रहण नही हुआ किन्तु जीव सामान्य का ग्रहण हुआ है। अतएव प्राणधारण लक्षण जीवत्व मानने मे भी कोई दोष नही है। अर्थात् जीव जीव के रूप मे सदा रहेगा ही। वह सदा जिया है, जीता है और जीता रहेगा। इस प्रकार जीव को लेकर सामान्य जीव की अपेक्षा कायस्थिति कही गई है। इसी प्रकार पृथ्वीकाय आदि के विषय मे भी सामान्य विवक्षा ही जाननी चाहिए। पृथ्वीकाय भी पृथ्वीकायरूप मे सामान्यरूप से सदैव रहेगा ही, कोई भी समय ऐसा नही होगा जब पृथ्वीकायिक जीव नही रहेगे। इसलिए उनकी कायस्थिति सर्वाद्धा कही गई है। इस प्रकार गति, इन्द्रिय, कायादि द्वारो से जिस प्रकार प्रज्ञापना के अठारहवे 'कायस्थिति' नामक पद मे कायस्थिति कही गई है, वह सब यहाँ कह लेनी चाहिए। वे द्वार बावीस हैं[2]—

१ जीव, २ गति, ३ इन्द्रिय, ४ काय, ५ योग, ६ वेद, ७. कषाय, ८ लेश्या, ९. सम्यक्त्व, १० ज्ञान, ११ दर्शन, ११. सयत, १३ उपयोग, १४. आहार, १५. भाषक, १६ परित्त, १७ पर्याप्ति, १८ सूक्ष्म १९ सज्ञी, २० भवसिद्धिक, २१ अस्तिकाय और २२. चरम।

इस प्रकार पृथ्वीकाय की तरह अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति और त्रसकाय सम्बन्धी सूत्र भी समझ लेने चाहिए।

निर्लेप सम्बन्धी कथन

१०१-२ पडुप्पन्नपुढविकाइया णं भंते! केवइकालस्स णिल्लेवा सिया?

गोयमा! जहण्णपदे असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीहिं उक्कोसपए असंखेज्जाहिं उस्सप्पिणी ओसप्पिणीहिं, जहन्नपदओ उक्कोसपए असंखेज्जगुणो, एवं जाव पडुप्पन्नवाउक्काइया।

---

१ पचेन्द्रियाणि त्रिविध बल च, उच्छ्वास-नि श्वासमथान्यदायु।
प्राणा दशैते भगवभिरुक्तास्तेषा वियोजीकरण तु हिंसा ॥१॥
'ज्ञानादयस्तु भावप्राणा, मुक्तोऽपि जीवति स तेहिं।'

२ जीव गइदिय काए जोए वेए कसाय लेस्सा य।
सम्मत्त नाणदसण सजय उवओग आहारे ॥१॥
भासग परित्तपज्जत्त सुहुमसण्णी भवत्थि चरिमे य।
एएसिं तु पयाण कायठिई होइ नायव्वा ॥२॥

पडुप्पन्नवणप्फइकाइया णं भंते ! केवइकालस्स णिल्लेवा सिया ?

गोयमा ! पडुप्पन्नवणप्फइकाइया जहण्णपदे अपदा उक्कोसपदे अपदा, पडुप्पन्नवणप्फइकाइया णं णत्थि निल्लेवणा ।

पडुप्पन्नतसकाइयाणं पुच्छा,

जहण्णपदे सागरोवमसयपुहुत्तस्स, उक्कोसपए सागरोवमसयपुहुत्तस्स, जहण्णपदा उक्कोसपए विसेसाहिया ।

[१०१-२] भगवन् ! अभिनव (तत्काल उत्पद्यमान) पृथ्वीकायिक जीव कितने काल मे निर्लेप हो सकते है ?

गौतम ! जघन्य मे असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल मे और उत्कृष्ट से भी असख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल मे निर्लेप (खाली) हो सकते हैं। यहाँ जघन्य पद से उत्कृष्ट पद मे असख्यातगुण अधिकता जाननी चाहिए। इसी प्रकार अभिनव वायुकायिक तक की वक्तव्यता जाननी चाहिए।

भगवन् ! अभिनव (तत्काल उत्पद्यमान) वनस्पतिकायिक जीव कितने समय मे निर्लेप हो सकते हैं ?

गौतम ! प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकायिको के लिए जघन्य और उत्कृष्ट दोनो पदो मे ऐसा नही कहा जा सकता कि ये इतने समय मे निर्लेप हो सकते है। इन जीवो की निर्लेपना नही हो सकती। (क्योकि ये अनन्तानन्त हैं।)

भगवन् ! प्रत्युतपन्नत्रसकायिक जीव कितने काल मे निर्लेप हो सकते है ?

गौतम ! जघन्य पद मे सागरोपम शतपृथक्त्व और उत्कृष्ट पद मे भी सागरोपम शतपृथक्त्व काल मे निर्लेप हो सकते हैं। जघन्यपद से उत्कृष्टपद मे विशेषाधिकता समझनी चाहिए।

विवेचन—निर्लेपता का अर्थ है—यदि प्रतिसमय एक-एक जीव का अपहार किया जाय तो कितने समय मे वे जीव सबके सब अपहृत हो जायें अर्थात् वह आधारस्थान उन जीवो से खाली हो जाय। प्रत्युत्पन्न अर्थात् अभिनव उत्पद्यमान पृथ्वीकायिक जीवो का यदि प्रतिसमय एक-एक के मान से अपहार किया जाय तो कितने समय मे वे सबके सब अपहृत हो सकेंगे, यह प्रश्न का आशय है। इसके उत्तर मे कहा गया है कि जघन्य से अर्थात् जब एक समय मे कम से कम उत्पन्न होते हैं, उस अपेक्षा से यदि प्रत्येक समय मे एक-एक जीव अपहृत किया जावे तो उनके पूरे अपहरण होने मे असख्यात उत्सर्पिणिया और असख्यात अवसर्पिणिया समाप्त हो जावेगी। इसी प्रकार उत्कृष्ट से एक ही काल मे जब वे अधिक से अधिक उत्पन्न होते हैं उस अपेक्षा से भी यदि उनमे से एक-एक समय मे एक-एक जीव का अपहार किया जावे तो भी उनके पूरे अपहरण मे असख्यात उत्सर्पिणिया और असख्यात अवसर्पिणिया समाप्त हो जावेगी तब वे पूरे अपहृत होगे। जघन्य पद वाले अभिनव उत्पद्यमान पृथ्वीकायिक जीवो की अपेक्षा जो उत्कृष्ट पदवर्ती अभिनव पृथ्वीकायिक जीव उत्पन्न होते हैं वे असख्यातगुण अधिक हैं। क्योकि जघन्य पदोक्त असख्यात से उत्कृष्ट पदोक्त असखयात असखयातगुण अधिक है।

इसी तरह अभिनव अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवो की निर्लेपना समझनी चाहिए।

अभिनव वनस्पतिकायिक जीवो की निर्लेपना सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर मे कहा गया है कि उन जीवो की न तो जघन्यपद मे और न उत्कृष्टपद मे निर्लेपना सम्भव है। क्योंकि वे जीव अनन्तानन्त हैं। अतएव वे 'इतने समय मे निर्लिप्त या अपहृत हो जावेगे' ऐसा कहना सम्भव नही है। उक्त पद द्वारा वे नही कहे जा सकते, अतएव उन्हे 'अपद' कहा गया है।

प्रत्युत्पन्न त्रसकायिक जीवो की निर्लेपना का काल जघन्यपद मे सागरोपमशतपृथक्त्व है अर्थात् दो सौ सागरोपम से लेकर नौ सौ सागरोपम जितने काल मे उन अभिनव त्रसकायिक जीवो का अपहार सम्भव है। उत्कृष्टपद मे भी यही सागरोपमशतपृथक्त्व निर्लेपना का काल जानना चाहिए, परन्तु यह उत्कृष्टपदोक्त काल जघन्यपदोक्त काल से विशेषाधिक जानना चाहिए।

अविशुद्ध-विशुद्ध लेश्या वाले अनगार का कथन

१०३. अविसुद्धलेस्से ण भते! अणगारे असमोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेस्स देव देविं अणगारं जाणइ पासइ?

गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे।

अविसुद्धलेस्से ण भते! अणगारे असमोहएण अप्पाणेण विसुद्धलेस्स देविं देविं अणगार जाणइ पासइ?

गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे।

अविसुद्धलेस्से ण भंते! अणगारे समोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेस्सं देव देविं अणगार जाणइ पासइ?

गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे।

अविसुद्धलेस्से अणगारे समोहएण अप्पाणेण विसुद्धलेस्सं देव देविं अणगारं जाणइ पासइ?

नो तिणट्ठे समट्ठे।

अविसुद्धलेस्से ण भते! अणगारे समोहयासमोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेस्स देव देविं अणगारं जाणइ पासइ?

नो तिणट्ठे समट्ठे।

अविसुद्धलेस्से अणगारे समोहयासमोहएण अप्पाणेण विसुद्धलेस्स देव देविं अणगार जाणइ पासइ?

नो तिणट्ठे समट्ठे।

विसुद्धलेस्से ण भते! अणगारे असमोहएण अप्पाणेण अविसुद्धलेस्सं देव देविं अणगारं जाणइ पासइ?

हंता, जाणइ पासइ। जहा अविसुद्धलेस्से ण आलावगा एव विसुद्धलेस्सेण वि छ आलावगा भाणियव्वा जाव विसुद्धलेस्से ण भंते ! अणगारे समोहयासमोहएण अप्पाणेण विसुद्धलेस्स देवं देविं अणगारं जाणइ पासइ ?

हंता ! जाणइ पासइ।

[१०३] हे भगवन् ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार वेदनादि समुद्घात से विहीन आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्यावाले देव को, देवी को और अनगार को जानता-देखता है क्या ?

हे गौतम ! यह अर्थ समर्थित नही है अर्थात् नही जानता-देखता है।

भगवन् ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार वेदनादि विहीन आत्मा द्वारा विशुद्धलेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता-देखता है क्या ?

गौतम ! यह अर्थ समर्थित नही है।

भगवन् ! अविशुद्ध लेश्या वाला अनगार वेदनादि समुदघातयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता-देखता है क्या ?

गौतम ! यह अर्थ समर्थित नही है।

हे भगवन् ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार वेदनादि समुद्घातयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देव को, देवी को और अनगार को जानता-देखता है क्या ?

गौतम ! यह अर्थ ठीक नही है।

हे भगवन् ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार जो वेदनादि समुद्घात से न तो पूर्णतया युक्त है और न सर्वथा विहीन है, ऐमी आत्मा द्वारा अविशुद्धलेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानता-देखता है क्या ?

गौतम ! यह अर्थ समर्थित नही है।

भगवन् ! अविशुद्धलेश्या वाला अनगार समवहत-असमवहत आत्मा द्वारा विशुद्धलेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानता-देखता है क्या ?

गौतम ! यह अर्थ समर्थित नही है।

भगवन् ! विशुद्धलेश्या वाला अनगार वेदनादि समुद्घात द्वारा असमवहत आत्मा द्वारा अविशुद्धलेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानता-देखता है क्या ?

हाँ, गौतम ! जानता-देखता है। जैसे अविशुद्धलेश्या वाले अनगार के लिए छह आलापक कहे हैं वैसे छह आलापक विशुद्धलेश्या वाले अनगार के लिए भी कहने चाहिए यावत्—

हे भगवन् ! विशुद्धलेश्या वाला अनगार समवहत-असमवहत आत्मा द्वारा विशुद्धलेश्या वाले देव, देवी और अनगार को जानता-देखता है क्या ?

हाँ, गौतम ! जानता-देखता है।

विवेचन—पूर्व सूत्र मे स्थिति तथा निर्लेपना आदि का कथन किया गया। उस कथन को विशुद्धलेश्या वाला अनगार सम्यक् रूप से समझता है तथा अविशुद्धलेश्या वाला उसे सम्यक् रूप

से नही समझता है । इस सम्बन्ध से यहाँ शुद्धलेश्या वाले और अशुद्धलेश्या वाले अनगार को लेकर ज्ञान-दर्शनविषयक प्रश्न किये गये हैं । अविशुद्धलेश्या से तात्पर्य कृष्ण-नील-कापोत लेश्या से है । असमवहृत का अर्थ है वेदनादि समुद्घात से रहित और समवहृत का अर्थ है वेदनादि समुद्घात से युक्त । समवहृत-असमवहृत का मतलब है वेदनादि समुद्घात से न तो पूर्णतया युक्त और न सर्वथा विहीन ।

अविशुद्धलेश्या वाले अनगार के विषय मे छह आलापक इस प्रकार कहे गये हैं—

(१) असमवहृत होकर अविशुद्धलेश्या वाले देवादि को जानना,
(२) असमवहृत होकर विशुद्धलेश्या वाले देवादि को जानना,
(३) समवहृत होकर अविशुद्धलेश्या वाले देवादि को जानना,
(४) समवहृत होकर विशुद्धलेश्या वाले देवादि को जानना,
(५) समवहृत-असमवहृत होकर अविशुद्धलेश्या वाले देवादि को जानना ।
(६) समवहृत-असमवहृत होकर विशुद्धलेश्या वाले देवादि को जानना ।

उक्त छहो आलापको मे अविशुद्धलेश्या वाले अनगार के जानने-देखने का निषेध किया गया है । क्योकि अविशुद्धलेश्या होने से वह अनगार किसी वस्तु को सम्यक् रूप से नही जानता है और नही देखता है ।

विशुद्धलेश्या वाले अनगार को लेकर भी पूर्वोक्त रीति से छह आलापक कहने चाहिए और उन सब मे देवादि पदार्थों को जानना-देखना कहना चाहिए । विशुद्धलेश्या वाला अनगार पदार्थों को सम्यक् रूप से जानता और देखता है । विशुद्धलेश्या वाला होने से यथावस्थित ज्ञान-दर्शन होता है अन्यथा नही ।

मूल टीकाकार ने कहा है कि विशुद्धलेश्या वाला शोभन या अशोभन वस्तु को यथार्थ रूप मे जानता है । समुद्घात भी उसका प्रतिवन्धक नही होता । उसका समुद्घात भी अत्यन्त अशोभन नही होता ।[1]

तात्पर्य यह है कि अविशुद्धलेश्या वाला पदार्थों को सही परिप्रेक्ष्य मे नही जानता और नही देखता जबकि विशुद्धलेश्या वाला पदार्थों को सही रूप मे जानता है और देखता है ।

सम्यग्-मिथ्याक्रिया का एक साथ न होना

१०४ अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति एवं भासेंति, एव पण्णवेंति एवं परूवेंति—एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएण दो किरियाओ पकरेइ, तंजहा—सम्मत्तकिरियं च मिच्छत्तकिरियं च । जं समयं सम्मत्तकिरियं पकरेइ तं समय मिच्छत्तकिरियं पकरेइ, जं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ तं समयं सम्मत्तकिरियं पकरेइ । सम्मत्तकिरियापकरणताए मिच्छत्तकिरियं पकरेइ, मिच्छत्तकिरिया-

---

१ शोभनमशोभन वा वस्तु यथावद् विशुद्धलेश्यो जानाति । समुद्घातोऽपि तस्याप्रतिवन्धक एव ।

—मूलटीकायाम् ।

पकरणताए सम्मत्तकिरियं पकरेइ; एवं खलु एगे जीवे एगेण समएणं दो किरियाओ पकरेइ, तं जहा—सम्मत्तकिरियं च मिच्छत्तकिरियं च। से कहमेयं भंते! एव ?

गोयमा! जण्ण ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति, एवं भासंति, एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति एवं खलु एगे जीवे एगेणं समएणं दो किरियाओ पकरेइ तहेव जाव सम्मत्तकिरियं च मिच्छत्तकिरिय च, जे ते एवमाहंसु त ण मिच्छा; अह पुण गोयमा! एवं आइक्खामि जाव परूवेमि—

एव खलु एगे जीवे एगेणं समएणं एग किरियं पकरेई, तं जहा—सम्मत्तकिरिय वा मिच्छत्त-किरियं वा। जं समयं सम्मत्तकिरियं पकरेइ नो तं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ। त चेव जं समयं मिच्छत्तकिरियं पकरेइ नो त समय सम्मत्तकिरियं पकरेइ। सम्मत्तकिरियापकरणयाए नो मिच्छत्त-किरियं पकरेइ, मिच्छत्तकिरियापकरणयाए नो सम्मत्तकिरियं पकरेइ। एवं खलु एगे जीवे एगेण समएणं एगं किरियं पकरेइ, तं जहा—सम्मत्तकिरियं वा मिच्छत्तकिरियं वा।

से त्तं तिरिक्खजोणिय—उद्देसओ बीओ समत्तो।

[१०४] हे भगवन्! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, इस प्रकार बोलते हैं, इस प्रकार प्रज्ञापना करते हैं, इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि 'एक जीव एक समय मे दो क्रियाएँ करता है, यथा सम्यक्क्रिया और मिथ्याक्रिया। जिस समय सम्यक्क्रिया करता है उसी समय मिथ्याक्रिया भी करता है, और जिस समय मिथ्याक्रिया करता है, उस समय सम्यक्क्रिया भी करता है। सम्यक्-क्रिया करते हुए (उसके साथ ही) मिथ्याक्रिया भी करता है और मिथ्याक्रिया करने के साथ ही सम्यक्क्रिया भी करता है। इस प्रकार एक जीव एक समय मे दो क्रियाएँ करता है, यथा—सम्यक्-क्रिया और मिथ्याक्रिया।'

हे भगवन्! उनका यह कथन कैसा है ?

हे गौतम! जो वे अन्यतीर्थिक ऐसा कहते है, ऐसा बोलते है, ऐसी प्रज्ञापना करते हैं और ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि एक जीव एक समय मे दो क्रियाएँ करता है—सम्यक्क्रिया और मिथ्या-क्रिया। जो अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं वे मिथ्या कथन करते है।

गौतम! मैं ऐसा कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि एक जीव एक समय मे एक ही क्रिया करता है, यथा सम्यक्क्रिया अथवा मिथ्याक्रिया। जिस समय सम्यक्क्रिया करता है उस समय मिथ्याक्रिया नही करता और जिस समय मिथ्याक्रिया करता है उस समय सम्यक्क्रिया नही करता है और मिथ्याक्रिया करने के साथ सम्यक्क्रिया नही करता। इस प्रकार एक जीव एक समय मे एक ही क्रिया करता है, यथा—सम्यक्क्रिया अथवा मिथ्याक्रिया।

॥ तिर्यक्योनिक अधिकार का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे सम्यक्क्रिया और मिथ्याक्रिया एक साथ एक जीव नही कर सकता, इस विषय को अन्यतीर्थिको की मान्यता का पूर्वपक्ष के रूप मे कथन करके उसका खण्डन किया गया है। अन्यतीर्थिक कहते है, विस्तार से व्यक्त करते है, अपनी बात दूसरो को समझाते हैं और निश्चित रूप से निरूपण करते है कि 'एक जीव एक समय मे एक साथ सम्यक्क्रिया भी करता

है और मिथ्याक्रिया भी करता है। सुन्दर अध्यवसाय वाली क्रिया सम्यक्क्रिया है और असुन्दर अध्यवसाय वाली क्रिया मिथ्याक्रिया है। जिस समय जीव सम्यक्क्रिया करता है उसके साथ मिथ्याक्रिया भी करता है और जिस समय मिथ्याक्रिया करता है उस समय सम्यक्क्रिया भी करता है। क्योकि जीव का स्वभाव उभयक्रिया करने का है। दोनो क्रियाओ को सवलित रूप मे करने का जीव का स्वभाव है। अत जीव जिस किसी भी अच्छी या बुरी क्रिया मे प्रवृत्त होता है तो उसका उभय-क्रिया करने का स्वभाव विद्यमान रहता है। उभयक्रिया करने का स्वभाव होने से उसकी क्रिया भी उभयरूप होती है। दूध और पानी मिला हुआ होने पर उसे उभयरूप कहना होगा, एकरूप नही। अतएव जिस समय जीव सम्यक्क्रिया कर रहा है उस समय उसके उभयक्रियाकरणस्वभाव की प्रवृत्ति भी हो रही है, अन्यथा सर्वात्मना प्रवृत्ति नही हो सकती। उभयकरणस्वभाव की प्रवृत्ति होने से जिस समय सम्यक्क्रिया हो रही है उस समय मिथ्याक्रिया भी हो रही है और जिस समय मिथ्याक्रिया हो रही है उस समय सम्यक्क्रिया भी हो रही है अत एक जीव एक समय मे एक साथ दोनो क्रियाए कर सकता है—सम्यक्क्रिया भी और मिथ्याक्रिया भी।'

उक्त अन्यतीर्थिको की मान्यता मिथ्या है। प्रभु फरमाते हैं कि गौतम ! एक जीव एक समय मे एक ही क्रिया कर सकता है—सम्यक्क्रिया अथवा मिथ्याक्रिया। वह इन दोनो क्रियाओ को एक साथ नही कर सकता क्योकि इन दोनो मे परस्परपरिहाररूप विरोध है। सम्यक्क्रिया हो रही है तो मिथ्याक्रिया नही हो सकती और मिथ्याक्रिया हो रही है तो सम्यक्क्रिया नही हो सकती। जीव का उभयकरणस्वभाव है ही नही। यदि उभयकरणस्वभाव माना जाय तो मिथ्यात्व की कभी निवृत्ति नही होगी और ऐसी स्थिति मे मोक्ष का अभाव हो जावेगा।

अतएव यह सिद्ध होता है कि सम्यक्क्रिया करते समय मिथ्याक्रिया नही करता और मिथ्याक्रिया करते समय सम्यक्क्रिया नही करता। सम्यक्क्रिया और मिथ्याक्रिया एक दूसरे को छोडकर रहती हैं, एक साथ नही रह सकती। अतएव यही सही सिद्धान्त है कि एक जीव एक समय मे एक समय मे एक ही क्रिया कर सकता है—सम्यक्त्वक्रिया या मिथ्याक्रिया, दोनो क्रियाएँ एक साथ कदापि सम्भव नही हैं।

।। तृतीय प्रतिपत्ति के तिर्यक्योनिक अधिकार मे
द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

□

तृतीय प्रतिपत्ति

मनुष्य का अधिकार

तिर्यक्योनिको का कथन करने के पश्चात् अब क्रमप्राप्त मनुष्य का अधिकार चलता है। उसका आदिसूत्र है—

१०५. से किं तं मणुस्सा ?

मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता, तंजहा—संमुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कतियमणुस्सा य।

[१०५] हे भगवन् ! मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

गौतम ! मनुष्य दो प्रकार के हैं, यथा—१ सम्मूर्च्छिममनुष्य और २. गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्य।

१०६ से किं तं संमुच्छिममणुस्सा ?

संमुच्छिममणुस्सा एगागारा पण्णत्ता।

कहि णं भंते ! संमुच्छिममणुस्सा समुच्छंति ?

गोयमा ! अंतोमणुस्सखेत्ते जहा पण्णवणाए जाव से त्तं संमुच्छिममणुस्सा।

[१०६] भगवन् ! सम्मूर्च्छिममनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

गौतम ! सम्मूर्च्छिममनुष्य एक ही प्रकार के कहे गये हैं।

भगवन् ! ये सम्मूर्छिममनुष्य कहाँ पैदा होते है ?

गौतम ! मनुष्यक्षेत्र मे (१४ अशुचिस्थानो मे उत्पन्न होते हैं) इत्यादि जो वर्णन प्रज्ञापना-सूत्र मे किया गया है, वह सम्पूर्ण यहाँ कहना चाहिए यावत् यह सम्मूर्च्छिममनुष्यो का कथन हुआ।

विवेचन—सम्मूर्च्छिममनुष्यो के उत्पत्ति के १४ अशुचिस्थान तथा उनकी अन्तर्मुहूर्त मात्र आयु आदि के सम्बन्ध मे प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद मे विस्तृत वर्णन है तथा इसी जीवाजीवाभिगमसूत्र की द्वितीय प्रतिपत्ति मे पहले इनका वर्णन किया जा चुका है। जिज्ञासु वहाँ देख सकते हैं।

१०७ से किं तं गब्भवक्कतियमणुस्सा ?

गब्भवक्कतियमणुस्सा तिविहा पण्णत्ता, तंजहा—१ कम्मभूमगा, २. अकम्मभूमगा, ३. अंतर-दीवगा।

[१०७] हे भगवन् ! गर्भव्युत्क्रातिकमनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

गौतम ! गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य तीन प्रकार के हैं, यथा—१ कर्मभूमिक, २. अकर्मभूमिक और ३ आन्तर्द्वीपिक।

१०८ से किं तं अंतरदीवगा ?

अंतरदीवगा अट्ठावीसइविहा पण्णत्ता, तंजहा—एगुरुया आभासिया वेसाणिया णांगोली हयकण्णगा० आयसमुहा० आसमुहा० आसकण्णा० उक्कामुहा० घणदंता जाव सुद्धदंता ।

[१०८] हे भगवन् ! आन्तर्द्वीपिक मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

गौतम ! आन्तर्द्वीपिक अट्ठावीस प्रकार के है, जैसे कि एकोरुक, आभाषिक, वैषाणिक, नागोलिक, हयकर्ण आदि, आदर्शमुख आदि, अश्वमुख आदि, अश्वकर्ण आदि, उल्कामुख आदि, घनदन्त आदि यावत् शुद्धदत ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे गर्भज मनुष्यो के तीन प्रकार कर्मभूमिक, अकर्मभूमिक और अन्तर्द्वीपिको का कथन करने के पश्चात् 'अस्त्यनानुपूर्व्यपि' अर्थात् अननुक्रम से भी कथन किया जाता है, इस न्याय से अन्तर्द्वीपिको के विषय मे प्रश्न और उत्तर दिये गये हैं ।

लवणसमुद्र के अन्दर अन्तर्-अन्तर् पर द्वीप होने से ये अन्तर्द्वीप कहलाते है और इनमे रहने वाले मनुष्य 'तात्स्थ्यात्तद्व्यपदेश' इस न्याय से अन्तर्द्वीपिक कहे जाते हैं, जैसे पजाब मे रहने वाले पुरुष पजाबी कहे जाते हैं ।

आन्तर्द्वीपिक मनुष्य अट्ठावीस प्रकार के हैं, यथा—१ एकोरुक, २ आभाषिक, ३ वैषाणिक, ४ नागोलिक, ५ हयकर्ण, ६. गजकर्ण, ७ गोकर्ण, ८ शष्कुलीकर्ण, ९ आदर्शमुख, १० मेण्ढमुख, ११ अयोमुख, १२ गोमुख, १३ अश्वमुख, १४ हस्तिमुख, १५ सिहमुख, १६ व्याघ्रमुख, १७ अश्वकर्ण, १८ सिंहकर्ण, १९ अकर्ण, २० कर्णप्रावरण, २१ उल्कामुख, २२ मेघमुख, २३ विद्युत्दत, २४ विद्युत्जिह्व, २५ घनदन्त, २६ लष्टदन्त, २७ गूढदन्त और २८. शुद्धदन्त ।

इन द्वीपो मे रहने वाले मनुष्य भी उसी नाम से जाने जाते है ।

इन आन्तर्द्वीपिको का आगे के सूत्र मे विस्तार से वर्णन किया जा रहा है ।

एकोरुक मनुष्यों के एकोरुकद्वीप का वर्णन

१०९ कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साण एगोरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवंतस्स वासधरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं एगोरुयमणुस्साणं एगोरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते तिन्नि जोयणसयाइं आयाम-विक्खभेणं णवएगूणपण्णजोयणसए किंचि विसेसेण परिक्खेवेणं एगाए पउमवरवेदियाए एगेण च वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।

सा ण पउमवरवेदिया अट्ठजोयणाइं उड्ढ उच्चत्तेण पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं एगोरुयदीवं समता परिक्खेवेणं पण्णत्ता । तीसेणं पउमवरवेदियाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तजहा—वइरामया निम्मा एवं वेदियावण्णओ जहा रायपसेणइए तहा भाणियव्वो ।

[१०९] हे भगवन् ! दक्षिण दिशा के एकोरुक मनुष्यो का एकोरुक नामक द्वीप कहाँ रहा हुआ है ?

हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण में क्षुल्ल (चुल्ल) हिमवत नामक वर्षधर पर्वत के उत्तरपूर्व के चरमान्त से लवणसमुद्र मे तीन सौ योजन जाने पर दक्षिणदिशा के एकोरुक मनुष्यो का एकोरुक नामक द्वीप कहा गया है। वह द्वीप तीन सौ योजन की लम्बाई-चौडाई वाला तथा नौ सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक परिधि वाला है। उसके चारो ओर एक पद्मवरवेदिका और एक वनखड है। वह पद्मवरवेदिका आठ योजन ऊँची, पाच सौ धनुष चौडाई वाली और एकोरुक द्वीप को सब तरफ से घेरे हुए है। उस पद्मवरवेदिका का वर्णन इस प्रकार है, यथा—उसकी नीव वज्रमय है आदि वेदिका का वर्णन राजप्रश्नीयसूत्र की तरह कहना चाहिए।

विवेचन—यहाँ दक्षिण दिशा के एकोरुकमनुष्यो के एकोरुक द्वीप के विषय मे कथन है। एकोरुकमनुष्य शिखरीपर्वत पर भी हैं किन्तु वे मेरुपर्वत के उत्तरदिशा मे हैं। उनका व्यवच्छेद करने के लिए यहाँ 'दक्षिणदिशा के' ऐसा विशेषण दिया गया है। दक्षिणदिशा के एकोरुकमनुष्यो का एकोरुकद्वीप कहाँ है ? यह प्रश्न का भाव है। उत्तर मे कहा गया है कि इसी जबूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण मे तथा चुल्लहिमवान नामक वर्षधर पर्वत के उत्तरपूर्व (ईशानकोण) के चरमान्त से लवणसमुद्र मे तीन सौ योजन आगे जाने पर दक्षिणात्य एकोरुकमनुष्यो का एकोरुकद्वीप है।

वह एकोरुकद्वीप तीन सौ योजन की लम्बाई-चौडाई वाला और नौ सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक परिधि वाला है। उसके आसपास चारो ओर एक पद्मवरवेदिका है, उसके चारो ओर एक वनखण्ड है। वह पद्मवरवेदिका आठ योजन ऊँची, पाच सौ धनुष चौडी है। उसका वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र मे किये गये पद्मवरवेदिका के समान जानना चाहिए, जैसेकि उसकी नीव वज्ररत्नो की है, आदि-आदि। पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णन आगे स्वय सूत्रकार द्वारा कथित जबूद्वीप की जगती के आगे की पद्मवरवेदिका और वनखण्ड के वर्णन के समान समझना चाहिए। अतएव यहाँ वह वर्णन नही दिया जा रहा है।

११०. सा णं पउमवरवेइया एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खभेणं वेइयासमेणं परिक्खेवेणं पण्णत्ते। ते णं वणसंडे किण्हे किण्होभासे एव जहा रायपसेणइए वणसंडवण्णओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं, तणाण य वण्णगधफासो सद्दो वावीओ उप्पायपव्वया पुढविसिलापट्टगा य भाणियव्वा जाव एत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरंति।

[११०] वह पद्मवरवेदिका एक वनखण्ड से सब ओर से घिरी हुई है। वह वनखण्ड कुछ कम दो योजन गोलाकार विस्तार वाला और वेदिका के तुल्य परिधि वाला है। वह वनखण्ड बहुत हरा-भरा और सघन होने से काला और कालीकान्ति वाला प्रतीत होता है, इस प्रकार राजप्रश्नीयसूत्र के अनुसार वनखण्ड का सब वर्णन जान लेना चाहिए। तृणो का वर्ण, गध, स्पर्श, शब्द तथा बावडियाँ, उत्पातपर्वत, पृथ्वीशिलापट्टक आदि का भी वर्णन कहना चाहिए। यावत् वहाँ बहुत से वानव्यन्तर देव और देवियां उठते-बैठते हैं, यावत् सुखानुभव करते हुए विचरण करते हैं।

एकोरुकद्वीप का वर्णन

१११. [१] एगोरुयदीवस्स णं भंते ! दीवस्स केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! एगोरुयदीवस्स णं दीवस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा, एवं सयणिज्जे भाणियव्वे जाव पुढविसिलापट्टगंसि तत्थ णं बहवे एगोरुयदीवया मणुस्सा य मणुस्सीओ य आसयंति जाव विहरंति।

[१११] (१) हे भगवन् ! एकोरुकद्वीप की भूमि आदि का स्वरूप किस प्रकार का कहा गया है ?

गौतम ! एकोरुकद्वीप का भीतरी भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय कहा गया है। जैसे मुरज (मृदंग विशेष) का चर्मपुट समतल होता है वैसा समतल वहाँ का भूमिभाग है—आदि। इसी प्रकार शय्या की मृदुता भी कहनी चाहिए यावत् पृथ्वीशिलापट्टक का भी वर्णन करना चाहिए। उस शिलापट्टक पर बहुत से एकोरुकद्वीप के मनुष्य और स्त्रियां उठते-बैठते हैं यावत् पूर्वकृत शुभ कर्मों के फल का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में एकोरुकद्वीप की भूमिरचना का वर्णन किया गया है। वहाँ का भूमिभाग एकदम समतल है। इस समतलता को बताने के लिए विविध उपमाओं का सहारा लिया गया है। सूत्र में साक्षात् रूप से 'आलिंगपुक्खरेइ वा' कहा गया है जिसका अर्थ है—आलिंग अर्थात् मुरज। मुरज मृदंग का ही एक प्रकार है। पुष्कर का अर्थ है—चर्मपुटक। जैसे मुरज और मृदंग का चर्मपुट एकदम समतल होता है उसी प्रकार एकोरुकद्वीप का भूमिभाग एकदम समतल और रमणीय है। यावत् शब्द से अन्य निम्न उपमाओं का ग्रहण समझना चाहिए—

जैसे मृदंग का मुख चिकना और समतल होता है, जैसे पानी से लबालब भरे हुए तालाब का पानी समतल होता है, जैसे हथेली का तलिया, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, दर्पण का तल जैसे समतल होते हैं वैसे ही वहाँ का भूमिभाग समतल है। जैसे भेड़, बैल, सूअर, सिंह, व्याघ्र, वृक (भेडिया) और चीता इनके चर्म को बड़ी-बड़ी कीलों द्वारा खींचकर अति समतल कर दिया जाता है वैसे ही वहाँ का भूमिभाग अति समतल और रमणीय है। वह भूमि आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणी, प्रश्रेणी, स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्यमान, वर्द्धमान, मत्स्याण्ड, मकराण्ड जार मार पुष्पावलि, पद्मपत्र, सागर-तरंग, वासन्तीलता, पद्मलता आदि नाना प्रकार के मांगलिक रूपों की रचना से चित्रित तथा सुन्दर दृश्य वाले, सुन्दर कान्ति, सुन्दर शोभा वाले, चमकती हुई उज्ज्वल किरणों वाले और प्रकाश वाले नाना प्रकार के पांच वर्णों वाले तृणों और मणियों से उपशोभित होती रहती है। वह भूमिभाग कोमलस्पर्श वाला है। उस कोमलस्पर्श को बताने के लिए शय्या का वर्णनक कहना चाहिए। तात्पर्य यह है कि आजिनक (मृगचर्म), रुई, बूर (वनस्पतिविशेष), मक्खन, तूल जैसे मुलायम स्पर्श वाली वह भूमि है। वह भूमिभाग रत्नमय, स्वच्छ, चिकना, घृष्ट (घिसा हुआ), मृष्ट (मंजा हुआ), रजरहित, निर्मल, निष्पंक, कंकररहित, सुप्रभ, सश्रीक, उद्योतवाला प्रमाद पैदा करनेवाला दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है।

वहाँ पृथ्वीशिलापट्टक भी है जिसका वर्णन औपपातिकसूत्रानुसार जान लेना चाहिए। उस शिलापट्टक पर बहुत से एकोरुकद्वीपवासी स्त्री-पुरुष उठते-बैठते हैं, लेटते हैं, आराम करते है और पूर्वकृत शुभकर्मों के फल को भोगते हुए विचरण करते हैं।

द्रुमादि वर्णन

[२] एगोरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे उद्दालका कोद्दालका कयमाला णयमाला णट्टमाला सिंगमाला संखमाला दंतमाला सेलमाला णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला मूलमंतो कंदमंतो जाव बीयमंतो पत्तेहिं य पुप्फेहिं य आछन्नपडिच्छण्णा सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

एगोरुयदीवे णं दीवे रुक्खा बहवे हेरुयालवणा भेरुयालवणा मेरुयालवणा सेरुयालवणा सालवणा सरलवणा सत्तवण्णवणा पूयफलिवणा खज्जूरीवणा णालिएरिवणा कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति।

एगोरुयदीवे णं तत्थ तत्थ बहवे तिलया, लवया, नग्गोहा जाव रायरुक्खा णंदिरुक्खा कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति।

एगोरुयदीवे णं तत्थ बहूओ पउमलयाओ जाव सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ एवं लयावण्णओ जहा उववाइए जाव पडिरूवाओ।

एगोरुयदीवे णं तत्थ तत्थ बहवे सेरियागुम्मा जाव महाजाइगुम्मा, ते णं गुम्मा दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमंति विहुयग्गसाहा जेण वायविधूयग्गसाला एगोरुयदीवस्स बहुसमरमणिज्जभूमिभागं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेंति।

एगोरुयदीवे णं तत्थ तत्थ बहुओ वणराईओ पण्णत्ताओ, ताओ णं वणराईओ किण्हाओ किण्होभासाओ जाव रम्माओ महामेहणिकुरंबभूयाओ जाव महती गंधद्धणि मुयंतीओ पासाईयाओ।

[१११] (२) हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुक नामक द्वीप मे स्थान-स्थान पर यहाँ-वहाँ बहुत से उद्दालक, कोद्दालक, कृतमाल, नतमाल, नृत्यमाल, शृ गमाल, शखमाल, दतमाल और शैलमाल नामक द्रुम (वृक्ष) कहे गये है। वे द्रुम कुश (दर्भ) और कास से रहित मूल वाले है अर्थात् उनके आसपास दर्भ और कास नही है। वे प्रशस्त मूल वाले, प्रशस्त कद वाले यावत् प्रशस्त बीज वाले हैं और पत्रो तथा पुष्पो से आच्छन्न, प्रतिछन्न हैं अर्थात् पत्रो और फूलो से लदे हुए है और शोभा से अतीव-अतीव शोभायमान है।

उस एकोरुकद्वीप मे जगह-जगह बहुत से वृक्ष है। साथ ही हेरुतालवन,[1] भेरुतालवन, मेरुतालवन, सेरुतालवन, सालवन, सरलवन, सप्तपर्णवन, सुपारी के वन, खजूर के वन और नारियल के वन है। ये वृक्ष और वन कुश और कास से रहित यावत् शोभा से अतीव-अतीव शोभायमान है।

उस एगोरुकद्वीप मे स्थान-स्थान पर बहुत से तिलक, लवक, न्यग्रोध यावत् राजवृक्ष, नदिवृक्ष हैं जो दर्भ और कास से रहित हैं यावत् श्री से अतीव शोभायमान हैं।

१ वृक्षो के समुदाय को वन कहते है।

उस एकोरुकद्वीप मे जगह-जगह वहुत सी पद्मलताएँ यावत् श्यामलताएँ हैं जो नित्य कुसुमित रहती हैं—आदि लता का वर्णन औपपातिकसूत्र के अनुसार कहना चाहिए यावत् वे अत्यन्त प्रसन्नता उत्पन्न करने वाली, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

उस एकोरुकद्वीप मे जगह-जगह वहुत से सेरिकागुल्म यावत् महाजातिगुल्म हैं। (जिनका स्कध तो छोटा हो किन्तु शाखाएँ वडी-वडी हो और पत्र-पुष्पादि से लदे रहते हैं उन्हे गुल्म कहते हैं।) वे गुल्म पाच वर्णों के फूलो से नित्य कुसुमित रहते हैं। उनकी शाखाएँ पवन मे हिलती रहती हैं जिससे उनके फूल एकोरुकद्वीप के भूमिभाग को आच्छादित करते रहते हैं। (ऐसा प्रतीत होता है मानो ये एकोरुकद्वीप के वहुसमरमणीय भूमि भाग पर फूलो की वर्षा कर रहे हों।)

एकोरुकद्वीप में स्थान-स्थान पर वहुत सी वनराजियाँ हैं। वे वनराजियाँ अत्यन्त हरी-भरी होने से काली प्रतीत होती हैं, काली ही उनकी कान्ति है यावत् वे रम्य हैं और महामेघ के समुदाय-रूप प्रतीत होती हैं यावत् वे वहुत ही मोहक और तृप्तिकारक सुगध छोडती हैं और वे अत्यन्त प्रसन्नता पैदा करने वाली दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। (वनो की पक्तियो को वनराजि कहते हैं।)

मत्तांग कल्पवृक्ष का वर्णन

[३] एगोरुयदीवे तत्थ तत्थ वहवे मत्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से चंदप्पभमणि सिलागवरसीधुपवरवारुणि सुजातफलपत्तपुप्फचोयणिज्जाससारवहुदव्वजुत्तिसंभारकाल संधियासवा महुमेरगरिट्ठाभदुद्धजातीपसन्नमेल्लगसयाउ खज्जूरमुद्दियासारकाविसायण सुपक्कखोयरस-वरसुरा वण्णरसगधफरिसजुत्तवलवीरियपरिणामा मज्जविहित्थवहुप्पगारा तदेवं ते मत्तंगया वि दुमगणा अणेगवहुविविधवीससा परिणयाए मज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा विसट्टंति कुसविकुस-विसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ॥१॥

[१११] (३) हे आयुष्मन् श्रमण! उस एकोरुकद्वीप मे स्थान-स्थान पर मत्ताग नामक कल्पवृक्ष हैं। जैसे चन्द्रप्रभा, मणि-शलाका श्रेष्ठ सीधु, प्रवरवारुणी, जातिवत फल-पत्र-पुष्प सुगधित द्रव्यो से निकाले हुए सारभूत रस और नाना द्रव्यो से युक्त एव उचित काल मे सयोजित करके वनाये हुए आसव, मधु, मेरक, रिष्टाभ, दुग्धतुल्यस्वाद वाली प्रसन्न, मेल्लक, शतायु, खजूर और मृद्विका (दाख) के रस, कपिश (धूम्र) वर्ण का गुड का रस, सुपक्व क्षोद (काष्ठादि चूर्णो का) रस, वरसुरा आदि विविध मद्य प्रकारो मे जैसे वर्ण, रस, गध और स्पर्श तथा वलवीर्य पैदा करने वाले परिणमन होते हैं, वैसे ही वे मत्तांग वृक्ष नाना प्रकार के विविध स्वाभाविक परिणाम वाली मद्यविधि से युक्त और फलो से परिपूर्ण हैं एव विकसित हैं। वे कुश और कास से रहित मूल वाले तथा शोभा से अतीव-अतीव शोभायमान हैं ॥१॥

भृतांग कल्पवृक्ष का वर्णन

[४] एक्कोरुएदीवे तत्थ तत्थ वहवे भियंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से वारगघडकरगकलसकक्करिपायकंचणि-उदंक-वद्धणि-सुपतिट्ठगपारीचसकभिंगारकरोडि सरग थरग

पत्ती थाल मल्लग चवलिय दगवारक विचित्रवट्टक मणिवट्टक सुत्तिचारुपीणया कंचणमणिरयणभत्ति-चित्ता भायणविहिए बहुप्पगारा तहेव ते भियंगा वि दुमगणा अणेग बहुगविविहवीससा परिणमाए भायणविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा विसट्टंति कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठति ॥२॥

[१११] (४) हे आयुष्मन् श्रमण! उस एकोरुक द्वीप मे जहाँ-तहाँ बहुत से भृत्तांग नामके कल्पवृक्ष हैं। जैसे वारक (मगलघट), घट, करक, कलश, कर्करी (गगरी), पादकचनिका (पाव धोने की सोने की पात्री), उदक (उलचना), वद्धणि (लोटा), सुप्रतिष्ठक (फूल रखने का पात्र), पारी (घी-तेल का पात्र), चषक (पानपात्र-गिलास आदि), भिंगारक (झारी), करोटि (कटोरा), शरक, थरक (पात्रविशेष), पात्री, थाली, जलभरने का घडा, विचित्र वर्तक (भोजनकाल मे घृतादि रखने के पात्रविशेष), मणियो के वर्तक, शुक्ति (चन्दनादि घिसकर रखने का छोटा पात्र) आदि बर्तन जो सोने, मणिरत्नो के बने होते हैं तथा जिन पर विचित्र प्रकार की चित्रकारी की हुई होती है वैसे ही ये भृत्ताग कल्पवृक्ष भाजनविधि मे नाना प्रकार के विस्रसापरिणत भाजनो से युक्त होते हैं, फलो से परिपूर्ण और विकसित होते हैं। ये कुश-कास से रहित मूल वाले यावत् शोभा से अतीव शोभायमान होते हैं ॥२॥

त्रुटितांग कल्पवृक्ष

[५] एगोरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे तुडियगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से आलिंग-मुयंग-पणव-पडह-दद्दरग-करडिडिंडिम-भंभाहोरंभ-कण्णियास्खरमुहि-मुगुंद-संखिय-परिलीवच्चग परिवाइणिवसावेणु-वीणा सुघोस-विवचि महति कच्छभि रगसरा तलताल कंसताल सुसंपउत्ता आतोज्ज विहिणिउणगंधव्वसमयकुसलेहिं फंदिया तिट्ठाणसुद्धा तहेव ते तुडियंगा वि दुमगणा अणेग बहुविविध वीससापरिणामाए ततविततघणसुसिराए चउव्विहाए आतोज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा विसट्टंति कुस-विकुस विसुद्धरक्खमूला जाव चिट्ठन्ति ॥३॥

[१११] (५) हे आयुष्मन् श्रमण! एकोरुकद्वीप मे जहाँ-तहाँ बहुत सारे त्रुटिताग नामक कल्पवृक्ष हैं। जैसे मुरज, मृदग, प्रणव (छोटा ढोल), पटह (ढोल), दर्दरक (काष्ट की चौकी पर रख कर बजाया जाने वाला तथा गोधादि के चमडे से मढा हुआ वाद्य), करटी, डिंडिम, भभा-ढक्का, होरभ (महाढक्का), क्वणित (वीणाविशेष), खरमुखी (काहला), मुकुद (मृदगविशेष), शखिका (छोटा शख), परिली-वच्चक (घास के तृणो को गूँथकर बनाये जाने वाले वाद्यविशेष), परिवादिनी (सात तार वाली वीणा), वंश (बासुरी), वीणा-सुघोषा-विपची-महती कच्छपी (ये सब वीणाओ के प्रकार हैं), रिगसका (घिसकर बजाये जाने वाला वाद्य), तलताल (हाथ से बजाई जाने वाली ताली), कास्यताल (कासी का वाद्य जो ताल देकर बजाया जाता है) आदि वादित्र जो सम्यक् प्रकार से बजाये जाते हैं, वाद्यकला मे निपुण एव गन्धर्वशास्त्र मे कुशल व्यक्तियो द्वारा जो स्पन्दित किये जाते हैं—बजाये जाते हैं, जो आदि-मध्य-अवसान रूप तीन स्थानो से शुद्ध हैं, वैसे ही ये त्रुटिताग कल्पवृक्ष नाना प्रकार के स्वाभाविक परिणाम से परिणत होकर तत-वितत-घन और शुषिर रूप चार प्रकार की वाद्य-विधि से युक्त होते है। ये फलादि से लदे होते है, विकसित होते हैं। ये वृक्ष कुश-विकुश से रहित मूल वाले यावत् श्री से अत्यन्त शोभायमान होते है ॥३॥

दीपशिखा नामक कल्पवृक्ष

[६] एगोरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे दीवसिहा णाम दुमगणा पण्णत्ता, समणाउसो ! जहा से संझाविरागसमए नवणिहिपइणो दीविया चक्कवालविंदे पभूय वट्टिपलित्तणेहे धणि उज्जालियतिमिरमद्दए कणगनिकर कुसुमित पालि जातय वणप्पगासे कंचनमणिरयणविमल महरिह तवणिज्जुज्जल विचित्तदंडाहिं दीवियाहिं सहसा पज्जलियउसवियणिद्ध तेयदिप्पंतविमलगहगण समप्पहाहिं वितिमिरकरसूरपसरियउल्लोय चिल्लयाहिं जालुज्जल पहसियाभिरामेहिं सोभेमाणा तहेव ते दीवसिहा वि दुमगणा अणेग बहुविविह वीससा परिणामाए उज्जोयविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा विसट्टंति कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ।।४।।

[१११] (६) हे आयुष्मन् श्रमण ! एकोरुक द्वीप मे यहाँ-वहाँ बहुत-से दीपशिखा नामक कल्पवृक्ष हैं। जैसे यहाँ सन्ध्या के उपरान्त समय मे नवनिधिपति चक्रवर्ती के यहाँ दीपिकाएँ होती हैं जिनका प्रकाशमण्डल सब ओर फैला होता है तथा जिनमे बहुत सारी वत्तियाँ और भरपूर तैल भरा होता है, जो अपने घने प्रकाश से अन्धकार का मर्दन करती हैं, जिनका प्रकाश कनकनिका (स्वर्णसमूह) जैसे प्रकाश वाले कुसुमो से युक्त पारिजात (देववृक्ष) के वन के प्रकाश जैसा होता है सोना मणिरत्न से बने हुए, विमल, बहुमूल्य या महोत्सवो पर स्थापित करने योग्य, तपनीय—स्वर्ण के समान उज्ज्वल और विचित्र जिनके दण्ड हैं, जिन दण्डो पर एक साथ प्रज्वलित, वत्ती को उकेर कर अधिक प्रकाश वाली किये जाने से जिनका तेज खूब प्रदीप्त हो रहा है तथा जो निर्मल ग्रहगणो की तरह प्रभासित हैं तथा जो अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य की फैली हुई प्रभा जैसी चमकीली हैं, जो अपनी उज्ज्वल ज्वाला (प्रभा) से मानो हँस रही हैं—ऐसी वे दीपिकाएँ शोभित होती हैं वैसे ही वे दीपशिखा नामक वृक्ष भी अनेक और विविध प्रकार के विस्रसा परिणाम वाली उद्योतविधि से (प्रकाशों से) युक्त है। वे फलो से पूर्ण हैं, विकसित हैं, कुशविकुश से विशुद्ध उनके मूल हैं यावत् वे श्री से अतीव अतीव शोभायमान हैं ।।४।।

ज्योतिशिखा नामक कल्पवृक्ष

[७] एगोरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे जोतिसिहा[1] णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो ! जहा से अचिरुग्गय सरयसूरमडल घडत उक्कासहस्सदिप्पत विज्जुज्जालहुयवहनिद्धूमजलियनिद्धंत धोय तत्त तवणिज्ज किंसुयासोयजवाकुसुमविमुउलिय पुंज मणिरयणकिरण जच्चहिंगुलुय निगररूवाइरेकरूवा तहेव ते जोतिसिहा वि दुमगणा अणेग बहुविविह वीससा परिणयाए उज्जोयविहीए उववेया सुहलेस्सा मदलेस्सा मंदायवलेस्सा कूडाय इव ठाणठिया अन्नमन्नसमोगाढाहिं लेस्साए साए पभाए सपदेसे सव्वओ समंता ओभासेंति उज्जोवेंति पभासेंति; कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ।।५।।

[१११] (७) हे आयुष्मन् श्रमण ! एकोरुक द्वीप मे जहाँ-तहाँ बहुत से ज्योतिशिखा(ज्योतिष्क) नाम के कल्पवृक्ष हैं। जैसे तत्काल उदित हुआ शरत्कालीन सूर्यमण्डल, गिरती हुई हजार उल्काएँ,

---

१ जोइसिया—इति पाठान्तरम्

चमकती हुई विजली, ज्वालासहित निर्धूम प्रदीप्त अग्नि, अग्नि से शुद्ध हुआ तप्त तपनीय स्वर्ण, विकसित हुए किंशुक के फूलो, अशोकपुष्पो और जपा-पुष्पो का समूह, मणिरत्न की किरणे, श्रेष्ठ हिंगलू का समुदाय अपने-अपने वर्ण एवं आभारूप से तेजस्वी लगते हैं, वैसे ही वे ज्योतिशिखा (ज्योतिष्क) कल्पवृक्ष अपने वहुत प्रकार के अनेक विस्रसा परिणाम से उद्योत विधि से (प्रकाशरूप से) युक्त होते हैं। उनका प्रकाश सुखकारी है, तीक्ष्ण न होकर मद है, उनका आताप तीव्र नही है, जैसे पर्वत के शिखर एक स्थान पर रहते हैं, वैसे ये अपने ही स्थान पर स्थित होते हैं, एक दूसरे से मिश्रित अपने प्रकाश द्वारा ये अपने प्रदेश मे रहे हुए पदार्थो को सब तरफ से प्रकाशित करते हैं, उद्योतित करते हैं, प्रभासित करते हैं। ये कल्पवृक्ष कुश-विकुश आदि से रहित मूल वाले है यावत् श्री से अतीव शोभायमान है ।।५।।

चित्रांग नामक कल्पवृक्ष

[८] एगोरुयदीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे चित्तगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से पेच्छाघरे विचित्ते रम्मे वरकुसुमदाममालुज्जले भासत मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए विरल्लिय विचित्तमल्लसिरिदाम मल्लसिरिसमुदयप्पगब्भे गंथिम वेढिम पूरिम सघाइमेण मल्लेण छेयसिप्पियं विभागरइएणं सव्वतो चेव समणुबद्धे पविरललवतविप्पइट्ठेहि पचवण्णेहिं कुसुमदामेहिं सोभमाणेहिं सोभमाणे वणमालकयगाए चेव दिप्पमाणे, तहेव ते चित्तगा वि दुमगणा अणेगबहुविविहवीससा-परिणयाए मल्लविहीए उववेया कुसविकुस विसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ।।६।।

[१११] (८) हे आयुष्मन् श्रमण! उस एकोरुक द्वीप मे यहाँ वहाँ वहुत सारे चित्राग नाम के कल्पवृक्ष हैं। जैसे कोई प्रेक्षाघर (नाटयशाला) नाना प्रकार के चित्रो से चित्रित, रम्य, श्रेष्ठ फूलो की मालाओ से उज्ज्वल, विकसित-प्रकाशित विखरे हुए पुष्प-पुजो से सुन्दर, विरल—पृथक्-पृथक् रूप से स्थापित हुई एव विविध प्रकार की गूंथी हुई मालाओ की शोभा के प्रकर्ष से अतीव मनमोहक होता है, ग्रथित-वेष्टित-पूरित-सघातिम मालाए जो चतुर कलाकारों द्वारा गूथी गई हैं उन्हे बडी ही चतुराई के साथ सजाकर सव ओर रखी जाने से जिसका सौन्दर्य बढ गया है, अलग अलग रूप से दूर दूर लटकती हुई पाच वर्णो वाली फूलमालाओ से जो सजाया गया हो तथा अग्रभाग मे लटकाई गई वनमाला से जो दीप्तिमान हो रहा हो ऐसे-प्रेक्षागृह के समान वे चित्राग कल्पवृक्ष भी अनेक-वहुत और विविध प्रकार के विस्रसा परिणाम से माल्यविधि (मालाओ) से युक्त है। वे कुश-विकुश से रहित मूल वाले यावत् श्री से अतीव सुशोभित है ।।६।।

चित्ररस नामक कल्पवृक्ष

[९] एगोरुयदीवे णं दीवे! तत्थ तत्थ बहवे चित्तरसा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से सुगंधवरकलमसालिविसिट्ठणिरुवहत दुद्धरद्धे सारयघयगुडखंडमहुमेलिए अतिरसे परमण्णे होज्ज उत्तमवण्णगंधमते, रण्णो जहा वा चक्कवट्टिस्स होज्ज निउणेहिं सूयपुरिसेहिं सज्जिएहिं वाउकप्पसेअसित्ते इव ओदणे कलमसालि णिव्वत्तिए विपक्के सवप्फमिउविसयसगलसित्थे अणेग-सालणगसंजुत्ते अहवा पडिपुण्ण दव्वुवक्खडेसु सक्कए वण्णगंधरसफरिसजुत्त बलवीरिय परिणामे

इंदियबलपुट्ठिवद्धणे खुप्पिवासमहणे पहाण-कुथियगुलखंडमच्छंडिघय-उवणीए पमोयगे सण्हसमियगब्भे हवेज्ज परमइट्ठंगसंजुत्ते तहेव ते चित्तरसा वि दुमगणा अणेग बहुविविहवीससापरिणयाए भोयण-विहीए उववेया कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ।।७।।

[१११] (९) हे आयुष्मन् श्रमण ! उस एकोरुक द्वीप मे जहाँ-तहाँ बहुत सारे चित्ररस नाम के कल्पवृक्ष है। जैसे सुगन्धित श्रेष्ठ कलम जाति के चावल और विशेष प्रकार की गाय से निसृत दोष रहित शुद्ध दूध से पकाया हुआ, शरद ऋतु के घी-गुड-शक्कर और मधु से मिश्रित अति स्वादिष्ट और उत्तम वर्ण-गध वाला परमान्न (पायस—खीर या दूधपाक) निष्पन्न किया जाता है, अथवा जैसे चक्रवर्ती राजा के कुशल सूपकारो (रसोइयो) द्वारा निष्पादित चार उकालो से (कल्पो से) सिका हुआ, कलम जाति के ओदन जिनका एक-एक दाना वाष्प से सीझ कर मृदु हो गया है, जिसमे अनेक प्रकार के मेवा-मसाले डाले गये हैं, इलायची आदि भरपूर सुगधित द्रव्यो से जो सस्कारित किया गया है, जो श्रेष्ठ वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श से युक्त होकर बल-वीर्य रूप मे परिणत होता है, इन्द्रियो की शक्ति को बढाने वाला है, भूख-प्यास को शान्त करने वाला है, प्रधानरूप से चासनी रूप बनाये हुए गुड, शक्कर या मिश्री से युक्त किया हुआ है, गर्म किया हुआ घी डाला गया है, जिसका अन्दरूनी भाग एकदम मुलायम एव स्निग्ध हो गया है, जो अत्यन्त प्रियकारी द्रव्यो से युक्त किया गया है, ऐसा परम आनन्ददायक परमान्न (कल्याण भोजन) होता है, उस प्रकार की (भोजन विधि सामग्री) से युक्त वे चित्ररस नामक कल्पवृक्ष होते हैं। उन वृक्षो मे यह सामग्री नाना प्रकार के विस्रसा परिणाम से होती है। वे वृक्ष कुश-काश आदि से रहित मूल वाले और श्री से अतीव सुशोभित होते हैं ।।७।।

मण्यंग नामक कल्पवृक्ष

[१०] एगोरुयदीवे ण दीवे तत्थ तत्थ बहवे मणियंगा नाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो ! जहा से हारद्धहार वट्टणग मउड-कुंडल वामुत्तग हेमजाल मणिजाल कणगजालगसुत्तग उच्चिइय कटगा खुडिय एकावलि कठसुत्त मकरिय उरत्थगेवेज्ज सोणि सुत्तग चूलामणि कणग तिलगफुल्लसिद्ध-त्थय कण्णवालि ससिसूर उसभ चक्कग तलभंग तुडिय हत्थमालग वलक्ख दीणारमालिया चदसूर-मालिया हरिसय केयूर वलयपालब अंगुलेज्जग कची मेहला कलाव पयरगपायजाल घटिय खिंखिणि रयणोरजालत्थिमिय वरणेउर चलणमालिया कणगनिगरमालिया कंचनमणि रयण भत्तिचित्ता भूसणविधी बहुपगारा तहेव ते मणियंगा वि दुमगणा अणेगबहुविविह वीससा परिणयाए भूसणविहीए उववेया, कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ।।८।।

[१११] (१०) हे आयुष्मन् श्रमण ! एकोरुक द्वीप मे यहाँ-वहाँ बहुत से मण्यग नामक कल्पवृक्ष हैं। जिस प्रकार हार (अठारह लडियो वाला) अर्धहार (नौ लडियो वाला), वेष्टनक (कर्ण का आभूषण), मुकुट, कुण्डल, वामोत्तक (छिद्र—जाली वाला आभूषण), हेमजालमणिजाल-कनकजाल (ये कान के आभूषण हैं), सूत्रक(सोने का डोरा-उपनयन), उच्चयित कटक (उठा हुआ कड़ा या चूडी), मुद्रिका (अगूठी), एकावली (मणियो की एक सूत्री माला), कण्ठसूत्र, मकराकार आभूषण, उर स्कन्ध ग्रैवेयक (गले का आभूषण), श्रोणीसूत्र(करधनी-कदौरा), चूडामणि (मस्तक का भूषण), सोने का तिलक

(टीका), पुष्प के आकार का ललाट का आभरण (बिंदिया), सिद्धार्थक (सर्षप प्रमाण सोने के दानो से बना भूषण), कर्णपाली (लटकन), चन्द्र के आकार का भूषण, सूर्य के आकार का भूषण, (ये बालो मे लगाये जाने वाले पिन जैसे है), वृषभ के आकार के, चक्र के आकार के भूषण, तल भगक-त्रुटिक (ये भुजा के आभूषण-भुजबद है), मालाकार हस्ताभूषण, वलक्ष (गले का भूषण), दीनार की आकृति की मणिमाला, चन्द्र-सूर्यमालिका, हर्षक, केयूर, वलय, प्रालम्बनक (झूमका), अगुलीयक (मुद्रिका) काञ्ची, मेखला, कलाप, प्रतरक, प्रातिहारिक, पाँव मे पहने जाने वाले घुघरू, किंकणी (बिच्छुडी), रत्नमय कन्दौरा, नूपुर, चरणमाला, कनकनिकर माला आदि सोना-मणि-रत्न आदि की रचना से चित्रित और सुन्दर आभूषणो के प्रकार हैं उसी तरह वे मण्यग वृक्ष भी नाना प्रकार के बहुत से स्वाभाविक परिणाम मे परिणत होकर नाना प्रकार के भूषणो से युक्त होते है। वे दर्भ, कास आदि से रहित मूल वाले हैं और श्री से अतीव शोभायमान हैं ।।९।।

गेहाकार कल्पवृक्ष

[११] एगोरुय दीवे णं दीवे तत्थ तत्थ बहवे गेहागारा नाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो ! जहा से पागाराट्टालक चरियगोपुरपासायाकासतल मंडव एगसाल विसालगतिसालग चउरंस चउसाल-गब्भघर मोहणघर वलभिघर चित्तसाल मालय भत्तिघर वट्टतस चउरंस णदियावत्त संठियायत पंडुरतल मुंडमालहम्मियं अहव णं धवलहरअद्धमागहविब्भमसेलद्धसेल सठिय कूडागारड्ढ सुविहिकोट्ठग-अणेगघर सरणलेण आवण विडंगजाल चंदणिज्जूहअपवरक दोवालि चदसालियरूव विभत्तिकलिया भवणविही बहुविकप्पा तहेव ते गेहागारा वि दुमगणा अणेगबहुविविध वीससा परिणयाए सुहारूहणे सुहोत्ताराए सुहनिक्खमणप्पवेसाए दद्दरसोपाणपंति कलियाए पइरिक्काए सुहविहाराए मणोणुकूलाए भवणविहीए उववेया कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठति ।।९।।

[१११] (११) हे आयुष्मन् श्रमण ! एकोरुक द्वीप मे स्थान-स्थान पर बहुत से गेहाकार नाम के कल्पवृक्ष कहे गये हैं। जैसे—प्राकार (परकोटा) अट्टालक (अटारी) चरिका (प्राकार और शहर के बीच आठ हाथ प्रमाण मार्ग) द्वार (दरवाजा) गोपुर (प्रधानद्वार) प्रासाद (राजमहल) आकाश-तल (अगासी) मडप (पाण्डाल) एक खण्ड वाले मकान, दो खण्ड वाले मकान, तीन खण्ड वाले मकान, चौकोने, चार खण्ड वाले मकान गर्भगृह (भौंहरा) मोहनगृह (शयनकक्ष) वलभिघर (छज्जा वाला घर) चित्रशाला से सज्जित प्रकोष्ठ गृह, भोजनालय, गोल, तिकोने, चौरस, नदियावर्त आकार के गृह, पाण्डुर-तलमुण्डमाल (छत रहित शुभ्र आगन वाला घर) हर्म्य (शिखररहित हवेली) अथवा धवल गृह (सफेद पुते सौध) अर्धगृह-मागधगृह-विभ्रमगृह (विशिष्ट प्रकार के गृह) पहाड के अर्धभाग जैसे आकार के, पहाड जैसे आकार के गृह, पर्वत के शिखर के आकार के गृह, सुविधिकोष्टक गृह (अच्छी तरह से बनाये हुए कोठो वाला गृह) अनेक कोठो वाला गृह, शरणगृह शयनगृह आपणगृह (दुकान) विडग (छज्जा वाले गृह) जाली वाले घर निर्व्यूह (दरवाजे के आगे निकला हुआ काष्ठ-भाग) कमरो और द्वार वाले गृह और चाँदनी आदि से युक्त जो नाना प्रकार के भवन होते हैं, उसी प्रकार वे गेहाकार वृक्ष भी विविध प्रकार के बहुत से स्वाभाविक परिणाम से परिणत भवनो और गृहो से युक्त होते हैं। उन भवनो मे सुखपूर्वक चढ़ा जा सकता है और सुखपूर्वक उतरा जा सकता है,

उनमे सुखपूर्वक प्रवेश और निष्क्रमण हो सकता है, उन भवनो के चढाव के सोपान (पवितया) समीप-समीप है, विशाल होने से उनमे सुखरूप गमनागमन होता है और वे मन के अनुकूल होते हैं। ऐसे नाना प्रकार के भवनो से युक्त वे गेहाकार वृक्ष है। उनके मूल कुश-विकुश से रहित हैं और वे श्री से अतीव शोभित होते है। ९॥

अनग्न कल्पवृक्ष

[१२] एगोरुयदीवे ण दीवे तत्थ तत्थ बहवे अणिगणा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से आजिणगखोम कवल दुगुल्ल कोसेज्ज कालमिग पट्टचीणंसुय वरणातवार वणिगयतु आभरण वित्त सहिणग कल्लाणग भिंगिणीलकज्जल बहुवण्ण रत्तपीत सुक्किलमक्खय मिगलोम हेमरूप्पवण्णग-अवरुत्तग सिंधुओस दामिल बगकलिंग नेलिण तंतुमयभत्तिचित्ता वत्थविही बहुप्पकारा हवेज्ज वरपट्ट-णुग्गया वण्णरागकलिया तहेव ते अणिगणावि दुमगणा अणेग बहुविविह वीससा परिणयाए वत्थ-विहीए उववेया कुसविकुस विसुद्धरुक्खमूला जाव चिट्ठंति ॥१०॥

[१११] (१२) हे आयुष्मन् श्रमण! उस एकोरुक द्वीप मे जहाँ-तहाँ अनग्न नाम के कल्पवृक्ष हैं। जैसे—यहाँ नाना प्रकार के आजिनक-चर्मवस्त्र, क्षोम-कपास के वस्त्र, कवल-ऊन के वस्त्र, दुकूल-मुलायम बारीक वस्त्र, कोशेय-रेशमी कीडो से निर्मित वस्त्र, काले मृग के चर्म से बने वस्त्र, चीनाशुक-चीन देश मे निर्मित वस्त्र, (वरणात वारवाणिगयतु—यह पाठ अशुद्ध लगता है। नाना देश प्रसिद्ध वस्त्र का वाचक होना चाहिए।) आभूषणो के द्वारा चित्रित वस्त्र, श्लक्ष्ण-बारीक तन्तुओ से निष्पन्न वस्त्र, कल्याणक वस्त्र (महोत्सवादि पर पहनने योग्य उत्तमोत्तम वस्त्र) भवरी नील और काजल जैसे वर्ण के वस्त्र, रग-बिरगे वस्त्र, लाल-पीले सफेद रग के वस्त्र, स्निग्ध मृगरोम के वस्त्र, सोने चाँदी के तारो से बना वस्त्र, ऊपर-पश्चिम देश का बना वस्त्र, उत्तर देश का बना वस्त्र, सिन्धु-ऋषभ-तामिल बग-कलिंग देशो मे बना हुआ सूक्ष्म तन्तुमय बारीक वस्त्र, इत्यादि नाना प्रकार के वस्त्र हैं जो श्रेष्ठ नगरो मे कुशल कारीगरो से बनाये जाते है, सुन्दर वर्ण-रंग वाले हैं—उसी प्रकार वे अनग्न वृक्ष भी अनेक और बहुत प्रकार के स्वाभाविक परिणाम से परिणत विविध वस्त्रों से युक्त हैं। वे वृक्ष कुश-काश से रहित मूल वाले यावत् श्री से अतीव अतीव शोभायमान हैं ॥१०॥

एकोरुक द्वीप के मनुष्यों का वर्णन

[१३] एगोरुयदीवे णं भंते! दीवे मणुयाण केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते?

गोयमा! ते ण मणुस्सा अणुवमतरसोमचारुरूवा, भोगुत्तमगयलक्खणा भोगसस्सिरीया सुजाय सव्वंगसुंदरगा, सुपइट्ठिय कुम्मचारुचलणा, रत्तुप्पल पत्तमउय सुकुमाल कोमलतला नगनगर सागर मगर चक्कक वरंक लक्खणंकियचलणा अणुपुव्व सुसंहतंगुलीया उन्नत तणु तंवणिद्धणखा सठिय सुसि-लिट्ठगूढगुप्फा एणी कुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्वजंघा समुग्गणिमग्गगूढजाणू गयससणसुजात सण्णिभोरू वरवारणमत्ततुल्ल विक्कम विलासियगई सुजातवरतुरग गुज्झदेसा आइण्णहओव्व णिरुवलेवा, पमुइय वर तुरियसीह अतिरेग वट्टियकडी साहयसोणिंद मूसल दप्पणणिगरित वरकणगच्छरुसरिस वर वइरपलिय मज्झा, उज्जुय समसहित सुजात जच्चतणुकसिणणिद्ध आदेज्ज लडह सुकुमाल मउय रमणि-

ज्जरोमराई, गंगावत्त पयाहिणावत्त तरंग भगुर रविकिरण तरुण बोधित अंकोसायत पउम गभीर वियडनाभी झसविहग सुजात पीणकुच्छी, झसोयरा सुइकरणा पम्हवियडनाभा सण्णयपासा संगतपासा सुजातपासा मितमाइय पीणरइयपासा अकरुडय णगरुयगनिम्मल सुजाय निरुवहयदेहधारी पसत्थ बत्तीस लक्खणधरा कणगसिलातलुज्जल पसत्थ समतलोवचिय विच्छिन्न पिहुलवच्छा सिरिवच्छकिवच्छा पुरवरफलिह वट्टिय भुजा, भुयगीसर विपुलभोग आयाण फलिह उच्छूढ दीहबाहू, जुगसन्निभ पीणरइय-पीवर पउट्ठसठिय सुसिलिट्ठ विसिट्ठ घणथिर सुबद्ध निगूढ पव्वसधी रत्ततलोवइय मउयमसल पसत्थ लक्खण सुजाय अच्छिद्दजालपाणी, पीवरवट्टिय सुजाय कोमल वरगुलीया तबतलिन सुचिरुइरणिद्ध णक्खा चंदपाणिलेहा सूरपाणिलेहा संखपाणिलेहा, चक्कपाणिलेहा दिसासोत्थिय पाणिलेहा चदसूरसंख चक्कदिसासोत्थिय पाणिलेहा अणेगवर लक्खणुत्तम पसत्थरइय पाणिलेहा वरमहिस वराहसीह सद्दूल उसमणागवर पडिपुन्न विउल उन्नत खंधा, चउरंगुल सुप्पमाण कंबुवर सरिसगीवा अवट्ठित सुविभत्त सुजात चित्तमंसुमंसल सठिय पसत्थ सद्दूलविपुल हणुया, ओतविय सिलप्पवाल बिंबफल सन्निभाहरोट्ठा पंडुरससि सगल विमल निम्मल संखगोखीरफेण दगरय मुणालिया धवल दंतसेढी अखडदंता अफुडियदता अविरलदंता सुजातदता एगदंतसेढिव्व अणेगदता हुतवह निद्धतधोत तत्तवणिज्जरत्ततलतालुजीहा गरु-लायय उज्जुतुंग णासा अवदालिय पोडरीयनयणा कोकासितधवलपत्तलच्छा आणामिय चावरुइर किण्हब्भराइय सठिय संगय आयत सुजात तणुकसिणनिद्ध भुमया अल्लीणप्पमाणजुत्त सवणा सुस्सवणा पीणमंसल कवोलदेसभागा अचिरुग्गय बालचंदसठिय पसत्थ विच्छिन्नसमणिडाला, उडुवइपडिपुण्ण-सोमवदणा छत्तागारुत्तम गदेसा, घणनिचिय सुबद्ध लक्खणुण्णय कूडागारणिभपिंडियसीसे दाडिमपुप्फ-पगास तवणिज्जसरिस निम्मल सुजाय केसंत केसभूमी सामलिय बोड घणाणिचिय छोडियमिउविसय-पसत्थ सुहुम लक्खण सुगंध सुन्दर भुयमोयग भिंगिणीलकज्जल पहट्ठ भमरगण णिद्धणिकुरब निचिय-कुंचियपदाहिणावत्तमुद्धसिरया, लक्खणवंजणगुणोववेया सुजाय सुविभत्त सुरूवगा पासाइया दरिस-णिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

ते णं मणुया हंसस्सरा कोचस्सरा नंदिघोसा सीहस्सरा सीहघोसा मंजुस्सरा मंजुघोसा सुस्सरा सुस्सरनिग्घोसा छायाउज्जोतियंगमंगा वज्जरिसभनारायसघयणा, समचउरंससंठाणसंठिया सिणिद्धछवी णिरायंका उत्तमपसत्थ अइसेसनिरुवमतणू जल्लमलकलक सेयरयदोस वज्जियसरीरा निरुवमलेवा अणुलोमवाउवेगा कंकग्गहणी कवोतपरिणामा सउणिव्व पोसपिट्ठंतरोरुपरिणया विग्गहिय उन्नयकुच्छी पउमुप्पलसरिस गंधणिस्सास सुरभिवदणा अट्ठधणुसय ऊसिया।

तेसिं मणुयाणं चउसट्ठि पिट्ठिकरडगा पण्णत्ता समणाउसो ! ते ण मणुया पगइभद्दगा पगति-विणीयगा पगइउवसंता पगइपयणु कोहमाणमायालोभा मिउमद्दव सपण्णा अल्लीणा भद्दगा विणीया अप्पिच्छा असंनिहिसंचया अचंडा विडिमंतरपरिवसणा जहिच्छियकामगामिणो य ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो।

तेसि णं भंते ! मणुयाण केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

गोयमा ! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जाइ ।

[१११] (१३) हे भगवन् ! एकोरुकद्वीप मे मनुष्यो का आकार-प्रकारादि स्वरूप कैसा है ?

हे गौतम ! वे मनुष्य अनुपम सौम्य और सुन्दर रूप वाले हैं । उत्तम भोगो के सूचक लक्षणो वाले हैं, भोगजन्य शोभा से युक्त हैं । उनके अग जन्म से ही श्रेष्ठ और सर्वांग सुन्दर हैं । उनके पाव सुप्रतिष्ठित और कछुए की तरह सुन्दर (उन्नत) है, उनके पावो के तल लाल और उत्पल (कमल) के पत्ते के समान मृदु, मुलायम और कोमल है, उनके चरणो मे पर्वत, नगर, समुद्र, मगर, चक्र, चन्द्रमा आदि के चिह्न है, उनके चरणो की अगुलियाँ क्रमश बडी छोटी (प्रमाणोपेत) और मिली हुई है, उनकी अगुलियो के नख उन्नत (उठे हुए) पतले ताम्रवर्ण के एव स्निग्ध (काति वाले) हैं । उनके गुल्फ (टखने) सस्थित (प्रमाणोपेत) घने और गूढ है, हरिणी और कुरुविंद (तृणविशेष) की तरह उनकी पिण्डलिया क्रमश स्थूल-स्थूलतर और गोल है, उनके घुटने सपुट मे रखे हुए की तरह गूढ (अनुपलक्ष्य) हैं, उनकी उरू—जाघे हाथी की सूड की तरह सुन्दर, गोल और पुष्ट हैं, श्रेष्ठ मदोन्मत्त हाथी की चाल की तरह उनकी चाल है, श्रेष्ठ घोडे की तरह उनका गुह्यदेश सुगुप्त है, आकीर्णक अश्व की तरह मलमूत्रादि के लेप से रहित है, उनकी कमर यौवनप्राप्त श्रेष्ठ घोडे और सिंह की कमर जैसी पतली और गोल है, जैसे सकुचित की गई तिपाई, मूसल दर्पण का दण्डा और शुद्ध किये हुए सोने की मूठ बीच मे से पतले होते हैं उसी तरह उनकी कटि (मध्यभाग) पतली है, उनकी रोमराजि सरल-सम-सघन-सुन्दर-श्रेष्ठ, पतली, काली, स्निग्ध, आदेय, लावण्यमय, सुकुमार, सुकोमल और रमणीय है, उनकी नाभि गगा के आवर्त की तरह दक्षिणावर्त तरग (त्रिवली) की तरह वक्र और सूर्य की उगती किरणो से खिले हुए कमल की तरह गभीर और विशाल है । उनकी कुक्षि (पेट के दोनो भाग) मत्स्य और पक्षी की तरह सुन्दर और पुष्ट है, उनका पेट मछली की तरह कृश है, उनकी इन्द्रिया पवित्र है, इनकी नाभि कमल के समान विशाल है, इनके पार्श्वभाग नीचे नमे हुए हैं, प्रमाणोपेत हैं, सुन्दर हैं, जन्म से सुन्दर हैं, परिमित मात्रा युक्त, स्थूल और आनन्द देने वाले हैं, उनकी पीठ की हड्डी मासल होने से अनुपलक्षित होती है, उनके शरीर कन्चन की तरह कांति वाले निर्मल सुन्दर और निरुपहत (स्वस्थ) होते हैं, वे शुभ बत्तीस लक्षणो से युक्त होते हैं, उनका वक्षः-स्थल कन्चन की शिलातल जैसा उज्ज्वल, प्रशस्त, समतल,पुष्ट, विस्तीर्ण और मोटा होता है, उनकी छाती पर श्रीवत्स का चिह्न अकित होता है, उनकी भुजा नगर की अर्गला के समान लम्बी होती है, इनके बाहु शेषनाग के विपुल-लम्बे शरीर तथा उठाई हुई अर्गला के समान लम्वे होते हैं । इनके हाथो की कलाइया (प्रकोष्ठ) जूए के समान दृढ, आनन्द देने वाली, पुष्ट, सुस्थित, सुश्लिष्ट (सघन), विशिष्ट, घन, स्थिर, सुबद्ध और निगूढ पर्वसन्धियो वाली हैं । उनकी हथेलियां लाल वर्ण की, पुष्ट, कोमल, मासल, प्रशस्त लक्षणयुक्त, सुन्दर और छिद्र जाल रहित अगुलियाँ वाली हैं । उनके हाथो की अगुलियाँ पुष्ट, गोल, सुजात और कोमल है । उनके नख ताम्रवर्ण के, पतले, स्वच्छ, मनोहर और स्निग्ध होते है । इनके हाथो मे चन्द्ररेखा, सूर्यरेखा, शखरेखा, चक्ररेखा, दक्षिणावर्त स्वस्तिकरेखा, चन्द्र-सूर्य-शख-चक्र-दक्षिणावर्तस्वस्तिक की मिलीजुली रेखाएँ होती हैं । अनेक श्रेष्ठ, लक्षण युक्त उत्तम, प्रशस्त, स्वच्छ, आनन्दप्रद रेखाओ से युक्त उनके हाथ हैं । उनके स्कंध श्रेष्ठ भैस,

वराह, सिंह, शार्दूल (व्याघ्र), बैल और हाथी के स्कध की तरह प्रतिपूर्ण, विपुल और उन्नत हैं। उनकी ग्रीवा चार अगुल प्रमाण और श्रेष्ठ शख के समान है, उनको ठुड्ढी (होठो के नीचे का भाग) अवस्थित—सदा एक समान रहने वाली, सुविभक्त—अलग-अलग सुन्दररूप से उत्पन्न दाढी के वालो से युक्त, मासल, सुन्दर सस्थान युक्त, प्रशस्त और व्याघ्र की विपुल ठुड्ढी के समान है, उनके होठ परिकर्मित शिलाप्रवाल और बिंबफल के समान लाल है। उनके दात सफेद चन्द्रमा के टुकडो जैसे विमल-निर्मल है और शख, गाय का दूध, फेन, जलकण और मृणालिका के ततुओ के समान सफेद हैं, उनके दात अखण्डित होते हैं, टूटे हुए नही होते, अलग-अलग नही होते, वे सुन्दर दात वाले हैं, उनके दात अनेक होते हुए भी एक पक्तिबद्ध हैं। उनकी जीभ और तालु अग्नि मे तपाकर धोये गये और पुन तप्त किये गये तपनीय स्वर्ण के समान लाल हैं। उनकी नासिका गरुड की नासिका जैसी लम्वी, सीधी और ऊँची होती है। उनकी आँखे सूर्यकिरणो से विकसित पुण्डरीक कमल जैसी होती हैं तथा वे खिले हुए श्वेतकमल जैसी कोनो पर लाल, बीच मे काली और धवल तथा पक्ष्मपुट वाली होती है। उनकी भौहे ईषत् आरोपित धनुष के समान वक्र, रमणीय, कृष्ण मेघराजि की तरह काली, सगत (प्रमाणोपेत), दीर्घ, सुजात, पतली, काली और स्निग्ध होती हैं। उनके कान मस्तक के भाग तक कुछ-कुछ लगे हुए और प्रमाणोपेत हैं। वे सुन्दर कानो वाले हैं अर्थात् भलीप्रकार श्रवण करने वाले है। उनके कपोल (गाल) पीन और मासल होते हैं। उनका ललाट नवीन उदित बालचन्द्र (अष्टमी के चाद) जैसा प्रशस्त, विस्तीर्ण और समतल होता है। उनका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा सौम्य होता है। उनका मस्तक छत्राकार और उत्तम होता है। उनका सिर घन-निबिड-सुबद्ध, प्रशस्त लक्षणो वाला, कूटाकार (पर्वतशिखर) की तरह उन्नत और पाषाण की पिण्डी की तरह गोल और मजवूत होता है। उनकी खोपडी की चमडी (केशान्तभूमि) दाडिम के फूल की तरह लाल, तपनीय सोने के समान निर्मल और सुन्दर होती है। उनके मस्तक के बाल खुले किये जाने पर भी शालमलि के फल की तरह घने और निविड होते हैं। वे बाल मृदु, निर्मल, प्रशस्त, सूक्ष्म, लक्षणयुक्त, सुगधित, सुन्दर, भुजभोजक (रत्नविशेष), नीलमणि (मरकतमणि), भवरी, नील और काजल के समान काले, हर्षित भ्रमरो के समान अत्यन्त काले, स्निग्ध और निचित—जमे हुए होते हैं, वे घुघराले और दक्षिणावर्त होते हैं।

वे मनुष्य लक्षण, व्यजन और गुणो से युक्त होते हैं। वे सुन्दर और सुविभक्त स्वरूप वाले होते हैं। वे प्रसन्नता पेदा करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप होते हैं।

ये मनुष्य हस जैसे स्वर वाले, क्रौच जैसे स्वर वाले, नदी (बारह वाद्यो का समिश्रित स्वर) जैसे घोष करने वाले, सिंह के समान स्वर वाले और गर्जना करने वाले, मधुर स्वर वाले, मधुर घोष वाले, सुस्वर वाले, सुस्वर और सुघोष वाले, अंग-अग मे कान्ति वाले, वज्रऋषभनाराचसहनन वाले, समचतुरस्रसस्थान वाले, स्निग्धछवि वाले, रोगादि रहित, उत्तम प्रशस्त अतिशययुक्त और निरुपम शरीर वाले, स्वेद (पसीना) आदि मैल के कलक से रहित और स्वेद-रज आदि दोषो से रहित शरीर वाले, उपलेप से रहित, अनुकूल वायु वेग वाले, कक पक्षी की तरह निर्लेप गुदाभाग वाले, कबूतर की तरह सब पचा लेने वाले, पक्षी की तरह मलोत्सर्ग के लेप से रहित अपानदेश वाले, सुन्दर पृष्टभाग, उदर और जघा वाले, उन्नत और मुष्टिग्राह्य कुक्षि वाले और पद्मकमल और उत्पलकमल जैसी सुगधयुक्त श्वासोच्छ्वास से सुगधित मुख वाले वे मनुष्य है।

उनकी ऊँचाई आठ सौ धनुष की होती है। हे आयुष्मन् श्रमण ! उन मनुष्यों के चौसठ पृष्ठ-करंडक (पसलियां) हैं। वे मनुष्य स्वभाव से भद्र, स्वभाव से विनीत, स्वभाव से शान्त, स्वभाव से अल्प क्रोध-मान-माया, लोभ वाले, मृदुता और मार्दव से सम्पन्न होते हैं, अल्लीन (संयत चेष्टा वाले) हैं, भद्र, विनीत, अल्प इच्छा वाले, संचय-संग्रह न करने वाले, क्रूर परिणामों से रहित, वृक्षों की शाखाओं के अन्दर रहने वाले तथा इच्छानुसार विचरण करने वाले वे एकोरुकद्वीप के मनुष्य हैं।

हे भगवन् ! उन मनुष्यों को कितने काल के अन्तर से आहार की अभिलाषा होती है ?

हे गौतम ! उन मनुष्यों को चतुर्थभक्त अर्थात् एक दिन छोड़कर दूसरे दिन आहार की अभिलाषा होती है।

एकोरुकस्त्रियों का वर्णन

[१४] एगोरुयमणुई णं भंते ! केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! ताओ णं मणुईओ सुजायसव्वंगसुंदरीओ पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता अच्चंत विसप्पमाण पउम सुमाल कुम्मसंठिय विसिट्ठ चलणाओ उज्जुमिउय पीवर निरंतर पुट्ठ सोहियंगुलीओ उन्नयरइद तलिणतंबसुइणिद्धणखा रोमरहित वट्टलट्ठ संठियअजहण्ण पसत्थ लक्खण अकोप्पजंघयुगला सुणिम्मिय सुगूढजाणुमंडलसुबद्धसंधी कयलिक्खंभातिरेग सठियणिव्वण सुकुमाल मउयकोमल अविरल समसहितसुजात वट्ट पीवरणिरंतरोरू अट्ठावयवीचिपट्टसंठिय पसत्थ विच्छिन्न पिहुलसोणी वदणाया-मप्पमाणदुगुणित विसाल मंसल सुबद्ध जहणवरधारणीओ वज्जविराइयपसत्थलक्खणणिरोदरा तिवलि-वलियतणुणमिय मज्झिमाओ उज्जुय समसंहित जच्चतणु कसिण णिद्धआदेज्ज लडह सुविभत्त सुजात कंतसोभत रुइल रमणिज्जरोमराई गंगावत्त पदाहिणावत्त तरंग भंगुररविकिरण तरुणबोधित अकोसायंत पउमवणगंभीरवियडनाभी अणुब्भडपसत्थ पीणकुच्छी सण्णयपासा संगयपासा सुजातपासा मितमाइयपीण रइयपासा अकरंडुय कणगरुयग निम्मल सुजाय णिरुवहय गायलट्ठी कंचणकलससम-पमाण समसहितसुजात लट्ठ चूचुय आमेलग जमल जुगल वट्टिय अब्भुण्णयरइयसंठिय पयोधराओ भुयगणुपुव्वतणुयगोपुच्छ वट्ट समसहिय णमिय आएज्ज ललिय बाहाओ तंबणहा मंसलग्गहत्था पीवर-कोमल वरंगुलीओ णिद्धपाणिलेहा रविससि संख चक्कसोत्थिय सुविभत्त सुविरइय पाणिलेहा पीणुण्णय कक्खवत्थिदेसा पडिपुण्णगल्लकवोला चउरंगुलप्पमाण कंबुवर सरिसगीवा मंसलसंठिय पसत्थ हणुया दाडिमपुप्फप्पगास पीवरकुंचियवराधरा सुंदरोत्तरोट्ठा दधिदगरय चंदकुंद वासंतिमउल अच्छिद्द-विमलदसणा रत्तुप्पल पत्तमउय सुकुमाल तालुजीहा कणयवरमुउल अकुडिल अब्भुग्गय उज्जुतुंगनासा सारदनवकमलकुमुदकुवलय विमुक्कदलणिगर सरिस लक्खण अंकियकंतणयणा पत्तल चवलायंततं-बलोयणाओ आणामिय चावरुइलकिण्हब्भराइसंठिय संगत आयय सुजाय कसिण णिद्धभमुया अल्लीण-पमाणजुत्तसवणा पीणमट्ठरमणिज्ज गंडलेहा चउरंस पसत्थसमणिडाला कोमुइरयणिकरविमल-

पडिपुन्नसोमवयणा छत्तुन्नयउत्तिमंगा कुडिलसुसिणिद्धदीहसिरया, छत्तज्झयजुगथूभदामिणि-कमंडलुकलसवाविसोत्थियपडागजवमच्छकुम्भरहवरमकरसुकथालअंकुसअट्ठावइवीइसुपइट्ठकमयूरसिरि-दामाभिसेयतोरणमेइणिउदधिवरभवणगिरिवरआयंसललियगयउसभसीहचमरउत्तमपसत्थबत्तीसलक्खण धराओ, हंससरिसगईओ कोइलमधुरगिरसुस्सराओ, कता सव्वस्स अणुनयाओ, ववगतवलिपलिया, वंगदुव्वण्णवाहिदोभग्गसोगमुक्काओ उच्चत्तेणं य नराण थोवूणमूसियाओ सभावसिंगारागारचारुवेसा संगयगतहसितभाणियचेट्ठियविलाससंसलावणिउणजुत्तो वयारकुसला सुंदरथणजहणवदणकरचलणनयण-माला वण्णलावण्णजोवणविलासकलिया नंदणवण विवरचारिणीउव्व अच्छराओ अच्छेरगपेच्छणिज्जा पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ ।

तासि णं भंते ! मणुईणि केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

गोयमा ! चउत्थभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

[१११] (१४) हे भगवन् ! इस एकोरुक-द्वीप की स्त्रियो का आकार-प्रकार-भाव कैसा कहा गया है ?

गौतम ! वे स्त्रिया श्रेष्ठ अवयवो द्वारा सर्वांगसुन्दर हैं, महिलाओ के श्रेष्ठ गुणो से युक्त हैं। उनके चरण अत्यन्त विकसित पद्मकमल की तरह सुकोमल और कछुए की तरह उन्नत होने से सुन्दर आकार के है। उनके पावो की अगुलिया सीधी, कोमल, स्थूल, निरन्तर, पुष्ट और मिली हुई हैं। उनके नख उन्नत, रति देने वाले, तलिन-पतले, ताम्र जैसे रक्त, स्वच्छ एव स्निग्ध हैं। उनकी पिण्डलिया रोम रहित, गोल, सुन्दर, सस्थित, उत्कृष्ट शुभलक्षणवाली और प्रीतिकर होती हैं। उनके घुटने सुनिर्मित, सुगूढ और सुबद्धसधि वाले है, उनकी जघाएँ कदली के स्तम्भ से भी अधिक सुन्दर, व्रणादि रहित, सुकोमल, मृदु, कोमल, पास-पास, समान प्रमाणवाली, मिली हुई, सुजात, गोल, मोटी एव निरन्तर हैं, उनका नितम्बभाग अष्टापद द्यूत के पट्ट के आकार का, शुभ, विस्तीर्ण और मोटा है, (बारह अगुल) मुखप्रमाण से दूना चौवीस अगुवप्रमाण, विशाल, मासल एव सुबद्ध उनका जघन-प्रदेश है, उनका पेट वज्र की तरह सुशोभित, शुभ लक्षणो वाला और पतला होता है, उनकी कमर त्रिवली से युक्त, पतली और लचीली होती है, उनकी रोमराजि सरल, सम, मिली हुई, जन्मजात पतली, काली, स्निग्ध, सुहावनी, सुन्दर, सुविभक्त, सुजात (जन्मदोषरहित), कात, शोभायुक्त, रुचिर और रमणीय होती है। उनकी नाभि गगा के आवर्त की तरह दक्षिणावर्त, तरग भगुर (त्रिवलि से विभक्त) सूर्य की किरणो से ताजे विकसित हुए कमल की तरह गभीर और विशाल है। उनकी कुक्षि उग्रता रहित, प्रशस्त और स्थूल है। उनके पार्श्व कुछ झुके हुए है, प्रमाणोपेत है, सुन्दर हैं, जन्मजात सुन्दर हैं, परिमितमात्रायुक्त स्थूल और आनन्द देने वाले हैं। उनका शरीर इतना मासल होता है कि उसमे पीठ की हड्डी और पसलिया दिखाई नही देती। उनका शरीर सोने जैसी कान्तिवाला, निर्मल, जन्मजात सुन्दर और ज्वरादि उपद्रवो से रहित होता है। उनके पयोधर (स्तन) सोने के कलश के समान प्रमाणोपेत, दोनो (स्तन) बराबर मिले हुए, सुजात और सुन्दर है, उनके चूचुक उन स्तनो पर मुकुट के समान लगते हैं। उनके दोनो स्तन एक साथ उत्पन्न होते हैं और एक साथ वृद्धि-गत होते हैं। वे गोल उन्नत (उठे हुए) और आकार-प्रकार से प्रीतिकारी होते हैं। उनकी दोनो बाहु

भुजंग की तरह क्रमश. नीचे की ओर पतली गोपुच्छ की तरह गोल, आपस मे समान, अपनी-अपनी संधियों से सटी हुई, नम्र और अति आदेय तथा सुन्दर होती हैं। उनके नख ताम्रवर्ण के होते हैं। इनका पंजा मांसल होता है, उनकी अंगुलिया पुष्ट कोमल और श्रेष्ठ होती हैं। उनके हाथ की रेखायें स्निग्ध होती हैं। उनके हाथ मे सूर्य, चंद्र, शख-चक्र-स्वस्तिक की अलग-अलग और सुविरचित रेखाएँ होती हैं। उनके कक्ष और वस्ति (नाभि के नीचे का भाग) पीन और उन्नत होता है। उनके गाल—कपोल भरे-भरे होते हैं, उनकी गर्दन चार अगुल प्रमाण और श्रेष्ठ शख की तरह होती है। उनकी ठुड्डी मासल, सुन्दर आकार की तथा शुभ होती है। उनका नीचे का होठ दाडिम के फूल की तरह लाल और प्रकाशमान, पुष्ट और कुछ-कुछ वलित होने मे अच्छा लगता है। उनका ऊपर का होठ सुन्दर होता है। उनके दांत दही, जलकण, चन्द्र, कुद, वासतीकली के समान सफेद और छेदविहीन होते हैं, उनका तालु और जीभ लाल कमल के पत्ते के समान लाल, मृदु और कोमल होते हैं। उनकी नाक कनेर की कली की तरह सीधी, उन्नत, ऋजु और तीखी होती है। उनके नेत्र शरदऋतु के कमल और चन्द्रविकासी नीलकमल के विमुक्त पत्रदल के समान कुछ श्वेत, कुछ लाल और कुछ कालिमा लिये हुए और बीच मे काली पुतलियों से अंकित होने से सुन्दर लगते हैं। उनके लोचन पक्ष्मपुटयुक्त, चंचल, कान तक लम्बे और ईषत् रक्त (ताम्रवत्) होते हैं। उनकी भौंहें कुछ नमे हुए धनुष की तरह टेढी, सुन्दर, काली और मेघराजि के समान प्रमाणोपेत, लम्बी, सुजात, काली और स्निग्ध होती हैं। उनके कान मस्तक से कुछ लगे हुए और प्रमाणयुक्त होते हैं। उनकी गडलेखा (गाल और कान के बीच का भाग) मासल, चिकनी और रमणीय होती है। उनका ललाट चौरस, प्रशस्त और समतल होता है, उनका मुख कार्तिकपूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह निर्मल और परिपूर्ण होता है। उनका मस्तक छत्र के समान उन्नत होता है। उनके बाल घुघराले स्निग्ध और लम्बे होते हैं। वे निम्नांकित बत्तीस लक्षणो को धारण करने वाली हैं—

१ छत्र, २ ध्वज, ३ युग (जुआ), ४ स्तूप, ५ दामिनी (पुष्पमाला), ६ कमण्डलु, ७ कलश, ८ वापी (बावडी), ९ स्वस्तिक, १० पताका, ११ यव, १२ मत्स्य, १३ कुम्भ, १४ श्रेष्ठरथ, १५ मकर, १६ शुकस्थाल (तोते को चुगाने का पात्र), १७ अकुश, १८ अष्टापदवीचिद्यूतफलक, १९ सुप्रतिष्ठक स्थापनक, २० मयूर, २१ श्रीदाम (मालाकार आभरण), २२ अभिषेक—लक्ष्मी का अभिषेक करते हुए हाथियो का चिह्न, २३ तोरण, २४ मेदिनीपति—राजा, २५ समुद्र, २६ भवन, २७ प्रासाद, २८ दर्पण, २९ मनोज्ञ हाथी, ३० बैल, ३१ सिंह और ३२ चमर।

वे एकोरुक द्वीप की स्त्रिया हस के समान चाल वाली हैं। कोयल के समान मधुर वाणी और स्वर वाली, कमनीय और सबको प्रिय लगने वाली होती हैं। उनके शरीर मे झुरिया नही पड़ती और बाल सफेद नहीं होते। वे व्यग्य (विकृति), वर्णविकार, व्याधि, दौर्भाग्य और शोक से मुक्त होती हैं। वे ऊँचाई मे पुरुषो की अपेक्षा कुछ कम ऊँची होती हैं। वे स्वाभाविक शृंगार और श्रेष्ठ वेश वाली होती हैं। वे सुन्दर चाल, हास, बोलचाल, चेष्टा, विलास, सलाप मे चतुर तथा योग्य उपचार-व्यवहार मे कुशल होती हैं। उनके स्तन, जघन, मुख, हाथ, पाँव और नेत्र बहुत सुन्दर होते हैं। वे सुन्दर वर्ण वाली, लावण्य वाली, यौवन वाली और विलासयुक्त होती हैं। नदनवन मे विचरण करने वाली अप्सराओ की तरह वे आश्चर्य से दर्शनीय हैं। वे स्त्रियां देखने पर प्रसन्नता उत्पन्न करती है, वे दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं और प्रतिरूप हैं।

हे भगवन् ! उन स्त्रियो को कितने काल के अन्तर से आहार की अभिलाषा होती है ?

गौतम ! चतुर्थभक्त अर्थात् एक दिन छोडकर दूसरे दिन आहार की इच्छा होती है।

१११. (१५) ते ण भंते ! मणुया किमाहारमाहारेंति ?

गोयमा ! पुढविपुप्फफलाहारा ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो !

तीसे णं भंते ! पुढवीए केरिसए आसाए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से जहाणामए गुलेइ वा खंडेइ वा सक्कराइ वा मच्छंडियाइ वा भिसकंदेइ वा पप्पडमोयएइ वा, पुप्फउत्तराइ वा, पउमउत्तराइ वा, अकोसियाइ वा, विजयाइ वा, महाविजयाइ वा, आयंसोवमाइ वा, अणोवमाइ वा, चाउरक्के गोखीरे चउठाणपरिणए गुडखंडमच्छंडि उवणीए मदग्गि-कडीए वण्णेणं उववेए जाव फासेणं, भवेयारूवे सिया ?

णो इणट्ठे समट्ठे। तीसे णं पुढवीए एत्तो इट्ठयराए चेव मणामतराए चेव आसाए णं पण्णत्ते।

तेसिं णं पुप्फफलाणं केरिसए आसाए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से जहानामए चाउरंतचक्कवट्टिस्स कल्लाणे पवरभोयणे सयसहस्सनिप्फन्ने वण्णेणं उववेते गंधेणं उववेते रसेण उववेते फासेणं उववेते आसाइणिज्जे वीसाइणिज्जे दीवणिज्जे विंहणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे सव्विदियगायपल्हाणिज्जे भवेयारूवे सिया ?

णो तिणट्ठे समट्ठे। तेसि णं पुप्फफलाणं एत्तो इट्ठतराए चेव जाव आस्साए णं पण्णत्ते।

ते णं भंते ! मणुया तमाहारमाहारित्ता कहिं वसहिं उवेंति ?

गोयमा ! रुक्खगेहालया ण ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं भंते ! रुक्खा किसठिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! कूडागारसठिया पेच्छाघरसठिया, छत्तागारसंठिया झयसंठिया थूमसंठिया तोरण-संठिया गोपुरवेइयचोपालगसंठिया, अट्टालकसंठिया पासादसंठिया हम्मतलसंठिया गवक्खसंठिया वाल्लगपोइयसठिया वलभिसंठिया अण्णे तत्थ बहवे वरभवणसयणासणविसिट्ठ संठाणसंठिया सुहसीयल-च्छाया णं ते दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो !

[१११] (१५) हे भगवन् ! वे मनुष्य कैसा आहार करते हैं ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य पृथ्वी, पुष्प और फलो का आहार करते हैं।

हे भगवन् ! उस पृथ्वी का स्वाद कैसा है ?

गौतम ! जैसे गुड, खाड, शक्कर, मिश्री, कमलकन्द पर्पटमोदक, पुष्पविशेष से बनी शक्कर, कमलविशेष से बनी शक्कर, अकोशिता, विजया, महाविजया, आदर्शोपमा अनोपमा (ये मधुर द्रव्य विशेष हैं) का स्वाद होता है वैसा उस मिट्टी का स्वाद है। अथवा[1] चार बार परिणत एव चतु स्थान

१. पौण्ड इक्षु चरने वाली चार गायो का दूध तीन गायो को पिलाना, तीन गायो का दूध दो गायो को पिलाना, उन दो गायो का दूध एक गाय को पिलाना, उसका जो दूध है वह चार बार परिणत और चतु स्थानक परिणत कहलाता है।

परिणत गाय का दूध जो गुड, शक्कर, मिश्री मिलाया हुआ, मदाग्नि पर पकाया गया तथा शुभवर्ण, शुभगंध, शुभरस और शुभस्पर्श से युक्त हो, ऐसे गोक्षीर जैसा वह स्वाद होता है क्या ?

गौतम ! यह बात समर्थित नहीं है। उस पृथ्वी का स्वाद इससे भी अधिक इष्टतर यावत् मनोज्ञतर होता है।

हे भगवन् ! वहाँ के पुष्पों और फलों का स्वाद कैसा होता है ?

गौतम ! जैसे चातुरन्तचक्रवर्ती का भोजन जो कल्याणभोजन के नाम से प्रसिद्ध है, जो[1] लाख गायों से निष्पन्न होता है, जो श्रेष्ठ वर्ण से, गंध से, रस से और स्पर्श से युक्त है, आस्वादन के योग्य है, पुनः पुनः आस्वादन योग्य है, जो दीपनीय (जठराग्निवर्धक) है, बृंहणीय (धातुवृद्धिकारक) है, दर्पणीय (उत्साह आदि बढाने वाला) है, मदनीय (मस्ती पैदा करने वाला) है और जो समस्त इन्द्रियों को और शरीर को आनन्ददायक होता है, क्या ऐसा उन पुष्पों और फलों का स्वाद है ?

गौतम ! यह बात ठीक नहीं है। उन पुष्प-फलों का स्वाद उससे भी अधिक इष्टतर, कान्ततर, प्रियतर, मनोज्ञतर और मनामतर होता है।

हे भगवन् ! उक्त प्रकार के आहार का उपभोग करके वे कैसे निवासों में रहते हैं ?

आयुष्मन् गौतम ! वे मनुष्य गेहाकार परिणत वृक्षों में रहते हैं।

भगवन् ! उन वृक्षों का आकार कैसा होता है ?

गौतम ! वे पर्वत के शिखर के आकार के, नाट्यशाला के आकार के, छत्र के आकार के, ध्वजा के आकार के, स्तूप के आकार के, तोरण के आकार के, गोपुर जैसे, वेदिका जैसे, चोप्याल (मत्तहाथी) के आकार के, अट्टालिका के जैसे, राजमहल जैसे, हवेली जैसे, गवाक्ष जैसे, जल-प्रासाद जैसे, वल्लभी, (छज्जावाले घर) के आकार के हैं तथा हे आयुष्मन् श्रमण ! और भी वहाँ वृक्ष हैं जो विविध भवनों, शयनों, आसनों आदि के विशिष्ट आकारवाले और सुखरूप शीतल छाया वाले हैं।

१११. (१६) अत्थि णं भंते ! एगोरुयदीवे दीवे गेहाणि वा गेहावणाणि वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे। रुक्खगेहालया णं ते मणुयगणा पण्णत्ता, समणाउसो !

अत्थि णं भंते। एगोरुयदीवे दीवे गामाइ वा नगराइ वा जाव सन्निवेसाइ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे। जहिच्छियकामगामिणो ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

अत्थि णं भंते ! एगोरुयदीवे दीवे असीइ वा मसीइ वा कसीइ वा पणीइ वा वणिज्जाइ वा ?

नो तिणट्ठे समट्ठे। ववगयअसिमसिकिसिपणियवाणिज्जा ण ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो।

---

१. पुण्ड्र जाति के इक्षु को चरने वाली एक लाख गायों का दूध पचास हजार गायों को पिलाया जाय उन पचास हजार गायों का दूध पच्चीस हजार गायों को पिलाया जाय, इस तरह से आधी-आधी गायों को पिलाने के क्रम से वैसे दूध को पी हुई गायों में की अन्तिम गाय का जो दूध हो, उस दूध से बनाई हुई खीर जिसमें विविध मेवे आदि द्रव्य डाले गये हों वह चक्रवर्ती का कल्याणभोजन कहलाता है।

अत्थि णं भंते ! एगोरुय दीवे दीवे हिरण्णेइ वा सुवण्णेइ वा कंसेइवा दूसेइ वा मणीइ वा मुत्तिएइ वा विपुलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलप्पवालसंतसारसावएज्वेइ वा ?

हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुयाण तिव्वे ममत्तभावे समुप्पज्जति ।

अत्थि णं भंते ! एगोरुयदीवे राया इ वा, जुवरायाइ वा ईसरे इ वा तलवरे इ वा माडबिया इ वा कोडुंबिया इ वा इब्भा इ वा सेट्ठी इ वा सेणावई इ वा सत्थवाहा इ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगतइड्ढिसक्कारा ण ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो ।

अत्थि ण भंते ! एगोरुयदीवे दीवे दासाइ वा पेसाइ वा सिस्साइ वा भयगाइ वा भाइल्लगाइ वा कम्मगरपुरिसा इ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगयआभिओगिया ण ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

अत्थि णं भंते ! एगोरुयदीवे दीवे माया इ वा पिया इ वा भाया इ वा भइणी इ वा भज्जाइ वा पुत्ताइ वा धूयाइ वा सुण्हाइ वा ?

हंता अत्थि । नो चेव णं तेसिं मणुयाण तिव्वे पेमबंधो समुप्पज्जति, पयणुपेज्जबधणा ण ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

अत्थि ण भंते ! एगोरुयदीवे अरीइ वा वेरिएइ वा घायकाइ वा वहकाइ वा पडिणीयाइ वा पच्चमित्ताइ वा ? णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगतवेराणुबधा ण ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो ।

अत्थि ण भंते ! एगोरुए दीवे मित्ताइ वा वयंसाइ वा घडियाइ वा सहीइ वा सुहियाइ वा महाभागाइ वा सगइयाइ वा ।

णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगयपेम्मा ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

अत्थि ण भंते ! एगोरुय दीवे आवाहाइ वा विवाहाइ वा जण्णाइ वा सड्ढाइ वा थालिपाका वा चोलोवणयणाइ वा, सीमंतुण्णयणाइं वा[1] पिइपिंडनिवेयणाइ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगतआवाहविवाहजण्णसड्ढथालिपागचोलोवणयणसीमंतुण्णयण[2] पिइपिंडनिवेदणा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

अत्थि णं भंते ! एगोरुयदीवे दीवे इंदमहाइ वा खदमहाइ वा रुद्दमहाइ वा सिवमहाइ वा वेसमणमहाइ वा मुगुंदमहाइ वा णागमहाइ वा जक्खमहाइ वा भूयमहाइ वा कूवमहाइ वा तलायणईमहा इ वा दहमहाइ वा पव्वयमहाइ वा रुक्खरोवणमहाइ वा चेइयमहाइ वा थूभमहा इ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगय महमहिमा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

---

१ मयपिंड ।
२. मयपिंड

अत्थि ण भंते ! एगोरुयदीवे दीवे णंडपेच्छाइ वा णडपेच्छाइ वा जल्लपेच्छाइ वा मल्लपेच्छाइ वा मुट्ठियपेच्छाइ वा विडंवगपेच्छाइ वा कहगपेच्छाइ वा पवगपेच्छाइ वा अक्खायगपेच्छाइ वा लासगपेच्छाइ वा लंखपेच्छा इ वा मंखपेच्छा इ वा, तूणइल्लपेच्छा इ वा तुंबवीणापेच्छा इ वा कावड-पेच्छाइ वा मागहपेच्छाइ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगयकोउहल्ला णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो ।

अत्थि णं भंते ! एगोरुय दीवे सगडाइ वा रहाइ वा जाणाइ वा जुग्गाइ वा गिल्ली इ वा थिल्लीइ वा पिल्लीइ वा पवहणाणि वा सिवियाइ वा संदमाणियाइं वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ! पादचारविहारिणो णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो ।

अत्थि णं भंते ! एगोरुयदीवे आसा इ वा हत्थी ति वा उट्टाइ वा गोणा इ वा महिसाइ वा खराइ वा घोडा इ वा अजा इ वा एला इ वा ?

हंता अत्थि । नो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ।

अत्थि णं भंते ! एगोरुयदीवे दीवे सीहाइ वा, वग्घाइ वा विगाइ वा दीवियाइ वा अच्छाइ वा परस्साइ वा तरच्छाइ वा विडालाइ वा सियालाइ वा सुणगाइ वा कोलसुणगाइ वा कोकंतियाइ वा ससगाइ वा चित्तला इ वा चिलल्लगाइ वा ?

हंता अत्थि । नो चेव णं ते अण्णमण्णस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आबाहं वा पबाहं वा उप्पायंति वा छविच्छेदं वा करेंति, पगइभद्दका णं ते सावयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

अत्थि णं भंते ! एगोरुय दीवे दीवे सालीइ वा वीहीइ वा गोधूमाइ वा जवाइ वा तिलाइ वा इक्खुत्ति वा ?

हंता अत्थि । नो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ।

अत्थि णं भंते ! एगोरुय दीवे दीवे गत्ताइ वा दरीइ वा घंसाइ वा भिगू इ वा उवाए इ वा विसमे इ वा, विज्जले इ वा धूली इ वा रेणू इ वा पंके इ वा चलणी इ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । एगोरुय दीवे णं दीवे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते समणाउसो !

अत्थि णं भंते ! एगोरुय दीवे दीवे खाणूइ वा कंटएइ वा हीरएइ वा सक्कराइ वा तण-कयवराइ वा पत्तकयवरा इ वा असुईइ वा पूतियाइ वा दुब्भिगंधाइ वा अचोक्खाइ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगयखाणुकंटकहीरसक्करतणकयवरपत्तकयवरअसुइपूइदुब्भिगंध-मचोक्खे णं एगोरुयदीवे पण्णत्ते समणाउसो !

अत्थि णं भंते ! एगोरुय दीवे दीवे दंसाइ वा मसगाइ वा पिसुयाइ वा जूयाइ वा लिक्खाइ वा ढंकुणाइ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगयदंसमसगपिसुयजूयलिक्खढंकुणे णं एगोरुय दीवे पण्णत्ते समणाउसो ।

अत्थि णं भंते ! एगोरुय दीवे दीवे अहीइ वा, अयगराइ वा महोरगाइ वा ?

हंता अत्थि । णो चेव णं ते अन्नमन्नस्स तेसिं वा मणुयाणं किंचि आबाहं वा पबाहं वा छविच्छेयं वा करेंति । पगइभद्दगा णं ते वालगगणा पण्णत्ता समणाउसो !

अत्थि णं भंते ! एगोरुय दीवे गहदंडाइ वा गहमुसलाइ वा गहगज्जियाइ वा गहजुद्धाइ वा गहसंघाडगाइ वा गहअवसव्वाइ वा अब्भाइ वा अब्भरुक्खाइ वा संझाइ वा गंधव्वणगराइ वा गज्जियाइ वा विज्जुयाइ वा उक्कापाताइ वा दिसादाहाइ वा निग्घायाइ वा पंसुविट्ठीइ वा जुवगाइ वा जक्खालित्ताइ वा धूमियाइ वा महियाइ वा रउग्घायाइ वा चंदोवरागाइ वा सूरोवरागाइ वा चदपरिवेसाइ वा सूरपरिवेसाइ वा पडिचंदाइ वा पडिसूराइ वा इंदधणूइ वा उदगमच्छाइ वा अमोहाइ वा कविहसियाइ वा पाईणवायाइ वा पडीणवायाइ वा जाव सुद्ध-वायाइ वा गामदाहाइ वा नगरदाहाइ वा जाव सण्णिवेसदाहाइ वा पाणक्खय-जणक्खय-कुलक्खय-धणक्खय-वसण-भूयमणारियाइ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

अत्थि णं भंते ! एगोरुय दीवे दीवे डिंबाइ वा डमराइ वा कलहाइ वा वोलाइ वा खाराइ वा वेराइ वा विरुद्धरज्जाइ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगयडिंबडमरकलहवोलखारवेरविरुद्धरज्जा णं ते मणुयगया पण्णत्ता समणाउसो !

अत्थि णं भंते ! एगोरुयदीवे णं दीवे महाजुद्धाइ वा महासंगामाइ वा महासत्थनिवयणाइ वा महापुरिसबाणा इ वा महारुधिरवाणा इ वा नागवाणा इ वा खेवाणा इ वा तामसवाणाइ वा ?

नो इणट्ठे समट्ठे ववगयवेराणुबधा णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो ! अत्थि ण भते ! एगोरुव दीवे दीवे दुब्भूइयाइ वा कुलरोगाइ गामरोगाइ वा णगररोगाइ वा मडलरोगाइ वा सिरो-वेयणाइ वा अच्छिवेयणाइ वा कण्णवेयणाइ वा णक्कवेदणाइ वा दतवेदणाइ वा नखवेदणाइ वा कासाइ वा सासाइ वा जराइ वा दाहाइ वा कच्छूइ वा खसराइ वा कुट्ठाइ वा कुडाइ वा दगोयराइ वा अरिसाइ वा अजीरगाइ वा भगदराइ वा इदग्गहाइ वा खंदग्गहाइ वा कुमारग्गहाइ वा णागग्गहाइ वा जक्खग्गहाइ वा भूतग्गहाइ वा उव्वेयग्गहाइ वा धणुग्गहाइ वा एगाहियगाहाइ वा वेयाहियगहियाइ वा तेयाहियगहियाइ वा चाउत्थगहियाइ वा हिययसूलाइ वा मत्थगसूलाइ वा पाससूलाइ वा कुच्छिसूलाइ वा जोणिसूलाइ वा गाममारीइ वा जाव सन्निवेसमारीइ वा पाणक्खय जाव वसणभूयमणारिया इ वा ?

णो तिणट्ठे समट्ठे । ववगयरोगायंका णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

अत्थि णं भंते ! एगोरुयदीवे दीवे अइवासाइ वा मंदवासाइ वा सुवुट्ठीइ वा मंदवुट्ठीइ वा

उद्दवाहाइ वा पवाहाइ वा दगुब्भेयाइ वा दगुप्पीलाइ वा गामवाहाइ वा जाव सन्निवेसवाहाइ वा पाणक्खय० जाव वसणभूयमणारियाइं वा ?

णो तिट्ठे समट्ठे। ववगयदगोवद्दवा ण ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

अत्थि ण भंते ! एगोरुय दीवे दीवे अयागराइ वा तंबागराइ वा सीसागराइ वा सुवण्णागराइ वा रयणागराइ वा वइरागराइ वा वसुहाराइ वा हिरण्णवासाइ वा सुवण्णवासाइ वा रयणवासाइ वा वइरवासाइ वा आभरणवासाइ वा पत्तवासाइ वा पुप्फवासाइ वा फलवासाइ वा वीयवासाइ वा मल्लवासाइ वा गंधवासाइ वा वण्णवासाइ वा चुण्णवासाइ वा खीरवुट्ठीइ वा रयणवुट्ठीइ वा हिरणवुट्ठीइ वा सुवण्णवुट्ठीइ वा तहेव जाव चुण्णवुट्ठीइ वा सुकालाइ वा दुकालाइ वा सुभिक्खाइ वा दुब्भिक्खाइ वा अप्पग्घाइ वा महग्घाइ वा कयाइ वा महाविक्कयाइ वा, सण्णिहीइ वा सचयाइ वा निधीइ वा निहाणाइ वा, चिरपोराणाइ वा पहीणसामियाइ वा पहीणसेउयाइ वा पहीणगोत्तागाराइं वा जाइं इमाइं गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमसंवाहसन्निवेसेसु सन्निक्खित्ताइ चिट्ठंति ?

नो तिणट्ठे समट्ठे।

[१११] (१६) हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे घर और मार्ग हैं क्या ?

हे गौतम ! यह अर्थ समर्थित नही है। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य गृहाकार बने हुए वृक्षो पर रहते हैं।

भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश हैं ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ ग्राम आदि नही है। वे मनुष्य इच्छानुसार गमन करने वाले हैं।

भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे असि—शस्त्र, मषि (लेखनादि) कृषि, पण्य (किराना आदि) और वाणिज्य-व्यापार है ?

आयुष्मन् श्रमण ! ये वहाँ नही हैं। वे मनुष्य असि, मषि, कृषि-पण्य और वाणिज्य से रहित हैं।

भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे हिरण्य (चादी), स्वर्ण, कासी, वस्त्र, मणि, मोती तथा विपुल धन-सोना रत्न मणि, मोती शख, शिला प्रवाल आदि प्रधान द्रव्य हैं ?

हाँ गौतम ! है परन्तु उन मनुष्यो को उनमे तीव्र ममत्वभाव नही होता है।

भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे राजा, युवराज, ईश्वर (भोगिक) तलवर (राजा द्वारा दिये गये स्वर्णपट्ट को धारण करने वाला अधिकारी), माडविक (उजडी वसति का स्वामी), कौटुम्बिक, इभ्य (धनिक), सेठ, सेनापति, सार्थवाह (अनेक व्यापारियो के साथ देशान्तर मे व्यापार करने वाला प्रमुख व्यापारी) आदि हैं क्या ?

आयुष्मन् श्रमण ! ये सब वहाँ नही हैं। वे मनुष्य ऋद्धि और सत्कार के व्यवहार से रहित हैं अर्थात् वहाँ सब बराबर हैं, विषमता नही है।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप में दास, प्रेष्य (नौकर), शिष्य, वेतनभोगी भृत्य, भागीदार, कर्मचारी हैं क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! ये सब वहाँ नही हैं। वहाँ नौकर कर्मचारी नही हैं।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे माता, पिता, भाई, बहिन, भार्या, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधू हैं क्या ?

हाँ गौतम ! हैं परन्तु उनका माता-पितादि मे तीव्र प्रेमबन्धन नही होता है। वे मनुष्य अल्प-रागबन्धन वाले हैं।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे अरि, वैरी, घातक, वधक, प्रत्यनीक (विरोधी), प्रत्यमित्र (पहले मित्र रहकर अमित्र हुआ व्यक्ति या दुश्मन का सहायक) हैं क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! ये सब वहाँ नही है। वे मनुष्य वैरभाव से रहित होते हैं।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे मित्र, वयस्य, प्रेमी, सखा, सुहृद, महाभाग और सागतिक (साथी) हैं क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! नही हैं। वे मनुष्य प्रेमानुबन्ध रहित हैं।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे आवाह (सगाई), विवाह (परिणय), यज्ञ, श्राद्ध, स्थालीपाक (वर-वधू भोज), चोलोपनयन (शिखाधारण सस्कार), सीमन्तोन्नयन (बाल उतारने का सस्कार), पितरो को पिण्डदान आदि सस्कार है क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! ये सस्कार वहाँ नही हैं। वे मनुष्य आवाह-विवाह, यज्ञ-श्राद्ध, भोज, चोलोपनयन सीमन्तोन्नयन पितृ-पिण्डदान आदि व्यवहार से रहित है।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे इन्द्रमहोत्सव, स्कद (कार्तिकेय) महोत्सव, रुद्र (यक्षाधिपति) महोत्सव, शिवमहोत्सव, वेश्रमण (कुबेर) महोत्सव, मुकुन्द (कृष्ण) महोत्सव, नाग, यक्ष, भूत, कूप, तालाब, नदी, द्रह (कुण्ड) पर्वत, वृक्षारोपण, चैत्य और स्तूप महोत्सव होते हैं क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ ये महोत्सव नही होते। वे मनुष्य महोत्सव की महिमा से रहित होते हैं।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे नटो का खेल होता है, नृत्यो का आयोजन होता है, डोरी पर खेलने वालो का खेल होता है, कुश्तियाँ होती हैं, मुष्टिप्रहारादि का प्रदर्शन होता है, विदूषको, कथाकारो, उछलकूद करने वालो, शुभाशुभ फल कहने वालो, रास गाने वालो, बाँस पर चढकर नाचने वालो, चित्रफलक हाथ मे लेकर माँगने वालो, तूणा (वाद्य) बजाने वालो, वीणावादको, कावड लेकर घूमने वालो, स्तुतिपाठको का मेला लगता है क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! यह अर्थ समर्थ नही है। वे मनुष्य कौतूहल से रहित होते हैं।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे गाडी, रथ, यान (वाहन) युग्य (गोल्लदेशप्रसिद्ध) चतुष्कोण वेदिका वाली और दो पुरुषो द्वारा उठाई जाने वाली पालकी) गिल्ली, थिल्ली, पिपिल्ली (लाटदेश-

प्रसिद्ध सवारीविशेष) प्रवहण (नौका-जहाज), शिविका (पालखी), स्यन्दमानिका (छोटी पालखी) आदि वाहन हैं क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ उक्त वाहन (सवारियाँ) नही है। वे मनुष्य पैदल चलने वाले होते है।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे घोडा, हाथी, ऊँट, बैल, भैस-भैसा, गधा, टट्टू, बकरा-बकरी और भेड होते हैं क्या ?

हाँ गौतम ! होते तो है परन्तु उन मनुष्यो के उपभोग के लिए नही होते।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे सिंह, व्याघ्र, भेडिया, चीता, रीछ, गेंडा, तरक्ष (तेंदुआ) बिल्ली, सियाल, कुत्ता, सूअर, लोमडी, खरगोश, चित्तल (चितकबरा पशुविशेष) और चिल्लक (पशुविशेष) हैं क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! वे पशु हैं परन्तु वे परस्पर या वहाँ के मनुष्यो को पीडा या बाधा नही देते है और उनके अवयवो का छेदन नही करते है क्योकि वे श्वापद स्वभाव से भद्रिक होते हैं।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे शालि, व्रीहि, गेहू, जौ, तिल और इक्षु होते हैं क्या ?

हाँ गौतम ! होते हैं किन्तु उन पुरुषो के उपभोग मे नही आते।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे गड्ढे, बिल, दरारे, भृगु (पर्वतशिखर आदि ऊँचे स्थान), अवपात (गिरने की सभावना वाले स्थान), विषमस्थान, कीचड, धूल, रज, पक-कीचड कादव और चलनी (पाँव मे चिपकने वाला कीचड) आदि हैं क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ ये गड्ढे आदि नही है। एकोरुक द्वीप का भू-भाग बहुत समतल और रमणीय है।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे स्थाणु (ठूठ) काँटे, हीरक (तीखी लकडी का टुकडा) ककर, तृण का कचरा, पत्तो का कचरा, अशुचि, सडाध, दुर्गन्ध और अपवित्र पदार्थ हैं क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! एकोरुक द्वीप मे उक्त स्थाणु आदि नही है। वह द्वीप स्थाणु-कटक-हीरक, ककर-तृणकचरा, पत्र कचरा, अशुचि, पूति, दुर्गन्ध और अपवित्रता से रहित है।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे डास, मच्छर, पिस्सू, जू, लीख, माकण (खटमल) आदि है क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! यह अर्थ समर्थ नही है। वह द्वीप डास, मच्छर, पिस्सू, जू, लीख, खटमल से रहित है।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे सर्प, अजगर और महोरग है क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! वे हैं तो सही परन्तु परस्पर या वहाँ के लोगो को बाधा-पीडा नही पहुँचाते हैं, न ही काटते है। वे व्यालगण (सर्पादि) स्वभाव से ही भद्रिक होते हैं।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे (अनिष्टसूचक) दण्डाकार ग्रहसमुदाय, मूसलाकार ग्रहसमुदाय, ग्रहो के सचार की ध्वनि, ग्रहयुद्ध (दो ग्रहो का एक स्थान पर होना) ग्रहसघाटक (त्रिकोणाकार ग्रह-

समुदाय), ग्रहापसव (ग्रहो का वक्री होना), मेघो का उत्पन्न होना, वृक्षाकार मेघो का होना, सन्ध्या-लाल-नीले वादलो का परिणमन, गन्धर्वनगर (बादलो का नगरादि रूप मे परिणमन), गर्जना, बिजली चमकना, उल्कापात (विजली गिरना), दिग्दाह (किसी एक दिशा का एकदम अग्निज्वाला जैसा भयानक दिखना), निर्घात (विजली का कडकना), धूलि वरसना, यूपक (सन्ध्याप्रभा और चन्द्रप्रभा का मिश्रण होने पर सन्ध्या का पता न चलना), यक्षादीप्त (आकाश मे अग्निसहित पिशाच का रूप दिखना), धूमिका (धूंधर), महिका (जलकणयुक्त धूंधर), रज-उद्घात (दिशाओ मे धूल भर जाना), चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण चन्द्र के आसपास मण्डल का होना, सूर्य के आसपास मण्डल का होना, दो चन्द्रो का दिखना, दो सूर्यो का दिखना, इन्द्रधनुष, उदकमत्स्य (इन्द्रधनुष का टुकडा), अमोघ (सूर्यास्त के वाद सूर्यविम्व, से निकलने वाली श्यामादि वर्ण वाली रेखा), कपिहसित (आकाश मे होने वाला भयकर शब्द), पूर्ववात, पश्चिमवात यावत् शुद्धवात, ग्रामदाह, नगरदाह यावत् सन्निवेशदाह, (इनसे होने वाले) प्राणियो का क्षय, जनक्षय, कुलक्षय, धनक्षय आदि दु ख और अनार्य-उत्पात आदि वहाँ होते हैं क्या ?

हे गौतम ! उक्त सव उपद्रव वहाँ नही होते है ।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे डिंव (स्वदेश का विप्लव), डमर (अन्य देश द्वारा किया गया उपद्रव), कलह (वाग्युद्ध), आर्तनाद, मात्सर्य, वैर, विरोधीराज्य आदि हैं क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! ये सव नही हैं । वे मनुष्य डिंब-डमर-कलह-बोल-क्षार-वैर और विरुद्ध-राज्य के उपद्रवो से रहित हैं ।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे महायुद्ध महासग्राम महाशस्त्रो का निपात, महापुरुषो (चक्रवर्ती-वलदेव-वासुदेव) के वाण, महारुधिरवाण, नागबाण, आकाशबाण, तामस (अन्धकार कर देने वाला) वाण आदि हैं क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! ये सव वहाँ नही हैं । क्योकि वहाँ के मनुष्य वैरानुबध से रहित होते हैं, अतएव महायुद्धादि नही होते हैं ।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे दुर्भूतिक (अशिव), कुलक्रमागतरोग, ग्रामरोग, नगररोग, मडल (जिला) रोग, शिरोवेदना, आखवेदना, कानवेदना, नाकवेदना, दातवेदना, नखवेदना, खासी, श्वास, ज्वर, दाह, खुजली, दाद, कोढ, कुड—डमरुवात, जलोदर, अर्श (बवासीर) अजीर्ण, भगदर, इन्द्र के आवेश से होने वाला रोग, स्कन्दग्रह (कार्तिकेय के आवेश से होने वाला रोग), कुमारग्रह, नागग्रह, यक्षग्रह, भूतग्रह, उद्वेगग्रह, धनुग्रह (धनुर्वात), एकान्तर ज्वर, दो दिन छोडकर आने वाला ज्वर, तीन दिन छोडकर आने वाला ज्वर, चार दिन छोडकर आने वाला ज्वर, हृदयशूल, मस्तकशूल, पार्श्वशूल (पसलियो का दर्द), कुक्षिशूल, योनिशूल, ग्राममारी यावत् सन्निवेशमारी और इनसे होनेवाला प्राणो का क्षय यावत् दु खरूप उपद्रवादि है क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! ये सब उपद्रव—रोगादि वहाँ नही हैं । वे मनुष्य सब तरह की व्याधियो से मुक्त होते हैं ।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, उद्‌वाह (तीव्रता से जल का वहना), प्रवाह, उदकभेद (ऊँचाई से जल गिरने से खड्डे पड जाना), उदकपीड़ा (जल का

ऊपर उछलना), गांव को वहा ले जाने वाली वर्षा यावत् सन्निवेश को वहा ले जाने वाली वर्षा और उससे होने वाला प्राणक्षय यावत् दु.खरूप उपद्रवादि होते है क्या ?

हे आयुष्मन् श्रमण ! ऐसा नही होता। वे मनुष्य जल से होने वाले उपद्रवो से रहित होते हैं।

हे भगवन् ! एकोरुक द्वीप मे लोहे की खान, तावे की खान, सीसे की खान, सोने की खान, रत्नो की खान, वज्र-हीरो की खान, वसुधारा (धन की धारा), सोने की वृष्टि, चादी की वृष्टि, रत्नो की वृष्टि,वज्रो-हीरो की वृष्टि,आभरणो की वृष्टि, पत्र-पुष्प-फल-वीज-माल्य-गन्ध-वर्ण-चूर्ण की वृष्टि, दूध की वृष्टि, रत्नो की वर्षा, हिरण्य-सुवर्ण यावत् चूर्णो की वर्षा, सुकाल, दुष्काल, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, सस्तापन, मंहगापन, क्रय, विक्रय, सन्निधि, सनिचय, निधि, निधान, वहुत पुराने, जिनके स्वामी नष्ट हो गये, जिनमे नया धन डालने वाला कोई न हो। जिनके गोत्री जन सव मर चुके हो ऐसे जो गावो मे, नगर मे, आकर-खेट-कर्वट-मडव-द्रोणमुख-पट्टन, आश्रम, सवाह और सन्निवेशो मे रखा हुआ, शृ गाटक (तिकोना मार्ग), त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मु ख महामार्गो पर, नगर की गटरों मे, श्मशान मे, पहाड की गुफाओ मे, ऊँचे पर्वतो के उपस्थान और भवनगृहो मे रखा हुआ—गडा हुआ धन है क्या ?

हे गौतम ! उक्त खान आदि और ऐसा धन वहाँ नही है।

एकोरुक मनुष्यों की स्थिति आदि

१११ [१७] एगोरुयदीवे ण भंते ! दीवे मणुयाण केवइय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं असखेज्जइ भागेणं ऊणगं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असखेज्जइभागं।

ते णं मणुस्सा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छंति कहिं उववज्जंति ?

गोयमा ! ते णं मणुया छम्मासावसेसाउया मिहुणाइ पसवंति, अउणासीइं राइदियाइं मिहुणाइं सारक्खंति संगोविंति य। सारक्खित्ता संगोवित्ता उस्ससित्ता निस्ससित्ता कासित्ता छीइत्ता अक्किट्ठा अव्वहिया, अपरियाविया (पलिओवमस्स असंखेज्जइ भागं परियाविय) सुहंसुहेण कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। देवलोयपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो !

[१११] (१७) हे भगवन् ! एकोरुकद्वीप के मनुष्यो की स्थिति कितनी कही है ?

हे गौतम ! जघन्य से असख्यातवा भाग कम पल्योपम का असंख्यातवा भाग और उत्कर्ष मे पल्योपम का असख्यातवा भागप्रमाण स्थिति है।

हे भगवन् ! वे मनुष्य कालमास मे काल करके—मरकर कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

हे गौतम ! वे मनुष्य छह मास की आयु शेष रहने पर एक मिथुनक (युगलिक) को जन्म देते हैं। उन्नयासी रात्रिदिन तक उसका संरक्षण और सगोपन करते हैं। सरक्षण और सगोपन करके ऊर्ध्वश्वास लेकर या निश्वास लेकर या खासकर या छीककर विना किसी कष्ट के, विना किसी दु.ख

के, बिना किसी परिताप के (पल्योपम का असख्यातवा भाग आयुष्य भोगकर) सुखपूर्वक मृत्यु के अवसर पर मरकर किसी भी देवलोक मे देव के रूप मे उत्पन्न होते है ।

हे आयुष्मन् श्रमण ! वे मनुष्य मरकर देवलोक मे ही जाते है ।

१११ (१८) कहि णं भते ! दाहिणिल्लाणं आभासियमणुस्साण आभासियदीवे णाम दीवे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेण चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणपुरच्छिमिल्लाओ चरिमताओ लवणसमुद्दं तिन्नि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं आभासियमणुस्साणं आभासियदीवे णाम दीवे पण्णत्ते, सेसं जहा एगोरुयाणं णिरवसेस सव्व ।

कहि णं भते । दाहिणिल्लाणं णगोलिमणुस्साण पुच्छा ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चुल्लहिमवतस्स वासहरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहित्ता सेस जहा एगोरुयमणुस्साणं ।

कहि ण भते ! दाहिणिल्लाणं वेसाणियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेण चुल्लहिमवतस्स वासधरपव्वयस्स दाहिणपच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्द तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहित्ता सेस जहा एगोरुयाण ।

[१११] (१८) हे भगवन् ! दक्षिण दिशा के आभाषिक मनुष्यो का आभाषिक नाम का द्वीप कहाँ है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण मे चुल्लहिमवान् वर्षधरपर्वत के दक्षिण-पूर्व (अग्निकोण) चरमात से लवणसमुद्र मे तीन सौ योजन जाने पर वहाँ आभाषिक मनुष्यो का आभाषिक नामक द्वीप है । शेष समस्त वक्तव्यता एकोरुक द्वीप की तरह कहनी चाहिए ।

हे भगवन् ! दाक्षिणात्य लागूलिक मनुष्यो का नगोलिक द्वीप कहाँ है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण मे और चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत के उत्तर पूर्व (ईशानकोण) चरमात से लवणसमुद्र मे तीन सौ योजन जाने पर वहाँ लागूलिक मनुष्यो का लागूलिक द्वीप है । शेष वक्तव्यता एकोरुक द्वीपवत् ।

हे भगवन् ! दाक्षिणात्य वैषाणिक मनुष्यो का वैषाणिक द्वीप कहाँ है ?

हे गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के दक्षिण मे और चुल्लहिमवन्त वर्षधर पर्वत के दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण) के चरमात से तीन सौ योजन जाने पर वहाँ वैषाणिक मनुष्यो का वैषाणिक नामक द्वीप है । शेष वक्तव्यता एकोरुकद्वीप की तरह जानना चाहिए ।

विवेचन—अन्तरद्वीप हिमवान और शिखरी इन दो पर्वतो की लवणसमुद्र मे निकली दाढाओ पर स्थित है । हिमवान पर्वत की दाढा पर अट्ठाईस अन्तरद्वीप है और शिखरीपर्वत की दाढा पर

अट्ठाईस अन्तर्द्वीप हैं—यो छप्पन अन्तर्द्वीप है। हिमवान पर्वत जम्बूद्वीप मे भरत और हैमवत क्षेत्रो की सीमा करने वाला है। वह पूर्व-पश्चिम के छोरो से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। लवणसमुद्र के जल-स्पर्श से लेकर पूर्व-पश्चिम दिशा मे दो गजदन्ताकार दाढे निकली हैं। उनमे से ईशानकोण मे जो दाढा निकली है उस पर हिमवान पर्वत से तीन सौ योजन की दूरी पर लवणसमुद्र मे ३०० योजन लम्बा-चौडा और ९४९ योजन से कुछ अधिक की परिधि वाला एकोरुक नाम का द्वीप है। जो ३०० धनुष विस्तृत, दो कोस ऊँची पद्मवरवेदिका मे चारो ओर से मण्डित है। उसी हिमवान पर्वत के पर्यन्त भाग से दक्षिणपूर्वकोण मे तीन सौ योजन दूर लवणसमुद्र मे अवगाहन करते ही दूसरी दाढा आती है जिस पर एकोरुक द्वीप जितना ही लम्बा-चौडा आभाषिक नामक द्वीप है। उसी हिमवान पर्वत के पश्चिम दिशा के छोर से लेकर दक्षिण-पश्चिमदिशा (नैऋत्यकोण) मे तीन सौ योजन लवणसमुद्र मे अवगाहन करने के बाद एक दाढ आती है, जिस पर उसी प्रमाण का लागूलिक नाम का द्वीप है एव उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिमदिशा के छोर से लेकर पश्चिमोत्तरदिशा (वायव्यकोण) मे तीन सौ योजन दूर लवणसमुद्र मे एक दाढा आती है, जिस पर पूर्वोक्तप्रमाणवाला वैषाणिक द्वीप आता है। इस प्रकार ये चारो द्वीप हिमवान पर्वत से चारो विदिशाओ मे हैं और समान प्रमाण वाले हैं।

इनका आकार, भाव, प्रत्यवतार मूलपाठानुसार स्पष्ट ही है।

११२. कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे णामं दीवे पण्णत्ते?

गोयमा! एगोरुयदीवस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं हयकण्णमणुस्साणं हयकण्णदीवे णामं दीवे पण्णत्ते, चत्तारि जोयणसयाइं आयामविक्खभेणं बारस जोयणसया पन्नट्ठी किंचिविसेसूणा परिक्खेवेणं। से णं एगाए पउमववेदि याए अवसेसं जहा एगोरुयाणं।

कहि णं भंते! दाहिणिल्लाणं गजकण्णमणुस्साणं पुच्छा।

गोयमा! आभासियदीवस्स दाहिणपुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं सेसं जहा हयकण्णाणं।

एवं गोकण्णमणुस्साणं पुच्छा?

वेसाणियदीवस्स दाहिणपच्चत्थिमिल्लाओ [चरिमताओ लवणसमुद्दं चत्तारि जोयणसयाइं सेसं जहा हयकण्णाणं।

सक्कुलिकण्णाणं पुच्छा?

गोयमा! णंगोलियदीवस्स उत्तरपच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्दं चत्तारि-जोयणसयाइं सेसं जहा हयकण्णाणं।

आयंसमुहाणं पुच्छा?

हयकण्णदीवस्स उत्तरपुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ पंच जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दाहिणिल्लाणं आयंसमुहमणुस्साणं आयसमुहदीवे णाम दीवे पण्णत्ते। पंचजोयणसयाइं आयामविक्खभे-णं; आसमुहाईणं छसया आसकन्नाईणं सत्त, उक्कामुहाईणं अट्ठ, घणदंताईणं जाव नव जोयणसयाइं—

एगोरुय परिक्खेवो नव चेव सयाइं अउणपन्नाइं ।
बारसपन्नट्ठाइं हयकण्णाईण [परिक्खेवो ॥१॥

आयंसमुहाईणं पन्नरसेकासीए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं; एवं एएण कमेण उवउज्जिउण णेयव्वा चत्तारि चत्तारि एग पमाणा । णाणत्तं ओगाहे विक्खमे परिक्खेवे पढम-बीय-तइय-चउक्काणं उग्गहो विक्खंभो परिक्खेवो भणिओ । चउत्थ चउक्के छजोयणसयाइ आयाम-विक्खंभेणं अट्ठारससत्ताणउए जोयणसए परिक्खेवेणं । पंचम चउक्के सत्तजोयणसयाइ आयाम-विक्खंभेणं बावीसं तेरसोत्तरे जोयणसए परिक्खेवेणं । छट्ठ चउक्के अट्ठजोयणसयाइ आयामविक्खंभेणं पणुवीसं एगुणतीस जोयणसए परिक्खेवेण । सत्तम चउक्के नवजोयणसयाइ [आयामविक्खंभेणं दो जोयणसहस्साइं अट्ठपणयाले जोयसणए परिक्खेवेणं ।

जस्स य जो विक्खंभो उग्गहो तस्स तत्तिओ चेव ।
पढमाइयाण परिरओ जाव सेसाण अहिओ उ ॥२॥

सेसा जहा एगोरुयदीवस्स जाव सुद्धदंतदीवे देवलोकपरिग्गहा ण ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो ।

कहि णं भंते ! उत्तरिल्लाणं एगोरुयमणुस्साण एगोरुयदीवे णामं दीवे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेण सिहरिस्स वासधरपव्वयस्स उत्तरपुरच्छि-मिल्लाओ चरिमंताओ लवणसमुद्द तिण्णि जोयणसयाइं ओगाहित्ता एवं जहा दाहिणिल्लाणं तहा उत्तरिल्लाणं भाणियव्वं । णवरं सिहरिस्स वासहरपव्वयस्स विदिसासु; एव जाव सुद्धदंतदीवे त्ति जाव से त्तं अंतरदीवगा ।

[११२] हे भगवन् ! दाक्षिणात्य हयकर्ण मनुष्यो का हयकर्ण नामक द्वीप कहाँ कहा गया है ?

गौतम ! एकोरुक द्वीप के उत्तरपूर्वी (ईशानकोण के) चरमान्त से लवणसमुद्र मे चार सौ योजन आगे जाने पर वहाँ दाक्षिणात्य हयकर्ण मनुष्यो का हयकर्ण नामक द्वीप कहा गया है । वह चार सौ योजनप्रमाण लम्बा-चौडा है और बारह सौ पैसठ योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है । वह एक पद्मवरवेदिका मे मण्डित है । शेष वर्णन एकोरुक द्वीप की तरह जानना चाहिए ।

हे भगवन् ! दाक्षिणात्य गजकर्ण मनुष्यो का गजकर्ण द्वीप कहाँ है आदि पृच्छा ?

गौतम ! आभाषिक द्वीप के दक्षिण-पूर्वी (आग्नेयकोण के) चरमान्त से लवणसमुद्र मे चार सौ योजन आगे जाने पर गजकर्ण द्वीप है । शेष वर्णन हयकर्ण मनुष्यो की तरह जानना चाहिए ।

इसी तरह गोकर्ण मनुष्यो की पृच्छा ?

गौतम ! वैषाणिक द्वीप के दक्षिण-पश्चिमी (नैऋत्यकोण के) चरमात से लवणसमुद्र मे चार सौ योजन जाने पर वहाँ गोकर्णद्वीप है । शेष वर्णन हयकर्ण मनुष्यो की तरह जानना चाहिए ।

भगवन् ! शष्कुलिकर्ण मनुष्यो की पृच्छा ?

गौतम ! लागूलिक द्वीप के उत्तर-पश्चिमी (वायव्यकोण के) चरमान्त से लवणसमुद्र में चार सौ योजन जाने पर शष्कुलिकर्ण नामक द्वीप है। शेष वर्णन हयकर्ण मनुष्यों की तरह जानना चाहिए।

हे भगवन् ! आदर्शमुख मनुष्यो की पृच्छा ?

गौतम ! हयकर्णद्वीप के उत्तरपूर्वी चरमात से पाच सौ योजन आगे जाने पर वहाँ दाक्षिणात्य आदर्शमुख मनुष्यो का आदर्शमुख नामक द्वीप है, वह पाच सौ योजन का लम्बा-चौडा है। अश्वमुख आदि चार द्वीप छह सौ योजन आगे जाने पर, अश्वकर्ण आदि चार द्वीप सात सौ योजन आगे जाने पर, उल्कामुख आदि चार द्वीप आठ सौ योजन आगे जाने पर और घनदत आदि चार द्वीप नौ सौ योजन आगे जाने पर वहाँ स्थित हैं।

एकोरुक द्वीप आदि की परिधि नौ सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक, हयकर्ण आदि की परिधि बारह सौ पेसठ योजन से कुछ अधिक जाननी चाहिए ।। १ ।।

आदर्शमुख आदि की परिधि पन्द्रह सौ इक्यासी योजन से कुछ अधिक है। इस प्रकार इस क्रम से चार-चार द्वीप एक समान प्रमाण वाले हैं। अवगाहन, विष्कभ और परिधि मे अन्तर समझना चाहिए। प्रथम-द्वितीय-तृतीय-चतुष्क का अवगाहन, विष्कभ और परिधि का कथन कर दिया गया है। चौथे चतुष्क मे छह सौ योजन का आयाम-विष्कंभ और १८९७ योजन से कुछ अधिक परिधि है। पचम चतुष्क मे सात सौ योजन का आयाम-विष्कभ और २२१३ योजन से कुछ अधिक की परिधि है। छठे चतुष्क मे आठ सौ योजन का आयाम-विष्कभ और २५२९ योजन से कुछ अधिक की परिधि है। सातवे चतुष्क मे नौ सौ योजन का आयाम-विष्कभ और २८४५ योजन से कुछ विशेष की परिधि है। जिसका जो आयाम-विष्कभ है वही उसका अवगाहन है। (प्रथम चतुष्क से द्वितीय चतुष्क की परिधि ३१६ योजन अधिक, इसी क्रम से ३१६-३१६ योजन की परिधि बढाना चाहिए। विशेषाधिक पद सबके साथ कहना चाहिए) ।। २ ।।

आयुष्मन् श्रमण ! शेष वर्णन एकोरुकद्वीप की तरह शुद्धदतद्वीप पर्यन्त समझ लेना चाहिए यावत् वे मनुष्य देवलोक मे उत्पन्न होते हैं।

हे भगवन् ! उत्तरदिशा के एकोरुक मनुष्यो का एकोरुक नामक द्वीप कहाँ कहा गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप द्वीप के मेरुपर्वत के उत्तर मे शिखरी वर्षधरपर्वत के उत्तरपूर्वी चरमान्त से लवणसमुद्र मे तीन सौ योजन आगे जाने पर वहाँ उत्तरदिशा के एकोरुक द्वीप के मनुष्यो का एकोरुक नामक द्वीप है—इत्यादि सब वर्णन दक्षिणदिशा के एकोरुक द्वीप की तरह जानना चाहिए, अन्तर यह है कि यहाँ शिखरी वर्षधरपर्वत की विदिशाओ मे ये स्थित हैं, ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार शुद्धदतद्वीप पर्यन्त कथन करना चाहिए। यह अन्तरद्वीपक मनुष्यो का वर्णन पूरा हुआ।

विवेचन—एकोरुक, आभाषिक, लागूलिक और वैषाणिक इन चार अन्तर्द्वीपो का वर्णन इसके पूर्ववर्ती सूत्र के विवेचन मे किया है। इन्ही एकोरुक आदि चारो द्वीपो के आगे यथाक्रम से पूर्वोत्तर आदि प्रत्येक विदिशा मे चार-चार सौ योजन आगे चलने पर चार-चार सौ योजन लम्बे-चौडे और कुछ अधिक १२६५ योजन की परिधि वाले पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से सुशोभित तथा जम्बूद्वीप की वेदिका से ४०० योजन प्रमाण दूर हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और

शष्कुलिकर्ण नाम के चार द्वीप हैं। एकोरुक द्वीप के आगे हयकर्ण है, आभाषिक के आगे गजकर्ण, वैषाणिक के आगे गोकर्ण और लागूलिक के आगे शष्कुलिकर्ण द्वीप है।

इसके अनन्तर इन हयकर्ण आदि चारो द्वीपो से आगे पाच-पाच सौ योजन की दूरी पर चार द्वीप हैं—जो पाच-पाच सौ योजन लम्बे-चौडे हैं और पूर्ववत् चारो विदिशाओ मे स्थित हैं। इनकी परिधि विशेषाधिक १५२१ योजन की है। ये पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से सुशोभित हैं। जम्बूद्वीप की वेदिका से ये ५०० योजनप्रमाण अन्तर वाले हैं। इनके नाम हैं—आदर्शमुख, मेण्ढ्मुख, अयोमुख और गोमुख। इनमे से हयकर्ण के आगे आदर्शमुख, गजकर्ण के आगे मेण्ढ्मुख, गोकर्ण के आगे अयोमुख और शष्कुलिकर्ण के आगे गोमुखद्वीप है।

इन आदर्शमुख आदि चारो द्वीपो के आगे छह-छह सौ योजन की दूरी पर पूर्वोत्तरादि विदिशाओ मे फिर चार द्वीप हैं—अश्वमुख, हस्तिमुख, सिंहमुख और व्याघ्रमुख। ये चारो द्वीप छह सौ योजन लम्बे-चौडे और १८९७ योजन से कुछ अधिक परिधि वाले हैं। पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका और वनखड से शोभित हैं। जम्बूद्वीप की वेदिका से ६०० योजन की दूरी पर स्थित हैं।

इन अश्वमुख आदि चारो द्वीपो के आगे क्रमश. पूर्वोत्तरादि विदिशाओ मे ७००-७०० योजन की दूरी पर ७०० योजन लम्बे-चौडे और २२१३ योजन से कुछ अधिक की परिधि वाले पूर्वोक्त पद्म-वरवेदिका और वनखण्ड से घिरे हुए एव जम्बूद्वीप की वेदिका से ७०० योजन के अन्तर पर अश्वकर्ण, हरिकर्ण, अकर्ण और कर्णप्रावरण नाम के चार द्वीप हैं।

फिर इन्ही अश्वकर्ण आदि चार द्वीपो के आगे यथाक्रम से पूर्वोत्तरादि विदिशाओ मे ८००-८०० योजन दूर जाने पर आठ सौ योजन लम्बे-चौडे, २५२९ योजन से कुछ अधिक परिधि वाले, पद्मवरवेदिका और वनखड से सुशोभित, जम्बूद्वीप की वेदिका से ८०० योजन दूरी पर उल्कामुख, मेघमुख, विद्युन्मुख और विद्युद्दन्त नाम के चार द्वीप हैं।

तदनन्तर इन्ही उल्कामुख आदि चारो द्वीपो के आगे क्रमश पूर्वोत्तरादि विदिशाओ मे ९००-९०० योजन की दूरी पर नौ सौ योजन लम्बे-चौडे तथा २८४५ योजन से कुछ अधिक परिधि वाले, पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से परिमडित, जम्बूद्वीप की वेदिका से ९०० योजन के अन्तर पर चार द्वीप और हैं, जिनके नाम क्रमश ये हैं—घनदन्त, लष्टदन्त, गूढदन्त और शुद्धदन्त। हिमवान् पर्वत की दाढो पर चारो विदिशाओ मे स्थित ये सब द्वीप (७×४=२८) अट्ठाईस हैं। शिखरी पर्वत की दाढो पर भी इसी प्रकार २८ अन्तरद्वीप है। शिखरीपर्वत की लवणसमुद्र मे गई दाढो पर, लवणासमुद्र के जलस्पर्श से लेकर पूर्वोक्त दूरी पर पूर्वोक्त प्रमाण वाले, चारो विदिशाओ मे स्थित एकोरुक आदि उन्ही नामो वाले अट्ठाईस द्वीप हैं। इनकी लम्बाई-चौडाई, परिधि, नाम आदि सब पूर्ववत् हैं। दोनो मिलाकर छप्पन अन्तरद्वीप है। इन द्वीपो मे रहने वाले मनुष्य अन्तरद्वीपिक मनुष्य कहे जाते हैं। यहाँ अन्तरद्वीपिको का वर्णन पूरा होता है।

११३ से किं तं अकम्मभूभगमणुस्सा ?

अकम्मभूमगमणुस्सा तीसविहा पण्णत्ता, तंजहा—पंचहिं हेमवएहिं, एव जहा पण्णवणापदे जाव पर्चाहं उत्तरकुरुहिं से त्तं अकम्मभूमगा।

से किं तं कम्मभूमगा ?

कम्मभूमगा पण्णरसविहा पण्णत्ता, तं जहा—पंचहिं भरहेहिं, पंचहिं एरवएहिं, पंचहिं महाविदेहेहिं। ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—आरिया मिलेच्छा, एवं जहा पण्णवणापदे जाव से त्तं आरिया, से त्तं गब्भवक्कंतिया, से त्तं मणुस्सा।

[११३] हे भगवन् ! अकर्मभूमिक मनुष्य कितने प्रकार के हैं ?

गौतम ! अकर्मभूमिक मनुष्य तीस प्रकार के हैं, यथा—पांच हैमवत में (पांच हैरण्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु क्षेत्र में) रहने वाले मनुष्य। इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार जानना चाहिए। यह तीस प्रकार के अकर्मभूमिक मनुष्यों का कथन हुआ।

हे भगवन् ! कर्मभूमिक मनुष्यों के कितने प्रकार हैं ?

गौतम ! कर्मभूमिक मनुष्य पन्द्रह प्रकार के हैं—यथा—पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह के मनुष्य। वे संक्षेप से दो प्रकार के हैं, यथा—आर्य और म्लेच्छ। इस प्रकार प्रज्ञापना-सूत्र के अनुसार कहना चाहिए। यावत् यह आर्यों का कथन हुआ। यह गर्भव्युत्क्रान्तिकों का कथन हुआ और उसके साथ ही मनुष्यों का कथन भी सम्पूर्ण हुआ।

अट्ठाईस अन्तरद्वीपिकों के कोष्टक

(१) प्रथम चतुष्क

	विदिशा	अवगाहन	आयाम	परिधि	द्वीप नाम
मेरु के दक्षिण में क्षुद्रहिमवान के	उत्तरपूर्व	३०० योजन	३०० यो.	९४९ यो. विशेषाधिक	एकोरुक
,,	दक्षिणपूर्व	,,	,,	,,	आभाषिक
,,	दक्षिणपश्चिम	,,	,,	,,	वैषाणिक
,,	उत्तरपश्चिम	,,	,,	,,	लांगूलिक

(२) द्वितीय चतुष्क

द्वीप नाम	विदिशा	अवगाहन	आयाम	परिधि	द्वीप नाम
एकोरुक	उत्तर पूर्व	४०० यो.	४०० यो.	१२६५ यो. विशेषाधिक	हयकर्ण
आभाषिक	दक्षिण पूर्व	,,	,,	,,	गजकर्ण
वैषाणिक	दक्षिण पश्चिम	,,	,,	,,	गोकर्ण
लांगूलिक	उत्तर पश्चिम	,,	,,	,,	शष्कुलीकर्ण

(३) तृतीय चतुष्क

द्वीपनाम	विदिशा	अवगाहन	आयाम	परिधि	द्वीपनाम
हयकर्ण	उत्तर पूर्व	५०० यो	५०० यो	१५८१ यो विशेषाधिक	आदर्शमुख
गजकर्ण	दक्षिण पूर्व	,,	,,	,,	मेण्ढ्रमुख
गोकर्ण	दक्षिण पश्चिम	,,	,,	,,	अयोमुख
शष्कुलीकर्ण	उत्तर पश्चिम	,,	,,	,,	गोमुख

(४) चतुर्थ चतुष्क

द्वीपनाम	विदिशा	अवगाहन	आयाम	परिधि	द्वीपनाम
आदर्शमुख	उत्तर पूर्व	६०० योजन	६०० यो	१८९७ यो विशेषाधिक	अश्वमुख
मेण्ढ्रमुख	दक्षिण पूर्व	,,	,,	,,	हस्तिमुख
अयोमुख	दक्षिण पश्चिम	,,	,,	,,	सिंहमुख
गोमुख	उत्तर पश्चिम	,,	,,	,,	व्याघ्रमुख

(५) पंचम चतुष्क

द्वीपनाम	विदिशा	अवगाहन	आयाम	परिधि	द्वीपनाम
अश्वमुख	उत्तर पूर्व	७०० यो	७०० यो	२२१३ यो विशेषाधिक	अश्वकर्ण
हस्तिमुख	दक्षिण पूर्व	,,	,,	,,	सिंहकर्ण
सिंहमुख	दक्षिण पश्चिम	,,	,,	,,	अकर्ण
व्याघ्रमुख	उत्तर पश्चिम	,,	,,	,,	कर्णप्रावरण

(६) षष्ठ चतुष्क

द्वीपनाम	विदिशा	अवगाहन	आयाम	परिधि	द्वीपमुख
अश्वकर्ण	उत्तर पूर्व	८०० यो	८०० यो	२५२९ यो विशेषाधिक	उल्कामुख
सिंहकर्ण	दक्षिण पूर्व	,,	,,	,,	मेघमुख
अकर्ण	दक्षिण पश्चिम	,,	,,	,,	विद्युन्मुख
कर्णप्रावरण	उत्तर पश्चिम	,,	,,	,,	विद्युद्दन्त

(७) सप्तम चतुष्क

द्वीपनाम	विदिशा	अवगाहन	आयाम	परिधि	द्वीपनाम
उल्कामुख	उत्तर पूर्व	९०० यो	९०० यो	२८४५ यो विशेषाधिक	घनदन्त
मेघमुख	दक्षिण पूर्व	,,	,,	,,	लष्टदन्त
विद्युन्मुख	दक्षिण पश्चिम	,,	,,	,,	गूढदन्त
विद्युद्दन्त	उत्तर पश्चिम	,,	,,	,,	शुद्धदन्त

देववर्णन

११४. से किं तं देवा ?

देवा चउव्विहा पण्णत्ता, तंजहा—भवणवासी वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया ।

[११४] देव के कितने प्रकार हैं ?

देव चार प्रकार के हैं, यथा—१ भवनवासी, २ वानव्यंतर, ३ ज्योतिष्क और ४ वैमानिक ।

११५. से किं तं भवणवासी ?

भवणवासी दसविहा पण्णत्ता, तंजहा—असुरकुमारा जहा पण्णवणापदे देवाणं भेओ तहा भाणियव्वो जाव अणुत्तरोववाइया पंचविहा पण्णत्ता, तंजहा—विजय वेजयंत जाव सव्वट्ठसिद्धगा, से त्तं अणुत्तरोववाइया ।

[११५] भवनवासी देवों के कितने प्रकार हैं ?

भवनवासी देव दस प्रकार के है, यथा—असुरकुमार आदि प्रज्ञापनापद मे कहे हुए देवों के भेद का कथन करना चाहिए यावत् अनुत्तरोपपातिक देव पाच प्रकार के हैं, यथा—विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध । यह अनुत्तरौपपातिक देवों का कथन हुआ ।

११६. कहि णं भंते ! भवणवासिदेवाणं भवणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! भवणवासी देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए, एवं जहा पण्णवणाए जाव भवणवासइया, तत्थ णं भवणवासीणं देवाणं सत्त भवणकोडीओ बावत्तरि भवणवाससयसहस्सा भवंति त्तिमक्खाया । तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति—असुरा नाग सुवन्ना य जहा पण्णवणाए जाव विहरंति ।

[११६] हे भगवन् ! भवनवासी देवो के भवन कहाँ कहे गये हैं ? हे भगवन् ! वे भवनवासी देव कहाँ रहते हैं ?

हे गौतम ! इस एक लाख अस्सी हजार योजन की मोटाई वाली रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन ऊपर और एक हजार योजन नीचे के भाग को छोड़कर शेष एक लाख अठहत्तर हजार योजन-

प्रमाणक्षेत्र मे भवनावास कहे गये हैं आदि वर्णन प्रज्ञापनापद के अनुसार जानना चाहिए। वहाँ भवनवासी देवो के सात करोड बहत्तर लाख भवनावास कहे गये हैं। उनमे बहुत से भवनवासी देव रहते हैं, यथा—असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार आदि वर्णन प्रज्ञापनासूत्र के अनुसार कहना चाहिए यावत् दिव्य भोगो का उपभोग करते हुए विचरते हैं।

११७ कहि णं भंते ! असुरकुमाराणं देवाण भवणा पण्णत्ता ? पुच्छा ? एव जहा पण्णवणाठाणपदे जाव विहरंति।

कति णं भंते ! दाहिणिल्लाणं असुरकुमारदेवाणं भवणा पुच्छा ? एवं जहा ठाणपदे जाव चमरे, तत्थ असुरकुमारिंदे परिवसइ जाव विहरइ।

[११७] हे भगवन् ! असुरकुमार देवो के भवन कहाँ कहे गये हैं ?

गौतम ! जैसा प्रज्ञापना के स्थानपद मे कहा गया है, वैसा ही कथन यहाँ समझना चाहिए यावत् दिव्य-भोगो को भोगते हुए वे विचरण करते हैं।

हे भगवन् ! दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवो के भवनो के सबध मे प्रश्न है ?

गौतम ! जैसा स्थानपद मे कहा, वैसा कथन यहाँ कर लेना चाहिए यावत् असुरकुमारो का इन्द्र चमर वहाँ दिव्य भोगो का उपभोग करता हुआ विचरता है।

विवेचन—देवाधिकार का प्रारम्भ करते हुए देवो के ४ भेद बताये गये हैं—भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। तदनन्तर इनके अवान्तर भेदो के विषय मे प्रज्ञापना के प्रथमपद के अनुसार कहने की सूचना दी गई है। प्रज्ञापना मे वे भेद इस प्रकार कहे हैं—

भवनपति के १० भेद है—१ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ सुपर्णकुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७ उदधिकुमार, ८ दिशाकुमार, ९ पवनकुमार और १० स्तनितकुमार। इन दस के पर्याप्तिक और अपर्याप्तिक के भेद से २० भेद हुए।

वानव्यन्तर के ८ भेद हैं—१ किन्नर, २ किंपुरुष, ३ महोरग, ४ गधर्व, ५ यक्ष, ६ राक्षस, ७ भूत, ८ पिशाच। इनके पर्याप्तिक और अपर्याप्तिक भेद से १६ भेद हुए।

ज्योतिष्क के पाच प्रकार है—१ चन्द्र, १ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र और ५ तारे। इनके पर्याप्तिक और अपर्याप्तिक।

वैमानिक देव दो प्रकार के हैं—१ कल्पोपपन्न और २ कल्पातीत। कल्पोपपन्न १२ प्रकार के हैं—१ सौधर्म, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ आनत, १० प्राणत, ११ आरण और १२ अच्युत।

कल्पातीत दो प्रकार के हैं—ग्रैवेयक और अनुत्तरोपपातिक। ग्रैवेयक के ९ भेद है—१ अधस्तनाधस्तन, २ अधस्तनमध्यम, ३ अधस्तनउपरितन, ४ मध्यमअधस्तन, ५ मध्यम-मध्यम, ६. मध्यमोपरितन, ७ उपरिम-अधस्तन, ८ उपरिम-मध्यम और ९ उपरितनोपरितन।

अनुत्तरोपपातिक पाच प्रकार के है—१ विजय, २ वैजयत, ३ जयन्त, ४ अपराजित और सर्वार्थसिद्ध।

उपर्युक्त सब वैमानिको के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के रूप मे दो-दो भेद हैं।

उक्त रीति से भेदकथन के पश्चात् भवनवासी देवों के भवनो और उनके निवासो को लेकर प्रश्न किये गये हैं। इसके उत्तर मे कहा गया है कि हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं उस रत्नप्रभापृथ्वी का बाहल्य (मोटाई) एक लाख अस्सी हजार योजन का है। उसके एक हजार योजन के ऊपरी भाग को और एक हजार योजन के अधोवर्ती भाग को छोडकर एक लाख अठहत्तर हजार योजन जितने भाग मे भवनवासी देवों के ७ करोड़ और ७२ लाख भवनावास है। इस प्रकार के भवनवासी देवो के भवनावासो की संख्या अलग-अलग इस प्रकार है—

१. असुरकुमार के ६४ लाख
२. नागकुमार के ८४ लाख
३ सुपर्णकुमार के ७२ लाख
४ विद्युत्कुमार के ७६ लाख
५ अग्निकुमार के ७६ लाख
६ द्वीपकुमार के ७६ लाख
७. उदधिकुमार के ७६ लाख
८ दिक्कुमार के ७६ लाख
९. पवनकुमार के ९६ लाख
१०. स्तनितकुमार के ७६ लाख

कुल मिलाकर भवनवासियो के सात करोड बहत्तर लाख भवनावास कहे गये हैं।

वे भवन बाहर से गोल और भीतर से समचौरस तथा नीचे कमल की कर्णिका के आकार के हैं। उन भवनो के चारो ओर गहरी और विस्तीर्ण खाइयां और परिखाएँ खुदी हुई हैं, जिनका अन्तर स्पष्ट प्रतीत होता है। यथास्थान परकोटो, अटारियो, कपाटो, तोरणो और प्रतिद्वारो से वे सुशोभित हैं। वे भवन विविध यन्त्रों, शतघ्नियो (महाशिलाओ या महायष्टियो, मूसलों, मुसडियो आदि शस्त्रो) से वेष्टित हैं। वे शत्रुओं द्वारा अयुध्य (युद्ध न करने योग्य) सदा जयशील, सदा सुरक्षित एवं अडतालीस कोठों से रचित, अडतालीस वनमालाओ से सुसज्जित, क्षेममय, शिवमय, किंकर देवों के दण्डो से उपरक्षित हैं। लीपने और पोतने से वे प्रशस्त हैं। उन पर गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से पांचों अंगुलियों के छापे लगे हुए हैं। यथास्थान चंदन के कलश रखे हुए हैं। उनके तोरण प्रतिद्वार देश के भाग चंदन के घडों से सुशोभित होते हैं। वे भवन ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी, विपुल एव गोलाकार मालाओ से युक्त हैं तथा पंचरंग के ताजे सरस सुगंधित पुष्पो के उपचार से युक्त होते हैं। वे काले अगर, श्रेष्ठ चीड, लोबान तथा धूप की महकती हुई सुगंध से रमणीय, उत्तम सुगंधित होने से गन्ध-वट्टी के समान लगते हैं। वे अप्सरागण के संघातो से व्याप्त, दिव्य वाद्यो के शब्दो से भली-भांति शब्दायमान, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे हुए, पोंछे हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पंक, आवरणरहित कान्ति वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, किरणो से युक्त, उद्योत (शीतल प्रकाश) युक्त, प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (अति रमणीय) और प्रतिरूप (सुरूप) हैं।

इन भवनो मे पूर्वोक्त वहुत से भवनवासी देव रहते है। उन भवनवासी देवो की दस जातिया हैं—असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार। उन दसो जातियो के देवो के मुकुट या आभूषणो मे अकित चिह्न क्रमश इस प्रकार हैं—

१ चूडामणि, २ नाग का फन, ३ गरुड, ४ वज्र, ५ पूर्णकलश से अकित मुकुट, ६ सिंह, ७ मकर, ८ हस्ति का चिह्न, ९ श्रेष्ठ अश्व और १० वर्द्धमानक (सिकोरा)।

वे भवनवासी देव उक्त चिह्नो से अकित, सुरूप, महर्द्धिक, महाद्युति वाले, महान् वलशाली, महायशस्वी, महान् अनुभाग (प्रभाव) व अति सुख वाले, हार से सुशोभित वक्ष स्थल वाले, कडो और वाजूवदो से स्तम्भित भुजा वाले, कपोलो को छूने वाले कुण्डल अगद, तथा कर्णपीठ के धारक, हाथो मे विचित्र (नानारूप) आभूषण वाले, विचित्र पुष्पमाला और मस्तक पर मुकुट धारण किये हुए, कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक, देदीप्यमान शरीर वाले, लम्वी वनमाला के धारक तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य सहनन (शक्ति) से, दिव्य आकृति से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (शोभा) से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से एव दिव्य लेश्या से दसो दिशाओ को प्रकाशित करते हुए, सुशोभित करते हुए वे अपने वहां अपने-अपने भवनावासो का, अपने-अपने हजारो सामानिक देवो का, अपने-अपने त्रायस्त्रिश देवो का, अपने-अपने लोकपालो का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियो का, अपनी-अपनी परिषदाओ का, अपने-अपने सैन्यो (अनीको) का, अपने-अपने सेनाधिपतियो का, अपने-अपने आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य वहुत से भवनवासी देवो और देवियो का आधिपत्य, पौरोहित्य (महानता), आज्ञेश्वरत्व (आज्ञा पालन कराने का प्रभुत्व) एव सेनापतित्व आदि करते-कराते हुए तथा पालन करते-कराते हुए अहत (अव्याहत-व्याघात रहित) नृत्य, गीत, वादित्र, तत्री, तल, ताल, त्रुटित (वाद्य) और घनमृदग वजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य एव उपभोग्य भोगो को भोगते हुए विचरते हैं।

सामान्यतया भवनवासी देवो के आवास-निवास सम्वन्धी प्रश्नोत्तर के बाद विशेष विवक्षा मे असुरकुमारो के आवास-निवास सम्वन्धी प्रश्न किया गया है। इसके उत्तर मे कहा गया है कि रत्नप्रभा-पृथ्वी के ऊपर व नीचे के एक-एक हजार योजन छोडकर शेष एक लाख अठहत्तर हजार योजन के देशभाग मे असुरकुमार देवो के चौसठ लाख भवनावास हैं। वे भवन वाहर से गोल, अन्दर से चौरस, नीचे से कमल की कर्णिका के आकार के हैं—आदि भवनावासो का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

उन भवनावासो मे वहुत से असुरकुमार देव रहते हैं जो काले, लोहिताक्ष रत्न तथा बिम्बफल के समान ओठो वाले, श्वेत पुष्पो के समान दात वाले, काले केशो वाले, वाएँ एक कुण्डल के धारक, गीले चन्दन से लिप्त शरीरवाले, शिलिन्ध्र-पुष्प के समान किंचित् रक्त तथा सक्लेश उत्पन्न न करने वाले सूक्ष्म अतीव उत्तम वस्त्र पहने हुए, प्रथम (कुमार) वय को पार किये हुए और द्वितीय वय को अप्राप्त—भद्रयौवन मे वर्तमान होते है। वे तलभगक (भुजा का भूषण) त्रुटित (वाहुरक्षक) एव अन्यान्य श्रेष्ठ आभूपणो से जटित निर्मल मणियो तथा रत्नो से मण्डित भुजाओ वाले, दस मुद्रिकाओ से सुशोभित अगुलियो वाले, चूडामणि चिह्न वाले, सुरूप, महर्द्धिक महाद्युतिमान, महायशस्वी, महा-प्रभावयुक्त, महासुखी, हार मे सुशोभित वक्ष स्थल वाले आदि पूर्ववत् वर्णन यावत् दिव्य एव उपभोग्य भोगो का उपभोग करते हुए विचरते है।

इन्ही स्थानो मे दो असुरकुमारो के राजा चमरेन्द्र और वलीन्द्र निवास करते हैं। वे काले, महानील के समान, नील की गोली, गवल (भैसे का सीग), अलसी के फूल के समान रगवाले, विकसित कमल के समान निर्मल, कही श्वेत-रक्त एव ताम्र वर्ण के नेत्रो वाले, गरुड के समान ऊँची नाक वाले, पुष्ट या तेजस्वी मूगा तथा विम्वफल के समान अधरोष्ठ वाले, श्वेत विमल चन्द्रखण्ड, जमे हुए दही, शख, गाय के दूध, कुन्द, जलकण और मृणालिका के समान धवल दतपक्ति वाले, अग्नि मे तपाये और धोये हुए सोने के समान लाल तलवो, तालु तथा जिह्वा वाले, अन्जन तथा मेघ के समान काले रुचक रत्न के समान रमणीय एव स्निग्ध वाल वाले, वाए एक कान मे कुण्डल के धारक आदि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् वे दिव्य उपभोग्य भोगो को भोगते हुए विचरते हैं।

दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवो के चौंतीस लाख भवनावास हैं। असुरकुमारेन्द्र असुरकुमार राजा चमर वहाँ निवास करता है। वह ६४ हजार सामानिक देवो, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देव, चार लोकपाल, सपरिवार, पाच अग्रमहिषियो तीन पर्षदा, सात अनीक, सात अनिकाधिपति, चार ६४ हजार (अर्थात् दो लाख छप्पन हजार) आत्मरक्षक देव और अन्य वहुत से दक्षिण दिशा के देव-देवियो का आधिपत्य करता हुआ विचरता है।

उत्तर दिशा के असुरकुमारो के तीस लाख भवनावास हैं। उन तीस लाख भवनावासो का, साठ हजार सामानिक देवो का, चार लोकपालो का, सपरिवार पाच अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपतियो का, चार साठ हजार (दो लाख चालीस हजार) आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य वहुत से उत्तर दिशा के असुरकुमार देव-देवियो का आधिपत्य करता हुआ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलीन्द्र वहाँ निवास करता है।

चमरेन्द्र की परिषद् का वर्णन

[११८.] चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—समिया, चडा, जाया। अब्भितरिया समिया, मज्झिमिया चंडा वाहिरिया जाया।

चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भितरपरिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ? मज्झिमपरिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ? वाहिरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भितरपरिसाए चउवीसं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमाए परिसाए अट्ठावीसं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, वाहिरियाए परिसाए वत्तीसं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

चमरस्स ण भते ! असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भितरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता ? मज्झिमियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता ? वाहिरियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भितरियाए परिसाए अद्धुट्ठा देविसया पण्णत्ता मज्झिमियाए परिसाए तिन्नि देविसया पण्णत्ता वाहिरियाए अड्डाइज्जा देविसया पण्णत्ता।

चमरस्स णं भंते ! असुरिंदस्स असुररण्णो अब्भितरियाए परिसाए देवाणं केवइयं ठिई पण्णत्ता ? मज्झिमियाए परिसाए० बाहिरियाए परिसाए देवाण केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? अब्भितरियाए परिसाए देवीणं केवइयं काल ठिती पण्णत्ता ? मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ? बाहिरियाए परिसाए देवीणं केवइय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भितरियाए परिसाए देवाणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । बाहिरियाए परिसाए देवाण दिवड्ढ पलिओवम ठिई पण्णत्ता । अब्भितरियाए परिसाए देवीणं दिवड्ढं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता । बाहिरियाए परिसाए देवीणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चइ, चमरस्स असुरिंदस्स असुररन्नो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—समिया चंडा जाया ? अब्भितरिया समिया, मज्झिमिया चडा, बाहिरिया जाया ?

गोयमा ! चमरस्स ण असुरिंदस्स असुररन्नो अब्भितरपरिसादेवा वाहिया हव्वमागच्छंति णो अव्वाहिया, मज्झिमपरिसाए देवा वाहिया हव्वमागच्छति अव्वाहिया वि, बाहिरपरिसा देवा अव्वाहिया हव्वमागच्छति ।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! चमरे असुरिंदे असुरराया अन्नयरेसु उच्चावएसु कज्जकोडुंबेसु समुप्पन्नेसु अब्भितरियाए परिसाए सद्धि समइसपुच्छणाबहुले विहरइ, मज्झिमपरिसाए सद्धि पयं एवं पवंचेमाण पवचेमाणे विहरइ, वाहिरियाए परिसाए सद्धि पयंडेमाणे पयंडेमाणे विहरइ । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—चमरस्स ण असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो तओ परिसाओ पण्णत्ताओ-समिया चंडा जाया; अब्भितरिया समिया, मज्झिमिया चंडा, बाहिरिया जाया ।

[११८] हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की कितनी परिषदाएँ कही गई हैं ?

गौतम ! तीन पर्षदाएँ कही गई है, यथा—समिता, चडा और जाता । आभ्यन्तर पर्षदा समिता कहलाती है । मध्यम परिषदा चडा और बाह्य परिषदा जाया कहलाती है ।

हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यन्तर पर्षदा मे कितने हजार देव हैं ? मध्यम परिपदा मे कितने हजार देव है और बाह्य परिषदा मे कितने हजार देव है ?

गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यन्तर परिषदा मे चौवीस हजार देव हैं, मध्यम परिपदा मे अट्ठावीस हजार देव हैं और बाह्य परिषदा मे बत्तीस हजार देव हैं ।

हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यन्तर परिषदा मे कितनी देवियाँ हैं ? मध्यम परिषदा मे कितनी देवियाँ हैं और बाह्य परिषदा मे कितनी देवियाँ हैं ?

हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यन्तर परिषद् मे साढे तीन सौ देवियाँ हैं, मध्यम परिषद् मे तीन सौ और बाह्य परिषद् मे ढाई सौ देवियाँ हैं ।

हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति कितनी कही गई है ? मध्यम परिषद् के देवो की स्थिति कितनी है और वाह्य परिषद् के देवो की स्थिति कितनी है ? आभ्यन्तर परिषद् की देवियो की, मध्यम परिषद् की देवियो की और वाह्य परिपद् की देवियो की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यन्तर परिपदा के देवो की स्थिति ढाई पल्योपम, मध्यम पर्षदा के देवो की दो पल्योपम और वाह्य परिपदा के देवो की डेढ पल्योपम की स्थिति है। आभ्यन्तर पर्षदा की देवियो की डेढ पल्योपम, मध्यम परिपदा की देवियो की एक पल्योपम की और वाह्य परिषद् की देवियो की स्थिति आधे पल्योपम की है।

हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि असुरेन्द्र असुरराज चमर की तीन पर्षदा हैं—समिता, चडा और जाता। आभ्यन्तर पर्षदा समिता कहलाती है, मध्यम पर्षदा चडा कहलाती है और वाह्य परिषद् जाता कहलाती है ?

गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की आभ्यन्तर परिपदा के देव वुलाये जाने पर आते हैं, विना वुलाये नही आते। मध्यम परिषद् के देव वुलाने पर भी आते हैं और विना वुलाये भी आते हैं। वाह्य परिषदा के देव विना वुलाये आते हैं। गौतम ! दूसरा कारण यह है कि असुरेन्द्र असुरराज चमर किसी प्रकार के ऊँचे-नीचे, शोभन-अशोभन कौटुम्बिक कार्य आ पडने पर आभ्यन्तर परिपद् के साथ विचारणा करता है, उनकी सम्मति लेता है। मध्यम परिपदा को अपने निश्चित किये कार्य की सूचना देकर उन्हे स्पष्टता के साथ कारणादि समझाता है और वाह्य परिपदा को आज्ञा देता हुआ विचरता है। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि असुरेन्द्र असुरराज चमर की तीन परिपदाएँ हैं—समिता, चडा और जाता। आभ्यन्तर पर्षद् समिता कहलाती है, मध्यम परिपद् चडा कही जाती है और वाह्य परिषद् को जाता कहते है।[1]

[११९] कहि ण भंते ! उत्तरिल्लाणं असुरकुमाराणं भवणा पण्णत्ता ? जहा ठाणपदे जाव वली एत्थ वइरोयणिंदे वइरोयणराया परिवसइ जाव विहरइ।

वलिस्स णं भंते ! वयरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो कइ परिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तिण्णि परिसाओ, तं जहा—समिया चडा जाया। अब्भितरिया समिया, मज्झमिया चंडा वाहिरिया जाया। वलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो अब्भितरपारिसाए कति देवसहस्सा ? मज्झिमियाए परिसाए कति देवसहस्सा जाव वाहिरियाए परिसाए कति देविसया पण्णत्ता ?

गोयमा ! वलिस्स णं वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो अब्भितरियाए परिसाए वीसं देवसहस्सा

---

१ परिषद् की सख्या और स्थिति वताने वाली दो सग्रहणी गाथाएँ—

चउवीस अट्ठवीसा वत्तीस सहस्स देव चमरस्स,
अद्धुट्ठा तिन्नि तहा अड्ढाइज्जा य देविसया।
अड्ढाइज्जा य दोन्नि य दिवड्ढपलिय कमेण देवठिई,
पलियं दिवड्ढमेग अद्धो देवीण परिसासु॥

पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए चउवीसं देवसहस्सा पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए अट्ठावीसं देव-सहस्सा पण्णत्ता। अब्भितरियाए परिसाए अद्धपंचमा देविसया मज्झिमियाए परिसाए चत्तारि देविसया पण्णत्ता, वाहिरियाए परिसाए अद्धुट्ठा देविसया पण्णत्ता।

बलिस्स ठितीए पुच्छा जाव वाहिरियाए परिसाए देवीण केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! बलिस्स ण वइरोयणिंदस्स वइरोयणरन्नो अब्भितरियाए परिसाए देवाणं अद्धुट्ठ-पलिओवमा ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए तिन्नि पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता, वाहि-रियाए परिसाए देवाण अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता, अब्भितरियाए परिसाए देवीणं अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीण दो पलिओवमाइ ठिई पण्णत्ता, वाहिरियाए परिसाए देवीण दिवड्ढ पलिग्रोवम ठिई पण्णत्ता, सेस जहा चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो।

[११९] हे भगवन् ! उत्तर दिशा के असुरकुमारो के भवन कहाँ कहे गये है ?

गौतम ! जैसा स्थान पद मे कहा गया है, वह कथन कहना चाहिए यावत् वहाँ वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि निवास करता है यावत् दिव्य भोगो का उपभोग करता हुआ विचरता है।

हे भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि की कितनी पर्षदा कही गई हैं ?

गौतम ! तीन परिषदाएँ कही गई हैं, यथा—समिता, चण्डा और जाता। आभ्यन्तर परिषदा समिता कहलाती है, मध्यम परिषदा चण्डा है और बाह्य पर्षद् जाता है।

हे भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि की आभ्यन्तर परिषदा मे कितने हजार देव हैं ? मध्यम पर्षद् मे कितने हजार देव हैं यावत् वाह्य परिषदा मे कितनी सौ देवियाँ हैं ?

गौतम ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि की आभ्यन्तर परिषद् मे बीस हजार देव हैं, मध्यम परिषदा मे चौवीस हजार देव है और वाह्य परिषदा मे अट्ठावीस हजार देव हैं। आभ्यन्तर परिषद् मे साढे चार सौ देवियाँ हैं, मध्यम परिषदा मे चार सौ देवियाँ है। बाह्य परिषदा मे साढे तीन सौ देवियाँ है।

हे भगवन् ! वलि की परिषदा की स्थिति के विषय मे प्रश्न है यावत् बाह्य परिषदा की देवियो की स्थिति कितनी है ?

गौतम ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि की आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति साढे तीन पल्योपम की है, मध्यम परिषद् के देवो की स्थिति तीन पल्योपम की है और बाह्य परिषद् के देवो की स्थिति ढाई पल्योपम की है। आभ्यन्तर परिषद् की देवियो की स्थिति ढाई पल्योपम की है। मध्यम परिषद् की देवियो की स्थिति दो पल्योपम की और बाह्य परिषद् की देवियो की स्थिति डेढ पल्योपम की है। शेष वक्तव्यता असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर की तरह कहनी चाहिए।[1]

---

१. देवदेविसंख्यास्थिति विषयक सग्रहणिगाथा—
वीसउ चउवीस अट्ठावीस सहस्साण होन्ति देवाण।
अद्धपण चउद्धुठा देविसय वलिस्स परिसासु॥१॥
अद्धुट्ठ तिन्नि अड्ढाइज्जाइ होंति पलिय देव ठिई।
अड्ढाइज्जा दोण्णि य दिवड्ढ देवीण ठिई कमसो॥२॥

नागकुमारों की वक्तव्यता

[१२०.] कहि णं भंते ! नागकुमाराणं देवाणं भवणा पण्णत्ता ? जहा ठाणपदे जाव दाहिणिल्लावि पुच्छियव्वा जाव धरणे इत्थ नागकुमारिंदे नागकुमारराया परिवसइ जाव विहरइ।

धरणस्स णं भंते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमाररण्णो कति परिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा तिण्णि परिसाओ ताओ चेव जहा चमरस्स।

धरणस्स णं भंते ! णागकुमारिंदस्स णागकुमारन्नो अब्भितरियाए परिसाए कइ देवसहस्सा पण्णत्ता ? जाव बाहिरियाए परिसाए कइ देवीसया पण्णत्ता ?

गोयमा ! धरणस्स ण णागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो अब्भितरियाए परिसाए सट्ठि देवसहस्साइं, मज्झिमियाए परिसाए सत्तरिं देवसहस्साइ बाहिरियाए असीति देवसहस्साइं अब्भितरपरिसाए पण्णसतर देविसय पण्णत्त, मज्झिमियाए परिसाए पण्णास देविसय पण्णत्तं, बाहिरियाए परिसाए पणवीसं देविसयं पण्णत्तं।

धरणस्स ण रन्नो अब्भितरियाए परिसाए देवाणं केवइय काल ठिती पण्णत्ता ? मज्झिमियाए परिसाए देवाण केवइयं काल ठिती पण्णत्ता ? बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ? अब्भितरियाए परिसाए देवीणं केवइय काल ठिती पण्णत्ता ? मज्झिमियाए परिसाए देवीणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ? बाहिरियाए परिसाए देवीण केवइय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! धरणस्सण रण्णो अब्भितरियाए परिसाए देवाण सातिरेगं अद्धपलिओवमं ठितीपण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवम ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं देसूणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अब्भितरियाए परिसाए देवीण देसूणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं सातिरेग चउब्भागपलिओवम ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवीणं चउब्भागपलिओवम ठिती पण्णत्ता, अट्ठो जहा चमरस्स।

कहि ण भंते ! उत्तरिल्लाण णागकुमाराण ? जहा ठाणपदे जाव विहरति। भूयाणंदस्स णं भंते ! णागकुमारिंदस्स णागकुमारण्णो अब्भितरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ? मज्झिमियाए परिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ? बाहिरियाए परिसाए कइ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ अब्भितरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता ? मज्झिमियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता ? बहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता ?

गोयमा ! भूयानंदस्स ण नागकुमारिंदस्स नागकुमाररन्नो अब्भितरियाए परिसाए पन्नासं देवसहस्सा पण्णत्ता। मज्झिमियाए परिसाए सट्ठि देवसहस्सा पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए सत्तरिं देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ। अब्भितरियाए परिसाए दो पणवीसं देविसया णं पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए दो देविसया पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए पण्णत्तरं देविसयं पण्णत्तं।

भूयानंदस्स णं भंते ! नागकुमारिंदस्स नागकुमारण्णो अब्भितरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ? जाव बाहिरियाए परिसाए देवीण केवइय कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! भूयानंदस्स णं अब्भितरियाए परिसाए देवाण देसूणं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाणं साइरेगं अद्धपलिओवम ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, अब्भितरियाए परिसाए देवीण अद्धपलिओवम ठिती पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवीणं देसूण अद्धपलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवीण साइरेगं चउब्भाग-पलिओवमं ठिती पण्णत्ता। अत्थो जहा चमरस्स। अवसेसाणं वेणुदेवादीण महाघोसपज्जवसाणाणं ठाणपदवत्तव्वया णिरवयवा भाणियव्वा, परिसाओ जहा धरण-भूयानदाणं। (सेसाणं भवणवईणं) दाहिणिल्लाणं जहा धरणस्स उत्तरिल्लाणं जहा भूयाणदस्स, परिमाण पि ठिती वि ॥

[१२०] हे भगवन् ! नागकुमार देवो के भवन कहाँ कहे गये हैं ?

गौतम ! जैसे स्थानपद मे कहा है वैसी वक्तव्यता जानना चाहिए यावत् दक्षिणदिशावर्ती नागकुमारो के आवास का प्रश्न भी पूछना चाहिए यावत् वहाँ नागकुमारेन्द्र और नागकुमारराज धरण रहता है यावत् दिव्यभोगो को भोगता हुआ विचरता है।

हे भगवन् ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की कितनी परिषदाएँ हैं ?

गौतम तीन परिषदाएँ कही गई हैं। उनके नाम वे ही है जो चमरेन्द्र की परिषदा के कहे है।

हे भगवन् ! नागकुमारेन्द्र नागराज धरण की आभ्यन्तर परिषद् मे कितने हजार देव हैं ? यावत् बाह्य परिषद् मे कितनी सौ देवियाँ है ?

गौतम ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण की आभ्यन्तर परिषदा मे साठ हजार देव हैं, मध्यम परिषदा मे सत्तर हजार देव हैं और बाह्य परिषद् मे अस्सी हजार देव है। आभ्यन्तर परिषद् मे १७५ देवियाँ है, मध्यपर्षद् मे १५० और बाह्य परिषद् मे १२५ देवियाँ हैं।

धरणेन्द्र नागराज की आभ्यन्तर परिषदा के देवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ? मध्यम परिषदा के देवो की स्थिति और बाह्य परिषद् के देवो की स्थिति कितनी कही गई है ? आभ्यन्तर परिषद् की देवियो की स्थिति मध्यम परिषद्, की देवियो की स्थिति और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति कितनी कही गई है ?

गौतम ! नागराज धरणेन्द्र की आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति कुछ अधिक आधे पल्योपम की है, मध्यम परिषद् के देवो की स्थिति आधे पल्योपम की है, बाह्य परिषद् के देवो की स्थिति कुछ कम आधे पल्योपम की है। आभ्यन्तर परिषद् की देवियो की स्थिति देशोन आधे पल्योपम की है, मध्यम परिषद् की देवियो की स्थिति कुछ अधिक पाव पल्योपम की है और बाह्य परिषद् की देवियो की स्थिति पाव पल्योपम की है। तीन प्रकार की पर्षदाओं का अर्थ आदि कथन चमरेन्द्र की तरह जानना।

हे भगवन् ! उत्तर दिशा के नागकुमार देवो के भवन कहाँ कहे गये हैं आदि वर्णन स्थानपद के अनुसार जानना चाहिए यावत् वहाँ भूतानन्द नामक नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज रहता है यावत् भोगो का उपभोग करता हुआ विचरता है ।

हे भगवन् ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की आभ्यन्तर परिषद् मे कितने हजार देव हैं, मध्यम परिषद् मे कितने हजार देव हैं और बाह्य परिषद् मे कितने हजार देव हैं ? आभ्यन्तर परिषद् मे कितनी सौ देवियाँ हैं, मध्यम परिषद् मे कितनी सौ देवियाँ है ? और बाह्य परिषद् मे कितनी सौ देवियाँ हैं ?

गौतम ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की आभ्यन्तर परिषद् मे पचास हजार देव है, मध्यम परिषद् मे साठ हजार देव हैं और बाह्य परिषद् मे सत्तर हजार देव है । आभ्यन्तर परिषद् की देवियाँ २२५ हैं, मध्यम परिषद् की देवियाँ २०० हैं तथा बाह्य परिषद् की देवियाँ १७५ हैं ।

हे भगवन् ! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द की आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति कितनी कही है ? यावत् बाह्य परिषद् की देवियो की स्थिति कितनी कही है ?

गौतम ! भूतानन्द के आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति देशोन पल्योपम है, मध्यम परिषद् के देवो की स्थिति कुछ अधिक आधे पल्योपम की है और बाह्य परिषद् के देवों की स्थिति आधे पल्योपम की है । अभ्यन्तर परिषद् की देवियो की स्थिति आधे पल्योपम की है, मध्यम परिषद् की देवियो की स्थिति देशोन आधे पल्योपम की है और बाह्य परिषद् की देवियों की स्थिति कुछ अधिक पाव पल्योपम है । परिषदो का अर्थ आदि कथन चमरेन्द्र की तरह जानना ।

शेष वेणुदेव से लगाकर महाघोष पर्यन्त की वक्तव्यता स्थानपद के अनुसार पूरी-पूरी कहना चाहिए । परिषद् के विषय में भिन्नता है वह इस प्रकार है—दक्षिण दिशा के भवनपति इन्द्रो की परिषद् धरणेन्द्र की तरह और उत्तर दिशा के भवनपति इन्द्रों की परिषदा भूतानन्द की तरह कहनी चाहिए । परिषदो, देव-देवियो की सख्या तथा स्थिति भी उसी तरह जान लेनी चाहिए ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रो मे असुरकुमार और नागकुमार भवनपतिदेवो के भवन, परिषदा, परिषदा का प्रमाण और स्थिति का वर्णन किया गया है जो मूलपाठ से ही स्पष्ट है । आगे के सुपर्णकुमार आदि भवनवासियो के लिए धरणेन्द्र और भूतानन्द की तरह जानने, की सूचना है । दक्षिण दिशा के भवनपतियो का वर्णन धरणेन्द्र की तरह और उत्तर दिशा के भवनपतियो का वर्णन भूतानन्द की तरह जानना चाहिए ।

इन भवनपतियो मे भवनो की सख्या, इन्द्रो के नाम और परिमाण आदि में भिन्नता है वह पूर्वाचार्यों ने सात गाथाओ मे बताई हैं जिनका भावार्थ इस प्रकार है[1]—

---

१. चउसट्ठी असुराण चुलसीइ चेव होइ नागाण ।
बावर्त्तारं सुवन्ने वायुकुमाराण छन्नउइ ॥१॥

(शेष अगले पृष्ठ पर)

असुरकुमारो के ६४ लाख भवन है, नागकुमारो के ८४ लाख, सुपर्णकुमारो के ७२ लाख, वायुकुमारो के ९६ लाख द्वीपकुमार, दिक्कुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार इन छह भवनपतियो के प्रत्येक के ७६-७६ लाख भवन है। (१-२)

दक्षिण और उत्तर दिशाओ के भवनवासियो के भवनो की अलग-अलग सख्या इस प्रकार है—

दक्षिण दिशा के असुरकुमारो के ३४ लाख भवन, नागकुमारो के ४४ लाख, सुपर्णकुमारो के ३८ लाख, वायुकुमारो के ५० लाख शेष ६ द्वीप-दिशा-उदधि, विद्युत्, स्तनित, अग्निकुमारो के प्रत्येक के ४०-४० लाख भवन हैं। (३)

उत्तरदिशा के असुरकुमारो के भवन ३० लाख, नागकुमारो के ४० लाख, सुपर्णकुमारो के ३४ लाख, वायुकुमारो के ४६ लाख शेष छहो के प्रत्येक के ३६-३६ लाख भवन हैं। इस प्रकार दक्षिण और उत्तर दोनो दिशाओ के भवनपतियो के भवनो की सख्या मिलाकर कुल भवनसख्या प्रथम और दूसरी गाथा मे कही गई है।

भवनपति इन्द्रो के नामो को बताने वाली गाथाओ मे पहले दक्षिण दिशा के इन्द्रो के नाम बताये हैं—

दक्षिण दिशा के असुरकुमारो का इन्द्र चमर है। नागकुमारो का धरण, सुपर्णकुमारो का वेणुदेव, विद्युत्कुमारो का हरिकान्त, अग्निकुमारो का अग्निशिख, द्वीपकुमारो का पूर्ण, उदधिकुमारो का जलकान्त, दिक्कुमारो का अमितगति, वायुकुमारो का वेलम्ब और स्तनितकुमारो का घोष इन्द्र है।

उत्तरदिशा के असुरकुमारो का इन्द्र बलि है। नागकुमारो का भूतानन्द, सुपर्णकुमारो का वेणुदाली, विद्युत्कुमारो का हरिस्सह, अग्निकुमारो का अग्निमाणव, द्वीपकुमारो का विशिष्ट, उदधिकुमारो का जलप्रभ, दिक्कुमारो का अमितवाहन, वायुकुमारो का प्रभजन, और स्तनितकुमारो का महाघोष है।

दीव दिसा उदहीण विज्जुकुमारिंद थणियमग्गीण।
छण्ह पि जुयलयाण छावत्तरिओ सयसहस्सा ॥२॥
चोत्तीसा चोयाला अट्ठतीस च सयसहस्साइ।
पण्णा चत्तालीसा दाहिणओ होंति भवणाइ ॥३॥
तीसा चत्तालीसा चोत्तीस चेव सयसहस्साइ।
छायाला छत्तीसा उत्तरओ होंति भवणाइ ॥४॥
चमरे धरणे तह वेणुदेव हरिकत अग्गिसिहे य।
पुण्णे जलकते अमिए लवे य घोसे य ॥५॥
बलि भूयाणदे वेणुदालि हरिस्सह अग्गिमाणव विसिट्ठे।
जलप्पभ अमियवाहण पभजणे चेव महघोसे ॥६॥
चउसट्ठी सट्ठी खलु छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाण।
सामाणिया उ एए चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥७॥ —सगहणी गाथाएँ

भवनादि-दर्शक यंत्र

भवनपति नाम	दक्षिण के भवन	उत्तर के भवन	कुल भवन	इन्द्र दक्षिण	इन्द्र उत्तर	सामानिक देव	आत्मरक्षक देव
असुरकुमार	३४ लाख	३० लाख	६४ लाख	चमर	बलि	चमर के ६४ हजार	चमर के २ लाख
नागकुमार	४४ लाख	४० लाख	८४ लाख	धरण	भूतानद	बलि के ६० हजार	छप्पन हजार
सुपर्णकुमार	३८ ,,	३४ ,,	७२ ,,	वेणुदेव	वेणुदालि	शेष सब के	बलि के २ लाख
विद्युत्कुमार	४० ,,	३६ ,,	७६ ,,	हरिकात	हरिस्सह	६०००	चालीस हजार
अग्निकुमार	४० ,,	३६ ,,	७६ ,,	अग्निशिख	अग्निमाणव	,,	२४ हजार
द्वीपकुमार	४० ,,	३६ ,,	७६ ,,	पूर्ण	विशिष्ट	,,	,,
उदधिकुमार	४० ,,	३६ ,,	७६ ,,	जलकात	जलप्रभ	,,	,,
दिक्कुमार	४० ,,	३६ ,,	७६ ,,	अमितगति	अमितवाहन	,,	,,
वायुकुमार	५० ,,	४६ ,,	७६ ,,	वेलव	प्रभजन	,	,,
स्तनितकुमार	४० ,,	३६ ,,	७६ ,,	घोप	महाघोप	,	.

□

तृतीय प्रतिपत्ति

वानव्यन्तरों का अधिकार

१२१ कहि् ण भंते ! वाणमंतराणं देवाणं भवणा (भोमेज्जणगरा) पण्णत्ता ? जहा ठाणपदे जाव विहरति ।

कहि् णं भंते ! पिसायाणं देवाणं भवणा पण्णत्ता ? जहा ठाणपदे जाव विहरंति । कालमहा-काला य तत्थ दुवे पिसायकुमाररायाणो परिवसति जाव विहरति ।

कहि् ण भंते ! दाहिणिल्लाणं पिसायकुमाराणं जाव विहरंति काले य एत्थ पिसायकुमारिंदे पिसायकुमारराया परिवसइ महड्ढिए जाव विहरति ।

कालस्स णं भंते ! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो कति परिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ तं जहा—ईसा तुडिया दढरहा । अब्भितरिया ईसा, मज्झिमिया तुडिया, बाहिरिया दढरहा ।

कालस्स णं भंते ! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो अब्भितरपरिसाए कति देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ? जाव बाहिरियाए परिसाए कइ देविसया पण्णत्ता ? गोयमा ! कालस्स णं पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररायस्स अब्भितरपरिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । मज्झिम-परिसाए दस देवसाहस्सीओ पण्णत्ताओ बाहिरियपरिसाए बारस देव साहस्सीओ पण्णत्ताओ । अब्भितरपरिसाए एगं देविसयं पण्णत्तं । मज्झिमियाए परिसाए एगं देविसयं पण्णत्तं । बाहिरियाए-परिसाए एगं देविसयं पण्णत्तं ।

कालस्स णं भंते ! पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो अब्भितरपरिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता ? मज्झिमियाए परिसाए देवाण केवइय काल ठिती पण्णत्ता ? बाहिरियाए परिसाए देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? जाव बाहिरियाए परिसाए देवीण केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! कालस्स णं पिसायकुमारिंदस्स पिसायकुमाररण्णो अब्भिभतरपरिसाए देवाणं अद्धपलिओवमं ठिई पण्णत्ता, मज्झिमियाए परिसाए देवाण देसूणं अद्धपलिओवम ठिई पण्णत्ता, बाहिरियाए परिसाए देवाण सातिरेग चउब्भाग पलिओवम ठिई पण्णत्ता । अब्भितरपरिसाए देवीणं सातिरेगं चउब्भागपलिओवम ठिती पण्णत्ता, मज्झिमपरिसाए देवीण चउब्भाग पलिओवमं ठिती पण्णत्ता, बाहिरपरिसाए देवीणं देसूणं चउब्भाग पलिओवमं ठिती पण्णत्ता । अट्ठो जो चेव चमरस्स । एवं उत्तरस्स वि एवं णिरंतरं जाव गीयजसस्स ।

[१२१] हे भगवन् ! वानव्यन्तर देवो के भवन (भौमेय नगर) कहाँ कहे गये हैं ?

जैसा स्थानपद मे कहा वैसा कथन कर लेना चाहिए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विचरते हैं।

हे भगवन् ! पिशाचदेवो के भवन कहाँ कहे गये हैं ?

जैसा स्थानपद मे कहा वैसा कथन कर लेना चाहिए यावत् दिव्य भोगो का उपभोग करते हुए विचरते है। वहाँ काल और महाकाल नाम के दो पिचाशकुमारराज रहते हैं यावत् विचरते है।

हे भगवन् दक्षिण दिशा के पिशाचकुमारो के भवन कहाँ कहे गये हैं ? इत्यादि कथन कर लेना चाहिए यावत् भोग भोगते हुए विचरते हैं। वहाँ महर्द्धिक पिशाचकुमार इन्द्र पिशाचकुमार-राज रहते है यावत् भोगो का उपभोग करते हुए विचरते है।

हे भगवन् ! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचकुमारराज काल की कितनी परिषदाएँ है ?

गौतम ! तीन परिषदाएँ है। वे इस प्रकार हैं—ईशा, त्रुटिता और दृढरथा। आभ्यन्तर परिषद् ईशा कहलाती है। मध्यम परिषद् त्रुटिता है और बाह्य परिषद् दृढरथा कहलाती है।

हे भगवन् ! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचराज काल की आभ्यन्तर परिषद् मे कितने हजार देव हैं ? यावत् बाह्य परिषद् मे कितनी सौ देवियाँ हैं ?

गौतम ! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचराज काल की आभ्यन्तर परिषद् मे आठ हजार देव हैं, मध्यम परिषद् मे दस हजार देव हैं और बाह्य परिषद् मे बारह हजार देव हैं। आभ्यन्तर परिषदा मे एक सौ देवियाँ हैं, मध्यम परिषदा मे एक सौ और बाह्य परिषदा मे भी एक सौ देवियाँ है।

हे भगवन् ! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचराज की आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति कितनी है ? मध्यम परिषद् के और बाह्य परिषद् के देवो की स्थिति कितनी है ? यावत् बाह्य परिषदा की देवियो की स्थिति कितनी है ?

गौतम ! पिशाचकुमारेन्द्र पिशाचराज काल की आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति आधे पल्योपम की है, मध्यमपरिषद् के देवो की देशोन आधा पल्योपम और बाह्यपरिषद् के देवो की स्थिति कुछ अधिक पाव पल्योपम की है। आभ्यन्तरपरिषद् की देवियो की स्थिति कुछ अधिक पाव-पल्योपम, मध्यमपरिषद् की देवियो की स्थिति पाव पल्योपम और बाह्य परिषद् की देवियो की स्थिति देशोन पाव पल्योपम की है। परिषदो का अर्थ आदि कथन चमरेन्द्र की तरह कहना चाहिए। इसी प्रकार उत्तर दिशा के वानव्यन्तरो के विषय मे भी कहना चाहिए। उक्त सब कथन गीतयश नामक गन्धर्वइन्द्र पर्यन्त कहना चाहिए।

विवेचन:—प्रस्तुत सूत्र मे वानव्यन्तरो के भौमेय नगरो के विषय मे प्रश्नोत्तर है। प्रश्न किया गया है कि वानव्यन्तर देवो के भवन (भौमेय नगर) कहाँ हैं। उत्तर मे प्रज्ञापनासूत्र के द्वितीय स्थान पद के अनुसार वक्तव्यता कहने की सूचना की गई है। सक्षेप मे प्रज्ञापनासूत्र मे किया गया वर्णन इस प्रकार हैं—

इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर से एक सौ योजन अवगाहन करने के बाद तथा नीचे के भी एक सौ योजन छोडकर बीच मे आठ सौ योजन मे वान-व्यन्तर देवो के तिरछे असख्यात भौमेय (भूमिगृह समान) लाखो नगरावास है।

वे भौमेय नगर बाहर से गोल, अन्दर से चौरस तथा नीचे से कमल की कर्णिका के आकार से सस्थित हैं। उनके चारो ओर गहरी और विस्तीर्ण खाइयाँ और परिखाएँ खुदी हुई हैं। वे यथा-स्थान प्राकारो, अट्टालको, कपाटो, तोरणो और प्रतिद्वारो से युक्त हैं। इत्यादि वर्णन सूत्र ११७ के विवेचन के अनुसार समझ लेना चाहिए। यावत् वे भवन प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

उन नगरावासो मे बहुत से पिशाच आदि वानव्यन्तर देव रहते हैं। वे देव अनवस्थित चित्त के होने से अत्यन्त चपल, क्रीडातत्पर और परिहास-प्रिय होते हैं। गभीर हास्य, गीत और नृत्य मे इनकी अनुरक्ति रहती है। वनमाला, कलगी, मुकुट, कुण्डल तथा इच्छानुसार विकुर्वित आभूषणो से वे भली-भाँति मण्डित रहते है। सभी ऋतुओ मे होने वाले सुगन्धित पुष्पो से रचित, लम्बी, शोभनीय सुन्दर एव खिलती हुई विचित्र वनमाला से उनका वक्ष स्थल सुशोभित रहता है। अपनी कामना-नुसार काम-भोगो का सेवन करने वाले, इच्छानुसार रूप एव देह के धारक, नाना प्रकार के वर्णों वाले श्रेष्ठ विचित्र चमकीले वस्त्रो के धारक, विविध देशो की वेशभूषा धारण करने वाले होते हैं। इन्हे प्रमोद, कन्दर्प (कामक्रीडा) कलह, केलि और कोलाहल प्रिय है। इनमे हास्य और बोल-चाल बहुत होता है। इनके हाथो मे खड्ग, मुद्गर, शक्ति और भाले भी रहते हैं। ये अनेक मणियो और रत्नो के विविध चिह्न वाले होते हैं। वे महर्द्धिक, महाद्युतिमान्, महायशस्वी, महाबलवान्, महानु-भाव, महासामर्थ्यशाली, महासुखी और हार से सुशोभित वक्ष स्थल वाले होते हैं। कडे और बाजूबन्द से उनकी भुजाएँ स्तब्ध रहती हैं। अगद और कुण्डल इनके कपोलस्थल को स्पर्श किये रहते हैं। ये कानो मे कर्णपीठ धारण किये रहते हैं। इनके शरीर अत्यन्त देदीप्यमान होते हैं। वे लम्बी वनमालाएँ धारण करते हैं। दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य सहनन से, दिव्य सस्थान से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (काति) से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से एवं दिव्य लेश्या से, दसो दिशाओ को उद्योतित एव प्रभासित करते हुए विचरते है।

वे अपने लाखो भौमेय नगरावासो का, अपने-अपने हजारो सामानिक देवो का, अपनी-अपनी अग्र महिषियो का, अपनी अपनी परिषदो का, अपनी अपनी सेनाओ का, अपने अपने सेनाधिपति देवो का, अपने अपने आत्मरक्षको और अन्य बहुत से वानव्यन्तर देवो और देवियो का आधिपत्य, पौरपत्य स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञैश्वरत्व एव सेनापतित्व करते-कराते तथा उनका पालन करते-कराते हुए, महान् उत्सव के साथ नृत्य, गीत और वीणा, तल, ताल, त्रुटित घन मृदग आदि वाद्यो को बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य उपभोग्य भोगो को भोगते हुए रहते हैं।

उक्त वर्णन सामान्यरूप से वानव्यन्तरो के लिए है। विशेष विवक्षा मे पिशाच आदि वानव्यन्तरो का वर्णन भी इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् उन भौमेयनगरो मे पिशाचदेव अपने अपने भवन, सामानिक आदि देव-देवियो का आधिपत्य करते हुए विचरते हैं। इन नगरावासो मे दो पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल और महाकाल निवास करते हैं। वे महर्द्धिक महाद्युतिमान यावत् दिव्य भोगो को भोगते हुए विचरते है। दक्षिणवर्ती क्षेत्र का इन्द्र पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल है और उत्तरवर्ती क्षेत्र का इन्द्र पिशाचेन्द्र पिशाचराज महाकाल है।

वह पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल तिरछे असख्यात भूमिगृह जैसे लाखो नागरावासो का, चार हजार सामानिक देवो का, चार अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात

सेनाधिपतियो का सोलह हजार आत्मरक्षक देवो का और वहुत से दक्षिणदिशा के वाणव्यन्तर देवो और देवियो का आधिपत्य करता हुआ विचरता है ।

पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल की तीन परिषदाएँ है—ईशा, त्रुटिता और दृढरथा । आभ्यन्तर परिषद् को ईशा कहते हैं, मध्यम परिषद् को त्रुटिता और वाह्य परिषद् को दृढरथा कहा जाता है। आभ्यन्तर परिषद् मे देवो की सख्या आठ हजार है, मध्यम परिषद् मे दस हजार देव है और वाह्य परिषद् मे वारह हजार देव हैं । तीनो परिषदो मे देवियो की सख्या एक सौ-एक सौ है ।

उनकी स्थिति इस प्रकार है—

आभ्यन्तर परिषद् के देवो की स्थिति आधे पल्योपम की है ।
मध्यम परिषद् के देवो की स्थिति देशोन आधे पल्योपम की है ।
वाह्य परिषद् के देवो की स्थिति कुछ अधिक पाव पल्योपम की है ।
आभ्यन्तर परिषद् की देवी की स्थिति कुछ अधिक पाव पल्योपम की है ।
मध्यम परिषद् की देवी की स्थिति पाव पल्योपम की है ।
वाह्य परिषद् की देवी की स्थिति देशोन पाव पल्योपम की है ।

परिषदो का अर्थ आदि वक्तव्यता जैसे चमरेन्द्र के विषय मे कही गई है वही सव यहा समझना चाहिए ।

उत्तरवर्ती पिशाचकुमार देवो की वक्तव्यता भी दक्षिणात्य जैसी ही है । उनका इन्द्र महाकाल है । काल के समान ही महाकाल की वक्तव्यता भी है ।

इसी प्रकार की वक्तव्यता भूतो से लेकर गन्धर्वदेवो के इन्द्र गीतयश तक की है । इस वक्तव्यता मे अपने अपने इन्द्रों को लेकर भिन्नता है । इन्द्रो की भिन्नता दो गाथाओ मे इस प्रकार कही गई है[1]—

(१) पिशाचो के दो इन्द्र—काल और महाकाल
(२) भूतो के दो इन्द्र—सुरूप और प्रतिरूप
(३) यक्षो के दो इन्द्र—पूर्णभद्र और माणिभद्र
(४) राक्षसो के दो इन्द्र—भीम और महाभीम
(५) किन्नरो के दो इन्द्र—किन्नर और किंपुरुप
(६) किंपुरुषो के दो इन्द्र—सत्पुरुष और महापुरुष
(७) महोरगों के दो इन्द्र—अतिकाय और महाकाय
(८) गन्धर्वों के दो इन्द्र—गीतरति और गीतयश

---

१ काले य महाकाले सुरूव-पडिरूव पुण्णभद्दे य ।
अमरवड माणिभद्दे भीमे य तहा महाभीमे ॥१॥
किन्नर किंपुरिसे खलु सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे ।
अडकाय महाकाए गीयरई चेव गीतजसे ॥२॥

उक्त दो-दो इन्द्रो मे से प्रथम दक्षिणदिशावर्ती देवो का इन्द्र है और दूसरा उत्तरदिशावर्ती वानव्यन्तर देवो का इन्द्र है। यहाँ वानव्यन्तर देवो का अधिकार पूरा होता है। आगे ज्योतिष्क देवो की जानकारी दी गई है।

ज्योतिष्क देवों के विमानों का वर्णन

१२२. कहि ण भंते ! जोइसियाणं देवाणं विमाणा पण्णत्ता ? कहि णं भते जोइसिया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! उप्पि दीवसमुद्दाण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तणउए जोयणसए उड्ढं उप्पइत्ता दसुत्तरसया जोयणबाहल्लेणं, तत्थ णं जोइसियाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा जोतिसियविमाणावाससयसहस्सा भवतीतिमक्खाय।

ते णं विमाणा अद्धकविट्ठकसठाणसठिया एवं जहा ठाणपदे जाव चदिमसूरिया य तत्थ ण जोइसिंदा जोइसरायाणो परिवसति महिड्ढिया जाव विहरंति।

सूरस्स णं भंते ! जोतिसिंदस्स जोतिसरण्णो कति परिसाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! तिण्णि परिसाओ पण्णत्ताओ, त जहा—तुंबा, तुडिया, पेच्चा। अब्भितरिया तुंबा, मज्झिमिया, तुडिया, बाहिरिया पेच्चा। सेसं जहा कालस्स परिमाण ठिई वि। अट्ठो जहा चमरस्स। चंदस्स वि एवं चेव।

[१२२] हे भगवन् ! ज्योतिष्क देवो के विमान कहां रहे गये है। हे भगवन् ! ज्योतिष्क देव कहाँ रहते हैं ?

गौतम ! द्वीपसमुद्रो से ऊपर और इस रत्नप्रभापृथ्वी के बहुत समतल एव रमणीय भूमिभाग से सात सौ नब्वे भोजन ऊपर जाने पर एक सौ दस योजन प्रमाण ऊचाईरूप क्षेत्र मे तिरछे ज्योतिष्क देवो के असंख्यात लाख विमानावास कहे गये हैं। (ऐसा मैंने और अन्य पूर्ववर्ती तीर्थंकरो ने कहा है)।

वे विमान आधे कवीठ के आकार के हैं—इत्यादि जैसा वर्णन स्थानपद मे किया है वैसा यहाँ भी कहना यावत् वहा ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्र और सूर्य दो इन्द्र रहते हैं जो महर्द्धिक यावत् दिव्यभोगो का उपभोग करते हुए विचरते है।

हे भगवन् ! ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज सूर्य की कितनी परिषदाएँ है ?

गौतम ! तीन परिषदाएँ कही गई हैं, यथा—तुबा, त्रुटिता और प्रेत्या। आभ्यन्तर परिषदा का नाम तुवा है, मध्यम परिषदा का नाम त्रुटिता है और बाह्य परिषद् का नाम प्रेत्या है। शेष वर्णन काल इन्द्र की तरह जानना। उनका परिमाण (देव-देवी सख्या) और स्थिति भी वैसी ही जानना चाहिए। परिषद् का अर्थ चमरेन्द्र की तरह जानना चाहिए।

सूर्य की वक्तव्यता के अनुसार चन्द्र की भी वक्तव्यता जाननी चाहिए।

विवेचन—इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यन्त सम एव रमणीय भूभाग से सात सौ नब्वे (७९०)

योजन की ऊँचाई पर एक सौ दस योजन के बाहल्य मे एव तिरछे असख्यात योजन मे ज्योतिष्क क्षेत्र है, जहाँ ज्योतिष्क देवो के तिरछे, असख्यात लाख ज्योतिष्क विमानावास हैं।

वे विमान आधे कवीठ के आकार के हैं और पूर्णरूप से स्फटिकमय हैं। वे सामने से चारो ओर ऊपर उठे (निकले) हुए, सभी दिशाओ मे फैले हुए तथा प्रभा से श्वेत है। विविध मणियो, स्वर्ण और रत्नो की छटा से वे चित्र विचित्र हैं, हवा से उडती हुई विजय-वैजयन्ती, पताका, छत्र पर छत्र (अतिछत्र) से युक्त हैं। वे बहुत ऊचे गगनतलचुबी शिखरो वाले हैं। उनकी जालियो मे रत्न जडे हुए हैं तथा वे विमान पिंजरा (आच्छादन) हटाने पर प्रकट हुई वस्तु की तरह चमकदार हैं। वे मणियो और रत्नो की स्तूपिकाओ से युक्त हैं। उनमे शतपत्र और पुण्डरीक कमल खिले हुए हैं। तिलको और रत्नमय अर्धचन्द्रो से वे चित्र-विचित्र हैं तथा नानामणिमय मालाओ से सुशोभित हैं। वे अन्दर और बाहर से चिकने हैं। उनके प्रस्तट सोने की रुचिर बालूवाले हैं। वे सुखद स्पर्शवाले, श्री से सम्पन्न, सुरूप, प्रसन्नता पैदा करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) और अतिरूप (बहुत सुन्दर) हैं।

इन विमानो मे वहुत से ज्योतिष्क देव निवास करते हैं। वे इस प्रकार हैं—वृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनैश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध एव अगारक (मगल)। ये तपे हुए तपनीय स्वर्ण के समान वर्णवाले (किंचित् रक्त वर्ण) हैं। तथा ज्योतिष्क क्षेत्र मे विचरण करने वाले ग्रह, गति मे रत रहने वाला केतु, अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्रगण, नाना आकारो के पाच वर्णों के तारे तथा स्थितलेश्या वाले, सचार करने वाले, अविश्रान्त मण्डलाकार गति करने वाले—ये सव ज्जोतिष्कदेव इन विमानो मे रहते हैं। इन सबके मुकुट मे अपने अपने नाम का चिह्न होता है। ये महर्द्धिक होते हैं यावत् दसो दिशाओ को प्रभासित करते हुए विचरने हैं।

ये ज्योतिष्क देव वहाँ अपने अपने लाखो विमानावासो का, अपने हजारो सामानिक देवो का, अपनी अग्रमहिषियो, अपनी परिषदो का, अपनी सेना और सेनाधिपति देवो का, हजारों आत्मरक्षक देवो का और बहुत से ज्योतिष्क देवो और देवियो का आधिपत्य करते हुए रहते हैं। इन्ही मे ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज चन्द्रमा और सूर्य दो इन्द्र हैं, जो महर्द्धिक यावत् दसो दिशाओ को प्रकाशित करते है। वे अपने लाखो विमानावासो का, चार हजार सामानिक देवो का, चार अग्रमहिषियो का तीन परिषदो का, सात सेना और सेनाधिपतियो का सोलह हजार आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य बहुत से ज्योतिष्क देव-देवियो का आधिपत्य करते हुए विचरते हैं।

इन सूर्य और चन्द्र इन्द्रो की तीन तीन परिषदाएँ हैं। उनके नाम तुबा, त्रुटिता और प्रेत्या हैं। आभ्यन्तर परिषद् तुबा कहलाती है, मध्यम परिषद् त्रुटिता है और बाह्य परिषद् प्रेत्या है। इन परिषदो मे देवो और देवियो की सख्या तथा उनकी स्थिति पूर्ववर्णित काल इन्द्र की तरह जाननी चाहिए। परिषदो का अर्थ आदि अधिकार चमरेन्द्र के वर्णन के अनुसार जानना चाहिए। सूर्य की तरह ही चन्द्रमा का अधिकार भी समझ लेना चाहिए।

तिर्यक्लोक के प्रसग में द्वीपसमुद्र-वक्तव्यता—

१२३. कहि णं भंते ! दीवसमुद्दा पण्णत्ता ? केवइया णं भंते ! दीवसमुद्दा पण्णत्ता ? केमहालया णं भंते ! दीवसमुद्दा पण्णत्ता ? किंसंठिया ण भंते ! दीवसमुद्दा पण्णत्ता ? किमाकारभावपडोयरा णं भंते ! दीवसमुद्दा पण्णत्ता ? गोयमा ! जंबुद्दीवाइया दीवा लवणाइया समुद्दा संठाणओ एकविहविहाणा वित्थारओ अणेगविघविहाणा दुगुणा दुगुणे पडुप्पाएमाणा पडुप्पाएमाणा पवित्थरमाणा पवित्थरमाणा ओभासमाणा वीचिया वहुउप्पलपउमकुमुदणलिणसुभगसोगंधिय-पोंडरीयमहापोंडरीयसतपत्तसहस्सपत्त पप्फुल्लकेसरोवचिया पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेयं पत्तेयं वणखंडपरिक्खित्ता अस्सिं तिरियलोए असंखेज्जा दीवसमुद्दा सयंभूरमणपज्जवसाणा पण्णत्ता समणाउसो !

[१२३] हे भगवन् ! द्वीप समुद्र कहा अवस्थित हैं ? भगवन् ! द्वीपसमुद्र कितने हैं ? भगवन् ! वे द्वीपसमुद्र कितने वडे हैं ? भगवन् ! उनका आकार कैसा है ? भंते ! उनका आकारभाव प्रत्यवतार (स्वरूप) कैसा है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप से आरम्भ होने वाले द्वीप है और लवणसमुद्र से आरम्भ होने वाले समुद्र हैं। वे द्वीप और समुद्र (वृत्ताकार होने से) एकरूप हैं। विस्तार की अपेक्षा से नाना प्रकार के हैं अर्थात् दूने दूने विस्तार वाले हैं, प्रकटित तरगो वाले हैं, वहुत सारे उत्पल पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक शतपत्र, सहस्रपत्र कमलो के विकसित पराग से सुभोभित हैं। ये प्रत्येक पद्मवरवेदिका से घिरे हुए है, प्रत्येक के आसपास चारो ओर वनखण्ड हैं। हे आयुष्मन् श्रमण ! इस तिर्यक्लोक मे स्वयभूरमण समुद्रपर्यन्त असख्यात द्वीपसमुद्र कहे गये हैं।

विवेचन—ज्योतिष्क देव तिर्यक्लोक मे है, अतएव तिर्यक्लोक से सम्वन्धित द्वीपो और समुद्रो की वक्तव्यता इस सूत्र मे कही गई है। श्री गौतम स्वामी ने प्रश्न किया कि द्वीप और समुद्र कहाँ स्थित हैं ? वे कितने हैं ? कितने वडे है ? उनका आकार कैसा है और उनका आकार भाव प्रत्यवतार अर्थात् स्वरूप किस प्रकार का है ? इस तरह अवस्थिति, सख्या, प्रमाण सस्थान और स्वरूप को लेकर द्वीप-समुद्रो की पृच्छा की गई है। भगवान् ने इन प्रश्नो का उत्तर देने के पूर्व द्वीप-समुद्रो की आदि वताई हैं। आदि के विषय मे प्रश्न न होने पर भी आगे उपयोगी होने से पहले आदि वताई है। साथ ही यह भी सूचित किया है कि गुणवान् शिष्य को उसके द्वारा न पूछे जाने पर भी तत्त्व-कथन करना चाहिए। प्रभु ने फरमाया कि सव द्वीपो की आदि मे जम्बूद्वीप है और सब समुद्रो की आदि मे लवणसमुद्र है। सव द्वीप और समुद्र वृत्त (गोलाकार) होने से एक प्रकार के सस्थान वाले है परन्तु विस्तार की भिन्नता के कारण वे अनेक प्रकार के है। जम्वूद्वीप एक लाख योजन विस्तार वाला है। उसको घेरे हुए दो लाख योजन का लवणसमुद्र है, उसको घेरे हुए चार लाख योजन का धातकीखण्ड द्वीप है। इस प्रकार आगे आगे का द्वीप और समुद्र दुगुने-दुगुने विस्तार वाला है। अर्थात् ये द्वीप और समुद्र दूने दूने विस्तार वाले होते जाते है। ये द्वीप और समुद्र दृश्यमान जल-तरगो से तरगित हैं। यह विशेषण समुद्रो पर तो स्पष्टतया सगत है ही किन्तु द्वीपो पर भी सगत है क्योकि द्वीपो मे भी नदी, तालाव तथा जलाशयो मे तरगो का सद्भाव है ही। ये द्वीप-समुद्र नाना-

जातियो के कमलो से शोभायमान हैं। सामान्य कमल को उत्पल कहते हैं। सूर्यविकासी कमल को पद्म तथा चन्द्रविकासी कमल को कुमुद, ईषद् रक्त कमल को नलिन कहते हैं। सुभग और सौगन्धिक भी कमल की जातिया है। पुण्डरीक महापुण्डरीक कमल श्वेत वर्ण के होते हैं। सौ पत्तो वाला कमल शतपत्र है और हजार पत्तो वाला कमल सहस्रपत्र है। विकसित केसरो (परागो) से वे द्वीप समुद्र अत्यन्त शोभनीय हैं। ये प्रत्येक द्वीप और समुद्र एक पद्मवरवेदिका से और एक वनखण्ड से परिमण्डित हैं (घिरे हुए हैं)। इस तिर्यक्लोक मे एक द्वीप और एक समुद्र के क्रम से असख्यात द्वीप और समुद्र हैं। सबसे अन्त मे स्वयभूरमण समुद्र है। इस प्रकार अवस्थिति, सख्या, प्रमाण और सस्थान का कथन किया। आकारभाव प्रत्यवतार का कथन अगले सूत्र मे किया गया है।

जम्बूद्वीप वर्णन :

१२४ तत्थ णं अयं जंबुद्दीवे णाम दीवे दीवसमुद्दाणं अब्भितरिए सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए वट्टे, रहचक्कवालसठाणसंठिए वट्टे, पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए वट्टे, पडिपुन्नचदसठाणसंठिए एक्कं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खभेणं तिण्णि जोयणसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलकं च किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

से णं एक्काए जगतीए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। सा णं जगती अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले बारस जोयणाइं विक्खंभेण मज्झे अट्ठयोजणाइं विक्खंभेणं उप्पि चत्तारि जोयणाइं विक्खभेणं, मूले विच्छिण्णा मज्झे सखित्ता तणुया गोपुच्छसठाणसठिया सव्ववइरामई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कक्कडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा। सा णं जगती एक्केणं जालकडएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। से णं जालकडए णं अद्धजोयण उड्ढं उच्चत्तेणं, पच धणुसयाइं विक्खंभेणं सव्वरयणामए अच्छे सण्हे लण्हे जाव पडिरूवे।

[१२४] उन द्वीप समुद्रो मे यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप सबसे आभ्यन्तर (भीतर का) है, सबसे छोटा है, गोलाकार है, तेल मे तले पूए के आकार का गोल है, रथ के पहिये के समान गोल है, कमल की कर्णिका के आकार का गोल है, पूनम के चाद के समान गोल है। यह एक लाख योजन का लम्बा चौडा है। तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस (३,१६,२२७) योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष, साढे तेरह अगुल से कुछ अधिक परिधि वाला है।

यह जम्बूद्वीप एक जगती से चारो ओर से घिरा हुआ है। वह जगती आठ योजन ऊंची है। उसका विस्तार मूल मे बारह योजन, मध्य मे आठ योजन और ऊपर चार योजन है। मूल में विस्तीर्ण, मध्य मे सक्षिप्त और ऊपर से पतली है। वह गाय की पूछ के आकार की है। वह पूरी तरह वज्ररत्न की बनी हुई है। वह स्फटिक की तरह स्वच्छ है, चिकनी है, घिसी हुई होने से मृदु है। वह घिसी हुई, मजी हुई (पालिस की हुई) रजरहित, निर्मल, पकरहित, निरुपघात दीप्ति वाली, प्रभा वाली, किरणो वाली, उद्योत वाली, प्रसन्नता पैदा करने वाली, दर्शनीय, सुन्दर और अति सुन्दर है। वह जगती एक

जालियो के समूह से सव दिशाओ मे घिरी हुई है (अर्थात् उसमे सव तरफ झरोखे और रोशनदान हैं)। वह जाल-समूह आधा योजन ऊँचा, पाच सौ धनुष विस्तार वाला है, सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, मृदु है, चिकना है यावत् सुन्दर और बहुत सुन्दर है।

विवेचन—तिर्यक्लोक के द्वीप-समुद्रो मे हमारा यह जम्बूद्वीप सर्वप्रथम है। इससे ही द्वीप-समुद्रो की आदि है और स्वयभूरमणसमुद्र मे उनकी परिसमाप्ति है। अतएव यह जम्बूद्वीप सव द्वीप-समुद्रो मे सवसे आभ्यन्तर है। सवसे अन्दर का है। यह द्वीप सवसे छोटा है क्योकि इसके आगे के जितने भी समुद्र और द्वीप है वे सव दूने-दूने विस्तार वाले है। जम्वूद्वीप के आगे लवणसमुद्र है, वह दो लाख योजन का है। उससे आगे धातकीखण्ड है, वह चार लाख योजन का है। इस तरह दूना-दूना विस्तार आगे-आगे होता जाता है। यह जम्वूद्वीप गोलाकार सस्थान से स्थित है। उस गोलाई को उपमाओ द्वारा स्पष्ट किया गया है। तेल मे पकाये गये मालपुए की तरह यह गोल है। घी मे पकाये हुए मालपुए मे वैसी गोलाई नही होती जैसी तेल मे पकाये हुए पुए मे होती है, इसलिए 'तेल्लापूय' विशेषण दिया गया है। दूसरी उपमा है रथ के पहिये की। रथ का पहिया जैसा गोल होता है वैसा यह जम्वूद्वीप गोल है। तीसरी उपमा है कमल की कर्णिका की। कमल की कर्णिका की तरह वह गोल है। चौथी उपमा है परिपूर्ण चन्द्रमण्डल की। पूनम के चाँद की तरह यह जम्बूद्वीप गोल है। यह चूडी के आकार का गोल नही है।

यह जम्वूद्वीप एक लाख योजन की लम्वाई-चौडाई वाला है तथा इसकी परिधि (परिक्षेप-घेराव) तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस (३१६२२७) योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठावीस धनुष और साढे तेरह अगुल से कुछ अधिक है। (आयाम-विष्कभ से परिधि लगभग तीन गुनी होती है)।

इस जम्वूद्वीप के चारो ओर एक जगती है जो किसी सुनगर के प्राकार की भाँति अवस्थित है। वह जगती ऊँचाई मे आठ योजन है तथा विस्तार मे मूल मे वारह योजन, मध्य मे आठ योजन और ऊपर चार योजन है अर्थात् वह ऊची उठी हुई गोपुच्छ के आकार की है। वह सर्वात्मना वज्र-रत्नमय है। आकाश और स्फटिकमणि के समान वह स्वच्छ है, चिकने स्पर्श वाले पुद्गलो से निर्मित होने से चिकने तन्तुओ से वने वस्त्र की तरह श्लक्ष्ण है, घुटे हुए वस्त्र की तरह मसृण है। सान से घिसी हुई पाषाण-प्रतिमा की तरह घृष्ट है और सुकुमार सान से रगडी पाषाण-प्रतिमा की तरह मृष्ट है, स्वाभाविक रज से रहित होने से नीरज है, आगन्तुक मैल से हीन होने से निर्मल है, कालिमादि कलक से विकल होने से निष्पक है, निरुपघात दीप्तिवाली होने के कारण निष्कटक छायावाली है, स्वरूप की अपेक्षा प्रभाववाली है, विशिष्ट शोभा सम्पन्न होने से सश्रीक है और किरणो का जाल वाहर निकलने से समरीचि है, वहि स्थित वस्तुओ को प्रकाशित करने से सोद्योत है, मन को प्रसन्न करने वाली है, इसे देखते-देखते न मन थकता है और न नेत्र ही थकते हैं, अत यह दर्शनीय है। देखने वालो को इसका स्वरूप वहुत ही कमनीय लगता है। प्रतिक्षण नया जैसा ही इसका रूप रहता है, अतएव यह प्रतिरूप है।

यह जगती एक जालकटक से घिरी हुई है। जैसे भवन की भित्तियो मे झरोखे और रोशन-दान होते हैं वैसी जालिया जगह-जगह सब ओर वनी हुई हैं। यह जालसमूह दो कोस ऊचा और पांच सौ धनुष का विस्तार वाला है। यह प्रमाण एक जाली का है। यह जालकटक (जाल-समूह)

सर्वात्मना रत्नमय है, स्वच्छ है, श्लक्ष्ण है और मृदु है, यावत् यह अभिरूप और प्रतिरूप है। यहाँ यावत् पद से 'घट्ठे मट्ठे नीरए निम्मले निप्पंके निक्ककडच्छाए सप्पभे समरीए सउज्जोए पासाइए दरिसणिज्जे अविरूवे पडिरूवे' का ग्रहण किया गया है।

पद्मवरवेदिका का वर्णन

१२५. तीसे णं जगतीए उप्पिं बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महई पउमवरवेदिया पण्णत्ता। सा णं पउमवरवेदिया अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं (सव्वरयणामए) जगतीसमिया परिक्खेवेण सव्वरयणामई०। तीसे णं पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—वइरामया नेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियमया खंभा सुवण्णरुप्पमया फलगा वइरामया संधी लोहितक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया कलेवरा कलेवरसंघाडा णाणामणिमया रूवा नाणामणिमया रूवसंघाडा अंकामया पक्खा पक्खबाहाओ जोतिरसामया वंसा वंसकवेलुया य रययामईओ पट्टियाओ जातरूवमईओ ओहाडणीओ वइरामईओ उवरिपुञ्छणीओ सव्वसेए रययामए छादणे।

सा णं पउमवरवेइया एगमेगेणं हेमजालेणं एगमेगेणं गवक्खजालेण एगमेगेणं खिंखिणिजालेणं जाव मणिजालेणं (कणयजालेणं रयणजालेणं) एगमेगेणं पउमवरजालेणं सव्वरयणामएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता।

ते णं जाला तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया णाणामणिरयणविविहहारद्धहारउवसोभितसमुदया ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता पुव्वावरदाहिणउत्तरागएहिं वाएहिं मंदागं मंदागं एज्जमाणा एज्जमाणा कंपिज्जमाणा २ लंबमाणा २ पझंझमाणा २ सद्दायमाणा २ तेणं ओरालेणं मणुण्णेणं कण्णमणणिव्वुइकरेणं सद्देणं सव्वओ समंता आपूरेमाणा सिरीए अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे हयसंघाडा गयसंघाडा नरसंघाडा किण्णरसंघाडा किंपुरिससंघाडा महोरगसंघाडा गंधव्वसंघाडा वसहसंघाडा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे हयपंतीओ तहेव जाव पडिरूवाओ। एवं हयवीहीओ जाव पडिरूवाओ। एवं हयमिहुणाइं जाव पडिरूवाइं।

तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे पउमलयाओ नागलयाओ एवं असोग० चंपग० चूयवण० वासंति० अतिमुत्तग० कुंदलयाओ सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ जाव सुविहत्तपिंडमंजरिवडिंसकधरीओ सव्वरयणामईओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णीरयाओ णिप्पंकाओ णिक्कंकडच्छायाओ सप्पभाओ समिरीयाओ सउज्जोयाओ पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ। [तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे अक्खयसोत्थिया पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा।]

से केणट्ठे णं भंते ! एव वुच्चइ—पउमवरवेइया पउमवरवेइया ?

गोयमा ! पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं वेदियासु वेदियाबाहासु वेदियासीसफलएसु वेदियापुडंतरेसु खंभेसु खभवाहासु खंभसीसेसु खभपुडतरेसु सूईसु सूईमुहेसु सूईफलएसु सूईपुडंतरेसु पक्खेसु पक्खवाहासु पक्खपेरंतरेसु बहूइ उप्पलाइं पउमाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइ सण्हाइं लण्हाइ घट्ठाइं मट्ठाइ णीरयाइं णिम्मलाइं निप्पंकाइं निक्कंकडच्छायाइं सप्पभाइ समिरीयाइ सउज्जोयाइ पासादीयाइं दरिसणिज्जाइ अभिरूवाइ पडिरूवाइं महया महया वासिक्कच्छत्तसमयाइं पण्णत्ताइं समणाउसो ! से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ पउमवरवेइया पउमवरवेइया ।

पउमवरवेइया ण भंते ! किं सासया असासया ? गोयमा ! सिय सासया सिय असासया ।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चइ—सिय सासया सिय असासया ? गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया; वण्णपज्जवेहिं गधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया; से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सिय सासया सिय असासया ।

पउमवरवेइया णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! ण कयावि णासी, ण कयावि णत्थि, ण कयावि न भविस्सइ । भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य । धुवा नियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेदिया ।।

(१२५) उस जगती के ऊपर ठीक मध्यभाग मे एक विशाल पद्मवरवेदिका कही गई है। वह पद्मवरवेदिका आधा योजन ऊची और पाच सौ धनुष विस्तार वाली है। वह सर्वरत्नमय है। उसकी परिधि जगती के मध्यभाग की परिधि के बराबर है। यह पद्मवरवेदिका सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, यावत् अभिरूप, प्रतिरूप है।

उस पद्मवरवेदिका का वर्णन इस प्रकार है—उसके नेम (भूमिभाग से ऊपर निकले हुए प्रदेश) वज्ररत्न के बने हुए हैं, उसके मूलपाद (मूलपाये) रिष्टरत्न के बने हुए हैं, इसके स्तम्भ वैडूर्यरत्न के हैं, उसके फलक (पटिये) सोने चांदी के हैं, उसकी सधियाँ वज्रमय हैं, लोहिताक्षरत्न की बनी उसकी सूचियाँ हैं (ये सूचियाँ पादुकातुल्य होती हैं जो पाटियो को जोडे रखती हैं, विघटित नहीं होने देती)। यहाँ जो मनुष्यादि शरीर के चित्र बने हैं वे अनेक प्रकार की मणियो के बने हुए हैं तथा स्त्री-पुरुष युग्म की जोडी के जो चित्र बने हुए हैं वे भी अनेकविध मणियो के बने हुए हैं। मनुष्यचित्रो के अतिरिक्त जो चित्र बने है वे सब अनेक प्रकार की मणियो के बने हुए हैं। अनेक जीवो की जोडी के चित्र भी विविध मणियो के बने हुए हैं। उसके पक्ष—आजू-बाजू के भाग अकरत्नो के बने हुए हैं। बडे बडे पृष्ठवश ज्योतिरत्न नामक रत्न के है। बडे वशो को स्थिर रखने के लिए उनकी दोनो ओर तिरछे रूप मे लगाये गये वास भी ज्योतिरत्न के हैं। बासो के ऊपर छप्पर पर दी जाने वाली लम्बी लकडी की पट्टिकाएँ चाँदी की बनी हैं। कवाओ को ढाकने के लिए उनके ऊपर जो ओहाडणियाँ (आच्छादन हेतु बडी किमडिया) हैं वे सोने की हैं और पुछनियाँ (निबिड आच्छादन के लिए मुलायम तृणविशेष तुल्य छोटी किमडियाँ वज्ररत्न की हैं, पुञ्छनी के ऊपर और कवेलू के नीचे का आच्छादन श्वेत चाँदी का बना हुआ है।

वह पद्मवरवेदिका कही पूरी तरह सोने के लटकते हुए मालासमूह से, कही गवाक्ष की आकृति के रत्नो के लटकते मालासमूह से, कही किंकणी (छोटी घटियाँ) और कही वडी घटियो के आकार की मालाओ से, कही मोतियो की लटकती मालाओ से, कही मणियो की मालाओ से, कही सोने की मालाओ से, कही रत्नमय पद्म की आकृति वाली मालाओ से सव दिशा-विदिशाओ मे व्याप्त है।

वे मालाएँ तपे हुए स्वर्ण के लम्वूसग (पेण्डल) वाली हैं, सोने के पतरे से मडित है, नाना प्रकार के मणिरत्नो के विविध हार-अर्धहारो से सुशोभित है, ये एक दूसरी से कुछ ही दूरी पर हैं (पास-पास है), पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण दिशा से आगत वायु से मन्द-मन्द रूप से हिल रही है, कपित हो रही हैं, (हिलने और कपित होने से) लम्वी-लम्वी फैल रही हैं, परस्पर टकराने से शव्दायमान हो रही हैं। उन मालाओ से निकला हुआ शव्द जोरदार होकर भी मनोज्ञ, मनोहर और श्रोताओ के कान एव मन को सुख देने वाला होता है। वे मालाएँ मनोज्ञ शव्दो से सव दिशाओ एव विदिशाओ को आपूरित करती हुई श्री से अतीव सुशोभित हो रही है।

उस पद्मवरवेदिका के अलग-अलग स्थानो पर कही पर अनेक घोडो की जोड, हाथी की जोड, नर, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व और वैलो की जोड उत्कीर्ण है जो सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप हैं।

उस पद्मवरवेदिका के अलग-अलग स्थानो पर कही घोडो की पक्तियाँ (एक दिशावर्ती श्रेणिया) यावत् कही वैलो की पक्तिया आदि उत्कीर्ण है जो सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

उस पद्मवरवेदिका के अलग-अलग स्थानो पर कही घोडो की वीथियां (दो श्रेणीरूप) यावत् कही वैलो की वीथिया उत्कीर्ण है जो सर्वरत्नमय है, स्वच्छ हैं, यावत् प्रतिरूप हैं।

उस पद्मवरवेदिका के अलग-अलग स्थानो पर कही घोडो के मिथुनक (स्त्री-पुरुषयुग्म) यावत् वैलो के मिथुनक उत्कीर्ण हैं जो सर्वरत्नमय यावत् प्रतिरूप है।

उस पद्मवरवेदिका मे स्थान-स्थान पर वहुत-सी पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता, चूतवनलता, वासतीलता, अतिमुक्तकलता, कुदलता, श्यामलता नित्य कुसुमित रहती हैं यावत् सुविभक्त एव विशिष्ट मजरी रूप मुकुट को धारण करने वाली है। ये लताएँ सर्वरत्नमय है, श्लक्ष्ण है, मृदु हैं, घृष्ट हैं, मृष्ट हैं, नीरज हैं, निर्मल है, निष्पक हैं, निष्कलक छवि वाली हैं, प्रभामय हैं, किरणमय हैं, उद्योतमय हैं, प्रसन्नता पैदा करने वाली हैं, दर्शनीय है, अभिरूप है और प्रतिरूप है।

(उस पद्मवरवेदिका मे स्थान-स्थान पर बहुत से अक्षय स्वस्तिक कहे गये है, जो सर्वरत्नमय और स्वच्छ है।)

हे भगवन्! पद्मवरवेदिका को पद्मवरवेदिका क्यो कहा जाता है?

गौतम! पद्मवरवेदिका मे स्थान-स्थान पर वेदिकाओ (वैठने योग्य मत्तवारणरूप स्थानो) मे, वेदिका के आजू-बाजू मे, दो वेदिकाओ के वीच के स्थानो मे, स्तम्भो के आसपास, स्तम्भो के ऊपरी भाग पर, दो स्तम्भो के बीच के अन्तरो मे, दो पाटियो को जोडनेवाली सूचियो पर, सूचियो के मुखो

पर, सूचियो के नीचे और ऊपर, दो सूचियो के अन्तरो मे, वेदिका के पक्षो मे, पक्षो के एक देश मे, दो पक्षो के अन्तराल मे बहुत सारे उत्पल (कमल), पद्म (सूर्यविकासी कमल), कुमुद, (चन्द्रविकासी कमल), नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक (श्वेतकमल), महापुण्डरीक (बडे श्वेतकमल), शतपत्र, सहस्रपत्र आदि विविध कमल विद्यमान हैं। वे कमल सर्वरत्नमय है, स्वच्छ हैं यावत् अभिरूप है, प्रतिरूप है। ये सब कमल वर्षाकाल के समय लगाये गये बडे छत्रो (छतरियो) के आकार के है। हे आयुष्मन् श्रमण ! इस कारण से पद्मवरवेदिका को पद्मवरवेदिका कहा जाता है।

हे भगवन् ! पद्मवरवेदिका शाश्वत है या अशाश्वत है ? गौतम ! वह कथञ्चित् शाश्वत है और कथञ्चित् अशाश्वत है।

हे भगवन् ! ऐसा क्यो कहा जाता है कि पद्मवरवेदिका कथञ्चित् शाश्वत है और कथञ्चित् अशाश्वत है ?

गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत है और वर्णपर्यायो से, रसपर्यायो से, गन्धपर्यायो से, और स्पर्शपर्यायो से अशाश्वत है। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि पद्मवरवेदिका कथञ्चित् शाश्वत है और कथञ्चित् अशाश्वत है।

हे भगवन् ! पद्मवरवेदिका काल की अपेक्षा कब तक रहने वाली है ?

गौतम ! वह 'कभी नही थी'—ऐसा नही है 'कभी नही है' ऐसा नही है, 'कभी नही रहेगी' ऐसा नही है। वह थी, है और सदा रहेगी। वह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है। यह पद्मवरवेदिका का वर्णन हुआ।

वनखण्ड-वर्णन

१२६ [१] तीसे णं जगईए उप्पिं बाहिं पउमवरवेदियाए एत्थ णं एगे महं वनसंडे पण्णत्ते, देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेण जगतीसमए परिक्खेवेणं, किण्हे किण्होभासे जाव [ते णं पायवा मूलवंता कंदवंता खंधवता तयावता सालवंता पवालवता पत्तपुप्फफलबीयवंता अणुपुव्वसुजायरुइलवट्टभावपरिणया एगखंधी अणेगसाहप्पसाहविडिमा, अणेगणरव्वामसुपसारिय-गेज्झ-घणविउलवट्टखधा अच्छिद्दपत्ता अविरलपत्ता अवाईणपत्ता अणईइपत्ता णिद्धूयजरढपंडुरपत्ता, नवहरियभिसंतपत्तंधयारगंभीरदरिसणिज्जा उवविणिग्गयणवतरुणपत्तपल्लवकोमलुज्जलचलंत-किसलयसुकुमालसोहियवरकुरग्गसिहरा, णिच्चं कुसुमिआ णिच्चं मउलिया णिच्च लवइया निच्चं थवइया, णिच्चं गोच्छिया निच्चं जमलिया णिच्चं जुयलिया निच्चं विणमिया निच्च पणमिआ निच्चं कुसुमिय-मउलिय-लवइय-थवइय-गुलइय-गोच्छिय-जमलिय-जुगलियविणमियपणमियसुविभत्त-पडिमंजरिवडंसगधरा सुय-बरहिण-मयणसलागा-कोइल-कोरग-भिगारग-कोडलग-जीवंजीवग-णदिमुह-कविल-पिंगलक्ख-कारडव-चक्कवाग-कलहंस-सारसाणेगसउणगणमिहुण विचारिय सद्दुन्नइय-महुरसनाइय-सुरम्मा संपिंडियदप्पियभमर-महुयरीपहकरा परिलीयमाणमत्तछप्पय-कुसुमासवलोल-महुरगुमगुमायत-गुंजतदेसभागा अब्भितरपुप्फफला बाहिरपत्तछन्ना णीरोगा अकटगा साउफला णिद्धफला णाणाविहगुच्छगुम्ममडवगसोहिया विचित्तसुहकेउबहुला वावी-पुक्खरिणि-दीहिया

सुनिवेसिय रम्यजालघरगा पिंडिमं, सुहसुरहिमणोहरं महया गंधद्धणि णिच्चं मुंचमाणा सुहसेउकेउ वहुला ।] अणेगसगड-रह-जाण-जुग्ग (सिविय- सदमाणिय) परिमोयणे सुरम्मे पासाईए सण्हे लण्हे घट्ठे मट्ठे नीरए निप्पंके निम्मले निक्कंकडच्छाए सप्पभे समिरीए सउज्जोए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

तस्स णं वणसडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभाए पण्णत्ते, से जहानामए आलिंगपुक्खरेइ वा मुइंगपुक्खरे इ वा सरतले इ वा करतले इ वा आयंसमंडले इ वा चंदमंडले इ वा सूरमंडले इ वा उरब्भचम्मे इ वा, उसभचम्मे इ वा वराहचम्मे इ वा सीहचम्मे इ वा वग्घचम्मे इ वा विगचम्मे इवा अणेगसंकुकीलगसहस्सवितते आवड-पच्चावड सेढीपसेढीसोत्थियसोवत्थियपूसमाण-वद्धमाण-मच्छंडक-मकरंडक-जारमार-फुल्लावलि-पउमपत्त-सागरतरंग-वासतिलय-पउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं समिरीएहिं नानाविहपंचवण्णेहिं तणेहि य मणिहि य उवसोहिए तं जहा—किण्हेहिं जाव सुक्किलेहिं ।

[१२६] (१) उस जगती (प्राकारकल्प) के ऊपर और पद्मवरवेदिका के वाहर एक वड़ा विशाल वनखण्ड[1] कहा गया है। वह वनखण्ड कुछ कम दो योजन गोल विस्तार वाला है और उसकी परिधि जगती की परिधि के समान ही है। वह वनखण्ड खूब हराभरा होने से तथा छाया-प्रधान होने से काला है और काला ही दिखाई देता है। यावत् [उस वनखण्ड के वृक्षो के मूल वहुत दूर तक जमीन के भीतर गहरे गये हुए हैं, वे प्रशस्त कद वाले, प्रशस्त स्कन्धवाले, प्रशस्त छाल वाले, प्रशस्त शाखा वाले, प्रशस्त किशलय वाले, प्रशस्त पत्र वाले और प्रशस्त फूल-फल और वीज वाले हैं। वे सव पादप समस्त दिशाओ मे और विदिशाओ मे अपनी-अपनी शाखा-प्रशाखाओ द्वारा इस ढग से फैले हुए हैं कि वे गोल-गोल प्रतीत होते हैं। वे मूलादि क्रम से सुन्दर, सुजात और रुचिर (सुहावने) प्रतीत होते हैं। ये वृक्ष एक-एक स्कन्ध वाले हैं। इनका गोल स्कन्ध इतना विशाल है कि अनेक पुरुष भी अपनी फैलायी हुई वाहुओ मे उसे ग्रहण नही कर सकते। इन वृक्षो के पत्ते छिद्ररहित हैं, अविरल हैं—इस तरह सटे हुए हैं कि अन्तराल मे छेद नही दिखाई देता। इनके पत्ते वायु से नीचे नही गिरते हैं, इनके पत्तो मे ईति-रोग नही होता। इन वृक्षो के जो पत्ते पुराने पड जाते हैं या सफेद हो जाते हैं वे हवा से गिरा दिये जाते हैं और अन्यत्र डाल दिये जाते हैं। नये और हरे दीप्तिमान पत्तो के झुरमुट से होनेवाले अन्धकार के कारण इनका मध्यभाग दिखाई न पडने से ये रमणीय-दर्शनीय लगते हैं। इनके अग्रशिखर निरन्तर निकलने वाले पल्लवो और कोमल-उज्ज्वल तथा कम्पित किशलयो से सुशोभित हैं। ये वृक्ष सदा कुसुमित रहते हैं, नित्य मुकुलित रहते हैं, नित्य पल्लवित रहते हैं, नित्य स्तवकित रहते हैं, नित्य गुल्मित रहते हैं, नित्य गुच्छित रहते हैं, नित्य यमलित रहते हैं, नित्य युगलित रहते हैं, नित्य विनमित रहते हैं, एव नित्य प्रणमित रहते हैं। इस प्रकार नित्य कुसुमित यावत् नित्य प्रणमित वने हुए ये वृक्ष सुविभक्त प्रतिमजरीं रूप अवतसक को धारण किये रहते हैं।

इन वृक्षो के ऊपर शुक के जोडे, मयूरो के जोडे, मदनशलका—मैना के जोडे, कोकिल के जोड़े, चक्रवाक के जोडे, कलहस के जोडे, सारस के जोडे इत्यादि अनेक पक्षियो के जोडे वैठे-वैठे वहुत दूर

---

१ 'एगजाइएहिं रुक्खेहिं वण अणेगजाइएहिं उत्तमेहिं रुक्खेहिं वणसडे'—एक सरीखे वृक्ष जहाँ हो वह वन और अनेक जाति के उत्तम वृक्ष जहाँ हो वह वनखण्ड है। —वृत्ति

तक सुने जाने वाले उन्नत शब्दो को करते रहते हैं—चहचहाते रहते हैं, इससे इन वृक्षो की सुन्दरता मे विशेषता आ जाती है। मधु का सचय करने वाले उन्मत्त भ्रमरो और भ्रमरियो का समुदाय उन पर मडराता रहता है। अन्य स्थानो से आ-आकर मधुपान से उन्मत्त भवरे पुष्पपराग के पान मे मस्त वनकर मधुर-मधुर गुजारव से इन वृक्षो को गुजाते रहते हैं। इन वृक्षो के पुष्प और फल इन्ही के भीतर छिपे रहते है। ये वृक्ष बाहर से पत्रो और पुष्पो से आच्छादित रहते हैं। ये वृक्ष सब प्रकार के रोगो से रहित हैं, काटो से रहित हैं। इनके फल स्वादिष्ट होते हैं और स्निग्धस्पर्श वाले होते हैं। ये वृक्ष प्रत्यासन्न नाना प्रकार के गुच्छो से गुल्मो से लतामण्डपो से सुशोभित हैं। इन पर अनेक प्रकार की ध्वजाएँ फहराती रहती हैं। इन वृक्षो को सीचने के लिए चौकोर वावडियो मे, गोल पुष्करिणियो मे, लम्वी दीर्घिकाओ मे सुन्दर जालगृह बने हुए हैं। ये वृक्ष ऐसी विशिष्ट मनोहर सुगध को छोड़ते रहते हैं कि उससे तृप्ति ही नही होती। इन वृक्षो की क्यारिया शुभ है और उन पर जो ध्वजाएँ हैं वे भी अनेक रूप वाली हैं।] अनेक गाडियाँ, रथ, यान, युग्य (गोल्लदेश प्रसिद्ध जम्पान), शिविका और स्यन्दमानिकाएँ उनके नीचे (छाया अधिक होने से) छोडी जाती है। वह वनखण्ड सुरम्य है, प्रसन्नता पैदा करने वाला है, श्लक्ष्ण है, स्निग्ध है, घृष्ट है, मृष्ट है, नीरज है, निष्पक है, निर्मल है, निरुपहत कान्ति वाला है, प्रभा वाला है, किरणो वाला है, उद्योत करने वाला है, प्रासादिक है, दर्शनीय है, अभिरूप है और प्रतिरूप है।

उस वनखण्ड के अन्दर अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग है। वह भूमिभाग मुरुज (वाद्यविशेष) के मढे हुए चमडे के समान समतल है, मृदग के मढे हुए चमडे के समान समतल है, पानी से भरे सरोवर के तल के समान, हथेली के समान, दर्पणतल के समान, चन्द्रमण्डल के समान, सूर्यमण्डल के समान, उरभ्र (घेटा) के चमडे के समान, वैल के चमडे के समान, वराह (सूअर) के चर्म के समान, सिंह के चर्म के समान, व्याघ्रचर्म के समान, भेडिये के चर्म के समान और चीते के चमडे के समान समतल है। इन सव पशुओ का चमडा जव शकु प्रमाण हजारो कीलो से ताडित होता है—खीचा जाता है तव वह विल्कुल समतल हो जाता है (अतएव उस भूमिभाग की समतलता को बताने के लिए ये उपमाएँ हैं।) वह वनखण्ड आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणी, प्रश्रेणी, स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्यमाणव, वर्द्धमानक, मत्स्यडक, मकरडक, जारमारलक्षण वाली मणियो, नानाविध पचवर्ण वाली मणियो, पुष्पावली, पद्मपत्र, सागरतरग, वासन्तीलता, पद्मलता आदि विविध चित्रो से युक्त मणियो और तृणो से सुशोभित है। वे मणियाँ कान्ति वाली, किरणो वाली, उद्योत करने वाली और कृष्ण यावत् शुक्ल रूप पचवर्णो वाली हैं। ऐसे पचवर्णी मणियो और तृणो से वह वनखण्ड सुशोभित है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे वनखण्ड का वर्णन किया गया है। कुछ कम दो योजन प्रमाण विस्तार वाला और जगती के समान ही परिधि वाला यह वनखण्ड खूब हराभरा होने से तथा छायाप्रधान होने से काला है और काला दिखाई देता है। इसके आगे 'यावत्' शब्द दिया गया है, उससे अन्यत्र दिये गये अन्य विशेषण इस प्रकार जानने चाहिए —

हरिए हरिओभासे—कही-कही वनखण्ड हरित है और हरितरूप मे ही उसका प्रतिभास होता है।

नीले नीलोभासे—कही-कही यह वनखण्ड नीला है और नीला ही प्रतिभासित होता है। हरित अवस्था को पार कर कृष्ण अवस्था को नही प्राप्त हुए पत्र नीले कहे जाते हैं। इनके योग से उस वनखण्ड को नील और नीलावभास कहा गया है।

सीए सीओभासे—वह वनखण्ड शीत और शीतावभास है। जब पत्ते बाल्यावस्था पार कर जाते हैं तब वे शीतलता देने वाले हो जाते हैं। उनके योग से वह वनखण्ड भी शीतलता देने वाला है और शीतल ही प्रतीत होता है।

णिद्धे णिद्धोभासे, तिव्वे तिव्वोभासे—ये काले नीले हरे रंग अपने स्वरूप में उत्कट, स्निग्ध और तीव्र कहे जाते हैं। इस कारण इनके योग से वह वनखण्ड भी स्निग्ध, स्निग्धावभास, तीव्र, तीव्रावभास कहा गया है।

अवभास भ्रान्त भी होता है। जैसे मरु-मरीचिका में जल का अवभास भ्रान्त है। अतएव भ्रान्त अवभास का निराकरण करते हुए अन्य विशेषण दिये गये हैं, यथा—

किण्हे किण्हछाये—वह वनखण्ड सबको समानरूप से काला और काली छाया वाला प्रतीत होता है। सबको समानरूप से ऐसा प्रतीत होने से उसकी अविसंवादिता प्रकट की है। जो भ्रान्त अवभास होता है, वह सबको एक सरीखा प्रतीत नहीं होता है।

नीले नीलच्छाये, सीए सीयच्छाये—वह वनखण्ड नीला और नीली छाया वाला है। शीतल और शीतल छाया वाला है। यहाँ छाया शब्द आतप का प्रतिपक्षी वस्तुवाची समझना चाहिए।

घणकडियच्छाए—इस वनखण्ड के वृक्षों की छाया मध्यभाग में अति घनी है क्योंकि मध्य-भाग में बहुत-सी शाखा-प्रशाखाएँ फैली हुई होती हैं। इससे उनकी छाया घनी होती है।

रम्मे—यह वनखण्ड रमणीय है।

महामेहनिकुरंबभूए—वह वनखण्ड जल से भरे हुए महामेघों के समुदाय के समान है।

वनखण्ड के वृक्षों का वर्णन मूलपाठ से ही स्पष्ट है जो कोष्ठक में दिया गया है।

उस वनखण्ड का भूमिभाग अत्यन्त रमणीय और समतल है। इस समतलता को बताने के लिए विविध उपमाएँ दी गई हैं। मुरज, मृदंग, सरोवर, करतल, आदर्शमण्डल, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, उरभ्रचर्म, वृषभचर्म आदि विविध पशुओं के खींचे हुए चर्म के तल से उस भूभाग की समतलता की तुलना की गई है। उक्त पशुओं के चर्म को कीलों की सहायता से खींचने पर वह एकदम सलरहित होकर समतल—एकसरीखा तल वाला होता है, वैसा ही वह भूभाग ऊबड-खाबड या ऊँचा-नीचा और विषम न होकर समतल है, अतएव अत्यन्त रमणीय है। इतना ही नहीं उस समतल भूमिभाग पर विविध भांति के चित्र चित्रित हैं। इन चित्रों में आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणी, प्रश्रेणी, स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्यमाणव, वर्द्धमानक, मत्स्यण्डक, मकरंडक जारमार लक्षण वाली पांच वर्ण की मणियों से निर्मित चित्र हैं। पुष्पावली, पद्मपत्र, सागरतरंग, वासन्तीलता, पद्मलता आदि के विविध चित्र पांच वर्ण वाली मणियों और तृणों से चित्रित हैं। वे मणियां पांच रंगों की हैं, कान्तिवाली, किरणोंवाली हैं। उद्योत करने वाली हैं। अगले सूत्रखण्ड में पांच वर्णों की मणियों एवं तृणों का उपमानों द्वारा वर्णन किया गया है, वह इस प्रकार है—

१२६. [२] तत्थ णं जे ते किण्हा तणा य मणि य तेसिं णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए जीमूए इ वा, अंजणे इ वा, खंजणे इ वा, कज्जले इ वा,[1] मसी इ वा, गुलिया इ वा, गवले इ

१—किन्हीं-किन्हीं प्रतियों में मसी इ वा, 'गुलिया इ वा' पाठ नहीं है।

वा, गवलगुलिया इ वा, भमरे इ वा, भमरावलिया इ वा, भमरपत्तगयसारे इ वा, जंबूफले इ वा, अद्दारिट्ठे इ वा, परपुट्ठे इ वा, गए इ वा, गयकलभे इ वा, कण्हसप्पे इ वा, कण्हकेसरे इ वा, आगासथिग्गले इ वा, कण्हासोए इ वा, कण्हकणवीरे इ वा, कण्हबंधुजीवए इ वा, भवे एयारूवे सिया ?

गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे। तेसिं ण कण्हाण तणाणं मणीण य इत्तो इट्ठयराए चेव कंततराए चेव पियतराए चेव मणुण्णतराए चेव मणामतराए चेव वण्णे णं पण्णत्ते।

[१२६] (२) उन तृणो और मणियो मे जो काले वर्ण के तृण और मणिया है, उनका वर्णावास इस प्रकार कहा गया है—जैसे वर्षाकाल के प्रारम्भ मे जल भरा बादल हो, सौवीर अजन अथवा अञ्जन रत्न हो, खञ्जन (दीपमल्लिका मैल, गाडी का कीट) हो, काजल हो, काली स्याही हो (घुला हुआ काजल), घुले हुए काजल की गोली हो, भैसे का शृ ग हो, भैसे के शृ ग से बनी गोली हो, भवरा हो, भौरो की पक्ति हो, भवरो के पखो के बीच का स्थान हो, जम्बू का फल हो, गीला अरीठा हो, कोयल हो, हाथी हो, हाथी का बच्चा हो, काला साप हो, काला बकुल हो, बादलो से मुक्त आकाशखण्ड हो, काला अशोक, काला कनेर और काला बन्धुजीव (वृक्ष) हो। हे भगवन् ! ऐसा काला वर्ण उन तृणो और मणियो का होता है क्या ? हे गौतम ! ऐसा नही है। इनसे भी अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर उनका वर्ण होता है।

१२६ [३] तत्थ णं जे ते णीलगा तणा य मणी य तेसिं णं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—से जहानामए भिंगे इ वा, भिंगपत्ते इ वा, चासे इ वा, चासपिच्छे इ वा, सुए इ वा, सुयपिच्छे इ वा, णीली इ वा, णीलीभेए इ वा, णीलीगुलिया इ वा, सामाए इ वा, उच्चतए इ वा, वणराई इ वा, हलधरवसणे इ वा, मोरग्गीवा इ वा, पारेवयगीवा इ वा, अयसिकुसुमे इ वा, अजणकेसिगाकुसुमे इ वा, णीलुप्पले इ वा, णीलासोए इ वा, णीलकणवीरे इ वा, णीलबधुजीवए इ वा, भवे एयारूवे सिया ?

णो इणट्ठे समट्ठे। तेसिं णं णीलगाण तणाण मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव कंततराए चेव जाव वण्णेण पण्णत्ते।

[१२६] (३) उन तृणो और मणियो मे जो नीली मणिया और नीले तृण हैं, उनका वर्ण इस प्रकार का है—जैसे नीला भ्रृ ग (भिंगोडी—पखवाला लघु जन्तु-नीला भवरा) हो, नीले भ्रृ ग का पख हो, चास (पक्षीविशेष) हो, चास का पख हो, नीले वर्ण का शुक (तोता) हो, शुक का पख हो, नील हो, नीलखण्ड हो, नील की गुटिका हो, श्यामाक (धान्य विशेष) हो, नीला दतराग हो, नीली वनराजि हो, बलभद्र का नीला वस्त्र हो, मयूर की ग्रीवा हो, कबूतर की ग्रीवा हो, अलसी का फूल हो, अञ्जनकेशिका वनस्पति का फूल हो, नीलकमल हो, नीला अशोक हो, नीला कनेर हो, नीला बन्धुजीवक हो, भगवन् ! क्या ऐसा नीला उनका वर्ण होता है ?

गौतम ! यह बात नही है। इनसे भी अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर उन नीले तृण-मणियो का वर्ण होता है।

१२६ [४] तत्थ णं जे ते लोहितगा तणा य मणी य तेसिं णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—से जहानामए ससकरुहिरे इ वा, उरब्भरुहिरे इ वा, णररुहिरे इ वा, वराहरुहिरे इ वा, महिसरुहिरे इ वा, बालिंदगोवए इ वा, बालदिवागरे इ वा, संझब्भरागे इ वा, गुंजद्धरागे इ वा, जातिहिंगुलुए इ वा,

सिलप्पवाले इ वा, पवालंकुरे इ वा, लोहितक्खमणी इ वा, लक्खारसए इ वा, किमिरागे इ वा, रत्त-कवले इ वा, चीणपिट्ठरासी इ वा, जासुयणकुसुमे इ वा, किंसुअकुसुमे इ वा, पारिजायकुसुमे इ वा, रत्तुप्पले इ वा, रत्तासोगे इ वा, रत्तकणयारे इ वा, रत्तबंधुजीवे इ वा, भवे एयारूवे सिया ?

नो तिणट्ठे समट्ठे। तेसिं णं लोहियगाण तणाण य मणीण य एत्तो इट्ठयराए चेव जाव वण्णे णं पण्णत्ते।

[१२६] (४) उन तृणो और मणियो मे जो लाल वर्ण के तृण और मणिया हैं, उनका वर्ण इस प्रकार कहा गया है—जैसे खरगोश का रुधिर हो, भेड का खून हो, मनुष्य का रक्त हो, सूअर का रुधिर हो, भैंस का रुधिर हो, सद्य जात इन्द्रगोप (लाल वर्ण का कीड़ा) हो, उदीयमान सूर्य हो, सन्ध्याराग हो, गुजा का अर्धभाग हो, उत्तम जाति का हिंगुलु हो, शिलाप्रवाल (मूगा) हो, प्रवालाकुर (नवीन प्रवाल का किशलय) हो, लोहिताक्ष मणि हो, लाख का रस हो, कृमिराग हो, लाल कवल हो, चीन धान्य का पीसा हुआ आटा हो, जपा का फूल हो, किंशुक का फूल हो, पारिजात का फूल हो, लाल कमल हो, लाल अशोक हो, लाल कनेर हो, लाल बन्धुजीवक हो, भगवन्! क्या ऐसा उन तृणो, मणियो का वर्ण है? गौतम! यह यथार्थ नही है। उन लाल तृणो और मणियो का वर्ण इनसे भी अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर कहा गया है।

१२६ (५) तत्थ णं जे ते हालिद्दगा तणा य मणी य तेसिं णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—से जहानामए चपए इ वा, चपगच्छल्ली इ वा, चपगभेए इ वा, हालिद्दा इ वा, हालिद्दभेए इ वा, हालिद्दगुलिया इ वा, हरियाले इ वा हरियालभेए इ वा, हरियालगुलिया इ वा, चिउरे इ वा, चिउ-रंगरागे इ वा, वरकणए इ वा, वरकणगनिघसे इ वा (सुवण्णसिप्पिए इ वा) वरपुरिसवसणे इ वा, सल्लइकुसुमे इ वा, चपककुसुमे इ वा, कुहुंडियाकुसुमे इ वा, (कोरटकदामे इ वा) तडउडाकुसुमे इ वा, घोसाडियाकुसुमे इ वा, सुवण्णजूहियाकुसुमे इ वा, सुहरिन्नयाकुसुमे इ वा (कोरिंटवरमल्लदामे इ वा), बीयगकुसुमे इ वा, पीयासोए त्ति वा, पीयकणवीरे इ वा, पीयबधुजीवए इ वा, भवे एयारूवे सिया ?

नो इणट्ठे समट्ठे। ते ण हालिद्दा तणा य मणी य एत्तो इट्ठयरा चेव जाव वण्णे ण पण्णत्ता।

[१२६] (५) उन तृणो और मणियो मे जो पीले वर्ण के तृण और मणिया हे उनका वर्ण इस प्रकार का कहा गया है। जैसे सुवर्णचम्पक का वृक्ष हो, सुवर्णचम्पक की छाल हो, सुवर्णचम्पक का खण्ड हो, हल्दी, हल्दी का टुकडा हो, हल्दी के सार की गुटिका हो, हरिताल (पृथ्वीविकार रूप द्रव्य) हो, हरिताल का टुकडा हो, हरिताल की गुटिका हो, चिकुर (रागद्रव्यविशेष) हो, चिकुर से बना हुआ वस्त्रादि पर रग हो, श्रेष्ठ स्वर्ण हो, कसौटी पर घिसे हुए स्वर्ण की रेखा हो, (स्वर्ण की सीप हो), वासुदेव का वस्त्र हो, सल्लकी का फूल हो, स्वर्णचम्पक का फूल हो, कूष्माण्ड का फूल हो, कोरन्ट-पुष्प की माला हो, तडवडा (आवली) का फूल हो, घोषातकी का फूल हो, सुवर्णयूथिका का फूल हो, सुहरण्यिका का फूल हो, बीजकवृक्ष का फूल हो, पीला अशोक हो, पीला कनेर हो, पीला बन्धुजीवक हो। भगवन्! उन पीले तृणो और मणियो का ऐसा वर्ण है क्या? गौतम! ऐसा नही है। वे पीले तृण और मणिया इनसे भी अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर वर्ण वाली हैं।

१२६ (६) तत्थ णं जे ते सुक्किलगा तणा य मणी य तेसिं णं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—से जहाणामए अंके इ वा संखे इ वा, चंदे इ वा, कुंदे इ वा, कुमुए इ वा, दयरए इ वा (दहिघणे इ वा, खीरे इ वा, खीरपूरे इ वा) हंसावली इ वा, कोंचावली इ वा, हारावली इ वा, बलायावली इ वा, चंदावली इ वा, सारइयबलाहए इ वा, धंतधोयरुप्पपट्टे इ वा, सालिपिट्ठरासी इ वा, कुंदपुप्फरासी इ वा, कुमुयरासीइ वा, सुक्कछिवाडी इ वा, पेहुणमिंजा इ वा, बिसे इ वा, मिणालिया इ वा, गयदंते इ वा, लवंगदले इ वा, पोंडरीयदले इ वा, सिंदुवारमल्लदामे इ वा, सेतासोए इ वा, सेयकणवीरे इ वा, सेयबंधुजीवए इ वा, भवे एयारूवे सिया ?

णो तिणट्ठे समट्ठे। तेसिं णं सुक्किलाणं तणाणं मणीण य एत्तो इट्ठयराए चेव जाव वण्णेणं पण्णत्ते।

[१२६] (६) उन तृणों और मणियों में जो सफेद वर्ण वाले तृण और मणियां हैं उनका वर्ण इस प्रकार का कहा गया है—जैसे अंक रत्न हो, शंख हो, चन्द्र हो, कुंद का फूल हो, कुमुद (श्वेत कमल) हो, पानी का बिन्दु हो, (जमा हुआ दही हो, दूध हो, दूध का समूह-प्रवाह हो), हंसों की पंक्ति हो, क्रौंचपक्षियों की पंक्ति हो, मुक्ताहारों की पंक्ति हो, चांदी से बने कंकणों की पंक्ति हो, सरोवर की तरंगों में प्रतिबिम्बित चन्द्रों की पंक्ति हो, शरदऋतु के बादल हों, अग्नि में तपाकर धोया हुआ चांदी का पाट हो, चावलों का पिसा हुआ आटा हो, कुन्द के फूलों का समुदाय हो, कुमुदों का समुदाय हो, सूखी हुई नेम की फली हो, मयूरपिच्छ की मध्यवर्ती मिंजा हो, मृणाल हो, मृणालिका हो, हाथी का दांत हो, लवंग का पत्ता हो, पुण्डरीक (श्वेतकमल) की पंखुडियां हों, सिन्दुवार के फूलों की माला हो, सफेद अशोक हो, सफेद कनेर हो, सफेद बंधुजीवक हो, भगवन् ! उन सफेद तृणों और मणियों का ऐसा वर्ण है क्या ? गौतम ! यह यथार्थ नहीं है। इनसे भी अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर उन तृणों और मणियों का वर्ण कहा गया है।

१२६ (७) तेसिं णं भंते ! तणाण य मणीण य केरिसए गंधे पण्णत्ते ? से जहाणामए—कोट्ठपुडाण वा, पत्तपुडाण वा, चोयपुडाण वा, तगरपुडाण वा, एलापुडाण वा[1] चंदणपुडाण वा कुंकुमपुडाण वा, उसीरपुडाण वा, चंपकपुडाण वा, मरुयगपुडाण वा, दमणगपुडाण वा, जातिपुडाण वा, जूहियापुडाण वा, मल्लियपुडाण वा, णोमालियपुडाण वा, वासंतिपुडाण वा, केयइपुडाण वा, कप्पूरपुडाण वा, अणुवायंसि उब्भिज्जमाणाण य णिब्भिज्जमाणाण य कोट्टेज्जमाणाण वा रुविज्जमाणाण वा उक्किरिज्जमाणाण वा विकिरिज्जमाणाण वा परिभुज्जमाणाण वा भंडाओ भंडं साहरिज्जमाणाण वा ओराला मणुण्णा घाणमणनिव्वुइकरा सव्वओ समंता गंधा अभिणिस्सवंति, भवे एयारूवे सिया ?

णो तिणट्ठे समट्ठे। तेसिं णं तणाणं मणीण य एत्तो उ इट्ठतराए चेव जाव मणामतराए चेव गंधे पण्णत्ते।

[१२६] (७) हे भगवन् ! उन तृणों और मणियों की गंध कैसी कही गई है ? जैसे कोष्ट-(गंधद्रव्यविशेष) पुटों, पत्रपुटों, चोयपुटों (गंधद्रव्यविशेष), तगरपुटों, इलायचीपुटों, चंदनपुटों,

---

१ 'किरिमेरिपुडाण वा' क्वचित् पाठो दृश्यते।

कुकुमपुटो उशीरपुटो (खस)चपकपुटो, मरवापुटो दमनकपुटो, जातिपुटो (चमेली), जूहीपुटो, मल्लिका-पुटो (मोगरा), नवमल्लिकापुटो, वासन्तीलतापुटो, केवडा के पुटो और कपूर के पुटो को अनुकूल वायु होने पर उघाडे जाने पर, भेदे जाने पर, कूटे जाने पर, छोटे-छोटे खण्ड किये जाने पर, बिखेरे जाने पर, ऊपर उछाले जाने पर, इनका उपभोग-परिभोग किये जाने पर और एक वर्तन से दूसरे बर्तन मे डाले जाने पर जैसी व्यापक और मनोज्ञ तथा नाक और मन को तृप्त करने वाली गध निकलकर चारो तरफ फैल जाती है, हे भगवन् ! क्या वैसी गध उन तृणो और मणियो की है ? गौतम ! यह बात यथार्थ नही है। इससे भी इष्टतर, कान्ततर, प्रियतर, मनोज्ञतर और मनामतर गध उन तृणो और मणियो की कही गई है।

१२६ (८) तेसि णं भते ! तणाण य मणीण य केरिसए फासे पण्णत्ते ? से जहाणामए—आईणे इ वा, रुए इ वा, बूरे इ वा, णवणीए इ वा, हंसगब्भतूली इ वा, सिरीसकुसुमणिचए इ वा, वालकुमुद पत्तरासी इ वा, भवे एयारूवे सिया ?

णो तिणट्ठे समट्ठे। तेसि णं तणाण य मणीण य एत्तो इट्ठतराए चेव जाव फासे ण पण्णत्ते।

[१२६] (८) हे भगवन् ! उन तृणो और मणियो का स्पर्श कैसा कहा गया है ? जैसे—आजिनक (मृदु चर्ममय वस्त्र), रुई, बूर वनस्पति, मक्खन, हसगर्भतूलिका, सिरीष फूलो का समूह, नवजात कुमुद के पत्रो की राशि का कोमल स्पर्श होता है, ऐसा उनका स्पर्श है क्या ?

गौतम ! यह अर्थ यथार्थ नही है। उन तृणो और मणियो का स्पर्श उनसे भी अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मणाम (मनोहर) है।

१२६ (९) तेसि ण भते ![1] तणाण य मणीण य पुव्वावरदाहिणउत्तरागएहिं वाएहिं मदायं मंदाय एइयाण वेइयाणं कपियाण खोभियाण चालियाण फंदियाणं घट्टियाणं उदीरियाण केरिसए सद्दे पण्णत्ते ? से जहानामए—सिबियाए वा, सदमाणीयाए वा, रहवरस्स वा, सच्छत्तस्स सज्झयस्स सघटयस्स सतोरणवरस्स सणदिघोसस्स सखिखिणिहेमजालपेरतपरिक्खित्तस्स हेमवयखेत्त चित्तविचित्त तिणिसकणगनिज्जुत्तदारुयागस्स सुपिणद्धारकमडलधुरागस्स कालायससुकयणेमिजंतकम्मस्स आइण्णवरतुरगसुसपउत्तस्स कुसलणरछेयसारहिसुसंपरिगहियस्स सरसयबत्तीसतोणपरिमंडियस्स सकंकडवडिसगस्स सचावसरपहरणावरणभरियस्स जोहजुद्धस्स रायगणसि वा अतेउरंसि वा रम्मंसि मणिकोट्टिमतलसि अभिक्खण अभिक्खण अभिघट्टिज्जमाणस्स वा णियट्टिज्जमाणस्स वा ओराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुइकरा सव्वओ समता सद्दा अभिणिस्सवति, भवे एयारूवे सिया ?

णो तिणट्ठे समट्ठे।

से जहानामए—वेयालियाए वीणाए उत्तरमदामुच्छिताए अके सुपइट्ठियाए चदणसारकोण-पडिघट्टियाए कुसलणरणारिसपरिगहियाए पदोस-पच्चूसकालसमयसि मद मदं एइयाए वेइयाए खोभियाए उदोरियाए ओराला मणुण्णा कण्णमणणिव्वुइकरा सव्वओ समंता सद्दा अभिणिस्सवंति, भवे एयारूवे सिया ?

---

१. तणाण पुव्वा इत्येव पाठ ।

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

से जहाणामए—किण्णराण वा किंपुरिसाण वा महोरगाण वा गधव्वाण वा भद्दसालवणगयाण वा नंदणवणगयाण वा सोमणसवणगयाण वा पंडगवणगयाण वा हिमवंत-मलय-मंदर-गिरि-गुहसमण्णा-गयाण वा एगओ सहियाणं सम्मुहागयाणं समुविट्ठाण सन्निविट्ठाणं पमुदियपक्कीलियाणं गीयरति-गधव्वहरिसियमणाणं गेज्ज पज्जं कत्थं पयवद्ध पायबद्ध उक्खित्तयं पवत्तयं मंदाय रोचियावसाण सत्तसरसमण्णागयं अट्ठरससुसंपउत्त छद्दोसविप्पमुक्क एकारसगुणालकार-अट्ठगुणोववेयं गुंजतव-सकुहरोवगूढं रत्त तित्थाणकरणसुद्ध मधुरं सम सुललियं सकुहरगुंजत-वस-ततीसुपउत्त तालसुसपउत्त लयसुसंपउत्त गहसुसपउत्त मणोहर मउयरिभियपयसंचारं सुरइ सुणइ वरचारु रूव दिव्वं गेय पगीयाणं, भवे एयारूवे सिया ?

हंता गोयमा ! एवभूए सिया ।

[१२६] (९) हे भगवन् ! उन तृणो और मणियो के पूर्व-पश्चिम-दक्षिण-उत्तरदिशा से आगत वायु द्वारा मद-मद कम्पित होने से, विशेषरूप से कम्पित होने से, वार-वार कपित होने से, क्षोभित, चालित और स्पदित होने से तथा प्रेरित किये जाने पर कैसा शब्द होता है ? जैसे शिविका (ऊपर से आच्छादित कोष्ठाकार पालखी विशेष), स्यन्दमानिका (वडी पालखी—पुरुष प्रमाण जम्पान विशेष) और सग्राम रथ (जिसकी फलकवेदिका पुरुष की कटि-प्रमाण होती है) जो छत्र सहित है, ध्वजा सहित है, दोनो तरफ लटकते हुए वडे-वडे घटो से युक्त है, जो श्रेष्ठ तोरण से युक्त है, नन्दिघोष (वारह प्रकार के वाद्यो के शब्द) से युक्त है, जो छोटी-छोटी घटियो (घुघरुओं) से युक्त, स्वर्ण की माला-समूहो से सव ओर से व्याप्त है, जो हिमवन् पर्वत के चित्र-विचित्र मनोहर चित्रो से युक्त तिनिश की लकडी से वना हुआ, सोने से खचित (मढा हुआ) है, जिसके आरे बहुत ही अच्छी तरह लगे हुए हो तथा जिसकी धुरा मजवूत हो, जिसके पहियो पर लोह की पट्टी चढाई गई हो, आकीर्ण—गुणो से युक्त श्रेष्ठ घोडे जिसमे जुते हुए हो, कुशल एव दक्ष सारथी से युक्त हो, प्रत्येक मे सौ-सौ बाण वाले वत्तीस तूणीर जिसमे सव ओर लगे हुए हो,कवच जिसका मुकुट हो, धनुष सहित बाण और भाले आदि विविध शस्त्रो तथा उनके आवरणो से जो परिपूर्ण हो तथा योद्धाओ के युद्ध निमित्त जो सजाया गया हो, (ऐसा सग्राम रथ) जव राजागण मे या अन्त पुर मे या मणियो से जडे हुए भूमितल मे वार-वार वेग से चलता हो, आता-जाता हो, तव जो उदार, मनोज्ञ और कान एव मन को तृप्त करने वाले चौतरफा शब्द निकलते है, क्या उन तृणो और मणियो का ऐसा शब्द होता है ?

हे गौतम ! यह अर्थ यथार्थ नही है ।

भगवन् ! जैसे ताल के अभाव मे भी वजायी जाने वाली वैतालिका (मंगलपाठिका) वीणा जब (गान्धार स्वर के अन्तर्गत) उत्तरामदा नामक मूर्छना से युक्त होती है, बजाने वाले व्यक्ति की गोद मे भलीभाति विधिपूर्वक रखी हुई होती है, चन्दन के सार से निर्मित कोण (वादनदण्ड) से घर्षित की जाती है, वजाने मे कुशल नर-नारी द्वारा सप्रग्रहीत हो (ऐसी वीणा को) प्रात काल और सन्ध्याकाल के समय मन्द-मन्द और विशेषरूप से कम्पित करने पर, वजाने पर क्षोभित, चालित और स्पदित, घर्षित और उदीरित (प्रेरित) करने पर जैसा उदार, मनोज्ञ, कान और मन को तृप्ति करने वाला शब्द चौतरफा निकलता है, क्या ऐसा उन तृणो और मणियो का शब्द है ?

गौतम ! यह अर्थ समर्थ नही है ।

भगवन् ! जैसे किनर, किंपुरुष, महोरग और गन्धर्व—जो भद्रशालवन, नन्दनवन, सोमनसवन और पडकवन मे स्थित हो, जो हिमवान् पर्वत, मलयपर्वत या मेरुपर्वत की गुफा मे वैठे हो, एक स्थान पर एकत्रित हुए हो, एक दूसरे के सन्मुख वैठे हो, परस्पर रगड़ से रहित सुखपूर्वक आसीन हो, समस्थान पर स्थित हो, जो प्रमुदित और क्रीडा मे मग्न हो, गीत मे जिनकी रति हो और गन्धर्व नाट्य आदि करने से जिनका मन हर्षित हो रहा हो, उन गन्धर्वादि के गद्य, पद्य, कथ्य, पदवद्ध (एकाक्षरादिरूप), पादवद्ध (श्लोक का चतुर्भाग), उत्क्षिप्त (प्रथम आरम्भ किया हुआ), प्रवर्तक (प्रथम आरम्भ से ऊपर आक्षेप पूर्वक होने वाला), मदाक (मध्यभाग मे मन्द-मन्द रूप से स्वरित) इन आठ प्रकार के गेय को, रुचिकर अन्त वाले गेय को, सात स्वरो से युक्त गेय को, आठ रसो से युक्त गेय को, छह दोषो से रहित, ग्यारह अलकारो से युक्त, आठ गुणो से युक्त वांसुरी की सुरीली आवाज से गाये गये गेय को, राग से अनुरक्त, उर-कण्ठ-शिर ऐसे त्रिस्थान शुद्ध गेय को, मधुर, सम, सुललित, एक तरफ वांसुरी और दूसरी तरफ तन्त्री (वीणा) वजाने पर दोनो मे मेल के साथ गाया गया गेय, तालसप्रयुक्त, लयसप्रयुक्त, ग्रहसप्रयुक्त (वासुरी तन्त्री आदि के पूर्वगृहीतस्वर के अनुसार गाया जाने वाला), मनोहर, मृदु और रिभित (तन्त्री आदि के स्वर से मेल खाते हुए) पद सचार वाले, श्रोताओ को आनन्द देने वाले, अगो के सुन्दर झुकाव वाले, श्रेष्ठ सुन्दर ऐसे दिव्य गीतो के गाने वाले उन किन्नर आदि के मुख से जो शब्द निकलते हैं, वैसे उन तृणो और मणियो का शब्द होता है क्या ?

हा गौतम ! उन तृणो और मणियो के कम्पन से होने वाला शब्द इस प्रकार का होता है ।

विवेचन—उस वनखण्ड के भूमिभाग मे जो तृण और मणिया हैं, उनके वायु द्वारा कम्पित और प्रेरित होने पर जैसा मधुर स्वर निकलता है उसका वर्णन इस सूत्रखण्ड मे किया गया है । श्री गौतम स्वामी ने उस स्वर की उपमा के लिए तीन उपमानो का उल्लेख किया है । पहला उपमान है—कोई पालखी (शिविका या जम्पान) या सग्राम रथ जिसमे विविध प्रकार के शस्त्रास्त्र सजे हुए हैं, जिसके चक्रो पर लोहे की पट्टिया जडी हुई हो, जो श्रेष्ठ घोड़ो और सारथी से युक्त हो, जो छत्र-ध्वजा से युक्त हो, जो दोनो ओर वडे-वडे घन्टो से युक्त हो, जिसमे नन्दिघोष (वारह प्रकार के वाद्यो का निनाद) हो रहा हो—ऐसा रथ या पालखी जव राजागण मे, अन्त पुर मे या मणियो से जड़े हुए आगन मे वेग मे चलता है तव जो शब्द होता है क्या वैसा शब्द उन तृणो और मणियो का है ? भगवान् ने कहा—नही । इससे भी अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर वह शब्द होता है ।

इसके पश्चात् श्री गौतमस्वामी ने दूसरे उपमान का उल्लेख किया । वह इस प्रकार है—हे भगवन् ! प्रातःकाल अथवा सन्ध्या के समय वैतालिका (मगलपाठिका) वीणा (जो ताल के अभाव मे भी वजाई जाती है—जव गान्धार स्वर की उत्तरमन्दा नाम की सप्तमी मूर्छना से युक्त होती है, जव उस वीणा का कुशलवादक उस वीणा को अपनी गोद मे अच्छे ढंग से स्थापित कर चन्दन के सार मे निर्मित वादन-दण्ड से वजाता है तव उस वीणा से जो कान और मन को तृप्त करने वाला शब्द निकलता है क्या वैसा उन तृणो मणियो का शब्द है ?

गान्धार स्वर की सात मूर्छनाएँ होती है—
नदी य खुड्डिमा पूरिमा या चोत्थी असुद्धगन्धारा ।
उत्तरगन्धारा वि हवइ सा पंचमी मुच्छा ॥१॥

सुहुमुत्तर आयामा छट्ठी सा नियमसो उ बोद्धव्वा ।।२।।

नन्दी, क्षुद्रा, पूर्णा, शुद्धगान्धारा, उत्तरगान्धारा, सूक्ष्मोत्तर-आयामा और उत्तरमन्दा—ये सात मूर्छनाएँ हैं। ये मूर्छनाएँ इसलिए सार्थक हैं कि ये गाने वाले को और सुनने वाले को अन्य-अन्य स्वरो से विशिष्ट होकर मूर्छित जैसा कर देती हैं। कहा है—

अन्नन्नसरविसेस उप्पायतस्स मुच्छणा भणिया।
कत्ता वि मुच्छिओ इव कुणए मुच्छव सो वेति ।।

गान्धारस्वर के अन्तर्गत मूर्च्छनाओ के बीच मे उत्तरमन्दा नाम की मूर्छना जब अति प्रकर्ष को प्राप्त हो जाती है तब वह श्रोताजनो को मूर्छित-सा बना देती है। इतना ही नही किन्तु स्वरविशेषो को करता हुआ गायक भी मूर्छित के समान हो जाता है।

ऐसी उत्तरमन्दा मूर्छना से युक्त वीणा का जैसा शब्द निकलता है क्या वैसा शब्द उन तृणो और मणियो का है ? ऐसा श्री गौतमस्वामी के कहने पर भगवान् कहते हैं—नही इस स्वर से भी अधिक इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मनोहर उन तृणो और मणियो का शब्द होता है।

पुन श्री गौतमस्वामी तीसरा उपमान कहते है—भगवन् ! जैसा किन्नरो, किंपुरुषो, महोरगो या गन्धर्वो का, जो भद्रशालवन, नन्दनवन, सोमनसवन, पण्डकवन मे स्थित हो अथवा हिमवान्पर्वत या मलयपर्वत या मन्दरपर्वत की गुफा मे बैठे हों, एक स्थान पर एकत्रित हुए हो, एक दूसरे के समक्ष बैठे हुए हो, इस ढग से बैठे हो कि किसी को दूसरे की रगड से बाधा न हो, स्वय को भी किसी अपने ही अग से बाधा न पहूँच रही हो, हर्ष जिनके शरीर पर खेल रहा हो, जो आनन्द के साथ क्रीडा करने मे रत हो, गीत मे जिनकी रति हो, नाट्यादि द्वारा जिनका मन हर्षित हो रहा हो—(ऐसे गन्धर्वों का) आठ प्रकार के गेय से तथा आगे उल्लिखित गेय के गुणो से सहित और दोषो से रहित ताल एव लय से युक्त गीतो के गाने से जो स्वर निकलता है क्या वैसा उन तृण और मणियो का शब्द होता है ?

गेय आठ प्रकार के हैं—१ गद्य—जो स्वर सचार से गाया जाता है, २ पद्य—जो छन्दादिरूप हो, ३ कथ्य—कथात्मक गीत, ४ पदवद्ध—जो एकाक्षरादि रूप हो यथा-'ते', ५ पादबद्ध—श्लोक का चतुर्थ भाग रूप हो, ६ उत्क्षिप्त-जो पहले आरम्भ किया हुआ हो, ७ प्रवर्तक—प्रथम आरम्भ से ऊपर आक्षेपपूर्वक होने वाला, ८ मन्दाक—मध्यभाग मे सकल मूर्च्छनादि गुणोपेत तथा मन्द-मन्द स्वर से सचरित हो।

वह आठ प्रकार का गेय **रोचितावसान** वाला हो, अर्थात् जिस गीत का अन्त रुचिकर ढग से शनै शनै होता हो तथा जो **सप्तस्वरों से युक्त** हो। गेय के सात स्वर इस प्रकार हैं—

सज्जे रिसह गन्धारे मज्झिमे पचमे सरे।
धेवए चेव नेसाए सरा सत्त वियाहिया ।।

षड्ज, ऋषभ, गन्धार, मध्यम, पचम, धैवत और नैषाद, ये सात स्वर हैं। ये सात स्वर पुरुष के या स्त्री के नाभिदेश से निकलते हैं, जैसा कि कहा है—'सप्तसरा नाभिओ'।

अष्टरस-संप्रयुक्त—वह गेय शृगार आदि आठ रसो से युक्त हो।

षड्दोष-विप्रयुक्त—वह गेय छह दोषो से रहित हो। वे छह दोष इस प्रकार हैं—

भीय दुयमुप्पित्थमुत्ताल च कमसो मुणेयव्व ।
कागस्सरमणुनास छद्दोसा होंति गेयस्स ।।

भीत, द्रुत, उप्पिच्छ, (आकुलतायुक्त), उत्ताल, काकस्वर और अनुनास (नाक मे गाना), ये गेय के छह दोष हैं।

एकादशगुणालंकार—पूर्वो के अन्तर्गत स्वरप्राभृत मे गेय के ग्यारह गुणो का विस्तार से वर्णन है। वर्तमान मे पूर्व विच्छिन्न हैं अतएव आशिक रूप मे पूर्वो से विनिर्गत जो भरत, विशाखिल आदि गेय शास्त्र हैं—उनसे इनका ज्ञान करना चाहिए।

अष्टगुणोपेत—गेय के आठ गुण इस प्रकार हैं—

पुण्ण रत्त च अलकिय च वत्त तहेव अविघुट्ट।
महुर सम सुललिय अट्ठगुणा होंति गेयस्स॥

१ पूर्ण—जो स्वर कलाओ से परिपूर्ण हो, २ रक्त—राग से अनुरक्त होकर जो गाया जाय, ३ अलकृत—परस्पर विशेषरूप स्वर से जो गाया जाय, ४ व्यक्त—जिसमे अक्षर और स्वर स्पष्ट रूप से गाये जायें, ५ अविघुष्ट—जो विस्वर और आक्रोश युक्त न हो, ६ मधुर—जो मधुर स्वर से गाया जाय, ७ सम—जो ताल, वंश, स्वर आदि से मेल खाता हुआ गाया जाय, ८ सुललित—जो श्रेष्ठ घोलना प्रकार से श्रोत्रेन्द्रिय को सुखद लगे, इस प्रकार गाया जाय। ये गेय के आठ गुण हैं।

गुजंत वंशकुहरम्—जो वासुरी मे तीन सुरीली आवाज से गाया गया हो, ऐसा गेय।

रत्तं—राग से अनुरक्त गेय।

त्रिस्थानकरणशुद्ध—जो गेय उर, कठ और सिर इन तीन स्थानो से शुद्ध हो। अर्थात् उर और कठ श्लेष्मवर्जित हो और सिर अव्याकुलित हो। इस तरह गाया गया गेय त्रिस्थानकरणशुद्ध होता है।

सकुहरगुजंतवंसतंतीसुसंपउत्तं—जिस गान मे एक तरफ तो बासुरी बजाई जा रहा हो और दूसरी ओर तत्री (वीणा) बजाई जा रही हो, इनके स्वर से जो गान अविरुद्ध हो अर्थात् इनके स्वरो से मिलता हुआ गाया जा रहा हो।

तालसुसंप्रयुक्त—हाथ की तालियो से मेल खाता हुआ गाया जा रहा हो।

तालसम लयसप्रयुक्त ग्रहसुसंप्रयुक्त—ताल, लय तथा वीणादि के स्वर से मेल खाता हुआ गाया जाने वाला गेय।

मणोहर—मन को हरने वाला गेय।

मृदुरिभितपदसंचार—मृदु स्वर से युक्त, तत्री आदि से ग्रहण किये गये स्वर से युक्त पद-सचार वाला गेय।

सुरइ—श्रोताओ को आनन्द देने वाला गेय।
सुनति—अगो के सुन्दर हावभाव से युक्त गेय।
वरचारुरूप—विशिष्ट सुन्दर रूप वाला गेय।

उक्त विशेषणो से युक्त गेय को जब पूर्वोक्त व्यन्तर, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व प्रमुदित होकर गाते हैं तब उनसे जो शब्द निकलता है, ऐसा मनोहर शब्द उन तृणो और मणियो का है क्या? ऐसा श्री गौतमस्वामी ने प्रश्न किया। इसके उत्तर मे भगवान् ने फरमाया कि हाँ—गौतम! उन तृणो और मणियो का इतना सुन्दर शब्द होता है।

सूत्र मे आये हुए भद्रशाल आदि वनो का स्पष्टीकरण इस प्रकार है। भद्रशाल आदि चार वन सुमेरु पर्वत पर हैं। इनमे भद्रशालवन मेरु पर्वत की नीचे की भूमि पर है, नन्दनवन मेरु की प्रथम मेखला पर है, दूसरी मेखला पर सौमनसवन है और चूलिका के पार्श्वभाग मे चारो तरफ पण्डकवन है। महाहिमवान् हेमवत क्षेत्र की उत्तर दिशा मे है। यह उसकी सीमा करने वाला होने से वर्षधर पर्वत कहलाता है।

वनखण्ड की वावडियों आदि का वर्णन

१२७ (१) तस्स णं वणसडस्स तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे खुड्डा खुड्डियाओ वावीओ पुक्खरिणीओ गुंजालियाओ दीहियाओ सराओ सरपतियाओ सरसरपंतीओ बिलपंतीओ अच्छाओ सण्हाओ रययामयकूलाओ समतीराओ वइरामयपासाणाओ, तवणिज्जमयतलाओ वेरुलियमणि-फालियपडल पच्चोयडाओ णवणीयतलाओ सुवण्ण-सुज्झरयय-मणिवालुयाओ सुहोयाराओ सुउत्ताराओ, णाणामणितित्थसुबद्धाओ चउक्कोणाओ समतीराओ, आणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजलाओ संछन्न-पत्तभिसमुणालाओ बहुउप्पल-कुमुय-णलिण-सुभग-सोगंधिय-पोंडरीय-सयपत्त-सहस्सपत्तफुल्लकेसरो-वइयाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलाओ अच्छविमलसलिलपुण्णाओ परिहत्थ भमंतमच्छकच्छभ अणेगसउणमिहुणपरिचरियाओ पत्तेय पत्तेय वणसडपरिक्खित्ताओ अप्पेगइयाओ आसवोदाओ अप्पेगइयाओ वारुणोदाओ अप्पेगइयाओ खीरोदाओ अप्पेगइयाओ घओदाओ अप्पेगइयाओ खोदोदाओ अप्पेगइयाओ अमयरससमरसोदाओ, अप्पेगइयाओ पगइएउदग (अमय) रसेण पण्णत्ताओ, पासाइयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ।

[१२७] (१) उस वनखण्ड के मध्य मे उस-उस भाग मे उस उस स्थान पर बहुत-सी छोटी-छोटी चौकोनी वावडियां हैं, गोल-गोल अथवा कमल वाली पुष्करिणियाँ हैं, जगह-जगह नहरो वाली दीर्घिकाएँ हैं, टेढीमेढी गुंजालिकाएँ हैं, जगह-जगह सरोवर है, सरोवरो की पंक्तिया हैं, अनेक सरसर पंक्तिया (जिन तालावो मे कुए का पानी नालियो द्वारा लाया जाता है) और बहुत से कुओ की पंक्तियाँ हैं। वे स्वच्छ हैं, मृदु पुद्गलो से निर्मित है। इनके तीर सम हैं, इनके किनारे चादी के बने हैं, किनारे पर लगे पाषाण वज्रमय है। इनका तलभाग तपनीय (स्वर्ण) का बना हुआ है। इनके तटवर्ती अति उन्नत प्रदेश वैडूर्यमणि एव स्फटिक के बने हैं। मक्खन के समान इनके सुकोमल तल हैं। स्वर्ण और[1] शुद्ध चादी की रेत है। ये सब जलाशय सुखपूर्वक प्रवेश और निष्क्रमण योग्य हैं। नाना प्रकार की मणियो से इनके घाट मजबूत बने हुए हैं। कुए और वावडिया चौकोन हैं। इनका वप्र—जलस्थान क्रमश नीचे-नीचे गहरा होता है और उनका जल अगाध और शीतल है। इनमे जो पद्मिनी के पत्र, कन्द और पद्मनाल हैं वे जल से ढके हुए है। उनमे बहुत से उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र फूले रहते हैं और पराग से सम्पन्न हैं, ये सब कमल भ्रमरो से परिभुज्य-मान हैं अर्थात् भवरे उनका रसपान करते रहते हैं। ये सब जलाशय स्वच्छ और निर्मल जल से परिपूर्ण हैं। परिहत्थ[2] (बहुत से) मत्स्य और कच्छप इधर-उधर घूमते रहते हैं, अनेक पक्षियो के

---

१ वृत्ति के अनुसार 'सुज्झ' का अर्थ रजतविशेष है।

२. 'परिहत्थ' अर्थात् बहुत सारे।

जोडे भी इधर-उधर भ्रमण करते रहते है। इन जलाशयो मे से प्रत्येक जलाशय वनखण्ड से चारो ओर से घिरा हुआ है और प्रत्येक जलाशय पद्मवरवेदिका से युक्त है। इन जलाशयो मे से कितनेक का पानी आसव जैसे स्वाद वाला है, किन्ही का वारुणसमुद्र के जल जैसा है, किन्ही का जल दूध जैसे स्वाद वाला है, किन्ही का जल घी जैसे स्वाद वाला है, किन्ही का जल इक्षुरस जैसा है, किन्ही के जल का स्वाद अमृतरस जैसा है और किन्ही का जल स्वभावत उदकरस जैसा है। ये सब जलाशय प्रसन्नता पैदा करने वाले है, दर्शनीय है, अभिरूप हैं और प्रतिरूप हैं।

१२७. (२) तासि णं खुड्डियाणं वावीण जाव बिलपंतियाणं तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं जाव वहवे तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता। तेसि ण तिसोवाणपडिरूवगाण अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—वइरामया नेमा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियमया खंभा सुवण्णरुप्पमया फलगा वइरामया संधी लोहितक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया अवलंवणा अवलंवणवाहाओ।

तेसि णं तिसोपाणपडिरूवगाण पुरओ पत्तेयं तोरणा पण्णत्ता। ते णं तोरणा णाणामणिमयखंभेसु उवणिविट्ठसण्णिविट्ठा विविहमुत्तंतरोवइया विविहतारारूवोवचिया ईहामिय-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्ता खंभुग्गयवइरवेइयापरिगता-भिरामा विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्ताविव अच्चिसहस्समालणीया भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोयणलेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाइया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तेसि णं तोरणाणं उप्पिं वहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता, सोत्थिय-सिरिवच्छ-णंदियावत्त-वद्धमाण-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा।

तेसि णं तोरणाण उप्पिं किण्हचामरज्झया नीलचामरज्झया लोहियचामरज्झया हारिद्द-चामरज्झया सुक्किलचामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपडा वइरदंडा जलयामलगंधीया सुरूवा पासाइया जाव पडिरूवा।

तेसि णं तोरणाणं उप्पिं वहवे छत्ताइछत्ता। पडागाइपडागा घंटाजुयला चामरजुयला उप्पलहत्थया जाव सयसहस्सपत्तहत्थगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

[१२७] (२) उन छोटी वावडियो यावत् कूपो मे यहाँ वहाँ उन-उन भागो मे वहुत से विशिष्ट स्वरूप वाले त्रिसोपान कहे गये है। उन विशिष्ट त्रिसोपानो का वर्णन इस प्रकार है—वज्रमय उनकी नीव है, रिष्टरत्नो के उसके पाये हैं, वैडूर्यरत्न के स्तम्भ है, सोने और चादी के पटिये हैं, वज्रमय उनकी सधिया हैं, लोहिताक्ष रत्नो की सूइया (कीलें) है, नाना मणियो के अवलम्वन हैं (उतरने चढने के लिए आजू-वाजू मे लगे हुए दण्ड-समान आधार, जिन्हे पकडकर चढना-उतरना होता है), नाना मणियो की वनी हुई आलम्वन वाहा हैं (अवलम्वन जिनके सहारे पर रहता है वे दोनो ओर के भीत समान स्थान)

उन विशिष्ट त्रिसोपानो के आगे प्रत्येक के तोरण कहे गये हैं। उन तोरणो का वर्णन इस प्रकार है—वे तोरण नाना प्रकार की मणियो के वने हुए है। वे तोरण नाना मणियो से वने हुए स्तभो पर स्थापित हैं, निश्चलरूप से रखे हुए हैं, अनेक प्रकार की रचनाओ से युक्त मोती उनके वीच-वीच मे लगे हुए है, नाना प्रकार के ताराओ से वे तोरण उपचित (सुशोभित) है। उन तोरणो

मे ईहामृग (वृक), वैल, घोडा, मनुष्य, मगर, पक्षी, व्याल (सर्प), किन्नर, रुरु (मृग), सरभ (अष्टापद), हाथी, वनलता और पद्मलता के चित्र वने हुए हैं। इन तोरणो के स्तम्भो पर वज्रमयी वेदिकाएँ है, इस कारण ये तोरण वहुत ही सुन्दर लगते हैं। समश्रेणी विद्याधरो के युगलो के यन्त्रो (शक्तिविशेष) के प्रभाव से ये तोरण हजारो किरणो से प्रभासित हो रहे हैं। (ये तोरण इतने अधिक प्रभासमुदाय से युक्त है कि इन्हे देखकर ऐसा भासित होता है कि ये स्वभावत नही किन्तु किन्ही विशिष्ट विद्याशक्ति के धारको के यान्त्रिक प्रभाव के कारण इतने अधिक प्रभासित हो रहे है) ये तोरण हजारो रूपको से युक्त हैं, दीप्यमान हैं, विशेष दीप्यमान है, देखने वालो के नेत्र उन्ही पर टिक जाते हैं। उन तोरणो का स्पर्श वहुत ही शुभ है, उनका रूप वहुत ही शोभायुक्त लगता है। वे तोरण प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है।

उन तोरणो के ऊपर वहुत से आठ-आठ मगल कहे गये है—१ स्वस्तिक, २ श्रीवत्स, ३ नदिकावर्त, ४ वर्धमान, ५ भद्रासन, ६ कलश, ७ मत्स्य और ८ दर्पण। ये सब आठ मगल सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, सूक्ष्म पुद्गलो से निर्मित है, प्रासादिक हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणो के ऊर्ध्वभाग मे अनेको कृष्ण कान्तिवाले चामरो से युक्त ध्वजाएँ है, नील वर्ण वाले चामरो से युक्त ध्वजाएँ है, लाल वर्ण वाले चामरो से युक्त ध्वजाएँ हैं, पीले वर्ण के चामरो से युक्त ध्वजाएँ है और सफेद वर्ण के चामरो से युक्त ध्वजाएँ हैं। ये सब ध्वजाएँ स्वच्छ हैं, मृदु है, वज्रदण्ड के ऊपर का पट्ट चाँदी का है, इन ध्वजाओ के दण्ड वज्ररत्न के हैं, इनकी गन्ध कमल के समान है, अतएव ये सुरम्य है, सुन्दर हैं, प्रासादिक हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप है एव प्रतिरूप हैं।

इन तोरणो के ऊपर एक छत्र के ऊपर दूसरा छत्र, दूसरे पर तीसरा छत्र—इस तरह अनेक छत्र हैं, एक पताका पर दूसरी पताका, दूसरी पर तीसरी पताका—इस तरह अनेक पताकाएँ हैं। इन तोरणो पर अनेक घटायुगल हैं, अनेक चामरयुगल हैं और अनेक उत्पलहस्तक (कमलो के समूह) हैं यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमलो के समूह है। ये सर्वरत्नमय है, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप (बहुत सुन्दर) हैं।

१२७. (३) तासि णं खुड्डियाणं वावीण जाव बिलपंतियाण तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे उप्पायपव्वया णियइपव्वया जगतिपव्वया दारुपव्वयगा दगमडवगा दगमंचका दगमालका दगपासायगा ऊसढा खुल्ला खडहडगा अंदोलगा पक्खंदोलगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसु णं उप्पायपव्वएसु जाव पक्खंदोलएसु बहवे हंसासणाइं कोंचासणाइं गरुलासणाइं उण्णयासणाइं पणयासणाइं दीहासणाइं भद्दासणाइं पक्खासणाइं मगरासणाइं उसभासणाइं सीहासणाइं पउमासणाइं दिसासोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं सण्हाइं लण्हाइं घट्ठाइं मट्ठाइं णीरयाइं णिम्मलाइं निप्पंकाइं निक्ककडच्छायाइं सप्पभाइं समिरीयाइं, सउज्जोयाइं पासादीयाइं दरिसणिज्जाइं अभिरूवाइं पडिरूवाइं।

[१२७] (३) उन छोटी वावड़ियो यावत् कूपपक्तियो मे उन-उन स्थानो मे उन-उन भागो मे वहुत से उत्पातपर्वत है, (जहाँ व्यन्तर देव-देवियां आकर क्रीडानिमित्त उत्तरवैक्रिय की रचना करते हैं), वहुत से नियतिपर्वत हैं (जो वानव्यतर देव-देवियो के नियतरूप से भोगने मे आते हैं) जगतीपर्वत हैं, दारुपर्वत हैं (जो लकड़ी के वने हुए जैसे लगते हैं), स्फटिक के मण्डप हैं, स्फटिकरत्न

के मच हैं, स्फटिक के माले है, स्फटिक के महल है जो कोई तो ऊचे हैं, कोई छोटे हैं, कितनेक छोटे किन्तु लवे हैं, वहाँ वहुत से आदोलक (झूले) हैं, पक्षियो के आन्दोलक (झूले) हैं। ये सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, यावत् प्रतिरूप हैं।

उन उत्पातपर्वतो मे यावत् पक्षियो के आन्दोलको (झूलो) मे वहुत से हसासन (जिस आसन के नीचे भाग मे हस का चित्र हो), क्रौचासन, गरुडासन, उन्नतासन, प्रणतासन, दीर्घासन, भद्रासन, पक्ष्यासन, मकरासन, वृषभासन, सिंहासन, पद्मासन और दिशास्वस्तिकासन हैं। ये सव सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, मृदु हैं, स्निग्ध हैं, घृष्ट हैं, मृष्ट हैं, नीरज हैं, निर्मल हैं, निष्पक हैं, अप्रतिहत कान्ति वाले हैं, प्रभामय हैं, किरणो वाले हैं, उद्योत वाले हैं, प्रासादिक हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं और प्रतिरूप हैं।

१२७ (४) तस्स णं वणसडस्स तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं वहवे आलिघरा मालिघरा कयलिघरा लयागरा अच्छणघरा पेच्छणघरा मज्जणघरगा पसाहणघरगा गब्भघरगा मोहणघरगा सालघरगा जालघरगा कुसुमघरगा चित्तघरगा गंधव्वघरगा आयसघरगा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा।

तेसु णं आलिघरएसु जाव आयंसघरएसु वहूइं हसासणाइ जाव दिसासोवत्थियासणाइं सव्वरयणामयाइ जाव पडिरूवाइं।

तस्स णं वणसडस्स तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं वहवे जाइमंडवगा जूहियामंडवगा मल्लिया-मंडवगा णवमालियामंडवगा वासंतीमडवगा दधिवासुयामडवगा सूरिल्लिमडवगा, तंवोलीमंडवगा मुद्दियामडवगा णागलयामंडवगा अतिमुत्तमंडवगा अप्फोयामंडवगा मालुयामडवगा सामलयामडवगा णिच्चं कुसुमिया जाय पडिरूवा।

तेसु णं जातिमडवएसु (जाव सामलयामंडवसु) वहवे पुढविसिलापट्टगा पण्णत्ता, तं जहा—हंसासणसंठिया कोचासणसठिया गरुलासणसंठिया उण्णयासणसंठिया पणयासणसठिया दीहासणसंठिया भद्दासणसंठिया पक्खासणसठिया मगरासणसंठिया उसभासणसंठिया, सीहासणसठिया पउमासणसंठिया दिसासोत्थियासणसठिया पण्णत्ता। तत्थ बहवे वरसयणासणविसिट्ठसंठाणसंठिया पण्णत्ता समणाउसो! आइण्णग-रूय-वूर-णवणीय-तूलफासा मउया सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तत्थ ण बहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयति सयति चिट्ठंति णिसीदति तुयट्टंति रमति ललति कीलति मोहति पुरापोराणाण सुचिण्णाणं सुपरिक्कताणं सुभाण कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं फलवित्तिविसेस पच्चणुब्भवमाणा विहरंति।

[१२७] (४) उस वनखण्ड के उन-उन स्थानो और भागो मे वहुत से आलिघर (आली नामक वनस्पतिप्रधान घर) है, मालिघर (माली नामक वनस्पतिप्रधान घर) हैं, कदलीघर हैं, लताघर हैं, ठहरने के घर (धर्मशालावत्) हैं, नाटकघर है, स्नानघर, प्रसाधन (शृंगारघर, गर्भगृह (भौयरा), मोहनघर (वासभवन—रतिक्रीडार्थ घर) हैं, शालागृह (पट्टशाला), जालिप्रधानगृह, फूल-प्रधानगृह, चित्रप्रधानगृह, गन्धर्वगृह (गीत-नृत्य के अभ्यास योग्य घर) और आदर्शघर (काच-प्रधान गृह) हैं। ये सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् बहुत सुन्दर हैं।

उन आलिघरो यावत् आदर्शघरो मे बहुत से हसासन यावत् दिशास्वस्तिकासन रखे हुए है, जो सर्वरत्नमय हैं यावत् सुन्दर है ।

उस वनखण्ड के उन उन स्थानो और भागो मे वहुत से जाई (चमेली के फूलो से लदे हुए मण्डप (कुज) हैं, जूही के मण्डप है, मल्लिका के मण्डप है, नवमालिका के मण्डप हैं, वासन्तीलता के मण्डप हैं, दधिवासुका नामक वनस्पति के मण्डप है, सूरिल्ली-वनस्पति के मण्डप हैं, ताबूली—नागवल्ली के मण्डप हैं, मुद्रिका-द्राक्षा के मण्डप हैं, नागलतामण्डप, अतिमुक्तकमण्डप, अप्फोया-वनस्पति विशेप के मण्डप, मालुकामण्डप (एक गुठली वाले फलो के वृक्ष) और श्यामलतामण्डप हैं ।[1] ये नित्य कुसुमित रहते हैं, मुकुलित रहते है, पल्लवित रहते हैं यावत् ये सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप हैं ।

उन जाइमण्डपादि यावत् श्यामलतामण्डपो मे बहुत से पृथ्वीशिलापट्टक है, जिनमे से कोई हसासन के समान है (हसामन की आकृति वाले हैं), कोई क्रौंचासन के समान हैं, कोई गरुडासन की आकृति के है, कोई उन्नतासन के समान है, कितनेक प्रणतासन के समान हैं, कितनेक भद्रासन के समान, कितनेक दीर्घासन के समान, कितनेक पक्ष्यासन, के समान हैं, कितनेक मकरासन, वृपभासन, सिंहासन, पद्मासन के समान हैं और कितनेक दिशा-स्वस्तिकासन के समान हैं । हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ पर अनेक पृथ्वीशिलापट्टक जितने विशिष्ट चिह्न और नाम हैं तथा जितने प्रधान शयन और आसन हैं—उनके समान आकृति वाले हैं ।[2] उनका स्पर्श आजिनक (मृगचर्म), रुई, वूर वनस्पति, मक्खन तथा हमतूल के समान मुलायम है, मृदु है । वे सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ है, यावत् प्रतिरूप (सुन्दर) है ।

वहाँ वहुत से वानव्यन्तर देव और देविया सुखपूर्वक विश्राम करती है, लेटती हैं, खडी रहती हैं, बैठती हैं, करवट वदलती है, रमण करती हैं, इच्छानुसार आचरण करती है, क्रीडा करती हैं, रतिक्रीडा करती है । इस प्रकार वे वानव्यन्तर देविया और देव पूर्व भव मे किये हुए धर्मानुष्ठानो का, तपश्चरणादि शुभ पराक्रमो का अच्छे और कल्याणकारी कर्मों के फलविपाक का अनुभव करते हुए विचरते हैं ।

१२६. (५) तीसे णं जगतीए उप्पि अंतो पउमवरवेइयाए एत्थ णं एगे मह वणसंडे पण्णत्ते, देसूणाइं दो जोयणाइं विक्खभेणं वेदिया समएण परिक्खेवेण किण्हे किण्होभासे वणसडवण्णओ तण-माणिसद्दविहूणो णेयव्वो ।

तत्थ ण वहवे वाणमंतरा देवा देवीओ य आसयति सयति चिट्ठति णिसीयति तुयट्टंति रमति ललंति कीडति मोहंति पुरा पोराणाण सुचिण्णाण सुपरिक्कताण सुभाणं कडाणं कम्माणं कल्लाण फलवित्तिविसेस पच्चणुब्भवमाणा विहरति ।

उस जगती के ऊपर और पद्मवरवेदिका के अन्दर के भाग मे एक वडा वनखड कहा गया है, जो कुछ कम दो योजन विस्तारवाला वेदिका के परिक्षेप के समान परिधि वाला है । जो काला और

---

१ वृति मे 'सामलयामडवा' पाठ नही है ।

२ क्वचित् 'मामलसुघुदुविसिट्ठसठाणसठिया' पाठ भी है । वे शिलापट्टक मासल है—कठोर नही हैं, अत्यन्त स्निग्ध है और विशिप्ट आकृति वाले है ।

काली कान्ति वाला है इत्यादि पूर्वोक्त वनखण्ड का वर्णन यहाँ कह लेना चाहिए। केवल यहाँ तृणो और मणियो के शब्द का वर्णन नही कहना चाहिए (क्योकि यहाँ पद्मवरवेदिका का व्यवधान होने से तथाविध वायु का आघात न होने से शब्द नही होता है)।

यहाँ बहुत से वानव्यन्तर देविया और देव स्थित होते हैं, लेटते है, खडे रहते हैं, बैठते हैं, करवट बदलते हैं, रमण करते हैं, इच्छानुसार क्रियाएँ करते हैं, क्रीडा करते है, रतिक्रीडा करते है और अपने पूर्वभव मे किये गये पुराने अच्छे धर्माचरणो का, सुपराक्रान्त तप आदि का और शुभ पुण्यो का, किये गये शुभकर्मो का कल्याणकारी फल-विपाक का अनुभव करते हुए विचरण करते हैं।

विवेचन—पूर्व मे पद्मवरवेदिका के बाहर के वनखण्ड का वर्णन किया गया था। इस सूत्र मे पद्मवरवेदिका के पहले और जगती के ऊपर जो वनखण्ड है उसका उल्लेख किया गया है।

जंबूद्वीप के द्वारो की संख्या

१२८ जंबुद्दीवस्स णं भंते! दीवस्स कति दारा पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि दारा पण्णत्ता, त जहा—विजए, वेजयते, जयते अपराजिए।

[१२८] हे भगवन्! जबूद्वीप नामक द्वीप के कितने द्वार हैं?
गौतम! जबूद्वीप के चार द्वार हैं, यथा—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित।

१२९. (१) कहि णं भंते! जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजए णाम दारे पण्णत्ते?

गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पणयालीस जोयणसहस्साइं अबाहाए जबुद्दीवे दीवे पुरच्छिमपेरन्ते लवणसमुद्दपुरच्छिमद्धस्स पच्चत्थिमेण सीताए महाणदीए उप्पि एत्थ णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पण्णत्ते, अट्ठजोयणाइ उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं, तावइय चेव पवेसेणं, सेए वरकणयथूभियागे ईहामियउसभतुरगनरमगरविहगवालग-किण्णररुरुसरभ-चमरकुंजर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्ते खंभुग्गयवइरवेदियापरिगताभिरामे विज्जाहर-जमलजुयलजंतजुत्ते इव अच्चिसहस्समालिणीए रूवगसहस्सकलिए भिसमाणे भिब्भिसमाणे चक्खुल्लोयणलेसे सुहफासे सस्सिरीयरूवे। वण्णो दारस्स तस्सिमो होइ, तजहा—वइरामया णिम्मा रिट्ठामया पतिट्ठाणा वेरुलियमया खभा जायरूवोवचियपवरपंचवण्णमणिरयणकोट्टिमतले, हंसगब्भमए एलुए गोमेज्जमए इंदक्खीले लोहितक्खमईओ दारचेडीओ जोतिरसामए उत्तरंगे वेरुलियामया कवाडा वइरामया सधी लोहितक्खमईओ सूईओ णाणामणिमया समुग्गगा वइरामई अग्गलाओ अग्गलपासाया वइरामई आवत्तणपेढिया अकुत्तरपासाए णिरंतरितघणकवाडे, भित्तीसु चेव भित्तीगुलिया छप्पण्णा तिण्णि होन्ति गोमाणसी, तत्तिया णाणामणिरयणवालरूवगलीलट्ठिय सालभंजिया, वइरामए कूडे रययामए उस्सेहे सव्वतवणिज्जमए उल्लोए णाणामणिरयणजाल पंजरमणिवसग लोहितक्ख पडिवंसग-रययभोम्मे, अंकामया पक्खबाहाओ जोतिरसामया वंसा वसकवेल्लुगा य रययामईओ पट्टियाओ जाय-रूवमई ओहाडणी वइरामई उवरिपुच्छणी सव्वसेयरययमए छायणे अंकमयकणगकूडतवणिज्ज-थूभियाए सेए संखतलविमलणिम्मलदधिघण गोखीर फेणरययणिगरप्पगासे तिलग-रयणद्धचंदचित्ते णाणामणि-

मयदामालंकिए अंतो य बाहिं य सण्हे तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडे सुहप्फासे सस्सिरीयरूवे पासाइए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

[१२९] (१) भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप का विजयद्वार कहाँ कहा गया है ?

गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मेरुपर्वत के पूर्व मे पैतालीस हजार योजन आगे जाने पर तथा जबूद्वीप के पूर्वान्त मे तथा लवणसमुद्र के पूर्वार्ध के पश्चिम भाग मे सीता महानदी के ऊपर जबूद्वीप का विजयद्वार कहा गया है। यह द्वार आठ योजन का ऊँचा, चार योजन का चौडा और इतना ही (चार योजन का) इसका प्रवेश है। यह द्वार श्वेतवर्ण का है, इसका शिखर श्रेष्ठ सोने का है। इस द्वार पर ईहामृग, वृषभ, घोडा, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु (मृग), सरभ (अष्टापद), चमर, हाथी, वनलता और पद्मलता के विविध चित्र बने हुए हैं। इसके खभो पर बनी हुई वज्रवेदिकाओ से युक्त होने के कारण यह बहुत ही आकर्षक है। यह द्वार इतने अधिक प्रभा-समुदाय से युक्त है कि यह स्वभाव से नही किन्तु विशिष्ट विद्याशक्ति के धारक समश्रेणी के विद्याधरो के युगलो के यत्रप्रभाव (शक्तिविशेष) से इतना प्रभासित हो रहा है—ऐसा लगता है। यह द्वार हजारो रूपको से युक्त है। यह दीप्तिमान है, विशेष दीप्तिमान है, देखने वालो के नेत्र इसी पर टिक जाते हैं। इस द्वार का स्पर्श बहुत ही शुभ है या सुखरूप है। इसका रूप बहुत ही शोभायुक्त लगता है। यह द्वार प्रसन्नता पैदा करने वाला, दर्शनीय, सुन्दर है और बहुत ही मनोहर है। उस द्वार का विशेष वर्णनक इस प्रकार है—

इसकी नीव वज्रमय है। इसके पाये रिष्टरत्न के बने है। इसके स्तभ वैडूर्यरत्न के है। इसका बद्धभूमितल (फर्श) स्वर्ण से उपचित (रचित) और प्रधान पाँच वर्णो की मणियो और रत्नो से जटित है। इसकी देहली हसगर्भ नामक रत्न की बनी हुई है। गोमेयक रत्न का इन्द्रकील है और लोहिताक्ष रत्नो की द्वारशाखाएँ हैं। इसका उत्तरग (द्वार पर तिर्यक् रखा हुआ काष्ठ) ज्योतिरस रत्न का है। इसके किवाड वैडूर्यमणि के हैं, दो पटियो को जोडने वाली कीलें लोहिताक्षरत्न की है, वज्रमय सधिया हैं, अर्थात् साधो मे वज्ररत्न भरे हुए हैं, इनके समुद्गक (सूतिकागृह) नाना मणियो के हैं, इसकी अर्गला और अर्गला रखने का स्थान वज्ररत्नो का है। इसकी आवर्तनपीठिका (जहाँ इन्द्रकील होता है) वज्ररत्न की है।[1] किवाडो का भीतरी भाग अकरत्न का है। इसके दोनो किवाड अन्तर-रहित और सघन है। उस द्वार के दोनो तरफ की भित्तियो मे १६८ भित्तिगुलिका (पीठक तुल्य आलिया) हैं और उतनी ही (१६८) गोमानसी (शय्याएँ) है। इस द्वार पर नाना मणिरत्नो के व्याल-सर्पों के चित्र बने हैं तथा लीला करती हुई पुत्तलियाँ भी नाना मणिरत्नो की बनी हुई है। इस द्वार का माडभाग वज्ररत्नमय है और उस माडभाग[2] का शिखर चादी का है। उस द्वार की छत के नीचे का भाग तपनीय स्वर्ण का है। इस द्वार के झरोखे मणिमय बास वाले और लोहिताक्षमय प्रतिवास वाले तथा रजतमय भूमि वाले हैं। इसके पक्ष और पक्षबाह अकरत्न के बने हुए हैं। ज्योतिरसरत्न के बास और बासकवेलु (छप्पर) है, रजतमयी पट्टिकाएँ है, जातरूप स्वर्ण की ओहाडणी (विरल आच्छादन) है, वज्ररत्नमय ऊपर की पुछणी (अविरल आच्छादन) हैं और सर्वश्वेत

---

१. वृत्ति मे 'रययामयी आवत्तणपेढिया' पाठ है। अर्थात् आवर्तनपीठिका चादी की है।

२ आह मूलटीकाकार —कूडो—माडभाग उच्छ्रय शिखरमिति।
केवल शिखरमत्र माडभागस्य सम्बन्धि दृष्टव्य न द्वारस्य, तस्य प्रागेव प्रोक्तात्वात्। —टीका।

रजतमय आच्छादन हैं। वाहुल्य से अकरत्नमय, कनकमय कूट तथा स्वर्णमय स्तूपिका (लघु शिखर) वाला वह विजयद्वार है। उस द्वार की सफेदी शखतल, विमल—निर्मल जमे हुए दही, गाय के दूध, फेन और चादी के समुदाय के समान है, तिलकरत्नो और अर्धचन्द्रो मे वह नानारूप वाला है, नाना प्रकार की मणियो की माला से वह अलकृत है, अन्दर और वाहर से कोमल-मृदु पुद्गलस्कधो से वना हुआ है, तपनीय (स्वर्ण) की रेत का जिसमे प्रस्तर-प्रस्तार है। ऐसा वह विजयद्वार मुखद और शुभस्पर्श वाला, सश्रीक रूप वाला, प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है।

१२९. (२) विजयस्स ण दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो चंदणकलस-परिवाडीओ पण्णत्ताओ। ते ण चंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा सुरभिवरवारिपडिपुण्णा चंदणकय-चच्चागा, आवद्धकंठेगुणा पउमुप्पलपिहाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा महया महया महिंदकुंभ समाणा पण्णत्ता समणाउसो !

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो नागदंतपरिवाडीओ पण्णत्ताओ। ते णं णागदंतगा मुत्ताजालंतरुसितहेमजालगवक्खजालखिंखिणिघंटाजालपरिक्खित्ता, अब्भुग्गया अभिनिसिट्ठा तिरियं सुसंपग्गहिता अहे पण्णगद्धरूवा, पण्णगद्धसठाणसंठिया सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा महया महया गयदंतसमाणा पण्णत्ता समणाउसो !

तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तवद्धवग्घारियमल्लदामकलावा जाव सुक्किलसुत्तवद्धवग्घारि-यमल्लदामकलावा। ते णं दामा तवणिज्जलवूसगा सुवण्णपतरकमडिया णाणामणिरयणविविह-हारद्धहारोसोभियसमुदया जाव सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

तेसिं णं णागदंताणं उवरिं अण्णाओ दो दो नागदंतपरिवाडीओ पण्णत्ताओ। ते णं नागदंतगा मुत्ताजालंतरूसिया तहेव जाव समणाउसो !

तेसु णं नागदंतएसु वहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता। तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु वहवे वेरुलियामईओ धूवघडीओ पण्णत्ताओ। ताओ णं धूवघडीओ कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्क-धूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामाओ सुगंधवरगंधगंधियाओ गंधवट्टिभूयाओ ओरालेणं मणुण्णेणं घाणमण-णिव्वुइकरेणं गंधेणं तप्पएसे सव्वओ समंता आपूरेमाणीओ आपूरेमाणीओ अईव अईव सिरीए उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

[१२९] (२) उस विजयद्वार के दोनो तरफ दो नैषेधिकाए है—बैठने के स्थान हैं (एक-एक दोनो तरफ हैं)। उन दो नैषेधिकाओ मे दो-दो चन्दन के कलशो की पक्तिया कही गई हैं। वे चन्दन के कलश श्रेष्ठ कमलो पर प्रतिष्ठित हैं, सुगन्धित और श्रेष्ठ जल से भरे हुए हैं, उन पर चन्दन का लेप किया हुआ है, उनके कंठो मे मौली (लच्छा) वंधी हुई है, पद्मकमलो का उन पर ढक्कन है, वे सर्वरत्नो के वने हुए हैं, स्वच्छ हैं, श्लक्ष्ण (मृदु पुद्गलो से निर्मित) हैं यावत् वहुत सुन्दर हैं। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे कलश वडे-वडे महेन्द्रकुम्भ (महाकलश) के समान हैं।

उस विजयद्वार के दोनो तरफ दो नैषेधिकाओ मे दो-दो नागदन्तो (खूटियो) की पक्तियाँ हैं। वे नागदन्त मुक्ताजालो के अन्दर लटकती हुई स्वर्ण की मालाओ और गवाक्ष की आकृति की

रत्नमालाओ और छोटी-छोटी घण्टिकाओ (घुघरुओ) से युक्त हैं, आगे के भाग मे ये कुछ ऊँचाई लिये हुई हैं। ऊपर के भाग मे आगे निकली हुई हैं और अच्छी तरह ठुकी हुई हैं, सर्प के निचले आधे भाग की तरह उनका रूप है अर्थात् अति सरल और दीर्घ है, इसलिए सर्प के निचले आधे भाग की आकृति वाली हैं, सर्वथा वज्ररत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, मृदु हैं, यावत् प्रतिरूप है। हे आयुष्मन् श्रमण! वे नागदन्तक वडे वडे गजदन्त (हाथी के दात) के समान कहे गये हैं।

उन नागदन्तको मे वहुत सी काले डोरे मे पिरोयी हुई पुष्पमालाएँ लटक रही हैं, वहुत सी नीले डोरे मे पिरोयी हुई पुष्पमालाएँ लटक रही हैं, यावत् शुक्ल वर्ण के डोरे मे पिरोयी हुई पुष्पमालाएँ लटक रही हैं। उन मालाओ मे सुवर्ण का लवूसक (पेन्डल-लटकन) है, आजूबाजू वे स्वर्ण के प्रतरक से मण्डित हैं, नाना प्रकार के मणि रत्नो के विविध हार और अर्धहारो से वे मालाओ के समुदाय सुशोभित है यावत् वे श्री से अतीव अतीव सुशोभित हो रही हैं।

उन नागदतको के ऊपर अन्य दो और नागदतको की पक्तिया हैं। वे नागदन्तक मुक्ताजालो के अन्दर लटकती हुई स्वर्ण की मालाओ और गवाक्ष की आकृति की रत्नमालाओ और छोटी छोटी घण्टिकाओ (घुघरुओ) से युक्त हैं यावत् हे आयुष्मन् श्रमण! वे नागदन्तक बडे बडे गजदन्त के समान कहे गये हैं।

उन नागदन्तको मे वहुत से[1] रजतमय छीके कहे गये है। उन रजतमय छीको मे वैडूर्यरत्न की धूपघटिकाएँ (धूपनियाँ) है। वे धूपघटिकाएँ काले अगर, श्रेष्ठ चीड और लोभान के धूप की मघमघाती सुगन्ध के फैलाव से मनोरम हैं, शोभन गध वाले पदार्थों की गध जैसी सुगध उनसे निकल रही है, वे सुगन्ध की गुटिका जैसी प्रतीत होती है। वे अपनी उदार (विस्तृत), मनोज्ञ और नाक एव मन को तृप्ति देने वाली सुगध से आसपास के प्रदेशो को व्याप्त करती हुई अतीव सुशोभित हो रही हैं।

१२९ (३) विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो सालभंजिया-परिवाडीओ पण्णत्ताओ,[2] ताओ ण सालभंजियाओ लीलट्ठियाओ सुपइट्ठियाओ सुअलंकियाओ णाणा-गारवसणाओ णाणामल्लपिणद्धिओ मुट्ठिगेज्झमज्झाओ आमेलगजमलजुयलवट्टिअब्भुण्णयपीणरइय-सठियपओहराओ रत्तावंगाओ असियकेसीओ मिउविसदपसत्थलक्खणसवेल्लितग्गसिरयाओ, ईसिं असोगवरपादवसमुट्ठियाओ वामहत्थगहीयग्गसालाओ ईसिं अद्धच्छिकडक्खविद्धिएहिं लूसेमाणीओ इव चक्खुल्लोयणलेसाहिं अण्णमण्ण खिज्जमाणीओ इव पुढविपरिणामाओ सासयभावमुवगयाओ चदाणणाओ चदविलासिणीओ चदद्धसमनिडालाओ चदाहियसोमदंसणाओ उक्का इव उज्जोएमाणीओ

---

१ किन्ही प्रतियो मे 'रयणमय' पाठ है। तदनुसार रत्नमय छीके हैं। वृत्ति मे रजतमय अर्थ किया गया है।

२ वृत्ति के अनुसार सालभजिकाओ के वर्णन का पाठ इस प्रकार है—ताओ ण सालभजियाओ लीलट्ठियाओ सुपयट्ठियाओ सुअलकियाओ णाणाविहरागवसणाओ रत्तावगाओ असियकेसीओ मिउविसयपसत्थलक्खणसवेल्लियग्गसिरयाओ नानामलपिणद्धाओ मुट्ठिगेज्झमज्झाओ आमेलगजमलवट्टियअब्भुण्णयरइयसठियपयोहराओ ईसिं असोगवरपायवसमुट्ठियाओ ।

विज्जुघणमरीचि-सूरदिप्पंततेयअहियथरसन्निकासाओ सिगारागारचारुवेसाओ पासाइयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ तेयसा अतीव अतीव सोभेमाणीओ सोभेमाणीओ चिट्ठति ।

[१२९] (३) उस विजयद्वार के दोनो ओर नैषेधिकाओ मे दो दो सालभजिका (पुतलियो) की पक्तियाँ कही गई हैं । वे पुतलियाँ लीला करती हुई (सुन्दर अगचेष्टाएँ करती हुई) चित्रित की गई है, सुप्रतिष्ठित—सुन्दर ढग से स्थित की गई हैं, ये सुन्दर वेशभूषा से अलकृत है, ये रगविरगे कपडो से सज्जित है, अनेक मालाएँ उन्हे पहनायी गई है, उनकी कमर इतनी पतली है कि मुट्ठी मे आ मकती है । उनके पयोधर (स्तन) समश्रेणिक चुचुकयुगल से युक्त है, कठिन होने से गोलाकार है, ये सामने की ओर उठे हुए है, पुष्ट है अतएव रति-उत्पादक है । इन पुतलियो के नेत्रो के कोने लाल हैं, उनके बाल काले है तथा कोमल है, विशद-स्वच्छ हैं, प्रशस्त लक्षणवाले हैं और उनका अग्रभाग मुकुट से आवृत है । ये पुतलियाँ अशोकवृक्ष का कुछ सहारा लिये हुए खडी है । वामहस्त से इन्होने अशोक वृक्ष की शाखा के अग्रभाग को पकड रखा है । ये अपने तिरछे कटाक्षो से दर्शको के मन को मानो चुरा रही है। परस्पर के तिरछे अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ये (एक दूसरे के सौभाग्य को सहन न करती हुई) एक दूसरी को खिन्न कर रही हो । ये पुत्तलिकाएँ पृथ्वीकाय का परिणामरूप है और शाश्वत भाव को प्राप्त है । इन पुतलियो का मुख चन्द्रमा जैसा है । ये चन्द्रमा की भाति शोभा देती है, आधे चन्द्र की तरह उनका ललाट है, उनका दर्शन चन्द्रमा से भी अधिक सौम्य है, उल्का (मूल से विच्छिन्न जाज्वल्यमान अग्निपुज—चिनगारी) के समान ये चमकीली हैं, इनका प्रकाश बिजली की प्रगाढ किरणो और अनावृत सूर्य के तेज से भी अधिक है । उनकी आकृति शृ गार-प्रधान है और उनकी वेशभूषा बहुत ही सुहावनी है । ये प्रसन्नता पैदा करने वाली, दर्शनीया, अभिरूपा और प्रतिरूपा है । ये अपने तेज से अतीव अतीव सुशोभित हो रही है ।

१२९ (४) विजयस्स ण दारस्स उभओ पासि दुहओ णिसीहियाए दो दो जालकडगा पण्णत्ता । ते ण जालकडगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

विजयस्स णं दारस्स उभओ पासि दुहओ णिसीहियाए दो दो घटापरिवाडीओ पण्णत्ताओ । तासि णं घंटाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तजहा—जबूणयमईओ घंटाओ, वइरामईओ लालाओ णाणामणिमया घटापासगा, तवणिज्जमईओ सकलाओ रययामईओ रज्जूओ । ताओ णं घटाओ ओहस्सराओ मेहस्सराओ हसस्सराओ कोचंस्सराओ णदिस्सराओ णदिघोसाओ सोहस्सराओ सीहघोसाओ मजुस्सराओ मंजुघोसाओ सुस्सराओ सुस्सरणिग्घोसाओ ते पएसे ओरालेणं मणुण्णेण कण्णमणनिव्वुइकरेण सद्देण जाव चिट्ठति ।

विजयस्स ण दारस्स उभओ पासि दुहओ णिसीहियाए दो दो वणमालापरिवाडीओ पण्णत्ताओ । ताओ ण वणमालाओ णाणादुमलयाकिसलयपल्लवसमाउलाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलसोभतसस्सिरीयाओ पासाइयाओ० ते पएसे उरालेण जाव गंधेणं आपूरेमाणीओ जाव चिट्ठंति ।

[१२९] (४) उस विजयद्वार के दोनो तरफ दो नैषेधिकाओ मे दो दो जालकटक (जालियो वाले रम्य स्थान) कहे गये हैं । ये जालकटक सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है ।

उस विजयद्वार के दोनो तरफ दो नैषेधिकाग्रो मे दो घटाग्रो की पक्तिया कही गई है। उन घटाग्रो का वर्णनक इस प्रकार है—वे घटाए सोने की वनी हुई हैं, वज्ररत्न की उनकी लालाएँ-लटकन हैं, अनेक मणियो से वने हुए घटाग्रो के पार्श्वभाग हैं, तपे हुए सोने की उनकी साकले हैं, घटा वजाने के लिए खीची जाने वाली रज्जु चादी की वनी हुई है। इन घटाग्रो का स्वर ओघस्वर है—अर्थात् एक वार वजाने पर वहुत देर तक उनकी ध्वनि सुनाई पडती है। मेघ के समान गभीर है, हस के स्वर के समान मधुर है, क्रोच पक्षी के स्वर के समान कोमल है, दुन्दुभि के स्वर के तुल्य होने से नन्दिस्वर है, वारह प्रकार के वाद्यो के सघात के स्वर जैसा होने से नन्दिघोष है, सिंह की गर्जना के समान होने से सिंहस्वर है। उन घटाग्रो का स्वर वडा ही प्रिय होने से मजुस्वर है, उनका निनाद वहुत प्यारा होता है अतएव मजुघोष है। उन घटाग्रो का स्वर अत्यन्त श्रेष्ठ है, उनका स्वर और निर्घोष अत्यन्त सुहावना है। वे घटाएँ अपने उदार, मनोज्ञ एव कान और मन को तृप्त करने वाले शब्द से आसपास के प्रदेशो को व्याप्त करती हुई अति विशिष्ट शोभा से सम्पन्न हैं।

उस विजयद्वार की दोनो ओर नैषेधिकाग्रो मे दो दो वनमालाग्रो की कतार है। ये वनमालाएँ अनेक वृक्षो और लताग्रो के किसलयरूप पल्लवो—कोमल कोमल पत्तो से युक्त हैं और भ्रमरो द्वारा भुज्यमान कमलो से सुशोभित और सश्रीक हैं। ये वनमालाएँ प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है तथा अपनी उदार, मनोज्ञ और नाक तथा मन को तृप्ति देने वाली गध से आसपास के प्रदेश को व्याप्त करती हुई अतीव अतीव शोभित होती हुई स्थित हैं।]

१३०. विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो पगंठगा पण्णत्ता। ते णं पगंठगा चत्तारि जोयणाइं आयामविक्खमेण दो जोयणाइ बाहल्लेणं सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसिं णं पगठगाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं पासायवडिंसगा पण्णत्ता। ते णं पासायवडिंसगा चत्तारि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसियपहसिताविव विविह-मणिरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुयविजयवेजयती पडाग-छत्ताइछत्तकलिया तुगा गगनतलमणुलिहंत-सिहरा[1] जालंतररयणपंजरुम्मिलितव्व मणिकणगथूभियागा वियसियसयपत्तपोडरीय-तिलक-रयणद्ध-चंदचित्ता णाणामणिमयदामालंकिया अंतो य बाहिं य सण्हा [तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडगा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तेसिं णं पासायवडिंसगाणं उल्लोया पउमलया जाव सामलयाभत्तिचित्ता सव्वतवणिज्जमया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसिं णं पासायवडिंसगाण पत्तेयं पत्तेयं अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते; से जहाणामए आलिंगपुक्खरे इ वा जाव मणींहि उवसोभिए। मणीण गधो वण्णो फासो य नेयव्वो।

तेसिं णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ

---

१ 'गगनतलमभिलघमाणसिहरा' इत्यपि पाठ।

पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वरयणामईओ जाव पडिरूवाओ।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं सीहासणे पण्णत्ते। तेसि णं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—रययामया सीहा तवणिज्जमया चक्कवाला सोवण्णिया पादा णाणामणिमयाइं पायसीसगाइं जंबूणदमयाइं गत्ताइं वइरामया संधी नानामणिमए वेच्चे। ते णं सीहासणा ईहामिय-उसभ जाव पउमलयभत्तिचित्ता ससारसारोवइयविविहमणिरयणपादपीढा अच्छरगमिउमसूरगनवतयकुसंतलिच्चसीहकेसर पच्चुत्थयाभिरामा उवचियखोमदुगुल्लय पडिच्छायणा सुविरइयरयत्ताणा रत्तंसुयसवुया सुरम्मा आईणगरूयबूरणवणीयतूलमउयफासा मउया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तेसि णं सीहासणाण उप्पि पत्तेयं पत्तेयं विजयदूसे पण्णत्ते। ते णं विजयदूसा सेया संखकुंददगरयअमयमहियफेणपुंजसन्निकासा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसि णं विजयदूसाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वइरामया अंकुसा पण्णत्ता। तेसु णं वइरामएसु अंकुसेसु पत्तेय पत्तेय कुंभिका मुत्तादामा पण्णत्ता। ते णं कुंभिका मुत्तादामा अन्नेहिं चउहिं चउहिं तदद्धुच्चप्पमाणमेत्ताहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया जाव चिट्ठंति। तेसि ण पासायवडिसगाणं उप्पि बहवे अट्ठट्ठमंगलगा पण्णत्ता सोत्थिय तहेव जाव छत्ता।

१३० उस विजयद्वार के दोनो तरफ दोनो नैषेधिकाओ मे दो प्रकण्ठक[1] (पीठविशेष) कहे गये है। ये प्रकण्ठक चार योजन के लम्बे-चौडे और दो योजन की मोटाई वाले हैं। ये सर्व वज्ररत्न के हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप (मनोज्ञ) हैं। इन प्रकण्ठको के ऊपर अलग-अलग प्रासादावतसक (प्रासादो के बीच मे मुकुटरूप प्रासाद) कहे गये है। ये प्रासादावतसक चार योजन के ऊचे और दो योजन के लम्बे-चौडे हैं। ये प्रासादावतसक चारो तरफ से निकलती हुई और सब दिशाओ मे फैलती हुई प्रभा से बँधे हुए हो ऐसे प्रतीत होते हैं अथवा चारो तरफ से निकलती हुई श्वेत प्रभापटल से हँसते हुए-से प्रतीत होते हैं। ये विविध प्रकार की मणियो और रत्नो की रचनाओ से विविध रूप वाले हैं अथवा विविध रत्नो की रचनाओ से आश्चर्य पैदा करने वाले हैं। वे वायु से कम्पित और विजय की सूचक वैजयन्ती नाम की पताका, सामान्य पताका और छत्रो पर छत्र से शोभित हैं, वे ऊचे हैं, उनके शिखर आकाश को छू रहे हैं अथवा आसमान को लाघ रहे हैं। उनकी जालियो मे रत्न जडे हुए है, वे आवरण से बाहर निकली हुई वस्तु की तरह नये नये लगते हैं, उनके शिखर मणियो और सोने के हैं, विकसित शतपत्र, पुण्डरीक, तिलकरत्न और अर्धचन्द्र के चित्रो से चित्रित हैं, नाना प्रकार की मणियो की मालाओ से अलंकृत हैं, अन्दर और बाहर से श्लक्ष्ण—चिकने हैं, तपनीय स्वर्ण की बालुका इनके आगन मे बिछी हुई है। इनका स्पर्श अत्यन्त सुखदायक है। इनका रूप लुभावना है। ये प्रासादावतसक प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

---

१ 'प्रकण्ठौ पीठविशेषौ' इति मूलटीकाकार। चूर्णिकारस्तु एवमाह आदर्शवृत्तौपर्यन्तावनतप्रदेशो पीठौ प्रकण्ठाविति।

उन प्रासादावतसको के ऊपरी भाग पद्मलता, अशोकलता यावत् श्यामलता के चित्रो से चित्रित हैं और वे सर्वात्मना स्वर्ण के हैं। वे स्वच्छ, चिकने यावत् प्रतिरूप है।

उन प्रासादावतसको मे अलग-अलग वहुत सम और रमणीय भूमिभाग है। वह भूमिभाग मृदंग पर चढे हुए चर्म के समान समतल है यावत् मणियो से उपशोभित है। यहाँ मणियो के गन्ध, वर्ण और स्पर्श का वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

उन एकदम समतल और रमणीय भूमिभागो के एकदम मध्यभाग मे अलग-अलग मणिपीठिकाएँ कही गई हैं। वे मणिपीठिकाएँ एक योजन की लम्बी-चौडी और आधे योजन की मोटाई[1] वाली हैं। वे सर्वरत्नमयी यावत् प्रतिरूप है।

उन मणिपीठिकाओ के ऊपर अलग-अलग सिंहासन कहे गये हैं। उन सिंहासनो का वर्णन इस प्रकार कहा गया है—उन सिंहासनो के सिंह रजतमय है, स्वर्ण के उनके पाये हैं, तपनीय स्वर्ण के पायो के अध-प्रदेश है, नाना मणियो के पायो के ऊपरी भाग हैं, जवूनद स्वर्ण के उनके गात्र (ईसे) हैं, वज्रमय उनकी सधिया है, नाना मणियो से उनका मध्यभाग[2] वुना गया है। वे सिंहासन ईहामृग, वृषभ, यावत् पद्मलता आदि की रचनाओ से चित्रित हैं, प्रधान-प्रधान विविध मणिरत्नो से उनके पादपीठ उपचित (शोभित) हैं, उन सिंहासनो पर मृदु स्पर्शवाले आस्तरक (आच्छादन, अस्तर) युक्त गद्दे जिनमे नवीन छालवाले मुलायम-मुलायम दर्भाग्र (दूव) और अतिकोमल केसर भरे है, विछे होने से वे सुन्दर लग रहे हैं, उन गद्दो पर वेलवूटो से युक्त सूती वस्त्र की चादर (पलगपोस) विछी हुई है, उनके ऊपर धूल न लगे इसलिए रजस्त्राण लगाया हुआ है, वे रमणीय लाल वस्त्र से आच्छादित हैं, सुरम्य हैं, आजिनक (मृगचर्म), रुई, वूर वनस्पति, मक्खन और अर्कतूल के समान मुलायम स्पर्शवाले हैं। वे सिंहासन प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है।

उन सिंहासनो के ऊपर अलग-अलग विजयदूष्य (वस्त्रविशेष) कहे गये है। वे विजयदूष्य सफेद है, शख, कुद (मोगरे का फूल), जलविन्दु, क्षीरोदधि के जल को मथित करने से उठने वाले फेन-पुज के समान (श्वेत) है, सर्वरत्नमय है, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

उन विजयदूष्यो के ठीक मध्यभाग मे अलग अलग वज्रमय अकुश (हुक तुल्य) कहे गये है। उन वज्रमय अकुशो मे अलग अलग कुभिका (मगधदेशप्रसिद्धप्रमाण विशेष) प्रमाण मोतियो की मालाएँ लटक रही हैं। वे कुभिकाप्रमाण मुक्तामालाएँ अन्य उनसे आधी ऊँचाई वाली अर्धकुभिका प्रमाण चार चार मोतियो की मालाओ से सब ओर से वेष्ठित हैं। उन मुक्तामालाओ मे तपनीयस्वर्ण के लवूसक (पेण्डल) है, वे आसपास से स्वर्ण के प्रतरक से मडित हैं यावत् श्री से अतीव अतीव सुशोभित हैं।

उन प्रासादावतसको के ऊपर आठ-आठ मगल कहे गये है, यथा—स्वस्तिक यावत् छत्र।

१३१. (१) विजयस्स णं दारस्स उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो तोरणा पण्णत्ता, ते णं तोरणा णाणामणिमया तहेव जाव अट्ठट्ठमंगलका य छत्तातिछत्ता। तेसिं णं तोरणाणं पुरओ दो दो

---

१. टीका मे 'अट्ठजोयणवाहल्लेण' 'अष्ट योजनानि वाहल्येन' पाठ है।

२ 'वेच्च' व्यूत वानमित्यर्थ। आह च चूर्णिकृत् 'वेच्चे वाणक्कतेण'।

सालभंजियाओ पण्णत्ताम्रो, जहेव ण हेट्ठा तहेव । तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो नागदतगा पण्णत्ता, ते ण णागदतगा मुत्ताजालरुसिया तहेव । तेसु ण णागदतएसु बहवे किण्हे सुत्तवट्टवग्घारितमल्लदामकलावा जाव चिट्ठंति ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो हयसंघाडगा पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा । एवं पतीओ, वीहीओ, मिहुणगा; दो दो पउमलयाओ जाव पडिरूवाम्रो । तेसि णं तोरणाणं पुरओ अक्खयसोवत्थिया सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा । तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा तहेव सव्वरयणामया जाव पडिरूवा समणाउसो !

तेसि ण तोरणाणं पुरओ दो दो भिगारगा पण्णत्ता, वरकमलपइट्ठाणा जाव सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा महया महया मत्तगयमुहागिइसमाणा पण्णत्ता समणाउसो !

तेसि ण तोरणाण पुरओ दो दो आयंसगा पण्णत्ता, तेसि णं आयंसगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तजहा—तवणिज्जमया पयठगा वेरुलियमया छरुहा (थंभया), वइरामया वरंगा णाणामणिमया वलक्खा अंकमया मडला अणोग्घसियनिम्मलासाए छायाए सव्वओ चेव समणुबद्धा चदमंडलपडिणिकासा महया महया अद्धकायसमाणा पण्णत्ता समणाउसो !

तेसि णं तोरणाण पुरओ दो दो वइरणाभे[1] थाले पण्णत्ते; ते णं थाला अच्छतिच्छडियसालितदुलनहसंदट्ठ बहुपडिपुण्णा इव चिट्ठंति सव्वजंबूणदामया अच्छा जाव पडिरूवा महयामहया रहचक्कसमाणा समणाउसो !

तेसि ण तोरणाण पुरम्रो दो दो पातीओ पण्णत्ताम्रो । ताओ णं पातीओ अच्छोदयपडिहत्याओ णाणाविहपंचवण्णस्स फलहरितगस्स बहुपडिपुण्णाओ विव चिट्ठंति सव्वरयणामईओ जाव पडिरूवाओ महया महया गोकलिंजगचक्कसमाणाओ पण्णत्ताओ समणाउसो !

[१३१] (१) उस विजयद्वार के दोनो ग्रोर दोनो नैपधिकाम्रो मे दो दो तोरण कहे गये हैं । वे तोरण नाना मणियो के वने हुए हैं इत्यादि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् उन पर ग्राठ-ग्राठ मगलद्रव्य ग्रोर छत्रातिछत्र हैं । उन तोरणो के ग्रागे दो दो शालभजिकाएँ (पुत्तलियां) कही गई हैं । जैसा वर्णन उन शालभजिकाम्रो का पूर्व में किया गया है, वैसा ही यहाँ कह लेना चाहिए । उन तोरणो के ग्रागे दो दो नागदतक (खूटिया) हैं । वे नागदतक मुक्ताजाल के ग्रन्दर लटकती हुई मालाम्रो से युक्त हैं ग्रादि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए । उन नागदंतको मे वहुत सी काले सूत मे गूथी हुई विस्तृत पुष्पमालाम्रो के समुदाय हैं यावत् वे ग्रतीव शोभा से युक्त हैं ।

उन तोरणो के ग्रागे दो दो घोड़ो के जोड़े (संघाटक) कहे गये है जो सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं । इसी प्रकार हयो (घोड़ो) की पंक्तियाँ (एक दिशा में जो कतारें होती हैं) ग्रौर हयो की वीथियाँ (ग्राजू-वाजू की कतारें) ग्रौर हयो के मिथुनक (स्त्री-पुरुष के जोड़े) भी हैं । उन तोरणो के ग्रागे दो-दो पद्मलताएँ चित्रित हैं यावत् वे प्रतिरूप हैं । उन तोरणो के ग्रागे ग्रक्षत के स्वस्तिक चित्रित हैं जो सर्व रत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं ।

---

१. 'वइरामए थाले' ऐसा पाठ भी कहीं कहीं है । वज्ररत्न के थाल हैं ।

उन तोरणो के आगे दो-दो चन्दनकलश कहे गये है। वे चन्दनकलश श्रेष्ठ कमलो पर प्रतिष्ठित हैं आदि पूर्ववत् वर्णन जानना चाहिए यावत् हे आयुष्मन् श्रमण ! वे सर्वरत्नमय है यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणो के आगे दो-दो भृंगारक (झारी) कहे गये है। वे भृंगारक श्रेष्ठ कमलो पर प्रतिष्ठित हैं यावत् सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है और हे आयुष्मन् श्रमण ! वे भृंगारक बडे-बडे और मत्त हाथी के मुख की आकृति वाले हैं।

उन तोरणो के आगे दो-दो आदर्शक (दर्पण) कहे गये है। उन आदर्शको का वर्णनक इस प्रकार है—इन दर्पणो के प्रकण्ठक (पीठविशेष) तपनीय स्वर्ण के बने हुए हैं, इनके स्तम्भ (जहाँ से दर्पण मुट्ठी मे पकडा जाता है वह स्थान) वैडूर्यरत्न के है, इनके वराग (गण्ड-फ्रेम) वज्ररत्नमय है, इनके वलक्ष (साकलरूप अवलम्बन) नाना मणियो के हैं, इनके मण्डल (जहाँ प्रतिबिम्ब पडता है) अक रत्न के हैं। ये दर्पण अनवघर्षित (माजे बिना ही—स्वाभाविक) और निर्मल छाया—कान्ति से युक्त हैं, चन्द्रमण्डल की तरह गोलाकार है। हे आयुष्मन् श्रमण ! ये दर्पण बडे-बडे और दर्शक की आधी काया के प्रमाण वाले कहे गये है।

उन तोरणो के आगे दो-दो वज्रनाभ[1] स्थाल कहे गये है। वे स्थाल स्वच्छ, तीन बार सूप आदि से फटकार कर साफ किये हुए और मूसलादि द्वारा खडे हुए शुद्ध स्फटिक जैसे चावलो से भरे हुए हों, ऐसे प्रतीत होते हैं। वे सर्व स्वर्णमय हैं, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है। हे आयुष्मन् श्रमण ! वे स्थाल बडे-बडे रथ के चक्र के समान कहे गये है।

उन तोरणो के आगे दो-दो पात्रिया कही गई हैं। ये पात्रियाँ स्वच्छ जल से परिपूर्ण है। नानाविध पाच रग के हरे फलो से भरी हुई हो—ऐसी प्रतीत होती है (साक्षात् जल या फल नही हैं, किन्तु वैसी प्रतीत होती है। वे पृथ्वीपरिणामरूप और शाश्वत है। केवल वैसी उपमा दी गई है।) वे स्थाल सर्वरत्नमय यावत् प्रतिरूप है और बडे-बडे गोकलिंजर (बास का टोपला अथवा) चक्र के समान कहे गये है।

१३१ (२) तेसि ण तोरणाणं पुरओ दो दो सुपतिट्ठगा पण्णत्ता। ते ण सुपतिट्ठगा णाणाविह-(पंचवण्ण) पसाहणगभडविरचिया सव्वोसहिपडिपुण्णा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो मणोगुलियाओ पण्णत्ताओ, तासु ण मणोगुलियासु बहवे सुवण्ण-रुप्पामया फलगा पण्णत्ता। तेसु ण सुवण्णरुप्पामएसु फलएसु बहवे वइरामया णागदतगा मुत्ता-जालंतरुसिता हेम जाव गयदत समाणा पण्णत्ता। तेसु णं वइरामएसु नागदतएसु बहवे रययामया सिक्कया पण्णत्ता। तेसु ण रययामएसु सिक्कएसु बहवे वायकरगा पण्णत्ता। ते ण वायकरगा किण्ह-सुत्तसिक्कगवत्थिया जाव सुकिलसुत्तसिक्कगवत्थिया सव्वे वेरुलियामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसि णं तोरणाण पुरओ दो-दो चित्ता रयणकरंडगा पण्णत्ता। से जहाणामए रण्णो चाउरंत-चक्कवट्टिस्स चित्ते रयणकरडे वेरुलियमणिफालिय पडलपच्चोयडे साए पभाए ते पएसे सव्वओ समंता

१ वृत्ति मे 'वज्रनाभ स्थाल' कहा है। अन्यत्र 'वइरामए थाले' ऐसा पाठ है।

ओभासइ उज्जोवेइ तावेइ पभासेइ, एवामेव ते चित्तरयणकरंडगा पण्णत्ता वेरुलियपडलपच्चोयाड-साए पभाए ते पएसे सव्वओ समंता ओभासेइ ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो हयकंठगा जाव दो दो उसभकंठगा पण्णत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा । तेसु ण हयकंठएसु जाव उसभकंठएसु दो दो पुप्फचगेरीओ, एवं मल्लगंधचुण्ण-वत्थाभरणचगेरीओ सिद्धत्थचगेरीओ लोमहत्थचगेरीओ सव्वरयणामईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ।

तेसि ण तोरणाणं पुरओ दो दो पुप्फपडलाइं जाव लोमहत्थपडलाइं सव्वरयणामयाइं जाव पडिरूवाइं ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सीहासणाइं पण्णत्ताइ । तेसि णं सीहासणाण अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते तहेव जाव पासाईया ४ ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो रुप्पच्छदा छत्ता पण्णत्ता, ते णं छत्ता वेरुलियभिसंतविमलदंडा जंबूणयकन्निका वइरसंधी मुत्ताजालपरिगया अट्ठसहस्सवरकंचणसलागा दद्दरमलयसुगंधी सव्वोउ-असुरभिसीयलच्छाया मगलभत्तिचित्ता चंदागारोवमा वट्टा ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चामराओ पण्णत्ताओ । ताओ णं चामराओ[1] चंदप्पभवइर-वेरुलिय-नानामणिरयणखचियदडाओ संखंक-कुंद-दगरय-अमयमहिय-फेणपुंज-सण्णिकासाओ सुहुम-रययदीहवालाओ सव्वरयणामयाओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो तिल्लसमुग्गा कोट्ठसमुग्गा पत्तसमुग्गा चोयसमुग्गा तयरसमुग्गा एलासमुग्गा हरियालसमुग्गा हिंगुलयसमुग्गा मणोसिलासमुग्गा अंजणसमुग्गा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

[१३१] (२) उन तोरणो के आगे दो-दो सुप्रतिष्ठक (शृंगारदान) कहे गये हैं। वे सुप्रतिष्ठक नाना प्रकार के पाच वर्णों की प्रसाधन-सामग्री और सर्व ओषधियो से परिपूर्ण लगते हैं, वे सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणो के आगे दो-दो मनोगुलिका[2] (पीठिका) कही गई हैं। उन मनोगुलिकाओ मे वहुत-से सोने-चादी के फलक (पटिये) हैं। उन सोने-चादी के फलको मे वहुत से वज्रमय नागदंतक (खूटियाँ) हैं। ये नागदतक मुक्ताजाल के अन्दर लटकती हुई मालाओ से युक्त हैं यावत् हाथी के दांत के समान कही गई है। उन वज्रमय नागदतको मे वहुत से चादी के सीके कहे गये हैं। उन चादी के सीको मे वहुत से वातकरक (जलशून्य घडे) हैं। ये जलशून्य घडे काले सूत्र के वने हुए ढक्कन से यावत् सफेद सूत्र के वने हुए ढक्कन से आच्छादित हैं। ये सव वैडूर्यमय हैं, स्वच्छ हैं, यावत् प्रतिरूप हैं।

---

१ णाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जल विचित्तदडाओ चिल्लिआओ इति पाठान्तरम् ।

२ मनोगुलिकपीठिकेति मूलटीकायाम् ।

उन तोरणो के आगे दो-दो चित्रवर्ण के रत्नकरण्डक कहे गये हैं। जैसे—किसी चातुरन्त (चारो दिशाओ की पृथ्वी पर्यन्त) चक्रवर्ती का नाना मणिमय होने से नानावर्ण का अथवा आश्चर्यभूत रत्नकरण्डक जिस पर वैडूर्यमणि और स्फटिक मणियो का ढक्कन लगा हुआ है, अपनी प्रभा से उस प्रदेश को सब ओर से अवभासित करता है, उद्योतित करता है, प्रदीप्त करता है, प्रकाशित करता है, इसी तरह वे विचित्र रत्नकरडक वैडूर्यरत्न के ढक्कन से युक्त होकर अपनी प्रभा से उस प्रदेश को सब ओर से अवभासित करते है।

उन तोरणो के आगे दो-दो हयकठक[1] (रत्नविशेष) यावत् दो-दो वृषभकठक कहे गये है। वे सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है।

उन हयकठको मे यावत् वृषभकठको मे दो-दो फूलो की चगेरियाँ (छाबडियाँ) कही गई है। इसी तरह माल्यो—मालाओ, गध, चूर्ण, वस्त्र एव आभरणो की दो-दो चगेरियाँ कही गई हैं। इसी तरह सिद्धार्थ (सरसों) और लोमहस्तक (मयूरपिच्छ) चगेरियाँ भी दो-दो हैं। ये सब सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

उन तोरणो के आगे दो-दो पुष्प-पटल यावत् दो-दो लोमहस्त-पटल कहे गये हैं, जो सर्वरत्नमय हैं यावत् प्रतिरूप है।

उन तोरणो के आगे दो-दो सिंहासन है। उन सिंहासनो का वर्णनक इस प्रकार है आदि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् वे प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

उन तोरणो के आगे चादी के आच्छादन वाले छत्र कहे गये हैं। उन छत्रो के दण्ड वैडूर्यमणि के है, चमकीले और निर्मल है, उनकी कणिका (जहाँ तानिया तार मे पिरोयी रहती हैं) स्वर्ण की हैं, उनकी सधिया वज्ररत्न से पूरित हैं, वे छत्र मोतियो की मालाओ से युक्त हैं। एक हजार आठ शलाकाओ (तानियो) से युक्त है, जो श्रेष्ठ स्वर्ण की बनी हुई है। कपडे से छने हुए चन्दन की गध के समान सुगन्धित और सर्वऋतुओ मे सुगन्धित रहने वाली उनकी शीतल छाया है। उन छत्रो पर नाना प्रकार के मगल चित्रित है और वे चन्द्रमा के आकार के समान गोल हैं।

उन तोरणो के आगे दो-दो चामर कहे गये है। वे चामर चन्द्रकान्तमणि, वज्रमणि, वैडूर्यमणि आदि नाना मणिरत्नो से जटित दण्ड वाले है। (जिनके दण्ड नाना प्रकार की मणियो, स्वर्ण, रत्नो से जटित हैं, विमल है, बहुमूल्य स्वर्ण के समान उज्ज्वल एव चित्रित हैं, चमकीले हैं) वे चामर शख, अकरत्न कुद (मोगरे का फूल) दगरज (जलकण) अमृत (क्षीरोदधि) के मथित फेनपुज के समान श्वेत हैं, सूक्ष्म और रजत के लम्बे-लम्बे बाल वाले है, सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं, यावत् प्रतिरूप हैं।

उन तोरणो के आगे दो-दो तैलसमुद्गक[2] (आधारविशेष) कोष्टसमुद्गक, पत्रसमुद्गक, चोयसमुद्गक, तगरसमुद्गक, इलायचीसमुद्गक, हरितालसमुद्गक, हिंगुलुसमुद्गक, मन शिला-समुद्गक और अजनसमुद्गक है। (ये सर्व सुगधित द्रव्य है। इनके रखने के आधार को समुद्गक कहते है।) ये सर्व समुद्गक सर्वरत्नमय है स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप है।[3]

---

१ 'हयकण्ठौ हयकण्ठप्रमाणौ रत्नविशेषौ' इति मूलटीकायाम्

२ 'तैलसमुद्गकौ सुगधिततैलाधारविशेषौ' इति वृत्ति।

३ 'तेल्लो कोट्ठसमुग्गा पत्ते चोए य तगर एला य। हरियाले हिंगुलए मणोसिला अजणसमुग्गो।' सग्रहणी गाथा।

१३२. विजए णं दारे अट्ठसयं चक्कज्झयाणं अट्ठसयं मिगज्झयाणं अट्ठसयं गरुडज्झयाणं (अट्ठसयं विगज्झयाणं) अट्ठसयं रुरुयज्झयाणं अट्ठसयं छत्तज्झयाणं अट्ठसयं पिच्छज्झयाणं अट्ठसयं सउणिज्झयाणं अट्ठसयं सीहज्झयाणं अट्ठसयं उसभज्झयाणं अट्ठसयं सेयाणं चउविसाणाणं णागवरकेऊणं एवामेव सपुव्वावरेण विजयदारे य असीयं केउसहस्सं भवतीतिमक्खायं ।

विजये णं दारे णव भोमा पण्णत्ता । तेसिं णं भोमाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता जाव मणीणं फासो । तेसिं णं भोमाणं उप्पिं उल्लोया पउमलया जाव सामलताभत्तिचित्ता जाव सव्वतवणिज्जमया अच्छा जाव पडिरूवा ।

तेसिं णं भोमाणं बहुमज्झदेसभाए जे से पंचमे भोमे तस्स णं भोमस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते । सीहासणवण्णओ विजयदूसे जाव अंकुसे जाव दामा चिट्ठंति ।

तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चउण्हं सामाणियसहस्साणं चत्तारि भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । तस्स णं सीहासणस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं चत्तारि भद्दासणा पण्णत्ता । तस्स णं सीहासणस्स दाहिणपुरत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स अब्भितरियाए परिसाए अट्ठण्हं देवसाहस्सीणं अट्ठण्हं भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । तस्स णं सीहासणस्स दाहिणेणं विजयस्स देवस्स मज्झिमाए परिसाए दसण्हं देवसाहस्सीणं दस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । तस्स णं सीहासणस्स दाहिण-पच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स बाहिरियाए बारसण्हं देवसाहस्सीणं बारसभद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ ।

तस्स णं सीहासणस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स सत्तण्हं अणियाहिवईणं सत्त भद्दा-सणा पण्णत्ता । तस्स णं सीहासणस्स पुरत्थिमेणं दाहिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीणं सोलस भद्दासणसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—पुरत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ एवं चउसुवि जाव उत्तरेणं चत्तारि साहस्सीओ । अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं पत्तेयं भद्दासणा पण्णत्ता ।

[१३२] उस विजयद्वार पर एक सौ आठ चक्र से अंकित ध्वजाएँ, एक सौ आठ मृग से अंकित ध्वजाएँ, एक सौ आठ गरुड से अंकित ध्वजाएँ, (एक सौ आठ वृक[1] (भेडिया) से अंकित ध्वजाएँ), एक सौ आठ रुरु (मृगविशेष) से अंकित ध्वजाएँ, एक सौ आठ छत्रांकित ध्वजाएँ, एक सौ आठ पिच्छ से अंकित ध्वजाएँ, एक सौ आठ शकुनि (पक्षी) से अंकित ध्वजाएँ, एक सौ आठ सिंह से अंकित ध्वजाएँ, एक सौ आठ वृषभ से अंकित ध्वजाएँ और एक सौ आठ सफेद चार दांत वाले हाथी से अंकित ध्वजाएँ—इस प्रकार आगे-पीछे सब मिलाकर एक हजार अस्सी ध्वजाएँ विजयद्वार पर कही गई हैं । (ऐसा मैंने और अन्य तीर्थंकरों ने कहा है ।)

१ वृत्ति में वृक से अंकित पाठ नहीं है । वहाँ रुरु से अंकित पाठ मान्य किया गया है । किन्हीं प्रतियों में 'रुरु' पाठ नहीं है । कहीं दोनों है । इन दोनों में से एक को स्वीकार करने से ही कुल संख्या १०८० होती है ।

—सम्पादक

उस विजयद्वार के आगे नौ भौम (विशिष्टस्थान) कहे गये हैं। उन भौमो के अन्दर एकदम समतल और रमणीय भूमिभाग कहे गये हैं, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् यावत् मणियो के स्पर्श तक जानना चाहिए। उन भौमो की भीतरी छत पर पद्मलता यावत् श्यामलताओ के विविध चित्र बने हुए हैं, यावत् वे स्वर्ण के हैं, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

उन भौमो के एकदम मध्यभाग मे जो पाचवा भौम है उस भौम के ठीक मध्यभाग मे एक वडा सिंहासन कहा गया है, उस सिंहासन का वर्णन, देवदूष्य का वर्णन यावत् वहाँ अकुशो मे मालाएँ लटक रही है, यह सब पूर्ववत् कहना चाहिए। उस सिंहासन के पश्चिम-उत्तर (वायव्यकोण) मे, उत्तर मे, उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) मे विजयदेव के चार हजार सामानिक देवो के चार हजार भद्रासन कहे गये है। उस सिंहासन के पूर्व मे विजयदेव की चार सपरिवार अग्रमहिषियो के चार भद्रासन कहे गये है। उस सिंहासन के दक्षिण-पूर्व मे (आग्नेयकोण मे) विजयदेव की आभ्यन्तर पर्षदा के आठ हजार देवो के आठ हजार भद्रासन कहे गये है। उस सिंहासन के दक्षिण मे विजयदेव की मध्यम पर्षदा के दस हजार देवो के दस हजार भद्रासन कहे गये हैं। उस सिंहासन के दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण) मे विजयदेव की वाह्य-पर्षदा के वारह हजार देवो के वारह हजार भद्रासन कहे गये हैं।

उस सिंहासन के पश्चिम मे विजयदेव के सात अनीकाधिपतियो के सात भद्रासन कहे गये हैं। उस सिंहासन के पूर्व मे, दक्षिण मे, पश्चिम मे और उत्तर मे विजयदेव के सोलह हजार आत्मरक्षक देवो के सोलह हजार सिंहासन हैं। पूर्व मे चार हजार, इसी तरह चारो दिशाओ मे चार-चार हजार यावत् उत्तर मे चार हजार सिंहासन कहे गये हैं।

शेष भौमो मे प्रत्येक मे भद्रासन कहे गये है। (ये भद्रासन—सामानिकादि देव परिवारो से रहित जानने चाहिए।)

१३३. विजयस्स णं दारस्स उवरिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिता, तंजहा—रयणेहिं वेरुलिएहिं जाव रिट्ठेहिं। विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमगलगा पण्णत्ता, तंजहा—सोत्थिय-सिरिवच्छ जाव दप्पणा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। विजयस्स णं दारस्स उप्पिं बहवे कण्हचामरज्झया जाव सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा। विजयस्स ण दारस्स उप्पिं बहवे छत्ताइछत्ता तहेव।

[१३३] उस विजयद्वार का ऊपरी आकार (उत्तरागादि) सोलह प्रकार के रत्नो से उपशोभित है। जैसे वज्ररत्न, वैडूर्यरत्न यावत् रिष्टरत्न।[1] उस विजयद्वार पर बहुत से आठ-आठ मगल—स्वस्तिक, श्रीवत्स यावत् दर्पण कहे गये है। ये सर्वरत्नमय स्वस्छ यावत् प्रतिरूप है।

उस विजयद्वार के ऊपर वहुत से कृष्ण चामर के चिह्न से अकित ध्वजाएँ हैं। यावत् वे ध्वजाएँ सर्वरत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। उस विजयद्वार के ऊपर बहुत से छत्रातिछत्र कहे गये हैं। इन सवका वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

---

१. सोलह रत्नो के नाम—१ रत्न-सामान्य कर्केतनादि, २ वज्र, ३ वैडूर्य, ४ लोहिताक्ष, ५ मसारगल्ल, ६ हसगर्भ, ७. पुलक, ८ सौगधिक, ९ ज्योतिरस, १० अक, ११ अजन, १२ रजत, १३ जातरूप, १४ अजनपुलक, १५. स्फटिक, १६ रिष्ट।

१३४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ विजए णं दारे विजए णं दारे ?

गोयमा ! विजए णं दारे विजए णाम देवे महिड्ढीए महज्जुईए जाव महाणुभावे पलिग्रोव-मट्ठिईए परिवसति। से ण तत्थ चउण्ह सामाणियसाहस्सीणं, चउण्ह अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं आणियाणं, सत्तण्ह आणियाहिवईणं, सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीण, विजयस्स णं दारस्स विजयाए रायहाणीए, अण्णेसिं च बहूण विजयाए रायहाणीए वत्थव्वगाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—विजएदारे विजएदारे।

अदुत्तर च णं गोयमा ! विजयस्स णं दारस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते जं ण कयाइणासी, ण कयाए णत्थि, ण कयावि ण भविस्सइ जाव अवट्ठिए णिच्चे विजयदारे।

[१३४] हे भगवन् ! विजयद्वार को विजयद्वार क्यो कहा जाता है ?

गौतम् ! विजयद्वार मे विजय नाम का महर्द्धिक, महाद्युति वाला यावत् महान् प्रभाव वाला और एक पल्योपम की स्थिति वाला देव रहता है। वह चार हजार सामानिक देवो, चार सपरिवार अग्रमहिषियो, तीन पर्षदाओ, सात अनीको (सेनाओ), सात अनीकाधिपतियो और सोलह हजार आत्मरक्षक देवो का, विजयद्वार का, विजय राजधानी का और अन्य बहुत सारे विजय राजधानी के निवासी देवो और देवियो का आधिपत्य करता हुआ यावत् दिव्य[1] भोगोपभोगो को भोगता हुआ विचरता है। इस कारण हे गौतम ! विजयद्वार को विजयद्वार कहा जाता है।

हे गौतम ! विजयद्वार का यह नाम शाश्वत है। यह पहले नही था ऐसा नही, वर्तमान मे नही—ऐसा नही और भविष्य मे कभी नही होगा—ऐसा भी नही, यावत् यह अवस्थित और नित्य है।

१३५. (१) कहिं णं भंते ! विजयस्स देवस्स विजयाणाम रायहाणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! विजयस्स णं दारस्स पुरत्थिमेणं तिरियमसखेज्जे दीवसमुद्दे वीइवइत्ता अण्णम्मि जंबुद्दीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइ ओगाहित्ता एत्थ णं विजयस्स देवस्स विजयाणाम रायहाणी पण्णत्ता, बारस जोयणसहस्साइं आयाम-विक्खभेणं सत्ततीसं जोयणसहस्साइ नव य अडयाले जोयण-सए किंचि विसेसाहिया परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

सा णं एगेणं पागारेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। से णं पागारे सत्ततीसं जोयणाइं अद्ध-जोयण य उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले अद्धतेरस जोयणाइं विक्खभेण मज्झे सक्कोसाइं जोयणाइं विक्खभेण उप्पि तिण्णि सद्धकोसाइं जोयणाइ विक्खभेणं, मूले वित्थिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पि तणुए बाहिं वट्टे अतो चउरसे गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वकणगामए अच्छे जाव पडिरूवे।

से णं पागारे णाणाविहपंचवण्णेहिं कविसीसएहिं उवसोभिए, तंजहा—किण्हेहिं जाव सुक्कि-लेहिं। ते णं कविसीसगा अद्धकोसं आयामेणं पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं देसूणमद्धकोसं उड्ढं उच्चत्तेण सव्वमणिमया अच्छा जाव पडिरूवा।

---

१ भोगभोगाइ अर्थात् भोग योग्य शब्दादि भोगो को।

[१३५] (१) हे भगवन् ! विजयदेव की विजया नामक राजधानी कहाँ कही है ?

गौतम ! विजयद्वार के पूर्व मे तिरछे असख्य द्वीप-समुद्रो को पार करने के वाद अन्य जवूद्वीप[1] नाम के द्वीप मे वारह हजार योजन जाने पर विजयदेव की विजया राजधानी है जो वारह हजार योजन की लम्वी-चौडी है तथा सैंतीस हजार नौ सौ अडतालीस योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है।

वह विजया राजधानी चारो ओर से एक प्राकार (परकोटे) से घिरी हुई है। वह प्राकार साढे सैंतीस योजन ऊँचा है, उसका विष्कभ (चौडाई) मूल मे साढे वारह योजन, मध्य मे छह योजन एक कोस और ऊपर तीन योजन आधा कोस है, इस तरह वह मूल मे विस्तृत है, मध्य मे संक्षिप्त है और ऊपर तनु (कम) है। वह वाहर से गोल अन्दर से चौकोन, गाय की पूछ के आकार का है। वह सर्व स्वर्णमय है स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

वह प्राकार नाना प्रकार के पांच वर्णों के कपिशीर्षको (कगूरो) से सुशोभित है, यथा—कृष्ण यावत् सफेद कगूरो से। वे कंगूरे लम्वाई मे आधा कोस, चौडाई मे पाच सौ धनुप, ऊचाई मे कुछ कम आधा कोस है। वे कगूरे सर्व मणिमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

१३५ (२) विजयाए णं रायहाणीए एगमेगाए वाहाए पणुवीसं पणुवीस दारसयं भवतीति मक्खायं।

ते णं दारा वावट्ठि जोयणाइं अद्धजोयण च उड्ढ उच्चत्तेण एक्कतीस जोयणाइ कोसं च विक्खंभेण तावइय चेव पवेसेण सेया वरकणगथूभियागा ईहामिय० तहेव जहा विजएदारे जाव तवाणिज्जवालुगपत्थडा सुहफासा सस्सिरीया सरूवा पासाईया ४।

तेसिं णं दाराणं उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो दो चंदणकलसपरिवाडीओ पण्णत्ताओ तहेव भाणियव्व जाव वणमालाओ। तेसिं णं दाराणं उभओ पासिं दुहओ णिसीहियाए दो-दो पगंठगा पण्णत्ता। ते णं पगंठगा एक्कतीस जोयणाइं कोसं च आयामविक्खभेण पन्नरस जोयणाइं अड्ढाइज्जे कोसे वाहल्लेणं पण्णत्ता सव्ववइरामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तेसिं णं पगढगाणं उप्पिं पत्तेयं पत्तेयं पासायवडिंसगा पण्णत्ता। ते णं पासायवडिंसगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च उड्ढ उच्चत्तेणं पन्नरस जोयणाइं अड्ढाइज्जे य कोसे आयामविक्खभेणं सेस तं चेव जाव समुग्गया णवर वहुवयणं भाणियव्वं।

विजयाए णं रायहाणीए एगमेगे दारे अट्ठसय चक्कज्झयाण जाव अट्ठसय सेयाण चउविसाणाणं णागवरकेऊण एवामेव सपुव्वावरेण विजयाए रायहाणीए एगमेगे दारे असीयं असीयं केउसहस्सं भवतीति मक्खायं।

विजयाए णं रायहाणीए एगमेगे दारे (तेसिं च दाराणं पुरओ) सत्तरस सत्तरस भोमा पण्णत्ता। तेसिं णं भोमाणं (भूमिभागा) उल्लोया (य) पढमलया० भत्तिचित्ता।

तेसिं णं भोमाणं वहुमज्झदेसभाए जे ते नवमनवमा भोमा तेसिं ण भोमाण वहुमज्झदेसभाए

---
१ जम्बूद्वीप नाम के असख्यात द्वीप है। सवसे आभ्यन्तर जवूद्वीप से यहाँ मतलव नही है।

पत्तेयं पत्तेयं सीहासणा पण्णत्ता। सीहासणवण्णओ जाव दामा जहा हेट्ठा। एत्थ णं अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं पत्तेयं भद्दासणा पण्णत्ता। तेसिं णं दाराणं उवरिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया। तं चेव जाव छत्ताइछत्ता। एवामेव पुव्वावरेण विजयाए रायहाणीए पंच दारसया भवंतीति मक्खाया।

[१३५] (२) विजया राजधानी की एक-एक वाहा (दिशा) मे एक सौ पच्चीस, एक सौ पच्चीस द्वार कहे गये हैं। ऐसा मैंने और अन्य तीर्थंकरो ने कहा है। ये द्वार साढे वासठ योजन के ऊचे है, इनकी चौडाई इकतीस योजन और एक कोस है और इतना ही इनका प्रवेश है। ये द्वार श्वेत वर्ण के हैं, श्रेष्ठ स्वर्ण की स्तूपिका (शिखर) है, उन पर ईहामृग आदि के चित्र वने हैं—इत्यादि वर्णन विजयद्वार की तरह कहना चाहिए यावत् उनके प्रस्तर (आगन) मे स्वर्णमय वालुका विछी हुई है। उनका स्पर्श शुभ और सुखद है, वे शोभायुक्त सुन्दर प्रासादीय दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

उन द्वारो के दोनो तरफ दोनो नैषेधिकाओ मे दो-दो चन्दन-कलश की परिपाटी कही गई हैं—इत्यादि वनमालाओ तक का वर्णन विजयद्वार के समान कहना चाहिए। उन द्वारो के दोनो तरफ दोनो नैषेधिकाओ मे दो-दो प्रकण्ठक (पीठविशेष) कहे गये हैं। वे प्रकठक इकतीस योजन और एक कोस लम्वाई-चौडाई वाले हैं, उनकी मोटाई पन्द्रह योजन और ढाई कोस है, वे सर्व वज्रमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं।

उन प्रकण्ठको के ऊपर प्रत्येक पर अलग-अलग प्रासादावतसक कहे गये है। वे प्रासादावतसक इकतीस योजन एक कोस ऊचे हैं, पन्द्रह योजन ढाई कोस लम्वे-चौड़े हैं। शेप वर्णन समुद्गक पर्यन्त विजयद्वार के समान ही कहना चाहिए, विशेषता यह है कि वे सव वहुवचन रूप कहने चाहिए।

उस विजया राजधानी के एक-एक द्वार पर १०८ चक्र से चिह्नित ध्वजाएँ यावत् १०८ श्वेत और चार दात वाले हाथी से अकित ध्वजाएँ कही गई हैं। ये सव आगे-पीछे की ध्वजाएँ मिलाकर विजया राजधानी के एक-एक द्वार पर एक हजार अस्सी ध्वजाएँ कही गई हैं।

विजया राजधानी के एक-एक द्वार पर (उन द्वारो के आगे) सत्रह भौम (विशिष्टस्थान) कहे गये हैं। उन भौमों के भूमिभाग और अन्दर की छतें पद्मलता आदि विविध चित्रो से चित्रित हैं।

उन भौमो के वहुमध्य भाग मे जो नौवें भौम हैं, उनके ठीक मध्यभाग में अलग-अलग सिंहासन कहे गये हैं। यहाँ सिंहासन का पूर्ववर्णित वर्णनक कहना चाहिए यावत् सिंहासनो में मालाएँ लटक रही हैं। शेष भौमो मे अलग-अलग भद्रासन कहे गये हैं। उन द्वारो के ऊपरी भाग सोलह प्रकार के रत्नो से शोभित हैं आदि वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए यावत् उन पर छत्र पर छत्र लगे हुए हैं। इस प्रकार सव मिलाकर विजया राजधानी के पाच सौ द्वार होते हैं। ऐसा मैंने और अन्य तीर्थंकरों ने कहा है।

विवेचन—प्रस्तुतसूत्र मे विजया राजधानी का वर्णन करते हुए अनेक स्थानो पर विजयद्वार का अतिदेश किया गया है। 'जहा विजयदारे' कहकर यह अतिदेश किया गया है। इस अतिदेश के पाठो मे विभिन्न प्रतियो मे विविध पाठ हैं। श्री मलयगिरि की वृत्ति के पढने पर स्पष्ट हो जाता है कि उन आचार्यश्री के सम्मुख कोई दूसरी प्रति थी जो अव उपलव्ध नही है। क्योंकि इस सूत्र की वृत्ति मे आचार्यश्री ने उल्लेख किया है—'शेषमपि तोरणादिक विजयद्वारवदिमाभिर्वक्ष्य-

माणाभिर्गाथाभिरनुगन्तव्यम्, ता एव गाथा आह—'तोरणे, इत्यादि गाथात्रयम्' अर्थात् शेष तोरणादिक का कथन विजयद्वार की तरह इन तीन गाथाओ से जानना चाहिए। वे गाथाएँ इस प्रकार हैं 'तोरण' आदि।' वृत्तिकार ने तीन गाथाओ की वृत्ति की है इससे सिद्ध होता है कि उनके सन्मुख जो प्रति थी उसमे उक्त तीन गाथाएँ मूल पाठ मे होनी चाहिए। वर्तमान मे उपलब्ध प्रतियो मे ये तीन गाथाएँ नही मिलती है। वृत्ति के अनुसार उन गाथाओ का भावार्थ इस प्रकार है—

उस विजया राजधानी के द्वारो मे प्रत्येक नैपेधिकी मे दो-दो तोरण कह गये है, उन तोरणो के ऊपर प्रत्येक पर आठ-आठ मगल हैं, उन तोरणो पर कृष्ण चामर आदि से अकित ध्वजाएँ है। उसके वाद तोरणो के आगे शालभजिकाएँ है, तदनन्तर नागदतक है। नागदन्तको मे मालाएँ हैं। तदनन्तर हयसघाटादि सघाटक है, तदनन्तर हयपक्तियाँ, तदनन्तर हयवीथियाँ आदि, तदनन्तर हयमिथुनकादि, तदनन्तर पद्मलतादि लताएँ, तदनन्तर चतुर्दिक स्वस्तिक, तदनन्तर चन्दनकलश, तद-नन्तर भृगारक, तदनन्तर आदर्शक, फिर स्थाल, फिर पात्रियाँ, फिर सुप्रतिष्ठक, तदनन्तर मनोगुलिका, उनमे जलशून्य वातकरक (घडे), तदनन्तर रत्नकरण्डक, फिर हयकण्ठ, गजकण्ठ, नरकण्ठ, किन्नर-किंपुरुप-महोरग-गन्धर्व-वृपभ-कण्ठ क्रम से कहने चाहिये। तदनन्तर पुष्पचगेरिया कहनी चाहिए। फिर पुष्पादि पटल, सिंहासन, छत्र, चामर, तैलसमुद्गक आदि कहने चाहिए और फिर ध्वजाएँ कहनी चाहिए। ध्वजाओ का चरम सूत्र है—उस विजया राजधानी के एक-एक द्वार पर एक हजार अस्सी ध्वजाएँ मैंने और अन्य तीर्थंकरो ने कही है।

ध्वजासूत्र के वाद भौम कहने चाहिए। भौमो के भूमिभाग और उल्लोको (भीतरी छतो) का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। उन भौमो के ठीक मध्यभाग मे नवमे-नवमे भौम के मध्यभाग मे विजयदेव के योग्य सिंहासन है जैसे कि विजयद्वार के पाचवे भौम मे है किन्तु सपरिवार सिंहासन कहने चाहिए। शेप भौमो मे सपरिवार भद्रासन कहने चाहिए। उन द्वारो का उपरी आकार सोलह प्रकार के रत्नो से उपशोभित है। सोलह रत्नो के नाम पूर्व मे कहे जा चुके है। यावत् उन पर छत्र पर छत्र लगे हुए हैं। इस प्रकार सव मिलाकर (विजय) राजधानी के पाच सौ द्वार कहे गये हैं।

१३६. [१] विजयाए ण रायहाणीए चउद्दिसि पचपचजोयणसयाइ अबाहाए, एत्थ णं चत्तारि वणसंडा पण्णत्ता, तं जहा—असोगवणे सत्तिवण्णवणे चंपकवणे चूयवणे। पुरत्थिमेणं असोगवणे, दाहिणेणं सत्तिवण्णवणे, पच्चत्थिमेणं चपगवणे उत्तरेण चूयवणे। ते णं वणसंडा साइरेगाइ दुवालस-जोयणसहस्साइं आयामेण पंचजोयणसयाइ विक्खभेण पण्णत्ता पत्तेयं पत्तेय पागारपरिक्खित्ता किण्हा किण्होभासा वणसडवण्णओ भाणियव्वो जाव वहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयति सयति चिट्ठंति णिसीदंति तुयट्टंति रमति ललति कीलंति मोहति पुरापोराणाण सुचिण्णाणं सुपरक्कताणं सुभाणं कम्माणं कडाणं कल्लाणाण फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरति।

तेसिं णं वणसंडाणं वहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं पासायवडिसगा पण्णत्ता, ते णं पासाय-वडिसगा वावट्ठि जोयणाइं अद्धजोयण च उड्ढ उच्चत्तेण, एक्कतीस जोयणाइ कोसं च आयामविक्खभेणं अब्भुग्गयमुस्सिअ० तहेव जाव अतो वहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता उल्लोया पउमलयाभत्तिचित्ता भाणियव्वा। तेसिं ण पासायवडिसगाण वहुमज्झदेसभाए पत्तेय पत्तेयं सीहासणा पण्णत्ता वण्णावासो सपरिवारा। तेसिं ण पासायवडिसगाण उप्पिं वहवे अट्ठट्ठमगलगा झया छत्ताइछत्ता।

तत्थ ण चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिइया परिवसति, तं जहा—असोए, सत्तिवण्णे, चपए, चूए। तत्थ ण ते साण साण वणसडाण साणं साण पासायवडेंसयाण साण साणं सामाणियाणं साण साण अग्गमहिसीणं साण साण परिसाण साण साण आयरक्खदेवाण आहेवच्चं जाव विहरति।

[१३६] (१) उस विजया राजधानी की चारो दिशाओ मे पाच-पाच सौ योजन के अपान्तराल को छोडने के वाद चार वनखड कहे गये हैं, यथा—१ अशोकवन, २ सप्तपर्णवन, ३ चम्पकवन और ४ आम्रवन। पूर्वदिशा मे अशोकवन है, दक्षिणदिशा मे सप्तपर्णवन है। पश्चिमदिशा मे चपकवन है और उत्तरदिशा मे आम्रवन है। वे वनखण्ड कुछ अधिक वारह हजार योजन के लम्बे और पाच सौ योजन के चौडे हैं। वे प्रत्येक एक-एक प्राकार से परिवेष्ठित है, काले है, काले ही प्रतिभासित होते हैं—इत्यादि वनखण्ड का वर्णनक कह लेना चाहिए यावत् वहाँ वहुत से वानव्यतर देव और देवियाँ स्थित होती है, सोती है (लेटती है क्योकि देवयोनि मे निद्रा नही होती), ठहरती है, वैठती हैं, करवट वदलती है, रमण करती हैं, लीला करती हैं, क्रीडा करती हैं, कामक्रीडा करती है और अपने पूर्व जन्म मे पुराने अच्छे अनुष्ठानो का, सुपराक्रान्त तप आदि का और किये हुए शुभ कर्मों का कल्याणकारी फलविपाक का अनुभव करती हुई विचरती है।

उन वनखण्डो के ठीक मध्यभाग मे अलग-अलग प्रासादावतसक कहे गये हैं। वे प्रासादावतसक साढे वासठ योजन ऊँचे, इकतीस योजन और एक कोस लम्वे-चौडे है। ये प्रासादावतसक चारो तरफ से निकलती हुई प्रभा से वधे हुए हो अथवा श्वेतप्रभा पटल से हसते हुए-से प्रतीत होते हैं, इत्यादि वर्णन जानना चाहिए यावत् उनके अन्दर वहुत समतल एव रमणीय भूमिभाग है, भीतरी छतो पर पद्मलता आदि के विविध चित्र वने हुए हैं।

उन प्रासादावतसको के ठीक मध्यभाग मे अलग अलग सिंहासन कहे गये हैं। उनका वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए यावत् सपरिवार सिंहासन जानने चाहिए। उन प्रासादावतसको के ऊपर वहुत से आठ-आठ मगलक हैं, ध्वजाएँ है और छत्रो पर छत्र हैं।

वहाँ चार देव रहते है जो महर्द्धिक यावत् पल्योपम की स्थिति वाले है, उनके नाम है—१ अशोक, २ सप्तपर्ण, ३ चपक और ४ आम्र। वे अपने-अपने वनखड का, अपने-अपने प्रासादावतसक का, अपने-अपने सामानिक देवो का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियो का, अपनी-अपनी पर्षदा का और अपने-अपने आत्मरक्षक देवो का आधिपत्य करते हुए यावत् विचरते है।

१३६ (२) विजयाए णं रायहाणीए अतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए तणसद्दविहूणे जाव देवा य देवीओ य आसयंति जाव विहरति।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण एगे महं ओवरियालेणे पण्णत्ते, बारस जोयणसयाइं आयाम-विक्खभेण तिन्नि जोयणसहस्साइं सत्त य पंचाणउए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेण अद्धकोस बाहल्लेणं सव्वजम्बूणदामए णं अच्छे जाव पडिरूवे।

से ण एगाए पउमवरवेइयाए, एगेणं वणसडेणं सव्वओ समत्ता संपरिक्खित्ते। पउमवरवेइयाए-वण्णओ, वणसंडवण्णओ, जाव विहरंति। से ण वणसडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं ओवारियालयणसमे परिक्खेवेण, तस्स णं ओवारियालयणस्स चउद्दिसि चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ। तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाण पुरओ पत्तेयं पत्तेयं तोरणा पण्णत्ता छत्ताइछत्ता।

तस्स णं ओवारियालयणस्स उप्पिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणिहिं उवसोभिए मणिवण्णओ, गंधरसफासो। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं एगे महं मूलपासायवडिसए पण्णत्ते।

से णं पासायवडिसए बावट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइं कोसं य आयाम-विक्खभेणं अब्भुग्गयमूसियप्पहसिए तहेव। तस्स णं पासायवडिसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणिफासे उल्लोए।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता। सा च एगं जोयणमायामविक्खभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा सण्हा।

तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते, एवं सीहासणवण्णओ सपरिवारो। तस्स णं पासायवडिसगस्स उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया, छत्ताइछत्ता।

से णं पासायवडिसए अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडिसएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, ते णं पासायवडिसगा एक्कतीसं जोयणाइं कोसं य उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धसोलसजोयणाइं अद्धकोसं य आयाम-विक्खभेणं अब्भुग्गय० तहेव तेसिं णं पासायवडिसगाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा उल्लोया। तेसिं णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं सीहासणं पण्णत्तं, वण्णओ। तेसिं परिवारभूया भद्दासणा पण्णत्ता। तेसिं णं अट्ठट्ठमंगलगा, झया, छत्ताइछत्ता।

ते णं पासायवडिसगा अण्णेहिं चउहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ते णं पासायवडिसगा अद्धसोलसजोयणाइं अद्धकोसं य उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं अट्ठजोयणाइं आयाम-विक्खभेणं अब्भुग्गय० तहेव। तेसिं णं पासायवडेंसगाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा उल्लोया। तेसिं णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झभाए पत्तेयं पत्तेयं पउमासणा पण्णत्ता। तेसिं णं पासायवडिसगाणं उप्पिं बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

ते णं पासायवडेंसगा अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडेंसएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ते णं पासायवडेंसगा देसूणाइं अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं चत्तारि जोयणाइं आयाम-विक्खभेणं अब्भुग्गय० तहेव भूमिभागा उल्लोया। भद्दासणाइं उवरिं मंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

ते णं पासायवडिसगा अण्णेहिं चउहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं पासायवडिसएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ते णं पासायवडिसगा देसूणाइं चत्तारि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं देसूणाइं दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं अब्भुग्गयमुस्सिय० भूमिभागा उल्लोया। पउमासणाइं उवरिं मंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

[१३६] (२) विजय राजधानी के अन्दर बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है यावत् वह पांच वर्णों की मणियों से शोभित है। तृण-शब्दरहित मणियों का स्पर्श यावत् देव-देवियां वहाँ

उठती-बैठती है यावत् पुराने कर्मों का फल भोगती हुई विचरती है। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के मध्य मे एक बडा उपकारिकालयन[1]—विश्रामस्थल कहा गया है जो बारह सौ योजन का लम्बा-चौडा और तीन हजार सात सौ पिचानवै योजन से कुछ अधिक की उसकी परिधि है। आधा कोस (एक हजार धनुष) की उसकी मोटाई है। वह पूर्णतया स्वर्ण का है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है।

वह उपकारिकालयन एक पद्मवरवेदिका और एक वनखड से चारो ओर से परिवेष्ठित है। पद्मवरवेदिका का वर्णनक और वनखड का वर्णनक कहना चाहिए यावत् यहाँ वानव्यन्तर देव-देविया कल्याणकारी पुण्यफलो का अनुभव करती हुई विचरती है।

वह वनखण्ड कुछ कम दो योजन चक्रवाल विष्कभ वाला (घेरे वाला) और उपकारिकालयन के परिक्षेप के तुल्य (३७९५ योजन से कुछ अधिक) परिक्षेप वाला है।

उस उपकारिकालयन के चारो दिशाओ मे चार त्रिसोपानप्रतिरूपक कहे गये है। उनका वर्णनक कहना चाहिए। उन त्रिसोपानप्रतिरूपको के आगे अलग-अलग तोरण कहे गये हैं यावत् छत्रो पर छत्र हैं।

उस उपकारिकालयन के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है यावत् वह मणियो से उपशोभित है। मणियो का वर्णनक कहना चाहिए। मणियो के गध, रस और स्पर्श का कथन कर लेना चाहिए। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य मे एक बडा मूल प्रासादावतसक कहा गया है। वह प्रासादावतसक साढे बासठ योजन का ऊँचा और इकतीस योजन एक कोस की लबाई-चौडाई वाला है। वह सब ओर से निकलती हुई प्रभाकिरणो से हँसता हुआ-सा लगता है आदि वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। उस प्रासादावतसक के अन्दर बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा है यावत् मणियो का स्पर्श और भीतो पर विविध चित्र है।

उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्यभाग मे एक बडी मणिपीठिका कही गई है। वह एक योजन की लम्बी-चौडी और आधा योजन की मोटाई वाली है। वह सर्वमणिमय, स्वच्छ और मृदु है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक बडा सिंहासन है। सिंहासन का सपरिवार वर्णनक कहना चाहिए। उस प्रासादावतसक के ऊपर बहुत से आठ-आठ मगल, ध्वजाएँ और छत्रातिछत्र हैं।

वे प्रासादावतसक अन्य उनसे आधी ऊँचाई वाले चार प्रासादावतसको से सब ओर से घिरे हुए है। वे प्रासादावतसक इकतीस योजन एक कोस की ऊँचाई वाले साढे पन्द्रह योजन और आधा कोस के लम्बे-चौडे, किरणो से युक्त आदि वैसा ही वर्णन कर लेना चाहिए। उन प्रासादावतसको के अन्दर बहुसमरमणीय भूमिभाग यावत् चित्रित भीतरी छत है। उन बहुसमरमणीय भूमिभाग के बहुमध्यदेशभाग मे प्रत्येक मे अलग-अलग सिंहासन है। सिंहासन का वर्णनक कहना चाहिए। उन सिंहासनो के परिवार के तुल्य वहाँ भद्रासन[2] कहे गये है। इन प्रासादावतसको के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाएँ और छत्रातिछत्र है।

---

१ वृत्तिकार ने 'राजधानी के प्रासादावतसकादि की पीठिका' ऐसा अर्थ करते हुए लिखा है कि अन्यत्र इसे 'उपकार्योपकारका' कहा है। कहा है—'गृहस्थान स्मृत राज्ञामुपकार्योपकारका' इति।

२ वृत्ति मे कहा गया है कि 'नवरमत्र सिंहासनाना शेपाणि परिवार भूतानि न वक्तव्यानि।'

वे प्रासादावतसक उनसे आधी ऊँचाई वाले अन्य चार प्रासादावतसको से सब ओर से वेष्ठित है। वे प्रासादावतसक साढे पन्द्रह योजन और आधे कोस के ऊँचे और कुछ कम आठ योजन की लम्बाई-चौडाई वाले हैं, किरणो से युक्त आदि पूर्ववत् वर्णन जानना चाहिए। उन प्रासादावतसको के अन्दर वहुसमरमणीय भूमिभाग हैं और चित्रित छतो के भीतरी भाग हैं। उन बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य मे अलग-अलग पद्मासन कहे गये है। उन प्रासादावतसको के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाएँ और छत्रातिछत्र हैं।

वे प्रासादावतसक उनसे आधी ऊँचाई वाले अन्य चार प्रासादावतसको से सब ओर से घिरे हुए हैं। वे प्रासादावतसक कुछ कम आठ योजन की ऊँचाई वाले और कुछ कम चार योजन की लम्बाई-चौडाई वाले हैं, किरणो से व्याप्त है। भूमिभाग, उल्लोक और भद्रासन का वर्णन जानना चाहिए। उन प्रासादावतसको पर आठ आठ मगल, ध्वजा और छत्रातिछत्र हैं।

वे प्रासादावतसक उनसे आधी ऊँचाई वाले अन्य चार प्रासादावतसको से चारो ओर से घिरे हुए है। वे प्रासादावतसक कुछ कम चार योजन के ऊँचे और कुछ कम दो योजन के लम्बे-चौडे हैं, किरणो से युक्त है आदि वर्णन कर लेना चाहिए। उन प्रासादावतसको के अन्दर भूमिभाग, उल्लोक, और पद्मासनादि कहने चाहिए। उन प्रासादावतसको के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाएँ और छत्रातिछत्र हैं।[1]

सुधर्मा सभा का वर्णन

१३७ (१) तस्स णं मूलपासायवडेंसगस्स उत्तरपुरत्थिमेणं, एत्थ णं विजयस्स देवस्स सभा सुधम्मा पण्णत्ता, अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं छ सक्कोसाइं जोयणाइं विक्खभेणं णव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अणेगखंभसयसन्निविट्ठा, अब्भुग्गयसुकयवइरवेदियातोरणवररइयसालभंजिया, सुसिलिट्ठ-विसिट्ठलट्ठसठियपसत्थवेरुलियविमलखभा णाणामणिकणगरयणखइय-उज्जल-बहुसमसुविभत्तचित्त (णिचिय)रमणिज्जकुट्टिमतला[2] ईहामियउसभतुरगणरमगरविहगवालगकिण्णररुरुसरभचमरकुंजरवण-लयपउमलयभत्तिचित्ता, थंभुग्गयवइरवेदियापरिगयाभिरामा विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्ताविव अच्चि-सहस्समालणीया रूवगसहस्सकलिया भिसमाणी भिब्भिसमाणी चक्खुलोयणलेसा सुहफासा सस्सिरीय-रूवा कंचणमणिरयणथूभियागा णाणाविहपचवण्णघंटापडागपडिमंडितग्गसिहरा धवला मिरीइकवचं विणिम्मुयती लाउल्लोइयमहिया गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिन्नपंचगुलितला उवचियचंदणकलसा चदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरस-सुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघतगंधद्धुयाभिरामा सुगधवर-गंधिया गधवट्टिभूया अच्छरगणसघविकिन्ना दिव्वतुडियमधुरसद्दसंपणादिया सुरम्मा सव्वरयणामई अच्छा जाव पडिरूवा।

१ वृत्तिकार ने कहा है कि 'इस प्रकार प्रासादावतसको की चार परिपाटिया होती हैं। कही तीन ही परिपाटिया कही गई हैं, चौथी परिपाटी नही कही है।'—(तदेव चतस्र प्रासादावतसकपरिपाट्यो भवन्ति, क्वचित्तिस्र एव दृश्यन्ते, न चतुर्थी।)

२. 'रमणिज्जभूमिभागा' इति वृत्तौ।

[१३७] (१) उस मूल प्रासादावतसक के उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) मे विजयदेव की सुधर्मा नामक सभा है जो साढे बारह योजन लम्बी, छह योजन और एक कोस की चौडी तथा नौ योजन की ऊँची है। वह सैकडो खभो पर स्थित है, दर्शको की नजरो मे चढी हुई (मनोहर) और भलीभाति बनाई हुई उसकी वज्रवेदिका है, श्रेष्ठ तोरण पर रति पैदा करने वाली शालभजिकाये (पुत्तलिकायें) लगी हुई है, सुसवद्ध, प्रधान और मनोज्ञ आकृति वाले प्रशस्त वैडूर्यरत्न के निर्मल उसके स्तम्भ है, उसका भूमिभाग नाना प्रकार के मणि, कनक और रत्नो से खचित है, निर्मल है, समतल हैं, सुविभक्त, निबिड और रमणीय है। ईहामृग, बैल, घोडा, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु (मृग), सरभ (अष्टापद), चमर, हाथी, वनलता, पद्मलता, आदि के चित्र उस सभा मे बने हुए है, अतएव वह बहुत आकर्षक है। उसके स्तम्भो पर वज्र की वेदिका बनी हुई होने से वह बहुत सुन्दर लगती है। सम-श्रेणी के विद्याधरो के युगलो के यन्त्रो (शक्तिविशेष) के प्रभाव से यह सभा हजारो किरणो से प्रभासित हो रही है। यह हजारो रूपको से युक्त है, दीप्यमान है, विशेष दीप्यमान है, देखने वालो के नेत्र उसी पर टिक जाते हैं, उसका स्पर्श बहुत ही शुभ और सुखद है, वह बहुत ही शोभायुक्त है। उसके स्तूप का अग्रभाग (शिखर) सोने से, मणियो से और रत्नो से बना हुआ है, उसके शिखर का अग्रभाग नाना प्रकार के पाच वर्णों की घटाओ और पताकाओ से परिमडित है, वह सभा श्वेतवर्ण की है, वह किरणो के समूह को छोडती हुई प्रतीत होती है, वह लिपी हुई और पुती हुई है, गोशीर्ष चन्दन और सरस लाल चन्दन से बडे बडे हाथ के छापे लगाये हुए हैं, उसमे चन्दनकलश अथवा वन्दन (मगल) कलश स्थापित किये हुए है, उसके द्वारभाग पर चन्दन के कलशो से तोरण सुशोभित किये गये है, ऊपर से लेकर नीचे तक विस्तृत, गोलाकार और लटकती हुई पुष्पमालाओ से वह युक्त है, पाच वर्ण के सरस-सुगधित फूलो के पुज से वह सुशोभित है, काला अगर, श्रेष्ठ कुन्दुरुक (गन्धद्रव्य) और तुरुष्क (लोभान) के धूप की गध से वह महक रही है, श्रेष्ठ सुगधित द्रव्यो की गध से वह सुगन्धित है, सुगन्ध की गुटिका के समान सुगन्ध फैला रही है। वह सुधर्मा सभा अप्सराओ के समुदायो से व्याप्त है, दिव्यवाद्यो के शब्दो से वह निनादित हो रही है—गूज रही है। वह सुरम्य है, सर्वरत्नमयी है, स्वच्छ है, यावत् प्रतिरूप है।

१३७. (२) तीसे णं सुहम्माए सभाए तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता। ते णं दारा पत्तेय पत्तेय दो दो जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेणं एग जोयण विक्खभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेया वरकणगथूभि-यागा जाव वणमाला-दार-वण्णओ। तेसिं ण दाराणं पुरओ मुहमंडवा पण्णत्ता। ते णं मुहमंडवा अद्ध-तेरस जोयणाइ आयामेण छ जोयणाइं सक्कोसाइ विक्खभेण साइरेगाइ दो जोयणाइ उड्ढं उच्चत्तेण अणेगखंभसयसन्निविट्ठा जाव उल्लोया भूमिभागवण्णओ। तेसिं णं मुहमडवाणं उपरि पत्तेय पत्तेय अट्ठट्ठ मंगलगा पण्णत्ता सोत्थिय जाव दप्पणा[1]। तेसिं णं मुहमंडवाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेय पेच्छाघरमंडवा पण्णत्ता; ते ण पेच्छाघरमडवा अद्धतेरसजोयणाइं आयामेणं जाव दो जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं जाव मणिफासो।

तेसिं णं बहुमज्झदेसभाए पत्तेय पत्तेयं वइरामयअक्खाडगा पण्णत्ता। तेसिं णं वइरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेसं मणिपीढिया पण्णत्ता। ताओ णं मणिपीढियाओ जोयणमेगं

१ मच्छ०।

आयाम-विक्खभेणं अद्धजोयण बाहल्लेण सव्वमणिमईश्रो अच्छाओ जाव पडिरूवाश्रो । तासि णं मणिपीढियाण उप्पि पत्तेयं पत्तेयं सोहासणा पण्णत्ता, सोहासणवण्णओ जाव दामा परिवारो ।

तेसि णं पेच्छाघरमडवाण उप्पि अट्ठट्ठमगलगा झया छत्ताइछत्ता । तेसि ण पेच्छाघरमडवाण पुरओ तिदिसि तओ मणिपेढियाश्रो पण्णत्ताओ । ताओ णं मणिपेढियाओ दो दो जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं जोयण बाहल्लेण सव्वमणिमईओ श्रच्छाओ जाव पडिरूवाओ ।

तासि णं मणिपेढियाण उप्पि पत्तेय पत्तेय चेइयथूभा पण्णत्ता । ते णं चेइयथूभा दो जोयणाइ आयामविक्खंभेणं सातिरेगाइं दो जोयणाइ उड्ढं उच्चतेणं सेया सखककु ददगरयामयमहितफेणपुंज-सन्निकासा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

तेसि णं चेइयथूभाणं उप्पि अट्ठट्ठमगलगा बहुकिण्ह चामरझया पण्णत्ता छत्ताइछत्ता ।

तेसि णं चेइयथूभाण चउद्दिसि पत्तेय पत्तेय चत्तारि मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ । ताओ णं मणिपेढियाश्रो जोयणं आयामविक्खभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेण सव्वमणिमईओ ।

तासि णं मणिपेढियाणं उप्पि पत्तेय पत्तेय चत्तारि जिणपडिमाओ जिणुस्सेहपमाणमेत्ताओ पलियंकणिसन्नाश्रो थूभाभिमुहीओ सन्निविट्ठाओ चिट्ठंति, तं जहा—उसभा वद्धमाणा चदाणणा वारिसेणा ।

[१३७] (२) उस सुधर्मा सभा की तीन दिशाश्रो मे तीन द्वार कहे गये हैं। वे प्रत्येक द्वार दो-दो योजन के ऊँचे, एक योजन विस्तार वाले श्रौर इतने ही प्रवेश वाले है । वे श्वेत हैं, श्रेष्ठ स्वर्ण की स्तूपिका वाले है इत्यादि पूर्वोक्त द्वारवर्णन वनमाला पर्यन्त कहना चाहिए । उन द्वारो के श्रागे मुखमडप कहे गये हैं । वे मुखमण्डप साढे वारह योजन लम्बे, छह योजन श्रौर एक कोस चौडे, कुछ श्रधिक दो योजन ऊँचे, श्रनेक सैकडो खम्भो पर स्थित है यावत् उल्लोक (छत) श्रौर भूमिभाग का वर्णन कहना चाहिए । उन मुखमण्डपो के ऊपर प्रत्येक पर श्राठ-श्राठ मगल—स्वस्तिक यावत् दर्पण कहे गये हैं । उन मुखमण्डपो के श्रागे श्रलग-श्रलग प्रेक्षाघरमण्डप कहे गये है । वे प्रेक्षाघरमण्डप साढे वारह योजन लम्वे, छह योजन एक कोस चौडे श्रौर कुछ श्रधिक दो योजन ऊँचे हैं, मणियो के स्पर्श वर्णन तक प्रेक्षाघरमण्डपो श्रौर भूमिभाग का वर्णन कर लेना चाहिए । उनके ठीक मध्यभाग मे श्रलग-श्रलग वज्रमय श्रक्षपाटक (चौक, अखाडा) कहे गये है । उन वज्रमय श्रक्षपाटको के वहुमध्य भाग मे श्रलग-श्रलग मणिपीठिकाएँ कही गई हैं । वे मणिपीठिकाएँ एक योजन लम्बी चौडी, श्राधा योजन मोटी है, सर्वमणियो की वनी हुई है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है । उन मणिपीठिकाश्रो के ऊपर श्रलग-श्रलग सिंहासन है । यहाँ सिंहासन का वर्णन, मालाश्रो का वर्णन, परिवार का वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए ।

उन प्रेक्षाघरमण्डपो के ऊपर श्राठ-श्राठ मगल, ध्वजाएँ श्रौर छत्रो पर छत्र हैं ।

उन प्रेक्षाघरमण्डपो के श्रागे तीन दिशाश्रो मे तीन मणिपीठिकाएँ हैं। वे मणिपीठिकाएं दो योजन लम्वी-चौडी श्रौर एक योजन मोटी है, सर्वमणिमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं ।

उन मणिपीठिकाश्रो के ऊपर श्रलग-श्रलग चैत्यस्तूप कहे गये हैं। वे चैत्यस्तूप दो योजन लम्वे-चौडे श्रौर कुछ श्रधिक दो योजन ऊँचे है । वे शख, अकरत्न, कुद (मोगरे का फूल)

दगरज (जलविन्दु), क्षीरोदधि के मथित फेनपुज के समान सफेद हैं, सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ हैं यावत् प्रतिरूप हैं।

उन चैत्यस्तूपो के ऊपर आठ-आठ मगल, बहुत-सी कृष्णचामर से अकित ध्वजाएँ आदि और छत्रातिछत्र कहे गये हैं।

उन चैत्यस्तूपो के चारो दिशाओ मे अलग-अलग चार मणिपीठिकाएँ कही गई हैं। वे मणिपीठिकाएँ एक योजन लम्बी-चौडी और आधा योजन मोटी सर्वमणिमय हैं।

उन मणिपीठिकाओ के ऊपर अलग-अलग चार जिन-प्रतिमाएँ कही गई हैं जो जिनोत्सेध-प्रमाण (उत्कृष्ट पाच सौ धनुप और जघन्य सात हाथ, यहाँ पाच सौ धनुप समझना चाहिए) हैं, पर्यंकासन (पालथी) मे बैठी हुई हैं, उनका मुख स्तूप की ओर है। इन प्रतिमाओ के नाम हैं—ऋषभ, वर्द्धमान, चन्द्रानन और वारिषेण।

१३७. (३) तेसि णं चेइयथूभाणं पुरओ तिदिसिं पत्तेय पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढियाओ दो दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं वाहल्लेण सव्वमणिमईओ अच्छाओ लण्हाओ सण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ निप्पंकाओ णीरयाओ जाव पडिरूवाओ।

तासि णं मणिपेढियाणं उप्पि पत्तेय पत्तेयं चेइयरुक्खा पण्णत्ता। ते णं चेइयरुक्खा अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धजोयणं उव्वेहेणं दो जोयणाइं खंधो अद्धजोयणं विक्खंभेणं छज्जोयणाइं विडिमा बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणाइ आयामविक्खंभेण साइरेगाइं अट्ठजोयणाइं सव्वग्गेण पण्णत्ता।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—वइरामया मूला रययसुपइट्ठिया विडिमा रिट्ठामयविपुलकंदवेरुलियरुइलखंधा सुजातरूवपढमगविसालसाला नानामणिरयणविविहसाहप्पसाहवेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तवेंटा जंबूणयरत्तमउयसुकुमालपवालपल्लवसोभंतवरंकुरग्गसिहरा विचित्तमणिरयणसुरभिकुसुमफलभरणमियसाला सच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया अमयरससमरसफला अहियं णयणमणणिव्वुइकरा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

ते णं चेइयरुक्खा अन्नेहिं बहूहिं तिलय-लवय-छत्तोवग-सिरीस-सत्तवण्ण-दहिवण्ण-लोद्ध-धव-चदन-नीव-कुडय-कयंव-पणस-ताल-तमाल-पियाल-पियंगु-पारावय-रायरुक्ख-नंदिरुक्खेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता।

ते णं तिलया जाव नंदिरुक्खा मूलवंता कंदवंता जाव सुरम्मा। ते णं तिलया जाव नंदिरुक्खा अन्नेहिं बहूहिं पउमलयाहिं जाव सामलयाहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ताओ ण पउमलयाओ जाव सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ जाव पडिरूवाओ।

तेसि ण चेइयरुक्खाण उप्पि वहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

[१३७] (३) उन चैत्यस्तूपो के आगे तीन दिशाओ मे अलग-अलग मणिपीठिकाएँ कही गई हैं। वे मणिपीठिकाएँ दो-दो योजन की लम्बी-चौडी और एक योजन मोटी हैं, सर्वमणिमय हैं, स्वच्छ हैं, मृदु पुद्गलो से निर्मित हैं, चिकनी हैं, घृष्ट हैं, मृष्ट हैं, पकरहित, रजरहित यावत् प्रतिरूप हैं।

१ वरकुमरा इति पाठान्तरम्।

उन मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग-अलग चैत्यवृक्ष कहे गये है। वे चैत्यवृक्ष आठ योजन ऊँचे है, आधा योजन जमीन मे है, दो योजन ऊँचा उनका स्कन्ध (धड, तना) है, आधा योजन उस स्कन्ध का विस्तार है, मध्यभाग मे ऊर्ध्व विनिर्गत शाखा (विडिमा) छह योजन ऊँची है, उस विडिमा का विस्तार अर्धयोजन का है, सब मिलाकर वे चैत्यवृक्ष आठ योजन से कुछ अधिक ऊँचे है।

उन चैत्यवृक्षो का वर्णन इस प्रकार कहा है—उनके मूल वज्ररत्न के हैं, उनकी ऊर्ध्व विनिर्गत शाखाएँ रजत की हैं और सुप्रतिष्ठित है, उनका कन्द रिष्टरत्नमय है, उनका स्कध वैडूर्यरत्न का है और रुचिर है, उनकी मूलभूत विशाल शाखाएँ शुद्ध और श्रेष्ठ स्वर्ण की है, उनकी विविध शाखा-प्रशाखाएँ नाना मणिरत्नो की है, उनके पत्ते वैडूर्यरत्न के है, उनके पत्तो के वृन्त तपनीय स्वर्ण के हैं। जम्बूनद जाति के स्वर्ण के समान लाल, मृदु, सुकुमार प्रवाल (पत्र के पूर्व की स्थिति) और पल्लव तथा प्रथम उगने वाले अकुरो को धारण करने वाले है (अथवा उनके शिखर तथाविध प्रवाल-पल्लव-अकुरो से सुशोभित है), उन चैत्यवृक्षो की शाखाएँ विचित्र मणिरत्नो के सुगन्धित फूल और फलो के भार से झुकी हुई है। वे चैत्यवृक्ष सुन्दर छाया वाले, सुन्दर कान्ति वाले, किरणो से युक्त और उद्योत करने वाले है। अमृतरस के समान उनके फलो का रस है। वे नेत्र और मन को अत्यन्त तृप्ति देने वाले है, प्रासादीय है, दर्शनीय है, अभिरूप है और प्रतिरूप है।

वे चैत्यवृक्ष अन्य वहुत से तिलक, लवग, छत्रोपग, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, नीप, कुटज, कदम्ब, पनस, ताल, तमाल, प्रियाल, प्रियगु, पारापत, राजवृक्ष और नन्दिवृक्षो से सब ओर से घिरे हुए है। वे तिलक यावत् नन्दिवृक्ष मूलवाले हैं, कन्दवाले है इत्यादि वृक्षो का वर्णन करना चाहिए यावत् वे सुरम्य है। वे तिलकवृक्ष यावत् नन्दिवृक्ष अन्य बहुत-सी पद्मलताओ यावत् श्यामलताओ से घिरे हुए हैं। वे पद्मलताएँ यावत् श्यामलताएँ नित्य कुसुमित रहती हैं। यावत् वे प्रतिरूप हैं। उन चैत्यवृक्षो के ऊपर वहुत से आठ-आठ मगल, ध्वजाएँ और छत्रो पर छत्र है।

१३७ (४) तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरओ तिदिसिं तओ मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ; ताओ णं मणिपेढियाओ जोयणं आयामविक्खमेणं अद्धजोयण बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ।

तासि णं मणिपेढियाणं उप्पिं पत्तेय पत्तेय महिंदज्झये पण्णत्ते। ते ण महिंदज्झया अद्धट्ठमाइ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेण अद्धकोस उव्वेहेण अद्धकोस विक्खभेण वइरामयवट्टलट्ठसठियसुसिलिट्ठपरिघट्ठ-मट्ठसुपइट्ठिया[1] अणेगवरपचवण्णकुडभीसहस्सपरिमडियाभिरामा वाउद्धुयविजयवेजयतीपडागा छत्ताइछत्तकलिया तुंगा गगनतलमभिलघमाणसिहरा पासादीया जाव पडिरूवा।

तेसिं ण महिंदज्झयाण उप्पिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता। तेसिं ण महिंदज्झयाण पुरओ तिदिसिं तओ णदाओ पुक्खरणीओ पण्णत्ताओ। ताओ णं पुक्खरणीओ अद्धरतेरस जोयणाइ आयामेणं सक्कोसाइं छजोयणाइं विक्खभेणं दसजोयणाइ उव्वेहेणं अच्छाओ सण्हाओ पुक्खरिणीवण्णओ, पत्तेयं पत्तेय पउमरववेइयापरिक्खित्ताओ, पत्तेय पत्तेयं वणसडपरिक्खित्ताओ वण्णओ जाव पडिरूवाओ।

---

१ क्वचित् 'विसिट्ठा' इत्यपि दृश्यते।

तासि णं पुक्खरिणीणं पत्तेयं पत्तेयं तिदिसिं तिसोवाणपडिरूवगा, वण्णओ। तोरणा भाणियव्वा जाव छत्ताइछत्ता। सभाए ण सुहम्माए छ मणोगुलिया साहस्सीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ, पच्चत्थिमेणं दो साहस्सीओ, दाहिणेण एगा साहस्सी, उत्तरेणं एगा साहस्सी। तासु णं मणोगुलिकासु वहवे सुवण्णरुप्पामया फलगा पण्णत्ता, तेसु ण सुवण्णरुप्पामएसु फलगेसु वहवे वइरामया णागदंतगा पण्णत्ता, तेसु णं वइरामएसु नागदंतगेसु वहवे किण्हसुत्तवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा जाव सुक्किलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा। ते णं दामा तवणिज्जलवूसगा जाव चिट्ठ ति।

सभाए सुहम्माए छ गोमाणसीसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पुरत्थिमेणं दो साहस्सीओ, एवं पच्चत्थिमेणं वि दाहिणेणं सहस्सं एवं उत्तरेणवि। तासु ण गोमाणसीसु वहवे सुवण्णरुप्पामया फलगा पण्णत्ता जाव तेसु णं वइरामएसु नागदंतएसु वहवे रययामया सिक्कया पण्णया। तेसु णं रययामयासिक्कएसु वहवे वेरुलियामईओ धूवघडियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं धूवघडियाओ कालागुरु-पवरकुंदरुक्कतुरुक्क जाव घाणमणणिव्वुइकरेणं गंधेणं सव्वओ समंता आपूरेमाणीओ चिट्ठ ंति।

सभाए णं सुधम्माए अंतो वहुसमरमणिज्जे भूमिभाए पण्णत्ते जाव मणीणं फासे, उल्लोया पउमलयाभत्तिचित्ता जाव सव्वतवणिज्जमए अच्छे जाव पडिरूवे।

[१३७] (४) उन चैत्यवृक्षों के आगे तीन दिशाओं मे तीन मणिपीठिकाएँ कही गई हैं। वे मणिपीठिकाएँ एक-एक योजन लम्बी-चौड़ी और आधे योजन की मोटी हैं। वे सर्वमणिमय हैं, स्वच्छ हैं, यावत् प्रतिरूप हैं।

उन मणिपीठिकाओं के ऊपर अलग-अलग महेन्द्रध्वज हैं जो साढे सात योजन ऊँचे, आधा कोस ऊडे (जमीन के अन्दर), आधा कोस विस्तार वाले, वज्रमय, गोल, सुन्दर आकारवाले, सुसम्बद्ध, घृष्ट, मृष्ट और सुस्थिर हैं, अनेक श्रेष्ठ पांच वर्णों की लघुपताकाओं से परिमण्डित होने से सुन्दर हैं, वायु से उडती हुई विजय की सूचक वैजयन्ती पताकाओं से युक्त हैं, छत्रों पर छत्र से युक्त हैं, ऊँची हैं, उनके शिखर आकाश को लांघ रहे हैं, वे प्रासादीय यावत् प्रतिरूप हैं।

उन महेन्द्रध्वजों के ऊपर आठ-आठ मंगल हैं, ध्वजाएँ हैं और छत्रातिछत्र हैं।

उन महेन्द्रध्वजों के आगे तीन दिशाओं मे तीन नन्दा पुष्करिणियाँ हैं। वे नन्दा पुष्करिणियाँ साढे वारह योजन लम्बी हैं, छह सवा योजन की चौडी हैं, दस योजन ऊंडी हैं, स्वच्छ हैं, श्लक्ष्ण (मृदु) हैं इत्यादि पुष्करिणी का वर्णनक कहना चाहिए। वे प्रत्येक पुष्करिणियाँ पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से घिरी हुई हैं। पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णन कर लेना चाहिए यावत् वे पुष्करिणियाँ दर्शनीय यावत् प्रतिरूप हैं।

उन पुष्करिणियों की तीन दिशाओं मे अलग-अलग त्रिसोपानप्रतिरूपक कहे गये हैं। उन त्रिसोपानप्रतिरूपकों का वर्णनक कहना चाहिए। तोरणों का वर्णन यावत् छत्रों पर छत्र हैं।

उस सुधर्मा सभा मे छह हजार मनोगुलिकाएँ (बैठक) कही गई हैं, यथा—पूर्व मे दो हजार, पश्चिम मे दो हजार, दक्षिण मे एक हजार और उत्तर मे एक हजार। उन मनोगुलिकाओं में वहुत से सोने चांदी के फलक (पाटिये) हैं। उन सोने-चांदी के फलकों में वहुत से वज्रमय नागदंतक (खूटियां)

हैं। उन वज्रमय नागदन्तकों में बहुत-सी काले सूत्र मे पिरोई हुई गोल और लटकती हुई पुष्पमालाओ के समुदाय हैं यावत् सफेद डोरे मे पिरोई हुई गोल और लटकती हुई पुष्पमालाओ के समुदाय हैं। वे पुष्पमालाएँ सोने के लम्बूसक (पेन्डल) वाली हैं यावत् सब दिशाओ को सुगन्ध से भरती हुई स्थित है।

उस सुधर्मासभा मे छ हजार गोमाणसियाँ (शय्यारूप स्थान) कही गई है, यथा—पूर्व मे दो हजार, पश्चिम मे दो हजार, दक्षिण मे एक हजार और उत्तर मे एक हजार। उन गोमाणसियो मे बहुत-से सोने-चादी के फलक है, उन फलको मे बहुत से वज्रमय नागदन्तक हैं, उन वज्रमय नागदन्तको मे बहुत से चादी के सीके हैं। उन रजतमय सीको मे बहुत-सी वैडूर्यरत्न की धूपघटिकाएँ कही गई हैं। वे धूपघटिकाएँ काले अगर, श्रेष्ठ कुदुरुक्क और लोभान के धूप की नाक और मन को तृप्ति देने वाली सुगन्ध से आसपास के क्षेत्र को भरती हुई स्थित हैं।

उस सुधर्मासभा मे बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है। यावत् मणियो का स्पर्श, भीतरी छत, पद्मलता आदि के विविध चित्र आदि का वर्णन करना चाहिए। यावत् वह भूमिभाग तपनीय स्वर्ण का है, स्वच्छ है और प्रतिरूप है।

१३८. तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा मणिपीढिया पण्णत्ता। सा णं मणिपीढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमया। तीसे णं मणिपीढियाए उप्पि एत्थ णं माणवए णाम चेइयखंभे पण्णत्ते, अद्धट्ठमाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोस उव्वेहेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं छकोडीए छलसे छविग्गहिए वइरामयवट्टलट्ठसंठिए, एवं जहा महिंदज्झयस्स वण्णओ जाव पासाईए। तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स उवरिं छक्कोसे ओगाहित्ता हेट्ठावि छक्कोसे वज्जित्ता मज्झे अद्धपंचमेसु जोयणेसु एत्थ णं बहवे सुवण्णरुप्पमया फलगा पण्णत्ता। तेसु णं सुवण्णरुप्पमएसु फलगेसु बहवे वइरामया णागदंता पण्णत्ता। तेसु णं वइरामएसु णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता। तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वइरामया गोलवट्टसमुग्गका पण्णत्ता; तेसु णं वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहवे जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति। जाओ णं विजयस्स देवस्स अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ। माणवगस्स णं चेइयखभस्स उवरिं अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं एगा महामणिपेढिया पण्णत्ता। सा णं मणिपेढिया दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई जाव पडिरूवा। तीसे णं मणिपेढियाए उप्पि एत्थ णं एगे महं सीहासणे पण्णत्ते। सीहासणवण्णओ।

तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता, जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा। तीसे णं मणिपेढियाए उप्पि एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते। तस्स णं देवसयणिज्जस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—

णाणामणिमया[1] पडिपाया, सोवण्णिया पाया, णाणामणिमया पायसीसा जंबूणदमयाइं गत्ताइं वइरामया सधी णाणामणिमए विच्चे, रययामया तूली, लोहियक्खमया बिब्बोयणा तवणिज्जमई गंडोवहाणिया।

से णं देवसयणिज्जे उभओ बिब्बोयणे दुहओ उण्णए मज्झे णयगंभीरे सालिंगणवट्टिए गंगा-पुलिणवालुउद्दालसारिसए ओयवियक्खोमदुगुल्लपट्टपडिच्छायणे सुविरचियरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आईणगरूयबूरणवणीयतूलफासमउए पासाईए।

तस्स ण देवसयणिज्जस्स उत्तरपुरत्थिमेण एत्थ णं महई एगा मणिपीढिया पण्णत्ता जोयणमेगं आयामविक्खमेणं अद्धजोयण बाहल्लेणं सव्वमणिमई जाव अच्छा। तीसे णं मणिपीढियाए उप्पि एगं महं खुड्डए महिंदज्झए पण्णत्ते, अद्धट्ठमाइ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं उव्वेहेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं वेरुलियामयवट्टलट्ठसठिए तहेव जाव मंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

तस्स ण खुड्डमहिंदज्झयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं विजयस्स देवस्स चुप्पालए नाम पहरणकोसे पण्णत्ते। तत्थ ण विजयस्स देवस्स फलिहरयणपामोक्खा बहवे पहरणरयणा सन्निक्खित्ता चिट्ठति, उज्जलसुणिसियसुतिक्खधारा पासाईया। तीसे णं सभाए सुहम्माए उप्पि बहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

[१३८] उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्यभाग मे एक मणिपीठिका कही गई है। वह मणिपीठिका दो योजन लम्बी-चौडी, एक योजन मोटी और सर्वमणिमय है। उस मणिपीठिका के ऊपर माणवक नामक चैत्यस्तम्भ कहा गया है। वह साढे सात योजन ऊँचा, आधा कोस ऊँडा और आधा कोस चौडा है। उसकी छह कोटियाँ हैं, छह कोण हैं और छह भाग है, वह वज्र का है, गोल है और सुन्दर आकृति वाला है, इस प्रकार महेन्द्रध्वज के समान वर्णन करना चाहिए यावत् वह प्रासादीय (यावत् प्रतिरूप) है। उस माणवक चैत्यस्तम्भ के ऊपर छह कोस ऊपर और छह कोस नीचे छोड कर बीच के साढे चार योजन मे बहुत से सोने-चादी के फलक कहे गये हैं। उन सोने चादी के फलको मे बहुत से वज्रमय नागदन्तक है। उन वज्रमय नागदन्तको मे बहुत से चांदी के छीके कहे गये हैं। उन रजतमय छीको मे बहुत-से वज्रमय गोल—वर्तुल समुद्गक (मजूषा) कहे गये हैं। उन वज्रमय गोल—वर्तुल समुद्गको मे बहुत-सी जिन-अस्थियाँ रखी हुई हैं। वे विजयदेव और अन्य बहुत से वानव्यन्तर देव और देवियो के लिए अर्चनीय, वन्दनीय, पूजनीय, सत्कारयोग्य, सन्मानयोग्य, कल्याणरूप, मगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप और पर्युपासनायोग्य हैं। उस माणवक चैत्यस्तम्भ के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाएँ और छत्रातिछत्र हैं।

उस माणवक चैत्यस्तम्भ के पूर्व मे एक बडी मणिपीठिका है। वह मणिपीठिका दो योजन लम्बी-चौडी, एक योजन मोटी और सर्वमणिमय है यावत् प्रतिरूप है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक बडा सिंहासन कहा गया है।

उस माणवक चैत्यस्तम्भ के पश्चिम मे एक बडी मणिपीठिका है जो एक योजन लम्बी-चौडी और आधा योजन मोटी है, जो सर्वमणिमय है और स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक बडा देवशयनीय कहा गया है। देवशयनीय का वर्णन इस प्रकार है, यथा—

१ 'णाणा मणिमया पायसीसा' यह पाठ वृत्ति में नहीं है।

नाना मणियो के उसके प्रतिपाद (मूलपायो को स्थिर रखने वाले पाये) हैं, उसके मूल पाये सोने के हैं, नाना मणियो के पायो के ऊपरी भाग हैं, जम्बूनद स्वर्ण की उसकी ईसें है, वज्रमय सन्धियाँ हैं, नाना मणियो से वह बुना (व्युत) हुआ है, चादी की गादी है, लोहिताक्ष रत्नो के तकिये[1] हैं और तपनीय स्वर्ण का गलमसूरिया है।

वह देवशयनीय दोनो ओर (सिर और पाव की तरफ) तकियो वाला है, शरीरप्रमाण तकियो वाला (मसनद—बड़े गोल तकिये) है, वह दोनो तरफ से उन्नत और मध्य मे नत (नीचा) और गहरा है, गगा नदी के किनारे की बालुका मे पैर रखते ही जैसे वह अन्दर उतर जाता है वैसे ही वह शय्या उस पर सोते ही नीचे बैठ जाती है, उस पर बेल-बूटे निकाला हुआ सूती वस्त्र (पलगपोस) बिछा हुआ है, उस पर रजस्त्राण लगाया हुआ है, लाल वस्त्र से वह ढका हुआ है, सुरम्य है, मृगचर्म, रुई, बूर वनस्पति और मक्खन के समान उसका मृदुल स्पर्श है, वह प्रासादीय यावत् प्रतिरूप है।

उस देवशयनीय के उत्तर-पूर्व मे (ईशानकोण मे) एक बडी मणिपीठिका कही हुई है। वह एक योजन की लम्बी-चौड़ी और आधे योजन की मोटी तथा सर्व मणिमय यावत् स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक छोटा महेन्द्रध्वज कहा गया है जो साढे सात योजन ऊँचा, आधा कोस ऊँडा और आधा कोस चौड़ा है। वह वैडूर्यरत्न का है, गोल है और सुन्दर आकार का है, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए यावत् आठ-आठ मगल, ध्वजाएँ और छत्रातिछत्र हैं।

उस छोटे महेन्द्रध्वज के पश्चिम मे विजयदेव का चौपाल नामक शस्त्रागार है। वहाँ विजय देव के परिघरत्न आदि शस्त्ररत्न रखे हुए हैं। वे शस्त्र उज्ज्वल, अति तेज और तीखी धार वाले हैं। वे प्रासादीय यावत् प्रतिरूप हैं।

उस सुधर्मा सभा के ऊपर बहुत सारे आठ-आठ मंगल, ध्वजाएँ और छत्रातिछत्र है।[2]

सिद्धायतन-वर्णन

१३९ (१) सभाए णं सुधम्माए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं सिद्धाययणे पण्णत्ते अद्धतेरस-जोयणाइं आयामेणं छ जोयणाइं सकोसाइं विक्खंभेणं नवजोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेणं जाव गोमाणसिया वत्तव्वया। जा चेव सहाए सुहम्माए वत्तव्वया सा चेव निरवसेसा भाणियव्वा तहेव दारा मुहमंडवा पेच्छाघरमंडवा झया। थूभा चेइयरुक्खा महिंदज्झया णंदाओ पुक्खरिणीओ। तओ य सुधम्माए जहा पमाणं मणोगुलियाणं गोमाणसीया, धूवयघडीओ तहेव भूमिभागे उल्लोए य जाव मणिफासे।

तस्स णं सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमयी अच्छा०। तीसे णं मणिपेढियाए उप्पि एत्थ णं एगे महं देवच्छंदए पण्णत्ते, दो जोयणाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं दो जोयणाइं उड्ढ उच्चत्तेण सव्वरयणामए अच्छे। तत्थ णं देवच्छंदए अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमेत्ताणं सण्णिक्खित्त चिट्ठइ।

तासि णं जिणपडिमाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—तवणिज्जमया हत्थतला, अंकामयाइं णक्खाइं अंतोलोहियक्खपरिसेयाइं कणगमया पादा कणगामया गोप्फा कणगामईओ जंघाओ

---

१. 'बिब्बोयणा—उपधानकानि उच्यन्ते' इति मूल टीकाकार।

२. वृत्ति मे 'यावत् बहुत से सहस्रपत्र समुदाय हैं, सर्वरत्नमय हैं, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है' ऐसा पाठ है।

कणगामया जाणू कणगामया ऊरु कणगामईओ गायलट्ठीओ, तवणिज्जमईओ णाभीओ रिट्ठामईओ रोमराईओ, तवणिज्जमया चुच्चुया तवणिज्जमया सिरिवच्छा, कणगमयाओ वाहाओ कणगमईओ पासाओ कणगमईओ गीवाओ रिट्ठामए मंसु, सिलप्पवालमया उट्ठा, फलिहामया दंता, तवाणिज्जमईओ जीहाओ, तवणिज्जमया तालुया कणगमईओ णासाओ अतोलोहियक्खपरिसेयाओ अकामयाइं अच्छीणि, अतोलोहितक्खपरिसेयाइ (पुलगमईओ दिट्ठीओ)[1] रिट्ठामईओ तारगाओ रिट्ठामयाइं अच्छिपत्ताइ रिट्ठामईओ भमुहाओ कणगामया कवोला कणगामया सवणा कणगामया णिडाला वट्टा वइरामईओ सीसघडीओ, तवणिज्जमईओ केसंतकेसभूमीओ रिट्ठामया उवरिमुद्धजा ।

[१३९] (१) सुधर्मासभा के उत्तरपूर्व (ईशानकोण) मे एक विशाल सिद्धायतन कहा गया है जो साढे वारह योजन का लम्बा, छह योजन एक कोस चौडा और नौ योजन ऊँचा है । इस प्रकार पूर्वोक्त सुधर्मासभा का जो वर्णन किया गया है तदनुसार गोमाणसी (शय्या) पर्यन्त सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए । वैसे ही द्वार, मुखमण्डप, प्रेक्षागृहमण्डप, ध्वजा, स्तूप, चैत्यवृक्ष, माहेन्द्रध्वज, नन्दा पुष्करिणियाँ, मनोगुलिकाओ का प्रमाण, गोमाणसी, धूपघटिकाएँ, भूमिभाग, उल्लोक (भीतरी छत) आदि का वर्णन यावत् मणियो के स्पर्श आदि सुधर्मासभा के समान कहने चाहिए ।

उस सिद्धायतन के वहुमध्य देशभाग मे एक विशाल मणिपीठिका कही गई है जो दो योजन लम्वी-चौडी, एक योजन मोटी है, सर्व मणियो की वनी हुई है, स्वच्छ है । उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल देवच्छंदक (आसनविशेष) कहा गया है, जो दो योजन का लम्बा-चौडा और कुछ अधिक दो योजन का ऊँचा है, सर्वात्मना रत्नमय है और स्वच्छ स्फटिक के समान है । उस देवच्छदक मे जिनोत्सेधप्रमाण (उत्कृष्ट पाच सौ धनुष, जघन्य सात हाथ) एक सौ आठ जिन-प्रतिमाएँ रखी हुई हैं ।

उन जिन-प्रतिमाओ का वर्णन इस प्रकार कहा गया है—उनके हस्ततल तपनीय स्वर्ण के हैं, उनके नख अंकरत्नो के हैं और उनका मध्यभाग लोहिताक्ष रत्नो की ललाई से युक्त है, उनके पांव स्वर्ण के है, उनके गुल्फ (टखने) कनकमय हैं, उनकी जंघाए (पिण्डलिया) कनकमयी हैं, उनके जानु (घुटने) कनकमय हैं, उनके ऊरु (जघाए) कनकमय हैं, उनकी गात्रयष्टि कनकमयी है, उनकी नाभियां तपनीय स्वर्ण की हैं, उनकी रोमराजि रिष्टरत्नो की है, उनके चूचुक (स्तनो के अग्रभाग) तपनीय स्वर्ण के हैं, उनके श्रीवत्स (छाती पर अकित चिह्न) तपनीय स्वर्ण के हैं, उनकी भुजाएँ कनकमयी हैं, उनकी पसलिया कनकमयी हैं, उनकी ग्रीवा कनकमयी है, उनकी मूछें रिष्टरत्न की हैं, उनके होठ विद्रुममय (प्रवालरत्न के) हैं, उनके दात स्फटिकरत्न के हैं, तपनीय स्वर्ण की जिह्वाएँ हैं, तपनीय स्वर्ण के तालु हैं, कनकमयी उनकी नासिका है, जिसका मध्यभाग लोहिताक्षरत्नो की ललाई से युक्त है, उनकी आँखें अकरत्न की हैं और उनका मध्यभाग लोहिताक्ष रत्न की ललाई से युक्त है, उनकी दृष्टि पुलकित (प्रसन्न) है, उनकी आंखो की तारिका (कीकी) रिष्टरत्नो की है, उनके अक्षिपत्र (पक्ष्म) रिष्टरत्नो के हैं, उनकी भौहें रिष्टरत्नो की हैं, उनके गाल स्वर्ण के हैं, उनके कान स्वर्ण के हैं, उनके ललाट कनकमय हैं, उनके शीर्ष गोल वज्ररत्न के हैं, केशो की भूमि तपनीय स्वर्ण की है और केश रिष्टरत्नो के वने हुए है ।

---

१. कोष्ठकान्तर्गत पाठ वृत्ति मे नहीं है ।

१३९. (२) तासिं णं जिणयपडिमाणं पिट्ठओ पत्तेय पत्तेय छत्तधारपडिमाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं छत्तधारपडिमाओ हिमरययकुंदेंदुसप्पकासाइं सकोरटमल्लदामधवलाइं आतपत्ताइं सलीलं ओहारेमाणीओ चिट्ठति। तासिं णं जिणपडिमाणं उभओ पासिं पत्तेयं पत्तेयं चामरधारपडिमाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं चामरधारपडिमाओ चंदप्पहवइरवेरुलियनानामणिकणगरयणविमलमहरिहत-वणिज्जुज्जलविचित्तदडाओ चिल्लियाओ संखंककुंददगरय-अमयमथिअफेणपुंजसण्णिकासाओ, सुहुम-रययदीहवालाओ धवलाओ चामराओ सलीलं ओहारेमाणीओ चिट्ठति।

तासिं णं जिणपडिमाण पुरओ दो दो नागपडिमाओ, दो दो जक्खपडिमाओ, दो दो भूतपडि-माओ दो दो कुंडधारपडिमाओ (विणयोवणयाओ पायवडियाओ पंजलिउडाओ) सण्णिक्खित्ताओ चिट्ठति, सव्वरयणामईओ, अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णीरयाओ णिप्पंकाओ जाव पडिरूवाओ।

तासिं णं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठसयं घंटाणं, अट्ठसयं चंदणकलसाण एव अट्ठसयं भिंगारगाणं, एवं आयंसगाणं थालाणं पातीणं सुपइट्ठकाणं मणगुलियाण वातकरगाण चित्ताण रयणकरंडगाण हय-कंठगाणं जाव उसभकंठगाण पुप्फचगेरीणं जाव लोमहत्थचंगेरीणं पुप्फपडलगाणं अट्ठसयं तेलसमुग्गाणं जाव धूवगडुच्छुयाणं सण्णिक्खित्तं चिट्ठइ।

तस्स ण सिद्धायतणस्स उप्पि वहवे अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता उत्तिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहि उवसोभिया तंजहा—रयणेहिं जाव रिट्ठेहिं।

[१३९] (२) उन जिनप्रतिमाओ के पीछे अलग-अलग छत्रधारिणी प्रतिमाएँ कही गई है। वे छत्रधारण करने वाली प्रतिमाएँ लीलापूर्वक कोरट पुष्प की मालाओं से युक्त हिम, रजत, कुन्द और चन्द्र के समान सफेद आतपत्रो (छत्रो) को धारण किये हुये खडी हैं। उन जिनप्रतिमाओ के दोनो पार्श्वभाग मे अलग-अलग चंवर धारण करने वाली प्रतिमाएँ कही गई हैं। वे चामरधारिणी प्रतिमाएँ चन्द्रकान्त मणि, वज्र, वैडूर्य आदि नाना मणिरत्नो व सोने से खचित और निर्मल बहुमूल्य तपनीय स्वर्ण के समान उज्ज्वल और विचित्र दडो एव शख-अकरत्न-कुद-जलकण, चादी एव क्षीरोदधि को मथने मे उत्पन्न फेनपुज के समान श्वेत,[1] सूक्ष्म और चादी के दीर्घ बाल वाले धवल चामरो को लीलापूर्वक धारण करती हुई स्थित है।

उन जिनप्रतिमाओ के आगे दो-दो नाग प्रतिमाएँ, दो-दो यक्ष प्रतिमाएँ, दो-दो भूत प्रतिमाएँ, दो-दो कुण्डधार प्रतिमाएँ (विनययुक्त पादपतित और हाथ जोड़े हुई) रखी हुई हैं। वे सर्वात्मना रत्नमयी हैं, स्वच्छ है, मृदु है, सूक्ष्म पुद्गलो से निर्मित है, घृष्ट-मृष्ट, नीरजस्क, निष्पक यावत् प्रतिरूप हैं। उन जिनप्रतिमाओ के आगे एक सौ आठ घटा, एक सौ आठ चन्दनकलश, एक सौ आठ झारिया तथा इसी तरह आदर्शक, स्थाल, पात्रिया, सुप्रतिष्ठक, मनोगुलिका, जलशून्य घड़े, चित्र, रत्नकरण्डक, हयकठक यावत् वृषभकठक, पुष्पचगेरिया यावत् लोमहस्तचगेरिया, पुष्पपटलक, तेल-

---

१. कोष्टकान्तर्गत पाठ वृत्ति मे नही है।

समुद्गक यावत् धूप के कडुच्छुक—ये सब एक सौ आठ, एक सौ आठ वहाँ रखे हुए है। उस सिद्धायतन के ऊपर बहुत से आठ-आठ मंगल, ध्वजाएँ और छत्रातिछत्र है, जो उत्तम आकार के सोलह रत्न यावत् रिष्टरत्नों से उपशोभित है।[1]

उपपातादि सभा-वर्णन

१४०. तस्स ण सिद्धाययणस्स णं उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं उववायसभा पण्णत्ता। जहा सुधम्मा तहेव जाव गोमाणसीओ। उववायसभाए वि दारा मुहमंडवा सव्वं भूमिभागे तहेव जाव मणिफासो। (सुहम्मासभावत्तव्वया भाणियव्वा जाव भूमीए फासो।)

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमयी अच्छा। तीसे णं मणिपेढियाए उप्पि एत्थ णं एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते। तस्स णं देवसयणिज्जस्स वण्णओ उववायसभाए णं उप्पि अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता जाव उत्तिमागारा।

तीसे णं उववायसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे महं हरए पण्णत्ते। से णं हरए अद्धतेरस जोयणाइं आयामेणं छ जोयणाइ सक्कोसाइं विक्खमेण दस जोयणाइ उव्वेहेण अच्छे सण्हे वण्णओ जहेव णंदाणं पुक्खरिणीणं जाव तोरण वण्णओ।

तस्स णं हरयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं अभिसेयसभा पण्णत्ता जहा सभा सुहम्मा तं चेव निरवसेस जाव गोमाणसीओ भूमिभाए उल्लोए तहेव।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता, जोयणं आयामविक्खंभेणं अद्धजोयणं बाहल्लेणं सव्वमणिमया अच्छा। तीसे णं मणिपेढियाए उप्पि एत्थ णं महं एगे सीहासणे पण्णत्ते सीहासणवण्णओ अपरिवारो। तत्थ णं विजयदेवस्स सुबहु-अभिसेक्के भडे सण्णिक्खित्ते चिट्ठंति। अभिसेयसभाए उप्पि अट्ठट्ठमंगलगा जाव उत्तिमागारा सोलस-विधेहि रयणेहि उवसोहिए।

तीसे णं अभिसेयसहाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं अलंकारियसभा वत्तव्वया भाणि-यव्वा जाव गोमाणसीओ मणिपेढियाओ जहा अभिसेयसभाए उप्पि सीहासणं अपरिवारं। तत्थ णं विजयदेवस्स सुबहु अलंकारिए भंडे सन्निक्खित्ते चिट्ठइ। अलंकारियसभाए उप्पि मंगलगा झया जाव छत्ताइछत्ता उत्तमागारा०।

---

१ अत्र संग्रहणिगाथे—
चंदणकलसा भिंगारगा य आयंसगा य थाला य।
पाईओ सुपइट्ठा मणगुलिया वायकरगा य ॥१॥
चित्ता रयणकरंडा हय-गय-नर-कंठगा य चंगेरी।
पडला सीहासण-छत्त-चामरा समुग्गकजुया य ॥२॥

तीसे णं अलंकारियसहाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा महं ववसायसभा पण्णत्ता। अभिसेयसभावत्तव्वया जाव सीहासण अपरिवार। तत्थ णं विजयस्स देवस्स एगं मह पोत्थयरयणे सन्निक्खित्ते चिट्ठइ। तस्स णं पोत्थयरयणस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—रिट्ठामईओ कबियाओ रययामयाइं पत्तकाइं रिट्ठामयाइं अक्खराइं[1] तवणिज्जमए दोरे णाणामणिमए गंठी, वेरुलियमए लिप्पासणे तवणिज्जमई संकला रिट्ठमए छादने रिट्ठामई मसी वइरामई लेहणी, धम्मिए सत्थे। ववसायसभाए णं उप्पि अट्ठट्ठमंगलगा झया छत्ताइछत्ता उत्तिमागारेत्ति।

तीसे णं ववसायसभाए[2] उत्तरपुरत्थिमेणं एगे महं बलिपेढे[3] पण्णत्ते दो जोयणाइ आयामविक्खंभेणं जोयणं बाहल्लेणं सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे। तस्स णं बलिपेढस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं एगा मह णदापुक्खरणी पण्णत्ता जं चेव माणं हरयस्स तं चेव सव्वं।

[१४०] उस सिद्धायतन के उत्तरपूर्व दिशा (ईशानकोण) मे एक बडी उपपातसभा कही गई है। सुधर्मा सभा की तरह गोमाणसी पर्यन्त सब वर्णन यहाँ भी कर लेना चाहिए। उपपात सभा मे भी द्वार, मुखमण्डप आदि सब वर्णन, भूमिभाग, यावत् मणियो का स्पर्श आदि कह लेना चाहिए। (यहाँ सुधर्मसभा की वक्तव्यता भूमिभाग और मणियो के स्पर्शपर्यन्त कहनी चाहिए।)

उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के मध्य मे एक बड़ी मणिपीठिका कही गई है। वह एक योजन लम्बी-चौडी और आधा योजन मोटी है, सर्वरत्नमय और स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक बडा देवशयनीय कहा गया है। उस देवशयनीय का वर्णन पूर्ववत् कह लेना चाहिए। उस उपपातसभा के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजा और छत्रातिछत्र हैं जो उत्तम आकार के है और रत्नो से सुशोभित है।

उस उपपातसभा के उत्तर-पूर्व मे एक बडा सरोवर कहा गया है। वह सरोवर साढे बारह योजन लम्बा, छह योजन एक कोस चौडा और दस योजन ऊँडा है। वह स्वच्छ है, श्लक्ष्ण है आदि नन्दापुष्करिणीवत् वर्णन करना चाहिए। (वह सरोवर एक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से घिरा हुआ है। यहाँ पद्मवरवेदिका और वनखण्ड का वर्णन कर लेना चाहिए यावत् वहाँ बहुत से वानव्यन्तर देव-देविया स्थित होती हैं यावत् पूर्वकृत पुण्यकर्मों के विपाक का अनुभव करती हुई विचरती हैं। उस ह्रद की तीन दिशाओ मे त्रिसोपानप्रतिरूपक है। यहाँ त्रिसोपानप्रतिरूपको का वर्णन कहना चाहिए यावत् तोरणो का वर्णन कहना चाहिए। ऐसा वृत्ति मे उल्लेख है।)

उस सरोवर के उत्तर-पूर्व मे एक बडी अभिषेकसभा कही गई है। सुधर्मासभा की तरह उसका पूरा वर्णन कर लेना चाहिए। गोमाणसी, भूमिभाग, उल्लोक आदि सब सुधर्मासभा की तरह जानना चाहिए।

---

१ अकमयाइ पत्ताइ इति पाठान्तरम्। 'अकमयाइ पत्ताइ रिट्ठामयाइ अक्खराइ, अय पाठ 'वइरामई लेहणी' —इत्यस्यानन्तर वृत्तौ व्याख्यात।

२ 'उववाय सभाए' इति वृत्तौ पाठ।

३ अत्र प्रथम जीर्णपुस्तके नन्दापुष्करीणीविवेचन वर्तते पश्चात् बलिपिठस्य पर च टीकाया प्रथम बलिपीठस्य पश्चात् नदाया.।

उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्यभाग मे एक बडी मणिपीठिका कही गई है। वह एक योजन लम्बी-चौडी और आधा योजन मोटी है, सर्व मणिमय और स्वच्छ है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक बडा सिंहासन है। यहाँ सिंहासन का वर्णन करना चाहिए, परिवार का कथन नही करना चाहिए। उस सिंहासन पर विजयदेव के अभिषेक के योग्य सामग्री रखी हुई है। अभिषेकसभा के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाएँ, छत्रातिछत्र कहने चाहिए, जो उत्तम आकार के और सोलह रत्नो से उपशोभित हैं।

उस अभिषेकसभा के उत्तरपूर्व मे एक विशाल अलकारसभा है। उसकी वक्तव्यता गोमाणसी पर्यन्त अभिषेकसभा की तरह कहनी चाहिए। मणिपीठिका का वर्णन भी अभिषेकसभा की तरह जानना चाहिए। उस मणिपीठिका पर सपरिवार सिंहासन का कथन करना चाहिए। उस सिंहासन पर विजयदेव के अलकार के योग्य बहुत-सी सामग्री रखी हुई है। उस अलकारसभा के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाएँ और छत्रातिछत्र हैं जो उत्तम आकार के और रत्नो से सुशोभित हैं।

उस आलकारिक सभा के उत्तरपूर्व मे एक वडी व्यवसायसभा कही गई है। परिवार रहित सिंहासन पर्यन्त सब वक्तव्यता अभिषेकसभा की तरह कहनी चाहिए। उस सिंहासन पर विजयदेव का पुस्तकरत्न रखा हुआ है। उस पुस्तकरत्न का वर्णन इस प्रकार है—रिष्टरत्न की उसकी कविका (पुट्ठे) हैं, चादी के उसके पन्ने हैं, रिष्टरत्नो के अक्षर है, तपनीय स्वर्ण का डोरा है (जिसमे पन्ने पिरोये हुए हैं), नानामणियो की उस डोरे की गाठ है (ताकि पन्ने अलग अलग न हो), वैडूर्यरत्न का मषिपात्र (दावात) है, तपनीय स्वर्ण की उस दावात की साकल हैं, रिष्टरत्न का ढक्कन है, रिष्टरत्न की स्याही है, वज्ररत्न की लेखनी है। वह ग्रन्थ धार्मिक शास्त्र है। उस व्यवसायसभा के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाएँ और छत्रातिछत्र हैं जो उत्तम आकार के हैं यावत् रत्नो से शोभित हैं।

उस[1] व्यवसायसभा के उत्तर-पूर्व मे एक विशाल बलिपीठ है। वह दो योजन लम्बा-चौडा और एक योजन मोटा है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है। उस बलिपीठ के उत्तर-पूर्व मे एक वड़ी नन्दापुष्करिणी कही गई है। उसका प्रमाण आदि वर्णन पूर्व वर्णित ह्रद के समान जानना चाहिए।

विजयदेव का उपपात और उसका अभिषेक

१४१ (१) तेणं कालेणं तेणं समएण विजए देवे विजयाए रायहाणीए उववातसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिए अंगुलस्स असखेज्जइभागमेत्तीए बोदीए विजयदेवत्ताए उववण्णे। तए णं से विजए देवे अहुणोववण्णमेत्तए चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभाव गच्छइ, तंजहा—आहारपज्जत्तीए, सरीरपज्जत्तीए, इंदियपज्जत्तीए आणापाणुपज्जत्तीए भासामणपज्जत्तीए। तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गयस्स इमेएयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किं मे पुव्व सेयं किं मे पच्छा सेयं, किं मे पुव्वि करणिज्जं किं मे पच्छा

---

१. वृत्ति मे 'उपपातसभा के' ऐसा उल्लेख है।

करणिज्ज किं मे पुव्विं वा पच्छा वा हियाए सुहाए खेमाए णिस्सेसाए अणुगामियत्ताए भविस्सतीति कट्टु एवं संपेहेइ ।

तए णं तस्स विजयदेवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा विजयस्स देवस्स इमं एयारूवं अज्झत्थियं चिंतियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पण्णं जाणित्ता जेणामेव से विजए देवे तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता विजयं देवं करतलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, जएणं विजएणं वद्धावित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं विजयाए रायहाणीए सिद्धायतणंसि अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहपमाणमेत्ताणं सन्निक्खित्तं चिट्ठइ, सभाए य सुधम्माए माणवए चेइयखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति, जाओ णं देवाणुप्पियाणं अन्नेसिं य बहूणं विजयरायहाणिवत्थव्वाणं देवाणं देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ । एतं णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं पि सेयं, एतं णं देवाणुप्पियाणं पच्छावि सेयं, एयं णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं करणिज्जं पच्छा करणिज्जं एयं णं देवाणुप्पियाणं पुव्विं वा पच्छा वा जाव आणुगामियत्ताए भविस्सइ त्ति कट्टु महया महया जयजयसद्दं पउंजंति ।

[१४१] (१) उस काल और उस समय मे विजयदेव विजया राजधानी की उपपातसभा मे देवशयनीय मे देवदूष्य के अन्दर अगुल के असख्यातवे भागप्रमाण शरीर मे विजयदेव के रूप मे उत्पन्न हुआ । तब वह विजयदेव उत्पत्ति के अनन्तर (उत्पन्न होते ही) पाच प्रकार की पर्याप्तियो से पूर्ण हुआ । वे पाच पर्याप्तिया इस प्रकार हैं—१ आहारपर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इन्द्रियपर्याप्ति ४ आनप्राणपर्याप्ति और ५ भाषामनपर्याप्ति ।[1]

तदनन्तर पाच पर्याप्तियो से पर्याप्त हुए विजयदेव को इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तन, प्रार्थित और मनोगत सकल्प उत्पन्न हुआ—मेरे लिए पूर्व मे क्या श्रेयकर है, पश्चात् क्या श्रेयस्कर है, मुझे पहले क्या करना चाहिए, मुझे पश्चात् क्या करना चाहिए, मेरे लिए पहले और बाद मे क्या हितकारी, सुखकारी, कल्याणकारी, नि श्रेयस्कारी और परलोक मे साथ जाने वाला होगा । वह इस प्रकार चिन्तन करता है ।

तदनन्तर उस विजयदेव की सामानिक पर्षदा के देव विजयदेव के उस प्रकार के अध्यवसाय, चिन्तन, प्रार्थित और मनोगत सकल्प को उत्पन्न हुआ जानकर जिस ओर विजयदेव था उस ओर वे आते हैं और आकर विजयदेव को हाथ जोडकर, मस्तक पर अजलि लगाकर जय-विजय से बधाते हैं । बधाकर वे इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय ! आपकी विजया राजधानी के सिद्धायतन मे जिनोत्सेधप्रमाण एक सौ आठ जिन प्रतिमाएँ रखी हुई हैं और सुधर्मासभा के माणवक चैत्यस्तम्भ पर वज्रमय गोल मजूषाओ मे बहुत-सी जिन-अस्थियाँ रखी हुई हैं, जो आप देवानुप्रिय के और बहुत से विजया राजधानी के रहने वाले देवो और देवियो के लिए अर्चनीय, वन्दनीय, पूजनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय हैं, जो कल्याणरूप, मगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप हैं तथा पर्युपासना करने योग्य हैं । यह आप

---

१. भाषा और मन पर्याप्ति—एक साथ पूर्ण होने के कारण उनके एकत्व की विवक्षा की गई है ।

देवानुप्रिय के लिए पूर्व मे भी श्रेयस्कर है, पश्चात् भी श्रेयस्कर है; यह आप देवानुप्रिय के लिए पूर्व मे भी करणीय है और पश्चात् भी करणीय है, यह आप देवानुप्रिय के लिए पहले और बाद मे हितकारी यावत् साथ मे चलने वाला होगा, ऐसा कहकर वे जोर-जोर से जय-जयकार शब्द का प्रयोग करते हैं।

१४१. [२] तए णं से विजए देवे तेसिं सामाणियपरिसोववण्णगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियए देवसयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता दिव्वं देवदूसजुयलं परिहेइ, परिहेइत्ता देवसयणिज्जाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता उववायसभाओ पुरत्थिमेण दारेण णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हरयं अणुपयाहिणं करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमेणं तोरणेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता पुरत्थिमेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता हरयं ओगाहइ, ओगाहित्ता जलावगाहणं करेइ, करित्ता जलमज्जणं करेइ, करेत्ता जलकिड्डं करेइ, करेत्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए हरआओ पच्चुत्तरइ पच्चुत्तरित्ता जेणामेव अभिसेयसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभिसेयसभं पदाहिणं करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेण अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरच्छाभिमुहे सण्णिसण्णे।

[१४१] (२) उन सामानिक पर्षदा के देवो से ऐसा सुनकर वह विजयदेव हृष्ट-तुष्ट हुआ यावत् उसका हृदय विकसित हुआ। वह देवशयनीय से उठता है और उठकर देवदूष्य युगल धारण करता है, धारण करके देवशयनीय से नीचे उतरता है, उतर कर उपपातसभा से पूर्व के द्वार से बाहर निकलता है और जिधर ह्रद (सरोवर) है उधर जाता है, ह्रद की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशा के तोरण से उसमे प्रवेश करता है और पूर्वदिशा के त्रिसोपानप्रतिरूपक से नीचे उतरता है और जल मे अवगाहन करता है। जलावगाहन करके जलमज्जन (जल मे डुबकी लगाना) और जलक्रीडा करता है। इस प्रकार अत्यन्त पवित्र और शुचिभूत होकर ह्रद से बाहर निकलता है और जिधर अभिषेकसभा है उधर जाता है। अभिषेकसभा की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशा के द्वार से उसमे प्रवेश करता है और जिस ओर सिंहासन रखा है उधर जाता है और पूर्वदिशा की ओर मुख करके सिंहासन पर बैठ जाता है।

१४१ [३] तए णं तस्स विजयदेवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! विजयस्स देवस्स महत्थं महग्घं महरिहं विपुल इंदाभिसेयं उवट्ठवेह। तए णं ते आभिओगिया देवा सामाणियपरिसोववण्णगेहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ तुट्ठ जाव हियया करतलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं देवा! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणंति समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं णिस्सरंति, तहाविहे रयणाणं जाव रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडंति परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परियायंति परियाइत्ता दोच्चंपि वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणंति समोहणित्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं कलसाणं, अट्ठसहस्सं रुप्पामयाणं कलसाणं,

अट्ठसहस्सं मणिमयाणं, अट्ठसहस्सं सुवण्णरूप्पामयाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णमणिमयाणं अट्ठसहस्सं रूप्पामणिमयाणं अट्ठसहस्सं भोमेज्जाणं अट्ठसहस्सं भिंगारागाणं एवं आयंसगाणं थालाण पाईणं सुपतिट्ठकाण चित्ताण रयणकरंडगाणं पुप्फचगेरीणं जाव लोमहत्थचगेरीणं पुप्फपडलगाणं जाव लोमहत्थपडलगाणं अट्ठसयं सीहासणाण छत्ताणं चामराणं अवपडगाणं (वट्टकाणं तवसिप्पाण खोरकाणं पीणकाणं)[1] तेल-समुग्गकाणं अट्ठसयं धूवकडुच्छुयाण विउव्वति, ते साभाविए विउव्विए य कलसे य जाव धूवकडुच्छए य गेण्हंति, गेण्हित्ता विजयाओ रायहाणीओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव उद्धुयाए दिव्वाए देवगईए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झं मज्झेणं वीयीवयमाणा वीयीवयमाणा जेणेव खीरोदे समुद्दे तेणेव उवागच्छंति। तेणेव उवागच्छित्ता खीरोदय गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति, गिण्हत्ता जेणेव पुक्खरोदे समुद्दे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता पुक्खरोदगं गेण्हंति, पुक्खरोदगं गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति गिण्हित्ता जेणेव समयखेत्ते जेणेव भरहेरवयाइं वासाइं जेणेव मागधवरदामपभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गिण्हंति, गिण्हित्ता तित्थमट्टियं गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेव गंगासिंधुरत्तारत्तवईसलिला तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सरितोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता उभओ तडमट्टियं गेण्हंति गेण्हित्ता जेणेव चुल्लहिमवत-सिहरिवासधरपव्वया तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य सव्वपुप्फे य सव्वगंधे य सव्वमल्ले य सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पउमद्दह—पुंडरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता दहोदगं गेण्हंति, जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हंति, ताइं गेण्हित्ता जेणेव हेमवय-हेरण्णवयाइं जेणेव रोहिय-रोहितंस-सुवण्णकूल—रुप्पकूलाओ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता उभओ तडमट्टियं गिण्हंति गेण्हित्ता जेणेव सद्दावातिमालवंतपरियागा वट्टवेतड्ढपव्वया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्वतूवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव महाहिमवंत-रुप्पिवास धरपव्वया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य तं चेव जेणेव महापउमद्दह-महापुंडरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं तं चेव, जेणेव हरिवासे रम्मावासे त्ति जेणेव हरकंत-हरिकंत णरकंत-नारिकंताओ सलिलाओ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेव वियडावइ-गधावइ वट्टवेयड्ढपव्वया तेणेव उवागच्छति सव्वपुप्फे य तं चेव जेणेव णिसह-नीलवंत वासहरपव्वया तेणेव उवागच्छति, सव्वतुवरे य तहेव जेणेव तिगिच्छिदह-केसरिद्दहा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं त चेव, जेणेव पुव्वविदेहावरविदेह-वासाइं जेणेव सीया-सीयोदाओ महाणईओ जहा णईओ, जेणेव सव्वचक्कवट्टिविजया जेणेव सव्वमागह-वरदामपभासाइं तित्थाइं तहेव, जेणेव सव्ववक्खारपव्वया सव्वतुवरे य, जेणेव सव्वंतरणदीओ सलिलोदगं गेण्हति तं चेव। जेणेव मंदरे पव्वए जेणेव भद्दसालवणे तेणेव उवागच्छति, सव्वतुवरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव णंदणवणे तेणेव उवागच्छंति, सव्वतुवरे

---

१. कोष्टकान्तर्गत पाठ वृत्ति मे नही है।

जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसं गोसीसचंदणं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव सोमणसवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्वतुवरे य जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं दिव्वं च सुमणदाम गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेव पंडगवणे तेणामेव समुवागच्छंति समुवागच्छित्ता सव्वतुवरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए सरसं य गोसीसचंदणं दिव्वं च सुमणोदामं दद्दरयमलयसुगंधिए य गंधे गेण्हंति, गेण्हित्ता एगओ मिलंति, मिलित्ता जंबुद्दीवस्स पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं णिग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव दिव्वाए देवगईए तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाण मज्झं-मज्झेणं वीयीवयमाणा वीइवयमाणा जेणेव विजया रायहाणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता विजयं राजहाणिं अणुप्पयाहिणं करेमाणा करेमाणा जेणेव अभिसेयसभा जेणेव विजए देवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहिय सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति; विजयस्स देवस्स तं महत्थं महग्घ महरिहं विउलं अभिसेयं उवट्ठवेंति ।

[१४१] (३) तदनन्तर उस विजयदेव की सामानिक पर्षद के देवो ने अपने आभियोगिक (सेवक) देवो को वुलाया और कहा कि हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही विजयदेव के महार्थ (जिसमे वहुत रत्नादिक धन का उपयोग हो), महार्घ (महापूजा योग्य), महार्ष (महोत्सव योग्य) और विपुल इन्द्राभिषेक की तैयारी करो । तब वे आभियोगिक देव सामानिक पर्षदा के देवो द्वारा ऐसा कहे जाने पर हृष्ट-तुष्ट हुए यावत् उनका हृदय विकसित हुआ । हाथ जोडकर मस्तक पर अजलि लगाकर 'देव ! आपकी आज्ञा प्रमाण है' ऐसा कहकर विनयपूर्वक उन्होने उस आज्ञा को स्वीकार किया । वे उत्तरपूर्व दिशाभाग मे जाते हैं और वैक्रिय-समुद्घात से समवहत होकर संख्यात योजन का दण्ड निकालते है (अर्थात् आत्मप्रदेशो को शरीरप्रमाण वाहल्य मे सख्यात योजन तक ऊचे-नीचे दण्डाकृति मे शरीर से वाहर निकालते हैं—फैलाते हैं) रत्नो के यावत् रिष्टरत्नो के तथाविध वादर पुद्गलो को छोड़ते हैं और यथासूक्ष्म पुद्गलो को ग्रहण करते है । तदनन्तर दुवारा वैक्रिय समुद्घात से समवहत होते हैं और एक हजार आठ सोने के कलश, एक हजार आठ चाँदी के कलश, एक हजार आठ मणियो के कलश, एक हजार आठ सोने-चादी के कलश, एक हजार आठ सोने-मणियो के कलश, एक हजार आठ चादी-मणियो के कलश, एक हजार आठ मिट्टी के कलश, एक हजार आठ भारिया, इसी प्रकार आदर्शक, स्थाल, पात्री, सुप्रतिष्ठक, चित्र, रत्नकरण्डक, पुष्पचगेरिया यावत् लोमहस्तकचगेरिया, पुष्पपटलक यावत् लोमहस्तपटलक, एक सौ आठ सिहासन, छत्र, चामर, ध्वजा, (वर्तक, तप सिप्र, क्षौरक, पीनक) तेलसमुद्गक और एक सौ आठ धूप के कडुच्छुक (धूपाणिये) अपनी विक्रिया से वनाते है । उन स्वाभाविक और वैक्रिय से निर्मित कलशो यावत् धूपकडुच्छुको को लेकर विजया राजधानी से निकलते है और उस उत्कृष्ट यावत् उद्धुत (तेज) दिव्य देवगति से तिरछी दिशा मे असख्यात द्वीप समुद्रो के मध्य से गुजरते हुए जहाँ क्षीरोदसमुद्र हैं वहाँ आते हैं और वहाँ का क्षीरोदक लेकर वहाँ के उत्पल, कमल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्रो को ग्रहण करते है । वहाँ से पुष्करोदसमुद्र की ओर जाते है और वहाँ का पुष्करोदक और वहाँ के उत्पल, कमल यावत् शतपत्र, सहस्रपत्रो को लेते हैं । वहाँ से वे समयक्षेत्र मे जहाँ भरत-ऐरवत वर्ष (क्षेत्र) हैं और जहाँ मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ हैं वहाँ आकर तीर्थोदक को ग्रहण करते हैं और तीर्थो की मिट्टी लेकर जहाँ गगा-सिन्धु, रक्ता-रक्तवती महानदियाँ हैं, वहाँ आकर उनका जल ग्रहण करते हैं और नदीतटो की मिट्टी लेकर जहाँ

क्षुल्ल हिमवत और शिखरी वर्षधर पर्वत हैं ऊधर आते हैं और वहाँ से सर्व ऋतुओ के श्रेष्ठ सव जाति के फूलो, सव जाति के गधो, सव जाति के माल्यो (गूथी हुई मालाओ), सव प्रकार की औषधियो और सिद्धार्थको (सरसो) को लेते है। वहाँ से पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रह की ओर जाते हैं और वहाँ से द्रहो का जल लेते हैं और वहाँ के उत्पल कमलो यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमलो को लेते हैं। वहाँ से हेमवत और हैरण्यवत क्षेत्रो मे रोहित-रोहितांशा, सुवर्णकूला और रूप्यकूला महानदियो पर आते हैं और वहाँ का जल और दोनो किनारो की मिट्टी ग्रहण करते हैं। वहाँ से शब्दापाति और माल्यवत नाम के वट्टवैताढच पर्वतो पर जाते हैं और वहाँ के सव ऋतुओ के श्रेष्ठ फूलो यावत् सर्वौषधि और सिद्धार्थको को लेते है। वहाँ से महाहिमवत और रुक्मि वर्षधर पर्वतो पर जाते हैं, वहाँ के सव ऋतुओ के पुष्पादि लेते है। वहाँ से महापद्मद्रह और महापुडरीकद्रह पर आते हैं वहाँ के उत्पल कमलादि ग्रहण करते है। वहाँ से हरिवर्ष रम्यकवर्ष की हरकान्त-हरिकान्त-नरकान्त-नारिकान्त नदियो पर आते है और वहाँ का जल ग्रहण करते हैं। वहाँ से विकटापाति और गधापाति वट्ट वैताढच पर्वतो पर आते हैं और सव ऋतुओ के श्रेष्ठ फूलो को ग्रहण करते हैं। वहाँ से निषध और नीलवत वर्षधर पर्वतो पर आते है और सब ऋतुओ के पुष्पादि ग्रहण करते हैं। वहाँ से तिगिंछ-द्रह और केसरिद्रह पर आते हैं और वहाँ के उत्पल कमलादि ग्रहण करते है। वहाँ से पूर्वविदेह और पश्चिम विदेह की शीता, शीतोदा महानदियो का जल और दोनो तट की मिट्टी ग्रहण करते हैं। वहाँ से सव चक्रवर्ती विजयो (विजेतव्यो) के सव मागध, वरदाम, और प्रभास नामक तीर्थों पर आते हैं और तीर्थों का पानी और मिट्टी ग्रहण करते हैं। वहाँ से सब वक्षस्कार पर्वतो पर जाते है। वहाँ के सव ऋतुओ के फूल आदि ग्रहण करते हैं। वहाँ से सव अन्तर् नदियो पर आकर वहाँ का जल और तटो की मिट्टी ग्रहण करते है। इसके वाद वे मेरुपर्वत के भद्रशालवन मे आते हैं। वहाँ के सर्व ऋतुओ के फूल यावत् सर्वौषधि और सिद्धार्थक ग्रहण करते हैं। वहाँ से नन्दनवन मे आते हैं, वहाँ के सव ऋतुओ के श्रेष्ठ फूल यावत् सर्वौषधियाँ और सिद्धार्थक तथा सरस गोशीर्ष चन्दन ग्रहण करते है। वहाँ से सौमनसवन मे आते है और सब ऋतुओ के फूल यावत् सर्वौषधियाँ, सिद्धार्थक और सरस गोशीर्ष चन्दन तथा दिव्य फूलो की मालाएँ ग्रहण करते हैं। वहाँ से पण्डकवन मे आते हैं और सव ऋतुओ के फूल, सर्वौषधियाँ, सिद्धार्थक, सरस गोशीर्ष चन्दन, दिव्य फूलो की माला और कपडछन्न किया हुआ मलय-चन्दन का चूर्ण आदि सुगन्धित द्रव्यो को ग्रहण करते हैं। तदनन्तर सव आभियोगिक देव एकत्रित होकर जम्बूद्वीप के पूर्वदिशा के द्वार से निकलते है और उस उत्कृष्ट यावत् दिव्य देवगति से चलते हुए तिरछी दिशा मे असख्यात द्वीप-समुद्रो के मध्य होते हुए विजया राजधानी मे आते हैं। विजया राजधानी की प्रदक्षिणा करते हुए अभिषेकसभा मे विजयदेव के पास आते हैं और हाथ जोड़कर, मस्तक पर अजलि लगाकर जय-विजय के शब्दो से उसे वधाते हैं। वे महार्थ, महार्घ और महार्ह विपुल अभिषेक सामग्री को उपस्थित करते है।

१४१. [४] तते णं तं विजयदेवं चत्तारि य सामाणियसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ तिण्णि परिसाओ सत्त अणीया सत्त अणीयाहिवई सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अन्ने य बहवे विजयरायहाणिवत्थव्वगा वाणमंतरा देवा य देवीओ य तेहिं साभाविएहिं उत्तरवेउव्विएहि य वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारियडिपुण्णेहिं चंदणकयचच्चाएहिं आविद्धकंठगुणेहिं पउमुप्पल-पिधाणेहिं करतलसुकुमालकोमलपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्साणं सोवण्णियाणं कलसाणं रुप्पमयाणं

जाव अट्ठसहस्साणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं सव्वपुप्फेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए सव्वजुईए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेण (सव्वारोहेण सव्वणाडएहिं)[1] सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारविभूसाए सव्वदिव्वतुडियणिणाएण महया इड्ढीए महया जुईए महया वलेणं महया समुदएणं महया तुरिय-जमगसमगपडुप्पवाइतरवेण संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरज-मुयग-दुंदुहि निग्घोस-सन्निनाइयरवेणं महया महया इंदाभिसेगेणं अभिसिचंति ।

[१४१] (४) तदनन्तर चार हजार सामानिक देव, सपरिवार चार अग्रमहिषियाँ, तीन पर्षदाओ के (यथाक्रम आठ हजार, दश हजार और बारह हजार) देव, सात अनीक, सात अनीकाधिपति, सोलह हजार आत्मरक्षक देव और अन्य वहुत से विजया राजधानी के निवासी देव-देविया उन स्वाभाविक और उत्तरवैक्रिय से निर्मित श्रेष्ठ कमल के आधार वाले, सुगन्धित श्रेष्ठ जल से भरे हुए, चन्दन से चर्चित, गलो मे मौलि वधे हुए, पद्मकमल के ढक्कन वाले, सुकुमार और मृदु करतलो मे परिगृहीत एक हजार आठ सोने के, एक हजार आठ चाँदी के यावत् एक हजार आठ मिट्टी के कलशो के सर्वजल से, सर्व मिट्टी से, सर्व ऋतु के श्रेष्ठ सर्व पुष्पों से यावत् सर्वौषधि और सरसो से सम्पूर्ण परिवारादि ऋद्धि के साथ, सम्पूर्ण द्युति के साथ, सम्पूर्ण हस्ती आदि सेना के साथ, सम्पूर्ण आभियोग्य समुदय (परिवार) के साथ, समस्त आदर से, समस्त विभूति से, समस्त विभूषा से, समस्त सभ्रम (उत्साह) से (सर्वारोहण सर्वस्वरसामग्री से सर्व नाटको से) समस्त पुष्प-गध-माल्य-अलकार रूप विभूषा से, सर्व दिव्य वाद्यो की ध्वनि से, महती (वहुत वडी) ऋद्धि, महती द्युति, महान् वल (सैन्य) महान् समुदय (आभियोग्य परिवार), महान् एक साथ पटु पुरुषो से वजाये गये वाद्यो के शव्द से, शख, पणव (ढोल), नगाडा, भेरी, झल्लरी, खरमुही (काहला), हुडुक्क (वड़ा मृदग), मुरज, मृदग एव दुदुभि के निनाद और गूंज के साथ उस विजयदेव को वहुत उल्लास के साथ इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त करते है ।

१४१. [५] तए ण तस्स विजयदेवस्स महया महया इदाभिसेगंसि वट्टमाणंसि अप्पेगइया देवा णच्चोदग णातिमट्टियं पविरलफुसिय दिव्वं सुरभि रयरेणुविणासण गंधोदगवासं वासंति । अप्पेगइया देवा णिहतरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणि सब्भितरबाहिरियं आसित्तसम्मज्जितोवलित्तं सित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं करेंति । अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणि मंचातिमंचकलियं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणि णाणाविह-रागरंजियऊसिय जयविजयवेजयन्तीपडागाइपडागमडियं करेंति । अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणि-लाउल्लोइयमहियं करेंति । अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणि गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिण्ण-पंचंगुलितलं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणि उवचियचंदणकलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदु-वारदेसभागं करेंति । अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणि आसत्तोसत्तविपुलवट्टवग्घारियसल्लदाम-कलावं करेंति, अप्पेगइया देवा विजयं रायहाणि पंचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं

---

१. 'सव्वारोहेण सव्वणाडएहिं' पाठ वृत्ति मे नहीं है ।

करेंति, अप्पेगइया देवा कालागुरुपवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवडज्झंतमघमघेंतगंधद्धुयाभिरामं सुगंध-वरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेंति।

अप्पेगइया देवा हिरण्णवासं वासंति, अप्पेगइया देवा सुवणवासं वासंति, अप्पेगइया देवा एवं रयणवासं वइरवासं पुप्फवासं मल्लवासं गंधवासं चुण्णवासं वत्थवासं आभरणवासं। अप्पेगइया देवा हिरण्णविधिं भाइंति, एवं सुवण्णविधिं रयणविधिं वइरविधिं पुप्फविधिं मल्लविधिं चुण्णविधिं गंधविधिं वत्थविधिं आभरणविधिं भाइंति।

अप्पेगइया देवा दुयं णट्टविधिं उवदसेंति, अप्पेगइया विलंबित णट्टविहिं उवदंसेंति, अप्पेगइया देवा दुयविलंबितं णट्टविधिं उवदसेंति, अप्पेगइया देवा अंचियं नट्टविधिं उवदसेंति, अप्पेगइया देवा रिभियं णट्टविधिं उवदंसेंति, अप्पेगइया देवा अंचियरिभितं णाम दिव्व णट्टविधिं उवदसेंति। अप्पेगइया देवा आरभडं णट्टविहिं उवदंसेंति, अप्पेगइया देवा भसोलं णट्टविहिं उवदंसेंति, अप्पेइया देवा आरभडभसोलं णाम दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति। अप्पेगइया देवा उप्पायणिवायपवुत्तं संकुचिय-पसारियं रियारियं भंतसंभंतं णाम दिव्वं नट्टविधिं उवदंसेंति। अप्पेगइया देवा चउव्विहं वाइयं वादेंति, तं जहा—तत वितत घणं झुसिरं। अप्पेगइया देवा चउव्विहं गेय गायति, त जहा—उक्खित्तय, पवत्तयं, मदायं, रोइयावसाणं। अप्पेगइया देवा चउव्विह अभिणय अभिणयति, तं जहा—दिट्ठतियं, पाडंतियं सामतोपणिवाइय, लोगमज्झावसाणिय।

अप्पेगइया देवा पीणंति, अप्पेगइया देवा बुक्कारेंति, अप्पेगइया देवा तडवेंति अप्पेगया देवा लासेंति, अप्पेगइया देवा पीणंति बुक्कारेंति तंडवेंति लासेंति, अप्पेगइया देवा अप्फोडंति, अप्पेगइया देवा वग्गंति, अप्पेगइया देवा तिवंति छिंदंति, अप्पेगइया देवा अप्फोडेंति वग्गंति तिवंति छिंदंति, अप्पेगइया देवा हयहेसियं करेंति, अप्पेगइया देवा हत्थिगुलगुलाइयं करेंति, अप्पेगइया देवा रह-घणघणाइयं करेंति, अप्पेगइया देवा हयहेसियं करेंति हत्थिगुलगुलाइय करेंति रहघणघणाइयं करेंति, अप्पेगइया देवा उच्छोलेंति, अप्पेगइया देवा पच्छोलेंति अप्पेगइया देवा उक्किट्ठिओ करेंति, अप्पेगइया देवा उच्छोलेंति पच्छोलेंति उक्किट्ठिओ करेंति, अप्पेगइया देवा सीहणादं करेंति अप्पेगइया देवा पाददद्दरयं करेंति, अप्पेगइया देवा भूमिचवेडं दलयति, अप्पेगइया देवा सीहणादं पाददद्दरय भूमि-चवेडं दलयति, अप्पेगइया देवा हक्कारेंति अप्पेगइया देवा बुक्कारेंति अप्पेगइया देवा थक्कारेंति, अप्पेगइया देवा पुक्कारेंति, अप्पेगइया देवा नामाइं सावेंति, अप्पेगइया देवा हक्कारेंति बुक्कारेंति थक्कारेंति पुक्कारेंति णामाइं सावेंति; अप्पेगइया देवा उप्पतति अप्पेगइया देवा णिवयति अप्पेगइया देवा परिवयंति अप्पेगइया देवा उप्पयति णिवयंति परिवयति, अप्पेगइया देवा जलति अप्पेगइया देवा तवंति अप्पेगइया देवा पतवंति अप्पेगइया देवा जलति तवति पतवति, अप्पेगइया देवा गज्जेंति आप्पेगइया देवा विज्जुयायंति अप्पेगइया देवा वासंति, अप्पेगइया देवा गज्जंति विज्जुयायंति वासंति, अप्पेगइया देवा सन्निवाय करेंति अप्पेगइया देवा देवुक्कलियं करेंति अप्पेगइया देवा देवकहकहं करेंति अप्पेगइया देवा दुहदुहं करेंति, अप्पेगइया देवा देवसन्निवाय देवउक्कलिय देवकहकहं देवदुहदुहं

करेंति । अप्पेगइया देवा देवुज्जोयं करेंति अप्पेगइया देवा विज्जुयारं करेंति अप्पेगइया देवा चेलुक्खेवं करेंति अप्पेगइया देवा देवुज्जोयं विज्जुयारं चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइया देवा उप्पलहत्थगया जाव सहस्सपत्तहत्थगया घंटाहत्थगया-कलसहत्थगया जाव धूवकडुच्छुगया हट्ठतुट्ठा जाव हरिसवसविसप्पमाणहियया विजयाए रायहाणीए सव्वओ समंता आधावेंति परिधावेंति ।

[१४१] (५) तदनन्तर उस विजयदेव के महान् इन्द्राभिषेक के चलते हुए कोई देव दिव्य सुगन्धित जल की वर्षा इस ढग से करते हैं जिससे न तो पानी अधिक होकर बहता है, न कीचड़ होता है अपितु विरल बूंदोंवाला छिडकाव होता है । जिससे रजकण और धूलि दब जाती है । कोई देव उस विजया राजधानी को निहतरज वाली, नष्ट रज वाली, भ्रष्ट रज वाली, प्रशान्त रज वाली, उपशान्त, रज वाली बनाते हैं । कोई देव उस विजया राजधानी को अन्दर और बाहर से जल का छिडकाव कर, सम्मार्जन (झाड़-बुहार) कर, गोमयादि से लीपकर तथा उसकी गलियो और बाजारो को छिडकाव से शुद्ध कर साफ-सुथरा करने मे लगे हुए हैं । कोई देव विजया राजधानी में मच पर मंच बनाने मे लगे हुए हैं । कोई देव अनेक प्रकार के रगो से रगी हुई एव जयसूचक विजयवैजयन्ती नामक पताकाओ पर पताकाएँ लगाकर विजया राजधानी को सजाने मे लगे हुए हैं, कोई देव विजया राजधानी को चूना आदि से पोतने मे और चंदरवा आदि बांधने मे तत्पर हैं । कोई देव गोशीर्ष चन्दन, सरस लाल चन्दन और चन्दन के चूरे के लेपो से अपने हाथो को लिप्त करके पांचो अगुलियो के छापे लगा रहे हैं । कोई देव विजया राजधानी के घर-घर के दरवाजो पर चन्दन के कलश रख रहे हैं । कोई देव चन्दन घट और तोरणो से घर-घर के दरवाजे सजा रहे हैं, कोई देव ऊपर से नीचे तक लटकने वाली बड़ी बड़ी गोलाकार पुष्पमालाओ से उस राजधानी को सजा रहे हैं, कोई देव पाच वर्णों के श्रेष्ठ सुगन्धित पुष्पों के पुजो से युक्त कर रहे हैं, कोई देव उस विजया राजधानी को काले अगुरु उत्तम कुन्दुरुक्क एव लोभान जला जलाकर उससे उठती हुई सुगन्ध से उसे मघमघायमान कर रहे हैं अतएव वह राजधानी अत्यन्त सुगन्ध से अभिराम बनी हुई है और विशिष्ट गन्ध की वत्ती सी बन रही है । कोई देव स्वर्ण की वर्षा कर रहे हैं, कोई चांदी की वर्षा कर रहे हैं, कोई रत्न की कोई वज्र की वर्षा कर रहे हैं, कोई फूल बरसा रहे हैं, कोई मालाएँ बरसा रहे हैं, कोई सुगन्धित द्रव्य, कोई सुगन्धित चूर्ण, कोई वस्त्र और कोई आभरणो की वर्षा कर रहे हैं । कोई देव हिरण्य (चांदी) बांट रहे हैं, कोई स्वर्ण, कोई रत्न, कोई वज्र, कोई फूल, कोई माल्य, कोई चूर्ण, कोई गध, कोई वस्त्र और कोई देव आभरण बांट रहे हैं । (परस्पर आदान-प्रदान कर रहे हैं ।)

कोई देव द्रुत नामक नाट्यविधि का प्रदर्शन करते हैं, कोई देव विलम्बित नाट्यविधि का प्रदर्शन करते हैं, कोई देव द्रुतविलम्बित नामक नाट्यविधि का प्रदर्शन करते हैं, कोई देव अचित नामक नाट्यविधि, कोई रिभित नाट्यविधि, कोई अचित-रिभित नाट्यविधि, कोई आरभट नाट्यविधि, कोई भसोल नाट्यविधि, कोई आरभट-भसोल नाट्यविधि, कोई उत्पात-निपातप्रवृत्त, संकुचित-प्रसारित, रेक्करचित (गमनागमन) भ्रान्त-संभ्रान्त नामक नाट्यविधियाँ प्रदर्शित करते हैं ।

कोई देव चार प्रकार के वादित्र बजाते हैं । वे चार प्रकार ये हैं—तत, वितत, घन और झुषिर । कोई देव चार प्रकार के गेय गाते हैं । वे चार गेय ये हैं—उत्क्षिप्त, प्रवृत्त, मंद और रोचिता-

वसान। कोई देव चार प्रकार के अभिनय करते हैं। वे चार प्रकार हैं—दार्ष्टान्तिक, प्रतिश्रुतिक, सामान्यतोविनिपातिक और लोकमध्यावसान।

कोई देव स्वय को पीन (स्थूल) वना लेते है—फुला लेते हैं, कोई देव ताण्डवनृत्य करते हैं, कोई देव लास्यनृत्य करते है, कोई देव छु-छु करते हैं, कोई देव उक्त चारो क्रियाएँ करते हैं, कई देव आस्फोटन (भूमि पर पैर फटकारना) करते हैं, कई देव वल्गन (कूदना) करते हैं, कई देव त्रिपदी-छेदन (ताल ठोकना) करते हैं, कोई देव उक्त तीनो क्रियाएँ करते हैं, कोई देव घोडे की तरह हिन-हिनाते हैं, कोई हाथी की तरह गुड़गुड आवाज करते हैं, कोई रथ की आवाज की तरह आवाज निकालते हैं, कोई देव उक्त तीनो तरह की आवाजे निकालते हैं, कोई देव उछलते हैं, कोई देव विशेष रूप से उछलते हैं, कोई देव उत्कृष्टि अर्थात् छलाग लगाते है, कोई देव उक्त तीनो क्रियाएँ करते है, कोई देव सिंहनाद करते हैं, कोई देव भूमि पर पाव से आघात करते हैं, कोई देव भूमि पर हाथ से प्रहार करते है, कोई देव उक्त तीनो क्रियाएँ करते हैं। कोई देव हक्कार करते हैं, कोई देव वुक्कार करते हैं, कोई देव थक्कार करते हैं, कोई देव पुत्कार (फुफु) करते हैं, कोई देव नाम सुनाने लगते हैं, कोई देव उक्त सब क्रियाएँ करते है। कोई देव ऊपर उछलते है, कोई देव नीचे गिरते है, कोई देव तिरछे गिरते हैं, कोई देव ये तीनो क्रियाएँ करते हैं।

कोई देव जलने लगते हैं, कोई ताप से तप्त होने लगते हैं, कोई खूव तपने लगते है, कोई देव जलते-तपते-विशेप तपने लगते हैं, कोई देव गर्जना करते हैं, कोई देव बिजलिया चमकाते हैं, कोई देव वर्षा करने लगते हैं, कोई देव गर्जना, विजली चमकाना और बरसाना तीनो काम करते हैं, कोई देव देवो का सम्मेलन करते हैं, कोई देव देवो को हवा मे नचाते हैं, कोई देव देवो मे कहकहा मचाते है, कोई देव हु हु हु हु करते हुए हर्षोल्लास प्रकट करते हैं, कोई देव उक्त सभी क्रियाएँ करते हैं, कोई देव देवोद्योत करते है, कोई देवविद्युत् का चमत्कार करते है, कोई देव चेलोत्क्षेप (वस्त्रो को हवा मे फहराना) करते हैं। कोई देव उक्त सव क्रियाएँ करते हैं। किन्ही देवो के हाथो मे उत्पल कमल हैं यावत् किन्ही के हाथो मे सहस्रपत्र कमल हैं, किन्ही के हाथो मे घटाएँ है, किन्ही के हाथो मे कलश है यावत् किन्ही के हाथो मे धूप के कडुच्छक हैं। इस प्रकार वे देव हृष्ट-तुष्ट हैं यावत् हर्ष के कारण उनके हृदय विकमित हो रहे हैं। वे उस विजयाराजधानी मे चारो ओर इधर-उधर दौड रहे हैं—भाग रहे है।

विवेचनः—प्रस्तुत सूत्र मे कतिपय नाट्यविधियो, वाद्यविधियो, गेयो और अभिनयो का उल्लेख है। राजप्रश्नीयसूत्र मे सूर्याभ देव के द्वारा भगवान् श्री महावीर स्वामी के सन्मुख बत्तीस प्रकार की नाट्यविधियो का प्रदर्शन करने का उल्लेख है। वे वत्तीस नाट्यविधियाँ इस प्रकार हैं—

१ स्वस्तिकादि अष्टमगलाकार अभिनयरूप प्रथम नाट्यविधि।
२. आवर्त प्रत्यावर्त्त यावत् पद्मलताभक्ति चित्राभिनयरूप द्वितीय नाट्यविधि।
३. ईहामृगवृपभतुरगनर यावत् पद्मलताभक्ति चित्रात्मक तृतीय नाट्यविधि।
४ एकताचक्र द्विधाचक्र यावत् अर्धचक्रवालाभिनय रूप।
५ चन्द्रावलिप्रविभक्ति सूर्यावलिप्रविभक्ति यावत् पुष्पावलिप्रविभक्ति रूप।
६ चन्द्रोद्गमप्रविभक्ति सूर्योद्गमप्रविभक्ति अभिनयरूप।
७ चन्द्रागमन-सूर्यागमनप्रविभक्ति अभिनयरूप।

८ चन्द्रावरणप्रविभक्ति सूर्यावरणप्रविभक्ति अभिनय रूप ।
९ चन्द्रास्तमयनप्रविभक्ति सूर्यास्तमयनप्रविभक्ति अभिनय ।
१० चन्द्रमण्डलप्रविभक्ति सूर्यमण्डलप्रविभक्ति यावत् भूतमण्डलप्रविभक्तिरूप अभिनय ।
११ ऋषभमण्डलप्रविभक्ति सिंहमण्डलप्रविभक्ति यावत् मत्तगजविलम्बित अभिनय रूप द्रुतविलम्बित नाट्य विधि ।
१२ सागरप्रविभक्ति नागप्रविभक्ति अभिनय रूप ।
१३ नन्दाप्रविभक्ति चम्पाप्रविभक्ति रूप अभिनय ।
१४ मत्स्याण्डकप्रविभक्ति यावत् जारमारप्रविभक्ति रूप अभिनय ।
१५ ककारप्रविभक्ति यावत् ङकारप्रविभक्ति रूप अभिनय ।
१६ चकारप्रविभक्ति यावत् ञकारप्रविभक्ति रूप अभिनय ।
१७ टकारप्रविभक्ति यावत् णकारप्रविभक्ति ।
१८ तकारप्रविभक्ति यावत् नकारप्रविभक्ति ।
१९ पकारप्रविभक्ति यावत् मकारप्रविभक्ति ।
२० अशोकपल्लवप्रविभक्ति यावत् कोशाम्बपल्लवप्रविभक्ति ।
२१ पद्मलताप्रविभक्ति यावत् श्यामलताप्रविभक्तिरूप अभिनय ।
२२ द्रुत नामक नाट्यविधि ।
२३ विलम्बित नामक नाट्यविधि ।
२४ द्रुतविलम्बित नामक नाट्यविधि ।
२५ अंचित नामक नाट्यविधि ।
२६ रिभित नामक नाट्यविधि ।
२७ अंचित रिभित नामक नाट्यविधि ।
२८ आरभट नामक नाट्यविधि ।
२९ भसोल नामक नाट्यविधि ।
३० आरभट-भसोल नामक नाट्यविधि ।
३१ उत्पातनिपातप्रसक्त सकुचितप्रसारित रेकरचित (रियारिय) भ्रान्त-सम्भ्रान्त नामक नाट्यविधि ।
३२ चरमचरमनामानिबद्धनामा—भगवान् वर्धमान स्वामी का चरम पूर्व मनुष्यभव, चरम देवलोक भव, चरम च्यवन, चरम गर्भसहरण, चरम तीर्थंकर जन्माभिषेक, चरम बालभाव, चरम यौवन, चरम निष्क्रमण, चरम तपश्चरण, चरम ज्ञानोत्पाद, चरम तीर्थप्रवर्तन, चरम परिनिर्वाण को बताने वाला अभिनय ।

उक्त बत्तीस प्रकार की नाट्यविधियो मे से कुछ का ही उल्लेख इस सूत्र मे किया गया है ।

वाद्य चार प्रकार के है—(१) तत—मृदंग, पटह आदि ।
(२) वितत—वीणा आदि ।
(३) घन—कंसिका आदि ।
(४) शुषिर—बांसुरी (काहला) आदि ।

गेय चार प्रकार के है—

(१) उत्क्षिप्त— प्रथम आरभिक रूप ।
(२) प्रवृत्त—उत्क्षिप्त अवस्था से अधिक ऊचे स्वर से गेय ।
(३) मन्दाय—मध्यभाग मे मूर्छनादियुक्त मद-मद घोलनात्मक गेय ।
(४) रोचितावसान—जिस गेय का अवसान यथोचित रूप से किया गया हो ।

अभिनेय के चार प्रकार हैं—

(१) दार्ष्टान्तिक (२) प्रतिश्रुतिक (३) सामान्यतोविनिपातिक और (४) लोकमध्यावसान । इनका स्वरूप नाट्यकुशलो द्वारा जानना चाहिए ।

१४१. [५] तए णं तं विजय देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ जाव सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अण्णे य बहवे विजयरायहाणीवत्थव्वा वाणमंतरा देवा य देवीओ य तेहिं वरकमलपइट्ठाणेहिं जाव अट्ठसएणं सोवाण्णयाणं कलसाणं तं चेव जाव अट्ठसएणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्वोदगेहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतुवरेहिं सव्वपुप्फेहिं जाव सव्वोसहि-सिद्धत्थएहिं सव्विड्ढीए जाव निग्घोसनाइयरवेण महया महया इदाभिसेएण अभिसिंचति । अभिसिंचित्ता पत्तेय पत्तेयं सिरसावत्तं अर्जालि कट्टु एवं वयासी—जय जय नदा ! जय जय भद्दा ! जय जय नंद-भद्दा ! ते अजिय जिणेहि जियं पालयाहि, अजितं जिणेहि सत्तुपक्खं, जित पालेहि मित्तपक्खं, जियमज्झे वसाहि तं देव ! निरुवसग्ग इदो इव देवाणं, चंदो इव ताराण, चमरो इव असुराणं, धरणो इव नागाणं, भरहो इव मणुयाणं बहूणि पलिओवमाइं बहूइं सागरोवमाणि चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं जाव आयरक्खदेवसाहस्सीण (विजयस्स देवस्स) विजयाए रायहाणीए अण्णेसि च बहूणं विजयरायहाणिवत्थव्वाणं वाणमंतराण देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव आणाईसर सेणावच्चं करे-माणे पालेमाणे विहराहि त्ति कट्टु महया महया सद्देणं जय जय सद्दं पउजंति ।

[१४१] (५) तदनन्तर वे चार हजार सामानिक देव, परिवार सहित चार अग्र महिषियाँ यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देव तथा विजया राजधानी के निवासी बहुत से वाणव्यन्तर देव-देविया उन श्रेष्ठ कमलो पर प्रतिष्ठित यावत् एक सौ आठ स्वर्णकलशो यावत् एक सौ आठ मिट्टी के कलशो से, सर्वोदक से, सब मिट्टियो से, सब ऋतुओ के श्रेष्ठ फूलो से यावत् सर्वोषधियो और सिद्धार्थको से सर्व ऋद्धि के साथ यावत् वाद्यो की ध्वनि के साथ भारी उत्सवपूर्वक उस विजयदेव का इन्द्र के रूप मे अभिषेक करते हैं । अभिषेक करके वे सब अलग-अलग सिर पर अजलि लगाकर इस प्रकार कहते हैं—हे नद ! आपकी जय हो विजय हो ! हे भद्र ! आपकी जय-विजय हो ! हे नन्द ! हे भद्र ! आपकी जय-विजय हो । आप नही जीते हुओ को जीतिये, जीते हुओ का पालन करिये, अजित शत्रु पक्ष को जीतिये और विजितो का पालन कीजिये, हे देव ! जितमित्र पक्ष का पालन कीजिए और उनके मध्य मे रहिए । देवो मे इन्द्र की तरह, असुरो मे चमरेन्द्र की तरह, नागकुमारो मे धरणेन्द्र की तरह, मनुष्यो मे भरत चक्रवर्ती की तरह आप उपसर्ग रहित हो ! बहुत से पल्योपम और बहुत से सागरोपम तक चार हजार सामानिक देवो का, यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवो का, इस विजया राजधानी का और इस राजधानी मे निवास करने वाले अन्य बहुत-से वानव्यन्तर

देवो और देवियो का आधिपत्य यावत् आज्ञा-ऐश्वर्य और सेनाधिपत्य करते हुए, उनका पालन करते हुए आप विचरें। ऐसा कहकर बहुत जोर-जोर से जय-जय शब्दो का प्रयोग करते हैं—जय-जयकार करते हैं।

१४२. [१] तए णं से विजए देवे महया महया इंदाभिसेएण अभिसित्ते समाण सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, सीहासणाओ अब्भुट्ठित्ता अभिसेयसभाओ पुरत्थिमेणं दारेण पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणामेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अलंकारियसभं अणुप्पयाहिणी करेमाणे पुरत्थिमेण दारेण अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसण्णे।

तए णं तस्स विजयस्स देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव देवाणुप्पिया ! विजयस्स देवस्स अलकारियं भंड उवणेह। तहेव ते अलकारिय भंड जाव उवट्ठवेंति।

तए णं से विजए देवे तप्पढमयाए पम्हलसूमालाए दिव्वाए सुरिभीए गंधकासाईए गायाइं लहेइ, गायाइं लूहित्ता सरसेण गोसीसचंदणेण गायाइ अणुलिपइ, अणुलिपित्ता (तओऽणंतरं च ण) नासाणीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हयलालापेलवातिरेगं धवल कणगखइयंतकम्म आगासफलिहसरिसप्पभ अहय दिव्वं देवदूसजुयलं णियंसेइ णियसेत्ता हारं पिणद्धेइ, पिणिद्धेत्ता एवं एकावलिं पिणद्धेइ, एवं एएणं आभिलावेणं मुत्तावलिं रयणावलिं कडगाइं तुडियाइ अंगयाइ केयूराइं दसमुद्दियाणंतक कडिसुत्तकं (तेअत्थिसुत्तगं) मुरविं कंठमुरविं पालंबंसि कुंडलाइं चूडामणि चित्तरयणुक्कडं मउडं पिणद्धेइ, पिणिद्धित्ता[1] गंठिमवेढिमपूरिमसंघाइमेण चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खयपिव अप्पाण अलकिय विभूसियं करेइ, करेत्ता दद्दरमलयसुगंधगंधिएहिं गंधेहिं गायाइं सुक्किडइ, सुक्किडित्ता दिव्व च सुमणदाम पिणद्धइ।

तए ण से विजए देवे केसालंकारेण वत्थालकारेण मल्लालंकारेण आभरणालंकारेण चउव्विहेण अलंकारेणं विभूसिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अलकारियसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेण पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ववसायसभं अणुप्पदाहिण करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेण दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

तए णं तस्स विजयस्स देवस्स आहिओगिया देवा पोत्थयरयणं उवणेंति। तए णं से विजए देवे पोत्थयरयणं गेण्हइ, गेण्हित्ता पोत्थयरयण मुयइ, पोत्थयरयण मुएत्ता पोत्थयरयणं विहाडेइ, विहाडेत्ता पोत्थयरयणं वाएइ, वाएत्ता धम्मियं ववसायं पगेण्हइ, पगेण्हित्ता पोत्थयरयणं पडिणिक्खवेइ, पडिणिक्खवित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता ववसायसहाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिणिक्ख-

१ अत्र 'दिव्व च सुमणदाम पिणद्धई' इत्येव पाठ दृश्यते वृत्यनुसारेण। 'गठिम० इत्यादि यावत् अलकियविभूसिय करेइ करेत्ता परिपुण्णालकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ' एवभूतो पाठ. सभाव्यते वृत्तिव्याख्यानुसारेण।

मइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव णदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णंदं पुक्खरिणि अणुप्पयाहिणी करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोपाण-पडिरूवगेणं पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता हत्थं पायं पक्खालेइ, पक्खालित्ता एगं मह रययामयं विमलसलिल-पुण्णं मत्तगयमहामुहागिइसमाण भिंगारं पगिण्हइ, भिंगारं पगिण्हित्ता जाइ तत्थ उप्पलाइं पउमाइं जाव सयपत्तसहस्सपत्ताइं ताइ गिण्हइ, गिण्हित्ता णदाओ पुक्खरिणीओ पच्चुत्तरेइ पच्चुत्तरित्ता जेणेव सिद्धायतणे तणेव पहारेत्थ गमणाए।

[१४२] (१) तब वह विजयदेव शानदार इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त हो जाने पर सिंहासन से उठता है और उठकर अभिषेकसभा के पूर्व दिशा के द्वार से बाहर निकलता है और अलकारसभा की ओर जाता है और अलकारसभा की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशा के द्वार से उसमे प्रवेश करता है। प्रवेश कर जिस ओर सिंहासन था उम ओर आकर उस श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठा।

तदनन्तर उस विजयदेव की सामानिकपर्षदा के देवो ने आभियोगिक देवो को बुलाया और ऐसा कहा—'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही विजयदेव का आलकारिक भाण्ड (सिंगारदान) लाओ।' वे आभियोगिक देव आलकारिक भाण्ड लाते हैं। तब विजयदेव ने सर्वप्रथम रोएदार सुकोमल दिव्य सुगन्धित गधकाषायिक (तौलिये) से अपने शरीर को पोछा। शरीर पोछ कर सरस गोशीर्ष चन्दन से शरीर पर लेप लगाया। लेप लगाने के पश्चात् श्वास की वायु से उड जाय ऐसा, नेत्रो को हरण करने वाला, सुन्दर रग और मृदु स्पर्श युक्त, घोडे की लाला (लार) से अधिक मृदु और सफेद, जिसके किनारो पर सोने के तार खचित है, आकाश और स्फटिकरत्न की तरह स्वच्छ, अक्षत ऐसे दिव्य देवदूष्य-युगल को धारण किया। तदनन्तर हार पहना, और एकावली, मुक्तावली, कनकावली और रत्नावली हार पहने, कडे, त्रुटित (भुजबद), अगद (बाहु का आभरण) केयूर दसो अगुलियो मे अगूठियाँ, कटिसूत्र (करधनी-कदोरा), त्रि-अस्थिसूत्र (आभरण विशेष) मुरवी, कठमुरवी, प्रालब (शरीर प्रमाण स्वर्णाभूषण) कुण्डल, चूडामणि और नाना प्रकार के बहुत रत्नो से जडा हुआ मुकुट-धारण किया। ग्रन्थिम, वेष्टिम, पूरिम और सघातिम—इस प्रकार चार तरह की मालाओ से कल्पवृक्ष की तरह स्वय को अलकृत और विभूषित किया। फिर दर्दर मलय चन्दन की सुगधित गध से अपने शरीर को सुगधित किया और दिव्य सुमनरत्न (फूलो की माला) को धारण किया। तदनन्तर वह विजयदेव केशालकार, वस्त्रालकार, माल्यालकार और आभरणालकार—ऐसे चार अलकारो से अलकृत होकर और परिपूर्ण अलकारो से सज्जित होकर सिंहासन से उठा और आलकारिक सभा के पूर्व के द्वार से निकलकर जिस ओर व्यवसायसभा है, उस ओर आया। व्यवसायसभा की प्रदक्षिणा करके पूर्व के द्वार से उसमे प्रविष्ट हुआ और जहाँ सिंहासन था उस ओर जाकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठा।

तदनन्तर उस विजयदेव के आभियोगिक देव पुस्तकरत्न लाकर उसे अर्पित करते है। तब वह विजयदेव उस पुस्तकरत्न को ग्रहण करता है, पुस्तकरत्न को अपनी गोद मे लेता है, पुस्तकरत्न को खोलता है और पुस्तकरत्न का वाचन करता है। पुस्तकरत्न का वाचन करके उसके धार्मिक मर्म को ग्रहण करता है (उसमे अकित धर्मानुगत व्यवसाय को करने की इच्छा करता है)। तदनन्तर पुस्तकरत्न को वहाँ रखकर सिंहासन से उठता है और व्यवसायसभा के पूर्ववर्ती द्वार से बाहर निकल

कर जहाँ नन्दापुष्करिणी है, वहाँ आता है। नदापुष्करिणी की प्रदक्षिणा करके पूर्व के द्वार से उसमे प्रवेश करता है। पूर्व के त्रिसोपानप्रतिरूपक से नीचे उतर कर हाथ-पाव धोता है और एक वडी श्वेत चादी की मत्त हाथी के मुख की आकृति की विमलजल से भरी हुई झारी को ग्रहण करता है और वहाँ के उत्पल कमल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमलो को लेता है और नदापुष्करिणी से बाहर निकल कर जिस ओर सिद्धायतन है उस ओर जाने का सकल्प किया (उधर जाने लगा)।

१४२. [२] तए णं तस्स विजयदेवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ जाव अण्णे य बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य अप्पेगइया उप्पलहत्थगया जाव (सयसहस्सपत्त) हत्थगया विजयं देवं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छति। तए ण तस्स विजयस्स देवस्स बहवे आभिओगिया देवा य देवीओ य कलसहत्थगया जाव धूवकडुच्छयहत्थगया विजय देव पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छति।

तए ण से विजए देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहिं य बहूहिं वाणमतरेहिं देवेहि य देवीहि य सद्धि सपरिवुडे सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए जाव णिग्घोसणादियरवेण जेणेव सिद्धाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धायतणं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छदए तेणेव उवागच्छाई, उवागच्छित्ता आलोए जिणपडिमाणं पणाम करेइ, करित्ता लोमहत्थग गेण्हति लोमहत्थगं गेण्हित्ता जिणपडिमाओ लोमहत्थएण पमज्जति, पमज्जित्ता सुरभिणा गधोदएणं ण्हाणेइ ण्हाणित्ता दिव्वाए सुरभिगधकासाइएण गायाइं लूहेइ, लूहित्ता सरसेण गोसीसचदणेणं गायाइं अणुलिपइ, अणुलिपित्ता जिणपडिमाण अहयाइं सेयाइं दिव्वाइं देवदूसजुयलाइ णियसेइ, णियंसित्ता अग्गेहिं वरेहिं य गंधेहिं य मल्लेहिं य अच्चेइ, अच्चित्ता पुप्फारुहणं गंधारुहणं मल्लारुहणं वण्णारुहणं चुण्णारुहण आभरणारुहणं करेइ, करित्ता आसत्तोसत्त-विउल-वट्टवग्घारियमल्लदामकला व करेइ, करित्ता अच्छेहिं सण्हेहिं (सेएहिं) रययामएहिं अच्छरसातदुलेहिं जिणपडिमाणं पुरओ अट्ठट्ठमगलए आलिहति सोत्थिय सिरिवच्छ जाव दप्पणा, आलिहित्ता कयग्गाहग्गहियकरतलपब्भट्ठविप्पमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फ पुंजोवयारकलिय करेइ, करेत्ता चदप्पभवइरवेरुलियविमलदड कंचणमणिरयणभत्तिचित्त कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवगधुत्तमाणुविद्ध धूमवट्टिं विणिमुयंतं वेरुलियामय कडुच्छुयं पग्गहित्तु पयत्तेणं धूवं दाऊण सत्तट्ठपयाइं ओसरइ ओसरित्ता जिणवराणं अट्ठसयविसुद्धगंथजुत्तेहिं महावित्तेहिं अत्यजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं सथुणइ, सथुणित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिण जाणुं धरणितलंसि णिवावेइ तिक्खुत्तो मुद्धाणं धराणियलंसि णमेई, णमित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता कडयतुडियथभियाओ भुयाओ पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अजलिं कट्टु एवं वयासी—'णमोत्थु ण अरिहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगइणामधेयं ठाणं संपत्ताण' तिकट्टु वंदति णमसइ, वदित्ता णमंसित्ता जेणेव सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खइ, अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचदणेणं पचंगुलितलेणं मंडलं आलिहइ, आलिहित्ता चच्चए दलयइ, चच्चए दलइत्ता कयग्गाहग्गहियकरतलपब्भट्ठविमुक्केणं दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेइ, करित्ता धूवं दलयइ, दलइत्ता जेणेव सिद्धायतणस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थयं गेण्हइ, गेण्हित्ता

दारचेडीओ य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता बहुमज्झदेसभाए सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचगुलितलेण अणुलिंपइ, अणुलिंपित्ता चच्चइ दलयइ, दलइत्ता पुप्फारुहण जाव आभरणारुहण करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलाव करेइ, करित्ता कयग्गाहग्गहिय जाव पुप्फपुंजोवयारकलिय करेइ, करेत्ता धूव दलयइ, दलइत्ता जेणेव मुहमडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बहुमज्झदेसभाए लोमहत्थेण पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता सरसेण गोसीसचदणेण पंचगुलितलेण मडलग आलिहइ, आलिहित्ता चच्चए दलयइ, कयग्गाह० जाव धूवं दलयइ, दलइत्ता जेणेव मुहमंडवगस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ ।

[१४२] (२) तदनन्तर विजयदेव के चार हजार सामानिक देव यावत् और अन्य भी बहुत-सारे वानव्यन्तर देव और देविया कोई हाथ मे उत्पल कमल लेकर यावत् कोई शतपत्र सहस्रपत्र कमल हाथो मे लेकर विजयदेव के पीछे-पीछे चलते हैं । उस विजयदेव के बहुत सारे आभियोगिक देव और देविया कोई हाथ मे कलश लेकर यावत् धूप का कडुच्छुक हाथ मे लेकर विजयदेव के पीछे-पीछे चलते हैं ।

तब वह विजयदेव चार हजार सामानिक देवो के साथ यावत् अन्य बहुत-सारे वानव्यन्तर देवो और देवियो के साथ और उनसे घिरे हुए सब प्रकार की ऋद्धि और सब प्रकार की द्युति के साथ यावत् वाद्यो की गूंजती हुई ध्वनि के बीच जिस ओर सिद्धायतन था, उस ओर आता है और सिद्धायतन की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशा के द्वार से सिद्धायतन मे प्रवेश करता है और जहा देवछदक था वहाँ आता है और जिन प्रतिमाओ को देखते ही प्रणाम करता है । फिर लोमहस्तक लेकर जिन-प्रतिमाओ का प्रमार्जन करता है और सुगधित गधोदक से उन्हे नहलाता है, दिव्य सुगधित गधकाषायिक (तौलिए) से उनके अवयवो को पोछता है, सरस गोशीर्ष चन्दन का उनके अगो पर लेप करता है, फिर जिनप्रतिमाओ को अक्षत, श्वेत और दिव्य देवदूष्य-युगल पहनाता है और श्रेष्ठ, प्रधान गधो से, माल्यो से उन्हे पूजता है; पूजकर फूल चढाता है, गंध चढाता है, मालाएँ चढाता है—वर्णक (केसरादि) चूर्ण और आभरण चढ़ाता है । फिर ऊपर से नीचे तक लटकती हुई, विपुल और गोल वडी-वडी मालाएँ चढाता है । तत्पश्चात् स्वच्छ, सफेद, रजतमय और चमकदार चावलो से जिन-प्रतिमाओ के आगे आठ-आठ मगलो का आलेखन करता है । वे आठ मगल है—स्वस्तिक, श्रीवत्स यावत् दर्पण । आठ मगलो का आलेखन करके कचग्राह से गृहीत और करतल से मुक्त होकर विखरे हुए पाच वर्णो के फूलो से पुष्पोपचार करता है (फूल पूजा करता है) । चन्द्रकान्त मणि-वज्रमणि और वैडूर्यमणि से युक्त निर्मल दण्ड वाले, कचन-मणि और रत्नो से विविधरूपो मे चित्रित, काला अगुरु श्रेष्ठ कुदरुक्क और लोभान के धूप की उत्तम गध से युक्त, धूप की वाती को छोडते हुए वैडूर्यमय कडुच्छुक को लेकर सावधानी के साथ धूप देकर सात आठ पाव पीछे सरक कर जिनवरो की एक सौ आठ विशुद्ध ग्रन्थ (शब्द सदर्भ) युक्त, महाछन्दो वाले, अर्थयुक्त और अपुनरुक्त स्तोत्रो से स्तुति करता है । स्तुति करके वाये घुटने को ऊँचा रखकर तथा दक्षिण (दायें) घुटने को जमीन से लगाकर तीन वार अपने मस्तक को जमीन पर नमाता है, फिर थोडा ऊँचा उठाकर अपनी कटक और त्रुटित (वाजुवद) से स्तभित भुजाओ को सकुचित कर हाथ जोड कर, मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार वोलता है—'नमस्कार हो अरिहन्त भगवन्तो को यावत जो सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हुए

हैं।' ऐसा कहकर वन्दन करता है, नमस्कार करता है। वन्दन-नमस्कार करके जहाँ सिद्धायतन का मध्यभाग है वहाँ आता है और दिव्य जल की धारा से उसका सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चन्दन से हाथो को लिप्तकर पाचो अगुलियो से एक मडल बनता है, उसकी अर्चना करता है और कचग्राह ग्रहीत और करतल से विमुक्त होकर बिखरे हुए पाच वर्णो के फूलो से उसको पुष्पोपचारयुक्त करता है और धूप देता है। धूप देकर जिधर सिद्धायतन का दक्षिण दिशा का द्वार है उधर जाता है। वहा जाकर लोमहस्तक लेकर द्वार शाखा, शालभजिका तथा व्यालरूपक का प्रमार्जन करता है, उसके मध्यभाग को सरस गोशीर्ष चन्दन से लिप्त हाथो से लेप लगाता है, अर्चना करता है, फूल चढाता है, यावत् आभरण चढाता है, ऊपर से लेकर जमीन तक लटकती बडी बडी मालाएँ रखता है और कचग्राह ग्रहीत और करतल विप्रमुक्त फूलो से पुष्पोपचार करता है, धूप देता है और जिधर मुखमण्डप का बहुमध्यभाग है वहा जाकर लोमहस्तक से प्रमार्जन करता है, दिव्य उदकधारा से सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चन्दन से लिप्त पचागुलितल से मण्डल का आलेखन करता है, अर्चना करता है, कचग्राहग्रहीत और करतलविमुक्त होकर बिखरे हुए पाचो वर्णो के फूलो का ढेर लगाता है, धूप देता है और जिधर मुखमण्डप का पश्चिम दिशा का द्वार है, उधर जाता है।

१४२. [३] उवागच्छित्ता लोमहत्थगं गेण्हइ, गेण्हित्ता दारचेडीओ य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थगेणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं जाव चच्चए दलयइ, दलइत्ता आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूवं दलयइ, धूवं दलइत्ता जेणेव मुहमंडवगस्स उत्तरिल्लाण खंभपंती तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, सालभंजियाओ दिव्वाए उदगधाराए० सरसेणं गोसीसचदणेणं पुप्फारुहण जाव आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूव दलयइ, जेणेव मुहमंडवस्स पुरत्थिमिल्ले दारे त चेव सव्व भाणियव्वं जाव दारस्स अच्चणिया। जेणेव दाहिणिल्ले दारे त चेव पेच्छाघरमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए जेणेव वइरामए अक्खाडए जेणेव मणिपेढिया जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं गिण्हइ, गिण्हित्ता अक्खाडगं य सीहासण य लोमहत्थगेण पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ० पुप्फारुहणं जाव धूवं दलयइ। जेणेव पेच्छाघरमण्डवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे दारच्चणिया उत्तरिल्ला खभपंती तहेव पुरत्थिमिल्ले दारे तहेव जेणेव दाहिणिल्ले दारे तहेव जेणेव चेइयथूभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं गेण्हइ, गेण्हित्ता चेइयथूभं लोमहत्थेण पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए० सरसेणं० पुप्फारुहणं आसत्तोसत्त० जाव धूवं दलयइ, दलयित्ता जेणेव पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव जिणपडिमा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए पणाम करेइ, करित्ता लोमहत्थं गेण्हइ, गेण्हित्ता तं चेव सव्वं जं जिणपडिमाणं जाव सिद्धगइनामधेयं ठाणं सपत्ताणं वंदति णमंसइ। एवं उत्तरिल्लाए वि, एव पुरत्थिमिल्लाए वि, एव दाहिणिल्लाए वि। जेणेव चेइयरुक्खा दारविही य मणिपेढिया जेणेव महिंदज्झए दारविही, जेणेव दाहिणिल्ला नंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थगं गेण्हइ, चेइयाओ य तिसोवाणपडिरूवए य तोरणे य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थगेण पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए सिंचइ सरसेण गोसीसचंदणेणं अणुलिंपइ, पुप्फारुहणं जाव धूवं दलयइ, दलइत्ता सिद्धायतणं अणुप्पयाहिणं करेमाणे जेणेव उत्तरिल्ला णंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, तहेव

महिंदज्झया चेइयरुक्खो चेइयथूभो, पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जिणपडिमा उत्तरिल्ला पुरत्थिमिल्ला दक्खिणिल्ला पेच्छाघरमंडवस्स वि तहेव जहा दक्खिणिल्लस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे जाव दक्खिणिल्ला णं खंभपंती मुहमंडवस्स वि तिण्हं दाराणं अच्चणिया भाणिऊणं दक्खिणिल्लाणं खंभपंतो उत्तरे दारे पुरच्छिमे दारे सेसं तेणेव कमेण जाव पुरत्थिमिल्ला णंदापुक्खरिणी जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

[१४२] (३) (मुखमण्डप के पश्चिम दिशा के द्वार पर) आकर लोमहस्तक लेता है और द्वारशाखाओं, शालभंजिकाओं और व्यालरूपक का लोमहस्तक से प्रमार्जन करता है, दिव्य उदकधारा से सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप करता है यावत् अर्चन करता है, ऊपर से नीचे तक लम्बी लटकती हुई बड़ी-बड़ी मालाएँ रखता है, कचग्राहग्रहीत करतलविमुक्त पांच वर्णों के फूलों से पुष्पोपचार करता है, धूप देता है। फिर मुखमंडप की उत्तर दिशा की स्तंभपंक्ति की ओर जाता है, लोमहस्तक से शालभंजिकाओं का प्रमार्जन करता है, दिव्य जलधारा से सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप करता है, फूल चढ़ाता है यावत् बड़ी-बड़ी मालाएँ रखता है, कचग्राहग्रहीत करतलविमुक्त होकर बिखरे हुए फूलों से पुष्पोपचार करता है, धूप देता है। फिर मुखमण्डप के पूर्व के द्वार की ओर जाता है और वह सब कथन पूर्ववत् करना चाहिए यावत् द्वार की अर्चना करता है। इसी तरह दक्षिण दिशा के द्वार में वैसा ही कथन करना चाहिए। फिर प्रेक्षाघरमण्डप के बहुमध्यभाग में जहाँ वज्रमय अखाडा है, जहाँ मणिपीठिका है, जहाँ सिंहासन है वहाँ आता है, लोमहस्तक लेता है, अखाडा, मणिपीठिका और सिंहासन का प्रमार्जन करता है, उदकधारा से सिंचन करता है, फूल चढ़ाता है यावत् धूप देता है। फिर प्रेक्षाघरमण्डप के पश्चिम के द्वार में द्वारपूजा, उत्तर की खंभपंक्ति में वैसा ही कथन, पूर्व के द्वार में वैसा ही कथन, दक्षिण के द्वार में भी वही कथन करना चाहिए। फिर जहाँ चैत्यस्तूप है वहाँ आता है, लोमहस्तक से चैत्यस्तूप का प्रमार्जन, उदकधारा से सिंचन, सरस चन्दन से लेप, पुष्प चढ़ाना, मालाएँ रखना, धूप देना आदि विधि करता है। फिर पश्चिम की मणिपीठिका और जिनप्रतिमा है वहाँ जाकर जिनप्रतिमा को देखते ही नमस्कार करता है, लोमहस्तक से प्रमार्जन करता है आदि कथन यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त अरिहन्त भगवंतों को वन्दन करता है, नमस्कार करता है। इसी तरह उत्तर की, पूर्व की और दक्षिण की मणिपीठिका और जिनप्रतिमाओं के विषय में भी कहना चाहिए। फिर जहाँ दाक्षिणात्य चैत्यवृक्ष है वहाँ जाता है, वहाँ पूर्ववत् अर्चना करता है, वहाँ से महेन्द्रध्वज के पास आकर पूर्ववत् अर्चना करता है। वहाँ से दाक्षिणात्य नंदापुष्करिणी के पास आता है, लोमहस्तक लेता है और चैत्यों, त्रिसोपानप्रतिरूपक, तोरण, शालभंजिकाओं और व्यालरूपकों का प्रमार्जन करता है, दिव्य उदकधारा से सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चन्दन से लेप करता है, फूल चढ़ाता है यावत् धूप देता है। तदनन्तर सिद्धायतन की प्रदक्षिणा करता हुआ जिधर उत्तर दिशा की नंदापुष्करिणी है उधर जाता है। उसी तरह महेन्द्रध्वज, चैत्यवृक्ष, चैत्यस्तूप, पश्चिम की मणिपीठिका और जिनप्रतिमा, उत्तर, पूर्व और दक्षिण की मणिपीठिका और जिनप्रतिमाओं का कथन करना चाहिए। तदनन्तर उत्तर के प्रेक्षाघरमण्डप में आता है, वहाँ दक्षिण के प्रेक्षागृहमण्डप की तरह सब कथन करना चाहिए। वहाँ से उत्तरद्वार से निकलकर उत्तर के मुखमण्डप में आता है। वहाँ दक्षिण के मुखमण्डप की भांति सब विधि करके उत्तर द्वार से निकल कर सिद्धायतन के पूर्वद्वार पर आता है। वहाँ पूर्ववत् अर्चना करके पूर्व के मुखमण्डप

के दक्षिण, उत्तर और पूर्ववर्ती द्वारो मे क्रम से पूर्वोक्त रीति से पूजा करके पूर्वद्वार से निकल कर पूर्व-प्रेक्षामण्डप मे आकर पूर्ववत् अर्चना करता है। फिर पूर्व रीति से क्रमश चैत्यस्तूप, जिनप्रतिमा, चैत्यवृक्ष, माहेन्द्रध्वज और नन्दापुष्करिणी की पूजा-अर्चना करता है। वहाँ से सुधर्मा सभा की ओर आने का सकल्प करता है।

१४२ [४] तए ण तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ एयप्पभिइ जाव सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं ण सभ सुहम्मं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता आलोए जिणसकहाणं पणामं करेइ, करित्ता जेणेव मणिपेढिया जेणेव माणवचेइयखंभे जेणेव वइरामया गोलवट्टसमुग्गका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थयं गेण्हइ, गेण्हित्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए विहाडेइ, विहाडित्ता जिणसकहाओ लोमहत्थेणं पमज्जइ, पमज्जित्ता सुरभिणा गंधोदगेणं तिसत्तखुत्तो जिणसकहाओ पक्खालेइ, पक्खालित्ता सरसेणं गोसीस-चंदणेणं अणुलिपइ अणुलिंपित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहि य अच्चिणइ, अच्चिणित्ता धूव दलयइ, दलइत्ता वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु पडिणिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता माणवकं चेइयखंभ लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, दलइत्ता पुप्फारुहणं जाव आसत्तोसत्त० कयग्गाह० धूव दलयइ, दलइत्ता जेणेव सभाए सुहम्माए बहुमज्झदेसभाए तं चेव, जेणेव सीहासणे तेणेव जहा दारच्चणिया जेणेव देवसयणिज्जे तं चेव, जेणेव खुड्डागे महिंदज्झए त चेव, जेणेव पहरणकोसे चोप्पाले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पत्तेयं पत्तेयं पहरणाइ लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं तहेव सव्वं सेस पि दक्खिणदारं आदिकाउं तहेव णेयव्व जाव पुरच्छिमिल्ला णदापुक्खरिणी। सव्वाणं सभाण जहा सुहम्माए सभाए तहा अच्चणिया उववायसभाए णवरि देवसयणिज्जस्स अच्चणिया, सेसासु सीहासणाण अच्चणिया, हरयस्स जहा णदाए पुक्खरिणीए अच्चणिया, ववसायसभाए पोत्थयरयणं लोम० दिव्वाए उदगधाराए सरसेण गोसीसचंदणेणं अणुलिपइ, अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं य मल्लेहिं य अच्चिणइ, अच्चिणित्ता सीहासणे लोमहत्थएण पमज्जइ जाव धूव दलयइ सेसं तं चेव, णंदाए जहा हरयस्स तहा जेणेव बलिपीढ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! विजयाए रायहाणीए सिंघाडगेसु य चउक्केसु य चच्चरेसु य चउम्मुहेसु य महापहपहेसु य पासाएसु य पागारेसु य अट्टालएसु य चरियासु य दारेसु य गोपुरेसु य तोरणेसु य वावीसु य पुक्खरिणीसु य जाव बिलपतियासु य आरामेसु य उज्जाणेसु य काणणेसु य वणेसु य वणसडेसु य वणराईसु य अच्चणियं करेह करित्ता ममेयमाणत्तिय खिप्पामेव पच्चप्पिणह।

तए ण ते आभिओगिआ देवा विजएण देवेण एवं वुत्ता समाणा जाव हट्ठतुट्ठा विणएणं पडिसुणति, पडिसुणित्ता विजयाए रायहाणीए सिंघाडगेसु य जाव अच्चणिय करेत्ता जेणेव विजए देवे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तए णं से विजए देवे तेसिं णं आभिओगियाण देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणदिए जाव हयहियए जेणेव नदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं जाव हत्थपायं पक्खालेइ, पक्खालित्ता आयते चोक्खे परमसुइभूए णदापुक्खरिणीओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए ण विजए देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं सव्विड्ढीए जाव णिग्घोसणादियरवेण जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सभं सुहम्मं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव मणिपेढिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरच्छिमाभिमुहे सण्णिसण्णे।

[१४२] (४) तव वह विजयदेव अपने चार हजार सामानिक देवो आदि अपने समस्त परिवार के साथ, यावत् सब प्रकार की ऋद्धि के साथ वाद्यो की ध्वनि के बीच सुधर्मा सभा की ओर आता है और उसकी प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशा के द्वार से उसमे प्रवेश करता है। प्रवेश करने पर जिन-अस्थियो को देखते ही प्रणाम करता है और जहाँ मणिपीठिका है, जहाँ माणवक चैत्यस्तभ है और जहाँ वज्ररत्न की गोल वर्तु ल मजूषाएँ हैं, वहाँ आता है और लोमहस्तक लेकर उन गोल-वर्तु लाकार मजूषाओ का प्रमार्जन करता है और उनको खोलता है, उनमे रखी हुई जिन-अस्थियो का लोमहस्तक से प्रमार्जन कर सुगन्धित गन्धोदक से इक्कीस वार उनको धोता है, सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप करता है, प्रधान और श्रेष्ठ गधो और मालाओ से पूजता है और धूप देता है। तदनन्तर उनको उन गोल वर्तु लाकार मजूषाओ मे रख देता है। इसके वाद माणवक चैत्यस्तभ का लोमहस्तक से प्रमार्जन करता है, दिव्य उदकधारा से सिंचन करता है, सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप करता है, फूल चढाता है, यावत् लम्वी लटकती हुई फूलमालाएँ रखता है, कचग्राहग्रहीत और करतल से विमुक्त हुए बिखरे पाच वर्णो के फूलो से पुष्पोपचार करता है, धूप देता है। इसके बाद सुधर्मा सभा के मध्यभाग मे जहाँ सिंहासन है वहाँ आकर सिंहासन का प्रमार्जन आदि पूर्ववत् अर्चना करता है। इसके बाद जहाँ मणिपीठिका और देवशयनीय है वहाँ आकर पूर्ववत् पूजा करता है। इसी प्रकार क्षुलल्क महेन्द्रध्वज की पूजा करता है। इसके वाद जहाँ चौपालक नामक प्रहरणकोष [शस्त्रागार] है वहाँ आकर शस्त्रो का लोमहस्तक से प्रमार्जन करता है, उदकधारा से सिंचन कर, चन्दन का लेप लगाकर, पुष्पादि चढाकर धूप देता है। इसके पश्चात् सुधर्मा सभा के दक्षिण द्वार पर आकर पूर्ववत् पूजा करता है, फिर दक्षिण द्वार से निकलता है। इससे आगे सारी वक्तव्यता सिद्धायतन की तरह कहना चाहिए यावत् पूर्वदिशा की नदापुष्करिणी की अर्चना करता है। सव सभाओ की पूजा का कथन सुधर्मा सभा की तरह जानना चाहिए। अन्तर यह है कि उपपात सभा मे देवशयनीय की पूजा का कथन करना चाहिए और शेष सभाओ मे सिंहासनो की पूजा का कथन करना चाहिए। ह्रद की पूजा का कथन नदापुष्करिणी की तरह करना चाहिए। व्यवसायसभा मे पुस्तकरत्न का लोमहस्तक से प्रमार्जन, दिव्य उदकधारा से सिंचन, सरस गोशीर्ष चन्दन से अनुलिंपन, प्रधान एव श्रेष्ठ गधो और माल्यो से अर्चन करता है। तदनन्तर सिंहासन का प्रमार्जन यावत् धूप देता है। शेष सब कथन पूर्ववत् करना चाहिए। ह्रद का कथन नदापुष्करिणी की तरह करना चाहिए। तदनन्तर जहाँ बलिपीठ है, वहाँ जाता है और वहाँ अर्चादि करके आभियोगिक देवो को बुलाता है और उन्हे कहता है कि 'हे

देवानुप्रियो ! विजया राजधानी के शृंगाटको [त्रिकोणस्थानो] त्रिको [जहाँ तीन रास्ते मिलते है] चतुष्को [जहाँ चार रास्ते मिलते हैं] चत्वरो [वहुत से रास्ते जहाँ मिलते हैं] चतुर्मुखो [जहाँ से चारो दिशाओ मे रास्ते जाते हैं] महापथो [राजपथो] और सामान्य पथो मे, प्रासादो मे, प्राकारो मे, अट्टालिकाओ मे, चर्याओ [नगर और प्राकार के बीच आठ हाथ प्रमाण चौडे अन्तराल मार्ग] मे, द्वारो मे, गोपुरो [प्राकार के द्वारो] मे, तोरणो मे, बावडियो मे, पुष्करिणीओ मे, यावत् सरोवरो की पक्तियो मे, आरामो मे [लतागृहो मे], उद्यानो मे, काननो [नगर के समीप के वनो] मे, वनो मे [नगर से दूर जगलो मे], वनखण्डो [अनेक जाति के वृक्षसमूहो] मे, वनराजियो [एकजातीय उत्तम वृक्षसमूहो] मे पूजा अर्चना करो और यह कार्य सम्पन्न कर मुझे मेरी आज्ञा सौपो अर्थात् कार्य-समाप्ति की सूचना दो ।'

तव वे आभियोगिकदेव विजयदेव द्वारा ऐसा कहे जाने पर हृष्ट-तुष्ट हुए और उसकी आज्ञा को स्वीकार कर विजया राजधानी के शृंगाटको मे यावत् वनखण्डो मे पूजा-अर्चना करके विजयदेव के पास आकर कार्य सम्पन्न करने की सूचना देते है ।

तव वह विजयदेव उन आभियोगिक देवो से यह बात सुनकर हृष्ट-तुष्ट और आनन्दित हुआ यावत् उसका हृदय विकसित हुआ । तदनन्तर वह नन्दापुष्करिणी की ओर जाता है और पूर्व के तोरण से उसमे प्रवेश करता है यावत् हाथ-पाव धोकर, आचमन करके स्वच्छ और परम शुचिभूत होकर नदापुष्करिणी से वाहर आता है और सुधर्मा सभा की ओर जाने का सकल्प करता है ।

तव वह विजयदेव चार हजार सामानिक देवो के साथ यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवो के साथ सर्वऋद्धिपूर्वक यावत् वाद्यो की ध्वनि के वीच सुधर्मा सभा की ओर आता है और सुधर्मा सभा के पूर्वदिशा के द्वार से उसमे प्रवेश करता है तथा जहाँ मणिपीठिका है वहाँ जाकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठता है ।

१४३ तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छिमेण पत्तेय पत्तेय पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयति । तए णं तस्स विजयस्स देवस्स चत्तारि अग्गमहिसीओ पुरत्थिमेणं पत्तेय पत्तेय पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयति । तए णं तस्स विजयस्स देवस्स दाहिणपुरत्थिमेण अब्भितरियाए परिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ पत्तेयं पत्तेयं जाव णिसीयत्ति ।

एव दक्खिणेण मज्झिमियाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ जाव णिसीयंति । दाहिण-पच्चत्थिमेण बाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ पत्तेय पत्तेयं जाव णिसीदंति ।

तए णं तस्स विजयस्स देवस्स पच्चत्थिमेण सत्त अणियाहिवई पत्तेय पत्तेयं जाव णिसीयत्ति । तए ण तस्स विजयस्स देवस्स पुरत्थिमेण दाहिणेण पच्चत्थिमेणं उत्तरेण सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ पत्तेय पत्तेय पुव्वणत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयति; त जहा—पुरत्थिमेण चत्तारि साहस्सीओ जाव उत्तरेण चत्तारि साहस्सीओ ।

ते ण आयरक्खा सन्नद्धबद्धवम्मियकवया, उप्पीलियसरासणपट्टिया पिणद्धगेवेज्जविमलवर-चिंधपट्टा, गहियाउहपहरणा तिणयाइ तिसधीणि वइरामया कोडीणि धणूइ अहिगिज्झ परियाइयकड-कलावा णीलपाणिणो पीयपाणिणो रत्तपाणिणो चावपाणिणो चारुपाणिणो चम्मपाणिणो खग्गपाणिणो

दंडपाणिणो पासपाणिणो णीलपीयरत्तचावचारुचम्मखग्गदंडपासवरधरा आयरक्खा रक्खोवगा गुत्ता गुत्तपालिया जुत्ता जुत्तपालिया पत्तेयं पत्तेयं समयओ विणयओ किंकरभूयाविव चिट्ठंति ।

तए णं से विजए देवे चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयरक्खदेवसाहस्सीणं विजयस्स णं दारस्स विजयाए रायहाणीए, अण्णेसिं च बहूणं विजयाए रायहाणीए वत्थव्वगाणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयनट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहरइ ।

विजयस्स णं भंते ! देवस्स केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता ।

विजयस्स णं देवस्स सामाणियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? एगं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता । एवं महिड्ढिए एवं महज्जुई एवं महब्बले एवं महायसे एवं महासुक्खे एवं महाणुभागे विजए देवे देवे ।

[१४३] तब उस विजयदेव के चार हजार सामानिक देव पश्चिमोत्तर, उत्तर और उत्तरपूर्व मे पहले से रखे हुए चार हजार भद्रासनो पर अलग-अलग बैठते है । उस विजयदेव की चार अग्रम-हिषियाँ पूर्वदिशा मे पहले से रखे हुए अलग-अलग भद्रासनो पर बैठती है। उस विजयदेव के दक्षिणपूर्व दिशा मे आभ्यन्तर पर्षदा के आठ हजार देव अलग-अलग पूर्व से ही रखे हुए भद्रासनो पर बैठते है ।

उस विजयदेव की दक्षिण दिशा मे मध्यम पर्षदा के दस हजार देव पहले से रखे हुए अलग-अलग भद्रासनो पर बैठते है । दक्षिण-पश्चिम की ओर बाह्य पर्षदा के बारह हजार देव पहले से रखे अलग-अलग भद्रासनो पर बैठते है ।

उस विजयदेव के पश्चिम दिशा मे सात अनीकाधिपति पूर्व मे रखे हुए अलग-अलग भद्रासनो पर बैठते है । उस विजयदेव के पूर्व मे, दक्षिण मे, पश्चिम मे और उत्तर मे सोलह हजार आत्मरक्षक देव पहले से ही रखे हुए अलग-अलग भद्रासनो पर बैठते है । पूर्व मे चार हजार आत्मरक्षक देव, दक्षिण मे चार हजार आत्मरक्षक देव, पश्चिम मे चार हजार आत्मरक्षक देव और उत्तर मे चार हजार आत्मरक्षक देव पहले से रखे हुए अलग-अलग भद्रासनो पर बैठते है ।

वे आत्मरक्षक देव लोहे की कीलो से युक्त कवच को शरीर पर कस कर पहने हुए है, धनुष की पट्टिका [मुष्ठिग्रहण स्थान] को मजबूती से पकडे हुए है, उन्होने गले मे ग्रैवेयक [ग्रीवाभरण] और विमल सुभट चिह्नपट्ट को धारण कर रखा है, उन्होने आयुधो और शस्त्रो को धारण कर रखा है, आदि मध्य और अन्त—इन तीन स्थानो मे नमे हुए और तीन संधियो वाले और वज्रमय कोटि वाले धनुषो को लिये हुए है और उनके तूणीरो मे नाना प्रकार के बाण भरे है । किन्ही के हाथ मे नीले बाण है, किन्ही के हाथ में पीले बाण है, किन्ही के हाथो मे लाल बाण है, किन्ही के हाथो मे धनुष है, किन्ही के हाथो मे चारु [प्रहरण विशेष] है, किन्ही के हाथो मे चर्म [अंगूठे और अंगुलियो का आच्छादन रूप] है, किन्ही के हाथो मे दण्ड है, किन्ही के हाथो मे तलवार है, किन्ही के हाथो मे पाश [चाबुक] है और किन्ही के हाथो मे उक्त सब शस्त्रादि है । वे आत्मरक्षक देव रक्षा करने मे दत्तचित्त

है, गुप्त है [स्वामी का भेद प्रकट करने वाले नही हैं] उनके सेतु दूसरो के द्वारा गम्य नही है, वे युक्त है [सेवक गुणापेत हैं], उनके सेतु परस्पर सवद्ध हैं—वहुत दूर नही है। वे अपने आचरण और विनय से मानो किंकरभूत है [वे किंकर नही है, पृथक् आसन प्रदान द्वारा वे मान्य है किन्तु शिष्टाचारवश विनम्र हैं]।

तब वह विजयदेव चार हजार सामानिक देवो, सपरिवार चार अग्रमहिषियो, तीन परिषदो, सात अनीको, सात अनीकाधिपतियो, सोलह हजार आत्मरक्षक देवो का तथा विजयद्वार, विजया राजधानी एव विजया राजधानी के निवासी वहुत-से देवो और देवियो का आधिपत्य, पुरोवर्तित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञा-ईश्वर-सेनाधिपतित्व करता हुआ और सव का पालन करता हुआ, जोर से बजाए हुए वाद्यो, नृत्य, गीत, तन्त्री, तल, ताल, त्रुटित, घन मृदग आदि की ध्वनि के साथ दिव्य भोगोपभोग भोगता हुआ रहता है।

भन्ते! विजय देव की आयु कितने समय की कही गई है?

गौतम! एक पल्योपम की आयु कही है।

हे भगवन्! विजयदेव के सामानिक देवो की कितने समय की स्थिति कही गई है? गौतम! एक पल्योपम की स्थिति कही गई है।

इस प्रकार वह विजयदेव ऐसी महर्द्धि वाला, महाद्युति वाला, महावल वाला, महायश वाला महासुख वाला और ऐसा महान् प्रभावशाली है।

वैजयंत आदि द्वार

१४४ कहि ण भते! जंबुद्दीवस्स दीवस्स वेजयंते णाम दारे पण्णत्ते?

गोयमा! जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेण पणयालीसं जोयणसहस्साइ अवाहाए जबुद्दीवदीवदाहिणपेरन्ते लवणसमुद्ददाहिणद्धस्स उत्तरेणं एत्थ णं जवुद्दीवस्स दीवस्स वेजयते णामं दारे पण्णत्ते, अट्ठ जोयणाइं उड्ढ उच्चत्तेण सच्चेव सव्वा वत्तव्वया जाव णिच्चे।

कहि णं भते!० रायहाणी? दाहिणेण जाव वेजयते देवे देवे।

कहि ण भते!० जबुद्दीवस्स दीवस्स जयते णाम दारे पण्णत्ते? गोयमा! जंवुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेण पयणालीस जोयणसहस्साइं जवुद्दीवपच्चत्थिमपेरते लवणसमुद्द-पच्चत्थिमद्धस्स पुरच्छिमेण सीओदाए महाणईए उप्पि एत्थ णं जम्बुद्दीवस्स जयते णामं दारे पण्णत्ते, त चेव से पमाणे जयते देवे पच्चत्थिमेण से रायहाणी जाव महिड्ढिए।

कहि ण भते! जबुद्दीवस्स दीवस्स अपराइए णाम दारे पण्णत्ते? गोयमा! मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं पणयालीसं जोयणसहस्साइ अबाहाए जबुद्दीवे दीवे उत्तरपेरंते लवणसमुद्दस्स उत्तरद्धस्स दाहिणेणं एत्थ ण जवुद्दीवे दीवे अपराइए णाम दारे पण्णत्ते। त चेव पमाण। रायहाणी उत्तरेण जाव अपराइए देवे, चउण्हवि अण्णमि जंबुद्दीवे।

[१४४] हे भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप का वैजयन्त नाम का द्वार कहाँ कहा गया है?

हे गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे मेरुपर्वत के दक्षिण मे पैतालीस हजार योजन आगे जाने

पर उस द्वीप की दक्षिण दिशा के अन्त मे तथा दक्षिण दिशा के लवणसमुद्र से उत्तर मे जम्बूद्वीप नामक द्वीप का वैजयन्त द्वार कहा गया है। यह आठ योजन ऊँचा और चार योजन चौडा है— आदि सव वक्तव्यता वही कहना चाहिए जो विजयद्वार के लिए कही गई है यावत् यह वैजयन्त द्वार नित्य है।

भगवन् ! वैजयन्त देव की वैजयती नाम की राजधानी कहाँ है ? गौतम ! वैजयन्त द्वार की दक्षिण दिशा मे तिर्यक् असख्येय द्वीपसमुद्रो को पार करने पर आदि वर्णन विजयद्वार के तुल्य कहना चाहिए यावत् वहाँ वैजयत नाम का महर्द्धिक देव है।

हे भगवन् ! जम्बूद्वीप का जयन्त नाम का द्वार कहाँ है ? गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के पश्चिम में पैतालीस हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप की पश्चिम दिशा के अन्त मे तथा लवणसमुद्र के पश्चिमार्ध के पूर्व मे शीतोदा महानदी के आगे जम्बूद्वीप का जयन्त नाम का द्वार है। वही वक्तव्यता कहनी चाहिए यावत् वहाँ जयन्त नाम का महर्द्धिक देव है और उसकी राजधानी जयन्त द्वार के पश्चिम मे तिर्यक् असख्य द्वीप-समुद्रो को पार करने पर आदि वर्णन विजयद्वार के समान है।

हे भगवन् ! जम्बूद्वीप का अपराजित नाम का द्वार कहाँ कहा गया है ? गौतम ! मेरुपर्वत के उत्तर मे पैतालीस हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप की उत्तर दिशा के अन्त मे तथा लवण-समुद्र के उत्तरार्ध के दक्षिण मे जम्बूद्वीप का अपराजित नाम का द्वार है। उसका प्रमाण विजयद्वार के समान है। उसकी राजधानी अपराजित द्वार के उत्तर मे तिर्यक् असख्यात द्वीप-समुद्रो को लाघने के बाद आदि वर्णन विजया राजधानी के समान है यावत् वहाँ अपराजित नाम का महर्द्धिक देव है। ये चारो राजधानिया इस प्रसिद्ध जम्बूद्वीप मे न होकर दूसरे जम्बूद्वीप मे है।

१४५ जंबुद्दीवस्स ण भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य एस ण केवइए अबाहाए अतरे पण्णत्ते ?

गोयमा ! अउणासिइ जोयणसहस्साइ बावण्ण च जोयणाइ देसूण च अद्धजोयण दारस्स य दारस्स य अबाहाए अतरे पण्णत्ते।

[१४५] हे भगवन् ! जम्बूद्वीप के इन द्वारो मे एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर कितना कहा गया है ?

गौतम ! उन्यासी हजार बावन योजन और देशोन आधा योजन का अन्तर कहा गया है। [७९०५२ योजन और देशोन आधा योजन]।

विवेचन—एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर उन्यासी हजार बावन योजन और देशोन आधा योजन बताया है, उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—

प्रत्येक द्वार की शाखारूप कुड्य [भीत] एक एक कोस की मोटी है और प्रत्येक द्वार का विस्तार चार-चार योजन का है। इस तरह चारो द्वारो मे कुड्य और द्वारप्रमाण १८ योजन का होता है। जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस [३१६२२७] योजन तीन कोस एक सौ आठ धनुष और साढे तेरह अगुल से कुछ अधिक है। इसमे से चारो द्वारो और शाखाद्वारो का १८

योजन प्रमाण घटाने पर परिधि का प्रमाण ३१६२०९ योजन तीन कोस एक सौ आठ धनुष और साढे तेरह अगुल से अधिक शेष रहता है। इसके चार भाग करने पर ७९०५२ योजन १ कोस १५३२ धनुष ३ अगुल और ३ यव आता है। इतना एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर समझना चाहिए। इसी बात को निम्न दो गाथाओ मे प्रकट किया गया है—

कुड्डदुवारपमाण अट्ठारस जोयणाइ परिहीए।
सो हि य चउहि विभत्त इणमो दारतर होइ ॥१॥

अउन्नसीइ सहस्सा बावण्णा अद्धजोयण नूण।
दारस्स य दारस्स य अतरमेय विणिद्दिट्ठ ॥२॥

१४६ जबुद्दीवस्स ण भते ! दीवस्स पएसा लवण समुद्द पुट्ठा ? हता, पुट्ठा।

ते ण भते ! कि जंबुद्दीवे दीवे लवणसमुद्दे वा ?

गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे, नो खलु ते लवणसमुद्दे।

लवणस्स ण भते ! समुद्दस्स पएसा जबुद्दीव दीव पुट्ठा ?

हंता, पुट्ठा।

ते णं भते ! कि लवणसमुद्दे जबुद्दीवे दीवे वा ?

गोयमा ! लवणे णं ते समुद्दे, नो खलु ते जबुद्दीवे दीवे ॥

जबुद्दीवे णं भंते ! दीवे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता लवणसमुद्दे पच्चायंति ?

गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति, अत्थेगइया नो पच्चायंति।

लवणे ण भते ! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता उद्दाइत्ता जबुद्दीवे दीवे पच्चायंति ?

गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति, अत्थेगइया नो पच्चायंति।

[१४६] हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के प्रदेश लवणसमुद्र से स्पृष्ट है क्या ?
हाँ, गौतम ! स्पृष्ट है।

भगवन् ! वे स्पष्ट प्रदेश जम्बूद्वीप रूप है या लवणसमुद्र रूप ?
गौतम ! वे जम्बूद्वीप रूप है, लवणसमुद्र रूप नही है।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र के प्रदेश जम्बूद्वीप को छुए हुए है क्या ?
हाँ, गौतम ! छुए हुए है।

हे भगवन् ! वे स्पृष्ट प्रदेश लवणसमुद्र रूप है या जम्बूद्वीप रूप ?
गौतम ! वे स्पृष्ट प्रदेश लवणसमुद्र रूप हैं, जम्बूद्वीप रूप नही।

हे भगवन् ! जम्बूद्वीप मे मर कर जीव लवणसमुद्र मे पैदा होते है क्या ?
गौतम ! कोई उत्पन्न होते है, कोई उत्पन्न नही होते है।

हे भगवन् ! लवणसमुद्र मे मर कर जीव जम्बूद्वीप मे पैदा होते है क्या ?
गौतम ! कोई पैदा होते हैं, कोई पैदा नही होते हैं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में प्रश्न किया गया है कि जम्बूद्वीप के लवणसमुद्र से स्पृष्ट—छुए हुए प्रदेश जम्बूद्वीप रूप है या लवणसमुद्र रूप ? इसका आशय यह है कि स्वसीमागत जो चरम प्रदेश है वे क्या जम्बूद्वीप रूप हैं या लवणसमुद्र रूप ? क्योकि जो जिससे स्पृष्ट होता है वह किसी अपेक्षा से उस रूप मे व्यपदेश वाला हो जाता है, जैसे सौराष्ट्र से सक्रान्त मगध देश सौराष्ट्र कहलाता है। किसी अपेक्षा से वैसा व्यपदेश नही भी होता है, जैसे तर्जनी अगुलि से सस्पृष्ट ज्येष्ठा अगुलि तर्जनी नही कही जाती है। दोनो प्रकार की स्थितियाँ होने से यहाँ उक्त प्रकार का प्रश्न किया गया है। इसके उत्तर मे प्रभु ने फरमाया कि वे जम्बूद्वीप के चरम स्पृष्ट प्रदेश जम्बूद्वीप के ही हैं, लवणसमुद्र के नही। यही वात लवणसमुद्र के प्रदेशो के विषय मे भी समझनी चाहिए।

जम्बूद्वीप से मर कर लवणसमुद्र मे पैदा होने और लवणसमुद्र से मर कर जम्बूद्वीप मे पैदा होने सबधी प्रश्नो के विषय मे कहा गया है कि कोई-कोई जीव वहाँ पैदा होते है और कोई-कोई पैदा नही होते, क्योकि जीव अपने किये हुए विविध कर्मो के कारण विविध गतियो मे जाते है।

जम्बूद्वीप क्यों कहलाता है ?

१४७. से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ जंबुद्दीवे दीवे ?

गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं णीलवतस्स दाहिणेण मालवंतस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, गधमायणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेण, एत्थ ण उत्तरकुरा णाम कुरा पण्णत्ता, पाईणपडीणायता उदीणदाहिणविच्छिण्णा अद्धचदसठाणसठिया एक्कारसजोयणसहस्साइ अट्ठबायाले जोयणसए दोण्णि य एकोणवीसइभागे जोयणस्स विक्खभेण। तीसे जीवा पाईणपडीणायता दुहओ वक्खारपव्वयं पुट्ठा, पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्ल वक्खारपव्वय पुट्ठा, पच्चत्थिमिल्लेण कोडीए पच्चत्थिमिल्लं वक्खारपव्वय पुट्ठा, तेवण्ण जोयणसहस्साइ आयामेण, तीसे धणुपट्ठ दाहिणेण सट्ठि जोयणसहस्साइं चत्तारि य अट्ठारसुत्तरे जोयणसए दुवालस य एगूण वीसइ भाए जोयणस्स परिक्खेवेण पण्णत्ते।

उत्तरकुराए णं भते कुराए केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते। से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव एक्कोरुयदीववत्तव्वया जाव देवलोगपरिग्गहा णं ते मणुयगणा पण्णत्ता समणाउसो ! णवरि इम णाणत्तं—

छधणुसहस्समूसिया दो छप्पन्ना पिट्ठकरडसया अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ, तिण्णि पलिओवमाइं देसूणाइं पलिओवमस्सासखिज्जइ भागेण ऊणगाइ जहन्नेणं, तिन्नि पलिओवमाइं उक्कोसेणं, एकूणपणराइंदियाइं अणुपालणा; सेसं जहा एगूरुयाणं।

उत्तरकुराए णं कुराए छव्विहा मणस्सा अणुसज्जति, तं जहा—१ पम्हगंधा, २. मियगंधा, ३. अममा, ४ सहा, ५ तेयालीसे, ६ सणिचारी।

[१४७] हे भगवन् ! जम्बूद्वीप, जम्बूद्वीप क्यो कहलाता है ?

हे गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत के उत्तर मे, नीलवत पर्वत के दक्षिण मे, मालवत वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम मे एव गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत के पूर्व मे उत्तरकुरा नामक कुरा [क्षेत्र] है। वह पूर्व से पश्चिम तक लम्बा और उत्तर से दक्षिण तक चौडा है, अष्टमी के चाँद की

तरह अर्ध गोलाकार है। इसका विष्कम्भ [विस्तार-चौडाई] ग्यारह हजार आठ सौ बयालीस योजन और एक योजन का २/१९ भाग [११८४२ २/१९ योजन] है। इसकी जीवा पूर्व-पश्चिम तक लम्बी है। और दोनो ओर से वक्षस्कार पर्वतो को छूती है। पूर्वदिशा के छोर से पूर्वदिशा के वक्षस्कार पर्वत और पश्चिमदिशा के छोर से पश्चिमदिशा के वक्षस्कार पर्वत को छूती है। यह जीवा तिरपन हजार [५३०००] योजन लम्बी है। इस उत्तरकुरा का धनुष्पृष्ठ दक्षिण दिशा मे साठ हजार चार सौ अठारह योजन और १२/१९ योजन [६०४१८ १२/१९ योजन है। यह धनुष्पृष्ठ परिधि रूप है।

हे भगवन् ! उत्तरकुरा का आकारभाव-प्रत्यवतार [स्वरूप] कैसा कहा गया है ?

गौतम ! उत्तरकुरा का भूमिभाग बहुत सम और रमणीय है। वह भूमिभाग आलिगपुष्कर [मुरज-मृदग] के मढे हुए चमडे के समान समतल है—इत्यादि सब वर्णन एकोरुक द्वीप की वक्तव्यता के अनुसार कहना चाहिए यावत् हे अयुष्मान श्रमण ! वे मनुष्य मर कर देवलोक मे उत्पन्न होते हैं। अन्तर इतना है कि इनकी ऊँचाई छह हजार धनुष [तीन कोस] की होती है। दो सौ छप्पन इनकी पसलिया होती है। तीन दिन के बाद इन्हे आहार की इच्छा होती है। इनकी जघन्य स्थिति पल्योपम का असख्यातवा भाग कम—देशोन तीन पल्योपम की है और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की है। ये ४९ दिन तक अपत्य की अनुपालना करते है। शेष एकोरुक मनुष्यो के समान जानना चाहिए।

उत्तराकुरा क्षेत्र मे छह प्रकार के मनुष्य पैदा होते है, यथा—१-पद्मगध, २ मृगगन्ध, ३ अमम, ४ सह, ५ तेयालीस [तेजस्वी] और ६ शनैश्चारी।

विवेचन—उत्तरकुरु क्षेत्र पूर्व से पश्चिम तक लम्बा है और उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ [चौडा] है। इसका सस्थान अष्टमी के चन्द्रमा जैसा अर्ध गोलाकार है। इसका विस्तार ११८४२ २/१९ योजन का उत्तर-दक्षिण मे है। यह इस प्रकार फलित होता है—

महाविदेह क्षेत्र मे मेरु के उत्तर की ओर उत्तरकुरु नाम का क्षेत्र है। दक्षिण की ओर दक्षिणकुरु है। अत महाविदेह क्षेत्र का जो विस्तार है उसमे से मेरुपर्वत के विस्तार को कम कर देने से जीवा का विस्तार बनता है। उसे आधा करने पर जो प्रमाण आता है वह दक्षिणकुरु और उत्तरकुरु का विस्तार होता है।[1]

महाविदेह क्षेत्र का विस्तार ३३६८४ ४/१९ योजन है। इसमे मेरु का विस्तार १०००० योजन घटा देना चाहिए, तब २३६८४ ४/१९ बनते है। इसके दो भाग करने पर ११८४२ २/१९ योजन होता है। यही उत्तरकुरु और दक्षिणकुरु का विस्तार है। इसकी जीवा [प्रत्यचा] उत्तर मे नील वर्षधर पर्वत के समीप तक विस्तृत है और पूर्व पश्चिम तक लम्बी है। यह अपने पूर्व दिशा के छोर से माल्यवत वक्षस्कार पर्वत को छूती है और पश्चिम दिशा के छोर से गन्धमादन वक्षस्कार पर्वत को छूती है। यह जीवा ५३००० [तिरपन हजार] योजन लम्बी है। इसकी लम्बाई का प्रमाण इस प्रकार फलित होता है[2]—मेरुपर्वत की पूर्वदिशा और पश्चिम दिशा के भद्रशाल वनो की प्रत्येक की लम्बाई २२००० [बावीस हजार] योजन की है, दोनो की ४४००० योजन हुई। इसमे मेरुपर्वत के विष्कभ १०००० [दस हजार] योजन मिला देने से ५४००० [चौपन हजार] योजन होते है। इस प्रमाण मे से दोनो

---

१ 'वइदेहा विक्खभा मदरविक्खभ सोहियअद्धत कुरुविक्खभ जाणसु'।

२ 'मदरपुव्वेणायया बीमसहस्स भद्दसालवण दुगुण मदरमहिय दुसेलरहिय च कुरुजीवा।'

वक्षस्कार पर्वतो का ५००-५०० याजन का प्रमाण घटा देने से तिरपन हजार योजन आते है। यही प्रमाण जीवा का है।

उत्तरकुरुओ का धनुष्पृष्ठ दक्षिण मे ६०४१८ $\frac{१२}{१९}$ योजन है। गन्धमादन और माल्यवन्त वक्षस्कार पर्वतो की लम्बाई का जो परिमाण है वही उत्तरकुरुओ का धनुष्पृष्ठ [परिधि] है। गधमादन और माल्यवत पर्वत का प्रत्येक का आयाम ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ योजन है। दोनो का कुल प्रमाण ६०४१८ $\frac{१२}{१९}$ योजन होना है। यही प्रमाण उत्तरकुरुओ के धनुष्पृष्ठ का है।[1]

उत्तरकुरु क्षेत्र के स्वरूप के विषय मे प्रश्न किये जाने पर सूत्रकार ने एकोरुक द्वीप की वक्तव्यता का अतिदेश किया है।[2] अर्थात् पूर्वोक्त एकोरुक द्वीप के समान ही सब वक्तव्यता जाननी चाहिए। जो अन्तर है उसे सूत्रकार ने साक्षात् सूत्र द्वारा प्रकट किया है जो इस प्रकार है—

वे उत्तरकुरु के मनुष्य छह हजार धनुष अर्थात् तीन कोस के लम्बे है, २५६ उनके पसलिया होती हैं, तीन दिन के अन्तर से आहार की अभिलाषा होती है, पल्योपमासख्येय भाग कम [देशोन] तीन पल्योपम की जघन्य स्थिति और परिपूर्ण तीन पल्योपम की उत्कृष्ट आयु होती है और ४९ दिन तक अपत्य-पालना करते हैं। शेष एकोरुक द्वीप के मनुष्यो की वक्तव्यतानुसार जानना चाहिए यावत् वे मनुष्य मर कर देवलोक मे ही जाते हैं।

उत्तरकुरुओ मे जातिभेद को लेकर छह प्रकार के मनुष्य रहते है—१. पद्मगध [पद्म जैसी गध वाले], २ मृगगन्ध [मृग जैसी गध वाले], ३ अमम [ममत्वहीन], ४ सह [सहनशील], ५ तेयालीसे [तेजस्वी] और ६ शनैश्चारी [धीरे चलने वाले]।

वृत्ति के अनुसार उत्तरकुरु क्षेत्र को लेकर जो-जो विषय कहे गये है, उनको सकलित करने वाली तीन गाथाएँ इस प्रकार हैं—

उसुजीवाधणपट्ठ भूमी गुम्मा य हेरुउद्दाला।
तिलगलयावणराई रुक्खा मणुया य आहारे ॥१॥
गेहा गामा य असी हिरण्णराया य दास माया य।
अरिवेरिए य मित्ते विवाह मह नट्ट सगडा य ॥२॥
आसा गावो सीहा साली खाणू य गड्डदसाही।
गहजुद्ध रोगठिइ उव्वट्टणा य अणुसज्जणा चेव ॥३॥

उक्त गाथाओ का भावार्थ इस प्रकार है—

सबसे प्रथम उत्तरकुरु के विषय मे इषु, जीवा और धनुपृष्ठ का प्रतिपादन है। फिर भूमि विषयक कथन है, तदनन्तर गुल्म का वर्णन, तदनन्तर हेरुताल आदि वनो का वर्णन, फिर उद्दाल आदि द्रुमो का वर्णन, फिर तिलक आदि वृक्षो का, लताओ का और वनराजि का वर्णन है। इसके

---

१ 'आयामो सेलाण दोण्हवि मिलिओ कुरुणधणु पुट्ठ।'

२ वृत्तिकार ने उत्तरकुरु के आकार-भाव-प्रत्यवतार की मूल पाठ सहित विस्तृत व्याख्या की है। इससे प्रतीत होता हैं कि उनके सामने जो मूलप्रतिया रही हैं उनमे मूलपाठ मे ही पूरा वर्णन होना चाहिए। वर्तमान मे उपलब्ध प्रतियो मे अतिदेश वाला पाठ है।
सूत्रकार ने एकोरुक द्वीप का जहाँ वर्णन किया है वहाँ वृत्तिकार ने उसकी व्याख्या न करते हुए केवल यह लिखा है कि उत्तरकुरु वाली व्याख्या यहाँ समझ लेनी चाहिए। यहाँ विचारणीय यह है कि आगे आने वाले विषय का पहले अति देश क्यो किया है वृत्तिकार ने ?

वाद १० प्रकार के कल्पवृक्षो का वर्णन है, इसके बाद वहाँ के मनुष्यो, स्त्रियो और स्त्री-पुरुप दोनो का सम्मिलित वर्णन है। इसके बाद आहार विषयक सूत्र है। इसके बाद गृहाकार वृक्षो का वर्णन है। इसके पश्चात् गृह, ग्राम, असि [शस्त्रादि], हिरण्य, राजा, दास, माता, अरि-वैरी, मित्र, विवाह, उत्सव नृत्य, शकट [गाडी आदि सवारी] का वहाँ अभाव है, ऐसा कहा गया है। तदनन्तर घोडे, गाय, सिह आदि पशुओ का अस्तित्व तो है परन्तु मनुष्यो के परिभोग मे आने वाले या उन्हे वाधा पहुँचाने वाले नही हैं। इसके वाद शालि आदि के उपभोग के प्रतिषेधक सूत्र है, स्थाणु आदि के प्रतिषेधक सूत्र है, गर्त-डास-मच्छर आदि के प्रतिषेधक सूत्र है, तदनन्तर सर्पादि है परन्तु वाधा देने वाले नही है ऐसा कथन किया गया है। तदनन्तर ग्रहो सम्बन्धी अनर्थ के अभाव, युद्धो के अभाव और रोगो के अभाव का कथन किया गया है। इसके बाद स्थिति, उद्वर्तना और अनुपजन [उत्पत्ति] का कथन किया गया है।

१४८ कहि ण भते ! उत्तरकुराए कुराए जमगा नामं दुवे पव्वया पण्णत्ता ?

गोयमा ! नीलवतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेण अट्ठचोत्तीसे जोयणसए चत्तारि य सत्त भागे जोयणस्स अबाहाए सीताए महाणईए (पुव्व-पच्छिमेण) उभओ कूले एत्थ ण उत्तरकुराए जमगा णाम दुवे पव्वया पण्णत्ता, एगमेग जोयणसहस्स उड्ढ उच्चत्तेण अड्ढाइज्जाइ जोयणसयाणि उव्वेहेणं, मूले एगमेग जोयणसहस्स आयामविक्खभेण मज्झे अद्धट्ठमाइ जोयणसयाइ आयाम-विक्खभेण, उवरि पचजोयणसयाइ आयाम-विक्खंभेण; मूले तिण्णि जोयणसहस्साइं एग च बावट्ठि जोयणसय किंचि विसेसाहिय परिक्खेवेण, मज्झे दो जोयणसहस्साइ तिण्णि य बावत्तरे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेण पण्णत्ते, उवरिं पन्नरसं एक्कासीए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेण पण्णत्ते। मूले विच्छिण्णा मज्झे सखित्ता उप्पि तणुया गोपुच्छसठाणसंठिया सव्वकणगमया अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा। पत्तेयं पत्तेय पउमवरवेइयापरिक्खित्ता, पत्तेय पत्तेय वणसंड परिक्खित्ता, वण्णओ दोण्ह वि।

तेसिं ण जमगपव्वयाणं उप्पि बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, वण्णओ जाव आसयति०।

तेसिं णं बहुसमरमणिज्जाण भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेय पासायवडेंसगा पण्णत्ता। ते ण पासायवडेंसगा बावट्ठि जोयणाइ अद्धजोयणं च उड्ढ उच्चत्तेण एकत्तीस जोयणाइं कोस य विक्खभेण अब्भुग्गयमूसिआ वण्णओ। भूमिभागा उल्लोया दो जोयणाइं मणिपेढियाओ वरसीहासणा सपरिवारा जाव जमगा चिट्ठति।

से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चइ जमगा पव्वया जमगा पव्वया ?

गोयमा ! जमगेसु पव्वएसु तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहुईओ खुड्डाखुड्डियाओ वावीओ जाव बिल-पतियासु, तासु ण खुड्डाखुड्डियासु जाव बिलपतियासु बहूइ उप्पलाइ जाव सयसहस्सपत्ताइ जमगप्पमाइं जमगवण्णाइं, जमगा य एत्थ दो देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसति। ते ण तत्थ पत्तेयं पत्तेय चउण्ह सामाणियसहस्सीण जाव जमगाण पव्वयाण जमगाण य रायधाणीण अण्णेसिं च बहूणं वाणमतराण देवाण य देवीण य आहेवच्च जाव पालेमाणा विहरंति। से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ जमग पव्वया जमग पव्वया ! अदुत्तर च ण गोयमा ! जाव णिच्चा।

कहि ण भते ! जमगाणं देवाण जमगाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! जमगाण पव्वयाण उत्तरेण तिरियमसखेज्जे दीवसमुद्दे वीइवइत्ता अण्णम्मि जबुद्दीवे दीवे वारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता एत्थ णं जमगाण देवाणं जमगाओ णाम रायहाणीओ पण्णत्ताओ वारस जोयणसहस्साओ जहा विजयस्स जाव महिड्ढिया जमगा देवा जमगा देवा।

[१४८] हे भगवन् ! उत्तरकुरु नामक क्षेत्र मे यमक नामक दो पर्वत कहाँ पर कहे गये है ?

गौतम ! नीलवत वर्षधर पर्वत के दक्षिण मे आठ सौ चौतीस योजन और एक योजन के $\frac{4}{7}$ भाग आगे जाने पर शीता नामक महानदी के पूर्व-पश्चिम के दोनो किनारो पर उत्तरकुरु क्षेत्र मे दो यमक नाम के पर्वत कहे गये है। ये एक-एक हजार योजन ऊँचे हैं, २५० योजन जमीन मे है, मूल मे एक-एक हजार योजन लम्बे-चौडे है, मध्य मे साढे सात सौ योजन लम्बे-चौडे है और ऊपर पाच सौ योजन आयाम-विष्कभ वाले है। मूल मे इनकी परिधि तीन हजार एक सौ वासठ योजन से कुछ अधिक है। मध्य मे इनकी परिधि दो हजार तीन सौ बहत्तर योजन से कुछ अधिक है और ऊपर पन्द्रह सौ इक्यासी योजन से कुछ अधिक की परिधि है। ये मूल मे विस्तीर्ण, मध्य मे सक्षिप्त और ऊपर मे पतले है। ये गोपुच्छ के आकार के है, सर्वात्मना कनकमय है, स्वच्छ है, श्लक्ष्ण [मृदु] है यावत् प्रतिरूप है। ये प्रत्येक पर्वत पद्मवरवेदिका से परिक्षिप्त [घिरे हुए] है और प्रत्येक पर्वत वनखड से युक्त है। दोनो का वर्णनक कहना चाहिए।

उन यमक पर्वतो के ऊपर वहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है। उसका वर्णन करना चाहिए यावत् वहाँ वहुत से वानव्यन्तर देव और देवियाँ ठहरती है, लेटती है यावत् पुण्य-फल का अनुभव करती हुई विचरती हैं।

उन दोनो वहुसमरमणीय भूमिभागो के मध्यभाग मे अलग-अलग प्रासादावतसक कहे गये है। वे प्रासादावतसक साढे वासठ योजन ऊँचे और इकतीस योजन एक कोस के चौडे है, ये गगनचुम्बी और ऊँचे है आदि वर्णनक कहना चाहिए। इनके भूमिभागो का, ऊपरी भीतरी छतो आदि का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। वहाँ दो योजन की मणिपीठिका है। उस पर श्रेष्ठ सिंहासन है। ये सिंहासन सपरिवार है अर्थात् सामानिक आदि देवो के भद्रासनो से युक्त है। यावत् उन पर यमक देव वैठते हैं।

हे भगवन् ! ये यमक पर्वत यमक पर्वत क्यो कहलाते है ?

गौतम ! उन यमक पर्वतो पर जगह-जगह यहाँ-वहाँ बहुत-सी छोटी छोटी बावडिया है, यावत् विलपक्तिया है, उनमे वहुत से उत्पल कमल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र है जो यमक [पक्षिविशेष] के आकार के हैं, यमक के समान वर्ण वाले है और यावत् पल्योपम की स्थिति वाले दो महान् ऋद्धि वाले देव रहते हैं। वे देव वहाँ अपने चार हजार सामानिक देवो का यावत् यमक पर्वतो का, यमक राजधानियो का और वहुत से अन्य वानव्यन्तर देवो और देवियो का आधिपत्य करते हुए यावत् उनका पालन करते हुए विचरते है। इसलिए हे गौतम ! वे यमक पर्वत यमक पर्वत कहलाते है। दूसरी वात हे गौतम ! ऐसी है कि ये यमक पर्वत शाश्वत है यावत् नित्य है। [अर्थात् इनका 'यमक' नाम शाश्वत है—सदा से है, सदा रहेगा।]

हे भगवन् ! इन यमक देवो की यमका नामक राजधानिया कहाँ है ? गौतम ! इन यमक पर्वतो के उत्तर मे तिर्यक् असख्यात द्वीप-समुद्रो को पार करने के पश्चात् प्रसिद्ध जम्बूद्वीप से भिन्न अन्य जम्बूद्वीप मे वारह हजार योजन आगे जाने पर यमक देवो की यमका नाम की राजधानिया है जो वारह हजार योजनप्रमाण वाली है आदि सव वर्णन विजया राजधानीवत् कहना चाहिए यावत् यमक नाम के दो महर्द्धिक देव उनके अधिपति है। इस कारण से ये यमक देव यमक देव कहलाते है।

१४९. (१) कहि ण भते ! उत्तरकुराए कुराए नीलवत दहे णामदहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जमगपव्वयाण दाहिणेण अट्ठचोत्तीसे जोयणसए चत्तारि सत्तभागा जोयणस्स अबाहाए सीताए महाणईए बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण उत्तरकुराए कुराए नीलवतद्दहे णाम दहे पण्णत्ते; उत्तरदक्खिणायए पाईणपडीणविच्छिन्ने एग जोयणसहस्स आयामेण पच जोयणसयाइं विक्खभेण दस जोयणाइ उव्वेहेण अच्छे सण्हे रययामयकूले चउक्कोणे समतीरे जाव पडिरूवे । उभओ पासि दोहि य पउमवरवेइयाहि वणसडेहि सव्वओ समता सपरिक्खित्ते, दोण्हवि वण्णओ ।

नीलवतदहस्स ण दहस्स तत्थ तत्थ जाव बहवे तिसोवाण पडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ भाणियव्वो जाव तोरण त्ति ।

तस्स ण नीलवतदहस्स ण दहस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण एगे मह पउमे पण्णत्ते, जोयणं आयाम-विक्खभेण त तिगुण सविसेस परिक्खेवेण अद्धजोयण बाहल्लेण दस जोयणाइं उव्वेहेण दो कोसे ऊसिए जलताओ, साइरेगाइं दसद्धजोयणाइं सव्वग्गेण पण्णत्ते ।

तस्स ण पउमस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तजहा—वइरामया मूला, रिट्ठामए कदे, वेरुलियामए नाले वेरुलियमया बाहिरपत्ता जबूणयमया अब्भितरपत्ता तवणिज्जमया केसरा कणगामई कण्णिया नानामणिमया पुक्खरत्थिभुया ।

सा ण कण्णिया अद्धजोयण आयामविक्खभेण त तिगुण सविसेस परिक्खेवेण कोस बाहल्लेण सव्वप्पणा कणगमई अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा ।

तीसे ण कण्णियाए उवरि बहुसमरमणिज्जे भूमिभाए पण्णत्ते जाव मणिहि० । तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण एगे मह भवणे पण्णत्ते, कोसं आयामेण अद्धकोस विक्खभेणं देसूणं कोसं उड्ढउच्चत्तेण अणेगखभसयसन्निविट्ठ जाव वण्णओ ।

तस्स ण भवणस्स तिदिसि तओ दारा पण्णत्ता पुरत्थिमेण दाहिणेण उत्तरेण । ते णं दारा पचधणुसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण अड्ढाइज्जाइ धणुसयाइ विक्खभेण तावइय चेव पवेसेण सेया वरकणगथूभियागा जाव वणमालाओ त्ति ।

[१४९] (१) भगवन् ! उत्तरकुरु नामक क्षेत्र मे नीलवत द्रह नाम का द्रह कहाँ कहा गया है ?

गौतम ! यमक पर्वतो के दक्षिण मे आठ सौ चौंतीस योजन और $\frac{4}{7}$ योजन आगे जाने पर सीता महानदी के ठीक मध्य मे उत्तरकुरु-क्षेत्र का नीलवत द्रह नाम का द्रह कहा गया है। यह उत्तर से दक्षिण तक लम्बा और पूर्व-पश्चिम मे चौडा हैं । एक हजार योजन इसकी लम्बाई है और पाच सौ योजन की चौडाई है । यह दस योजन ऊँचा [गहरा] है, स्वच्छ है, श्लक्ष्ण है, रजतमय इसके किनारे हैं, यह चतुष्कोण और समतीर है यावत् प्रतिरूप है । यह दोनो ओर से पद्मवर-वेदिकाओ और वनखण्डो से चौतरफ घिरा हुआ है । दोनो का वर्णनक यहाँ कहना चाहिए ।

नीलवतद्रह नामक द्रह मे यहाँ-वहाँ बहुत से त्रिसोपानप्रतिरूपक कहे गये हैं । उनका वर्णनक तोरण पर्यन्त कहना चाहिए ।

उस नीलवत नामक द्रह के मध्यभाग मे एक बडा कमल कहा गया है । वह कमल एक योजन का लम्बा और एक योजन का चौडा है । उसकी परिधि इससे तिगुनी से कुछ अधिक है । इसकी

मोटाई आधा योजन है। यह दस योजन जल के अन्दर है और दो कोस [आधा योजन] जल से ऊपर है। दोनो मिलाकर साढे दस योजन की इसकी ऊँचाई है।

उस कमल का स्वरूप-वर्णन इस प्रकार है—उसका मूल वज्रमय है, कद रिष्टरत्नो का है, नाल वैडूर्यरत्नो की है, बाहर के पत्ते वैडूर्यमय है, आभ्यन्तर पत्ते जबूनद [स्वर्ण] के है, उसके केसर तपनीय स्वर्ण के है, स्वर्ण की कर्णिका है और नानामणियो की पुष्कर-स्तिवुका है।

वह कर्णिका आधा योजन की लम्बी-चौडी है, इससे तिगुनी से कुछ अधिक इसकी परिधि है, एक कोस की मोटाई है, यह पूर्णरूप से कनकमयी है, स्वच्छ है, श्लक्ष्ण है यावत् प्रतिरूप है।

उस कर्णिका के ऊपर एक बहुसमरमणीय भूमिभाग है इसका वर्णन मणियो की स्पर्शवक्तव्यता तक कहना चाहिए। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य मे एक विशाल भवन कहा गया है जो एक कोस लम्बा, आधा कोस चौडा और एक कोस से कुछ कम ऊँचा है। वह अनेक सैकडो स्तम्भो पर आधारित है आदि वर्णनक कहना चाहिए।

उस भवन की तीन दिशाओ मे तीन द्वार कहे गये है—पूर्व मे, दक्षिण मे और उत्तर मे। वे द्वार पाच सौ धनुप ऊँचे है, ढाई सौ धनुप चौडे है और इतना ही इनका प्रवेश है। ये श्वेत है, श्रेष्ठ स्वर्ण की स्तूपिका से युक्त हैं यावत् उन पर वनमालाएँ लटक रही है।

१४९ (२) तस्स ण भवणस्स अतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहानामए—आलिगपुक्खरेइ वा जाव मणीणं वण्णओ। तस्स ण बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण मणिपेढिया पण्णत्ता, पचधणुसयाइ आयामविक्खभेण अड्ढाइज्जाइ धणुसयाइ बाहल्लेण सव्व-मणिमई। तीसे ण मणिपेढियाए उवरिं एत्थ ण एगे महं देवसयणिज्जे पण्णत्ते, देवसयणिज्जस्स वण्णओ।

से ण पउमे अण्णेण अट्ठसएण तदद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्ताण पउमाणं सव्वओ समता सपरिक्खित्ते। ते ण पउमा अद्धजोयण आयामविक्खभेण त तिगुण सविसेस परिक्खेवेण कोसं बाहल्लेण दस जोयणाइ उव्वेहेण कोस ऊसिया जलताओ, साइरेगाइ ते दस जोयणाइ सव्वग्गेण पण्णत्ताइ।

तेसि ण पउमाण अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, त जहा—वइरामया मूला जाव णाणामणिमया पुक्खरत्थिभुगा। ताओ ण कण्णियाओ कोस आयामविक्खभेण तं तिगुण सविसेस परिक्खेवेण अद्धकोस बाहल्लेणं सव्वकणगामईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ। तासिं कण्णियाण उप्पि बहुसमर-मणिज्जा भूमिभागा जाव मणीण वण्णो गधो फासो।

तस्स ण पउमस्स अवरुत्तरेण उत्तरेण उत्तरपुरच्छिमेण नीलवतद्दहस्स कुमारस्स चउण्ह सामाणियसाहस्सीण चत्तारि पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एव (एतेण) सव्वो परिवारो नवरि पउमाण भाणियव्वो।

से णं पउमे अण्णेहिं तिहिं पउमवरपरिक्खेवेहिं सव्वओ समंता सपरिक्खित्ते, तजहा—अब्भितरेणं मज्झिमेण बाहिरएणं। अब्भितरए णं पउमपरिक्खेवे बत्तीस पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, मज्झिमए ण पउमपरिक्खेवे चत्तालीस पउमसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, बाहिरए ण पउमपरिक्खेवे अडयालीसं पउमसयसाहस्सीओ पण्णत्ताओ, एवामेव सपुव्वावरेणं एगा पउमकोडी वीस च पउमसय सहस्सा भवतीति मक्खाया।

से केणट्ठेण भते! एवं वुच्चइ—णीलवतद्दहे णीलवतद्दहे?

गोयमा ! नीलवंतद्दहे णं दहे तत्थ तत्थ जाइं उप्पलाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं नीलवंतप्पभाइं नीलवंतद्दहकुमारे य सो चेव गमो जाव नीलवंतद्दहे नीलवंतद्दहे ।

[१४९] [२] उस भवन में बहुसमरमरणीय भूमिभाग कहा गया है। वह आलिंगपुष्कर [मुरज-मृदंग] पर चढ़े हुए चमड़े के समान समतल है आदि वर्णन करना चाहिए। यह वर्णन मणियों के वर्ण, गंध और स्पर्श पर्यन्त पूर्ववत् करना चाहिए। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्य में एक मणिपीठिका है, जो पांच सौ धनुष की लम्बी-चौड़ी है और ढाई सौ योजन मोटी है और सर्व-मणियों की बनी हुई है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल देवशयनीय है, उसका वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए।

वह कमल दूसरे एक सौ आठ कमलों से सब ओर से घिरा हुआ है। वे कमल उस कमल से आधे ऊँचे प्रमाण वाले हैं। वे कमल आधा योजन लम्बे-चौड़े और इससे तिगुने से कुछ अधिक परिधि वाले हैं। उनकी मोटाई एक कोस की है। वे दस योजन पानी में ऊंडे [गहरे] हैं और जलतल से एक कोस ऊँचे हैं। जलांत से लेकर ऊपर तक समग्ररूप में वे कुछ अधिक [एक कोस अधिक] दस योजन के हैं। उन कमलों का स्वरूप वर्णन इस प्रकार है—वज्ररत्नों के उनके मूल हैं, यावत् नानामणियों की पुष्करस्तिबुका है। कमल की कर्णिकाएँ एक कोस लम्बी-चौड़ी हैं और उससे तिगुने से अधिक उनकी परिधि हे, आधा कोस की मोटाई है, सर्व कनकमयी हैं, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। उन कर्णिकाओं के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग है यावत् मणियों के वर्ण, गंध और स्पर्श की वक्तव्यता कहनी चाहिए।

उस कमल के पश्चिमोत्तर में, उत्तर में और उत्तरपूर्व में नीलवंतद्रह के नागकुमारेन्द्र नागकुमार राज के चार हजार सामानिक देवों के चार हजार पद्म [पद्मरूप आसन] कहे गये हैं। इसी तरह सब परिवार के योग्य पद्मों [पद्मरूप आसनों] का कथन करना चाहिए।

वह कमल अन्य तीन पद्मवरपरिक्षेप [परिवेश] से सब ओर से घिरा हुआ है। वे परिवेश हैं—आभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य। आभ्यन्तर पद्म परिवेश में वत्तीस लाख पद्म हैं, मध्यम पद्मपरिवेश में चालीस लाख पद्म हैं और बाह्य पद्मपरिवेश में अड़तालीस लाख पद्म हैं। इस प्रकार सब पद्मों की संख्या एक करोड़ बीस लाख कही गई हैं।

हे भगवन् ! नीलवंतद्रह नीलवंतद्रह क्यों कहलाता है ?

गौतम ! नीलवंतद्रह में यहाँ वहाँ स्थान स्थान पर नीलवर्ण के उत्पल कमल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमल खिले हुए हैं तथा वहाँ नीलवंत नामक नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज महर्द्धिक देव रहता है, इस कारण नीलवंतद्रह नीलवंतद्रह कहा जाता है।

[इसके पश्चात् वृत्ति के अनुसार नीलवंतकुमार की नीलवंता राजधानी विषयक सूत्र है। उसका कथन विजया राजधानी की तरह कर लेना चाहिए।][1]

काञ्चन पर्वतों का अधिकार

१५०. नीलवंतद्दहस्स णं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेणं दस जोयणाइं अबाहाए एत्थ णं दस दस कंचणगपव्वया पण्णत्ता। ते णं कंचणगपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, पणवीसं पणवीसं पण्णासं जोयणाइं उव्वेहेणं, मूले एगमेगं जोयणसयं विक्खंभेणं मज्झे पण्णत्तरिं जोयणाइं विक्खंभेणं उवरिं

१. उपलब्ध प्रतियों में राजधानी विषयक पाठ छूटा हुआ लगता है। वृत्ति के अनुसार राजधानी विषयक पाठ होना चाहिए।

पण्णास जोयणाइ विक्खभेणं मूले तिण्णि सोलसे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेण, मज्झे दोन्नि सत्ततीसे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेण, उवरिं एग अट्ठावण्णं जोयणसयं किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं; मूले विच्छिण्णा, मज्झे सखित्ता उप्पि तणुया गोपुच्छसंठाणसठिया सव्वकंचणमया, अच्छा, पत्तेय पत्तेय पउमवरवेइयापरिक्खित्ता पत्तेयं पत्तेय वणसडपरिक्खित्ता।

तेसिं णं कंचणगपव्वयाण उप्पि बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव आसयति०। तेसिं णं कंचणगपव्वयाण पत्तेय पत्तेयं पासायावडेंसगा सड्ढ बावट्ठि जोयणाइं उड्ढ उच्चत्तेण इक्कतीस जोयणाइं कोसं च विक्खभेणं मणिपेढिया दो जोयणिया सीहासण सपरिवारं।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ—कचणगपव्वया कंचणगपव्वया ?

गोयमा ! कचणगेसु ण पव्वएसु तत्थ तत्थ वावीसु उप्पलाइ जाव कचणगवण्णाभाइ कचणगा जाव देवा महिड्ढिया जाव विहरति। उत्तरेण कचणगाण कंचणियाओ रायहाणीओ अण्णम्मि जम्बुद्दीवे तहेव सव्व भाणियव्व।

कहि णं भते ! उत्तराए कुराए उत्तरकुरुद्दहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! नीलवतद्दहस्स दाहिणेण अट्ठचोत्तीसे जोयणसए एव सो चेव गमो णेयव्वो जो णीलवतद्दहस्स सव्वेसिं सरिसगो दहसरि नामा य देवा, सव्वेसिं पुरत्थिम-पच्चत्थिमेण कचणगपव्वया दस दस एकप्पमाणा उत्तरेण रायहाणीओ अण्णम्मि जबुद्दीवे।

कहि ण भते ! चंदद्दहे एरावणद्दहे मालवतद्दहे एव एक्केक्को णेयव्वो।

[१५०] नीलवत द्रह के पूर्व-पश्चिम मे दस योजन आगे जाने पर दस दस काञ्चनपर्वत कहे गये है। [ये दक्षिण और उत्तर श्रेणी मे व्यवस्थित है]। ये काचन पर्वत एक सौ एक सौ योजन ऊचे, पच्चीस पच्चीस योजन भूमि मे, मूल मे एक-एक सौ योजन चौडे, मध्य मे पचहत्तर योजन चौडे और ऊपर पचास-पचास योजन चौडे है। इनकी परिधि मूल मे तीन सौ सोलह योजन से कुछ अधिक, मध्य मे दो सौ सैंतीस योजन से कुछ अधिक और ऊपर एक सौ अट्ठावन योजन से कुछ अधिक है। ये मूल मे विस्तीर्ण, मध्य मे सक्षिप्त और ऊपर पतले है, गोपुच्छ के आकार मे सस्थित हैं, ये सर्वात्मना काचनमय हैं, स्वच्छ हैं। इनके प्रत्येक के चारो ओर पद्मवरवेदिकाएँ और वनखण्ड हैं।

उन काचन पर्वतो के ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग है, यावत् वहाँ बहुत से वानव्यन्तर देव-देविया बैठती है आदि। उन प्रत्येक भूमिभागो मे प्रासादातसक कहे गये हैं। ये प्रासादावतसक साढ़े बासठ योजन ऊँचे और इकतीस योजन एक कोस चौडे हैं। इनमे दो योजन की मणिपीठिकाएँ हैं और सिंहासन हैं। ये सिंहासन सपरिवार हैं अर्थात् सामानिकदेव, अग्रमहिषियाँ आदि परिवार के भद्रासनो से युक्त हैं।

हे भगवन् ! ये काचनपर्वत काचनपर्वत क्यो कहे जाते हैं ?

गौतम ! इन काचनपर्वतो की बावडियो मे बहुत से उत्पल कमल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र-कमल है जो स्वर्ण की कान्ति और स्वर्ण-वर्ण वाले हैं यावत् वहाँ काचनक नाम के महर्द्धिक देव रहते हैं, यावत् विचरते है। इसलिए ये काचनपर्वत कहे जाते है। इन काचनक देवो की काचनिका

राजधानिया इन काचनक पर्वतो से उत्तर मे असख्यात द्वीप-समुद्रो को पार करने के वाद अन्य जम्बूद्वीप मे कही गई हैं आदि वर्णन विजया राजधानी की तरह कहना चाहिए ।

हे भगवन् उत्तरकुरु क्षेत्र का उत्तरकुरुद्रह कहाँ कहा गया है ?

गौतम ! नीलवतद्रह के दक्षिण मे आठ सौ चौतीस योजन और ४/७ योजन दूर उत्तरकुरुद्रह है—आदि सव वर्णन नीलवतद्रह की तरह जानना चाहिए। सव द्रहो मे उसी-उसी नाम के देव हैं । सव द्रहो के पूर्व मे और पश्चिम मे दस-दस काचनक पर्वत हैं जिनका प्रमाण समान है। इनकी राजधानिया उत्तर की ओर असख्य द्वीप-समुद्र पार करने पर अन्य जम्बूद्वीप मे हैं, उनका वर्णन विजया राजधानी की तरह जानना चाहिए ।

इसी प्रकार चन्द्रद्रह, एरावतद्रह और मालवनद्रह के विषय मे भी यही सव वक्तव्यता कहनी चाहिए ।

जवूवृक्ष वक्तव्यता

१५१. कहि णं भंते ! उत्तरकुराए कुराए जंबु-सुदसणाए जवुपेढे नामं पेढे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जवुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरपुरच्छिमेण नीलवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेण मालवतस्स वक्खारपव्वयस्स पच्चत्थिमेणं, गधमादणस्स वक्खारपव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीताए महाणईए पुरत्थिमिल्ले कूले एत्थ णं उत्तरकुराए कुराए जंबूपेढे नाम पेढे पंचजोयणसयाइं आयाम-विक्खंभेण पण्णरस एक्कासीए जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं वहुमज्झदेसभागे वारस जोयणाइं वाहल्लेण तयाणतरं च णं मायाए मायाए पएसपरिहाणीए सव्वेसु चरमंतेसु दो कोसे वाहल्लेणं पण्णत्ते, सव्वजवूणयामए अच्छे जाव पडिरूवे ।

से ण एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, वण्णओ दोण्हवि । तस्स ण जंवूपेढस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता तं चेव जाव तोरणा जाव छत्ताइ-छत्ता ।

तस्स ण जवूपेढस्स उप्पि वहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते; से जहाणमए आलिगपुक्खरे इ वा जाव मणीणं फासो । तस्स णं वहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स वहुमज्झदेसभाए एत्थ णं एगा महं मणिपेढिया पण्णत्ता अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खभेण चत्तारि जोयणाइं वाहल्लेणं मणिमई अच्छा सण्हा जाव पडिरूवा । तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ णं महं जंवूसुदंसणा पण्णत्ता अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेण अद्धजोयणं उव्वेहेणं दो जोयणाइं खधे अट्ठजोयणाइ विक्खंभेणं छ जोयणाइं विडिमा, वहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणाइं विक्खंभेणं साइरेगाइं अट्ठजोयणाइं सव्वग्गेण पण्णत्ता; वइरामयमूला रययसुपइट्ठियविडिमा एवं चेइयरुक्खवण्णओ सव्वो जाव रिट्ठामयविउलकंदा, वेरुलियरुइरक्खंधा सुजायवरजायरूवपढमगविसालसाला नाणामणिरयणविविहसाहप्पसाहवेरुलियपत्ततवणिज्जपत्तविंटा जवूणयरत्तमउयसुकुमालपवालपल्लवकुरधरा विचित्तमणिरयणसुरहिकुसुमा फलभारन-मियसाला सच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया अहियं मणोनिव्वुइकरा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

[१५१] हे भगवन् ! उत्तरकुरु क्षेत्र मे सुदर्शना अपर नाम जम्बू का जम्बूपीठ नाम का पीठ कहाँ कहा गया है ।

हे गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के उत्तरपूर्व [ईशानकोण] मे, नीलवत वर्षधर पर्वत के दक्षिण मे, मालवत वक्षस्कार पर्वत के पश्चिम मे, गधमादन वक्षस्कार पर्वत के पूर्व मे, शीता महानदी के पूर्वीय किनारे पर उत्तरकुरु क्षेत्र का जम्बूपीठ नामक पीठ है जो पाच सौ योजन लम्वा-चौडा है, पन्द्रह सौ इक्यासी योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है । वह मध्यभाग मे वारह योजन की मोटाई वाला है, उसके वाद क्रमश प्रदेशहानि होने से थोडा थोडा कम होता होता सव चरमान्तो मे दो कोस का मोटा रह जाता है । वह सर्व जम्बूनद [स्वर्ण] मय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है ।

वह जम्बूपीठ एक पद्मवरवेदिका और एक वनखड द्वारा सव ओर से घिरा हुआ है । दोनो का वर्णनक कहना चाहिए । उस जम्बूपीठ की चारो दिशाओ मे चार त्रिसोपानप्रतिरूपक कहे गये है आदि सव वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए । तोरणो का यावत् छत्रातिछत्रो का कथन करना चाहिए ।

उस जम्बूपीठ के ऊपर वहुसमरमणीय भूमिभाग है जो आलिगपुष्कर [मुरज-मृदग] के मढे हुए चमडे के समान समतल है, आदि कथन मणियो के स्पर्श पर्यन्त पूर्ववत् जानना चाहिए । उस वहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्यभाग मे एक विशाल मणिपीठिका कही गई है जो आठ योजन की लम्वी-चौडी और चार योजन की मोटी है, मणिमय है, स्वच्छ है, श्लक्ष्ण है यावत् प्रतिरूप है । उस मणिपीठिका के ऊपर विशाल जम्बू सुदर्शना [सुदर्शना अपर नाम जम्बू] है—जम्बूवृक्ष है । वह जम्बूवृक्ष आठ योजन ऊँचा है, आधा योजन जमीन मे है, दो योजन का उसका स्कध [धड] है, आठ योजन उसकी चौडाई है, छह योजन तक उसकी शाखाएँ फैली हुई है, मध्यभाग मे आठ योजन चौडा है, [उद्वेध और वाहर की ऊँचाई] मिलाकर आठ योजन से अधिक [साढे आठ योजन] ऊँचा है । इसके मूल वज्ररत्न के है, इसकी शाखाएँ रजत [चादी] की हैं और ऊँची निकली हुई है, इस प्रकार चैत्यवृक्ष का वर्णनक कहना चाहिए यावत् उसके कन्द विपुल और रिष्ठरत्नो के है, उसके स्कन्ध रुचिर [सुन्दर] और वैडूर्यरत्न के है, इसकी मूलभूत शाखाएँ सुन्दर-श्रेष्ठ चादी की है, अनेक प्रकार के रत्नो और मणियो से इसकी शाखा-प्रशाखाएँ वनी हुई है, वैडूर्यरत्नो के पत्ते है और तपनीय स्वर्ण के इसके पत्रवृन्त [वीट] है, इसके प्रवाल और पल्लवाकुर जाम्बूनद नामक स्वर्ण के हैं, लाल हैं, सुकोमल हैं और मृदुस्पर्श वाले है ।[1] नानाप्रकार के मणिरत्नो के फूल है । वे फूल सुगन्धित हैं । उसकी शाखाएँ फल के भार से नमी हुई है । वह जम्बूवृक्ष सुन्दर छाया वाला, सुन्दर कान्ति वाला, शोभा वाला, उद्योत वाला और मन को अत्यन्त तृप्ति देने वाला है । वह प्रासादीय है, दर्शनीय है, अभिरूप है और प्रतिरूप है ।

---

१ वृत्तिकार ने मतान्तर का उल्लेख करते हुए लिखा है—'अपरे सौवर्णिक्यो मूलशाखा प्रशाखा रजतमय्य. इत्युचु ।' अन्ये तु जम्बूनदमया अग्रप्रवाला अकुरापरपर्याया राजता इत्याहु ।

इस विषयक सग्रहणी गाथाए इस प्रकार हैं—

मूला वइरमया मे कदो खधो य रिट्ठवेरुलिओ ।
सोवण्णियसाहप्पसाह तह जायरूवा य ॥१॥
विडिमा रयय वेरुलिय पत्त तवणिज्ज पत्तविटा य ।
पल्लव अग्गपवाला जम्बूणय रायया तीसे ॥२॥

१५२. [१] जंबूए णं सुदंसणाए चउद्दिसिं चत्तारि साला पण्णत्ता, तंजहा—पुरत्थिमेणं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेणं उत्तरेणं। तत्थ णं जे से पुरत्थिमिल्ले साले एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते, एगं कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खभेणं देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे वण्णओ जाव भवणस्स दारं तं चेव पमाणं पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेणं जाव वणमालाओ भूमिभागा उल्लोया मणिपेढिया पंचधणुसइया देवसयणिज्जं भाणियव्वं।

तत्थ णं जे से दाहिणिल्ले साले एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए पण्णत्ते, कोसं च उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धकोसं आयामविक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिय० अंतो बहुसम० उल्लोया। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं।

तत्थ णं जे से पच्चत्थिमिल्ले साले एत्थ णं पासायवडेंसए पण्णत्ते तं चेव पमाणं सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं।

तत्थ णं जे से उत्तरिल्ले साले एत्थ णं एगे महं पासायवडेंसए पण्णत्ते तं चेव पमाणं सीहासणं सपरिवारं।

तत्थ णं जे से उवरिमविडिमे एत्थ णं एगे महं सिद्धायतणे कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्खंभेणं देसूणं कोसं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखंभसयसन्निविट्ठे वण्णओ। तिदिसिं तओ दारा पंचधणुसया अड्ढाइज्जधणुसयविक्खंभा मणिपेढिया पंचधणुसइया देवच्छंदओ पंचधणुसयाइं आयामविक्खंभेणं साइरेगपंचधणुसयाइमुच्चत्तेणं।

तत्थ णं देवच्छंदए अट्ठसयं जिणपडिमाणं जिणुस्सेहपमाणाणं, एवं सव्वा सिद्धायतण वत्तव्वया भाणियव्वा जाव धूवकडुच्छुया उत्तिमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवेए चेव।

[१५२] [१] सुदर्शना अपर नाम जम्बू की चारों दिशाओं में चार-चार शाखाएँ कही गई हैं, यथा—पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में और उत्तर में। उनमें से पूर्व की शाखा पर एक विशाल भवन कहा गया है जो एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा, देशोन एक कोस ऊँचा है, अनेक सैकड़ों खंभों पर आधारित है आदि वर्णन भवन के द्वार तक करना चाहिए। वे द्वार पाँच सौ धनुष के ऊँचे, ढाई सौ धनुष के चौड़े यावत् वनमालाओं, भूमिभागों, ऊपरीछतों और पांच सौ धनुष की मणिपीठिका और देवशयनीय का पूर्ववत् वर्णन करना चाहिए।

उस जम्बू की दक्षिणी शाखा पर एक विशाल प्रासादावतंसक है, जो एक कोस ऊँचा, आधा कोस लम्बा-चौड़ा है, आकाश को छूता हुआ और उन्नत है। उसमें बहुसमरमणीय भूमिभाग है, भीतरी छतें चित्रित हैं आदि वर्णन जानना चाहिए। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के मध्य में सिंहासन है, वह सिंहासन सपरिवार है अर्थात् उसके आसपास अन्य सामानिक देवों आदि के भद्रासन हैं। यह सब वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

उस जम्बू की पश्चिमी शाखा पर एक विशाल प्रासादावतंसक है। उसका वही प्रमाण है और सब वक्तव्यता पूर्ववत् कहनी चाहिए यावत् वहाँ सपरिवार सिंहासन कहा गया है।

उस जम्बू की उत्तरी शाखा पर भी एक विशाल प्रासादावतंसक है आदि सब कथन—प्रमाण, सपरिवार सिंहासन आदि पूर्ववत् जानना चाहिए।

उस जम्बूवृक्ष की ऊपरी शाखा पर एक विशाल सिद्धायतन है जो एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा और देशोन एक कोस ऊँचा है और अनेक सौ स्तम्भो पर आधारित है आदि वर्णन करना चाहिए । उसकी तीनो दिशाओ मे तीन द्वार कहे गये है जो पाच सौ धनुष ऊँचे, ढाई सौ धनुप चौडे है । पाच सौ धनुप की मणिपीठिका है । उस पर पाच सौ धनुष चौडा और कुछ अधिक पाच सौ धनुप ऊँचा देवच्छदक है । उस देवच्छदक मे जिनोत्सेध प्रमाण एक सौ आठ जिनप्रतिमाएँ है । इस प्रकार पूरी सिद्धायतन वक्तव्यता कहना चाहिए यावत् वहाँ धूपकडुच्छुक हैं । वह उत्तम आकार का है और सोलह प्रकार के रत्नो से युक्त है ।

१५२. (२) जबू ण सुदसणा मूले बारसहिं पउमवरवेइयाहिं सव्वओ समता सपरिक्खित्ता । ताओ ण पउमवरवेइयाओ अद्धजोयणं उड्ढ उच्चत्तेण पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं, वण्णओ ।

जबू ण सुदसणा अण्णेण अट्ठसएण जबूण तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेण सव्वओ समंता सपरिक्खित्ता । ताओ णं जबूओ चत्तारि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं कोसं च उव्वेहेणं जोयणं खधो, कोस विक्खभेणं तिण्णि जोयणाइ विडिमा, बहुमज्झदेसभाए चत्तारि जोयणाइ आयाम विक्खभेणं साइरेगाइं चत्तारि जोयणाइं सव्वग्गेणं, वइरामयमूला सो चेव चेइयरुक्खवण्णओ ।

जंबूए ण सुदंसणाए अवरुत्तरेण उत्तरेण उत्तरपुरत्थिमेण एत्थ ण अणढियस्स चउण्ह सामाणियसाहस्सीणं चत्तारि जंबूसाहस्सीओ पण्णत्ताओ । जबूए ण सुदंसणाए पुरत्थिमेणं एत्थ ण अणढियस्स देवस्स चउण्ह अग्गमहिसीण चत्तारि जबूओ पण्णत्ताओ । एव परिवारो सव्वो भाणियव्वो जंबूए जाव आयरक्खाणं ।

जंबू णं सुदंसणा तिहिं जोयणसइएहिं वणसडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, तंजहा— पढमेण दोच्चेण तच्चेण । जबूए णं सुदंसणाए पुरत्थिमेणं पढम वणसंड पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं एगे महं भवणे पण्णत्ते, पुरत्थिमिल्ले भवणसरिसे भाणियव्वे जाव सयणिज्ज । एव दाहिणेणं पच्चत्थिमेण उत्तरेण ।

जबूए णं सुदसणाए उत्तरपुरत्थिमेण पढम वणसंडं पण्णास जोयणाइ ओगाहित्ता चत्तारि नंदापुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तजहा—पउमा पउमप्पभा चेव कुमुदा कुमयप्पभा । ताओ ण णदा— पुक्खरिणीओ कोसं आयामेण अद्धकोसं विक्खंभेण पचधणुसयाइ उव्वेहेण अच्छाओ सण्हाओ लण्हाओ घट्ठाओ मट्ठाओ णिप्पकाओ णीरयाओ जाव पडिरूवाओ । वण्णओ भाणियव्वो जाव तोरणत्ति ।

तासि ण णदापुक्खरिणीण बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण पासायावडेंसए पण्णत्ते कोसप्पमाणे अद्धकोस विक्खंभो सो चेव वण्णओ जाव सीहासण सपरिवार ।

एवं दक्खिण-पुरत्थिमेण वि पण्णासं जोयणाइ ओगाहित्ता चत्तारि णंदापुक्खरिणीओ उप्पलगुम्मा, नलिणा उप्पला, उप्पलुज्जला, त चेव पमाणं तहेव पासायवडेंसगो तप्पमाणो ।

एवं दक्खिण-पच्चत्थिमेण वि पण्णास जोयणाण नवर भिंगा भिंगाणिभा चेव अंजणा कज्जलप्पभा । सेसं तं चेव ।

जबूए णं सुदंसणाए उत्तरपुरत्थिमे पढमं वणसंडं पण्णासं जोयणाइं ओगाहित्ता एत्थ णं चत्तारि णदाओ पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—सिरिकंता सिरिमहिया सिरिचंदा चेव तह य सिरिणिलया। त चेव पमाण तहेव पासायवडिंसओ।

[१५२] [२] यह सुदर्शना जम्बू मूल मे वारह पद्मवरवेदिकाओ से चारो ओर घिरी हुई है। वे पद्मवरवेदिकाएँ आधा योजन ऊँची, पाच सौ धनुष चौडी है। यहाँ पद्मवरवेदिका का वर्णनक कहना चाहिए।

यह जम्बूसुदर्शना एक सौ आठ अन्य उससे आधी ऊँचाई वाली जवुओ से चारो ओर घिरी हुई है। वे जम्बू चार योजन ऊँची, एक कोस जमीन मे गहरी हैं, एक योजन का उनका स्कन्ध, एक योजन का विष्कभ है, तीन योजन तक फैली हुई शाखाएँ हैं। उनका मध्यभाग मे चार योजन का विष्कभ हैं और चार योजन से अधिक उनकी समग्र ऊँचाई हैं। वज्रमय उनके मूल हैं, आदि चैत्यवृक्ष का वर्णनक यहाँ कहना चाहिए।

जम्बूसुदर्शना के पश्चिमोत्तर मे, उत्तर मे और उत्तरपूर्व मे अनाहत देव के चार हजार मामानिक देवो के चार हजार जम्बू है। जम्बू मुदर्शना के पूर्व मे अनाहत देव की चार अग्रमहिषियो के चार जम्बू हैं, इस प्रकार समस्त परिवार यावत् आत्मरक्षको के जवुओ का कथन करना चाहिए।

जवू-सुदर्शना सौ-सौ योजन के तीन वनखण्डो से चारो ओर घिरी हुई है, यथा प्रथम वनखड, द्वितीय वनखड और तृतीय वनखण्ड।

जवू-सुदर्शना के पूर्वीय प्रथम वनखण्ड में पचास योजन आगे जाने पर एक विशाल भवन है, पूर्व के भवन के समान ही शयनीय पर्यन्त सव वर्णन जान लेना चाहिए। इसी प्रकार दक्षिण मे, पश्चिम मे और उत्तर मे भी भवन समझने चाहिए।

जम्बू-सुदर्शना के उत्तरपूर्व के प्रथम वनखड मे पचास योजन आगे जाने पर चार नदापुष्करिणिया कही गई है, उनके नाम हैं—पद्मा, पद्मप्रभा, कुमुदा और कुमुदप्रभा। वे नदापुष्करिणिया एक कोस लम्बी, आधा कोस चौडी, पाच सौ धनुष गहरी है। वे स्वच्छ, श्लक्ष्ण, घृष्ट, मृष्ट, निष्पक, नीरजस्क है यावत् प्रतिरूप हैं, इत्यादि वर्णनक तोरण पर्यन्त कहना चाहिए।

उन नदापुष्करिणियो के वहुमध्यदेशभाग मे प्रासादावतसक कहा गया है जो एक कोस ऊँचा है, आधा कोस का चौडा है, इत्यादि वही वर्णनक सपरिवार सिंहासन तक कहना चाहिए।

इसी प्रकार दक्षिण-पूर्व मे भी पचास योजन जाने पर चार नदापुष्करिणिया हैं, यथा—उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला, उत्पलोज्ज्वला। उनका प्रमाण, प्रासादावतसक और उसका प्रमाण पूर्ववत् है।

इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम मे भी पचास योजन आगे जाने पर चार पुष्करिणिया है, यथा—भृगा, भृगिनिया, अजना एव कज्जलप्रभा। शेष सव पूर्ववत्।

जम्बू-सुदर्शना के उत्तर-पूर्व मे प्रथम वनखड मे पचास योजन आगे जाने पर चार नदा-

पुष्करिणिया है, उनके नाम हैं—श्रीकान्ता, श्रीमहिता, श्रीचद्रा और श्रीनिलया।[1] वही प्रमाण और प्रासादावतसक तथा उसका प्रमाण भी वही है।

१५२. [३] जबूए णं सुदसणाए पुरत्थिमिल्लस्स भवणस्स उत्तरेण उत्तरपुरत्थिमस्स पासायवडेंसगस्स दाहिणेणं एत्थ ण एगे मह कूडे पण्णत्ते अट्ठ जोयणाइं उड्ढ उच्चत्तेण, मूले बारस जोयणाइ विक्खभेणं मज्झे अट्ठ जोयणाइ (आयाम) विक्खभेण उवरिं चत्तारि जोयणाइ (आयाम) विक्खभेण मूले साइरेगाइं सत्ततीसं जोयणाइं परिक्खेवेण, मज्झे साइरेगाइं पणुवीस जोयणाइ परिक्खेवेण उवरिं साइरेगाइं बारसजोयणाइं परिक्खेवेण मूले विच्छिण्णे मज्झे सखित्ते उप्पि तणुए गोपुच्छसठाणसठिए सव्वजबूणयामए अच्छे जाव पडिरूवे। से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेणं वणसडेण सव्वओ समता संपरिक्खित्ते; दोण्हवि वण्णओ।

तस्स ण कूडस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव आसयंति०। तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एगं सिद्धायतणं कोसप्पमाण सव्वा सिद्धायतणवत्तव्वया।

जंबूए णं सुदसणाए पुरत्थिमस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स उत्तरेण एत्थ ण एगे महं कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाणं सिद्धायतण य।

जंबूए णं सुदंसणाए दाहिणिल्लस्स भवणस्स पुरत्थिमेणं दाहिणपुरत्थिमस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेण एत्थ णं एगे मह कूडे पण्णत्ते। दाहिणस्स भवणस्स परओ दाहिण पच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडिसगस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं एगे मह कूडे पण्णत्ते। जंबूओ पच्चत्थिमिल्लस्स भवणस्स दाहिणेणं दाहिणपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडिसगस्स उत्तरेण एत्थ ण एगे महं कूडे पण्णत्ते; त चेव पमाण सिद्धायतणं य।

जंबूए पच्चत्थिमभवणउत्तरेणं उत्तरपच्चत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स दाहिणेणं एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाणं सिद्धायतणं च।

जंबूए उत्तरस्स भवणस्स पच्चत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमस्स पासायवडेंसगस्स पुरत्थिमेण एत्थ ण एगे कूडे पण्णत्ते, तं चेव।

जंबूए उत्तरभवणस्स पुरत्थिमेणं उत्तरपुरत्थिमिल्लस्स पासायवडेंसगस्स पच्चत्थिमेण एत्थ णं एगे महं कूडे पण्णत्ते तं चेव पमाण तहेव सिद्धायतण।

१५२ [३] जम्बू-सुदर्शना के पूर्वदिशा के भवन के उत्तर मे और उत्तरपूर्व के प्रासादावतसक के दक्षिण मे एक विशाल कूट कहा गया है जो आठ योजन ऊचा, मूल मे बारह योजन चौडा, मध्य मे आठ योजन चौडा ऊपर चार योजन चौडा, मूल मे कुछ अधिक सैंतीस योजन की परिधि वाला, मध्य मे कुछ अधिक पच्चीस योजन की परिधि वाला और ऊपर कुछ अधिक बारह योजन की परिधि वाला—मूल मे विस्तृत, मध्य मे सक्षिप्त और ऊपर पतला, गोपुच्छ आकार से सस्थित है, सर्वात्मना जाम्बूनद स्वर्णमय है, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है। वह कूट एक पद्मवरवेदिका

१ वृत्ति के अनुसार इनके नामो का क्रम इस प्रकार है—

श्रीकान्ता, श्रीचन्द्रा श्रीनिलया और श्रीमहिता। उक्त च—

पउमा पउमप्पभा चेव कुमुया कुमुयप्पभा। उप्पलगुम्मा नलिणा उप्पला उप्पलुज्जला ॥१॥

भिंगा भिंगनिभा चेव अजणा कज्जलप्पभा। सिरिकता सिरिचदा सिरिनिलया सिरिमहिया ॥२॥

और एक वनखण्ड से चारो ओर से घिरा हुआ है। पद्मवरवेदिका और वनखड—दोनों का वर्णनक कहना चाहिए।

उस कूट के ऊपर वहुसमरमणीय भूमिभाग है आदि पूर्ववत् वर्णन करना चाहिए यावत् वहाँ वहुत से वानव्यन्तर देव और देविया उठती-बैठती है आदि। उस वहुसमरमणीय भूमिभाग के मध्य मे एक सिद्धायतन कहा गया है जो एक कोस प्रमाण वाला है—आदि सव सिद्धायतन की वक्तव्यता पूर्ववत् कहनी चाहिए।

उस जम्बू-सुदर्शना के पूर्वदिशा के भवन से दक्षिण मे और दक्षिण-पूर्व के प्रासादावतसक के उत्तर मे एक विशाल कूट है। उसका प्रमाण वही है यावत् वहाँ सिद्धायतन है।

उस जम्बू-सुदर्शना के दक्षिण दिशा के भवन के पूर्व मे और दक्षिण-पूर्व के प्रासादावतसक के पश्चिम मे एक विशाल कूट है। इसी तरह दाक्षिणात्य भवन के पश्चिम मे और दक्षिण-पश्चिम प्रासादावतसक के पूर्व मे एक विशाल कूट है।

उस जम्बू-सुदर्शना के पश्चिमी भवन के दक्षिण मे और दक्षिण-पश्चिम के प्रासादावतसक के उत्तर मे एक विशाल कूट है। उसका प्रमाण वही है यावत् वहाँ सिद्धायतन हैं।

उस जम्बू-सुदर्शना के पश्चिमी भवन के उत्तर मे और उत्तर-पश्चिम के प्रासादावतसक के दक्षिण मे एक विशाल कूट है। वही प्रमाण है यावत् वहाँ सिद्धायतन है।

उस जम्बू-सुदर्शना के उत्तर दिशा के भवन के पश्चिम मे और उत्तर-पश्चिम के प्रासादावतसक के पूर्व मे एक विशाल कूट है आदि वर्णन करना चाहिए यावत् वहाँ सिद्धायतन है।

उस जम्बू-सुदर्शना के उत्तर दिशा के भवन के पूर्व मे और उत्तरपूर्व के प्रासादावतसक के पश्चिम मे एक महान् कूट कहा गया है। उसका वही प्रमाण है यावत् वहाँ सिद्धायतन है।

१५२. (४) जंबू णं सुदंसणा अण्णेहिं बहूहिं तिलएहिं लउएहिं जाव रायरुक्खेहिं हिंगुरुक्खेहिं जाव सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता।

जंबूए ण सुदसणाए उवरिं बहवे अट्ठट्ठमगलगा पण्णत्ता तजहा—सोत्थिय सिरिवच्छ० किण्हा चामरज्झया जाव छत्ताइछत्ता।

जंबूए ण सुदसणाए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—

सुदंसणा अमोहा य सुप्पबुद्धा जसोधरा।
विदेह जंबू सोमणसा णियया णिच्चमंडिया ॥१॥
सुभद्दा य विसाला य सुजाया सुमणीवि य।
सुदंसणाए जंबूए नामधेज्जा दुवालस ॥२॥

से केणट्ठेण भंते! एवं वुच्चइ—जंबू सुदंसणा जंबू सुदसणा?

गोयमा! जंबूए ण सुदंसणाए जंबूदीवाई अणाढिए णाम देवे महिड्ढिए जाव पलिओवमट्ठिईए परिवसइ। से ण तत्थ चउण्ह सामाणिसाहस्सीणं जाव जंबूदीवस्स जंबूए सुदंसणाए अणाढियाए य रायहाणीए जाव विहरइ।

कहिं णं भंते ! अणाढियस्स जाव समत्ता वत्तव्वया रायहाणीए, महिड्ढिए। अदुत्तरं च णं गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे जबूरुक्खा जंबूवणा जबूवणसंडा णिच्च कुसुमिया जाव सिरीए अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति। से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चइ— जंबुद्दीवे जंबुद्दीवे। अदुत्तर च ण गोयमा ! जबुद्दीवस्स सासए णामधेज्जे पण्णत्ते जन्न कयावि णासि जाव णिच्चे।

[१५२-४] वह जवू-सुदर्शना अन्य बहुत से तिलक वृक्षो, लकुट वृक्षो यावत् राय वृक्षो और हिगु वृक्षो से सब ओर से घिरी हुई है। जवू-सुदर्शना के ऊपर बहुत से आठ-आठ मगल—स्वस्तिक श्रीवत्स यावत् दर्पण, कृष्ण चामर ध्वज यावत् छत्रातिछत्र हैं—यह सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

जवू-सुदर्शना के वारह नाम हैं, यथा—१ सुदर्शना, २ अमोहा, ३. सुप्रवुद्धा, ४ यशोधरा, ५ विदेहजवू, ६ सौमनस्या, ७ नियता, ८ नित्यमडिता, ९ सुभद्रा, १० विशाला, ११ सुजाता, १२. सुमना। सुदर्शना जवू के ये १२ पर्यायवाची नाम है।

हे भगवन् ! जवू-सुदर्शना को जवू-सुदर्शना क्यो कहा जाता है ?

गौतम ! जम्वू-सुदर्शना मे जवूद्वीप का अधिपति अनादृत नाम का महर्द्धिक देव रहता है। यावत् उसकी एक पल्योपम की स्थिति है। वह चार हजार सामानिक देवो यावत् जवूद्वीप की जवू-सुदर्शना का और अनादृता राजधानी का यावत् आधिपत्य करता हुआ विचरता है।

हे भगवन् ! अनादृत देव की अनादृता राजधानी कहा है ?

गौतम ! पूर्व मे कही हुई विजया राजधानी की पूरी वक्तव्यता यहाँ कहनी चाहिए यावत् वहा महर्द्धिक अनादृत देव रहता है।

गौतम ! अन्य कारण यह है कि जम्वूद्वीप नामक द्वीप मे यहाँ वहाँ स्थान स्थान पर जम्वूवृक्ष, जवूवन और जवूवनखड है जो नित्य कुसुमित रहते है यावत् श्री से अतीव अतीव उपशोभित होते विद्यमान है। इस कारण गौतम ! जम्वूद्वीप, जम्वूद्वीप कहलाता है। अथवा यह भी कारण है कि जम्वूद्वीप यह शाश्वत नामधेय है। यह पहले नही था—ऐसा नहीं, वर्तमान मे नही है, ऐसा भी नही और भविष्य मे नहीं होगा ऐसा नही, यावत् यह नित्य है।

विवेचन

प्रस्तुत सूत्र मे जम्वू-सुदर्शना के वारह नाम वताये गये हैं। वे नाम सार्थक नाम है और विशेष अभिप्रायो को लिये हैं। उन नामो की सार्थकता इस प्रकार है—

१ सुदर्शना—अति सुन्दर और नयन मनोहारी होने से यह सुदर्शना कही जाती है।

२ अमोघा—अपने नाम को सफल करने वाली होने से यह अमोघा कहलाती है। इसके होने से ही जम्वूद्वीप का आधिपत्य सार्थक और सफल होता है, अन्यथा नही। अत यह अमोघा ऐसे सार्थक नाम वाली है।

३ सुप्रवुद्धा—मणि, कनक और रत्नो से सदा जगमगाती रहती है, अतएव यह सुप्रवुद्धा—उन्निद्र है।

४ यशोधरा—इसके कारण ही जम्बूद्वीप का यश त्रिभुवन मे व्याप्त है अतएव इसे यशोधरा कहना उचित ही है।

५ विदेहजम्बू—विदेह के अन्तर्गत जम्बूद्वीप के उत्तरकुरुक्षेत्र मे होने के कारण विदेह-जम्बू है।

६ सौमनस्या—मन की प्रसन्नता का कारण होने से सौमनस्या है।

७ नियता—सर्वकाल अवस्थित होने से नियता है।

८ नित्यमडिता—सदा भूषणो से भूषित होने से नित्यमडिता है।

९ सुभद्रा—सदा काल कल्याण-भागिनी है। इसका अधिष्ठाता महर्द्धिक देव होने से यह कदापि उपद्रवग्रस्त नही होती।

१० विशाला—आठ योजनप्रमाण विशाल होने से यह विशाला—विस्तृता कही जाती है।

११ सुजाता— विशुद्ध मणि, कनक, रत्न आदि से निर्मित होने से यह सुजाता है—जन्मदोप रहिता है।

१२ सुमना— जिसके कारण से मन शोभन-अच्छा होता है वह सुमना है।

वृत्तिकार के अनुसार इन नामो का क्रम इस प्रकार है—१ सुदर्शना, २ अमोघा, ३ सुप्रबुद्धा, ४ यशोधरा, ५ सुभद्रा, ६ विशाला, ७ सुजाता, ८. सुमना, ९ विदेहजम्बू, १० सौमनस्या, ११ नियता, १२ नित्यमडिता।

जम्बूद्वीप को जम्बूद्वीप कहने के कारण इस प्रकार बताये है—(१) जम्बूवृक्ष से उपलक्षित होने के कारण यह जम्बूद्वीप कहलाता है। (२) जम्बूद्वीप के उत्तरकुरु क्षेत्र मे यहाँ वहाँ स्थान-स्थान पर बहुत से जम्बूवृक्ष, जम्बूवन और जम्बूवनखण्ड हैं इसलिए भी यह जम्बूद्वीप कहलाता है। एक जातीय वृक्षसमुदाय को वन कहते है और अनेक जातीय वृक्षसमूह को वनखण्ड कहते है। (३) जम्बू नाम शाश्वत होने से भी यह जम्बूद्वीप कहलाता है।

जम्बूद्वीप में चन्द्रादि की संख्या

१५२. जबुद्दीवे ण भते ! दीवे कति चंदा पभासिंसु वा पभासेंति वा पभासिस्सति वा ? कति सूरिया तविंसु वा तवति वा तविस्संति वा ? कति नक्खत्ता जोय जोयसु वा जोयति वा जोयस्सति वा ? कति महग्गहा चार चारिंसु वा चरिंति वा चरिस्सति वा ? केवइयाओ तारागणकोडाकोडीओ सोहसु वा सोहंति वा सोहेस्सति वा ?

गोयमा ! जबुद्दीवे ण दीवे दो चंदा पभासिंसु वा, पभासेंति वा पभासिस्संति वा। दो सूरिया तविंसु वा तवेंति वा तविस्सति वा। छप्पन्नं नक्खत्ता जोगं जोएसु वा जोएंति वा जोइस्संति वा। छावत्तर गहसयं चार चरिंसु वा चरेंति वा चरिस्संति वा।

एग च सयसहस्सं तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइं।
णव य सया पन्नासा तारागणकोडकोडीणं ॥१॥

सोभिंसु वा सोभति वा सोभिस्संति वा।

१५३ हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे कितने चन्द्र चमकते थे, चमकते है—उद्योत करते है और चमकेंगे ? कितने सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे ? कितने नक्षत्र (चन्द्रमा के साथ) योग करते थे, करते है, करेंगे ? कितने महाग्रह आकाश मे चलते थे, चलते हैं और चलेंगे ? कितने कोडाकोडी तारागण शोभित होते थे, शोभित होते हैं और शोभित होगे ?

गौतम ! जवूद्वीप मे दो चन्द्रमा उद्योत करते थे, करते है और करेंगे। दो सूर्य तपते थे, तपते हैं और तपेंगे। छप्पन नक्षत्र चन्द्रमा से योग करते थे, योग करते हैं और योग करेंगे। एक सौ छियत्तर महाग्रह आकाश मे विचरण करते थे, करते हैं और विचरण करेंगे। एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोडाकोडी तारागण आकाश मे शोभित होते थे, शोभित होते है और शोभित होंगे।

विवेचन—जवूद्वीप मे दो चन्द्र और दो सूर्य हैं। प्रत्येक चन्द्र के परिवार मे २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ कोडाकोडी तारागण है।[1] दो चन्द्रमा होने से ५६ नक्षत्र, १७६ ग्रह और १,३३,९५० कोडाकोडी तारागण हैं।

।। जम्बूद्वीप का वर्णन समाप्त ।।

---

१ छावट्ठिसहस्साइ नव चेव सयाइ पचसयराइ।
एकससीपरिवारो तारागण कोडिकोडीण ।।

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्गसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा निग्गथीण वा चउहि महापाडिवएहि सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहपाडिवए कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाणा वा निग्गथीण वा, चउहि सझाहि सज्झाय करेत्तए, त जहा—पढिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पई निग्गथाण वा, निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्गसूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धी, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका सक्षेप में निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. **उत्कापात-तारापतन**—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२ **दिग्दाह**—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३. **गर्जित**—बादलो के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४ **विद्युत**—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योंकि वह

गर्जन और विद्युत् प्राय ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अत आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलो सहित आकाश मे कडकने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६ यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है, वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिये।

८. धूमिका-कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है इसमे धुम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धुंध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९ मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज-उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारो और धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है।

औदारिक शरीर सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी, मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दे, तो जब तक वहाँ से ये वस्तुएँ उठाई न जाएँ, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इस प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश: सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश. आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८ **पतन**—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनै शनै स्वाध्याय करना चाहिए।

१९ **राजव्युद्ग्रह**—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२० **औदारिक शरीर**—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये है।

२१-२८ **चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा**—आषाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते है। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२. **प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि**—प्रात. सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

□□

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१. श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४. श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६. श्री एस किशनचन्दजी चोरड़िया, मद्रास
७ श्री कवरलालजी बैताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया, मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१० श्री एस बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११. श्री जे दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री एस. सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजो हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७ श्री जे हुक्मीचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१ श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३ श्री तिलोकचदजी, सागरमलजी सचेती, मद्रास
४ श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, कटगी
५ श्री आर प्रसन्नचन्दजी चोरडिया, मद्रास
६ श्री दीपचन्दजो चोरडिया, मद्रास
७ श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटगी
८ श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९ श्री मागीलालजी मिश्रीलालजी संचेती, दुर्ग

सरक्षक

१ श्री बिरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२. श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेडता सिटी
४ श्री श० जडावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचन्दजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरड़िया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागाटोला
९ श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचदजी झामड, मदुरान्तकम्
१० श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K. G. F.) जाडन
११ श्री थानचन्दजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचदजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचन्दजी बैद, राजनादगाँव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचन्दजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचन्दजी काकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकड़िया, इन्दौर
१९ श्री हरकचदजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचदजी लोढा, चागाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चागाटोला

२२ श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२३ श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५ श्री रतनचन्दजी उत्तमचन्दजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचन्दजी भागचन्दजी बोहरा, झूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा डोडीलोहारा
२८ श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, वेल्लारी
२९ श्री मूलचन्दजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३० श्री सी० अमरचन्दजी बोथरा, मद्रास
३१ श्री भवरलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२ श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९ श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४० श्री जवरचन्दजी गेलडा, मद्रास
४१. श्री जडावमलजी सुगनचन्दजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४ श्री लूणकरजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१ श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेड़तासिटी
२ श्रीमती छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचन्दजी नाहटा, जोधपुर
४ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५ श्री भवरलालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७ श्री बी गजराजजी बोकडिया, सेलम
८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी काठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१० श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२ श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बंट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री ताराचदजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचन्दजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचन्दजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचदजी किशनलालजी, मेड़तासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१ श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४ श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६ श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३९. श्री मागीलालजी चोरड़िया, कुचेरा

४० श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१ श्री ओकचदजी हेमराजजी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३ श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
४४. श्री पुखराजजी वोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६. श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, वेंगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, वेंगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराजजी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३. श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४. श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६. श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९. श्री भवरलालजी रिखवचदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१. श्री पुखराजजी वोहरा, पीपलिया कला
६२. श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, वेंगलोर
६३. श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४. श्री भीवराजजी वाघमार, कुचेरा
६५. श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगाव
६७ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८. श्री भंवरलालजी डूगरमलजी काकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी वुद्धराजजी वाफणा, व्यावर
७२ श्री गगारामजी इन्द्रचदजी वोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री वालचदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शातिलालजी सुराणा, वोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, व्यावर
८१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी वाफना, गोठन
८३ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४. श्री मांगीलालजी मदनलालजी चोरड़िया, भैरूद
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एण्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी वागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इन्द्रचन्दजी मुकनचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दोर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री वालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, व्यावर
९४ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी, वेंगलौर
९५ श्रीमती कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी सचेती, राजनादगाँव

९८ श्री प्रकाशचदजी जैन, नागौर
९९ श्री कुशालचदजी रिखवचन्दजी सुराणा, वोलारम
१०० श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२. श्री तेजराजजी कोठारी, मागलियावास
१०३. सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु वडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी वरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७. श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी वेताला, डेह
११०. श्री जीवराजजी भवरलालजी चोरडिया, भैरू दा
१११. श्री माँगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३. श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुलीचदजी वोकडिया, मेडता सिटी
११५. श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकुवरबाई धर्मपत्नी श्री चादमलजी लोढा, वम्बई
११७ श्री माँगीलालजी उत्तमचदजी वाफणा, वैंगलोर
११८ श्री साचालालजी वाफणा, औरगावाद
११९ श्री भीखमचन्दजी माणकचन्दजी खाविया, (कुडालोर) मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकुवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थांवला
१२२. श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३. श्री भीखमचन्दजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दरावाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया सिकन्दरावाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैनश्रावक संघ, वगडीनगर
१२७. श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, विलाडा
१२८. श्री टी पारसमलजी चोरडिया, मद्रास
१२९ श्री मोतीलालजी आसूलालजी वोहरा एण्ड क, वैंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड़